

# सामवेद

स्वाध्याय मण्डल

किल्ला पारडी

(जिला वलसाड)







# सामवेद का सुबोध भाष्य

भाष्यकार

पद्मभूषण डा० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर



स्वाध्याय मण्डल

पारडी



प्रकाशक  
वसन्त श्रीपाद सातबलेकर  
स्वाध्याय मण्डल, पारडी  
[ जि० बलसाड ]

This book has been published with financial  
assistance from the Ministry of Education  
and Culture, Government of India

1985

**Rs. 460 for 10 Vols.**

मुद्रक  
ज्ञान आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली





# सामवेदका सुबोध अनुवाद

## भू मि का

वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेदमें देवताओंके गुणोंका वर्णन है, यजुर्वेदमें नाना प्रकारके यज्ञोंकी किसप्रकार करना चाहिए यह बताया है, सामवेदमें अनेक मंत्रोंका गायन किसप्रकार होना चाहिए यह बताया है और अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञान है। इसप्रकार चारों वेदोंकी विषय-व्यवस्था है।

### वेदत्रयी व वेदचतुष्टयी

“वेद-त्रयी” भी कई स्थलोंपर आया है जिसका अर्थ है, पद्य, गद्य और गायन। “पादबद्धव्यवस्था” वाले मंत्र ऋग्वेद, “गद्य भाग” यजुर्वेद और पादबद्ध मंत्रोंका गायन सामवेद है। यह वेदत्रयी है। अथर्ववेद मंत्रोंके पादबद्ध होनेके कारण उनका अन्तर्भाव ऋग्वेदमें ही हो जाता है। वेदग्रंथोंके चार होनेपर भी उनका समावेश (१) पद्य, (२) गद्य और (३) गायन इन तीन विभागोंमें हो सकता है। इसलिए “वेद-त्रयी” और “वेद-चतुष्टयी” के मंत्रोंकी संख्यामें कोई फरक नहीं है। वेदत्रयी कहनेके कारण अथर्ववेद पीछेसे घना यह नहीं समझना चाहिए। यज्ञोंमें “ब्रह्मा” अथर्ववेद ही होता है, और “ब्रह्मा” की यज्ञमें आवश्यकता होती ही है, तब अथर्ववेद पीछेसे बना यह कैसे कहा जा सकता है?

पद्य, गद्य और गान यह ही वेद-त्रयी है। सभी भाषाओंके वाङ्मयमें ये तीन विभाग होते ही हैं। इससे यह

स्पष्ट हो जाएगा, कि वेद-त्रयी और वेद-चतुष्टयीमें कोई भेद नहीं है। और वेद-त्रयीके कारण जो अथर्ववेदको पीछेसे घना हुआ मानते हैं, वे भी समझ जायेंगे कि उनकी यह धारणा गलत है।

यजुर्वेदमें जो पादबद्धमंत्र ऋग्वेद या अथर्ववेदसे लिए गए हैं, वे पद्यके समान नहीं बोले जाते, अपितु गद्य जैसे बोले जाते हैं, अर्थात् वे ही मंत्र ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें पद्यके अनुसार छन्दोंमें बोले जाते हैं और वे ही मंत्र यजुर्वेदमें छोलनेके समय गद्यके समान बोले जाते हैं। मंत्रोंके पाठकी यह परिपाटी पुरानी है।

वेद-त्रयी अथवा वेद-चतुष्टयीके अनुसार मंत्र गणनामें कोई फरक नहीं पड़ता। वेद-त्रयीमें भाषाकी रचना मुख्य है और वेद चतुष्टयीमें प्रतिपाद्य विषयकी मुख्यता है। इसको और स्पष्ट करनेके लिए नीचे एक तालिका प्रस्तुत है—

- १ वेद-त्रयी- पद्यमंत्र, गद्यमंत्र और गानके मंत्र।
  - २ वेद-चतुष्टयी- गुण वर्णनके मंत्र, यज्ञकर्मके मंत्र, गानके मंत्र और ब्रह्मज्ञानके मंत्र।
- इन दोनों प्रकारकी गणनाओंमें मंत्रसंख्यामें कोई भेद नहीं आता।

### सामवेदका विभूतिमन्त्र

भगवान् भी कृष्णने गीतामें भगवान्की विभूतियोंका वर्णन करते हुए “देवानां सामवेदोऽस्मि” ऐसा कहा



है। चारों वेदोंमें सामवेद भगवान्की विभूति है। पद्य, गद्य और गायनमें मन पर "गायन" का विशेष प्रभाव पड़ता है इसका अनुभव सबको होगा। यही सामगानका विभूतिमत्त्व है। भाषाके तीन प्रकारमें गायनका प्रकार मन पर अधिक प्रभाव डालता है। साधारण मनुष्यके मन पर गायनके आनन्दका प्रभाव ज्यादा होता है। रोगीके मन पर भी गायनका प्रभाव पड़ता है और वह शीघ्र स्वस्थ होता है। गायनका परिणाम खेती, बाग और पौधोंपर भी होता है। खेतमें यदि गायन किया जाए तो अनाज अधिक उपजता है, रोगियोंके अस्पतालमें यदि गानेके रिकॉर्ड्स लगाये जाएं तो उनके कारण रोगी जल्दी ही स्वस्थ बन जाता है। दुधारा गायको दुहते समय यदि उसे गाना सुनाया जाए तो वह ज्यादा दूध देती है। इसप्रकार गायनका प्रभाव पड़ता है।

इस सामगानकी पद्धतिमें और आधुनिक पद्धतिमें बड़ासा अन्तर है, उसका भी विचार यहां अत्यन्त आवश्यक है, सामगानमें स्वरको ऊंचे आलापसे शुरू करके उसे धीरे धीरे नीचे आलाप पर लाया जाता है, उसके कारण मनको शान्ति मिलती है और भडका हुआ मन सामगानको सुनकर शान्त हो जाता है। इसप्रकार सामगानसे शान्ति मिल सकती है।

आधुनिक पद्धतिके गानेमें ऊंचे और नीचे तानोंके मिश्रण होनेके कारण उस गानेसे मन शान्त होनेके बजाय और अधिक विकारवश होता है। दोनों प्रकारके गानेकी पद्धतियोंमें यह भेद है। इसलिए मनको शान्त करनेके लिए सामगानका उपयोग लाभप्रद है।

यही सामवेदका गीतोक्त विभूतिमत्त्व है। उच्छृङ्खल मनको शान्त करनेका काम सामगान कर सकता है।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें भी कहा है—

सामवेदश्च वेदानां यजुषां शतरुद्रियम् ।

( म. भा. १४।३।७ )

चारों वेदोंमें "सामवेद" और यजुर्वेदमें "शतरुद्रिय" विशेष महत्वके ग्रंथ हैं। गीतामें कहा है—

प्रणवः सर्ववेदेषु ॥ ( गी. ७।८ )

तथा महाभारतमें भी—

ओंकारः सर्ववेदानाम् ॥ ( महा अश्वमेध. ४४।६ )

ओंकारकी श्रेष्ठता बताई है। इस ओंकारकी प्रशंसासे सामवेदके महत्वमें न्यूनता आजाए, ऐसी बात नहीं। क्योंकि "ओंकार" व "उद्गीथ" दोनों समानार्थक हैं और उद्गीथ सामवेदका सार है।

छान्दोग्य-उपनिषद्में कहा है—

साम्नः उद्गीथो रसः ॥ ( छां. उ. १।१।२ )

"सामका रस उद्गीथ है" इसप्रकार सामवेदका महत्व वर्णित है। यह सामवेद ही भगवान्की विभूति क्यों है? इसके अन्तर कौनसी विशेषता है, इसका अब विचार करते हैं—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छे त्वं मम तेजोऽशसम्भवम् ॥

( गी. १०।४१ )

विभूतिका यह लक्षण गीतामें कहा है। जहां जहां विशेष विभूतिका तत्व होगा, श्रीमत्त्व दीखेगा, ऊर्जित-भावना अनुभवमें आएगी, वहां वहां भगवान्की विभूति है, यह समझना चाहिए। इस लक्षणके आधार पर सामवेद वेदोंमें निःसन्देह एक विभूति है। सामवेद गायनरूप होनेके कारण "शब्द-ब्रह्म" की गायनरूपी विभूति है। तान अथवा आलापसे सामवेदकी शोभा दीखती है, यही इसकी शोभा अथवा श्रीमत्त्व है। उसीप्रकार इस सामवेदका समूर्जितत्व विकार - विश्लेषण - अभ्यास - विराम - स्तोभ इन गानोंकी योजनासे श्रोताओंकी अनुभवमें आयेगा। साधारण गद्यकी अपेक्षा छन्द, छन्दकी अपेक्षा काव्य, काव्यकी अपेक्षा गायन और गानमें तानोंका आलाप विशेष प्रभावशाली होता है। इसीकारण सामवेदकी विशेष महत्ता है। यह ही छान्दोग्य-उपनिषद्में कहा है—

वाचः ऋग्रसः, ऋचः सामरसः ।

साम्न उद्गीथो रसः ॥ ( छां. उ. १।१।२ )

"वाणीका रस ऋचा है, ऋचाका रस साम है, और सामका रस उद्गीथ है। और भी कहा है—

सामवेद एव पुष्पम् । ( छां. उ. ३।३।१ )

"जैसे वृक्षके पत्ते और फूलोंमें फूल विशेष शोभादायक होते हैं, उसीप्रकार गायनरूप होनेके कारण सामवेद वेद-वृक्षका फूल है।

### सामवेदका अर्थ

सामवेदका अर्थ और उसका स्वरूप क्या है? इस पर अब विचार करते हैं। सामवेदका अर्थ केवल मंत्रसंग्रह ही है अथवा गान भी है, यह अब देखते हैं। छान्दोग्य उपनिषद्का कथन है—

या ऋक् तत्साम । ( छां. उ. १।३।४ )

"ऋचाओंका संग्रह ही साम है।" और भी—

ऋचि अध्युक्तं साम । ( छां. उ. १।६।१ )

"साम ऋचा पर आधारित होते हैं।" साम ऋचाको छोड़कर और किसीके आश्रयसे नहीं रहता। ऋग्वेद और



सामवेदका " स्त्री - पुरुष " के समान एक जोड़ा है, ऐसा भी कहा है—

अमोऽहमस्मि सा त्वं, सामाहमस्मि ऋक् त्वं ।  
द्यौरहं पृथिवी त्वं । ताविह संभवाव, प्रजा-  
माजनयावहे ।

( अथर्व. १४।२।७१; ऐत. ब्रा. ८।२७; बृ. उ. ६।४।२० )

मैं पति " अम " हूँ और तू स्त्री " ऋचा " है,  
" साम " मैं हूँ और " ऋचा " तू है, " द्यौ " मैं हूँ और  
" पृथिवी " तू है, हम दोनों मिलकर यहां उत्पन्न होते रहें,  
प्रजा उत्पन्न करें ।

इसमें साम शब्दकी व्युत्पत्ति दी है । " सा+अमः " = सामः । " सा " मतलब " ऋचा " और " अम " मतलब आलाप, अतः " साम " का अर्थ है ऋचाओंके आधार पर किया गया गान ।

### पादवद्धमंत्रोंका गान

ऋग्वेद और अथर्ववेदमें पादवद्धमंत्र हैं, और उनका गान होता है । " ऋचा " रूपी स्त्री और " सामगान " रूपी पुरुषका विवाह हुआ हुआ है । " पति - पत्नी " के समान साम और ऋचाका सम्बन्ध है । उपनिषदोंने इनका एक और भी सम्बन्ध दिखाया है, वह इसप्रकार है—

" वाक् च प्राणश्च, ऋक् च साम च ।

( छां. उ. १।१।५ )

" वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ ( छां. उ. १।७।१ )

" वाणी और प्राण क्रमशः ऋक् और साम हैं । वाणी ऋचा है और प्राण साम है । " वाणी और प्राणका जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध ऋचा और सामका है ।

### स्वर-मण्डल

ऋचाका अर्थ है चरणयुक्त-मंत्र । इन मंत्रोंका षड्ज, मध्यम आदि स्वरोंमें आलाप होता है । इसलिए कहा है—

गीतिषु सामाख्या ॥ ( जं. सू. २।१।३६ )

" वेदमंत्रोंके गानकी संज्ञा " साम " है । न केवल मंत्र-पाठकी ही " साम " संज्ञा है और न केवल गानेकी ही, अपितु इन दोनोंके मिश्रण की ही " साम " संज्ञा है । शालावत्य दाल्भ्यके संवादमें कहा है—

का साम्नो गतिरिति ? स्वर इति होवाच ।

( छां. उ. १।८।४ )

" सामकी गति क्या है ? स्वर - आलाप - ही सामकी गति है । स्वर अथवा आलापके बिना साम नहीं होता तथा-तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद, भवति हास्यं स्वं, तस्य स्वर एव स्वम् । ( बृ. उ. १।३।२५ )

" सामका स्वरूप आलाप है । " इस सामके स्वरमण्डलोंकी गणना नारदीय - शिक्षामें इसप्रकारकी गई है—

सप्तस्वराः त्रयो ग्रामाः मूर्च्छनास्वेकविंशतिः ।  
ताना एकोनपञ्चाशत् इत्येतत्स्वरमण्डलम् ॥

और भी कहा है—

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः ।  
यो द्वितीयः स गांधारः, तृतीयस्तृषभः स्मृतः ।  
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत् ।  
षष्ठो निषादो विज्ञेयः, सप्तमः पंचमः स्मृतः ॥

( नारदीय - शिक्षा )

इस नारदीय - शिक्षामें धैवत और निषादका स्थान - परिवर्तन दीखता है, उसका विचार संगीतज्ञ करें । ये स्वर सामांकके अनुसार ऐसे होते हैं—

|             |                 |               |
|-------------|-----------------|---------------|
| अतिक्रुष्टः |                 | पंचमः । प ।   |
| १ प्रथमः    | ( वेणोः )       | मध्यमः । म ।  |
| २ द्वितीयः  |                 | गांधारः । ग । |
| ३ तृतीयः    |                 | ऋषभः । रे ।   |
| ४ चतुर्थः   |                 | षड्जः । स ।   |
| ५ पंचमः     | ( मन्द्रः )     | निषादः । नि । |
| ६ षष्ठः     | ( अतिस्वार्थः ) | धैवतः । ध ।   |
| ७ सप्तमः    |                 | पंचमः । प ।   |

( क्रुष्टः ) तद्योसो क्रुष्टतम इव साम्नः स्वरस्तं देवा उपजीवन्ति । । प ।

१ योऽवरेषां प्रथमस्तं मनुष्या उपजीवन्ति । म ।

२ यो द्वितीयस्तं गन्धर्वाप्सरसः उपजीवन्ति । ग ।

३ यो तृतीयस्तं पशवः ( वृषभः ऋषभः )

उपजीवन्ति । रे ।

४ यश्चतुर्थस्तं पितरो ये चाण्डेषुशरते । स ।

५ यः पंचमस्तमसुररक्षांसि ( निषादः ) उपजीवन्ति । नि ।

( अन्त्यः ) योऽन्त्यस्तमोषधयो वनस्पतयश्चा-

न्यज्जगत् ( सामविधान ब्राह्मणे ) । ध ।

सामगानके ये स्वरमण्डल हैं । उद्गाता इन स्वरोंमें साम-



गान करते हैं। छे सामविकार होते हैं, वे इसप्रकार हैं—  
विकार - विश्लेषण - विकर्षण - अभ्यास - विराम - स्तोभ ।

१ विकार- “ अग्ने ” का “ ओझायि ” होता है ।

२ विश्लेषण- “ वीतये ” का “ वोयि तोयारयि ” होता है ।

३ विकर्षण- “ ये ” का “ यारयि ” होता है ।

४ अभ्यास- बार बार बोलना, जैसे “ तोयारयि । तोयारयि है ।

५ विराम- जैसे “ गृणानो हव्यदातये ” को “ गृणानोह । व्यदातये ” ऐसा बोलते हैं, यद्यपि मूल मंत्रमें “ गृणानोह व्यदातये ” ऐसा रूप नहीं है, फिर भी गानेके सौकर्यके लिए बीचमें ही तोड़ दिया जाता है, इसे विराम कहते हैं ।

६ स्तोभ- ऋचाओंमें न आये हुए अक्षरोंको बोलना । जैसे “ औ होवा । हाऊ ” इत्यादि ।

सामवेद गानरूप निस्सन्देह है, पर सामवेद जो आज पुस्तकके रूपमें है, वह तो केवल ऋचाओंका संग्रह है । इनमें एक भी सामगान नहीं है । जिन मंत्रोंके आधार पर गान होते हैं, वे “ योनिमंत्र ” हैं । अर्थात् सामवेदके ये मंत्र गाये नहीं जाते हैं, अपितु इनके आधार पर बने हुए जो गाने हैं, वे गाये जाते हैं । ऋषियोंने इन योनिमंत्रोंके आधार पर हजारों गाने बनाये हैं । वे आज सामगान कहे जाते हैं ।

सामवेदमें १८७५ मंत्र हैं, उन मंत्रों पर करीब करीब ४००० सामगान बने हैं । “ कौथुमी ” शाखाका यह सामवेद है और इस पर ही चार हजार गाने बने हैं, दूसरी “ राजायाणी ” शाखाका सामवेद दूसरा है, और उन पर भी ४००० गाने पृथक् बने हैं । इसप्रकार सामवेद अनेक हैं और उसके गाने भी अनेक हैं । ये सामगान जिस ऋषिने बनाये उसके नामसे ये गाने आज भी प्रसिद्ध हैं, जैसे “ गोतमस्य पर्कम्, कश्यपस्य बार्हिषम् ” इत्यादि । ये सब “ ग्रामगान, आरण्यकगान, ऊहगान, उह्यगान ” आदि नामसे प्रसिद्ध हैं ।

सामवेदके मंत्र सब ऋग्वेदसे ही लिए गए हैं और करीब ६० मंत्र जो ऋग्वेदकी आश्वलायन शाखामें नहीं मिलते शांखायन शाखामें मिलते हैं । तात्पर्य यह कि सामवेद ऋग्वेदके मंत्रोंका ही संग्रह है । अतः सामवेदमें जो मंत्र हैं उनके अलावा जो ऋग्वेद या अथर्ववेदमें मंत्र हैं, उनका भी गान किया जा सकता है अर्थात् जितने पावबद्धमंत्र हैं उन सब पर सामगान बन सकते हैं ।

## मंत्र और सामगान

ऋग्वेदके मंत्र जो सामवेदमें आये हैं, उन पर किस तरहके गान बने हैं, वह यहाँ दिखाते हैं—

ऋग्वेदका मंत्र—

अग्ने आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ ( ऋ. ६।१६।१० )

सामवेदका मंत्र ( सामयोनिः )

अग्ने आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ ( ऋ. ६।१६।१० )

इस मंत्रके सामगान—

( १ ) गोतमस्य पर्कम् १

ओझाई । आयाहीऽ३ । वोइतोयाऽ२इ ।

तोयाऽ२इ । गृणाना ह । व्यदातोयाऽ२इ ।

ता याऽ२इ । नाइ होतासाऽ२३ । त्साऽ२इ ।

वाऽ२३४ औहो वा । हीऽ२३४षी ॥ १ ॥

( २ ) कश्यपस्य बार्हिषम्—

अग्ने आयाहि वी । तया३ । गृणानो हव्यदाताऽ

२३याइ । नि होता सत्सि बर्हाऽ२३इषी । बर्हाऽ२

इषाऽ२३४ औ होवा । बर्हीऽ३षीऽ२३४५ ॥ २ ॥

( ३ ) गोतमस्य पर्कम् ।

अग्ने आयाहि । वाऽ५इतयाइ । गृणानो हव्य-

दाऽ१ ताऽ३ये । नि होताऽ२३४सा । त्साऽ-

२३४ इवाऽ३ । हाऽ२३४ इषाऽ५इहा इ ।

यहाँ प्रथम ऋग्वेदका एक मंत्र दिया है, वही मंत्र सामवेदमें गानेके लिए लिया गया है । यहाँ सामवेदके अक्षरोंपर जो अंक हैं, वे अंक उदात्त, अनुदात्त आदि स्वरभेद दिखाने वाले हैं । ऋग्वेदमें जो स्वर नीचे और ऊपर हैं, उन्हींको सामवेदमें अंकोंके द्वारा दिखाया गया है । जो ऋग्वेदमें अनुदात्तका निदर्शक नीचेकी लकीर ( - ) है, उसके लिए



सामवेदमें ३ अंक है। ऋग्वेदमें उवात्तके लिए कोई चिन्ह नहीं है, सामवेदमें उसके लिए १ का अंक है। ऋग्वेदमें स्वरितके लिए खड़ी रेखा ( १ ) होती है, उसके लिए सामवेदमें २ अंक है, जैसे—

अ॒ग्न आ या॑हि वी॒तये॑  
२३ १ २ ३१२  
अ॒ग्न आ या॑हि वी॒तये॑

उ अ उ स्व प्र अ उ स

“ उ ”— उवात्त, “ अ ”— अनुवात्त, “ स्व ”— स्वरित, “ प्र ”— प्रचय “ स ”— सन्नतर ये स्वर हैं। ऋग्वेदमें जो स्वर नीचे और ऊपरकी रेखासे दिखाये गये हैं, उन्हींको सामवेदमें अंकों द्वारा दिखाया गया है। चिन्हमें फरक होने पर भी उच्चारणमें कोई फरक नहीं है। सामवेदके अंक गानेके अंक नहीं हैं, यह यहां ध्यान देने योग्य बात है।

ऊपर गीतमके दो और कश्यपका एक ऐसे तीन सामगान दिये हैं। सामगान तान आलाप आवि स्वरोंमें गाये जाते हैं। मूलमंत्र गानोंमें विकृत हो जाते हैं, इसलिए उनका अर्थ, भावार्थ और स्पष्टीकरण नहीं हो सकता।

### सामगानके अनेक भेद

“ सहस्रवर्त्मा सामवेदः ” इस प्रकार पतंजलिने अपने व्याकरण महाभाष्यमें कहा है। सामगानके हजारों भेद हैं। गायक प्रवीण होनेके बाद अपने गायनका नया ढंग तैय्यार करता है। ऐसे अनेक उत्तम गायक उसके अनेक प्रकार बनाते हैं। इसीलिए सामवेदको “ सहस्रवर्त्मा ” कहा है। उसके प्रकार “ गीतमस्य पर्क, कश्यपस्य बार्हिष ” आवि नामोंसे दिखाये हैं। गीतमका सामगान पृथक् और कश्यपका सामगान पृथक् है। इस प्रकार अनेक गान हो सकते हैं।

### सामवेदकी शाखा

सामगानके प्रकार अनेक होनेके कारण उसकी शाखायें भी बहुत हैं और अति प्राचीनकालसे इन अनन्त शाखाओंका प्रचलन होता आया है। चरणव्यूहमें शाखाके त्रिषयसे इस प्रकार लिखा है—

- १ तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रं आसीत् ।
- २ राणायणीयः, सालमुखाः, कालापः, महा-  
कालापः, कौथुमाः, लांगलिकाश्चेति । कौथु-  
मानां षड् भेदाः भवन्ति-सारायणीयाः, वात-

रायणीयाः, वैधृताः, प्राचीनाः, तैजसा, अनिष्ट-  
काश्चेति ।

इस तरह सामगानके पहले हजार भेद थे, पर वे सब धीरे धीरे नष्ट होते चले गए और अब केवल उसके २-३ भेद ही उपलब्ध हैं। और उत्तम सामगान करनेवाले तो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। दक्षिण भारतमें विशेषकर मसूरकी तरफ थोड़ेसे रह गए हैं।

सामवेदकी तेरह शाखायें हैं, यह “ साम - तर्पण - विधि ” में लिखा है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

- १ राणायण, २ शादयमुग्न्य, ३ व्यास, ४ भागुरि,
- ५ औलुण्डी, ६ गौल्गुलवी, ७ भानुमान-औपमन्यव,
- ८ काराटि, ९ मशकगार्ग्य, १० वार्षगव्य, ११ कुथुम,
- १२ शालिहोत्र, १३ जैमिनी ।

इन तेरह शाखाओंमेंसे आज, “ राणायणी, कौथुमी और जैमिनीय ” ये तीन शाखायें उपलब्ध हैं। चरणव्यूहमें सामवेदकी जो हजार शाखायें कही गई हैं, वे मान्य नहीं हैं, यह बात बंगालके प्रसिद्ध विद्वान् सत्यव्रत सामभमीने सिद्ध करके दिखाई है। पुराणोंमें और भी सामकी शाखाओंके नाम मिलते हैं, वे विचारणीय हैं—

इन शाखाओंके गानोंमें बहुत भेद है। जैसे—

|           |           |
|-----------|-----------|
| कौथुमी    | राणायणी   |
| हाउ       | हावु      |
| राइ       | राधि      |
| वाजेषु नो | वाजेषु जो |

यह पाठभेद इन दोनों शाखाओंके गानोंमें मिलता है।

सामवेदमें ऋग्वेदके बालखिल्यमेंसे भी कुछ मंत्र आए हैं, उन परसे ऐसा बीखता है कि बालखिल्यके मंत्रोंका समावेश ऋग्वेदमें होनेके बाद इस सामवेदका मंत्रसंग्रह हुआ है।

### ऋग्वेदमें सामका उल्लेख

ऋग्वेदमें सामका उल्लेख अनेकबार आया है—

- १ अंगिरसां सामभिः स्तूयमानाः ( देवाः ) ।  
( ऋ. १।१०।७।२ )
- २ अंगिरसो न सामभिः । ( ऋ. १०।७।८।५ )
- ३ उभौ वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च  
त्रैष्टुभं चानुराजति ।
- ४ उवातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव  
सवनेषु शंससि । ( ऋ. २।४।१।१-२ )



“ वह पक्षी सामगानेवालेके समान गायत्री और त्रिष्टुभ् इन दोनों छन्दोंमें साम गाता है और उसके कारण वह शोभित होता है । हे शकुने ! तू उद्गाताके समान सामगान करता है । तू ब्रह्मपुत्रके समान यज्ञके सवनमें गाता है ”

५ यो जागार तमु सामानि यन्ति ।

( ऋ. ५।४४।१४ )

“ जागृत रहनेवालेके पास ही साम जाते हैं ” ।

६ तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुः यज्ञन्यं सामगां उक्थशासम् ।

( ऋ. १०।१०७।६ )

“ उसीको ऋषि, उसीको ब्रह्मा, उसीको यज्ञ करनेवाला, उसीको सामगायक और स्तोत्र बोलनेवाला कहते हैं । ”

७ उपगासिषत् श्रवत्साम गीयमानम् ।

( ऋ. ८।८१।५ )

८ यूयं ऋषिं अवथ सामविप्रम् । ( ऋ. ५।५४।१४ )

“ सामगान करो, और सामगान सुनने दो । सामगानमें कुशल ब्राह्मण ऋषिकी तुम रक्षा करो ” ।

९ पतो निवन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साक्षा ।

( ऋ. ८।९५।७ )

१० इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।

( ऋ. ८।९८।१ )

“ शुद्ध साम गाकर तेरी हम स्तुति करते हैं । ज्ञानी इन्द्रको बृहत् नामक सामका गान करके दिखाओ ” ।

११ बृहस्पतिः सामभिः ऋक्वो अर्चन्तु ।

( ऋ. १०।३६।५ )

१२ अर्चन्त एके महि साम मन्वत ।

( ऋ. ८।२९।१० )

“ सामगानसे पूजयनीय बृहस्पतिकी पूजा हो । कोई महान् सामका गान करते हैं । ”

१३ आंगूष्थं शवसानाय साम । ( ऋ. १।६२।२ )

१४ ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ( ऋ. १।१४७।१ )

१५ गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कं अर्केण साम

त्रैष्टुभेन वाकम् । ( ऋ. १।१६४।२४ )

१६ ये न परः साम्नो विदुः । ( ऋ. २।२३।१६ )

“ महा बलवान् इन्द्रके लिए आंगूष्थ सामका गान करो । यज्ञमें सामगानको सुनकर देव आनन्दित हो गए । गायत्रीसे

अर्क बनाते हैं, अर्कसे साम और त्रैष्टुभसे वाणी उत्तम होती है । वे सामकी अपेक्षा और किसीकी श्रेष्ठ नहीं समझते ” ।

१७ त्वष्टाजनत् साम्नः साम्नः कविः ।

( ऋ. २।२३।१७ )

१८ साम कृण्वन् सामन्यो विपश्चित् क्रन्दन्नेति ।

( ऋ. ९।९६।२२ )

१९ परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।

( ऋ. ९।१११।२ )

२० स हि द्युता विद्युता वेति साम ।

( ऋ. १०।९९।२ )

२१ तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जक्षिरे ।

( ऋ. १०।९०।९ )

“ त्वष्टाने तुझे सामका ज्ञानी बनाया है । सामका निर्माण करते हुए सामगायनमें महान् ज्ञानी गान करता हुआ आगे होता है । सामगान जिससे दूर तक सुनाई पड़े, इस तरहसे ज्ञानी जोरसे स्तोत्र बोलते हैं । वह इन्द्र प्रकाशमान् विद्युत्के समान आयुध लेकर साम सुननेके लिए आता है । उस सर्व-हुत यज्ञसे ऋचा और साम उत्पन्न हुए । ”

२२ अशीतिभिः तिसृभिः सामगेभिः दृष्टापूर्तं

अवतुः नः । ( अथर्व. २।१२।४ )

२३ ऋचं सामं यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते ।

( अथर्व. ७।५४।१ )

२४ बृहतः परिसामानि षष्ठात् पंचाधि निर्मिता ।

( अ. ८।९।४ )

२५ षडु सामानि षडहं वहन्ति । ( अ. ८।९।१६ )

२६ सामानि यस्य लोमानि । ( अ. ९।६।२ )

“ ८०×३= २४० गायकोंके साथ दृष्टापूर्त हमारी रक्षा करें । ऋचा और सामसे हम यजन करते हैं, जिससे हम कर्म करते हैं । छठे बृहत्के आधार पर पांच प्रकारके साम हमने बनाये हैं । छे साम छे दिनके यज्ञमें चलते हैं । साम जिसके लोम हैं । ”

२७ सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः ।

( अ. १०।५।३० )

२८ यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।

( अ. १०।७।१४ )

२९ साम्ना ये साम संविदुः अजस्तद्दृशे क्व ।

( अ. १०।८।४१ )



३० वशा समुद्रे प्रानृत्यत् ऋचः सामानि विभ्रती ।

( अ. १०।१०।१४ )

३१ ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ।

( अ. ११।३।१५ )

“ शत्रुओंको मारनेवाला, ऋचाओं द्वारा तीक्ष्ण किया गया व सामोंसे तेजस्वी वह बनाया गया है । जिसमें प्रथम जन्मे हुए ऋषि, ऋचा, साम, यजु व पृथिवी आश्रित हैं । सामसे सामको जो अच्छी तरह जानते हैं, उन्होंने अजन्माको भला कहां देखा ? वशा ( गाय ) ऋचा और सामको धारण करके भव समुद्रमें नृत्य करने लगी । ब्रह्माने उसे चारों ओरसे पकड़ लिया और सामने उसे घेर लिया । ”

३२ ऋक्सामयजुस्त्रिच्छिष्ट उद्गीथ प्रस्तुतं स्तुतम् ।

उच्छिष्टे स्वरसाम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥

( अ. ११।७।५ )

३३ ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

( अ. ११।७।२४ )

३४ शरीरं ब्रह्म प्राविशत् ऋचः सामाथो यजुः ।

( अ. ११।८।२३ )

३५ ब्रह्माणो यस्यामर्चन्ति ऋग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।

( अ. १२।१।३८ )

३६ तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानु-  
व्यचलन् ।

( अ. १५।६।८ )

३७ ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च  
प्रियं धाम भवति ।

( अ. १५।६।९ )

“ ऋचा, साम, यजु, उद्गीथ, प्रस्ताव, स्तोत्र, स्वर और सामके आलाप उच्छिष्टमें हैं । वे मुझमें आवें । ऋचा, साम, छन्द और पुराण यजुर्वेदके साथ उच्छिष्टसे उत्पन्न हुए । ऋचा साम और यजु ये ब्रह्मज्ञान शरीरमें प्रविष्ट हुए । जिस भूमिपर ऋचा, साम और यजु जाननेवाले ब्राह्मण यज्ञकर्म करते हैं । उसके पीछे ऋचा, साम, यजु और ब्रह्म चले । वह ऋचा, साम, यजु और ब्रह्मका प्रिय धाम होता है । ”

इन मंत्रोंमें ऋचा, साम, यजु और ब्रह्म ये चार वेदोंके वाचक शब्द आये हैं । इनमें कुछ मंत्रोंमें ये वेदोंके वाचक हैं, तो कुछ मंत्रोंमें ये शब्द उन उन वेदमंत्रोंके वाचक हैं । हमारा प्रस्तुत विषय सामवेद और सामगान है । ऊपरके कुछ मंत्रोंमें सामवेद ऐसा भी अर्थ है ।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जक्षिरे ।

( अ. १९।६।१३; ऋ. १०।९०।९; यजु. ३१।७ )

२ [ साम. हिन्दी भूमिका ]

सामानि यस्य लोमानि । ( अ. १०।७।२० )

ऋचः सामानि छन्दांसि । ( अ. ११।७।२४ )

इन मंत्रोंमें “ साम ” का अर्थ “ सामवेद ” है ऐसा प्रतीत होता है । बाकीके मंत्रोंमें सामगानके बोधक “ साम ” अथवा “ सामानि ” ये पद हैं । इन मंत्रोंसे यह स्पष्ट होता है कि ऋचाओंके आधारसे सामगान करनेकी पद्धति वैदिककालमें चालू थी और सामवेद भी बन गया था । यज्ञमें जो ऋग्वेदके मंत्र गाये जाते हैं, उनका संग्रह यह सामवेद है । सामवेदकी अनेक शाखायें प्रचलित थीं और उनकी संहितायें भी पृथक् बनी हुई थीं ।

ऋग्वेदमंत्रोंमें सामगानके नाम “ वैरूपं, बृहत्, गौर-  
वीति, रैवतं, अर्कं, गायत्रं, श्लोकं, भद्रं ” इत्यादि  
आए हैं, इसप्रकार अथर्ववेदके मंत्रोंमें भी सामगानके नाम  
मिलते हैं, यजुर्वेदमें रथन्तरं ( यजु. १०।१० ); बृहत्  
( य. १०।११ ); वैरूपं ( य. १०।१२ ); वैराजं ( य.  
१०।१३ ); वैखानसं, वामदेवं, यज्ञायज्ञियं ( य. १२।४ )  
शाक्वरं, रैवतं ( य. १०।४ ); गायत्रं, गौरिवीतं, अभी-  
वर्तं, क्रोशं, सत्रस्यर्धि, प्रजापतेर्हृदयं, श्लोकं, अनु-  
श्लोकं, भद्रं, राजन्, अर्क्यं, इलान्दं, इत्यादि साम-  
गानके नाम आये हैं,

ऐतरेय ब्राह्मणमें, “ बृहत्, रथन्तरं, वैरूपं, वैराजं,  
शाक्वरं, रैवतं, गायत्रं, श्यैतं, नोधसं, रौरवं, यौधा-  
जयं, अग्निष्टोमीयं, भासं, विकर्णं ” इत्यादि नाम  
दीखते हैं ।

ये नाम उस उस सामगानकी विशिष्टता दिखाते हैं ।  
ऋग्वेद आवि में आये हुए वर्णनोंसे यह निश्चित होता है कि  
सामगानसे देवोंकी प्रार्थना की जाती थी । यज्ञमें सोमरस  
निकालकर, उसमें पानी मिलाकर छानकर व दूधके साथ  
मिलाकर वह पीनेके लायक होने तक सामगान चलता था  
और वह दूरसे सुनाई पड़ता था । गायन निस्सन्देह उत्तम  
होता था । कुछ लोगोंकी धारणा है कि सामगानकी पद्धति  
अर्वाचीन है, पर यह उनकी धारणा गलत है ।

## सामवेदकी स्वरगणना

सामवेदकी स्वरगणना बहुत उत्तमतासे की गई है । उतनी  
सावधानीसे गणना कहीं और नहीं दिखाई देती है । वह  
गणना कैसी है, देखिए—



<sup>३ १ २</sup> रेवतीर्न <sup>३ २ ३</sup> सधमाद <sup>१ २</sup> इन्द्रे सन्तु <sup>३ १ २</sup> तुविवाजाः ।

<sup>३ २ ३</sup> क्षुमन्तो <sup>२ ३ १ २</sup> याभिर्मदेम ॥ १ ॥ १०८४

<sup>२ ३ २ ३</sup> आ घ <sup>१ २ ३ २</sup> त्वावान् <sup>३ १ २</sup> त्मना युक्तः <sup>३ १ २</sup> स्तोतृभ्यो घृष्णवी-

<sup>३ २</sup> यानः । <sup>३ २ ३</sup> ऋणारक्षं <sup>३ १ ३ २</sup> न चक्रयोः ॥ २ ॥ १०८५

<sup>१</sup> आ यद् <sup>२ २</sup> दुवः <sup>३ १</sup> शतक्रतवा <sup>३ २</sup> कामं <sup>३ २</sup> जरि <sup>३ २</sup> तृणाम् ।

<sup>३ २ ३</sup> ऋणारक्षं <sup>३ १</sup> न शर्चाभिः ॥ ३ ॥ १०८६

इन मन्त्रोंमें स्वर चिन्ह रहित अक्षर ये हैं।

१०८४- नः । स । स । न्तु ।

१०८५- धृ । ण । वि । र ।

१०८६- य । दु । श । त । क्र । का । ज । रि । र । श ।

४+४+१=१८ अक्षर चिन्ह रहित हैं। यह "घा १८" इस पदसे दिखाया है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि मन्त्रके अन्तका अक्षर स्वर चिन्हरहित होते हुए भी नहीं गिना जाता। प्रथम मन्त्रके अन्तके "जाः । म" ये दो और तीसरे मन्त्रका अन्तिम अक्षर "भिः" इसप्रकार तीन अक्षर अन्तमें होनेके कारण नहीं गिने गए हैं। तथा "म्" यह व्यंजन होनेके कारण नहीं लिया गया है। तात्पर्य यह कि तीन मन्त्रोंमें १८ अक्षर स्वर चिन्हरहित हैं।

इन तीन मन्त्रोंमें उकार चिन्हके अक्षर दो हैं। द्वितीय और तृतीय मन्त्रमें "णो" यह ही अक्षर दो बार आया है, उसे "उ. २" इस संकेतसे दिखाया है।

रकार चिन्हवाले चार अक्षर इन तीन मन्त्रोंमें हैं। "वः । म । ची । ये तीन तीसरे मन्त्रमें और दूसरे मन्त्रमें "कन्योः" यह एक मिलकर चार अक्षर रकार चिन्ह वाले हैं। यह "स्व-४" के संकेतसे दिखाया है।

इतनी सूक्ष्मदृष्टिसे यह स्वर गणनाकी गई है, अतः साम-गानमें स्वरोंकी गलती नहीं हो सकती।

### सामवेदके गानग्रंथ

ऋषियोंने ऋग्वेदके मन्त्रोंके आधार पर गान बनाये फिर उन गानोंका संग्रह करके अनेक ग्रंथ बनाये। उनमें (१) ग्रामगेय गान अथवा गेयगान अथवा प्रकृतिगान,

(२) आरण्यक गेयगान, (३) ऊहगान, (४) उद्य-गान, अथवा रहस्य गान ये ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

इन गान ग्रंथोंमें कितने मन्त्र और कितने गान हैं, उन्हें दिखाते हैं—

| कौथुमीय शाखामन्त्र | जैमिनीयशाखामन्त्र |
|--------------------|-------------------|
| पूर्वाचिक ५८५      | ५८७               |
| आरण्यक ५९          | ५९                |
| उत्तराचिक १२२५     | १०४१              |
| १८६९               | १६८७              |
| महानाम्नि ६        | ६                 |
| १८७५               | १६९३              |

इससे ज्ञात हो जाएगा कि प्रत्येक शाखाके सामवेदमें मन्त्र-संख्या और मन्त्र-क्रममें भिन्नता व न्यूनाधिकता है। अब इन-मन्त्रों पर जितने गान बने हैं उन्हें दिखाते हैं—

| कौथुमीय गान      | जैमिनीय गान |
|------------------|-------------|
| ग्रामगेयगान ११९७ | १२३२        |
| आरण्यकगेयगान २९४ | २९१         |
| ऊहगान १०२६       | १८०२        |
| उद्यगान २०५      | ३५६         |
| २७२२             | ३६८१        |

कौथुमी शाखाके सामवेदमें मन्त्र १८७५ हैं और गाने उन पर २७२२ बने हैं। जैमिनीय शाखाके सामवेदमें मन्त्र १६९३ मन्त्र हैं, पर उनपर बने हुए गाने ३६८१ हैं। इसप्रकार सामवेदकी प्रत्येक शाखाके मन्त्र व गानोंमें भेद है।

### सामवेदके ब्राह्मण

(१) ताण्ड्य ब्राह्मण, (प्रौढ अथवा पंचविश ब्राह्मण) (२) षड्विंश ब्राह्मण, (३) सामविधान ब्राह्मण, (४) आर्षेय ब्राह्मण, (५) देवताध्याय ब्राह्मण, (६) उपनिषद्ब्राह्मण, (संहितोपनिषद् ब्राह्मण अथवा मन्त्र ब्राह्मण, (७) वंश ब्राह्मण आदि सामवेदके ब्राह्मण हैं।

षड्विंश ब्राह्मण ताण्ड्य ब्राह्मणका २६ वां भाग है। इसलिए पहला भाग "पंचविंश ब्राह्मण" के नामसे प्रसिद्ध है। और उत्तर भाग "षड्विंश ब्राह्मण" के नामसे प्रसिद्ध है। पंचविंश ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण और छान्दोग्य



उपनिषद् मिलकर “ ताण्ड्य महाब्राह्मण ” होता है। षड्विंशब्राह्मणमें अबहुत कथाओंका संग्रह होनेके कारण उसे “ अद्भुतब्राह्मण ” भी कहते हैं। सामवेदके दूसरे ब्राह्मणोंका दूसरा नाम “ अनु ब्राह्मण ” भी है। जमिनीय उपनिषद् ब्राह्मणमें “ केनोपनिषद् ” है। इस जमिनीय शाखाका दूसरा नाम “ तवलकार शाखा ” भी है, इसलिए केनोपनिषद्को तवलकारीय केनोपनिषद् भी कहते हैं।

### सामवेदके सूत्रग्रंथ

( १ ) मशककल्पसूत्र, ( २ ) क्षुद्रसूत्र, ( ३ ) लाट-यायन श्रौतसूत्र, ( ४ ) गोभिलीय गृह्यसूत्र। और राणा-यणीय शाखाके ( १ ) द्राह्यायण श्रौतसूत्र, ( २ ) खादिरगृह्यसूत्र, ( ३ ) पुष्पसूत्र। ये सामवेदके सूत्रग्रंथ “ प्रातिशाख्य ” के नामसे भी प्रसिद्ध हैं।

### वेदमंत्रोंके अर्थ

वेदमंत्रोंके अर्थके सम्बन्धमें बहुत मतभेद हैं। वास्तवमें वेदोंकी एक अपनी भिन्न शैली है। वह शैली या प्रक्रिया समझमें आजाय तो फिर मतभेदका कोई कारण नहीं रहता। सर्व प्रथम वेदमंत्रोंने ही कहा है कि सत्य वस्तु एक है। और कवियोंने उस एक तत्त्वके अनेक गुणोंको देखकर उसके अनेक नाम रख दिए हैं। उदाहरणार्थ—

इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निमाहुः अथो दिव्यः स  
सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति  
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ( ऋ. १।१६।४७ )

( एकं सत् ) एक ही सद्बस्तु है, उस एक ही वस्तुका ( विप्राः बहुधा वदन्ति ) ज्ञानी लोग अनेक नाम देकर वर्णन करते हैं। उसी एक सद्बस्तुको ज्ञानी इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्व आदि नामोंसे वर्णित करते हैं।

इस मंत्रने वेदकी प्रक्रियाका यथार्थ वर्णन किया है। अर्थात् अग्नि, वायु, इन्द्र, यम आदि नाम उस एक परमेश्वरके हैं और इन नामोंसे उनके गुणोंका वर्णन हुआ है।

मंत्र अग्नि देवताका हो, अथवा इन्द्र देवताका हो, उन मंत्रोंका मुख्य भाव परमात्मा परक ही है, यह यहां ध्यान देने योग्य है। अग्निको “ विश्ववेदाः ” कहा है। “ विश्व-वेदाः ” का अर्थ है “ सर्वज्ञ ”। अग्नि सर्वज्ञ न होकर “ परमात्मा सर्वज्ञ है ” यह ऊपरके मंत्रमें कहा है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांश्च सर्वाणि च  
यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत् ते  
पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओम् इत्येतत् ॥

( कठ उ. २।१५ )

“ सब वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, सब प्रकारके तप जिसके लिए किए जाते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन जिसकी प्राप्तिकी इच्छासे किया जाता है, उस पदको मैं संक्षेपसे तेरे लिए कहता हूं कि वह “ ओम् ” है ”। अर्थात् “ ओम् ” शब्दसे जिस तत्त्वका संकेत है उसी परमात्माका वर्णन सब वेद करते हैं। सब तपश्चर्या उसीके लिए की जाती है और ब्रह्मचर्यका पालन भी उसीके लिए किया जाता है। यही आगेके मंत्रमें प्रतिपादित है—

तदेवाग्निः तदादित्यः तद्वायुः तदु चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ॥

( यजु. ३२।१ )

( तत् एव अग्निः ) वह ब्रह्म ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापतिपदोंसे वेदमंत्रोंमें वर्णित है ”। अर्थात् अग्नि, आदित्य, वायु आदि नाम यद्यपि भिन्न भिन्न, हैं तथापि उन विभिन्न नामोंसे उस एक ही ब्रह्मका वर्णन वेदोंमें किया गया है। यही मंत्रायणी उपनिषद्में और स्पष्ट किया है—

एष खलु आत्मा ईशानः शंभुर्भवो रुद्रः ।

प्रजापतिर्विश्वसृष्टिर्हिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो

हंसः शान्तो विष्णुः नारायणोऽर्कः सविता

धाता सम्राट् इन्द्र इन्दुरिति ॥ ( मंत्रायणी ५।८ )

“ यही आत्मा ईश्वर, शंभु, भव, रुद्र, प्रजापति, विश्व-स्रष्टा, हिरण्यगर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शान्त, विष्णु, नारायण, अर्क, सविता, धाता, सम्राट्, इन्द्र, इन्दु आदि नामोंसे वर्णित है। ” इस विवेचनासे स्पष्ट है कि अग्नि, इन्द्र आदि नामोंसे मुख्यतः एक आत्मा अर्थात् परमेश्वरका ही वर्णन किया जाता है। यह ही श्री यास्काचार्य अपने निरुक्तमें कहते हैं।

महाभाग्याद्देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते ।

एकस्य आत्मनः अन्ये देवा प्रत्यंगानि भवन्ति ।

...आत्मा एव एषां रथो भवति, आत्मा अश्वः;

आत्मा आयुधं, आत्मा इषवः, आत्मा सर्व देवस्य

( निरुक्त )

“ देवोंके महान् भाग्यके कारण, महान् सामर्थ्यके कारण एक ही आत्माकी अनेक प्रकारसे स्तुति होती है। एक



आत्माके दूसरे देव अंग होते हैं। आत्मा ही इनका रथ, अश्व, शस्त्र, बाण और सब कुछ आत्मा ही है। ”

इस प्रकार वेदके वर्णनोंका तात्पर्य समझना चाहिए। वेदमंत्रोंमें जो रथ, घोड़े आदियोंका वर्णन है, वे सब आलंकारिक हैं। आत्माकी शक्ति बहुत बड़ी है, और वह उन उन रूपोंमें प्रकट होती है, ऐसा समझना चाहिए।

इन्द्र घोड़ोंके रथसे अमुक यज्ञमें पहुंचा, ऐसा वर्णन यदि कहीं है तो इन्द्र अर्थात् आत्मा ही वहां पहुंचा, यही सत्यार्थ है और उसके रथ, घोड़े, चाबुक, सारथी आदि सब उसकी शक्तिके आलंकारिक वर्णन हैं। उसी प्रकार आत्मा कहीं आता जाता नहीं, वह तो सर्वत्र है, इसलिए उसका आना जाना भी आलंकारिक ही है।

### अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत

अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि देव विश्वमें कार्य करते हैं। उनका वर्णन वेदमंत्रोंमें है। ये देव उस सर्वव्यापक विश्वात्माके विराट् देहमें उसके अवयव बन कर रह रहे हैं। सूर्य उसकी आंख है, वायु उसका प्राण है, पृथ्वी उसका पांव, अन्तरिक्ष पेट और छुलोक उसका मस्तक है। इस प्रकार यह विराट् पुरुष है। और उसके अवयव अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देव हैं। इससे यह समझमें आजाएगा कि वेद मंत्रोंमें अग्नि आदि देवोंका वर्णन न होकर विद्यात्मा विराट् पुरुषके अवयवोंका ही वर्णन है।

किसीकी आंख अथवा कानका वर्णन जिसप्रकार किसी अवयवका न होकर उस पूर्ण पुरुष का ही वर्णन होता है, उसी प्रकार अग्नि, वायु, इन्द्रादि देवोंका वर्णन उसी विश्वात्मा विराट् पुरुषके विराट् शरीरका वर्णन है। यह विराट् पुरुषका वर्णन अधिदैवत वर्णन है। यह विश्व देहका वर्णन है। प्रत्येक देवता इस देहमें कहां रहते हैं, यह समझना चाहिए और उस भागका वह वर्णन है यह जानें।

ये सभी देव मानव शरीरमें अंशरूपसे हैं—

सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥

( अथर्व. ११।८।३२ )

“सब देवता इस मानवी देहमें रहते हैं, जिसप्रकार गायें गौशालामें रहती हैं।” सूर्य आंखमें, वायु नाकमें, विशाखें कानमें, अग्नि मुंहमें, इन्द्र भुजा और छातीमें, चन्द्रमा हृदयमें, अन्तरिक्ष उदरमें, पृथ्वी पैरमें, जल शिश्नमें और मृत्यु नाभिमें इसप्रकार सब देव मानव शरीरमें अंशरूपसे रहते हैं और इस देहमें कार्य करते हैं। जैसे विश्वमें बड़े बड़े

देवताओंका राज्य है, बिल्कुल वैसे ही इस मानव शरीरमें उन देवताओंके अंशरूप देवोंका राज्य है। देव चाहे बड़े हों या अंशरूप उनके देवत्वमें कोई फरक नहीं पड़ता। यह यहां ध्यानमें रखने योग्य है।

दावानल बड़ा होता है और उसकी चिंगारी छोटी होती है। पर दोनोंमें अग्निका अंश समान है। उसीप्रकार अग्नि इन्द्र आदि विशाल देव विश्वमें हैं और उनका अंश शरीरमें है। दोनों स्थानों पर देवत्वका अंश समान है। इस प्रकार अध्यात्म - मानवीय - शरीरमें वे ही देव अंशरूपमें हैं और अधिदैवत - विश्व - में वे ही देव महान् आकारमें हैं।

शरीरमें इन देवोंका ज्ञान गुणोंके कारण होता है और समाज अथवा राष्ट्रमें वे गुणी मनुष्यके रूपमें दीखते हैं, वह समझनेके लिए नीचे तालिका दी है—

| अध्यात्ममें             | अधिभूतमें | अधिदैवतमें    |
|-------------------------|-----------|---------------|
| वाणी                    | वक्ता     | अग्नि         |
| शौर्य                   | शूर       | इन्द्र        |
| युद्धेच्छा              | सैनिक     | मरुत्         |
| प्राण                   | प्राणी    | वायु          |
| कारीगरी                 | कारीगर    | त्वष्टा       |
| ज्ञान                   | ज्ञानी    | ब्रह्मणस्पति  |
| चिकित्सा                | चिकित्सक  | अश्विनी       |
| पांव                    | शूद्र     | पृथ्वी        |
| रक्तवाहिनियां (नाडियां) | नदियां    | आपः, जलप्रवाह |
| भाग्य                   | भाग्यवान् | भग            |

इस प्रकार व्यक्तिमें गुणरूपसे, समाज और राष्ट्रमें गुणी-रूपसे और विश्वमें देवताके रूपसे ये देवता रहते हैं। उनका ज्ञान अत्यावश्यक है।

वेदमंत्रोंमें जो वर्णन हैं वे अधिदैवत वर्णन हैं। ये ही वर्णन अध्यात्म - व्यक्ति - में गुणरूपसे देखने चाहिए और आधि-भौतिकमें अर्थात् समाज और राष्ट्रमें गुणी मनुष्योंके रूपमें देखने चाहिए। इससे वेदमंत्रोंका सत्यार्थ समझमें आ जाएगा। इन तीनों स्थानोंमें अर्थका स्वरूप कैसे देखना चाहिए, उसे विचार करके निश्चित करना चाहिए। मंत्रोंमें पदोंके अर्थ इस दृष्टिसे देखने योग्य हैं। उदाहरणार्थ—

### इन्द्रका अर्थ

अध्यात्ममें “इन्द्र” का अर्थ “जीवात्मा” है। इस आत्माकी शक्ति इन्द्रियें हैं। इन्द्रकी शक्ति दिखानेके लिए यह इन्द्रिय शब्द बना है। “इदं+द्र” इस शरीरमें



आत्माने छिद्र बनाये हैं। “ मैं देखना चाहता हूँ ” आत्माके इस संकल्पके साथ ही नेत्रको जगह बो छेद हो गए। “ मैं श्वासोच्छ्वास करूँगा ” इस संकल्पके कारण नाकके स्थान पर छेद हो गए। इसप्रकार इसने इस शरीरमें अनेक छिद्र बनाये। इसलिए इसका नाम “ इन्द्र+द्र ” हुआ। उसका संक्षेप “ इन्द्र ” है। इस प्रकार यह इन्द्र शरीरमें जीवात्माके रूपमें है।

अधिभूतमें अर्थात् समाज अथवा राष्ट्रमें इन्द्र युद्धके लिए, राष्ट्रकी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेके लिए होनेवाले युद्धोंमें भाग लेनेवाला अतुल पराक्रमी वीर है। यह “ इन्द्र+द्र ” अर्थात् “ शत्रुओंको फाड़नेवाला ” पराक्रमी वीर है। यह सेनाको तैयार रखता है। शत्रुको हलचल पर नजर रखता है और उनका नाश करनेके लिए जो कार्य आवश्यक होते, हैं उन्हें करता है।

आधिदेवतमें इन्द्र मध्यस्थानीय देवता बिजली है। यह मेघोंको फोड़कर पानी बरसाता है। जहां बिजली गिरती है वहां वज्रके गिरनेके समान शब्द होता है।

इसप्रकार वेदमंत्रोंके अर्थ अध्यात्म, अधिभूत और अधि-देवत इन तीन क्षेत्रोंमें होते हैं। अध्यात्मका मतलब मान-वीय शरीरका वर्णन, अधिभूतका अर्थ मानवसमाज अथवा राष्ट्रपरक वर्णन है। यहां “ भूत ” शब्दका अर्थ “ प्राणी ” लेना चाहिए। “ भूत ” का अर्थ “ पंच महाभूत ” नहीं। अधिदेवतका अर्थ है विश्व। वेदोंके मंत्रोंमें आधिदेविक अर्थात् विश्वपरक वर्णन है। इस वर्णनसे ही अन्य दोनों भाव समझने चाहिए—

### सोमदेवता

सोम एक लता है। उसका मंत्र इसप्रकार है।

५२७ सोमः पवते जनिता मतीनां

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।

जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य

जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ (ऋ. १।९६।५)

“ सोम शुद्ध किया जाता है। वह बुद्धियोंको पैदा करने-वाला धुलोकको, पृथिवीको, अग्निको, सूर्यको, इन्द्रको और विष्णुको भी पैदा करनेवाला है ” इस मंत्र पर यास्क अपने निरुक्तमें इसप्रकार कहते हैं—

अथैतं महान्तमात्मानं एतानि सूक्तानि

एता ऋचोऽनु प्रवदन्ति ।

अथाध्यात्मं । सोम आत्मा अपि एतस्मादेव ।

इन्द्रियाणां जनिता इत्यर्थः ॥ ( निरुक्त )

“ इस महान् आत्माका ही वर्णन ये सूक्त करते हैं। अध्यात्म प्रकरणमें “ सोम ” “ आत्मा ” है। वह इन्द्रियोंको पैदा करनेवाला है ” और आगे स्पष्ट करते हैं—

महिषो मृगाणामिति अयमपि महान् भवति  
मृगाणां मार्गणकर्मणामिन्द्रियाणां । इयेनो  
गृधाणामिति इयेन आत्मा भवति इयायते शानि-  
कर्मणः । गृधाणि इन्द्रियाणि गृध्यते शानि-  
कर्मणः ॥ ( निरुक्त )

“ मृगोंमें महिष बड़ा है। मृग अर्थात् खोजनेवाली इन्द्रियें, उन इन्द्रियोंमें यह आत्मा बड़ा है। इयेन गोधोंमें बड़ा है। गृध्रका अर्थ है ज्ञानके साधन, इन्द्रियें, उनमें इयेन आत्मा है क्योंकि वह ज्ञान प्राप्त करता है। ”

इसप्रकार मंत्रोंका अर्थ समझना चाहिए।

### देवताओंका गुणवर्णन

अब सामवेदमें देवताओंका जो गुणवर्णन किया गया है। उसे बिछाते हैं—

### इन्द्रके गुण

१ प्रचेताः [ १४१२ ]— ज्ञानी, विचारशील, विशेष-चिन्तन करनेवाला।

२ शुद्धः [ १४१२ ]— शुद्ध, निर्दोषी।

३ विचर्षणिः [ १४८७ ]— विशेष श्रेष्ठ।

४ अशस्ति-हा [ १६३७ ]— विपत्ति दूर करनेवाला।

५ सुगोपाः [ १७२० ]— उत्तम संरक्षण करनेवाला।

६ नामश्रुतः [ १७९८ ]— नामसे सुप्रसिद्ध।

७ ऋत्विजः [ १७९८ ]— ऋतुके अनुसार उत्पत्ति करनेवाला।

८ लोककृत् [ १८०१ ]— जनताका कल्याण करनेवाला।

९ अशत्रुः [ १८०२ ]— जो स्वयं किसीसे शत्रुता नहीं करता।

१० गिर्वणः [ १४३१ ]— स्तुत्य, प्रशंसनीय।

११ महान् [ १३५५ ]— महान्, बड़ा।

१२ महिष्ठः [ १३६१ ]— महान्।

१३ जनुषा अश्रातृव्यः [ १३८९ ]— जन्मसे ही शत्रुता न करनेवाला।

१४ यशाः [ १४११ ]— यशस्वी, विजयी।

१५ चर्षणिधृतिः [ १४११ ]— मानवजातिका क्षारण-पोषण करनेवाला।

१६ वावृधानः [ १४११ ]— अपनी शक्तिसे बढ़नेवाला।



- १७ वृषभः [ १३६१ ]- बलवान्, बलके समान सशक्त ।  
 १८ वज्रबाहुः [ १४२६ ]- वज्रके समान कठोर भुजाओंवाला ।  
 १९ भूर्योजाः [ १४८४ ]- बहुत सामर्थ्यवान् ।  
 २० वीर्यैः वृद्धः [ १४८७ ]- पराक्रमसे महान् ।  
 २१ धृषत् [ १४४२ ]- शत्रुओंको हरानेवाला ।  
 २२ महिषः तुविशुष्मः [ १४४६ ]- भैंसेके समान पुष्ट और महान् शक्तिमान् ।  
 २३ शचीपतिः [ १५७४ ]- शक्तिमान् ।  
 २४ वृषा [ १३६० ]- बलवान्, भक्तोंकी कामनापूर्ण करनेवाला ।  
 २५ अभयकरः [ १३६१ ]- अभय देनेवाला ।  
 २६ शवसः पतिः [ १४११ ]- सामर्थ्ययुक्त ।  
 २७ अनुत्तः [ १४११ ]- अपराजित ।  
 २८ असु-रः [ १४११ ]- बलवान्, शरीरसे हृष्टपुष्ट ।  
 २९ जनानां राजा [ १३५६ ]- लोगोंका राजा ।  
 ३० संवननः [ १३६१ ]- सेवाके योग्य ।  
 ३१ मघवा [ १४५९ ]- धनवान् ।  
 ३२ अश्ववान्, गोमान्, यवमान् [ १४५२ ]- घोड़े, गाय और जौ पासमें रखनेवाला ।  
 ३३ सत्पतिः गोपतिः [ १४८९ ]- सज्जनोंका पालक, गायोंका पालन करनेवाला ।  
 ३४ हरीणां पतिः [ १५१० ]- घोड़े पालनेवाला ।  
 ३५ अश्वस्य पौरः [ १५८० ]- घोड़ोंका उत्तम पोषण करनेवाला ।  
 ३६ गवां पुरुकृत् [ १५८० ]- गायोंका उत्तम पालन करनेवाला ।  
 ३७ ऋचीषमः [ १६४४ ]- वर्शनीय ।  
 ३८ मघः [ १६५७ ]- प्रसन्नवृत्ति धारण करनेवाला ।  
 ३९ सत्त्वा [ १६६६ ]- बलवान् ।  
 ४० शाकी [ १६६६ ]- सामर्थ्यवान् ।  
 ४१ सदावृधः वीरः [ १६८४ ]- सदा बढनेवाला वीर ।  
 ४२ शिप्री [ १६९६ ]- शिरस्त्राण धारण करनेवाला ।  
 ४३ तुविशुष्मः [ १७७२ ]- महा बलवान् ।  
 ४४ तुविशुः [ १७७२ ]- बड़े बड़े कार्य करनेवाला ।  
 ४५ शचीवः [ १७७२ ]- शक्तिशाली ।  
 ४६ शविष्ठः [ १७७२ ]- शक्तिशाली ।  
 ४७ विद्वेषी [ १३६१ ]- शत्रुओंसे द्वेष करनेवाला ।  
 ४८ अवक्रक्षी [ १३६१ ]- शत्रुओंको दबकर देनेवाला ।

- ४९ शत्रुः [ १३६१ ]- दुष्टोंका शत्रु ।  
 ५० मृघः सासहिः [ १४८७ ]- शत्रुओंको हरानेवाला ।  
 ५१ वीरतरः नहि [ १५११ ]- जिससे बढकर वीर कोई दूसरा नहीं है ।  
 ५२ अद्रिचः [ १३५४ ]- वज्रधारी, शस्त्रास्त्रधारी ।  
 ५३ चर्षणीसहः [ १३६१ ]- शत्रुसेनाको हरानेवाला ।  
 ५४ पृतनापाट [ १४३३ ]- शत्रुसेनाका नाश करनेवाला ।  
 ५५ अभिभूः [ १४३० ]- शत्रुको हरानेवाला ।  
 ५६ शूरः [ १४३४ ]- वीर ।  
 ५७ सहावान् [ १४३४ ]- शत्रुको हरानेका सामर्थ्य अपने पास रखनेवाला ।  
 ५८ अवतं दस्युं ओषः [ १४३४ ]- नियममें न चलने-वाले शत्रुओंको नष्ट करनेवाला ।  
 ५९ विश्वासु पृतनासु हव्यः [ १४९२ ]- सब युद्धोंमें सहायताके लिए बुलाने योग्य ।  
 ६० उग्रः [ १६०५ ]- उग्रवीर ।  
 ६१ सहस्रकृतः [ १६०८ ]- साहसके काम करनेवाला ।  
 ६२ चर्षणि-प्राः [ १७९३ ]- लोगोंका पोषण करनेवाला ।  
 ६३ अदयः वीरः [ १८५५ ]- शत्रुपर दया न करने-वाला वीर ।  
 ६४ शतमन्युः [ १८५५ ]- शत्रुपर सैकड़ों प्रकारसे क्रोध करनेवाला ।  
 ६५ अयुध्यः [ १८५५ ]- जिसके साथ युद्ध करना कठिन है ।  
 ६६ दुश्च्यवनः [ १८५५ ]- अपने स्थान परसे कठिन-तासे हिलनेवाला योद्धा ।  
 ६७ अप्रतिष्कृतः [ १६२२ ]- जिसका प्रतिकार करना अशक्य है ।  
 ६८ प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि [ १६३७ ]- युद्धमें सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाला ।  
 ६९ तरुण्यन् [ १६३७ ]- शत्रुओंको दूर करनेवाला ।  
 ७० अनर्वाणः [ १६४३ ]- युद्ध करनेमें कुशल ।  
 ७१ अनपच्युतः [ १६४३ ]- पराभूत न होनेवाला ।  
 ७२ अवार्यकृतुः नरः [ १६४३ ]- जिसको कोई रोक नहीं सकता ।  
 ७३ दस्यु हा [ १६६८ ]- दुष्टोंका नाश करनेवाला ।  
 ७४ वज्री [ १६९१ ]- वज्रधारी, शस्त्रधारी ।  
 ७५ स्थिरः रणाय संस्कृतः [ १६९८ ]- युद्धमें स्थिर रहनेवाला, युद्ध करनेमें कुशल ।



- ७६ समूहसि [ १३९० ]- संगठन करनेवाला ।  
 ७७ ईशानकृत् [ १४९३ ]- शासक निर्माण करनेवाला ।  
 ७८ तुविद्युम्नः [ १४९३ ]- अत्यन्त तेजस्वी ।  
 ७९ परमज्या [ १४९२ ]- जिसके धनुषकी डोरी उत्तम है ।

८० उभयावी [ १३६१ ]- भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य देनेवाला ।

८१ वृत्रहा अहिं अवधीत् [ १४५१ ]- वृत्रघातक इन्द्रने अहिका वध किया ।

८२ नवनवर्ति पुरः बाह्योजसा विभेद [ १४५१ ]- शत्रुके निन्यानवे नगरोंको इन्द्रने अपने बाहुबलसे तोडा ।

८३ अप्रतीनि पुरुवृत्राणि हंसि [ १४५१ ]- बहुतसे बलिष्ठ शत्रुओंको मारता है ।

८४ चित्राभिः ऊतिभिः अवतात् [ १४५१ ]- अपने विलक्षण रक्षणके साधनोंसे इन्द्र रक्षा करता है ।

८५ सुस्नेषु नः आयामयः [ १४५१ ]- सुख और समृद्धिमें हमें बढा ।

८६ ओजसा कृवि युधा अभ्यवत् [ १४८८ ]- इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंकी युद्धमें जीतता है ।

८७ शतक्रतुः [ १४५९ ]- सैकड़ों महत्वपूर्ण कार्य करनेवाला ।

८८ पुरां दत्ता [ १७१९ ]- शत्रुके नगर तोडनेवाला ।

८९ वृढा चित् आरुजः [ १७१९ ]- सुबुद्ध शत्रुओंको भी उखाड फेंकनेवाला ।

९० ते शुष्मं तुरयन्तं [ १६३८ ]- तेरे बल शत्रुओंका नाश करते हैं ।

९१ गोत्रभित् वज्रबाहुः अजमं जयन् ओजसा प्रभृणन्त [ १८५४ ]- शत्रुओंके किले तोडनेवाला, वज्रके सज्जान कठोर बाहुओंवाला ही युद्धमें विजयी होता है और शत्रुओंको नष्ट करता है ।

९२ सत्रा राजा [ १७९५ ]- सबों पर एक साथ शासन करनेवाला ।

९३ अनुत्तमन्युः [ १७९५ ]- जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं होता ।

९४ राधानां पतिः [ १६०० ]- धनोंका स्वामी ।

९५ वसुविदः [ १५७९ ]- निवासके साधन पास रखनेवाला ।

९६ इन्द्रे विश्वा भूतानि येमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रके आश्रयसे सब प्राणी रहते हैं ।

९७ तुविकूर्मिः [ १७७१ ]- महान् कार्य करनेवाला ।

९८ ऋतीषिहः [ १७७१ ]- शत्रुको दूर करनेवाला, प्रलोभनोंमें न फँसनेवाला ।

९९ त्विषीमान् [ १४८८ ]- तेजस्वी ।

१०० सप्रादावन् [ १६२१ ]- एकदम फल देनेवाला ।

ये इन्द्रके गुण वाचक देखें। इन्हें मनसे धारण करनेपर ही शरीरमें बल बढता है और मनकी शक्ति बढती है ।

### अग्निके गुण

१ अग्निः [ १३४३ ]- अग्नी " अग्निः कस्मात् ? अग्रणीर्भवति " ( निरुक्त )

२ पावकः [ १३४३ ]- पवित्र कररेवाला ।

३ होता [ १३४३ ]- हवन करनेवाला, देवोंको बलानेवाला ।

४ कविः [ १३४६ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी ।

५ मधुजिह्वः [ १३४९ ]- मधुरभाषी ।

६ प्रियः [ १३४९ ]- सबको प्रिय लगनेवाला ।

७ नराशंसः [ १३४९ ]- सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होनेवाला ।

८ मनुर्हितः [ १३५० ]- मनुष्योंका हित करनेवाला ।

९ प्रशस्तः [ १३७४ ]- प्रशंसित ।

१० दूरे दृक् [ १३७४ ]- दूरसे देखनेवाला, दूरदर्शी ।

११ गृहपतिः [ १३७४ ]- गृहस्वामी ।

१२ अथव्युः [ १३७४ ]- प्रगतिशील ।

१३ सु प्रतिचक्ष्यः [ १३७४ ]- अत्यन्त दर्शनीय ।

१४ यविष्ठयः [ १३७५ ]- तरुण ।

१५ दक्षाय्यः [ १३७४ ]- बल बढानेवाला ।

१६ शंतमः [ १३८१ ]- शान्ति सुख देनेवाला ।

१७ अंहसः पातु [ १३८१ ]- पापोंसे रक्षा करनेवाला ।

१८ रणे रणे धनंजयः [ १३८२ ]- प्रत्येक युद्धमें विजयी ।

१९ भारतः [ १३८५ ]- भरण पोषण करनेवाला ।

२० अजरः [ १३८५ ]- कभी बूढ़ न होनेवाला, हमेशा तरुण रहनेवाला ।

२१ दविद्युतत् [ १३८५ ]- तेजस्वी ।

२२ द्युमत् [ १३८५ ]- प्रकाशयुक्त ।



- २३ वृत्राणि जघनत् [१२९६]- शत्रुको मारनेवाला ।  
 २४ सहज्यः [१४१७]- शत्रुको हरानेवाला ।  
 २५ विश्वचर्षणिः [१४१७]- सब जनोका हित करनेवाला ।  
 २६ सुभगः [१४१७]- उत्तम भाग्यवान् ।  
 २७ सुदीदितिः [१४१७]- उत्तम तेजस्वी ।  
 २८ श्रेष्ठशोचीः [१४१७]- विशेष प्रकाशमान् ।  
 २९ प्रजावत् ब्रह्म आभर [१३९८]- पुत्रपौत्रोंसे युक्त अन्न दे ।  
 ३० अपां-न-पात् [१४१४]- जलोंको नीचे गिरने न देनेवाला ।  
 ३१ तनू-न-पात् [१३४६]- शरीरको गिरने न देनेवाला ।  
 ३२ ऊर्जो-न-पात् [१७१२]- बल कम न करनेवाला ।  
 ३३ द्विजन्मा [१७७६]- द्विज, दो अरणियोंमें जन्म लेनेवाला ।  
 ३४ द्रुहन्तर [१८१५]- बुढोंको जानसे मारनेवाला ।  
 ३५ मानुषे जने हितः [१४७४]- मनुष्योंका हित करनेवाला ।  
 ३६ वेधः [१४७६]- विशेष कर्म करनेवाला ।  
 ३७ सुकतुः [१४७६]- उत्तम रीतिसे कर्म करनेवाला ।  
 ३८ चित्रभानुः [१४९८]- उत्तम तेजस्वी ।  
 ३९ सहस्कृतः [१५०३]- बल बढ़ानेवाला ।  
 ४० प्रचेताः [१५१४]- विशेष ज्ञानी ।  
 ४१ गातुवित्तमः [१५१६]- उत्तम रीतिसे मान जाननेवाला ।  
 ४२ आर्यस्य वर्धनः [१५१५]- आर्योंको बढ़ानेवाला ।  
 ४३ पांचजन्यः [१५१९]- पांचों जनोका कल्याण करनेवाला ।  
 ४४ ऋषिः [१५१९]- ज्ञानी, ब्रह्मा ।  
 ४५ पवमानः [१५१९]- शुद्धता करनेवाला ।  
 ४६ पुरोहितः [१५१९]- नेता, आगे रहनेवाला, आगे स्थापित किया हुआ ।  
 ४७ महागयः [१५१९]- महान् घरवाला ।  
 ४८ स्वर्दक् [१५१९]- आत्मबुद्धिवाला आत्मज्ञानी ।  
 ४९ स्वपतिः [१५३३]- स्वयंशासित ।  
 ५० वृषणः [१५४०]- बलवान् ।  
 ५१ जातवेदाः [१५६६]- जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है, उत्पन्न हुआओंको जाननेवाला ।

- ५२ शुचिः [१५६७]- शुद्ध, पवित्र ।  
 ५३ ध्रुवः [१५६७]- स्थिर ।  
 ५४ अमृतः [१५६८]- अमर ।  
 ५५ जागृविः [१५६८]- जागृत रहनेवाला ।  
 ५६ विभुः [१५६८]- व्यापक ।  
 ५७ विश्वपतिः [१५६८]- प्रजाका पालन करनेवाला ।  
 ५८ जनानां जामिः मित्रः प्रियः [१५३६]- लोगोंका प्रिय मित्र ।  
 ५९ दर्शतः [१५३८]- सुन्दर, बर्शनीय ।  
 ६० मन्द्रः [१५४३]- आनन्दित, प्रिय ।  
 ६१ विभावसुः [१५४३]- तेजस्वी ।  
 ६२ रौद्रः [१५४६]- भयंकर ।  
 ६३ भद्रः [१५४६]- कल्याण करनेवाला ।  
 ६४ विश्वा साह्वान् अमृतः [१५५८]- सब शत्रुओंको हरानेवाला, विजयी, न हारनेवाला ।  
 ६५ समत्सु सासहिः [१५६०]- युद्धमें विजयी ।  
 ६६ वरेण्यः [१६१९]- श्रेष्ठ, ज्येष्ठ ।  
 ६७ अमित्रं अर्दय [१६४८]- शत्रुका नाश कर ।  
 ६८ उरुहृत् [१६४९]- बहुत कर्म करनेवाला ।  
 ६९ जरायोध [१६६३]- स्तुतिसे प्रबुद्ध होनेवाला ।  
 ७० दस्स [१६६०]- सुन्दर, बर्शनीय ।  
 ७१ ऋतावा [१७०८]- सत्यनिष्ठ ।  
 ७२ वैश्वानरः [१७०८]- सबका नेतृत्व करनेवाला ।  
 ७३ वशी [१७०९]- सबको अपने अधीन रखनेवाला ।  
 ७४ पावकशोचिः [१७१२]- जिसका प्रकाश पवित्रता करनेवाला है ।  
 ७५ स्निहितिषु कृष्टिषु जग्मनासु दाशुषे गयं अरक्षत् [१३८०]- शत्रुके आक्रमण करने पर दाताके घरकी रक्षा करता है ।

ये अग्निके गुण भी अत्यन्त बोधप्रद हैं। मनुष्यको ये गुण अपने अन्दर बढ़ाने चाहिए ।

### सोमके गुण

- १ जागृविः [१३५७]- जागृत रहनेवाला ।  
 २ सक्षणिः वृत्राणि परि [१३५७]- साहस करनेवाला वीर शत्रुको कुचलता जाता है ।  
 ३ शुक्रः [१३५७]- वीर्य बढ़ानेवाला ।  
 ४ दिव्यः [१३५७]- छलोकमें रहनेवाला, पर्वतपर उगनेवाला ।



- ५ पयूषः [ १३५७ ]- अमृतरूप ।  
 ६ सोमः आवः [ १३५८ ]- सोम रक्षण करता है ।  
 ७ वर्धनः [ १३५९ ]- बल बढ़ानेवाला ।  
 ८ दक्षसाधनः [ १३८८ ]- बल बढ़ानेका साधन ।  
 ९ वीरः [ १३९५ ]- शूरवीर ।  
 १० हरिः [ १३९५ ]- दुःखोंका हरण करनेवाला ।  
 ११ प्रियः [ १३९५ ]- सबोंको प्रिय ।  
 १२ कविः [ १४०० ]- ज्ञानी, दूरदर्शी ।  
 १३ रत्नधा [ १४०८ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला ।  
 १४ शूरग्रामः [ १४०९ ]- शूरोंका समुदाय अपने साथ रखनेवाला ।  
 १५ सर्ववीरः [ १४०९ ]- सब प्रकारसे वीर ।  
 १६ सहावान् [ १४०९ ]- शत्रुको हराने की शक्तिसे युक्त ।  
 १७ जेता [ १४०९ ]- युद्ध जीतनेवाला ।  
 १८ तिग्मायुधः [ १४०९ ]- तीक्ष्ण शस्त्र अपने पास रखनेवाला ।  
 १९ क्षिप्रघन्वा [ १४०९ ]- घनुषको बहुत शीघ्र चलानेवाला ।  
 २० समत्सु अषाळहः [ १४०९ ]- युद्धमें शत्रुओंके लिए असह्य ।  
 २१ पृतनासु शत्रून् साह्वान् [ १४०९ ]- युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला ।  
 २२ वृषा [ १४१९ ]- बलवान् ।  
 २३ सुमेधाः [ १४२० ]- उत्तम बुद्धिमान् ।  
 २४ तेजिष्ठाः [ १४२४ ]- तेजस्वी ।  
 २५ यशसा यशस्तरः [ १४०१ ]- यशसे यशस्वी ।  
 २६ वभ्रुः [ १४४४ ]- भूरे रंगका ।  
 २७ स्वतवाः [ १४४४ ]- अपनी शक्तिसे शक्तिमान् ।  
 २८ अरुणः [ १४४४ ]- चमकनेवाला ।  
 २९ मनसः पतिः [ १४४४ ]- मनका स्वामी ।  
 ३० शुष्मी [ १४४४ ]- बलवान् ।

- ३१ सुमतिः [ १४४४ ]- उत्तम बुद्धिमान् ।  
 ३२ रक्षांसि अपघ्नन् [ १४३९ ]- राक्षसोंको मारनेवाला ।  
 ३३ अमित्रहा [ १४४७ ]- शत्रुओंको मारनेवाला ।  
 ३४ विश्व-चर्षणिः [ १४४७ ]- सब लोगोंका हित करनेवाला ।

ऐसा यह सोम है । सोमके ये गुण सोमरस पीनेवालोंमें वीर्यते हैं । वे गुण सोमके कारण मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, इसलिए वे गुण सोमके ही समझे जाते हैं ।

अन्य देवताओंका वर्णन सामवेदमें थोड़ा थोड़ा है इसलिए उनका विचार करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है ।

### अनुनासिक-सहित मुद्रण

सामवेदका मुद्रण अनुनासिक सहित परम्परासे होता आ रहा है । र, श, ष, स, ह इन अक्षरोंसे पहले यदि अनुस्वार आ जावे तो उससे अनुनासिक हो जाता है । जैसे—

| मंत्रांक अनुनासिकरहित | अनुनासिकसहित   |
|-----------------------|----------------|
| १५ स्तोमं वद्राय      | स्तोमं११वद्राय |
| २७ अपां रेतांसि       | अपां११रेतांसि  |
| २७८ शतं शतं           | शतं११शतं       |
| २ यज्ञानां होता       | यज्ञानां११होता |

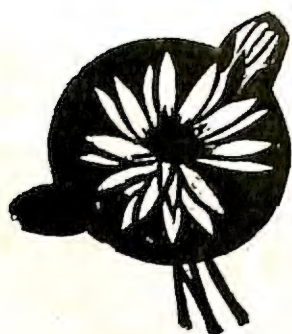
इसप्रकार अनुनासिक - सहित सामवेदका मुद्रण होना चाहिए ।

इसप्रकार सामवेदके विषयमें थोड़ासा परिचय यहां दिया है । उसका विस्तार बहुत बड़ा हो जाएगा । इसलिए इसका विचार करके यहां थोड़ासा ही परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है ।

निवेदक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
 अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल, पारडी









# सामवेदका सुबोध अनुवाद

पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः )

आग्नेयं काण्डम् ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

( १-१० ) १, २, ४, ७, ९ भारद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ मेधातिथिः काण्वः, ५ उशनाः काव्यः, ६ सुदीतिपुरमिढा-  
वाङ्गिरसौ, तयोर्वाऽन्यतरः, ८ वत्सः काण्वः, १० वामदेवः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

- १ अ॒ग्न आ या॒हि वी॒तये गृ॒णानो ह॒व्यदा॒तये । नि होता स॒त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१० )
- २ त्वमग्ने य॒ज्ञानां॑ होता वि॒श्वेषां॑ हि॒तः । दे॒वेभिर्मा॒नुषे जने॑ ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।११ )
- ३ अग्निं दू॒तं वृ॒णीमहे॑ हो॒तारं वि॒श्ववे॒दसम् । अ॒स्य य॒ज्ञस्य सु॒क्रतु॑म् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१२।११ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १ ] हे अग्ने ! ( वीतये आ याहि ) हवि भक्षण करनेके लिए तू आ, देवोंको ( हव्य-दातये गृणानः ) हवि देनेके लिए जिसकी स्तुति की जाती है, ऐसा तू ( होता ) यज्ञमें ऋत्विज् होता हुआ ( बर्हिषि नि सत्सि ) यज्ञमें आसन पर बैठ ॥ १ ॥

( १ ) वीतिः— जाना, गति करना, उत्पन्न करना, उपभोग करना, खाना, साफ करना, बांटना ।

( २ ) हव्यदातिः— देवोंको हवि पहुंचाना, हवि देना । ( ३ ) होता— बुलानेवाला, देवोंको अपने पास लानेवाला, । ( ४ ) बर्हिः— आसन, अन्तरिक्ष, जल, यज्ञ ।

[ १ ] हे अग्ने ! तू ( विश्वेषां यज्ञानां त्वं होता ) सब यज्ञोंमें देवोंको बुलानेवाला है, और ( देवेभिः ) देवोंने ही तुझे ( मानुषे जने हिताः ) मानवी जनोंके बीचमें स्थापित किया है ॥ २ ॥

[ ३ ] हम ( विश्व-वेदसं ) सबको जाननेवाले, ( होतारं ) देवोंको बुलानेवाले ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले इस ( अग्निं ) अग्निको ( दूतं वृणीमहे ) दूत मानकर स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥



- ४ <sup>३ २ ३ १ २</sup> अमिर्वृत्राणि <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> जङ्घनद् <sup>१ २</sup> द्रविणस्युर्विपन्यया । <sup>३ १</sup> समिद्धः <sup>२ २</sup> शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।१६।३४ )
- ५ <sup>३ २</sup> प्रेष्टं वो <sup>३ १ २</sup> अतिथिस्तुषे <sup>३ २</sup> मित्रमिव <sup>२ ३ २ ३ १</sup> प्रियम् । <sup>२ २</sup> अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।८४।१ )
- ६ <sup>१ २</sup> त्वं नो <sup>३ १ २</sup> अग्ने महोभिः <sup>३ १</sup> पाहि <sup>२ २ ३ १ २</sup> विश्वस्या <sup>३ २</sup> अरातेः । <sup>३ २ ३ १</sup> उत द्विपो <sup>२ २</sup> मर्त्यस्य ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।७१।१ )
- ७ <sup>२ ३ १</sup> एह्यु <sup>२ २ ३ १</sup> पु ब्रवाणि <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> तेऽग्न इत्येतरा <sup>३ १ २</sup> गिरः । <sup>३ १ २</sup> एभिर्वर्धास <sup>३ १ २</sup> इन्दुभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ६।१६।१६ )
- ८ <sup>१ २ ३ १</sup> आ ते <sup>२ २</sup> वत्सो मनो <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । <sup>२ ३ १ २</sup> अग्ने त्वां <sup>३ २</sup> कामये <sup>३ २</sup> गिरा ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।११।७ )
- ९ <sup>१ २ ३ १</sup> त्वामग्ने <sup>२ २ ३ १</sup> पुष्करादध्यथवा <sup>२ २ ३ १ २</sup> निरमन्थत । <sup>३ १</sup> मूर्ध्ना <sup>२ २</sup> विश्वस्य <sup>३ १ २</sup> वाघतः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।१६।१३ )
- १० <sup>२ ३ १ २ ३ १</sup> अग्ने विवस्वदा <sup>२ ३ १ २ ३ १ २</sup> भरास्मभ्यमृतये <sup>३ १</sup> मह । <sup>२ २</sup> देवो <sup>३ २</sup> ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥ ( ऋग्वेदे नास्ति )

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्वरिताः ९ । उ० ना० । घा० ३७ । (वे) ॥ ]

[ २ ]

( १-१० ) १ आयुङ्क्वाहिः ( ऋ. विरूप आंगिरसः ) २ वामदेवो गीतमः; ३, ८-९ प्रयोगो भार्गवः; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ५, ७ शुनःशेष आजोगतिः; ६ मेधातिथिः काण्वः; १० वत्सः काण्वः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

११ <sup>१ २</sup> नमस्ते <sup>३ १ २</sup> अग्न ओजसे <sup>३ १ २</sup> गृणन्ति <sup>१ २ ३ १ २</sup> देव कृष्टयः । <sup>१ २ ३ १ २</sup> अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७५।१० )

[ ४ ] (विपन्यया) विशेष प्रकारकी स्तुतिसे प्रसन्न हुआ हुआ, (द्रविण-स्युः) उपासकोंको धन देनेकी इच्छा वाला (समिद्धः) अच्छी तरहसे प्रकाशित (शुक्रः) शुद्ध और (आहुतः) सहायार्थ बुलाया गया यह अग्नि (वृत्राणि जङ्घनत्) घेरनेवाले शत्रुओंका नाश करता है ॥ ४ ॥

[ ५ ] (वः प्रेष्टं) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय (प्रियं मित्रं इव) प्रिय मित्रके समान प्रेम करनेवाले, (अतिथिः) अतिथिके समान पूज्य अग्निकी (वेद्यं रथं न) धन देने वाले रथकी जैसे स्तुति की जाती है, उसी प्रकार (स्तुषे) में स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[ ६ ] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं) तू (विश्वस्याः अरातेः) सभी शत्रुओंसे (उत) और (द्विपः मर्त्यस्य) द्वेष करनेवाले मनुष्यसे (महोभिः) बड़े बड़े साधनोंसे (नः पाहि) हमारा संरक्षण कर ॥ ६ ॥

[ ७ ] हे अग्ने ! तू (एहि उ) आ, (ते) तेरे लिये ही (इत्या) इस प्रकारकी (इतरा गिरः) दूसरी स्तुतियां में (सु ब्रवाणि) अच्छी तरहसे कर रहा हूँ, (एभिः इन्दुभिः वर्धासः) इन सोमरसोंसे तू बढ, महान् हो ॥ ७ ॥

[ ८ ] हे अग्ने ! (वत्सः) यह तेरा पुत्र (ते मनः) तेरे मनको (परमात् सधस्थात्) बहुत श्रेष्ठ स्थानसे भी (आ यमत्) अपने वशमें करता है। हे अग्ने ! (गिरा त्वां कामये) अपनी स्तुतिसे तेरी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ ॥ ८ ॥

[ ९ ] हे अग्ने ! (अथर्वा) अथर्वाने (त्वां) तुझे (विश्वस्य वाघतः मूर्ध्ना) सब विश्वके आधार, भूत परम श्रेष्ठ (पुष्करात्) पुष्करसे (निरमन्थत) मथ करके प्रकाशित किया ॥ ९ ॥

[ १० ] हे अग्ने (अस्मभ्यं महे ऊतये) हमारी उत्तम रक्षाके लिये (विवस्वत्) निवास करनेके योग्य घर (आ भर) हमें दे, (नः दृशे) हमें मार्गको दिखानेवाला तू ही (देवः ह्यसि) देव है ॥ १० ॥

॥ यहाँ पहिला खंड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११ ] हे अग्ने ! हे देव ! (कृष्टयः) मनुष्य (ते ओजसे) तुझे बलके लिये (नमः गृणन्ति) नमस्कार करते हैं। तू (अमैः) अपनी शक्तिसे (अमित्रं अर्दय) शत्रुका नाश करता है ॥ १ ॥

(१) कृष्टिः— मनुष्य, किसान । (२) अम— बल, शक्ति ।



- १२ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ २</sup> दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृजसे गिरा ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।८।१ )
- १३ <sup>१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१०२।१३ )
- १४ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।७ )
- १५ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२७।१० )
- १६ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्रति त्वं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्र आ गहि ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।१९।१ )
- १७ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।२७।१ )
- १८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> और्वभृगुवच्छुचिमप्रवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१०२।४ )
- १९ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अग्निमिन्धानो मनसा धियंसचेत मर्त्यः । अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१०२।२२ )
- २० <sup>२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।६।३० )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ६ । उ० २ । धा० ५२ । (खा) ॥ ]

[ १२ ] हे अग्ने ! ( विश्व-वेदसं ) सब धनोंके स्वामी ( हव्य-वाहं ) हविको ले जानेवाले, ( अमर्त्यं ) अमर ( दूतं ) दूत तथा ( यजिष्ठं ) अत्यधिक यज्ञ करनेवाले अग्निको ( वः ) तुम्हारे लिए मैं ( गिरा ऋजसे ) अपनी प्रार्थनासे अनुकूल बनाता हूँ ॥ २ ॥

[ १३ ] हे अग्ने ! ( हविष्कृतः ) हवन करनेवालेकी ( जामयः गिरः ) बहिनके समान प्रिय स्तुति ( देदिशतीः ) तेरे गुणोंको प्रकट करती हुई ( वायोः अनीके ) वायुके पास ले जाकर ( उप अस्थिरन् ) स्थापित करती है ॥ ३ ॥

[ १४ ] हे अग्ने ! ( दिवे दिवे ) प्रति दिन ( दोषावस्तः ) रातदिन ( वयं ) हम ( धिया नमो भरन्तः ) बुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हुए ( त्वा उप एमसि ) तेरे पास आते हैं ॥ ४ ॥

[ १५ ] हे ( जरा-बोध ) स्तुतिसे ज्ञात होनेवाले अग्ने ! ( विशे विशे ) प्रत्येक मनुष्यके हितके लिये ( यज्ञियाय ) पूज्य ( रुद्राय ) दुष्टोंको हलानेवाले तेरे लिए ( दृशीकं स्तोमं ) सुन्दर स्तोत्र गाये जाते हैं, ( तत् विविड्ढि ) उन्हें तू जान ॥ ५ ॥

( १ ) जरा- स्तुति, ( २ ) जरा-बोध- स्तुतिसे जिसके गुणोंका ज्ञान होता है, ( ३ ) यज्ञिय- पूज्य,

( ४ ) रुद्र- शत्रुको हलानेवाला, ( ५ ) दृशीक- दर्शनीय, सुन्दर ।

[ १६ ] हे अग्ने ! ( त्वं चारुं अध्वरं प्रति ) उस उत्तम-हिंसारहित यज्ञमें ( गोपीथाय प्रहूयसे ) संरक्षणके लिए तुझे बुलाया जाता है, हे अग्ने ! तू ( मरुद्भिः आ गहि ) मरुतोंके साथ आ ॥ ६ ॥

[ १७ ] ( वारवन्तं अश्वं न ) अयालवाले घोड़ेके समान जो ( अध्वराणां सम्राजन्तं ) हिंसारहित यज्ञोंमें उत्तम प्रकार प्रकाशित होनेवाले ( त्वा अग्निं ) तुझ अग्निको ( नमोभिः वन्दध्वै ) नमस्कारोंसे हम वन्दना करते हैं ॥ ७ ॥

[ १८ ] ( समुद्रवाससं ) समुद्रमें रहनेवाले ( शुचिं अग्निं ) शुद्ध अग्निकी ( और्व भृगुवत् ) और्वभृगुके समान तथा ( अप्रवानवत् ) अप्रवानके समान ( आ हुवे ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥

[ १९ ] ( मनसा अग्निं इन्धानः ) मन लगाकर अग्निको जलानेवाला ( मर्त्यः ) मनुष्य ( धियं सचेत ) अपनी श्रद्धाको प्रदीप्त करता है और ( विवस्वभिः अग्निं इन्धे ) सूर्य किरणोंके साथ अग्निको भी प्रज्वलित करता है ॥ ९ ॥

[ २० ] ( परो दिवि ) ध्रुलोकमें ( यत् इध्यते ) जो प्रकाशित होता है, ( आत् इत् ) उसी ( प्रत्नस्य रेतसः ) प्राचीन बलसे युक्त ( वासरं ज्योतिः ) दिनके प्रकाशको ( पश्यन्ति ) लोग देखते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ दूसरा खंड समाप्त हुआ ॥



[ ३ ]

( १-१४ ) १ प्रयोगो भार्गवः; २, ५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३, १० वामदेवो गौतमः; ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः;  
७ विरूप आङ्गिरसः; ८ शुनःशेष आजीर्गतिः; ९ गोपवन आत्रेयः; ११ प्रस्कण्वः काण्वः; १२ मेधातिथिः  
काण्वः; १३ सिन्धुद्वीप आम्बरीषः, त्रित आत्यो वा; १४ उशना काव्यः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

- २१ अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरुतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०२।७ )  
२२ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।२८ )  
२३ अग्ने मृड महान् अस्यय आ देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिःसदम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ४।९।१ )  
२४ अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरौ दह ॥ ४ ॥ ( ऋ. ७।१५।१३ )  
२५ अग्ने युङ्क्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ६।१६।४३ )  
२६ नि त्वा नक्ष्य विश्वते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।१५।७ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ २१ ] ( वः ) तुम्हारे ( अध्वराणां ) अहिंसा पूर्ण यज्ञोंका ( नप्त्रे ) नाश न करनेवाले ( पुरुतमं ) अतिश्रेष्ठ ( सहस्वते ) बलवान् ( वृधन्तं ) सबको बढ़ानेवाले ( अग्निं अच्छा ) अग्निके पास [ सेवा करनेके लिये ] जा ॥ १ ॥  
( १ ) अध्वरः— हिंसा रहित यज्ञ, ( २ ) अध्वरः— मार्ग दिखानेवाला, ( ३ ) नप्ता ( न-प्ता )— न गिराने-वाला, संरक्षक, ( ४ ) सहस्वान्— शत्रुको हरानेवाला ।

[ २२ ] ( अग्निः ) अग्नि ( तिग्मेन शोचिषा ) अपने तीक्ष्ण तेजसे ( विश्वं अत्रिणं ) सब [ स्वयं ] खानेवाले शत्रुको ( नि यंसत् ) नष्ट करता हूँ, वह अग्नि ( नः रयिं वंसते ) हमें धन देता हूँ ॥ २ ॥  
( १ ) अत्रिः ( अद् )— स्वयं खानेवाला, अत्यधिक खानेवाला शत्रु ।

[ २३ ] हे अग्ने ! तू ( मृड ) हमें सुखी कर ( महान् असि ) तू महान् हूँ, ( देव-युं जनं आ अयः ) ईश्वरकी उपासना करनेवाले मनुष्यके पास जा, और ( बर्हिः आसदं ) आसन पर बैठनेके लिए तू ( इयेथ ) आ ॥ ३ ॥  
( १ ) देवयुः ( देव-युः )— ईश्वरकी उपासना करनेवाला, ईश्वरसे अपना सम्बन्ध जोड़नेवाला ।

[ २४ ] हे अग्ने ! ( अंहसः ) पापी और ( रीषतः ) हिंसक शत्रुसे ( नः ) हमारा ( रक्ष ) संरक्षण कर, और ( अ-जरः ) बुढ़ापासे रहित तू ( तपिष्ठैः प्रति दह स्म ) अपने तेजोंसे [ शत्रुको ] जला दे ॥ ४ ॥  
( १ ) अंहः— पाप, पापी, दुष्ट । ( २ ) रीषत्— हिंसक शत्रु, तोड़फोड़ करनेवाला शत्रु ।  
( ३ ) अजरः— जरारहित, तरुण ।

[ २५ ] हे अग्नि देव ! ( ये ) जो ( तव साधवः अश्वासः ) तेरे उत्तम घोड़े हैं, जो ( आशवः अरं वहन्ति ) वेगसे पूर्ण होकर तुझे ले जाते हैं, उनको [ अपने रथमें ] ( युङ्क्वा हि ) जोड़ ॥ ५ ॥  
( १ ) आशुः— वेगसे जानेवाले घोड़े ।

[ २६ ] हे ( नक्ष्य ) शरणमें जाने योग्य, ( विश्व-पते ) प्रजाओंके पालक, ( आहुत ) सबके सहायके लिए बुलाये गये हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( वयं ) हम ( द्युमन्तं सुवीरं ) तेजस्वी, उत्तमवीर तेरा ही ( धीमहि ) ध्यान करते हैं ॥ ६ ॥  
( १ ) नक्ष्य— ( नक्ष् )— पास जाना, पास जाने योग्य, ( २ ) द्युमान्— प्रकाशमान, तेजस्वी ।  
( ३ ) सुवीरः— उत्तम वीर, योद्धा ।



- २७ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।४४।१६)
- २८ इमम् षु त्वमस्माकं सनि गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥ (ऋ. १।२७।४)
- २९ तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।७४।११)
- ३० परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥ (ऋ. ४।१५।३)
- ३१ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ११ ॥ (ऋ. १।२०।१; यजु. ७।४१)
- ३२ कविमग्निष्ठप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥ (ऋ. १।२२।७)
- ३३ शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ १३ ॥ (ऋ. १०।९।४; यजु. ३६।१२)

[ २७ ] (अयं अग्निः) यह अग्नि (मूर्धा) सबसे मुख्य स्थानपर रहनेवाला है, वह (दिवः ककुत्) धुलोकका उच्च भाग है, और (पृथिव्याः पतिः) पृथ्वीका पालन करनेवाला है, वही (अपां रेतांसि जिन्वति) कर्मोंका फल देकर सबको प्रसन्न करता है ॥ ७ ॥

(१) आप्— जल, कर्म, जीवन । (२) जिन्व्— सन्तुष्ट करना ।

[ २८ ] हे अग्ने ! (त्वं) तू (अस्माकं इमं नव्यांसं) हमारे इस नवीन (सनि) अन्नको और (गायत्रं) गायत्री छन्दमें किए गए स्तोत्रको (देवेषु सु प्रवोचः) देवोंमें पहुंचा ॥ ८ ॥

(१) सनिः— अन्न 'सणु-दाने', (२) गायत्रं— गायत्री छन्दमें गाया गया साम-गान ।

[ २९ ] (तं त्वा) उस तुझे (गोपवनः) गोपवन ऋषिने (गिरा जनिष्ठत्) अपनी स्तुतिसे उत्पन्न किया, हे (अङ्गिरः) शरीरके अंगोंमें रस रूपमें रहनेवाले (पावक) पवित्र करनेवाले अग्ने ! (सः) वह तू (हवम् श्रुधि) हमारी प्रार्थना सुन ॥ ९ ॥

(१) अङ्गिराः— एक ऋषि, अंगोंमें रसरूपमें रहनेवाली शक्ति (अङ्गि-रस्),

(२) पावक— पवित्र करनेवाला ।

[ ३० ] (वाजपतिः कविः) अन्नोंका स्वामी, ज्ञानी, अग्नि (हव्यानि परि अक्रमीत्) हवनीय पदार्थोंको स्वीकार करता है, और (दाशुषे रत्नानि दधत्) दानशील मनुष्यको रत्न देता है ॥ १० ॥

[ ३१ ] (विश्वाय सूर्यं दृशे) विश्वको सूर्य दिखानेके लिए उसकी (केतवः) किरणें (जातवेदसं देवं) जिससे वेद उत्पन्न हुए हैं, उस देवको (उत् उ वहन्ति) अच्छी तरह धारण करती हैं ॥ ११ ॥

(१) जात-वेदाः— जिससे ज्ञान प्रकट होता है, जिससे वेद प्रकट होते हैं, किरणें सूर्यको आकाशमें इसी लिए धारण करती हैं, कि जिससे वह सबको दिखाये ।

[ ३२ ] (अध्वरे) हिसारहित यज्ञमें (सत्यधर्माणं) सत्य धर्मसे युक्त (कविं अग्निं) ज्ञानी अग्निकी (उप स्तुहि) स्तुति कर, वह (देवं) देव (अमीव-चातनं) रोग नष्ट करनेवाला है ॥ १२ ॥

(१) अमीव-चातनः— कब्जसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको दूर करनेवाला ।

[ ३३ ] (नः) हमें (अभिष्टये) इच्छित सुख देनेके लिए (देवीः शं) दिव्य जल कल्याणकारी हों । (नः पीतये शं) हमारे पीनेके लिए सुखदायी हों । (नः) हमें (शं योः अभिस्रवन्तु) सुख और शान्ति देते हुए जल प्रवाह बहें ॥ १३ ॥

(१) अभिष्टि- इच्छित सुख, (२) पीति- पानी पीना ।



३४ कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते । गोपाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥ (ऋ. ८।८४।७)

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्त्र० ९ । उ० २ । घा० ५७ (ये) ॥ ]

[ ४ ]

(१-१०) १,३,७ शंयुर्बाह्विस्पत्यः (७ तृणपाणिः) ; २,५,८-९ भर्गः प्रागाथः ; ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ; ६ प्रस्कण्वः काण्वः ; १० सोमरिः काण्वः ॥ अग्निः ॥ बृहती ॥

- ३५ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे । १  
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥ (ऋ. ६।४८।१)
- ३६ पाहि नो अग्न एकया पाह्यूरत द्वितीयया ।  
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते प्राहि चतसृभिर्वसो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६०।९)
- ३७ बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।  
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत्पावक दीदिहि ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।४८।७)
- ३८ त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।  
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।१६।७)

[ ३४ ] हे ( सत्पते ) सत्यके पालन करनेवाले ! ( नूनं कस्य धियः ) निश्चयसे किसकी बुद्धिसे ( परीणसि जिन्वसि ) संमिलित होकर तू आनन्दित होता है ? ( यस्य ते गिरः ) जिसके कारण तेरी स्तुति ( गो-पाता ) ज्ञानका दर्शन करनेवाली होती है ॥ १४ ॥

(१) गो-पाता- गायका पालन करना, इन्द्रियोंका पालन करना, ज्ञानका दर्शन करना ।

॥ यहां तृतीय खंड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ३५ ] ( वः ) तुम ( यज्ञा यज्ञा ) प्रत्येक यज्ञमें और ( गिरा गिरा ) प्रत्येक स्तोत्रमें ( दक्षसे अग्नये ) बलवान् अग्निकी प्रशंसा करो, ( वयं ) हम ( जातवेदसं अमृतं ) सबको जाननेवाले अमर अग्निकी ( प्रियं मित्रं न ) प्रिय मित्रके समान ( शंसिषम् ) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ३६ ] हे अग्ने ! ( एकया नः पाहि ) एक प्रार्थनासे हमारा संरक्षण कर, ( उत द्वितीयया पाहि ) और दूसरी प्रार्थनासे भी हमारी रक्षा कर, हे ( ऊर्जां पते ) अन्नके स्वामी ! ( तिसृभिः गीर्भिः पाहि ) तीसरी प्रार्थनासे हमारा रक्षण कर, हे ( वसो ) सबको बसानेवाले अग्ने ! ( चतसृभिः पाहि ) चौथी प्रार्थनासे भी हमारा पालन कर ॥ २ ॥

[ ३७ ] हे अग्नि देव ! ( बृहद्भिः अर्चिभिः ) बड़ी बड़ी ज्वालाओंसे तू प्रकाशित है, ( शुक्रेण शोचिषा ) शुद्ध तेजसे तू प्रकाशित हो, हे ( यविष्ठ्य रेवत् पावक ) तरुण, धनवान् और पवित्र करनेवाले देव ! ( भरद्वाजे समिधानः ) भरद्वाजके लिए अच्छी तरह प्रदीप्त होकर तू ( दीदिहि ) प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

[ ३८ ] हे अग्ने ! ( त्वे ) तुझमें ( स्वाहुतः ) उत्तम रीतिसे हवन करनेवाले ( सूरयः ) विद्वान् ( प्रियासः सन्तु ) तुझे प्रिय हों, ( ये मघवानः ) जो धनवान् ( जनानां यन्तारः ) प्रजाजनोंपर शासन करते हैं, वे ( गोनां ऊर्वं दयन्तः ) गायोंके समूहका पालन करते हैं ॥ ४ ॥



- ३९ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अग्ने जरितर्विश्वपतिस्तपानो देव रक्षसः ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६०।१६)
- ४० <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अग्ने विवस्वद्दुषसश्चित्रँ राधो अमर्त्य ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आ दाशुषे जातवेदो वह्ना त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४४।१)
- ४१ <sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाँसि चोदय ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ७ ॥ (ऋ. ६।४८।९)
- ४२ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने प्रातःकृतः कविः ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वैधसः ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६०।९)
- ४३ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आ नो अग्ने वयोवृधँ रयिँ पावक शँस्यम् ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहँ सुनीती सुयशस्तरम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।६०।११)

[ ३९ ] हे (जरितः अग्ने देव) ज्ञानी अग्नि देव ! तू (विश्वपतिः) प्रजाका पालक है, (रक्षसः तपानः) राक्षसोंको संताप देनेवाला है। हे (गृहपते) घरके स्वामी ! तू (अ-प्रोषिवान्) बाहर कहीं न जानेवाला (दुरोणयुः) धर्म ही रहनेवाला (महान् असि) महान् है, और (दिवस्पायुः) द्युलोकका रक्षण करनेवाला है ॥ ५ ॥

[ ४० ] हे (अमर्त्य अग्ने) अमर अग्नि देव ! (उषसः विवस्वत्) उषासे प्राप्त होनेवाले (चित्रं राधः) विलक्षण धनको (दाशुषे आ वह्ना) दानशील आदमीको दे, हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्ने ! (त्वं अद्य) तू आज (उषर्बुधः देवान्) प्रातःकाल उठनेवाले देवोंको (आ वह्ना) ले आ ॥ ६ ॥

[ ४१ ] हे (वसो अग्ने) सबको बसानेवाले अग्नि देव ! (त्वं चित्रः) तू अद्भुत शक्तिवाला है, (उ त्या राधाँसि) तू अपने संरक्षाके सामर्थ्यसे धनोंको (नः चोदय) हमारे पास पहुंचा, (त्वं) तू (अस्य रायः) इस धनको (रथीः असि) रथके द्वारा लानेवाला है, तू (नः तुचे) हमारे पुत्र आदियोंके लिए (गाधं तु विदाः) प्रतिष्ठा दे ॥ ७ ॥

[ ४२ ] हे अग्ने ! हे (प्रातः) रक्षण करनेवाले ! (त्वं इत्) तू निश्चयसे (स-प्रथाः) बहुत प्रसिद्ध है, इसी लिए तू (ऋतः कविः) सत्य और ज्ञानी है; हे (दीदिवः) तेजस्वी अग्ने ! (त्वां समिधानं) तेरे प्रज्वलित हो जानेके बाद (वैधसः विप्रासः) ज्ञानी विप्र तेरी (आ विवासन्ति) सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

[ ४३ ] हे (पावक अग्ने) पवित्र करनेवाले अग्ने ! तू (नः) हमें (शंस्यं वयोवृधं रयिँ रास्व) प्रशंसनीय बढानेवाले धनको दे। हे (उपमाते) ज्ञान सम्पन्न ! (सुनीती) उत्तम नीतिके मार्गसे (पुरु-स्पृहं) जिसकी बहुतसे लोग प्रशंसा करते हैं, ऐसे (सुयशस्तरं) उत्तम यश देनेवाले धनको (नः) हमें दे ॥ ९ ॥



४४ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।

मधो न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१०३।६ )

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० ९। उ० ३। धा० ८३। (दी) ॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २ भर्गः प्रागाथः; ३, ७ सौभरिः काण्वः; ४ मनुर्वेवस्वतः; ५ सुवीतिपुरुमी-  
ळावांगिरसौ; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; ८ मेधातिमेध्यातिथो काण्वो; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० कण्वो धौरः

॥ अग्निः, ८ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

४५ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।

प्रियं चेतिष्ठमरतिः स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।१ )

४६ शेष वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।

अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिदेवेषु राजसि

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६०।१५ )

४७ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्त्रतान्यादधुः ।

उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१०३।१ )

[ ४४ ] ( यः ) जो ( विश्वा वसु दयते ) सब धन देता है, जो ( जनानां ) मनुष्योंमें ( होता मन्द्रः ) देवोंको बुलाकर उन्हें आनन्द देनेवाला है, ( अस्मै अग्नये ) इस अग्निके लिए ( मधोः प्रथमानि पात्रा न ) सोमके पात्र जैसे प्रथम दिये जाते हैं, उसी प्रकार ( स्तोमाः यन्तु ) स्तोत्र किए जाते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौथा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ४५ ] ( एना नमसा ) इस अग्नसे ( ऊर्जो-न-पातं ) बलको क्षीण न होने देनेवाले, ( प्रियं चेतिष्ठ ) प्रिय और चेतनाको देनेवाले ( अरतिं, स्वध्वरं ) मुख्य, उत्तम और हिसारहित यज्ञ करनेवाले, ( विश्वस्य दूतं ) सबको ज्ञान देनेवाले, ( अमृतं अग्निं ) अमर अग्निको ( आहुवे ) मैं बुलाता हूँ, उसकी मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥

[ ४६ ] हे अग्ने ! तू ( वनेषु ) जंगलोंमें ( मातृषु ) भूमिमें अथवा माताके गर्भमें ( शेषे ) गुप्त रूपसे रहता है ( मर्तासः त्वा सं इन्धते ) मनुष्य तुझे उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करते हैं, ( अ-तन्द्रः ) आलस्यको छोड़कर ( हविष्कृतः हव्यं वहसि ) हवन करनेवालेको हवियोंको तू देवोंतक पहुंचाता है, ( आत् इत् ) और ( देवेषु राजसि ) देवोंमें तू प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ ४७ ] ( गातु-वित्तमः ) धर्मके मार्गोंको उत्तम प्रकारसे जाननेवाला, अग्नि ( अदर्शि ) दीखने लगा है, ( यस्मिन्त्रतानि आदधुः ) जिसमें सब निःश्रम किये जाते हैं, ( सुजातं ) उत्तम प्रकारसे प्रकट हुए ( आर्यस्य वर्धनं ) आर्योंको बढ़ानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( नः गिरः नक्षन्तु ) हमारी स्तुतियें प्राप्त हों ॥ ३ ॥



- ४८ अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।  
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।२७।१)
- ४९ अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।  
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये हृदिः ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।७।१।१४)
- ५० श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।  
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अयमा प्रातर्याविभिरध्वरे ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४४।१३)
- ५१ अ देवादासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।  
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्यौ नाकस्य शर्मणि ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१०३।२)
- ५२ अध ज्मो अध धा दिवो बृहतो रोचनादधि ।  
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अया वर्धस्व तन्वा गिरा समा जाता सुक्रतो पून ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।१।१८)
- ५३ कायमानो वना त्वं यन्मातरजगन्नपः ।  
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निर्वर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः ॥ ९ ॥ (ऋ. ३।९।२)

[४८] (उक्थे अग्निः पुरोहितः) उक्थ यज्ञमें अग्निको सबसे पहले स्थापित किया जाता है। (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञमें (ग्रावाणः) सोम कूटनेके पत्थर रहते हैं, तथा (वर्हिः) आसन भी फैलाये जाते हैं। (मरुतः) हे मरुतो (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (देवाः) हे देवो ! (ऋचा) वेदमंत्रोंके द्वारा मैं तुमसे (वरेण्यं अवः यामि) श्रेष्ठ संरक्षण मांगता हूँ ॥ ४ ॥

[ ४९ ] (शीर-शोचिषं) जिसकी ज्वालायें प्रज्वलित हो चुकी हैं, ऐसे (अग्नि) अग्निकी (अवसे) अपने रक्षणके लिए (गाथाभिः ईडिष्व) स्तोत्रोंसे स्तुति कर, (पुरु-मीढः) स्तोता (अग्नि) अग्निकी (राये) धनकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करता है, (श्रुतं अग्नि) इस प्रसिद्ध अग्निकी (नरः) मनुष्य (सुदीतये छर्दिः) उत्तम प्रकाशयुक्त घरकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

[ ५० ] हे (श्रुत्कर्ण) प्रार्थना सुननेवाले अने ! (श्रुधि) हमारी प्रार्थना सुन (सयावभिः) समान गतिसे युक्त (देवैः वह्निभिः) दिव्य अग्निके साथ ( मित्रः अर्यमा ) मित्र और अर्यमा (प्रातर्यावभिः) सबरे जानेवाले देवोंके साथ (अध्वरे बर्हिषि आसीदतु) यज्ञमें आसनपर आकर बैठें ॥ ६ ॥

[५१] (मज्जना इन्द्रः न) शक्तिमें इन्द्रके समान, (दैवोदासः अग्निः देवः) दिवोदासका अग्निदेव (मातरं पृथिवीं) पृथ्वी मातापर (अनु प्र वावृते) अनुकूलतासे प्रकाशित हुआ, उसके बाद वह अपनी श्रेष्ठताके कारण (नाकस्य शर्मणि तस्थौ) स्वर्गके आश्रयसे रहने लगा ॥ ७ ॥

। ५२ । हे अग्ने ! ( अधज्मः ) पृथ्वीपर ( अधवा ) अथवा ( बृहतः रोचनात् दिवः अधि ) अत्यन्त तेजस्वी  
 ब्रुलोकेपर ( अया तन्वा वर्धस्व ) अपने तेजसे बढ । हे ( सु-क्रतो ) उत्तम यज्ञ करनेवाले अग्ने ! ( गिरा ) अपनी  
 वाणीसे ( ममा जाता पृण ) मेरे सम्बन्धी जनोंका पोषण कर ॥ ८ ॥

[ ५३ ] हे अग्ने ! ( त्वं ) तू ( वना कायमानः ) वनकी इच्छा करनेवाला है, तू ( यत् मातृः अपः ) जो माताके समान जलके पास गया, ( तत् ते निवर्तनं ) वह तेरा जाना हमसे ( न प्रमृषे ) नहीं सहा गया ( यत् ) क्योंकि ( दूरे स्तन् ) तू दूर होता हुआ भी ( इह आमुवः ) यहीं रहता है ॥ ९ ॥



५४ नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।  
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।३६।१९ )

इति पञ्चमो दशतिः ॥ ५ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ | स्व० उ० ६ । धा० ७१ । ( षा ) ॥ ।

इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-८ ) १, ७ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः; २, ३, ५ कण्वो घौरः; ४ सौभरिः काण्वः; ६ उत्कोलः कात्यः; ८ विश्वामित्रो  
गाथिनः ॥ अग्निः; २ ब्रह्मणस्पतिः; ३ यूपः ॥ बृहती ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ १ ॥

५५ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णा विवश्वासिचम् ।  
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वौ देव ओहते ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।११ )

५६ प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनता ।  
अच्छा वीरं नय पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ २ ॥ ऋ. १।४०।३ )

५७ ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।  
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाधद्भिर्विह्वयामहे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।३६।१३ )

[ ५४ ] हे अग्ने ! ( मनुः त्वां नि दधे ) मननशील मनुष्य तुझे धारण करता है, ( शश्वते जनाय ज्योतिः ) प्राचीनकालसे आनेवाले मनुष्योंके लिए तेरी ज्योति प्रकाशित है, ( कण्वे दीदेथ ) ज्ञानवान् ऋषिके आश्रममें तू प्रकाशित होता है, ( ऋत-जातः उक्षितः ) यज्ञके लिए उत्पन्न होनेपर तू और अधिक प्रज्वलित किया जाता है, ( यं कृष्टयः नमस्यन्ति ) जिसको मनुष्य नमन करते हैं ॥ १० ॥

॥ यद्वां पञ्चमं खंडं समाप्तं हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ५५ ] ( वः देवः ) तुम्हारा देव ( द्रविणो-दाः ) धन देनेवाला है, अतः वह ( पूर्णा आसिचं विवश्वा ) अच्छी तरह भरे हुए खुचाको स्वीकार करे, और तुम ( उत् सिञ्चध्वं ) ऊपरसे घी डालो, ( वा उप पृणध्वं ) और बार बार खुचा भर भर कर आहुति दो, ( आत् इत् ) इसके बाद ही ( देवः वः ओहते ) वह देव तुम्हें उन्नतिके मार्ग पर ले जाएगा ॥ १ ॥

[ ५६ ] ( ब्रह्मणस्पतिः ) ज्ञानका स्वामी वह देव ( प्र एतु ) हमारे पास आवे, ( सूनता देवी प्र एतु ) सत्य रूपवाली सरस्वती देवी हमारे पास आवे, ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञमें ( देवाः ) सब देव ( नयं पंक्ति-राधसं वीरं ) मानव जातिके हित करनेवाले, [ अपनी सेनाकी ] पंक्तिको यशस्वी बनानेवाले वीरको ( अच्छा नयन्तु ) उत्तम मार्गसे ले जावें ॥ २ ॥

[ ५७ ] हे अग्ने ! ( नः ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( ऊर्ध्वः सुतिष्ठ ) ऊंचे स्थानपर उत्तम रीतिसे स्थित हो, ( सविता देवः न ) सूर्य देवके समान ( ऊर्ध्वः ) उन्नत होकर ( वाजस्य सनिता ) अन्नको देनेवाला हो, ( यत् अञ्जिभिः ) जिस कारण स्तोत्रोंसे ( वाग्भिः विह्वयामहे ) स्तुति करते हुए हम तुझे बुलाते हैं ॥ ३ ॥



- ५८ प्र यो राये निनीषाते मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।  
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१०३।४ )
- ५९ प्र वो यद्वं पुरुषां विशां देवयतीनाम् ।  
अग्निं सुक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यंसमिदन्य इन्धते ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।३६।१ )
- ६० अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।  
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ३।१६।१ )
- ६१ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।  
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।१६।९ )
- ६२ सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।  
अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ३।१९।१ )

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ [ स्व० ११ । उ० २ । धा० ५७ । (ख) ॥ ]

[ ५८ ] हे ( वसो ) सबको बसानेवाले अग्नि देव ! ( यः मर्तः ) जो मनुष्य ( राये निनीषाते ) धन प्राप्तिके लिए तेरी उपासना करता है, ( यः ते दाशत् ) जो तुझे हवि देता है, ( सः ) वह ( उक्थशंसिनं ) स्तुति करनेवाले, ( सहस्रपोषिणं ) हजारों मनुष्योंका पोषण करनेवाले । ( वीरं ) वीर पुत्रको ( त्मना धत्ते ) अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

[ ५९ ] ( यं अन्ये सं-इन्धते ) जिस अग्निको दूसरे पुरुष उत्तमतासे प्रज्वलित करते हैं, उस ( देवयतीनां पुरुषां विशां ) देवत्वको प्राप्त करनेवाली नागरिक प्रजाओंकी ( यद्वं ) महान् भक्तिका ( सूक्तेभिः वचोभिः ) सूक्तोंके वाक्योंसे ( वृणीमहे ) हम वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

[ ६० ] ( अयं अग्निः ) यह अग्नि ( सुवीर्यस्य ) उत्तम पराक्रमका और ( सौभगस्य ) उत्तम भाग्यका ( हि ईशे ) स्वामी है, ( रायः ईशे ) वह धनका स्वामी है, ( स्वपत्यस्य गोमत ईशे ) वह अपने पुत्र पौत्र और गायोंका स्वामी है ( वृत्रहथानां ) घेरनेवाले शत्रुको मारनेवालोंका भी वह स्वामी है ॥ ६ ॥

[ ६१ ] हे अग्ने ! ( त्वं गृहपतिः ) तू घरोंका स्वामी है, ( नः अध्वरे त्वं होता ) हमारे हिंसारहित यज्ञमें तू होता है, हे ( विश्ववार ) सभीके द्वारा स्वीकार करने योग्य अग्ने ! ( त्वं पोता ) तू पवित्रता करनेवाला है, ( प्रचेताः ) तू उत्तम ज्ञानी है, ( वार्यं यक्षि ) तू स्वीकार करने योग्य धनोंको देता है । ( यासि च ) और वह धन प्राप्त भी करता है ॥ ७ ॥

[ ६२ ] हे अग्ने ! ( सखायः मर्तासः ) हम सभी समान विचारवाले मनुष्य ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( सु-भगं ) उत्तम ऐश्वर्यवाले, ( सु-दंससं ) उत्तम कर्म करनेवाले ( सु-प्रतूर्तिं ) पापोंका नाश करनेवाले ( अनेहसं ) पापरहित ( अपां-न-पातं ) पानीको न गिरानेवाले ( त्वा देवं ) तुझ देवको ( ववृमहे ) प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥

१ अपां-न-पातः- पानीको नीचे न गिरानेवाला, मेघोंके अन्दर अग्नि रहनेके कारण मेघोंके न पिघलनेसे पानी नहीं बरसता, ( अपां-नपातं ) पानीका पौत्र, पानीके पुत्र वृक्षोंकी परस्पर रगड़से वृक्षोंका पुत्र अग्नि पैदा होता है ।

॥ यहाँ छठा खंड समाप्त हुआ ॥



[ ७ ]

( १-१० ) १ श्यावाश्वो वामदेवो वा; २ उपस्तुतो वाहिष्पत्यः; ३ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ४ कुत्स आंगिरसः;  
५-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ७ वामदेवो गौतमः; ८, १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ९ त्रिशिरास्त्वाष्टः ॥

१,३,५,९ त्रिष्टुप; २, ४ जगती; १० त्रिपादिराङ्गायत्री ॥

- ६३ आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।  
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥ ( ऋग्वेदे नास्ति )
- ६४ चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।  
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्योश्च चरन् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।११५।१ )
- ६५ इदं त एकं पर उ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।  
संवेशनस्तन्वेश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।१६।१ )
- ६६ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।  
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यमे सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१४।१ )

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ६३ ] ( हविषा आ जुहोत ) हे मनुष्यो ! हवि द्रव्योंसे हवन करो, ( मर्जयध्वं ) सर्वत्र शुद्धता करो, ( होतारं गृहपतिं ) हवन करनेवाले घरके स्वामी अग्निको ( नि दधिध्वं ) स्थापित करो, ( इडः पदे ) पृथ्वीके यज्ञ-स्थानमें ( पस्त्यानां रातहव्यं ) प्रारम्भ हुए हुए यज्ञमें हवनीय पदार्थोंको देनेके साथ साथ ( नमसा समर्पय ) नमस्कार पूर्वक अग्निका सत्कार करो ॥ १ ॥

[ ६४ ] ( शिशोः तरुणस्य ) इस तरुण बालक अग्निका ( वक्षथः चित्रः ) जीवन बड़ा ही विचित्र है, ( यः ) जो ( धातवे ) दूध पीनेके लिये ( मातरौ अपि न एति ) दोनों ही माताओंके पास नहीं जाता, ( अन्-ऊधः ) स्तन रहित माताओंसे ( यदि अजीजनत् ) यदि यह उत्पन्न हुआ है, तो ठीक है, ( अध च ) उत्पन्न होनेके बाद यह अग्नि ( महि दूत्यं चरन् ) बड़े बड़े दूतके कामको करते हुए ( ववक्ष ) देवोंको हवि पहुंचाता है ॥ २ ॥

दो अरणियोंके संघर्षसे अग्नि उत्पन्न होती है, पर पैदा होनेके बाद यह माताके पास दूध पीने नहीं जाती, क्योंकि उसकी माताके स्तन ही नहीं होते, पर यह उत्पन्न होते ही देवोंको हवि पहुंचाने रूप दूतके काम करने लगती है। यह आश्चर्य है ।

[ ६५ ] ( ते इदं एकं ) तेरा यह एक अग्नि रूप शरीर है, ( ते परः एकं ) तेरा दूसरा वायुरूप शरीर है, ( तृतीयेन ज्योतिषा ) तीसरे सूर्यरूप तेजसे ( सं विशस्व ) तू मिल जा, ( तन्वः सं वेशमे ) शरीरके इस प्रकार संयुक्त हो जानेपर ( चारुः एधि ) तू सुन्दर होकर बंध, ( परमे जनित्रे देवानां प्रियः ) परम श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थानमें तू देवोंका प्रिय होकर रह ॥ ३ ॥

मरनेके बाद मृतककी क्या अवस्था होती है, वह, यहां बताया गया है, इसका एक स्थूल शरीर अग्निसे मिल जाता है, दूसरा शरीर वायुसे मिल जाता है। यहांसे सूर्यमें पहुंचकर यह कल्याणमय स्थितिमें रहता है, इस श्रेष्ठ स्थानमें यह देवोंका प्रिय होकर रहता है। यह आनन्दकी स्थिति होती है ।

[ ६६ ] ( अर्हते जातवेदसे ) पूज्य जातवेद अग्निके लिए ( इमं स्तोमं ) इस स्तोत्ररूपी यज्ञको ( रथं इव ) रथके समान ( मनीषया ) बुद्धिपूर्वक ( सं महेम ) उत्तम प्रकार तैयार करते हैं ( अस्य संसदि ) इस अग्निके यज्ञ स्थानमें ( नः भद्रा प्रमतिः ) हमारी कल्याणमय बुद्धि कार्य करती है। ( वयं तव सख्ये ) हम तेरी मित्रतामें ( मा रिषाम ) कभी नष्ट न हों ॥ ४ ॥



- ६७ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमुत् आ जातमग्निम् ।  
कविं सभ्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ६।७।१ )
- ६८ वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।  
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजि न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।२४।६ )
- ६९ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।  
अग्निं पुरा तनयितोरचित्ताद्विरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।३।१ )
- ७० इन्धे राजा समर्थो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।  
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।८।१ )
- ७१ प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।  
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥ ( ऋ. १०।८।१ )

[ ६७ ] ( दिवः मूर्धानं ) ब्रूलोकके शिर स्थानीय ( पृथिव्या अरतिं ) पृथ्वीके स्वामी ( ऋते आजातं ) यज्ञमें उत्पन्न हुए ( वैश्वानरं ) सब विश्वके नेता ( कविं सभ्राजं ) ज्ञानी और प्रकाशमान ( जनानां अतिथिं ) मनुष्योंमें अतिथिके समान पूज्य ( आसन्नः ) मुखके समान मुख्य ( पात्रं ) योग्य ( अग्निं ) अग्निको ( देवाः जनयन्त ) देवोंने उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥

[ ६८ ] हे अग्ने ! ( पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न ) पर्वतकी पीठसे जैसे जल प्रवाह बहते हैं, उसी प्रकार ( देवाः उक्थेभिः ) यज्ञ कर्ता विद्वान् स्तोत्रोंके द्वारा ( वि जनयन्त ) अनेक प्रकारसे तुझे उत्पन्न करते हैं, हे ( गिर्ववाहः ) बांणीसे-स्तुतिसे जानने योग्य अग्ने ! ( अश्वाः आजि न ) घोड़े जैसे संग्राममें जाते हैं और ( जिग्युः ) विजय मिलती है, उसी प्रकार ( सुष्टुतयः गिरः ) उत्तम स्तुतिसे युक्त हमारी वणी ( त्वं त्वा वाजयन्ति ) उस तुझे बलवान बनाती है ॥ ६ ॥

[ ६९ ] ( अ-ध्वरस्य राजानं ) हिंसा रहित यज्ञके राजा ( रुद्रं ) घोषणा करते हुए ( रोदस्योः सत्य यजं ) द्यावा पृथिवीमें सत्य रूपसे यज्ञ करनेवाले ( होतारं हिरण्यरूपं अग्निं ) होता, सुवर्ण रूप अग्निको ( अचित्तात् ) स्वाभाविक रूपसे ( स्तनयित्नोः ) विद्युत्से ( पुरा अवसे कृणुध्वं ) पहले अपने संरक्षणके लिए उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

१- पहले विद्युत् अग्निसे इस अग्निको उत्पन्न किया था ।

[ ७० ] ( अर्थः राजा अग्निः ) यह श्रेष्ठ राजा अग्नि ( नमोभिः सं इन्धे ) अग्नियोंसे प्रज्वलित किया जाता है, ( यस्य प्रतीकं ) जिसका रूप ( घृतेन आहुतं ) घृतके हवनसे बढ़ाया जाता है, ( नरः सबाधः हव्येभिः ईडते ) सब मनुष्य मिलकर हवनोंसे इसकी पूजा करते हैं, ( अग्निः उषसां अग्रे अशोचि ) इस प्रकार यह अग्नि उषा कालसे पहले ही प्रज्वलित हुई है ॥ ८ ॥

[ ७१ ] अग्नि ( बृहता केतुना ) महान् प्रकाशके साथ ( प्रयाति ) प्रकट होता है, ( रोदसी ) द्यावा पृथ्वीमें ( वृषभः रोरवीति ) यह बलवान् अग्नि गर्जन करता है, ( दिवः अन्तात् चित् ) अन्तरिक्ष लोकके एक ( उपमां उद् आनद् ) पासके भागसे वह प्रथम प्रकट हुआ, और ( अपां उपस्थे ) जलोंके बीचमें-मेघोंके बीचमें ( महिषः ववर्ध ) वह सामर्थ्यशाली अग्नि बढ़ने लगा ॥ ९ ॥



७२ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योहस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।

दूरेदृशं गृहपतिमथव्यम्

॥ १० ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १५ । उ० ८ । घा० १०४। ( वी ) ॥ ]

[ ८ ]

( १-८ ) १ बुधगविष्टिरावात्रेयो; २, ५ वन्मप्रिर्भालन्दनः; ३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४, ७ विश्वामित्रो गाथिनः;

६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ८ पायुर्भरद्वाजः ॥ अग्निः, ३ पूषा ॥ त्रिष्टुप् ॥

७३ अवोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुपासम् ।

यद्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )

७४ प्र भूजयन्तं महां विपोधां मूरैर्मूरं पुरां दर्माणम् ।

नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम्

॥ २ ॥ ( ऋ. १०।४६।१ )

[ ७२ ] ( नरः ) यज्ञ करनेवाले नेता मनुष्योंने ( दीधितिभिः ) अपनी अंगुलियोंसे ( अरण्योः ) दो अरण्योंके बीचमें ( हस्तच्युतं ) हाथोंके बलसे उत्पन्न हुए ( प्रशस्तं दूरेदृशं ) प्रशंसित तथा दूरसे ही दीखनेवाले ( गृहपतिं ) घरके स्वामी ( अथव्यं अग्निं जनयन्त ) गतिशील अग्निको उत्पन्न किया ॥ १० ॥

एक अरणीमें दूसरी डालकर वे अरनियां घिसी जाती हैं, इस घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है, और इस प्रकार यह यज्ञगृहका स्वामी प्रशंसित होता है ।

॥ यहां सातवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ ७३ ] यह ( अग्निः ) अग्नि ( जनानां समिधा ) यज्ञकर्ता मनुष्योंकी समिधाओंसे ( अवोधि ) प्रज्वलित हुआ है । ( धेनुं इव ) [ अग्निहोत्रके लिए पाली हुई ] गाय जिस प्रकार [ प्रातः काल जागती है ] उसी प्रकार ( आयतीं उपासं प्रति ) आनेवाली उषामें [ उठकर इस अग्निको प्रज्वलित करो ] उस अग्निकी ( भानवः ) ज्वालायें ( वयां प्रोज्जिहानाः यद्वाः ) डालियोंको फैलानेवाले महान् वृक्षके समान ( अच्छ नाकं प्रसस्रते ) उत्तम रीतिसे आकाशमें फैलती हैं ॥ १ ॥

( १ ) वयां प्रोज्जिहानाः यद्वाः— शाखाओंको फैलानेवाले महान् वृक्षके समान ।

( २ ) भानवः अच्छ नाकं प्रसस्रते— अग्निकी किरणें अन्तरिक्षमें फैलती हैं, ।

( ३ ) अग्निः जनानां समिधा अवोधि— अग्नि यज्ञ करनेवालोंकी समिधाओंसे प्रज्वलित हुआ है ।

( ४ ) धेनुं इव आयतीं उपासं प्रति— गायके पास जैसे मनुष्य सबेरे जाता है, उसी प्रकार आनेवाली उषामें मनुष्य अग्निके पास जाकर उसे जलाते हैं ।

[ ७४ ] हे मनुष्य ! ( जयन्तं ) असुरोंको जीतनेवाले ( महां विपोधां ) महान् बुद्धिमानोंको धारण करनेवाले ( मूरैः पुरां दर्माणं ) मूर्खोंकी नगरियोंका नाश करनेवाले ( अमूरं ) ज्ञानी अग्निकी स्तुति करनेके लिए ( प्रभूः ) समर्थ हो, ( गीर्भिः वना नयन्तं ) स्तुतियोंसे धनकी तरफ ले जानेवाले ( वर्मणा न ) कवचके समान रहनेवाले ( हरिश्मश्रुं ) सुनहरे रंगकी ज्वालाओंसे युक्त ( धनर्चिं ) जिसके लिए स्तोत्र किए जाते हैं ऐसी अग्निकी ( धियं धाः ) स्तुति कर ।



- ७५ शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।  
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।२।१ )
- ७६ इडामग्रे पुरुदंसं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।  
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्रे सा ते सुमतिभूत्वस्म ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।६।१ )
- ७७ प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्वा सीददपां विवर्ते ।  
दधद्यो धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।४६।१ )
- ७८ प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।  
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।६।१ )

[ ७५ ] हे ( पूषन् ) पूषा देव ! ( ते शुक्रं अन्यत् ) तेरा तेजस्वी वर्णवाला दिन पृथक् है, ( ते यजतं अन्यत् ) उसी प्रकार तेरी कृष्ण वर्णकी रात्री पृथक् है, इस प्रकार ( वि-षु-रूपे अहनी ) आपसमें एक दूसरेसे भिन्न दिवसके ये दो भाग तेरी महिमासे होते हैं, तू ( द्यौः इव असि हि ) ब्रुलोकके समान प्रकाशित होता है, हे ( स्वधावन् ) अन्नवान् देवता ! तू ( विश्वाः मायाः अवसि ) सब प्रजाओंका संरक्षण करता है, ( ते भद्रा रातिः ) तेरे कल्याण करनेवाले दान ( इह अस्तु ) यहाँ हमें प्राप्त हों ॥ ३ ॥

( १ ) पूषा- सूर्य, ( २ ) यजतं- दिवससे सम्बन्धित, कृष्णवर्ण, ( ३ ) स्वधा- अन्न, अपनी धारण शक्ति ।

( ४ ) मायाः- कुशलतासे काम करनेवाली प्रजा, कपटका प्रयोग ।

[ ७६ ] हे अग्ने ! ( पुरु-दंसं ) बहुत कार्योंमें उपयोगी ( गोः सनि इडां ) गायोंको देनेवाली वाणी ( शश्वत्तमं हवं आनाव ) निरन्तर हवन करनेवाले यजमानके लिए ( साध ) दे, ( नः सूनुः तनयः स्यात् ) हमारे पुत्र और पौत्र होंवें, ऐसी जो ( ते सुमतिः ) तेरी उत्तम बुद्धि है, वह ( अस्मे विजावा भूतु ) हमारे लिए सफल हो ॥ ४ ॥

( १ ) विजावा- अवन्ध्य, सफल, ।

[ ७७ ] ( यः नृषद्वा ) जो मनुष्योंके घरोंमें रहनेवाला अग्नि ( अपां विवर्ते ) पानीसे भरे हुए अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे रहता है, वह इस समय ( होता जातः ) यज्ञ करनेवाला हो गया है, वह ( महान् नभोवित् ) महान् तथा अन्तरिक्षको जाननेवाला अग्नि ( प्रसीदत् ) वेदिमें प्रज्वलित हो गया है, वह ( दधत् ) हवियोंको धारण करनेवाला ( सुधायी ) वेदिमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला है, हे स्तुति करनेवाले उपासक ! वह अग्नि ( विधते ते ) उपासना करनेवाले तेरे लिए ( वयांसि ) अन्न और ( वसूनि ) धनोंको ( यन्ता ) देनेवाला ( तनू-पाः भवतु ) और शरीरोंका संरक्षण करनेवाला होवे ॥ ५ ॥

[ ७८ ] ( असुरस्य पुंसः ) बलवान् वीरके और ( कृष्टीनां अनुमाद्यस्य ) मनुष्यों द्वारा स्तुतिके योग्य ( तवसः इन्द्रस्य इव ) बलमें इन्द्रके समान उस अग्निके ( प्रशस्तं सम्राजं ) प्रशंसनीय उत्तम तेजकी ( प्रस्तौतु ) स्तुति करो । ( वन्दद्वारा वन्दमाना ) स्तुति और वन्दन आदि कर्मोंसे ( प्र विवष्टु ) उसकी उपासना करो ॥ ६ ॥



- ७९ <sup>३ २ ३ १ २</sup> अरण्योर्निहितो जातवेदः <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २</sup> गर्भे इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ३।२९।२ )
- ८० <sup>३ १ २</sup> सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अनु दह सहमूरान्कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।८७।१९ )

इति अष्टमी वसतिः ॥ ८ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० १३ । उ० १ । धा० ६ । (टी) ॥ ]

[ ९ ]

- ( १-१० ) १ गय आत्रेयः, २ वामदेवः; ३, ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५ द्वितो मृकतवाहा आत्रेयः; ६ वसूयव आत्रेयाः; ७, ९ गोपवन आत्रेयः, ८ पूररात्रेयः; १० वामदेवः, कश्यपो वा मारीचो, मनुर्वा वैवस्वत, उभौ वा ॥ अग्निः ॥ अनुष्टुप् ॥

- ८१ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> अग्रं ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमग्निगो ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )
- ८२ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यदि वीरो अनु व्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आजुह्वद्व्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥ ( ऋग्वेदे नास्ति )

[ ७९ ] ( जातवेदाः अग्निः ) सब ज्ञानसे युक्त यह अग्नि ( गर्भिणीभिः सुभृतः गर्भे इव ) गर्भ धारण करने वाली स्त्रियों द्वारा उत्तम रीतिसे वारण किए हुए गर्भके समान ( अरण्योः निहितः ) अरण्योंमें रहता है, वह अग्नि ( हविष्मद्भिः जागृवद्भिः मनुष्येभिः ) हवि तैय्यार करके हमेशा जागृत रहनेवाले मनुष्यों द्वारा ( दिवे दिवे ईड्यः ) प्रतिदिन स्तुतिके योग्य है ॥ ७ ॥

[ ८० ] हे अग्ने ! तू ( सनात् ) हमेशा ( यातुधानान् मृणसि ) कष्ट और पीडा देनेवाले शत्रुओंको मारता है ( त्वा पृतनासु ) तुझे सैन्याममें ( रक्षांसि न जिग्युः ) राक्षस जीत नहीं सकते, इस प्रकार तू ( सहमूरान् ) समूल ( क्रव्यादः ) मांस भक्षक राक्षसोंको ( अनुदह ) जला डाल ( ते दैव्यायाः हेत्याः ) तेरे दिव्य हथियारसे कोई भी शत्रु ( मां मुक्षत ) न छोड़े ॥ ८ ॥

( १ ) सहमूराः— जड सहित । ( २ ) क्रव्यादः— मांस खानेवाले ।

॥ यहां आठवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ ८१ ] हे अग्ने ! ( ओजिष्ठं द्युम्नं ) बलवर्धक धन ( अस्मभ्यं आभर ) हमें भरपूर दे । हे ( अग्नि-गो ) बिना रोक टोक गतिवाले अग्ने ! ( पनीयसे राये ) प्रशंसनीय धनके मिलनेके मार्गको ( नः प्र ) हमें दिखा, उसी प्रकार ( वाजाय ) अन्न मिलने तथा बल बढ़ानेके ( पन्थां रत्सि ) मार्ग दिखा ॥ १ ॥

[ ८२ ] ( यदि वीरः स्यात् ) यदि वीर पुत्र उत्पन्न हो, तो ( मर्त्यः अग्निं इन्धीत ) वह मनुष्य अग्निको प्रज्वलित करे और ( अनु ) बादमें ( हव्यं आनुषक् आजुह्वत् ) हवनीय पदार्थोंका सदा हवन करे, और ( दैव्यं शर्म भक्षीत ) दिव्य सुख प्राप्त करे ॥ २ ॥



- ८३ त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं च्छुक्र आततः ।  
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।२।६)
- ८४ त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।  
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥ (ऋ. ६।२।१)
- ८५ प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।  
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥ ५ ॥ (ऋ. ९।१।८।१)
- ८६ यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।  
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्राजा उदीरते ॥ ६ ॥ (ऋ. ९।२।९।७)
- ८७ विशोविशो वो अतिथि वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।  
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।७।४।१)

[ ८३ ] ( त्वेषः ते ) प्रज्वलित होनेके बाद तेरा ( शुक्रः धूमः ) साफ धुआं ( दिवि आततः ) अन्तरिक्षमें फैलता है, और ( ऋण्वति ) वहाँसे वह दीखने लगता है, हे ( पावक ) पवित्रता करनेवाले अग्ने ! ( सूरः न ) सूर्यके समान- ( कृपा ) स्तुतिके ( द्युता ) प्रकाशसे ( हि रोचसे ) तू प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[ ८४ ] हे अग्ने ! ( हि ) निश्चयसे ( त्वं ) तू ( क्षैतवत् यशः ) सूखी समिधारूप अन्न ( मित्रः न ) सूर्यके समान ( पत्यसे ) प्राप्त करता है, हे ( विचर्षणे ) सर्व द्रष्टा ( वसो ) सबको बसानेवाले अग्ने ! ( त्वं श्रवः ) तू अन्नको और ( पुष्टिं न पुष्यसि ) पुष्टीको बढ़ाता है ॥ ४ ॥

( १ ) क्षैत— सूखी लकड़ी, ( २ ) यशः— अन्न, यश.

[ ८५ ] ( पुरु-प्रियः ) अनेकोंको प्रिय लगनेवाले ( विशः अतिथिः ) मनुष्योंके घरमें अतिथिके समान जाने-वाले ( अग्निः ) अग्निकी ( प्रातः स्तवेत ) प्रातः काल स्तुति की जाती है, ( यस्मिन् अमर्त्ये ) जिस अमर अग्निमें ( विश्वे मर्तासः ) सब मनुष्य ( हव्यं इन्धते ) हवनीय पदार्थोंका हवन करते हैं ॥ ५ ॥

[ ८६ ] ( वाहिष्ठं यत् ) अति शीघ्र पहुँचनेवाला जो स्तोत्र है ( तत् अग्नये ) वह अग्निके लिए किया जाता है, ( विभावसो ) हे तेजस्वी अग्ने ! ( बृहत् अर्च ) बहुतसा धन और अन्न हमें दे, ( त्वत् ) तुझसे ( महिषी रयिः ) बहुत धन और ( त्वत् ) तुझसे ही ( वाजा उदीरते ) अन्न मिलता है ॥ ६ ॥

[ ८७ ] हे मनुष्यो ! तुम ( वाजयन्तः ) अन्न और बलकी इच्छा करते हुए ( विशः विशः ) सब प्रजाओंके ( पुरु-प्रियं ) अत्यन्त प्रिय ( अतिथिं अग्निं ) इस पूज्य अग्निकी स्तुति करो, मैं ( वः दुर्यं ) तुम्हारे लिए घरोंमें रहने-वाले अग्निकी ( शूषस्य मन्मभिः ) सुख देनेवाले स्तोत्रोंसे और ( वचः स्तुषे ) अपनी वाणीसे स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥



- ८८ <sup>३ २ ३ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २</sup> बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्रय ।  
<sup>३ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ ३ ३ ३</sup> यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१६।१ )
- ८९ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २</sup> अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमाग्निमानवम् ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २</sup> य स्म श्रुतर्वन्नाक्षर्ये बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।७४।४ )
- ९० <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्धिः सहाभुवः ।  
<sup>३ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २</sup> पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ १० ॥

इति नवमो दशतिः ॥ ९ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० १४। उ० ७। धा० ५१। (य) ॥ ]

[ १० ]

( १-६ ) १ अग्निस्तापसः; २, ३ वामदेवः कश्यपः, असितो देवलो वा; ४ सोमाहुतिर्भागवः; ५ पायुर्भारद्वाजः;

६ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ अग्निः; १ विश्वेदेवाः; २ अङ्गिराः ॥ अनुष्टुप् ॥

- ९१ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।  
<sup>३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१४।१३ )
- ९२ <sup>३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २</sup> इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।  
<sup>२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २</sup> प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥

[ ८८ ] ( भानवे अग्रये ) तेजस्वी अग्निके लिए ( बृहत् वयः ) बहुतसा हविका अन्न दिया जाता है, ( हि ) क्योंकि तुम ( देवाय अर्च ) प्रकाशयुक्त अग्निकी ही पूजा करते हो । ( मर्तासः ) मनुष्य ( यं मित्रं न ) जिस अग्निकी मित्रके समान ( प्रशस्तये पुरः दधिरे ) उत्तम स्तुति करनेके लिए आगे स्थापित करते हैं ॥ ८ ॥

[ ८९ ] ( वृत्रहन्तमं ) वृत्रको मारनेवाले ( ज्येष्ठं आनवं ) श्रेष्ठ मनुष्योंके हित करनेवाले ( अग्निं अगन्म ) अग्निकी हम प्राप्त करते हैं ( यः ) जो अग्नि ( आक्षर्यं श्रुतर्वन् ) ऋक्ष पुत्र श्रुतर्वकिए ( बृहत् अनीकः ) मोटी मोटी ज्वालाओंके साथ ( इध्यते स्म ) प्रज्वलित किया जाता है ॥ ९ ॥

[ ९० ] हे अग्ने ! ( यत् सवृद्धिः सह अभुवः ) जो यज्ञ ऋत्विजोंके साथ उत्पन्न होता है, उस ( परेण धर्मणा ) उत्तम धर्मके साथ तू ( जातः ) उत्पन्न हुआ है, ( यत् ) जिस अग्निका ( कश्यपस्य पिता ) कश्यप पिता, ( श्रद्धा माता ) श्रद्धा माता और ( मनुः कविः ) मनु कवि है ॥ १० ॥

॥ यहाँ नवम खंड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[ ९१ ] हम ( राजानं सोमं ) सोमराजाको तथा वरुण, अग्नि, आदित्य, सूर्य, ब्रह्मणस्पति, विष्णु और बृहस्पतिकी ( अन्वारभामहे ) बार बार याद करते हुए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ९२ ] ( एते भूर्जयः आङ्गिरसः ) ये यज्ञ करनेवाले आङ्गिरस ( यथा ) जैसे ( द्यां उत्प्रययुः ) द्युलोकको पहुंचे, ( पथाः इतः उदारुहन् ) उत्तम मार्गसे यहांसे वहां चले गए और ( दिवः पृष्ठानि आरुहन् ) द्युलोककी पीठपर जाकर चढ़ गए ॥ २ ॥



- ९३ राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।  
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ॥ ३ ॥
- ९४ दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत् ।  
परि विश्वानि काव्या नेमिश्रक्रमिवाभुवत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. २।५।३ )
- ९५ प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।  
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।८।२५ )
- ९६ त्वमग्ने वसंरिह रुद्रां आदित्यां उत ।  
यज्ञा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतपुषम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।४५।१ )

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० ४ । उ० ३ । धा० २० । (द्वौ) ॥ ]

इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥

( १ )

( १-१० ) दीर्घतमा औचथ्यः; २, ४ विश्वामित्रो गाथिनः; ३ गोतमो राहूगणः; ५ त्रित आप्त्यः; ६ इरिम्बिठिः  
काण्वः; ७, ८, १० विश्वमना वंयश्च; ९ ऋजिष्वा भारद्वाजः ॥ अग्निः; ५ पवमानः सोमः; ६ अदितिः;  
९ विश्वे देवाः ॥ उष्णिक् ॥

- ९७ पुरु त्वा दाशिवां वोचेऽरिग्ने तव सिवदा ।  
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१५०।१ )

[ ९३ ] हे अग्ने ! ( त्वा ) तुझे ( महे राये दानाय ) अधिक धन देनेके लिए हम ( समिधीमहि ) प्रदीप्त करते हैं । हे ( वृषन् ) बलवान् अग्ने ! ( महे होत्राय ) महान् अग्नि होत्रके लिए ( द्यावा पृथिवी ) ब्रूलोक और पृथ्वीलोककी ( ईडिष्वा ) स्तुति कर ॥ ३ ॥

[ ९४ ] ( वा ) अथवा ( ईं अनु दधन्वे ) इस अग्निको लक्ष्य करके अध्वर्यु आदि लोग ( ब्रह्म अनुवोचत् ) स्तोत्र कहते हैं, ( तत् वेः उ ) उन सबको वह जानता है, यह अग्नि ( विश्वानि काव्या ) सब काव्योंको, सब कर्मोंको ( नेमिः चक्रं इव ) नाभि चक्रको जैसे धारण करती है, उसी प्रकार ( परि अभुवत् ) धारण करता है ॥ ४ ॥

[ ९५ ] हे अग्ने ! ( हरसा ) अपने तेजसे ( यातुधानस्य हरः ) यातना कष्ट देनेवाले राक्षसोंके मुखका हरण करनेवाला तू उनके ( बलं ) बलको ( विश्वतः ) सब प्रकारसे ( परि प्रति शृणीहि ) चारों तरफसे नष्ट कर, ( रक्षसः वीर्यं ) राक्षसोंके पराक्रमको ( न्युब्ज ) नष्ट कर ॥ ५ ॥

[ ९६ ] हे अग्ने ! ( त्वं इह ) तू यहां ( वसून् रुद्रान् उत आदित्यान् ) वसु, रुद्र और आदित्य इन देवोंके लिए ( यज ) यज्ञ कर, उसी प्रकार ( मनुजातं ) मनुसे उत्पन्न हुए ( घृत-पुषं ) घृतका सिंचन करनेवाले ( स्वध्वरं जनं यज ) उत्तम यज्ञ करनेवाले मनुष्यका सत्कार कर ॥ ६ ॥

॥ यहां दशम खंड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] एकादशः खण्डः ।

[ ९७ ] हे अग्ने ! ( त्वा पुरु दाशिवान् ) तुझे बहुतसी हवि देता हुआ ( वोचे ) मैं कहता हूँ, कि ( महस्य तोदस्य इव ) बड़े धनवान्की ( शरणे आ ) शरणमें आये हुए सेवकके समान मैं ( तव सिवद् आ अरिः ) तेरा ही सेवक हूँ ॥ १ ॥



- १८ प्र होत्रे पूव्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।  
विषां ज्योतींषि विभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१०।५ )
- १९ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।  
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७९।४ )
- १०० अग्ने यजिष्ठे अध्वरे देवां देवयते यज ।  
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्त्रिधः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।१०।७ )
- १०१ जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेषामाशासत श्रिये ।  
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०२।४ )
- १०२ उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।  
सा शन्ताति मयस्करदप स्त्रिधः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१८।७ )
- १०३ ईडिष्व हि प्रतीड्यां यजस्व जातवेदसम् ।  
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२३।१ )

[ १८ ] ( विषां ज्योतींषि विभ्रते ) ज्ञानियोंके तेजोंको धारण करनेवाले ( वेधसे होत्रे न ) विधाता और देवोंको बुलानेवालेके समान ( अग्नये ) अग्निके लिए ( बृहत् पूव्यं वचः ) महान् और प्राचीन स्तोत्रोंको ( प्र भरता ) कहो ॥ २ ॥

[ १९ ] ( सहसो यहो अग्ने ) हे बलसे उत्पन्न हुए अग्ने ! ( गोमतः वाजस्य ईशानः ) गायोंसे उत्पन्न होनेवाले अग्निका तू स्वामी है, इस कारण हे ( जात-वेदः ) ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! ( अस्मे महि श्रवः देहि ) हमें बहुतसा धन दे ॥ ३ ॥

[ १०० ] हे अग्ने ! तू ही ( अध्वरे यजिष्ठः ) यज्ञमें पूजाके योग्य है, ( देवयते ) यज्ञकर्तके लिए ( देवान् यज ) देवोंके लिए यज्ञ कर, तू ( होता मन्द्रः ) देवोंको बुलाकर लानेवाला अग्नि ( वि अति स्त्रिधः ) शत्रुओंको पराजित करके ( राजसि ) शोभित होता है ॥ ४ ॥

[ १०१ ] ( सप्त मातृभिः जज्ञानः ) सात माताओं-नदियों की सहायतासे उत्पन्न होनेवाला, ( मेषां श्रिये अशासत ) यज्ञ करनेवाले सोमोंकी शोभाके लिए प्रयत्न करनेवाला ( अयं ध्रुवः ) यह स्थिर अग्नि ( रयीणां आचिकेतद् ) धनोंको उत्तम रीतिसे जानता है ॥ ५ ॥

[ १०२ ] ( उत स्या मतिः ) और वह बुद्धि ( अ-दितिः ) न खण्डित होनेकी स्थितिमें ( ऊत्या ) संरक्षणकी शक्तिके साथ ( दिवा नः आगमत् ) आजके दिन हमें प्राप्त होवे, ( सा ) वह ( शन्तातिः मयः ) शान्ति और सुखको हमारे लिए ( करत् ) प्रदान करे, और ( स्त्रिधः अप ) शत्रुओंको दूर करे ॥ ६ ॥

[ १०३ ] ( प्रतीड्यां ईडिष्व हि ) शत्रुको पराजित करनेवाले अग्निकी स्तुति कर, ( अ-गृभीत-शोचिषं ) जिसके प्रकाशको कोई भी नहीं रोक सकता, ( चरिष्णु-धूमं ) जिसका धुंआ चारों दिशाओंमें फैलता है, ऐसे ( जात-वेदसं ) सबको जाननेवाले अग्निकी ( यजस्व ) पूजा कर ॥ ७ ॥



- १०४ न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।  
 यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।२३।१५)
- १०५ अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्रे दुराध्यम् ।  
 दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ९ ॥ (ऋ. ६।५१।१३)
- १०६ श्रुष्ट्यग्रे नवस्य मे स्तोमस्य वीर विशपते ।  
 नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥ १० ॥ (ऋ. ८।२३।१४)

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ९ । उ० ३ । घा० ४२ । (वा) ॥ ]

[ २ ]

(१-८) १ प्रयोगो भार्गवः २ ( ऋ० सौभरिः काण्वः ); २, ३, ५-७ सौभरिः काण्वः; ४ प्रयोगो भार्गवः, सौभरिः काण्वो वा; ८ विश्वमता वैयश्वः ॥ अग्निः ॥ उष्णिक्

- १०७ प्र महिष्ठाय गायत क्रतान्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।  
 उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१०३।८)
- १०८ प्र सो अग्रे तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।  
 यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१९।३०)

[ १०४ ] ( यः ) जो ( हव्य-दातये अग्नये ) हवनीय पदार्थोंको देनेवाले अग्निके लिए ( ददाश ) हवि देता है, ( तस्य ) उसके ऊपर ( मर्त्यः रिपुः ) कोई भी शत्रु ( मायया चन ) कपटसे भी ( न ईशीत ) शासन नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

[ १०५ ] हे अग्ने ! ( त्यं ) उस ( वृजिनं रिपुं ) कपटी शत्रु और ( दुराध्यं स्तेनं ) कठिनतासे बशमें आने योग्य चोरको ( दविष्ठं अपास्य ) दूर कर, हे ( सत्पते ) सत्यके पालक अग्ने ! हमारे लिए ( सुगं कृधि ) मार्गको आसानीसे जाने योग्य बना ॥ ९ ॥

[ १०६ ] हे ( वीर ) वीर ( विशपते ) हे प्रजाके पालक अग्ने ! इस ( मे नवस्य स्तोमस्य ) मेरे नये स्तोत्रको ( श्रुष्टी ) सुनकर ( मायिनः रक्षसः ) छली, कपटी राक्षसोंको ( तपसां निदह ) अपने तेजसे जला दे ॥ १० ॥

॥ यहां ग्यारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १२ ] द्वादशः खण्डः ।

[ १०७ ] हे ( उपस्तुतासः ) स्तुति करनेवाले उपासको ! तुम ( महिष्ठाय ) महान् ( क्रतान्ने ) सत्यके पालक, यज्ञके पालक, ( बृहते ) महान् ( शुक्र-शोचिषे ) स्वच्छ प्रकाशसे युक्त ( अग्नये ) अग्निके लिए ( प्रगायत ) स्तोत्रोंका गान करो ॥ १ ॥

[ १०८ ] हे अग्ने ! ( त्वं यस्य सख्यं आविथ ) तू जिसका मित्र हो जाता है, ( सः ) वह ( तव ) तेरे ( सुवीराभिः ) उत्तम वीरोंसे युक्त ( वाज-कर्मभिः ) अन्न देनेवाले और पुरुषार्थसे प्राप्त होनेवाले ( ऊतिभिः ) संरक्षणके साधनोंसे ( प्रतरति ) दुःखोंसे पार हो जाता है ॥ २ ॥



- १०९ तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरति दधन्विरे ।  
 देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१९।१ )
- ११० मा नो हणीथा अतिथि वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।  
 यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१०३।१२ )
- १११ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।  
 भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१९।१९ )
- ११२ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।  
 अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१९।३ )
- ११३ तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सद्ने कं चिदत्रिणम् ।  
 मन्युं जनस्य दृढ्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१९।१५ )

[ १०९ ] हे उपासक ! ( स्वः नरं तं गूर्धत ) स्वर्गको हवि पहुंचानेवाले अग्निकी स्तुति कर, ( देवासः ) ऋत्विग् गण ( देवं ) जिस देवकी ( अरति दधन्विरे ) स्वामी मानकर उपासना करते हैं, उस अग्निकी सहायतासे ( देवत्रा ) देवोंको ( हव्यं आ ऊहिषे ) हवनीय द्रव्य तू पहुंचाता है ॥ ३ ॥

[ ११० ] ( नः अतिथि ) हमारे यज्ञसे अतिथिके समान प्रिय अग्निको दूर ( मा हणीथाः ) मत लेजा, ( यः सुहोता ) जो अग्नि देवोंको उत्तम रीतिसे बुलानेवाला, ( स्वध्वरः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला, ( एषः ) यह ( पुरु-प्रशस्तः वसुः ) अनेकोंसे प्रशंसित होनेवाला तथा सबको बसाने वाला है ॥ ४ ॥

[ १११ ] ( आहुतः ) जिसमें हवन किया गया है, ऐसा ( अग्निः ) यह अग्नि ( नः भद्रः ) हमारा कल्याण करने वाला होवे, हे ( सुभग ) उत्तम ऐश्वर्यवाले हमें ( भद्रा रातिः ) कल्याणकारी धन प्राप्त होवे, ( अध्वरः भद्रः ) हमारा यज्ञ कल्याण करनेवाला होवे, ( उत ) और ( प्रशस्तयः भद्राः ) स्तुतियां हमारा कल्याण करनेवालीं होवें ॥ ५ ॥

[ ११२ ] हे अग्ने ! ( यजिष्ठं ) यज्ञ करनेवाले, ( देवत्रा देवं ) देवोंमें प्रमुख देव ( अमर्त्यं होतारं ) अमर होता, ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले ( त्वा ववृमहे ) तुम्हारा हम सत्कार करते हैं ॥ ६ ॥

[ ११३ ] हे अग्ने ! ( तत् द्युम्नं आभर ) उस तेजस्वी यज्ञको हमें दे, ( यत् ) जो ( सद्ने ) यज्ञ स्थान अथवा घरमें ( कंचित् अत्रिणं ) किसी भी अत्यधिक खानेवाले शत्रुको ( आ सासाहा ) दबा सके, उसी प्रकार ( दृढ्यं ) दुष्ट बुद्धि और ( जनस्य मन्युं ) लोगोंके क्रोधको दूर कर ॥ ७ ॥



११४ यद्वा उ विश्वपतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।

विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।२३।१३ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [ स्व० १२ । उ० २ । धा० ४४ । ( छी ) ॥ ]

इत्याग्नेयं पर्व काण्डम् वा ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ इति प्रथमं पर्व ॥

आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११४

|            |     |            |
|------------|-----|------------|
| गायत्र्यः  | ३४  | ( १-३४ )   |
| बृहत्यः    | २८  | ( ३५-६२ )  |
| त्रिष्टुभः | १८  | ( ६३-८० )  |
| अनुष्टुभः  | १६  | ( ८१-९६ )  |
| उष्णिहः    | १८  | ( ९७-११४ ) |
|            | ११४ |            |

[ ११४ ] ( यत् वै ) जब ( विश्वपतिः शितः ) यजमानोंका पालन करनेवाला अग्नि हविसे प्रज्वलित होता है, तब वह अग्नि ( सुप्रीतः ) अच्छी तरह प्रसन्न होकर ( मनुषः विशे ) मनुष्यके घर जाता है, तब वह अग्नि ( विश्वा रक्षांसि इत् ) सब राक्षसोंको ( प्रतिषेधति उ ) नष्ट करता है ॥ ८ ॥

॥ यहां बारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

॥ इति आग्नेयं काण्डं समाप्तम् ॥

## अग्निका स्वरूप

सामवेदके प्रथम काण्ड ' आग्नेय काण्ड ' में ११४ मंत्र हैं, यद्यपि इनमें कहीं कहीं दूसरे देवताओंके भी मंत्र हैं, पर इस काण्डका मुख्य देवता ' अग्नि ' है । लोग देवताओंका वर्णन पढ़ें, पढ़कर उनके गुणोंको अपने अन्दर धारण करें, धारण करके उन्हें बढ़ावें और मनुष्यसे ' देव ' बनें इसके लिए वैदिक उपासना और स्तुति है । ' देव ' बननेकी इच्छा प्रत्येक स्तुति करनेवालेके मनमें होनी चाहिए । मैं देवताकी स्तुति करता हूं मैं इस देवताके गुणका वर्णन करता हूं, इसका उद्देश्य है कि इस देवताके गुण मेरे अन्दर आवें, और इन शुभ गुणोंसे मैं युक्त होऊं ।

यत् देवाः अकुर्वन् तत् करवाणि । शतपथ ब्राह्मण ।  
' जो देवोंने किया, वह मैं करूं ' । इस प्रकार करके मनुष्य देवत्वको प्राप्त करें और देव बनकर समाजमें शोभित हों इसी-को आग्नेय काण्डमें इस प्रकार कहा है,

देव-युं जनं आ अयः । ऋ. ५।९।१; साम. २३

' हे अग्ने ! देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको तू प्राप्त हो ' तुझे प्राप्त करनेका अर्थ है उपासकको देवत्वकी प्राप्ति, अर्थात् उसका उद्धार । यह देवत्व प्राप्त करना है, इसी-को मुख्य रूपसे करनेके लिए वेदने कहा है, उसे वैदिक धर्मियोंको करना चाहिए ।

आज हम सामवेदके ' आग्नेय काण्ड ' का विवेचन करते हैं, इस काण्डका मुख्य प्रतिपाद्य देवता अग्नि है । इस कारण सर्व प्रथम अग्निके स्वरूप पर विचार करते हैं—

### अग्निके गुण

इस आग्नेय काण्डमें निम्न गुणोंका वर्णन है—

१ विश्व-वेदाः- ( विश्व ) सबको ( वेदाः ) जानने वाला, सर्वज्ञानी, विशेषज्ञान युक्त ( मं. ३ ) ' सब धन युक्त ' यह भी इस शब्दका अर्थ है, क्योंकि वेद धनको भी कहते हैं । ' वेदस् इति धन नाम ' ( निघं. २।१०।४ )



- २ जात-वेदाः ( मं. ३१ )- ( जातं वेत्ति ) सब उत्पन्न हुआओंको जाननेवाला ।
- ३ कविः ( मं. ३० )- ज्ञानी, कान्तदर्शी, दूरदर्शी ।
- ४ पुरोहितः ( मं. ४८ )- आगे रहनेवाला, पुरोहित, मनुष्योंका सबसे पहले दितकरनेवाला ।
- ५ प्र-चेताः ( मं. ६१ )- विशेष बुद्धिमान्, विशेषज्ञानी
- ६ अतिथिः ( मं. ५ )- अतिथिके समान पूज्य सत्कार-के योग्य ।
- ७ जरा-बोधः ( मं. १५ )- स्तुतिसे ज्ञात होनेवाला, जिसकी स्तुति होती है ।
- ८ रुद्रः ( मं. १५ )- ( रुद्र-रः ) बोलने वाला, वक्ता ( रुद्र-रः ) शत्रुको रलानेवाला ।
- ९ पावकः- ( मं. २८ ) पवित्रता करनेवाला, शुद्धि करने-वाला,
- १० चेतिष्ठः ( मं. ४५ )- चेतना देनेवाला, प्रेरणा देने-वाला, ज्ञानी,
- ११ गातु-वित्-तमः ( मं. ४७ )- मार्ग जाननेवालोंमें सर्व श्रेष्ठ, उत्तम मार्गको जाननेवाला ।
- १२ आर्यस्य वर्धनः ( मं. ४६ )- आर्योंको- श्रेष्ठ पुरु-षोंको- बढाने वाला,
- १३ श्रुत्-कर्णः ( मं. ५० )- श्रुतोंको प्रार्थना सुनकर उनकी कामनाकी पूर्ति करनेवाला ।
- १४ पोता ( मं. ६१ )- स्वच्छता करनेवाला, एक अध्वर्यु
- १५ विपो-धाः ( मं. ७४ )- विशेष ज्ञानी लोगोंको सहारा देनेवाला । ज्ञानियोंका आश्रयदाता ।
- १६ अ-मूरः ( मं. ७४ )- जो मूर्ख नहीं अर्थात् ज्ञानी ।
- १७ सु-भगः ( मं. ६२ )- उत्तम ऐश्वर्यवाला ।
- १८ यज्ञस्य सु-क्रतुः ( मं. ३ )- यज्ञका कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाला ।
- १९ सत्य-धर्मा ( मं. ३२ )- सत्यका पालन करनेवाला, यज्ञका पालन करनेवाला ।
- २० सत्पतिः ( मं. ३४ )- सज्जनोंका पालन करनेवाला ।
- २१ विद्वपतिः ( मं. ३९ )- प्रजाओंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाला ।
- २२ आता ( मं. ४२ )- संरक्षण करनेवाला, उत्तम संरक्षक,
- २३ क्रतुः ( मं. ४२ )- सत्य, योग्य, यज्ञ, पूज्य ।
- २४ वैश्व-नरः ( मं. ६० )- सब मनुष्योंका हित करने-वाला, सार्वजनिक हितकारी ।
- २५ अ-तन्द्रः ( मं. ४६ )- आलस्य रहित, सुस्ती रहित, सदा उत्साह युक्त ।
- २६ दक्षाः ( मं. ३५ )- चतुर, कर्मोंमें सदा निपुण,
- २७ होता ( मं. १, २ )- देवोंको बुलाकर लानेवाला, सत्पुरुषोंको अपने साथ लानेवाला, हवन करनेवाला ।
- २८ प्रेष्ठः ( मं. ५ )- सबका प्रिय, सबको चाहनेवाला
- २९ प्रियः ( मं. ५ )- सबका प्रिय, सबके द्वारा चाहने योग्य,
- ३० वाजपतिः ( मं. ३० )- अन्न और बलका अधिपति ।
- ३१ विवस्वत् ( मं. १० )- ( विवः ) ज्ञानसे ( वत् ) युक्त, ज्ञानी, सबको बसानेवाला,
- ३२ वृधन् ( मं. २१ )- बढानेवाला, संवर्धन करनेवाला ।
- ३३ सुवीरः ( मं. २६ )- उत्तम वीर, महाशूर
- ३४ वृषाणि जंघनत् ( मं. ४ )- धरनेवाले शत्रुको मारनेवाला,
- ३५ सु-वीर्यस्य ईशे ( मं. ६० )- उत्तम वीर्यका स्वामी,
- ३६ पुरां दर्माणं ( मं. ७४ )- शत्रुके नगरोंको तोड़ने-वाला,
- ३७ वृत्रन्हन्तमः ( मं. ८९ )- वृत्रोंको मारनेवाला,
- ३८ ऊर्जा न-पातः ( मं. ४५ )- बलको कम न करने-वाला, बल बढानेवाला ।
- ३९ ऊर्जा पति ( मं. ३६ )- बल और अन्नका पालक ।
- ४० जयन् ( मं. ७४ )- विजयी
- ४१ प्रत्नः ( मं. २० )- प्राचीन, अनादि
- ४२ अमृतः ( मं. ३५ )- अमर
- ४३ वृषभः ( मं. ७१ )- बलवान्, सामर्थ्यशाली, वृष्टि करनेवाला,
- ४४ पुरु-प्रियः ( मं. ८७ )- बहुतोंको प्रिय, ' प्रिय ' ( मं. ४५ )
- ४५ स्वध्वरः ( मं. ४५ )- ( सु-अध्वरः ) हिंसा रहित यज्ञ करनेवाला ।
- ४६ पुरु-प्रशस्तं ( मं. ११० )- बहुतों द्वारा प्रशंसित
- ४७ द्रविणस्युः ( मं. ४ )- धनवान्, बलवान्, ( निधं २१०।२५ धन, २११।१६ बल )
- ४८ सौभगस्य ईशे रायः ईशे ( मं. ६० )- सौभाग्य और धनका स्वामी ।
- ४९ दाशुषे रत्नानि दधत् ( मं. ३० )- दान देने-वाले मनुष्योंको रत्न देनेवाला ।
- ५० द्रविणोदाः ( मं. ५५ )- धन देनेवाला,
- ५१ देवानां प्रियः ( मं. ६५ )- देवोंको प्रिय, विद्वानोंका चाहनेवाला,
- ५२ देवेषु राजति ( मं. ४६ )- देवोंमें प्रकाशित होनेवाला, विद्वानोंमें तेजस्वी ।



५३ गृहपतिः (मं. ६१) - गृहस्थ, घरोंका स्वामी,  
५४ अनेहस् (मं. ६२) - पापरहित,  
५५ शुक्लशोचीः (मं. १०७) - तेजस्वी, प्रकाशित होनेवाला।

५६ सहस्रान् (मं. २१) - बलवान्, शत्रुको पराजित करनेवाला।

५७ अरतिः (मं. ६०) - प्रगतिशील,

५८ ऋते जातः (मं. ६०) - सत्यके लिए प्रयत्न करनेवाला, यज्ञके लिए उत्पन्न हुआ।

५९ अर्थः राजा - (मं. ७०) - श्रेष्ठ राजा,

६० परेण धर्मणा जातः (मं. ९०) - श्रेष्ठ धर्मोंके साथ उत्पन्न हुआ, श्रेष्ठ धर्मोंका पालन करनेवाला।

६१ सत्पते सुगं कृधि (मं. १०५) - हे सज्जनोंके पालन करनेवाले ! हमारे मार्ग सरलतासे आने योग्य बना, अग्नि मार्गको सरलतासे आने योग्य बनाता है।

६२ अव्वराणां सम्राट् (१७) - हिंसा रहित कर्मोंका सम्राट्।

६३ सत्य-यजः (मं. ६७) - सत्य यज्ञ करनेवाला, उत्तम यज्ञ करनेवाला।

६४ अगृहीत-शोचिः (मं. १०३) - जिसका तेज कम नहीं होता, जिसका तेज रोका या दबाया नहीं जा सकता।

६५ रिपुः न ईशत (मं. १०४) - जिस पर शत्रु शासन नहीं कर सकता, शत्रुको हरानेवाला।

६६ तनू-पाः (मं. ७७) - शरीरका संरक्षण करनेवाला,

६७ नृ-वशाः (मं. ७७) - मानवीय घरों और शरीरोंमें रहनेवाला।

६८ मानुषे जने देवेभिः हितः (मं. २) - मनुष्योंके शरीरमें देवोंद्वारा स्थापित किया हुआ।

६९ वसुः (मं. ३६) - सबको बसानेवाला, निवास करनेवाला।

६० अमीष-व्यातजः (मं. ३२) - रोगोंको दूर करनेवाला।

७१ सहस्र-पोषिणं वीरं तमना धत्ते (मं. ५८) - हजारों मनुष्योंका पोषण करनेवाले वीरको-वीर पुत्रको स्वयं धारण करता है।

७२ जनानां सम्राट् (मं. ६७) - लोगोंका सम्राट्।

७३ हिरण्यरूपः (मं. ६९) - सोनेके समान तेजस्वी, चमकनेवाला।

अभिके इन गुणोंका वर्णन इस आग्नेय काण्डमें है। इनमें कहीं अभिके ज्ञानका वर्णन है, कहीं उसके बल और शूरवीरताका

४ (साम. हिंदी)

वर्णन है। ये गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर बढालें, तो उनकी योग्यता निःसन्देह बढेगी। पाठक इस दृष्टिसे इन गुणोंका विचार करें, और जो गुण अपने अन्दर ला सकते हैं, उनको लावें और उन्हें बढावें। मनुष्य इन गुणोंसे युक्त हों इसलिए वेदके ये मंत्र हैं।

## अभिका सामर्थ्य

अभिका सामर्थ्य बहुत महान् है, इसलिए इसको 'पुरुतमः' (२१) - सबमें श्रेष्ठ कहा है। शक्तिमें यह सबसे महान् है, इसलिए कहा है, कि 'महान् असि' (२३) - तू बहुत बड़ा है, तेरी बराबरी करनेवाला कोई दूसरा नहीं है, तुझ जैसा महान् कोई नहीं है।

कृष्टयः ओजसे ते नमः गृणन्ति (मं. ११) - सब मनुष्य शक्तिके लिए तुझे नमन करते हैं, और तेरी स्तुति करते हैं।

इस प्रकारकी अभिकी शक्ति है।

## आर्थोंका संवर्धन

सु-जातं आर्यस्य वर्धनं नः गिरः नक्षन्तु (४७) - उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए और श्रेष्ठ पुरुषोंको बढानेवाले अभिका वर्णन हमारी वाणी करती है।

यज्ञके तीन अर्थ हैं, (१) देव-पूजा, (२) संगतिकरण और (३) दान, इनसे मनुष्योंकी शक्ति बढती है। कैसे ? इस प्रकार कि समाजमें रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंका सत्कार होनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंकी संख्या बढती है, उससे समाज श्रेष्ठ होता है। उसके बाद संगति-करणकी आवश्यकता होती है, संगति-करणका अर्थ है, संघटन, समाजमें संगठन होनेका अर्थ है समाजकी शक्तिका विस्तार। तीसरा पक्ष है दान। दानका अर्थ केवल धन देना ही नहीं है, अपितु जिसके पास जो चीज नहीं है, वह चीज उसको देकर उसका उद्धार करना भी दान ही है।

यह दान चार प्रकारका है - (१) विद्या दान, (२) बल-दान, (३) धनदान और (४) कर्मदान। इन चार प्रकारके दानोंसे राष्ट्रकी उन्नति होती है। अज्ञानियोंको विद्याका दान करनेसे वे ज्ञानवान् होकर उन्नत होते हैं। जो निर्बल हैं, उनके बलको बढाकर उन्हें बलवान् बनाना यह दूसरा कार्य है। धनका दान देकर देशमें धन उत्पन्न करनेके साधनोंको बढाना वह राष्ट्रकी उन्नतिमें तीसरा महत्वपूर्ण कार्य है। चौथा काम है, बेकारोंको काम देकर उन्हें धन मिले ऐसा प्रबन्ध करना। इन चार प्रकारके दानोंसे देशकी उन्नति हो सकती है।

यज्ञके ये तीन पक्ष उत्तम रीतिसे राष्ट्रकी उन्नति करनेवाले



हैं। इस कारण यज्ञसे राष्ट्र और समाजकी उन्नति होती है। यह हमारा विचार बिल्कुल ठीक है।

### गृहपति

यद्यपि यह अग्नि घरके हवन-कुण्डमें ही रहता है, पर तो भी उसे वहां 'गृह-पति' घरका मालिक कहा गया है। यज्ञका अग्नि निश्चयसे घरका स्वामी है।

**गृहपते ! अ-प्रोषितवान् महान् असि ( ३९ )**

'हे गृहस्वामी अग्नि ! तू कहीं दूसरी जगह नहीं घूमता, तू निश्चयसे महान् है।' ( अ-प्रोषितवान् ) तू बाहर इधर उधर बिना कारण नहीं घूमता। घरमें ही रहते हुए तथा घरका हित करते हुए तू अपना समय बिताता है, इसलिए तू ( महान् असि ) महान् है। अपने घरका सब प्रकारसे कल्याण करना गृहस्थीका मुख्य कर्तव्य है। सब गृहस्थी इससे बहुतसा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

### गौवोंको पालना

गायोंको पालना गृहस्थियोंका एक मुख्य कर्तव्य है। घरोंमें गायें अत्यन्त आवश्यक हैं। घरोंमें बच्चोंको गायका दूध, घी, मक्खन आदि प्राप्त होना उत्तम ऐश्वर्यका लक्षण है। इससे मनुष्य लम्बी उम्रवाले होते हैं—

**मघवानः जनानां यन्तारः गोनां ऊर्वं दयतः ( ३८ )-**

'जो मनुष्यों पर उत्तम प्रकार शासन करते हैं, वे घनवान् गौवोंके झुण्डका भी संरक्षण करते हैं। वे लोगोंको गायें देते हैं, और गायोंसे लोगोंकी सहायता करते हैं।

**पुरुदंसं गो-सर्नि द्वां शश्वत्तमं ह्यमानाय साध ( ७६ )-**

स्तुति करनेवालेको अनेक प्रकारसे अन्न देनेवाले सब प्रकारके अन्न देने वाले हे अग्नि ! तू गायका दान कर।

गौवोंका दान यज्ञ करनेवालोंको करें। गाय भी यज्ञका मुख्य साधन है। हवन गायके दूध और घीसे होता है। गायके घीकी अग्निमें आहुति देनेसे वह विषको नष्ट करके हवा शुद्ध करता है।

**ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते।**

**ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते।**

—गोपथ ब्राह्मण

ऋतुओंके सन्धि कालमें अर्थात् एक ऋतुके समाप्त होनेपर जब दूसरी ऋतु प्रारम्भ होती है, तब हवाके बदलनेसे रोग पैदा होते हैं। इसलिए ऋतुओंके सन्धि कालमें यज्ञ किए जाते हैं। इन यज्ञोंमें गायके घी तथा रोगोंको शान्त करनेवाले अग्न्यान्व्य औषधियोंका हवन किया जाता है, उससे रोग दूर होते हैं।

मनुष्यका रोग इस प्रकार दूर हो सकता है, कि मनुष्य जिस रोगसे पीड़ित है, उस रोगको शान्त करनेवाली औषधियोंको कूटकर उसका तथा गायके घीका हवन यदि उस रोगीके कमरेमें किया जाए तो यज्ञमें डाली गयी सामग्री अग्निमें जलकर सूक्ष्म हो जाती है, और वह सूक्ष्म अंश श्वास द्वारा रोगीके अन्दर जाकर रक्तमें मिल जाता है, और इस प्रकार वह रोगीके रोगको दूर करता है।

अग्नि 'हव्यवाह' कहा है, क्योंकि यह हवनमें डाले गए पदार्थोंको जहां पहुंचाना होता है, वहां पहुंचा कर इच्छित कार्यको सिद्ध करता है।

किस ऋतुमें किन औषधियोंका हवन किया जाए यह संशोधनीय विषय है। यदि इसका संशोधन कर उसके अनुसार हवन किया जाए तो वैयक्तिक और सामुदायिक आरोग्यका लाभ होगा, इसमें कोई संशय नहीं। संशोधकोंका कर्तव्य है कि इस महत्वपूर्ण विषयका संशोधन अवश्य करें।

### ज्ञानी अग्नि

अग्नि ज्ञानी है, यह पहले ही दिखकाया है। अन्धेरेमें यदि अग्निको जलाया जाए तो वह उस स्थानका उत्तम ज्ञान करा देता है। कौनसा मार्ग है, और वह मार्ग कहीं कांटों और पत्थरोंसे भरा हुआ तो नहीं है, कहीं मार्गमें गड्ढे तो नहीं हैं, इन सबका ज्ञान अग्नि करा देता है। मनुष्योंको इसका अनुभव कदम कदम पर मिलता है। इसीलिए इसे 'विश्ववेदाः' ( ३ ) सबको जाननेवाला कहा गया है।

**वाजपतिः कविः हव्यानि परि अक्रमीत् ( ३० )**

यह अन्न या बलका स्वामी और बुरदर्शी है, और वह यज्ञमें डाले गए पदार्थोंको चारों दिशाओंमें फैलाता है। अग्निमें भिन्न ढालनेपर आसपास बैठे हुए मनुष्योंको लोके आने लगती हैं, उसी प्रकार सुगंधित पदार्थोंका हवन करनेपर पासमें बैठे हुए मनुष्योंको सुगंध आने लगती है। इस प्रकार यह अग्नि हवनमें डाले गए पदार्थोंको वह ( पर्यक्रमीत् ) चारों दिशाओंमें फैलाता है। इसलिए इसे—

**यज्ञस्य सुक्रतुः ( ३ )-** यज्ञको उत्तम रीतिसे सम्पन्न करनेवाला बताया गया है। जिन यज्ञीय पदार्थोंकी हवनमें आहुति दी जाती है, उन पदार्थोंको यह अग्नि चारों दिशाओंमें फैलाकर उसके उत्तम परिणामको सब हवन कर्त्ताओंको प्राप्त कराता है। यह उत्तम परिणाम मनुष्योंके अनुभवमें आता है। इसलिए इन पदार्थोंका हवन इस ऋतुमें करना चाहिये और इस ऋतुमें नहीं, इसका विचार पूर्वक संशोधन करना चाहिए। क्योंकि—



अयं अग्निः सुवीर्यस्य ईशे ( ६० )

यह अग्नि उत्तम बलका स्वामी है। इसलिए इसमें जिन पदार्थोंका हवेच्छा किया जाए, उन पर पहले विचार कर लेना चाहिए।

एते भूर्गयः आंगिरसः द्यां उत्प्रययुः, इत उदाहरन्, दिवः पृष्ठानि आरुहन् ( १२ )

ये उत्तम यज्ञ करनेवाले आंगिरस ऋषि युलोकपर चढ़े, यहांसे और उच्च स्थानपर पहुंचे, फिर युलोककी पीठपर जाकर वहां वे विराजमान हुए।

यह यज्ञकी शक्ति है। इसलिए यज्ञ सदा साजोपाज होना चाहिए। 'अंग-रस' अंगोंमें जो जीवन रस बहता है, उसे अंगरस कहते हैं, यह रस सब अंगोंमें रहता है। वह रस कैसे तैयार होता है, कैसे बढ़ता है, और कैसे निर्दोष बनाया जा सकता है, इस विद्याको जो जानते हैं, वे 'आंगिरस' होते हैं। अंगके जीवन रसकी विद्या जो ऋषि जानते हैं, वे आंगिरस ऋषि कहाते हैं। आंगिरसोंने इस विद्याका संशोधन करके उसे बढ़ाया, और यज्ञस हानेवाले परिणामोंको लोगोंके सामने सिद्ध करके दिखलाया, इस कारण ये आंगिरस ऋषि श्रेष्ठ बने।

### देवत्व प्राप्त करना

सभी यज्ञोंका यदि कोई उद्देश्य है, तो केवल देवत्व प्राप्त कराना ही है। देवोंके जो गुण मंत्रोंमें बताये हैं, उन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढ़ाना यह साधन है, यह कर्त्तव्य कर्म है, यह मनुष्यों द्वारा करने योग्य है।

देवयुं जनै आ अयः ( २३ )

देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छावाले और उसके साधनोंका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके पास अग्नि जाता है। इस 'आग्नेय काण्ड' में अग्निके जो गुण बताये हैं, वे गुण अपने अन्दर बढ़ानेका जो प्रयत्न करते हैं, और उनका वह अनुष्ठान जितना बढ़ता है, उतना ही उनके अन्दर अग्नि बढ़ती है और वे अग्निके समान तेजस्वी होते हैं।

उषर्बुधः देवान् आ वह ( ४० )— उषःकालमें जागनेवाले देवोंको इस यज्ञमें ले आ। 'उषः-बुध' उषा कालमें उठना, सोते न रहना यह देवत्वका एक चिन्ह है। सबेरे सोठे चार बजे उठना आसानीसे हो सकता है। शौच, मुंह धोना, स्नान, संध्या उपासना करके ७ बजे जो अपने काममें लग जाता है, उसको, प्रातःकाल उठनेसे कैसा उत्साह प्राप्त होता है, यह अनुभव होगा। और इसके विपरीत आठ नौ बजेतक बिस्तरमें पड़ा रहनेवाला कितना उत्साह हीन होता

है, यह बात समझने योग्य है। 'उषः-बुधः' उषा कालमें उठकर अपने कार्यमें लग जाना यह देवत्वका एक लक्षण है।

'देवेषु राजस्वि ( ४६ )'— वह देवोंमें तेजस्वी होता है। देवोंके गुण अपने अन्दर धारण करनेसे मनुष्य देवोंमें चमकने लगता है। देवोंमें केवल बसना ही नहीं अपितु देवोंके बीच तेजस्वी होना ही विशेष महत्वकी बात है। सभी देव तेजस्वी हैं, उनके बीचमें जो विशेष तेजस्वी होता है, वही देवोंमें चमकता है। विशेष तेजस्विता प्राप्त करना ही इसका तात्पर्य है।

सयावभिः देवैः चन्दिभिः प्रातर्यावभिः अच्वरे बर्हिषि आसीदतु ( ५० )— 'साथ साथ चलनेवाले आगे ले जानेवाले तथा प्रातःकाल उठकर काममें लगनेवाले देवोंके साथ यज्ञमें आसनपर बैठ'। (स्व-यावभिः) समान रीतिसे प्रगति करनेवाले (प्रातः यावभिः) प्रातःकाल उठकर उच्च-कारक कामोंमें लगनेवाले और (चन्दिभिः) आगे ले जानेवाले देवोंके साथ यज्ञमें आसनपर बैठनेकी योग्यता प्राप्त हो, इसलिए इस प्रकारके गुण अपने अन्दर धारण करने चाहिए। मिल मिलकर सामुदायिक प्रगति करना, प्रातःकाल उठकर काममें लगना, और उच्चतिशील मार्गसे जाना ये तीन गुण अग्निमें हैं। यज्ञकी अग्नि प्रातःकाल प्रज्वलित होती है, सब ऋत्विज मिलकर उसकी उपासना करते हैं, और सब उच्चतिके मार्गपर जाते हैं, अर्थात् निर्दोष यज्ञ करते हैं। इन गुणोंको अपनाकर ही मनुष्योंकी उच्चति हो सकती है। इस प्रकार यह अग्नि देव मार्गको दिखा-नेवाला है, इसलिए कहा है—

नः दृशे देवः असि ( १० )

'हमको मार्ग-दिखानेवाला तू देव है'। अग्नि देव इस प्रकार लोगोंको मार्ग दिखानेवाला है। अन्धकारमें अग्नि अपने प्रकाशसे लोगोंको मार्ग दिखाता है, यह सबके अनुभवमें आने-वाली बात है। 'अग्निः कक्षात्, अग्रणीः भवति' ( निरुक्त ), इसे अग्नि इसीलिए कहते हैं, क्योंकि यह अग्र-णी होता है, अर्थात् (अग्र-णी) आगेके भागमें रहनेवाला, आगे ले जानेवाला वह अग्नि देव है। वह सबको उच्चतिके मार्गसे ले जाता है, इसलिए उसका पूरा नाम 'अग्र-णी' है, जिसका संक्षिप्त रूप 'अग्नि' हो गया है।

अग्र-णीः— अग्र-णी

अग्र-नीः— अग्नि

यह यज्ञाग्नि भी उसी प्रकार अग्र-णी है, क्योंकि वह अपने उपासकोंको प्रगतिके मार्गसे आगे ले जाता है—

प्रियं मित्रं हव ( ५ )— प्रिय मित्रके समान सहारा देकर अपने भक्तोंको आगे ले जाता है—



ते मनः परमात् स्वधस्थात् आयमत् ( ८ )- जो तेरे मनको ऊंचे स्थानसे अपने पास बुला लेता है, तेरे मनको अपने अनुकूल बना लेता है, वह श्रेष्ठ बनता है। देवताके मनको अपने अनुकूल बनानेके लिए देवताके गुणोंको अपने अन्दर लानेकी आवश्यकता है। नहीं तो यदि अपना आचरण देवताके गुणके विरुद्ध होगा, तो निश्चयसे देवता हमपर क्रोधित होंगे। इसलिए देवताके कौन कौनसे गुण हैं, इनको जानकर उन्हें अपने अन्दर मनुष्य धारण करें, और देवताके मनको अपने अनुकूल बनावें।

### शत्रुनाशक अग्नि

अग्निके कुछ गुण पहले दिखाये। अब 'आग्नेय काण्ड' में अग्निकी युद्ध कुशलताका जो वर्णन है, उसपर विचार करते हैं-

अग्निः वृत्राणि जंघनत् ( ४ )- अग्नि वृत्रोंको मारता है। वृत्रका अर्थ है, चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु। वृत्रका अर्थ है, घेघ, वृत्रका अर्थ है सब प्रकारके शत्रु। इन शत्रुओंको अग्नि नष्ट कर देता है।

अयं अग्निः वृत्रहृथानां ईशे ( ६० )- यह अग्नि वृत्रको मारनेवाले शूरवीरोंमें प्रधान है।

वृत्रहन्तमं ज्येष्ठं आनवं अग्निं अगन्म ( ८९ )- घेरनेवाले शत्रुओंको नष्ट करनेवालोंमें प्रमुख शूरवीरोंमें भी मुख्य उस अग्निको मैं प्राप्त होता हूँ, उसकी मैं उपासना करता हूँ। उससे मैं मित्रता करता हूँ, उसके पास जाकर मैं रहता हूँ, उसके आश्रयमें मैं रहता हूँ।

विश्वस्य अरातेः महोभिः पाहि ( ६ )- सभी शत्रुओंसे अपनी महती शक्ति द्वारा हमारा संरक्षण कर।

मर्त्यस्य द्विषः पाहि ( ६ )- द्वेष करनेवाले मनुष्यों और शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

अमैः अमिज्जं अर्ह्य ( ११ )- अपनी शक्तिसे हमारे शत्रुओंको नष्ट कर दे।

रुद्रः ( १५ )- तू शत्रुओंको कलनेवाला है।

अग्निः तिग्मेन शोचिषा विश्वं अग्निं नियंसत् ( २१ )- अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओंसे सब अत्यधिक खानेवाले शत्रुओंको मारता है। 'अग्निः'- अत्यधिक खानेवाला शत्रु ( अग्नि इति अग्निः )।

नः अंहसः रीयतः रक्ष ( २४ )- हमारा पापी हिंसक शत्रुओंसे संरक्षण कर।

अजरः तपिष्ठैः प्रतिदह ( २४ )- बुढ़ापेसे रहित सदा तरुण रहनेवाला तू अपने तेजसे शत्रुओंको जला दे।

विदपतिः रक्षसः तपानः ( ३९ )- प्रजाओंका धालन करनेवाला अग्नि राक्षसोंको तपाकर नष्ट करता है।

सनात् यातुधाना मृणसि ( ८० )- हमेशा कष्ट पीड़ा देनेवाले शत्रुको तू नष्ट करता है।

त्वा पृतनासु रक्षांसि न जिग्युः ( ८० )- तुझे युद्धमें राक्षस जीत नहीं सकते।

अहमूरान् कव्यादा अनुदह ( ८० )- मूर्खोंके साथ रहनेवाले और कच्चा मांस खानेवाले जो शत्रु हैं, उन्हें जला दे।

ते दैव्यायाः ह्येत्याः मा मुक्षत ( ८० )- वे शत्रु [ तेरे ] दिव्य शक्तियोंसे न छूटें।

हरसा यातुधानस्य हरः बलं विश्वतः परि प्रप्ति-  
भृजाहि ( ९५ )- अपनी शक्तिसे दुष्टके सबके संहार करनेवाले बलको सब तरहसे नष्ट कर।

रक्षसः बलं न्युज ( ९५ )- राक्षसोंका बल नष्ट कर।

स्त्रिधः अपकरत् ( १०२ )- शत्रुको दूर कर।

तस्य मर्त्यः रिपुः मायया च न ईशते ( १०४ )- उसको मारनेवाला शत्रु अपनी चतुरतासे फिर शक्तिशाली न बने।

त्यं वृजिनं रिपुं दुराध्यं स्तेनं दविष्ठं अपास्य ( १०५ )- उस पापी और कठिनतासे ब्रशमें करने योग्य चोर शत्रुको दूर फेंक दे।

मायिनः रक्षसः तपसा निदह ( १०६ )- कपटी राक्षसोंको अपने तेजसे जला दे।

सदने कंचित् अग्निं आ सासह्याम ( १११ )- अपने घरमें अथवा राष्ट्रमें कोई बालक शत्रु आ जाये तो उसे हम पराजित करें।

विश्वा रक्षांसि प्रतिषेधति ( ११४ )- सब राक्षसोंको वह मारता है।

इस प्रकार अपने सब शत्रुओंके वैयक्तिक और राष्ट्रीय शत्रुओंके नाश करनेका विचार इस आग्नेय काण्डमें किया गया है। सब समय और सब स्थानमें शत्रुओंके नाशके लिए इसी प्रकारकी इच्छा प्रकट की जाती है। मनुष्य इस प्रकार अपने शत्रुओंको दूर करनेका प्रयत्न करें। अपनी शक्ति बढ़ावें, अपने संगठनका बल बढ़ावें, अपने शस्त्रास्त्रोंको और सेनाओंका बल बढ़ावें और अपने बाहर और अन्दरके सभी शत्रुओंको दूर करें।

### घोडे

अग्नि अपने रथमें वेगसे दौड़नेवाले घोड़ोंको जोतकर आता है। इस विषयमें कहा है—

ये तव साधवः आश्वः अभ्वासः अरं वहन्ति युध्व हि ( २५ )-



जो तेरे उत्तम प्रकारसे शिक्षित और वेगसे जानेवाले घोड़े हैं, जो तुझे बहुत शीघ्र ढोकर ले जाते हैं, उन घोड़ोंको तू अपने रथमें जोड़कर शीघ्र आ ।

यह घोड़ोंका वर्णन आलंकारिक है, यहां घोड़ोंका तात्पर्य अग्नि की किरणोंसे है, क्योंकि यह अग्नि घोड़ोंवाले रथमें बैठकर कहीं जाता नहीं ।

शरीर रूपी रथमें बैठकर आत्मा-रूपी अग्नि इस पृथ्वी पर उतरती है, और इस रथमें सब देव अंश रूपसे आकर बैठते हैं । यह वर्णन बिल्कुल ठीक है । इसके सम्बन्धमें आगे विस्तारसे कहेंगे ।

इस प्रकार अग्नि के रथके घोड़ोंका वर्णन आलंकारिक है ।

### संरक्षण

अग्नि अपने भक्तोंका संरक्षण करनेके लिए युद्ध करता है, यह स्पष्ट है । अपने भक्तोंके शत्रुओंको दूर करने और उनको सुरक्षित रखनेके अतिरिक्त उसका और कोई उद्देश्य नहीं है । भक्तगण इसको अपनी दृष्टिमें रखकर अपनी शक्ति बढ़ावें और निर्भय होकर रहें ।

त्वं प्राता सप्रथाः ( ४२ )- हे अग्ने ! तू हमारा संरक्षण करनेवाला प्रसिद्ध है ।

अग्ना वरेण्यं अयः-यामि-वेदमंत्रोंकी सहायतासे मैं उत्तम संरक्षण प्राप्त करता हूँ । वेदमंत्रोंमें जैसे कहा है, उसके अनुसार सभी अपना बल स्वयं बढ़ावें, सब अपना संरक्षण स्वयं करें । यही 'वरेण्यं अयः' श्रेष्ठ संरक्षण है ।

शीर-शोचिषं अग्निं अयसे गाथाभिः इडिष्व ( ४९ ) विशेष तेजस्वी अग्नि की अपने संरक्षणके लिए वेदमंत्रोंसे स्तुति करो । इन वेदमंत्रोंकी स्तुति करते हुए अग्नि के गुण कौनसे हैं, यह देखो, उन्हें अपने अन्दर धारण करो, इस प्रकारकी उत्तम बुद्धि उपासक की हो, वह अपने संरक्षणके लिए प्रयत्न करे और श्रेष्ठ बने ।

अग्ने ! नः ऊतये ऊर्ध्वः सुतिष्ठ ( ५० )-हे अग्ने ! हमारे संरक्षणके लिए खड़ा रह । ( अग्नेः ऊर्ध्व-ज्वलनं ) अग्नि की ज्वालायें हमेशा ऊपर ही जाती हैं पानी हमेशा नीचेकी ओर बहता है, पर अग्नि कभी भी नीचेकी ओर नहीं जलती, उसकी ज्वालायें सर्वदा खड़ी रहती हैं । हमेशा स्थिर और खड़ा रहना वीरताका लक्षण है । 'सर्वं कायशिरोऽग्निं धारयन् अचलं स्थिरः' ( गीता ) अपने शरीर, गर्दन और सिरको सीधा रखकर खड़े रहें, बैठें और चलें, यह वीरताका द्योतक है, और यह दीर्घायुका कारण होता है ।

त्वं यस्य सख्यं आविथ, स तव सुवीराभिः वाज कर्मभिः ऊतिभिः प्रतरति-जो तुझसे मित्रता करता है, वह तेरे उत्तम, वीरतायुक्त, बलसे युक्त संरक्षकोंके कारण दुःखोंसे पार हो जाता है ।

वयं तव सख्ये मा रिषाम ( ६६ )- हम तेरी मित्रतामें नष्ट न हों ।

विश्वाः माया अवसि ( १५ )- शत्रुओंके सब कपट जालोंको दूर करता हुआ तू हमारा संरक्षण करता है ।

मातिः अदितिः ऊत्या दिवा नः आ गमत्, सा शंतातिः भयः करत् ( मं. १०२ )- दीनतासे रहित होकर, मनन शक्ति और संरक्षण शक्तिके साथ दिन आज हमारे पास आया है, उसने हमारे लिए सुख और शान्तिका निर्माण किया है ।

यह संरक्षणकी शक्ति है । 'अ-दिति' का अर्थ है 'अ-दीनता' अपनी बुद्धि कभी भी दीनताकी भावनासे युक्त नहीं करनी चाहिए । अपनेमें कभी दीनताकी भावना ( Inferiority Complex ) नहीं आने देनी चाहिए । उस दीनतासे रहित होकर मनुष्य सर्वदा उत्साहसे युक्त रहे । संरक्षण शक्ति दीनताके साथ कभी रही नहीं सकती । अदीनता और संरक्षण शक्तिकी जोड़ी रहती है । वह दीनता रहित संरक्षणका सामर्थ्य हमें आज प्राप्त हुआ है । दिनमें हम उद्योग धन्धोंमें संलग्न रहते हैं, उस समय उत्साहयुक्त संरक्षण शक्ति हमारे पास जागृत रहती है, इस प्रकारकी उत्साहयुक्त संरक्षणकी शक्ति हमारा संरक्षण करती है । 'मातिः-अदितिः-ऊतिः' बुद्धि, अदीनता और संरक्षण शक्ति ये तीनों ही मनुष्यकी उन्नति करनेवाले होते हैं ।

### धनकी प्राप्ति

मनुष्योंको धनकी आवश्यकता रहती है । प्रत्येक कार्यमें धनकी जरूरत होती है । अग्नि इस धनको देनेवाला है । इस लिए उसे 'द्रविण-स्युः' ( ४ )- कहा है । इससे उपासक धन मांगते हैं ।

अस्यभ्यं महे ऊतये विवस्वत् आ भर ( १० )- हमारे महान् संरक्षणके लिए हमें भरपूर धन दे ।

नः रयिं वंसते ( २२ )- वह अग्नि हमें धन देता है ।

दाशुषे रत्नानि दधत् ( ३० )- वह दानशील मनुष्यको रत्न देता है ।

उषसः विवस्वत् चित्रं राधः दाशुषे आ वह ( ४० )- उषः कालमें तेजस्वी और अद्भुत धन दाताको दे ।



वसो ! त्वं चित्रः । ऊत्या राधांसि नः चोद  
( ४१ )- हे सबको बसानेवाले ! तू विलक्षण सामर्थ्यवाला है ।  
हमारे संरक्षणके साथ अनेक प्रकारके धनोंको हमारे पास भेज ।

त्वं अस्य रायः रथीः आसि ( ४१ )- तू इस धनका  
रथी है, इस धनका लानेवाला है ।

हे पावक ! नः शंस्यं वयोवृधं रथिं रास्व ( ४३ )-  
हे पवित्रता करनेवाले अग्नि देव ! हमें प्रशंसनीय, आयु बढ़ाने-  
वाला अथवा यशको बढ़ानेवाला धन दे ।

सुनीता पुरुषं सुयशस्तरं नः रास्व ( ४३ )-  
उत्तम मार्गसे, उत्तम प्रशंसनीय तथा यशको बढ़ानेवाला धन  
हमें दे ।

विश्वा वसु दीयते ( ४४ )- वह सब तरहके धन  
देता है ।

भुतं अग्निं नरः सुदीतये छर्धिः ( ४९ )- इस सुप्र-  
सिद्ध अग्निसे लोग प्रकाश युक्त घर भांगते हैं ।

यः मर्तः राये निनीषते ( ५८ )- जो मनुष्य धनके  
लिए तेरी उपासना करते हैं ।

अयं अग्निः सौभाग्यं राय ईशे ( ६० )- यह अग्नि  
उत्तम ऐश्वर्य और धनका स्वामी है ।

स्वपत्यस्य गोमतः ईशे ( ६१ )- उत्तम सन्तान और  
गौवोंका स्वामी है ।

वार्यं योक्षे यासि च ( ६१ )- स्वीकार करने योग्य  
धन देते हो और स्वयं भी प्राप्त करते हो ।

ते भद्रा रार्तिः इह अस्तु ( ७५ )- तेरे कल्याण करने-  
वाले धन हमें यहां मिलें ।

विधत्ते ते वयांसि वसुनि यन्ता तनूपा भवतु  
( ७७ )- तू अपने उपासकों को अन्न और धन देनेवाला और  
उसके शरीरका अच्छी प्रकार संरक्षण करनेवाला हो ।

ओजिष्ठं धुम्नं अस्मभ्यं आभर ( ८१ )- बल बढ़ा-  
नेवाले तेजस्वी धन हमें भरपूर दे ।

वृहद्वर्चं त्वत् महिषी रयिः त्वद् वाजा उदीरते  
( ८५ )- बहुत सारा धन हमें दे । तुझसे बहुत सारा धन  
और अन्न हमें मिले ।

त्वा महे राये समिधीमहि ( ९३ )- अधिक धन  
प्राप्त करनेके लिए हम तेरी स्तुति करते हैं ।

अस्मे महि भवः देहि ( ९९ )- हमें बहुतसा यशस्वी  
धन दे ।

भद्रा रार्तिः ( १११ )- तेरे धन कल्याण करनेवाले हैं ।  
तत् धुम्नं आभर ( ११३ )- उन्न तेजस्वी धनको  
हमें दे ।

अयं ध्रुवः रयीणां आचिकेतत् ( १०१ )- यह अचल  
अग्नि धनोंको जानता है, धन कैसे प्राप्त होता है, यह जानता  
है ।

धनके लिए मनुष्य अग्निकी उपासना करते हैं, क्योंकि धन  
प्राप्तिके उत्तम मार्गको वह जानता है ।

### वडवाग्नि

वडवाग्निका वर्णन जो इस आग्नेय काण्डमें है, वह इस  
प्रकार है ।

समुद्रवाससं अग्निं आहुवे ( १८ )- समुद्रके-अन्दर  
निवास-करनेवाले अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ । समुद्रमें वडवाग्नि  
रहती है ।

### सूर्य और अग्निः

सूर्य ग्लोकमें रहता है । उसका आग्नेय रूप है, उसका  
वर्णन सामवेदके इस अग्नि काण्डमें इस प्रकार है—

परो दिवि यद् दध्यते, आदित् प्रतनस्य मेतसः  
वासरं ज्योतिः पश्यन्ति ( २० )- ग्लोकमें जो चमक है,  
वह प्राचीन वीर्यका तेज प्रकाशित होता है, उसे मनुष्य देखते  
हैं । सूर्यके उदय होनेपर जो सूर्यका तेज चमकता है, वह  
महान् तेज है, उसीको सब मनुष्य आकाशमें देखते हैं ।

विश्वाय सूर्यं दशे केतवः जातवेदसं देवं उग्र-  
हन्ति ( ३१ )- सभीको सूर्यका दर्शन हो, इसलिए प्रकाशके  
किरणें ज्ञानी देवकी-सूर्य रूपी अग्निकी-आकाशमें धारण करती  
हैं ।

यह आकाशमें दीखनेवाला सूर्य अग्निका ही रूप है ।

### अग्निमन्थन

यज्ञमें जिस अग्निका प्रयोग होता है, वह दो अरणियोंके  
मन्थनसे उत्पन्न होती है । और उसीका प्रयोग किया जाता है ।  
नीचिकी और ऊपरकी इस प्रकार दो अरणियां होती हैं । उन  
दोनोंको मथ करके यह अग्नि उत्पन्न की जाती है, और उसका  
यज्ञ कुण्डमें स्थापन किया जाता है, फिर उसमें हवनके योग्य  
पदार्थकी आहुतियां दी जाती हैं । इस क्रियाका वर्णन इस  
आग्नेय काण्डमें इस प्रकार है ।

अथर्वा त्वां विश्वस्य वाघतः मूर्धः पुष्करात् निर-  
मन्थत ( ९ )- अथर्वाने तुल्ल अग्निकी स्तुति करनेवाले



सब ऋत्विजोंके समूहमें शिरस्थानीय पुष्करसे मथ करके उत्पन्न किया है। इस पुष्करका अर्थ नीचेकी अरणी है। मथनेसे वहां अग्नि उत्पन्न होती है। अथवा यज्ञका 'ब्रह्मा' होता है, उसके ऋत्विजमें अग्नि मन्थन होता था।

**पुष्कर**— कमल, तलवारकी धार, बाण, हवा, अन्तरिक्ष, पानी, युद्ध, हाथीकी सूँडके आगेका हिस्सा, तालाब, साँप, सूर्य और मेघ।

**वाद्यतः**— यज्ञ कर्ता गण, स्तुति करनेवाले।

**अग्नि देवा जनयन्तः (६७)**— अग्निको देवोंने पैदा किया।

**दिवः सूर्धानं पृथिव्याः अरतिं वैश्वानरं ऋत आजातं अग्नि (६७)**— बुलोकके ऊँचे स्थान और पृथ्वीके नीचे स्थान, इस प्रकार इन दोनों अरणियोंसे यज्ञमें वैश्वानर अग्नि उत्पन्न हुई है।

**नरः दीधितिभिः अरण्योः हस्तच्युतं प्रशस्तं दूरे दृशं गृहपतिं अथव्युं अग्निं जनयन्तः (७२)**— यज्ञ करनेवाले ऋत्विज अरणियोंको मथकर प्रशस्तके योग्य, दूरसे दीखनेवाले, गृहस्वामी रूप, निरन्तर प्रगति करनेवाले, ज्वालाओंसे तेजस्वी दीखनेवाले अग्निको उत्पन्न करते हैं।

हाथोंसे अरणियोंको मथकर अग्निको ऋत्विज लोग यज्ञके लिए उत्पन्न करते हैं।

**जातवेदा अग्निः अरण्योः निहितः दिवे दिवे ईड्यः (७९)**— जातवेदा अग्नि अरणियोंसे उत्पन्न होनेके बाद उसे यज्ञ कुण्डमें स्थापित करते हैं, और प्रतिदिन उसमें हवन किया जाता है।

**अग्निः जनानां समिधा अबोधि (७३)**— अग्नि ऋत्विजोंकी समिधासे प्रज्वलित किया जाता है।

**अयं अग्निः दिवः ककुत्, पृथिव्या सूर्धा पतिः अपां रेतांसि जिन्वति (२७)**— यह अग्नि बुलोकके उच्च भागपर तथा पृथ्वी पर जगत्के उच्च स्थानपर रहनेवाला सभीका पालन करनेवाला है, और यह कर्मोंके बलको प्राप्त करता है।

इस प्रकार नीचे और ऊपरकी अरनियां मथकर अग्नि उत्पन्न की जाती है। जिसको यह पहले मालूम होगा, कि यज्ञमें अरणियोंसे अग्नि कैसे उत्पन्न की जाती है, उसकी समझमें यह सब आ जाएगा।

अब यहाँ अरणिके विषयमें जिससे कुछ ज्ञान हो इसलिए संक्षेपसे उसपर विचार करते हैं।

अग्नि उत्पन्न करनेवाली दो अरनियां होती हैं, एक नीचे होती है और दूसरी ऊपर होती है। दोनोंको घिसनेसे अग्नि उत्पन्न होती है।

**पृथिवी** यह नीचेकी अरणि है, और **'बुलोक'** यह ऊपरकी अरणी है इन दोनों अरणियोंके मथनेसे सूर्य रूपी अग्निकी उत्पत्ति होती है। इन दोनों ही अरणियोंमें गति है।

जब बादल आपसमें टकराते हैं, तब उनसे बिजली रूपी अग्नि पैदा होती है, जिसे हम अपनी भाषामें बिजलीका चमकना कहते हैं।

स्त्री और पुरुष ये दो अरनियां हैं। स्त्री नीचेकी और पुरुष ऊपरकी अरणी है। इन दोनोंके सम्बन्धसे अग्नि रूपी पुत्र उत्पन्न होता है।

विद्या अधारणी है और आचार्य उत्तरारणी है, इनके मन्थनसे 'ज्ञानी तरुण' उत्पन्न होता है। जो ज्ञानाग्निसे प्रकाशित होता है।

इस प्रकार यह अग्नि उत्पन्न होती है। ये सभी वन्दनाके योग्य हैं। इनको सब लोग नमस्कार करते हैं। यज्ञाग्नि सबका प्रतीक है। इस यज्ञाग्निके लिए सब नमन करते हैं, इस विषयमें नीचेके मंत्र भाग देखने योग्य हैं।

### अग्निको नमस्कार

**दिवे दिवे दोषावस्तः धिया नमो भरन्त एमसि (१४)**— प्रति दिन और रात्री बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए हम तेरे पास आते हैं।

**अध्वराणां सम्राजं अग्निं नमोभिः वन्द्ये (१७)**— यज्ञके सम्राट् अग्निकी हम नमस्कारों अथवा अन्नकी आहुतियोंसे वन्दना करते हैं। **नमः**— अन्न, नमन,

**यं कृष्टयः नमस्यन्ति (५४)**— जिस अग्निको मनुष्य नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार अग्निको नमन किया जाता है और उसमें अन्नकी आहुति दी जाती है।

### प्रकाशयुक्त ज्वालायें

अग्नि प्रकाशसे युक्त ज्वालाओंवाला होता है। यज्ञकर्ता इस अग्निको प्रज्वलित करते हैं।

**कण्वे दीद्वे (५४)**— कण्वके आश्रममें यह अग्नि प्रकाशित अथवा प्रज्वलित होता है।

**शश्वते जनाय ज्योतिः (५४)**— लोगोंमें यह निरन्तर रहनेवाली ज्योति प्रकाशित होती है।

**ऋतः जातः उक्षितः (५४)**— यज्ञके लिए प्रथम अग्नि उत्पन्न की जाती है, फिर बादमें वह प्रकाशित होती है।

**मनुः द्वा द्धे (५४)**— मननशील मनुष्य तुझे हमेशा धारण करते हैं।

अग्निके प्रज्वलित होने पर उसे स्थान देकर उसका सत्कार किया जाता है, क्योंकि वह अतिथि होता है। और अतिथिका सत्कार होना ही चाहिए।



## अतिथिका आसन

अध्वरे बर्हिः ( २८ )— यज्ञमें आसन फैलाया हुआ है।  
बर्हिः आसदं इयेथ ( २३ )— आसनपर बैठनेके लिए आ।

यज्ञमें अग्निके समान सब देवोंके लिए इसी प्रकार आसन फैलाकर रख दिए जाते हैं, और देव गण आकर उनपर बैठते हैं।

## वीर पुत्र

यदि वीरः स्यात् मर्त्यः अग्निं इन्धीत ( ८२ )— यदि वीर अर्थात् पुत्र होता है, तो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित करके उसमें हवन करते हैं।

## अग्निकी स्तुति

अग्निर्गोसे अग्नि उत्पन्न होती है। उसे यज्ञ कुण्डमें स्थापित करके उसमें समिधार्थे डालकर प्रदीप्त करते हैं और ऋत्विग्गण उसकी स्तुति करते हैं। इस स्तुतिको 'विषन्त्या' कहते हैं। इस स्तुतिके विषयमें अग्नि काण्डमें इस प्रकार लिखा है—

प्रेष्ठं अतिथिं स्तुषे ( ५ )— मैं इस अग्निकी स्तुति करता हूँ।

इतरा गिरः सु प्रधाणि ( ७ )— मैं अधिक स्तुति करता हूँ।

त्वां गिरा कामये ( ८ )— अपनी वाणिसे तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ।

यजिष्ठं गिरा ऋजसे ( १२ )— तू पूज्य अग्निकी अपनी वाणीसे स्तुति करता है।

विशे विशे यज्ञियाय रुद्राय दृशीकं स्तोम ( १५ )— प्रत्येक मनुष्यके हितके लिए पूजनीय तथा शत्रुओंको रूढ़ करनेवाले अग्निकी स्तुतिके ये सुन्दर स्तोत्र हैं।

कविं सत्यधर्माणं अमीवचातनं देवं उषस्तुहि ( ३२ )— ज्ञानी, सत्यके पालन करनेवाले, और रोगको दूर करनेवाले अग्नि देवकी स्तुति कर।

वयं जातवेदसं अमृतं, प्रियं मित्रं न, प्रशंसिषम ( ३५ )— हम ज्ञानी, अमर अग्निकी, प्रिय मित्रके समान, स्तुति करते हैं।

एना नमसा, ऊर्जोनपातं प्रियं चेतिष्ठं अरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतं अग्निं आहुषे ( ४५ )— नम्रतासे बलको क्षीण न करनेवाले, प्रिय और ज्ञानको देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम यज्ञ करनेवाले, विश्वके दूत अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ।

यं अग्नये इन्धीते, देवयतीनां पुरुणां विशां यज्ञं

स्तुक्तेभिः वचोभिः वृणीमहे ( ५९ )— जिसे दूसरे ऋत्विज प्रज्वलित करते हैं, उस सब देवत्वको प्राप्त करनेवाले प्रजाओंके प्रिय अग्निकी हम तूत्कीसे और भाषणोंसे स्तुति करते हैं।

अर्हते जातवेदसे हमें स्तोम, रथं इव, मनीषया सं महेम ( ६६ ) पूज्य अग्निके लिए ये स्तोत्र, रथके समान, अपनी बुद्धिसे भाक्ति पूर्वक कहते हैं।

सुष्टुतयः गिरः त्वा वाजयन्ति ( ६८ )— उत्तम स्तुतिके वचनोंसे तेरा वर्णन करते हैं।

प्रशस्तं सम्राजं प्रस्तौतु ( ७८ )— प्रशंसित सम्राट् अग्निकी स्तुति करो।

पुरुप्रियः विशः अतिथिः अग्निः प्रातः स्तवेत ( ८५ )— सबोंके प्रिय, और प्रजाओंके लिए अतिथिके समान पूज्य, अग्निकी प्रातःकाल स्तुति करनी चाहिए।

वः दुर्यं शूषस्य मन्मभिः वचः स्तुषे ( ८७ )— अपने घरमें रहनेवाले अग्निकी उत्तम सुखकारक स्तोत्रोंसे और भाषणोंसे मैं स्तुति करता हूँ।

विषां ज्योतीषि बिभ्रते वेधसे अग्नये वृद्धत् पूर्यं वचः प्र भरत ( ९८ )— ज्ञानियोंकी उद्येतिको धारण करनेवाले तथा यज्ञ करनेवाले अग्निके लिए, महान् और अद्भुत स्तोत्र कहो।

प्रतीव्यां इडिष्व ( १०३ )— शत्रुका प्रतीकार करनेवाले अग्निकी स्तुति कर।

मंहिष्ठाय ऋतान्ने वृद्धते शुक्रशोचिषे अग्नये प्रगाथत ( १०७ )— महान्, यज्ञ करनेवाले, बड़े, शुद्ध प्रकाशवाले, अग्निके लिए स्तोत्रोंका गान कर।

यजिष्ठं देवत्रा देवं अमर्त्यं होतारं यज्ञस्य सुकतुं त्वा वचमहे ( ११२ )— यज्ञ करनेवाले, देवोंमें रहनेवाले, अमर होता, यज्ञके कर्म उत्तम रीतिसे करनेवाले तुझ अग्नि देवकी मैं स्तुति करता हूँ।

इस प्रकार अग्निकी स्तुतिकी वर्णन करनेवाले मंत्र इस अग्नि काण्डमें हैं। व्यक्ति रूपमें और सामूहिक रूपमें इस प्रकार अग्निकी स्तुति की जाती है।

## अग्नि दूत

इसमें जिसका भी हवन किया जाता है, उसे ठीक स्थानपर पहुंचानेका काम अग्नि करता है, इस प्रकार यह अग्नि उत्तम दूत है—

दूतं अग्निं वृणीमहे ( ३ )— इस दूतका कार्य करनेवाले अग्निकी हम स्वीकार करते हैं।

विश्ववेदसं अमर्त्यं दूतं ( १२ )— यह अग्नि सबको जाननेवाला और अमर दूत है।



इसमें जो कुछ भां डाला जाता है, उसे यह जहां पहुंचाना होता है, पहुंचा देता है । इस कारण अग्निमें किया हुआ हवन अनेक प्रकारसे उपयोगी होता है । व्यक्ति और समाज दोनों का लाभ इस प्रकार हो सकता है । यज्ञसे यही लाभ होता है ।

### यज्ञ

यज्ञाग्निमें अनेक पदार्थोंके हवन किए जाते हैं, यह सभीको मालूम है । ऋतुओंके संधि कालमें रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंके नाशके लिए यज्ञ किया जाता है । ऐसा गोपथ ब्राह्मणमें कहा है । आरोग्य बढ़ानेके लिए यज्ञ किए जाते हैं । इस यज्ञके विषयमें इस काण्डमें इस प्रकार कहा है—

१ अध्वराणां न-सा ( २१ )- अहिंसापूर्ण कर्मों करनेवाला । न-सा-न गिरानेवाला, उन्नत करनेवाला, रहित कर्मोंको उन्नत करनेवाला ।

२ नः यज्ञं देवाः नर्यं पंक्तिराधसं वीरं अच्छ नयन्तु ( ५६ )- हमारे यज्ञमें सब देव, मानवोंका हित करनेवाले, मनुष्योंका यज्ञ बढ़ानेवाले वीर अग्निको यहां लावें ।

३ त्वं गृहपतिः, नः अध्वरे त्वं होता, पोता प्रचेताः ( ६१ )- तू घरका स्वामी है, हमारे यज्ञमें तू देवोंको बुलाकर लानेवाला, पवित्रता करनेवाला और उत्तम प्रकारसे चेतना देनेवाला है ।

४ शिशोः तरुणस्य वक्षथः चित्रः यः घातवे मातरौ अपि न एति ( ६४ )- इस तरुण अग्निरूप बालकका विचित्र जीवन कम है । यह अपने पोषणके लिए अपनी माता-अरणी-के पास जाता तक नहीं है ।

५ माहि दूत्यं चरन् ववक्ष ( ६५ )- उत्पन्न होनेके बाद ही महान् दूतके कामको करते हुए हवि देवोंको पहुंचाता है ।

इस प्रकार यह यज्ञ करनेवाला है । इस अग्निमें हवन किया जाता है । उस विषयक मंत्र इस प्रकार हैं—

### हवन

यज्ञोंमें हवन मुख्य है । हवन करनेके पहले अग्निकी स्तुति की जाती है । इन स्तुति-मंत्रोंके प्रारम्भ होनेपर अग्नि प्रज्वलित की जाती है, फिर बादमें उसमें हवन किया जाता है । इसका वर्णन इस काण्डमें इस प्रकार है—

१ धीतये हव्यदातये गृणानः आयाहि ( १ )- हवि अक्षय तथा देवोंको हवि पहुंचानेके लिए तुझे अग्निकी स्तुति की जाती है, तू हमारे पास आ ।

२ विश्वेषां यज्ञानां होता ( २ )- सब यज्ञोंमें तू होता बनता है ।

३ देवोभिः मानुषे जने हितः ( २ )- देवोंद्वारा मनुष्योंमें यह अग्नि स्थापित की जाती है ।

५ ( साम. हिंदी )

४ सामिद्धः शुक्रः आहुतः ( ४ )- प्रज्वलित करके शुद्ध अग्निमें आहुति दी जाती है ।

५ हव्यवाहः ( १२ )- हवि जहां पहुंचानी होती है वहां पहुंचाता है ।

६ मनसा अग्निं इन्धानो मर्त्यः धियं सचेत ( १५ )- मन लगाकर अग्निकी जलानेवाला मनुष्य अपनी श्रद्धा बढ़ाता है ।

७ स्वाहुतः सूरयः ते प्रियासः सन्तु ( ३८ )- उत्तम आहुति देनेवाले ज्ञानी तुझे प्रिय होते हैं ।

८ हे दीदिषः ! त्वा समिधानं वेधसः विप्रासः अविवासन्ति ( ४२ )- हे प्रकाशमान अग्ने ! तुझे प्रदीप्त करके ज्ञानी विप्र तेरी सेवा करते हैं ।

९ भद्रः अध्वरः ( १११ )- यज्ञ कल्याण करनेवाला है ।

१० मर्तासः त्वा समिन्धते ( ४६ )- मनुष्य तुझे उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करते हैं ।

११ अग्ने ! बृहतः रोचनात् अधि अया तन्वा वर्धस्व ( ५२ )- हे अग्ने ! दुलोक पर इस तेजस्वी शरीरको बढ़ा ।

१२ हे सुक्रतो ! गिरा मम जाता पृण ( ५२ )- हे उत्तम कर्म करनेवाले अग्ने ! अपनी वाणीसे मेरे पुत्र, पौत्रोंका पोषण कर ।

१३ पूर्णा आसिचं विवष्टु ( ५५ )- पूर्ण भरे हुए सुचाके इस अर्पणको स्वीकार कर ।

१४ उत् सिचध्वं, उप पृणध्वं, आदित् देवः वः ओहते ( ५५ )- भर करके आहुति दो, फिर भरकर आहुति दो, इस प्रकार करनेसे अग्नि देव तुम्हें उन्नत करेंगे ।

१५ हविषा आ जुहोतन ( ६३ )- हवि द्रव्योंका हवन करो ।

१६ इडः पदे पस्त्यानां रातहव्यं नमसा समर्पय ( ६३ )- पृथ्वी पर यज्ञ स्थानमें यज्ञमें हवि देनेवालेको नमस्कार करो ।

१७ अमर्त्ये विश्वे मर्तासः हव्यं इन्धते ( ८५ )- अमर अग्निमें सब यज्ञ करनेवाले मनुष्य हवनीय पदार्थोंका हवन करते हैं ।

१८ भानवे अग्ने बृहद्वयः ( ८८ )- तेजस्वी अग्निमें बहुतसे अर्णोंका हवन किया जाता है ।

१९ हव्य-दातये अग्नेये द्वाश ( १०४ )- हव्य पदार्थोंका जिसमें हवन किया जाता है, उस अग्निको अर्पण करो ।

२० स्वर्नरं तं गूर्धय ( १०९ )- स्वर्गको हवि पहुंचानेवाले अग्निकी स्तुति कर ।



२१ देवत्रा हव्यं आ ऊहिषे ( १०९ )— तू देवोंको हवि पहुँचाता है ।

२२ सु-होता स्व-ध्वरः पुरु प्रशस्तः वसुः ( ११० )— जिसमें उत्तम हवन किया जाता है, जिसमें उत्तम यज्ञ होता है, ऐसा यह अग्नि बहुतेरे प्रशंसित और सबको बसानेवाला है ।

२३ आहुतः अग्निः नः भद्रः ( १११ )— जिसमें हवन होता है ऐशा वह अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला है ।

इन् हवन मंत्रोंका उत्तम रीतिसे विचार हो गया, अर्थात् यज्ञ अथवा यज्ञाग्नि हमारा ( भद्रः ) कल्याण करनेवाली किस प्रकार है, यह समझमें आ गया होगा ।

सर्व प्रथम अग्निको अरणियोंको घिसकर उत्पन्न किया जाता है, उसे कुण्डमें स्थापित कर उसमें समिधा तथा घीकी आहुति देकर उसे जलाया जाता है । अग्नि जल करके आसपासकी हवाको गर्म कर देती है । वह गरम हवा ऊपर चली जाती है, और वहाँ चारों ओरकी हवा आ जाती है । यह क्रिया अग्निके जलते रहने तक रहती है । यज्ञ जबतक चालू रहता है, तबतक पासकी हवा गरम होकर ऊपर जाती है, और दूसरी हवा उसका स्थान ले लेती है । हवा शुद्ध होनेका यह एक लाभ यज्ञसे होता है ।

पहले हर घरमें हवन होता था । समझो, यदि एक घंटा भर भी घरकी अग्नि जलती रही, तो घरकी हवाके ऊपर जाने और बाहरकी हवाके अन्दर आनेसे घरकी हवा शुद्ध हो जाती थी । प्रत्येक घरमें अग्नि जलानेसे प्रत्येक घरकी यह हवा-पलटनेकी क्रि । समझमें आ जाएगी ।

पहले हर चौराहे अथवा शहरके मध्यमें बड़ी बड़ी यज्ञ-शालायें होती थीं । उनमें बड़े बड़े यज्ञ होते थे । उससे वहाँकी बुरी हवाके ऊपर जाने तथा बाहरकी शुद्ध हवाके वहाँ आनेकी क्रिया चलती रहती थी । इस प्रकार यज्ञाग्निके रहनेसे वायु-परिवर्तन होता था, और वह लाभदायक था ।

यज्ञमें केवल अग्नि ही नहीं जलायी जाती, अपितु उसमें गायका घी आहुतिके रूपमें डाला जाता है । यह गायका घी अग्निके जलता है और उसकी सुगंध हवामें फैलती है, और उससे हवामें रहनेवाले रोगके कीटाणु नष्ट होते हैं । गायके घीमें हवामें रहनेवाले रोगके कीटाणुओंको नष्ट करनेका उत्तम गुण है । यज्ञाग्नि इस प्रकार वायुको रोगाणुओंसे रहित करने वाला है ।

इसके अलावा यज्ञमें ऋतुओंके अनुसार हवनीय द्रव्य भी डाले जाते हैं । जिस ऋतुमें हवाके बदलनेसे जिन रोगोंका होना सम्भव है, उन रोगोंको नष्ट करनेवाली वनस्पतियोंके अथवा उन वनस्पतियोंके काँडेसे तैयार किए गए गायके घीका

हवन किया जाता है और इस प्रकार यज्ञाग्नि रोग दूर करने-वाली और आरोग्य बढानेवाली है ।

ऋतु संधिषु वै व्याधिर्जायते ।

ऋतु संधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ॥ गोपथ ब्राह्मण ।

ऋतुओंके संधिकालमें रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंको नष्ट करनेके लिए यज्ञ किये जाते हैं । यह गोपथ ब्राह्मणका यह कथन इस प्रसंगमें देखने योग्य है । इस प्रकार यज्ञ शास्त्रीय दृष्टिसे बहुत महत्वका है । यह व्यक्ति और समाजका आरोग्य बढानेवाला है ।

ऊपर यज्ञ-विषयक और हवन-विषयक मंत्रोंमें ' यह अग्नि हमारा सबसे उत्तम कल्याण करनेवाला है ' यह जो वर्णन है, यह केवल स्तुतिकी दृष्टिसे ही नहीं बल्कि शास्त्रीय दृष्टिसे भी सत्य है । यह बात पाठकोंको ध्यानमें रखनी चाहिए ।

इस दृष्टिसे कौनसे रोगमें कौनसी वनस्पतियोंका हवन लाभदायक होगा, इसकी शास्त्रीय दृष्टिसे खोज करके तथा अनुभव करके निश्चित करना चाहिए । अतः वैद्यों और संशोधकोंको चाहिए कि वे इस दिशामें खोज करें ।

इसके अलावा यज्ञ करनेवाले यजमानोंकी, ऋत्विजोंकी जो शुभेच्छा और सद्भावना इसके पीछे है, तथा मंत्रोच्चारणसे जो पवित्रता मिलती-है, वह अत्यधिक होती है । उसको किसी भी मापसे मापा नहीं जा सकता ।

इस प्रकार यज्ञ और उसके अन्दर हवन करना कल्याणकारी है । इसलिए यज्ञ कर सकनेवाले लोगोंको इस तरफ ध्यान देना चाहिए ।

### उपमा

१ मित्रं हृष प्रियं ( ५ )— प्रिय मित्रके समान ( अतिथि अग्निकी स्तुति कर । ) ( मं. ३५ )

२ रथं न वेद्यं ( ५ )— जैसे धन देनेवाले रथकी स्तुति की जाती है ( उसी प्रकार अग्निकी स्तुति की जाती है ) ।

३ वारवन्तं अश्वं न ( १७ )— उत्तम अयाल ( गर्दनके बाल ) से युक्त घोड़ेके समान ( जो ज्वालाओंसे युक्त है उस अग्निके में नमस्कार करता हूँ ) यहाँ घोड़ेके अयाल और अग्निकी ज्वालाओंकी समानता देखने योग्य है ।

४ मधोः प्रथमानि पात्रा न ( ४४ )— जैसे मधु ( सोमरस ) के सबसे प्रथम दिए जानेवाले पात्र होते हैं ( उसी प्रकार अग्निकी सबसे पहले स्तुति की जाती है ) ।

५ सविता देवः न ( ५७ )— सूर्यके समान ( ऊँचे स्थान पर रहकर अन्नका दान करनेवाला यह अग्नि है )

६ रथं इव ( ६६ )— रथके समान ( बुद्धिपूर्वक स्तोत्र कर )

७ पर्वतस्य पृष्ठात् अपः न ( ६८ )— जिस प्रकार



पर्वतसे जल बहते हैं, ( उसी प्रकार अग्निके लिए स्तोत्र कहे जाते हैं )

८ अश्वा आर्जि न जिग्युः ( ६८ )- जिस प्रकार घोड़े जीतते हैं ( उसी प्रकार तेरी स्तुति तेरा वर्णन करके यशस्वी होती है )

९ घेनुं इव ( ७३ )- गायके समान ( अग्नि सबेरे प्रज्वलित होती है )

१० यद्वा इव प्र वयां उज्जिहानाः ( ७३ )- बड़ा वृक्ष जैसे अपनी शाखाओंको फैलाता है, ( उस प्रकार अग्नि अपनी ज्वालाओंको फैलाता है ) ।

११ द्यौः इव असि ( ७५ )- बुलोकके समान ( अग्नि प्रकाशित होता है )

१२ गर्भिणीभिः सु-भृतः गर्भ इव ( ७९ )- गर्भिणी स्त्रियां जिस प्रकार गर्भ धारण करती हैं ( उस प्रकार दो अर-णियोंके बीचमें अग्नि रहती है ) ।

१३ सूरः न ( ८३ )- सूर्यके समान ( अपने तेजसे अग्नि प्रकाशित होता है )

१४ मित्रः न ( ८४ )- सूर्यके समान ( अग्नि यशको प्राप्त करता है )

१५ मित्रं न ( ९९ )- मित्रके समान ( अग्निको आगे स्थापित करते हैं )

१६ नेभिः चक्रं न ( ९४ )- जैसे ( रथकी ) नाभि चक्रको धारण करती है, उसी प्रकार ( सब स्तोत्र अग्निके आश्र-यसे रहते हैं )

१७ महस्य तोदस्य शरण इव ( ९७ )- बड़े धनवा-नके सेवकके समान ( मैं अग्निका सेवक हूँ )

ये उपमायें आग्नेय-काण्डमें आई हैं । इनमें ' न ' यह शब्द उपमार्थक है, और ' इव ' ( समान ) के समान उसका अर्थ होता है ।

### आग्नेय काण्डके सुभाषित

१ समिद्धः शुक्रः वृत्राणि जंघनत् ( ४ )- प्रज्वलित हुआ अग्नि वृत्रोंको मारता है । वृत्र- दोष, रोगोंको पैदा करने वाले कीटाणु ।

२ हे अग्ने विश्वस्य अरातेः, उत द्विषः मर्त्यस्य महोभिः नः पाहि ( ६ )- हे अग्ने ! सब शत्रुओं और द्वेष करनेवाले मनुष्योंसे अपने महान् सामर्थ्यसे हमारा संरक्षण कर ।

३ अथर्वा त्वां निरमन्थत् ( ९ )- अथर्वाने तुझे मथ करके उत्पन्न किया ।

४ अस्मभ्यं महे ऊतये विवस्वत् आ भर ( १० )- हमारे उत्तम संरक्षणके लिए निवास करने योग्य घर दे ।

५ नः दशे देवः असि ( १० )- तू हमें मार्ग दिखाने-वाला देव है ।

६ हे अग्ने देव ! कृष्टयः ते ओजसे नमः कृण्वन्ति ( ११ )- मनुष्य तेरे बलके लिए तुझे नमस्कार करते हैं ।

७ अस्मै अमित्रं अर्दयः ( ११ )- इसके लिए तू शत्रुका नाश कर ।

८ विश्ववेदसं अमर्त्य दूतं गिरा क्रंजसे ( १२ )- सर्वज्ञ अथवा सब धनोंके स्वामी, अमर दूत अग्निको अपने अनुकूल बनाता हूँ ।

९ दिवे दिवे दोषावस्ता धिया नमः भरन्तः स्यं त्वा एमसि ( १४ )- प्रति रात्रि और प्रतिदिन बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुए हम तेरे पास आते हैं ।

१० जरा-बोध ! विशे विशे याज्ञियाय दशीकं स्तोमं, तत् विविद्धि ( १५ )- हे स्तुतसे ज्ञात होनेवाले अग्ने ! प्रत्येक प्रजाजनके हितके लिए पूज्य और शत्रुको रूखनेवाले अग्निके लिए ये स्तोत्र पढ़े जाते हैं, उन्हें तू जान ।

११ अग्निः तिग्मेन तेजसा विश्वं अत्रिणं नि यंसत् ( २२ )- अग्नि अपने तीक्ष्ण तेजसे सब खोऊ शत्रुओंको नष्ट करता है । अत्रि- खाऊ, रोगोत्पादक कीटाणु ।

१२ नः रयिं वंसते ( २२ )- अग्नि हमें धन देता है ।

१३ हे अग्ने ! मृड ( २३ )- हे अग्ने ! हमें सुखी कर ।

१४ महान् असि ( २३ )- तू महान् है ।

१५ देवयुं जनं आ अयः ( २३ )- ईश्वरकी उपासना करनेवाले मनुष्यके पास उसकी सहायताके लिए जा ।

१६ अग्ने ! नः अंहसः शीघ्रतः रक्ष ( २४ )- हे अग्ने ! हमारा पापी और हिंसक शत्रुओंसे संरक्षण कर ।

१७ अजरः प्रतिष्ठैः प्रतिदह ( २४ )- बुढ़ापेसे रहित तू अपनी ज्वालाओंसे शत्रुको जला दे ।

१८ नक्ष्य विशपते अग्ने ! वयं शुमन्त सु वीरं धीमहि ( २६ )- हे शरणमें जाने योग्य, गुजापालक अग्ने ! हम तेजस्वी तथा उत्तम वीर तेरा ध्यान करते हैं ।

१९ वाजपतिः कविः दाशुषे रत्नानि दधत् ( ३० )- अजका स्वामी और ज्ञानी यह अग्नि दानशील मनुष्यको रत्न देता है ।

२० अश्वरे सत्यधर्माणं कविं अग्निं उप स्तुहि ( ३२ )- हिंसा रहित यज्ञमें सत्य धर्मका प्रचार करनेवाले अग्निकी स्तुति करो ।

२१ देवं अमीव-चातनं ( ३२ )- यह अग्नि देव रोग दूर करता है ।



२२ नः पीतये शं (३३)- पानी पीनेके लिए कल्याणकारी हो ।

२३ नः शंयोः अभिस्त्रवन्तु (३३)- हे जलो ! हमें शान्ति और सुख दो ।

२४ वयं जातवेदसं अमृतं प्रशंसिषम् (३५)- हम सर्वज्ञ और अमर अग्निकी प्रशंसा करते हैं ।

२५ बृहद्भिः अर्चिभिः शुक्रेण शोचिषा दीदिहि (३७)- बड़ी ज्वालाओं और शुद्ध तेजसे प्रकाशित हो ।

२६ विष्पतिः रक्षसः तपानः (३९)- तू प्रजाओंका पालक और राक्षसोंको सन्ताप देनेवाला है ।

२७ हे जातवेद ! त्वं अद्य उषर्वुधः देवान् आ वह (४०)- हे ज्ञानी अग्ने ! तू आज सवेरे उठनेवाले देवोंको ले आ ।

२८ त्वं चित्रः, ऊत्या राधांसि नः चोदय (४१)- तू विलक्षण शक्तिवाला है । संरक्षकोंके साथ धनोंको हमारे पास भेज ।

२९ नः तुचे गाधं विदाः (४१)- हमारे सन्तानोंको यश दे ।

३० हे प्रातः ! त्वं स-प्रथाः ऋतः कविः (४२)- हे रक्षक अग्ने ! तू प्रसिद्ध, सत्य और ज्ञानी है ।

३१ हे पावक ! नः शस्यं वयोवृधं रयिं राख (४३)- हे पवित्र करनेवाले अग्ने ! हमें प्रशंसित तथा आयुको बढ़ानेवाला धन दे ।

३२ सुनीतिः, पुरुस्पृहं सुयशस्तरं नः राख (४३)- उत्तम नीतिके मार्गसे मिलनेवाले, बहुतोंद्वारा प्रशंसित, उत्तम यशको बढ़ानेवाले धनको हमें दे ।

३३ यः विश्वा वसु दयते (४४)- जो सब प्रकारके धन देता है ।

३४ आर्यस्य वर्धनं अग्निं नः गिरः नक्षन्तु (४७)- आर्योंका संवर्धन करनेवाले अग्निकी स्तुति हमारी वाणी करती है ।

३५ ऋचा वरेण्यं अबः यामि (४८)- वेदमंत्रोंसे मैं श्रेष्ठ संरक्षण मांगता हूँ ।

३६ धृतं अग्निं नरः सुदीतये छर्दिः (४९)- इस प्रसिद्ध अग्निसे लोग उत्तम प्रकाश युक्त घर मांगते हैं ।

३७ देवाः नर्यं पंक्तिराघसं वीरं अच्छा नयन्तु (५६)- सब देव मानव जातिका हित करनेवाले, समूहको यशस्वी बनानेवाले वीरको सरल और उन्नतिके मार्गसे ले जाते हैं ।

३८ हे अग्ने ! ऊर्ध्वः सुतिष्ठ (५७)- हे अग्ने ! तू ऊँचे स्थान पर रह ।

३९ यः ते दाशात् स उक्थशंसिनं सहस्रपोषिणं

वीरं तमना घत्ते (५८)- जो तुझे हवि देता है, वह स्तौत्र करनेवाले, हजारोंका पोषण करनेवाले वीर पुत्रको स्वयं धारण करता है, जन्म देता है ।

४० अयं अग्निः सुवीर्यस्य सौभगस्य ईशे (६०)- वह अग्नि उत्तम पराक्रम और उत्तम ऐश्वर्यका स्वामी है ।

४१ सु-अपत्यस्य ईशे (६०)- उत्तम सन्तानोंका स्वामी है ।

४२ वृत्र-हथानां ईशे (६०)- धरनेवाले शत्रुओंको मारनेवालोंमें वह सबसे मुख्य वीर है ।

४३ प्रचेताः वार्यं यक्षि (६१)- तू ज्ञानी उत्तम धन देनेवाला है ।

४४ ऊतये सुभगं सुदंससं सु प्रतूर्ति अनोहसं त्वा देवं वधृमहे (६२)- अपने संरक्षणके लिए उत्तम भाग्यवान्, उत्तम कर्म करनेवाले, पापियोंका नाश करनेवाले, पापरहित तुम्हारे देवको हम प्राप्त करते हैं ।

४५ हविषा आ जुहोत, मर्जयध्वं (६३)- हवनीय द्रव्योंसे हवन करो, शुद्धता करो ।

४६ वयं तव सख्ये मा रिषाम (६६)- हम तेरी मित्रतामें नष्ट न होवें ।

४७ अग्निं स्तनयित्नोः पुरा अवसे कृणुध्वं (६९)- पहले अपने संरक्षणके लिए अग्निको बिजलीसे उत्पन्न किया ।

४८ अग्निः उषसां अग्ने अशोचि (७०)- अग्नि उषा कालसे भी पहले प्रज्वलित हुआ ।

४९ नरः अरण्योः हस्तच्युतं गृहपतिं अग्निं जनयन्त (७२)- मनुष्य अरणियोंको एक दूसरेके ऊपर रखकर हाथोंसे मथकर घरके स्वामी अग्निको उत्पन्न करते हैं ।

५० विश्वाः मायाः अवसि (७५)- सब प्रजाओंकी रक्षा करता है ।

५१ ते रातिः भद्रा (७५)- तेरे दान कल्याण करनेवाले हैं ।

५२ नः सूनुः तनयः स्यात्, ते सुमतिः अस्मे विजाघा भूतु (७६)- हमारे पुत्र पौत्र होवें, यह तुम्हारी इच्छा हमारे लिए सफल होवे ।

५३ सनात् यातुधानान् मृणासि (८०)- सदा तू पीड़ा देनेवाले शत्रुओंका नाश करता है ।

५४ त्वा पृतनासु रक्षांसि न जिग्युः (८०)- तुझे युद्धमें राक्षस जीत नहीं सकते ।

५५ सहमूरान् क्रव्यादः अनुदह (८०)- मूल सहित कच्चे मांसको खानेवालोंको जला डाल ।

५६ ते दैव्यायाः हेत्याः मा मुक्षत (८०)- तेरे दिव्य शस्त्रोंसे कोई न छूटे ।

५७ ओजिष्ठं युम्नं अस्मभ्यं आ भर (८१)- बल बढ़ानेवाले तेजस्वी धन हमें भरपूर दे ।



५८ पनीयसे राये नः प्र ( ८१ )- प्रशंसित धन मिलनेका मार्ग हमें बता ।

५९ बाजाय पन्था रात्सि ( ८१ )- भण मिलनेके मार्गको दिखा ।

६० यदि वीरः स्यात् मर्त्यः अग्निं इन्धीत ( ८२ )- यदि पुत्र हो तो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित करे ।

६१ अस्मिन् अमर्त्ये विश्वे मर्तासः हव्यं इन्धते ( ८५ )- इस अमर अग्निमें सब मनुष्य हवनीय पदार्थोंका हवन करते हैं ।

६२ वृत्र-हन्तमं ज्येष्ठं मानवं अग्निं अगन्म ( ८९ )- वृत्रको मारनेवाले, श्रेष्ठ मानवोंका हित करनेवाले, अग्निके पास हम जाते हैं ।

६३ हे अग्ने ! हरसा यातुधानस्य बलं विश्वतः परि प्रति शृणीहि ( ९५ )- हे अग्ने ! अपने तेजसे तू पीडा-कष्ट देनेवाले राक्षसोंके बलको सब ओरसे नष्ट कर ।

६४ रक्षसः वीर्यं न्युञ्ज ( ९५ )- राक्षसोंकी शक्ति नष्ट कर ।

६५ मन्द्रः वि आतिस्त्रिधः राजसि ( १०० )- आनन्दित अग्नि शत्रुओंको हटाकर शोभित होता है ।

६६ सा शन्तातिः मयः करत् स्त्रिधः अप ( १०२ )- वह शान्ति और सुख देनेवाला अग्नि हमें सुख देवे और शत्रुओंको दूर करे ।

६७ प्रतीव्यां ईडिष्व ( १०३ )- शत्रुको पराजित करनेवालेकी स्तुति कर ।

६८ अगृभीत-शोचिषं जातवेदसं यजस्व ( १०३ )-

जिसके प्रकाशको कोई भी रोक नहीं सकता ऐसे इस अग्निमें यज्ञ कर ।

६९ तस्य मर्त्यः रिपुः मायया चन ईशीत ( १०४ )- उसपर कोई भी मनुष्य शत्रु कपटसे भी शासन नहीं कर सकता ।

७० त्वं वृजिनं रिपुं, दुराध्यं स्तेनं दधिष्ठं अपास्य ( १०५ )- उस कपटी शत्रु और कठिनतासे वशमें आनेवाले चोरको दूर कर ।

७१ सुगं रुधि ( १०५ )- हमारे मार्गको सुगम कर ।

७२ हे वीर ! मायिनः रक्षसः तपसा नि दह ( १०६ )- हे वीर ! कपटी राक्षसोंको अपनी ज्वालासे जला दे ।

७३ हे अग्ने ! त्वं यस्य सख्यं आविथ, स तव सुवीराभिः ऊतिभिः प्र तरति ( १०८ )- हे अग्ने ! तू जिसका मित्र होता है, वह तेरे उत्तम वीरोंसे युक्त संरक्षणोंसे दुःखोंसे पार हो जाता है ।

७४ अग्निः नः भद्रः ( १११ )- अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला हो ।

७५ तत् शुम्नं आ भर ( ११३ )- उस तेजस्वी धनको हमें भरपूर दे ।

७६ सद्ने कंचिद् अत्रिणं आ सासहा ( ११३ )- हमारे घरमें कोई भी शत्रु हो उसे दूर कर ।

७७ दुह्यं जनस्य मन्युं- बुरा बुद्धिवाले मनुष्योंका क्रोध भी दूर कर ।

७८ सु-प्रीतः मनुषः विशे विश्वा रक्षांसि प्रति-वेधति ( ११४ )- सन्तुष्ट हुआ अग्नि मनुष्यके घरमें सब राक्षसोंको दूर करता है ।

## आग्नेय काण्डके ऋषि और देवताओंकी सूची

( १ )

| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि                   | देवता | छन्दः   |
|--------------|--------------|-----------------------|-------|---------|
| १            | ६।१६।१०      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्नि | गायत्री |
| २            | ६।१६।१       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "     | "       |
| ३            | १।१९।१       | मेधातिथिः काण्वः      | "     | "       |
| ४            | ६।१६।३४      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "     | "       |
| ५            | ८।८४।१       | उशाना काण्वः          | "     | "       |
| ६            | ८।७१।१       | सुदीतिपुरुमीढौ आगिरसौ | "     | "       |
| ७            | ६।१६।१६      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "     | "       |
| ८            | ८।११।७       | वसः काण्वः            | "     | "       |
| ९            | ६।१६।१३      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "     | "       |
| १०           | —            | वामदेवः               | "     | "       |
| ( २ )        |              |                       |       |         |
| ११           | ८।७५।१०      | आयुङ्क्वाहिः          | "     | "       |
| १२           | ४।८।१        | वामदेवो गौतमः         | "     | "       |



| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि                                   | देवता | छन्दः   |
|--------------|--------------|---------------------------------------|-------|---------|
| १३           | ८।१०२।१३     | प्रयोगो भार्गवः                       | "     | गायत्री |
| १४           | १।१।७        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः               | "     | "       |
| १५           | १।२७।१०      | शुनःशेष आजीगर्तिः                     | "     | "       |
| १६           | १।१९।१       | मेघातिथिः काण्वः                      | "     | "       |
| १७           | १।२७।१       | शुनःशेष आजीगर्तिः                     | "     | "       |
| १८           | ८।१०२।४      | प्रयोगो भार्गवः                       | "     | "       |
| १९           | ८।१०२।२२     | प्रयोगो भार्गवः                       | "     | "       |
| २०           | ८।६।३०       | वत्सः काण्वः                          | "     | "       |
| ( ३ )        |              |                                       |       |         |
| २१           | ८।१०२।७      | प्रयोगो भार्गवः                       | "     | "       |
| २२           | ६।१६।२८      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः                 | "     | "       |
| २३           | ४।१।१        | वामदेवो गौतमः                         | "     | "       |
| २४           | ७।१५।१३      | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                  | "     | "       |
| २५           | ६।१६।४३      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः                 | "     | "       |
| २६           | ७।१५।७       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                  | "     | "       |
| २७           | ८।४४।१६      | विरूप आंगिरसः                         | "     | "       |
| २८           | १।२७।४       | शुनःशेष आजीगर्तिः                     | "     | "       |
| २९           | ८।७४।११      | गोपवन आत्रेयः                         | "     | "       |
| ३०           | ४।१५।३       | वामदेवो गौतमः                         | "     | "       |
| ३१           | १।५०।१       | प्रस्कण्वः काण्वः                     | "     | "       |
| ३२           | १।१२।७       | मेघातिथिः काण्वः                      | "     | "       |
| ३३           | १०।९।४       | सिन्धुद्वीप आम्बरोषः त्रित आप्त्यो वा | "     | "       |
| ३४           | ८।८४।७       | उशना काण्वः                           | "     | "       |
| ( ४ )        |              |                                       |       |         |
| ३५           | ६।४८।१       | शंयुर्बार्हस्पत्यः                    | "     | बृहती   |
| ३६           | ८।६०।२       | भर्गः प्रागाथः                        | "     | "       |
| ३७           | ६।४८।७       | शंयुर्बार्हस्पत्यः                    | "     | "       |
| ३८           | ७।१६।७       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                  | "     | "       |
| ३९           | ८।६०।१९      | भर्गः प्रागाथः                        | "     | "       |
| ४०           | १।४४।१       | प्रस्कण्वः काण्वः                     | "     | "       |
| ४१           | ६।४८।१       | शंयुर्बार्हस्पत्यः                    | "     | "       |
| ४२           | ८।६०।५       | भर्गः प्रागाथः                        | "     | "       |
| ४३           | ८।६०।११      | भर्गः प्रागाथः                        | "     | "       |
| ४४           | ८।१०३।६      | सौमरिः काण्वः                         | "     | "       |
| ( ५ )        |              |                                       |       |         |
| ४५           | ७।१६।१       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                  | "     | "       |
| ४६           | ८।६०।१५      | भर्गः प्रागाथः                        | "     | "       |



| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि                       | देवता         | छन्दः                   |
|--------------|--------------|---------------------------|---------------|-------------------------|
| ४७           | ८।१०३।१      | सौभरिः काण्वः             | "             | बृहती                   |
| ४८           | ८।१७।१       | मनुवैवस्वतः               | "             | "                       |
| ४९           | ८।७१।१४      | सुदीतिपुरुमीळावांगिरसौ    | "             | "                       |
| ५०           | १।४४।१३      | प्रस्कण्वः काण्वः         | "             | "                       |
| ५१           | ८।१०३।२      | सौभरिः काण्वः             | "             | "                       |
| ५२           | ८।१।१८       | मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ | इन्द्रः       | "                       |
| ५३           | ३।९।२        | विश्वामित्रो गाथिनः       | अग्निः        | "                       |
| ५४           | १।३६।१९      | कण्वो घोरः                | "             | "                       |
| ( ६ )        |              |                           |               |                         |
| ५५           | ७।१३।११      | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः      | "             | "                       |
| ५६           | १।४०।३       | कण्वो घोरः                | ब्रह्मणस्पतिः | "                       |
| ५७           | १।३६।१३      | कण्वो घोरः                | यूपः          | "                       |
| ५८           | ८।१०३।४      | सौभरिः काण्वः             | अग्निः        | "                       |
| ५९           | १।३६।१       | कण्वो घोरः                | "             | "                       |
| ६०           | ३।१६।१       | उत्कीलः कात्यः            | "             | "                       |
| ६१           | ७।१६।५       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः      | "             | "                       |
| ६२           | ३।९।१        | विश्वामित्रो गाथिनः       | "             | "                       |
| ( ७ )        |              |                           |               |                         |
| ६३           | —            | श्यावाश्वो वामदेवो वा     | "             | त्रिष्टुप्              |
| ६४           | १०।११५।१     | उपस्तुतो वार्हिष्ठ्यः     | "             | जगती                    |
| ६५           | १०।५६।१      | बृहदुक्थो वामदेव्यः       | "             | त्रिष्टुप्              |
| ६६           | १।९४।१       | कुत्स आंगिरसः             | "             | जगती                    |
| ६७           | ६।७।१        | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः     | "             | त्रिष्टुप्              |
| ६८           | ६।९४।६       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः     | "             | "                       |
| ६९           | ४।३।१        | वामदेवो गौतमः             | "             | "                       |
| ७०           | ७।८।१        | वसिष्ठो मैत्रावरुणि       | "             | "                       |
| ७१           | १०।८।१       | त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः      | "             | "                       |
| ७२           | ७।१।१        | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः      | "             | त्रिपाद् विराट् गायत्री |
| ( ८ )        |              |                           |               |                         |
| ७३           | ५।१।१        | बुधगविष्टिरावात्रेयो      | "             | त्रिष्टुप्              |
| ७४           | १०।४६।५      | वत्सप्रिभालिंदनः          | "             | "                       |
| ७५           | ६।५८।१       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः     | पूषा          | "                       |
| ७६           | ३।६।११       | विश्वामित्रो गाथिनः       | अग्निः        | "                       |
| ७७           | १०।४६।१      | वत्सप्रिभालिंदनः          | "             | "                       |
| ७८           | ७।६।१        | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः      | "             | "                       |
| ७९           | ३।२९।२       | विश्वामित्रो गाथिनः       | "             | "                       |
| ८०           | १०।८७।१९     | पायुर्भारद्वाजः           | "             | "                       |



| मंत्र-संख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषि  | देवता       | छन्दः     |
|--------------|--------------|--|-------------|-----------|
|              |              | ( ९ )  |             |           |
| ८१           | ५।१०।१       | गय आत्रेयः   | "           | अनुष्टुप् |
| ८२           | —            | वामदेवः  | "           | "         |
| ८३           | ६।१।६        | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः                                | "           | "         |
| ८४           | ६।१।१        | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः                                | "           | "         |
| ८५           | ५।१८।१       | द्वितो मृक्त्वाहा आत्रेयः                            | "           | "         |
| ८६           | ५।२५।७       | वसूयव आत्रेयाः                                       | "           | "         |
| ८७           | ८।७४।१       | गोपवन आत्रेयः  | "           | "         |
| ८८           | ५।१६।१       | पूरुरात्रेयः   | "           | "         |
| ८९           | ८।७४।४       | गोपवन आत्रेयः  | "           | "         |
| ९०           | —            | वामदेवः कश्यपो वा मारीचो, मनुर्वी<br>वैवस्वतः उभौ वा | "           | "         |
|              |              | ( १० )   |             |           |
| ९१           | १०।१४।३      | अग्निस्तापसः   | विश्वेदेवाः | "         |
| ९२           | —            | वामदेवः कश्यपः असितो देवलो वा                        | अंगिराः     | "         |
| ९३           | —            | "  | अग्निः      | "         |
| ९४           | १।५।३        | सोमाहुतिर्भागवः                                      | "           | "         |
| ९५           | १०।८७।२५     | पायुर्भरद्वाजः                                       | "           | "         |
| ९६           | १।४५।१       | प्रस्कण्वः काण्वः                                    | "           | "         |
|              |              | ( ११ )   |             |           |
| ९७           | १।१५०।१      | दीर्घतमा औचथ्यः                                      | "           | उष्णिक्   |
| ९८           | ३।१०।५       | विश्वामित्रो गायिनः                                  | "           | "         |
| ९९           | १।७९।४       | गोतमो राहुगणः  | "           | "         |
| १००          | ३।१०।७       | विश्वामित्रो गायिनः                                  | "           | "         |
| १०१          | ९।१०२।४      | त्रित आप्त्यः  | पवमानः सोमः | "         |
| १०२          | ८।१८।७       | इरिम्बिठिः काण्वः                                    | अदितिः      | "         |
| १०३          | ८।२३।१       | विश्वमना वैयश्वः                                     | अग्निः      | "         |
| १०४          | ८।२३।१५      | विश्वमना वैयश्वः                                     | "           | "         |
| १०५          | ६।५१।१३      | ऋजिश्वा भारद्वाजः                                    | विश्वेदेवाः | "         |
| १०६          | ८।२३।१४      | विश्वमना वैयश्वः                                     | अग्निः      | "         |
|              |              | ( १२ )   |             |           |
| १०७          | ८।१०३।८      | प्रयोगो भार्गवः                                      | "           | "         |
| १०८          | ८।१९।३०      | सौभरिः काण्वः  | "           | "         |
| १०९          | ८।१९।१       | सौभरिः काण्वः  | "           | "         |
| ११०          | ८।१०३।१२     | प्रयोगो भार्गवः                                      | "           | "         |
| १११          | ८।१९।१९      | सौभरिः काण्वः  | "           | "         |
| ११२          | ८।१९।३       | सौभरिः काण्वः  | "           | "         |
| ११३          | ८।१९।१५      | सौभरिः काण्वः  | "           | "         |
| ११४          | ८।२३।१३      | विश्वमना वैयश्वः                                     | "           | "         |



# अथ ऐन्द्रं काण्डम् ।

## अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

[ ३ ]

( १-१० ) १ शंयुर्बाह्रिस्पत्यः; २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; ३ हर्यतः प्रागाथः; ४, ५ श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षो वा, ५ सुकक्षः ) आंगिरसः; ६ देवजामय इन्द्रमातरः ऋषिकाः; ७, ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; ९, १० मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ३ अग्निर्हवीषि वा ) ॥ गायत्री ॥

११५ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४५।२२ )

११६ यस्ते नूनं शतक्रतावेन्द्रं द्युस्मितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।१६ )

११७ गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।७२।१२; वा. यजु. ३३।१९ )

११८ अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९२।२५ )

११९ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९३।७ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ११५ ] हे स्तुति करनेवाले उपासको ! ( वः सुते ) तुम्हारे सोम तैय्यार करनेके बाब ( पुरु-हूताय सत्वने ) अनेकों जिसकी स्तुति करते हैं, ऐसे इस बलवान् इन्द्रके लिए ( तत् सचा गाय ) उन स्तोत्रोंको एक स्थान पर बैठ करके गाओ । ( यत् ) जो स्तोत्र ( गवे न ) गायको जैसे घास सुख देते हैं, उसी प्रकार ( शाकिने शं ) शक्तिमान् इन्द्रको सुख देते हैं ॥ १ ॥

१ पुरु-हूताय सत्वने सचा गाय— अनेकोंसे प्रशंसित शक्तिशाली इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

[ ११६ ] हे ( शत-क्रतो ) सैंकड़ों प्रकारके कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( यः द्युस्मि-तमः मदः ) जो तेजस्वी सोमरस ( नूनं ते ) निश्चित रूपसे तेरे लिये तैय्यार किया गया था, ( तेन नूनं ) उस रससे निश्चयसे तू ( मदे ) आनन्दित हुआ, उस कारण हमें भी ( मदेः ) धनावि देकर तू आनन्दित कर ॥ २ ॥

[ ११७ ] हे ( गावः ) गौवो ! तुम ( अवटे ) यज्ञके स्थानको ( उप वद ) आओ, तुम ( यज्ञस्य मही रप्सुदा ) यज्ञके लिए बहुतसा दूध रूपी अन्न देनेवाली हो । तुम्हारे ( उभा कर्णा हिरण्यया ) दोनों ही कान सोनेके आभूषणोंसे शोभित हैं ॥ ३ ॥

१ गावः ! अवटे यज्ञस्य मही रप्सुदा— हे गायो ! तुम यज्ञमें बहुतसा अन्न देती हो ।

[ ११८ ] हे ( श्रुतकक्ष ) श्रुत-कक्ष ऋषे ! ( अश्वाय अरं ) घोड़के लिए ( गवे अरं ) गायके लिए, ( इन्द्रस्य धाम्ने अरं ) इन्द्रके स्थानके लिए पर्याप्त मात्रामें ( गायत ) स्तोत्रोंका गान कर ॥ ४ ॥

[ ११९ ] ( महे वृत्राय हन्तवे ) उस महान् वृत्रको मारनेके लिए ( तं इन्द्रं ) उस इन्द्रकी हम ( वाजयामसि ) प्रशंसा करते हैं, स्तुति करते हैं । ( सः वृषा ) वह बलवान् इन्द्र ( वृषभः भुवत् ) हमें धन देनेवाला होवे ॥ ५ ॥

१ वृषभः— बलवान्, धनकी वृष्टि करनेवाला, कामना पूर्ण करनेवाला ।

२ महे वृत्राय हन्तवे इन्द्रं वाजयामसि— महान् शक्तिशाली वृत्रके वध करनेके लिए हम इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं ।

६ ( साम. हिंदी )



१२० त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं सन्वृषन्वपेदसि ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१५३।२ )

१२१ यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१४।९ )

१२२ यदिन्द्राह यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।१४।१ )

१२३ पन्यं पन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।२।२५ )

१२४ इदं वसो सुतमन्धः पिवा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्नरिमा ते ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।२।१ )

इति तृतीया वसतिः ॥ ३ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ । स्व० १० । उ० ४ । धा० ४६ । ( भू ) ॥ ]

[ ४ ]

( १-१० ) १, २ सुकक्षश्रुतकक्षी ( ऋ० सुकक्ष आंगिरसः ) ; ३ भारद्वाजः ( ऋ० शंयुर्बाहस्पत्यः ) ; ४ श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षो वा आंगिरसः ) । ५, ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ; ७, ९, १० त्रिशोकः काण्वः ; ८ वसिष्ठो

मैत्रावरुणिः ॥ इन्द्रः ( ९ ऋ० अग्नीन्द्रौ ) ॥ गायत्री ॥

१२५ उद्वेदाभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेपि सूर्य ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।१ )

[ १२० ] हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( सहस्रः बलात् ) शत्रुके पराभव करनेवाले बलसे तथा ( ओजसः ) सामर्थ्यसे ( अधिजातः ) प्रसिद्ध है ; हे ( वृषन् ) बलवान् इन्द्र ! तू ( सन् ) बलवान् होते हुए भी ( वृषा इत् असि ) इच्छित पदार्थको देने वाला है ॥ ६ ॥

१ हे इन्द्र ! त्वं सहस्रः बलात् ओजसः अधिजातः— हे इन्द्र ! तू साहस, बल और सामर्थ्यके कारण सबसे श्रेष्ठ है ।

[ १२१ ] ( यत् ) जिस यज्ञने ( दिवि ) आकाशमें ( ओपशं चक्राणः ) लटकाकर ( भूमिं वि अवर्तयत् ) भूमिको घुमाते हुए रखा है, उस ( यज्ञः ) यज्ञने ( इन्द्रं अवर्धयत् ) इन्द्रका यश बढ़ाया ॥ ७ ॥

[ १२२ ] हे इन्द्र ! ( यथा त्वं ) जैसे तू ( एकः इत् ) अकेला ही ( वस्वः ) धनोंका स्वामी है, उस प्रकार ( अहं ) मैं भी ( यत् ईशीय ) यदि धनोंका स्वामी हो जाऊँ, तो ( मे स्तोता ) मेरी स्तुति करनेवाला ( गो-सखा स्यात् ) गायोंका मित्र हो जाये ॥ ८ ॥

[ १२३ ] हे ( सोतारः ) सोमयज्ञ करनेवाले याजको ! ( मद्याय शूराय वीराय ) आनन्दित, शूरवीर इन्द्रके लिए ( पन्यं पन्यं इत् ) प्रशंसाके योग्य ( सोमं आ धावत ) सोमरसका अर्पण करो ॥ ९ ॥

१ वीराय शूराय पन्यं सोमं आधावत— शूरवीर इन्द्रके लिए प्रशंसनीय सोमरस दो ।

[ १२४ ] हे ( वसो ) सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( इदं सुतं अन्धः ) इस सोमरस रूपी अन्नको ( पिवा ) पी, जिससे ( उदरं सुपूर्णं ) तेरा पेट पूरा भर जाय । हे ( अनाभयिन् ) निर्भय इन्द्र ! ( ते ररिम ) तेरे आनन्दके लिए यह सोमरस हम देते हैं ॥ १० ॥

१ अनाभयिन् ! ते ररिम— हे निर्भय इन्द्र ! तुझे आनन्द हो, इसलिए ये सोमरस हम देते हैं ।

॥ यहाँ पहिला खंड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १२५ ] हे ( सूर्य ) सूर्यरूपी इन्द्र ! तू ( श्रुता-मघं ) प्रसिद्ध धनवान् ( वृषभं ) बलवान् ( नर्य-अपसं ) मानवोंके हितके लिए कार्य करनेवाला और ( अस्तारं ) शस्त्र फेंकनेवाला है ( इदं उदेषि ध ) ऐसा तू अब उबय हो रहा है ॥ १ ॥

१ श्रुतामघं वृषभं नर्यापसं अस्तारं— प्रसिद्ध, धनवान्, बलवान्, मानवोंका हित करनेवाले और शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा कर ।



- १२६ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९३।४ )
- १२७ य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥ ( ऋ. ६।४५।१ )
- १२८ मा न इन्द्राभ्याश्च दिशः सूर्यो अकतुष्वा यमत् । त्वा युजा वनेम तत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९२।३१ )
- १२९ एन्द्र सानसि रयि सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमृतये भर ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८।१ )
- १३० इन्द्रं वयं महाधने इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।७।५ )
- १३१ अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।४५।२६ )

[ १२६ ] हे ( वृत्र-हन् ) शत्रुको मारनेवाले ( सूर्य ) सूर्यरूपी इन्द्र ! ( अद्य ) आज ( अभि उदगाः ) तू उदय हुआ है, हे इन्द्र ! ( तत् सर्वं ) वह सब ( ते वशे ) तेरे अधीन है ॥ २ ॥

१ ते वशे तत् सर्वं— तेरे अधीन सब कुछ है ।

[ १२७ ] ( यः ) जो इन्द्र शत्रु द्वारा दूर फेंके हुए ( तुर्वशं यदुम् ) तुर्वश और यदुको ( सु-नीती ) उत्तम नीतिसे ( परावतः आनयत् ) दूर स्थानसे भी पास ले आया ( युवा सः इन्द्रः ) ऐसा वह तरुण इन्द्र ( नः सखा ) हमारा मित्र है ॥ ३ ॥

१ यः सुनीती तुर्वशं यदुम् परावतः आनयत्, युवा सः नः सखा— जो इन्द्र तुर्वश और यदुको उत्तम मार्गसे सुखसे ले आया, ऐसा वह इन्द्र हमारा मित्र है ।

[ १२८ ] हे इन्द्र ! ( आदिशः ) चारों दिशाओंसे शस्त्रोंको फेंकनेवाला ( सूरः ) निरन्तर चलनेवाला राक्षस ( अकतुष्वा ) रात्रियोंमें ( नः मा अभ्यायमत् ) हमारे ऊपर आक्रमण करनेकी इच्छासे न आवे, और यदि वह आ भी जाये तो ( तत् त्वा युजा ) तेरी सहायतासे ( वनेम ) उसको हम मार दें ॥ ४ ॥

१ आदिशः सूरः अकतुष्वा नः मा अभ्यायमत्, तत् त्वा युजा वनेम— चारों दिशाओंसे शस्त्रोंको फेंकते हुए राक्षस रात्रियोंके समय हम पर आक्रमण न करे, और यदि वह करे भी तो तेरी सहायतासे हम उसे मार दें ।

[ १२९ ] हे इन्द्र ! ( ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( सानसि ) उत्तम उपभोग देनेवाले ( स-जित्वानं ) शत्रु पर विजय बिलानेवाले ( सदा-सहं ) सदा शत्रुको हरानेवाले ( वर्षिष्ठं रयिं ) श्रेष्ठ धनसे ( आभर ) हमें भर दें ॥ ५ ॥

( १ ) ऊतये सानसि सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं आभर— हमारे संरक्षणके लिए उपभोगके योग्य, शत्रुपर विजय प्राप्त करानेवाले, हमेशा शत्रुओंको हरानेवाले श्रेष्ठ धनसे हमें भर दे ।

[ १३० ] ( वयं ) हम ( महाधने ) बड़े संग्राममें ( इन्द्रं ) इन्द्रको बुलाते हैं, ( अर्भे इन्द्रं हवामहे ) छोटे युद्धमें भी इन्द्रको बुलाते हैं, ( वृत्रेषु ) वृत्रके साथ होनेवाले युद्धोंमें भी ( युजं वज्रिणं ) सहायता करनेवाले तथा वज्र धारण करनेवाले इन्द्रको हम बुलाते हैं ॥ ६ ॥

( १ ) वयं महाधने, अर्भे, वृत्रेषु, युजं वज्रिणं हवामहे— हम बड़े तथा छोटे संग्रामोंमें तथा वृत्रके आक्रमणोंमें सहायता करनेवाले तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[ १३१ ] ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( कद्रुवः ) कद्रु ऋषिके ( सुतं अपिबत् ) सोमरसको पी लिया, ( सहस्रबाह्वे ) हजारों भुजाओंवाले शत्रुको युद्धमें मारा ( तत्र ) उसमें इन्द्रका ( पौंस्यं आददिष्ट ) सामर्थ्य प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

( १ ) सहस्र-बाहुः— हजारों सैनिकोंको रखनेवाला । ( २ ) सहस्रबाह्वे तत्र पौंस्यं आददिष्ट— सहस्र-बाहु नामक शत्रुको मारा उससे इन्द्रकी शक्ति चमकी ।



१३२ वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा ३३३ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० ॥ ८ ॥

( ऋ. ७।३।१४ )

१३३ आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥

( ऋ. ८।४९।१ )

१३४ मिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पाहं तदा भर ॥ १० ॥

( ऋ. ८।४९।४० )

इति चतुर्थी वसतिः ॥ ४ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ८ । उ० ३ । घा० ३२ । (डा) ॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ कण्वो घौरः; २ त्रिशोकः काण्वः; ३ वत्सः काण्वः; ४ कुसीबी काण्वः; ५ मेघातिथिः काण्वः;

६ श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षः ) आंगिरसः ७ इयावादेव आग्नेयः; ८ प्रगाथः काण्वः; ९ वत्सः काण्वः;

१० इरिबिठिः काण्वः ॥ इन्द्रः ॥ ( ऋ० १ मरुतः; ४ विश्वे देवाः; ५ ब्रह्मणस्पतिः; ७ सविता ) ॥ गायत्री ॥

१३५ इहेव शृण्वे एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३।७३ )

१३६ इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥

[ १३२ ] हे ( वृषन् इन्द्र ) बलवान् इन्द्र ! ( त्वायवः ) तुझे पानेकी इच्छा करनेवाले हम तुझे ( अभि नोनुमः ) सामनेसे नमस्कार करते हैं, हे ( वसो ) सबको निवास देनेवाले इन्द्र ! ( अस्य नः विद्धि ) इस हमारे स्तोत्रके भावको समझ ॥ ८ ॥

[ १३३ ] ( ये ) जो अग्निमिन्धते ( आ घा ) आगे होकर ( अग्निमिन्धते ) अग्निको जलाते हैं, ( येषां ) जिनका ( युवा इन्द्रः सखा ) तरुण इन्द्र मित्र है, जिसके लिए वे ( आनुषक् बर्हिः स्तृणन्ति ) क्रमसे आसनको फँलाते हैं ॥ ९ ॥

[ १३४ ] ( विश्वाः द्विषः ) सब शत्रुओंका ( अप मिन्धि ) नाश कर, ( बाधः मृधः परि जहि ) विघ्न डालनेवाले शत्रुओंको हरा, उसके बाद ( स्पाहं तत् वसु ) चाहने योग्य धन ( आ भर ) हमें भरपूर दे ॥ १० ॥

( १ ) विश्वाः द्विषः अपमिन्धि— सब शत्रुओंका नाश कर । ( २ ) बाधः मृधः परि जहि— विघ्न करनेवाले शत्रुओंको हरा । ( ३ ) स्पाहं वसु आभर— चाहने योग्य धनको हमें भरपूर दे ।

॥ यहाँ दूसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३५ ] ( एषां हस्तेषु कशाः ) इन मरुतोंके हाथोंमें चाबुक हैं, वे ( यद् वदान् ) जो शब्द करते हैं उनको मैं ( इह इव शृण्वे ) यहीं होनेके समान सुनता हूँ, वह ध्वनि ( यामं ) युद्धमें ( चित्रं न्यृञ्जते ) अवभुत शक्तिको दिखाता है ॥ १ ॥

१ यामं चित्रं न्यृञ्जते— युद्धमें आश्चर्यजनक सामर्थ्य दिखाता है ।

[ १३६ ] हे इन्द्र ! ( इमे सोमिनः सखायः ) ये सोमयाग करनेवाले मित्र ( पुष्टावन्तः यथा पशुं ) जालको हाथोंमें लिए हुए शिकारी जैसे पशुको देखते हैं, उसी तरह एकाग्र चित्त होकर ( त्वा विचक्षते ) तुझे विशेष करके देखते हैं ॥ २ ॥



- १३७ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६।४ )
- १३८ देवानामिदवा महत्तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमतये ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८३।१ )
- १३९ सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१८।१ )
- १४० बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९३।१८ )
- १४१ अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्य सुव ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।८२।४ )
- १४२ क्वरस्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्त सपर्यति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६४।७ )
- १४३ उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।६।२८ )

[ १३७ ] ( विश्वाः कृष्टयः विशः ) सब प्रजायें ( अस्य मन्यवे ) इसके स्तोत्रको सुननेके लिए ( समुद्राय सिन्धवः इव ) जिस प्रकार समुद्रकी ओर नदियां दौडती हैं, उस प्रकार ( सं नमन्त ) सब मिलकर नम्र होकर बैठती हैं ॥ ३ ॥

मन्यु— क्रोध, स्तोत्र, मननीय वचन

[ १३८ ] ( देवानां अवः इत् महत् ) देवोंके ये संरक्षण निश्चयसे महान् हैं । ( वृष्णां तत् ) कामनाओंको पूर्ण करनेवाले उन देवोंसे मिलनेवाले संरक्षणोंको ( अस्मभ्यं ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( वयं आवृणीमहे ) हम स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

( १ ) देवानां अवः महत् इत्— देवोंसे मिलनेवाले संरक्षण निश्चयसे महान् हैं ।

( २ ) वृष्णां तत् अस्मभ्यं ऊतये वयं आवृणीमहे— हमारी इच्छा पूर्ण करनेवाले संरक्षणके साधनोंको अपनी रक्षाके लिए हम स्वीकार करते हैं ।

[ १३९ ] हे ब्रह्मणस्पते ! ( सोमानां ) सोमयज्ञ करनेवाले ( कक्षीवन्तं ) कक्षीवान्को ( यः औशिजः ) जो उशिकका पुत्र है, ( स्वरणं कृणुहि ) प्रकाशमान कर ॥ ५ ॥

[ १४० ] ( वृत्र-हा ) वृत्र राक्षसको मारनेवाला, ( भूरि-आसुतिः ) जिसके लिए बहुतसे लोग सोमरस तैयार करते हैं, वह इन्द्र ( नः ) हमारी ( बोधत्-मनाः ) इच्छाको जाननेवाला ( इह अस्तु ) यहां होवे । वह ( शक्रः ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ( आशिषं शृणोतु ) हमारी स्तुति सुने ॥ ६ ॥

[ १४१ ] हे ( सवितः देव ) सूर्य देव ! ( नः ) हमें ( अद्य ) आज ( प्रजावत् सौभगं ) पुत्र पौत्रोंसे युक्त ऐश्वर्य-धन ( सावीः ) दे ( दुःष्वप्य परा सुव ) दुःखदायक स्वप्नोंको लानेवाले दुर्भाग्यको हमसे दूर कर ॥ ७ ॥

( १ ) हे सवितः देव ! नः अद्य प्रजावत् सौभगं सावीः— हे सविता देव ! हमें आज पुत्र पौत्रोंसे युक्त धन दे ।

( २ ) दुःष्वप्य परा सुव— दुःख देनेवाले स्वप्नोंको दूर कर ।

[ १४२ ] ( सः वृषभः ) वह सामर्थ्यवान् ( युवा ) तरुण ( तुवि-ग्रीवः ) मजबूत गर्दनवाला ( अनानतः ) कभी भी किसीसे न झुकनेवाला ( कः ) कहां है ? ( कः ब्रह्मा ) कौन जानी ( तं सपर्यति ) उसकी पूजा करता है ? ॥ ८ ॥

( १ ) स वृषभः युवा तुविग्रीवः अनानतः कः— वह तरुण, बलवान्, मजबूत गर्दनवाला, किसीसे न झुकाया जानेवाला इन्द्र कहां है ? ( २ ) तुविग्रीवः— गर्दन जिसकी बड़ी है ।

( ३ ) अनानतः— किसीसे न झुकाया जा सकनेवाला ।

[ १४३ ] ( गिरीणां उपह्वरे ) पर्वतोंकी उपत्यकामें ( च ) और ( नदीनां संगमे ) नदियोंके संगमपर ( धिया ) अपनी बुद्धिसे—अपनी स्तुतियोंसे ( विप्रः अजायत ) मनुष्य विशेष जानी होता है ॥ ९ ॥



१४४ प्र संप्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १० ॥

( ऋ. ८।१६।१ )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० ९ । उ० ना० । धा० ४४ । ली । ]

इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ श्रुतकक्षः ( ऋ० सुकक्षः ) आङ्गिरसः; २ मेधातिथिः ( ऋ० शंयुर्बार्हस्पत्यः ) काण्वः; ३ गोतमो राहगणः; ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५ बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः; ६, ७ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ( ऋ० सुकक्षः ) आङ्गिरसः; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुनःशेष आजीर्गतिः; १० शुनःशेषो आजीर्गतिः; वामदेवो वा ॥ इन्द्रः, ( ऋ० इन्द्रापूर्वणौ ) ५ मरुतः ॥ गायत्री ॥

१४५ अयादु शिष्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्द्रारिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९२।४ )

१४६ इमा उ त्वा पुरुवसोऽभि प्र नोनुनवुर्गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।४५।२५ )

१४७ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८४।१५ )

१४८ यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।५७।४ )

[ १४४ ] ( चर्षणीनां संप्राजं ) मनुष्योंमें उत्तम रीतिसे प्रकाशमान होनेवाले ( गीर्भिः नव्यं ) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेके योग्य ( नृ-षाहं नरं ) शत्रुओंको पराजित करनेवाले नेता ( मंहिष्ठं इन्द्रं ) महान् इन्द्रकी ( प्रस्तोत ) स्तुति कर ॥ १० ॥

( १ ) चर्षणीनां संप्राजं नृषाहं नरं मंहिष्ठं इन्द्रं प्रस्तोत— मनुष्योंमें संप्राज, शत्रुओंको हरानेवाले नेता महान् इन्द्रकी स्तुति करो ।

॥ यहाँ तीसरा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४५ ] ( शिषी इन्द्रः ) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रने ( प्र-होषिणः सुदक्षस्य ) विशेष हवन करनेवाले सुवक्षके ( यवाशिरः ) जोके आटे और दूधसे मिश्रित ( इन्द्रोः अन्धसः उ ) सोमरस रूपी अन्नको ( अपात् ) खाया ॥ १ ॥

[ १४६ ] हे ( पुरु-वसो ) अनेकों प्रकारके धन रखनेवाले इन्द्र ! ( गावः धेनवः वत्सं न ) जिस प्रकार वृष वेने-वाली गायें अपने बछड़ोंके पास जाती हैं उसी प्रकार ( त्वा ) तुझे ( इमाः गिरः प्रनोनवुः ) ये स्तोत्र बार बार प्राप्त होते हैं, तेरी बार बार स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४७ ] ( अत्रा ह ) इस ( गोः चन्द्रमसः ) गतिमान् चन्द्रके ( गृहे ) घरमें-चन्द्रमण्डलमें ( त्वष्टुः ) त्वष्टा इस सूर्यका ( अ-पीच्यं नाम ) रात्रीके समय छिप जानेवाला प्रसिद्ध तेज है ( इत्था अमन्वत ) ऐसा लोग मानते हैं ॥ ३ ॥

[ १४८ ] ( यत् वृषन्तमः इन्द्रः ) जब बहुत बलवाला इन्द्र ( महीः रितः ) बड़े बड़े प्रवाहोंके रूपमें बहनेवाले ( अपः ) वर्षासे आये हुए जलोंको ( अनयत् ) बहाता है, ( तत्र ) तब ( पूषा सचा भुवत् ) पूषा उसका सहायक होता है ॥ ४ ॥



- १४९ गौधयति मरुतां श्रवस्युमाता मघोनाम् । युक्ता वह्नि रथानाम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९३।१ )  
 १५० उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९३।२१ )  
 १५१ इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।९३।२३ )  
 १५२ अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६।१० )  
 १५३ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।३०।१० )  
 १५४ सोमः पूषा च चेतुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् । देवत्रा रथ्याहिता ॥ १० ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० ८ । उ० ५ । धा० ४४। (णी) ॥ ]

[ ७ ]

- ( १-१० ) १, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; २ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः; ३ मेधातिथिः काण्वः; प्रियमेधश्चांगिरसः;  
 ५ इरिम्बिठिः काण्वः; ६. १० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ७ त्रिशोकः काण्वः; ८ कुसीदी काण्वः; ९ शुनः शेष आजी-  
 गतिः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

- १५५ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत । विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥  
 ( ऋ. ८।९२।१ )

[ १४९ ] ( मघोनां मरुतां ) धनवान् मरुतोकी ( माता ) माता ( रथानां युक्ता वह्निः ) रथोंमें जोड़ी हुई और उनको खींचनेवाली ( गौः ) गाय ( श्रवस्युः ) अन्न देनेकी इच्छा करती हुई ( धयति ) दूध देती है ॥ ५ ॥

[ १५० ] हे ( मदानां पते ) सोमरसोंके स्वामी इन्द्र ! ( हरिभिः ) अपने घोडोंसे ( नः सुतं उप याहि ) हमारे सोम यज्ञमें आ । ( हरिभिः नः सुतं उपयाहि ) घोडोंसे हमारे यज्ञमें आ ॥ ६ ॥

[ १५१ ] ( अध्वरे वृधन्तः ) हमारे यज्ञमें इन्द्रकी प्रशंसा करते हुए ( इष्टाः होत्राः ) यज्ञ करनेवाले होता गण ( अवभृथं अच्छ ) अवभृथ स्नान होनेतक ( ओजसा ) अपने बलसे ( इन्द्रं असृक्षत ) इन्द्रके लिए आहुति देते हैं ॥ ७ ॥

[ १५२ ] ( अहं इत् ) मैंने ( पितुः ऋतस्य मेधां ) पालन करनेवाले यज्ञरूपी इन्द्रकी बुद्धिकी ( परि जग्रह ) अपनी ओर मोड़ लिया है । ( हि ) इस कारण मैं ( सूर्यः इव अजनि ) सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ॥ ८ ॥

[ १५३ ] ( याभिः क्षु-मन्तः मदेम ) जिसकी सहायतासे हम अन्न युक्त होकर आनन्दित होते हैं, ( सधमादे इन्द्रे ) इन्द्रके साथ हर्षसे युक्त होकर ( नः ) हमारी वह गाय ( रेवतीः ) दूध और घी देनेवाली होकर ( तुवि-वाजाः सन्तु ) अधिक बल देनेवाली हो ॥ ९ ॥

[ १५४ ] ( देवत्रा ) देवोंमें ( रथ्यः अहिता ) रथपर बैठने योग्य ( सोमः ) सोम ( पूषा च ) और पूषा ( विश्वासां सुक्षितीनां चेतुः ) सब मनुष्योंकी उत्साह देने वाले हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौथा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १५५ ] ( वः ) तुम ( विश्वा-साहं ) सब शत्रुओंके नाश करनेवाले ( शतक्रतुं ) सैंकड़ों कर्म करनेवाले ( चर्षणीनां मंहिष्ठं ) मनुष्योंमें महान् सामर्थ्यशाली ( अन्धसः आपान्तं ) सोमरस पीनेवाले ( इन्द्रं अभि प्र गायत ) इन्द्रका विशेष स्तुतिसे गान करो ॥ १ ॥

१ विश्वासाहं शतक्रतुं चर्षणीनां मंहिष्ठं इन्द्रं अभि प्रगायत— सब शत्रुओंके नाश करनेवाले, सैंकड़ों कर्म करनेवाले, प्रजाओंमें सर्वाधिक शक्तिशाली, इन्द्रके गुणोंका स्तुतिसे गान करो ।



- १५६ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । <sup>१ २ ३ १ २</sup> सखायः सोमपात्रे ॥ २ ॥ (ऋ. ७।३।११)
- १५७ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वयमु त्वा तदिदं त्वा इन्द्र त्वायन्तः सखायः । <sup>१ २ ३ १ २</sup> कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।२।१६)
- १५८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्राय मद्रने सुतं परि शोभन्तु नो गिरः । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।२।१९)
- १५९ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> एहीमस्य द्रवा पिव ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१।७।११)
- १६० <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सुरुपकृत्नुमृतये सुदुधामिव गोदुहे । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४।११)
- १६१ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> तृप्ता व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।४।२।२२)
- १६२ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।८।२।७)

[ १५६ ] हे (सखायः) मित्रो ! (वः) तुम (हर्यश्वाय) हरि नामके घोड़ोंको रखनेवाले (सोम-पात्रे) सोम पीनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (मादनं प्रगायत) आनन्द देनेवाले स्तोत्रोंको गाओ ॥ २ ॥

[ १५७ ] हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वायन्तः सखायः वयं) तुझसे मित्रता करनेकी इच्छावाले और तेरे मित्र हम (तत्-इत्-अर्थाः) तेरी स्तुति करनेकी इच्छा रखनेवाले (कण्वाः उ) कण्व भी (उक्थेभिः त्वा जरन्ते) स्तोत्रोंसे तेरी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १५८ ] (मद्रने इन्द्राय) आनन्दके स्वभाव वाले इन्द्रके लिए (सुतं) निकाले गए सोमरसकी (नः गिरः परि-स्तोभन्तु) हमारी वाणियां प्रशंसा करें। (कारवः) स्तुति करनेवाले (अर्कं अर्चन्तु) इस पूज्य सोमकी अर्चना करें ॥ ४ ॥

[ १५९ ] हे इन्द्र ! (अयं सोमः) यह सोम रस (ते) तेरे लिए (बर्हिषि अधि) वेदिपर रखे गए आसन पर (निपूतः) शुद्ध करके रखा हुआ है। (ई एहि) इसके पास आ, (द्रव) बौडकर आ और (पिव) पी ॥ ५ ॥

[ १६० ] (ऊतये) हमारे संरक्षणके लिए (सु-रूपकृत्नुं) सुन्दर रूपको बनानेवाले इन्द्रको (द्यवि-द्यवि) प्रतिबिम्ब (गोदुहे सुदुधां इव) जिस प्रकार दूध दुहनेके समय उत्तम दूध देनेवाली गायको बुलाया जाता है, उसी प्रकार (जुहूमसि) हम बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ ऊतये सुरुपकृत्नुं द्यवि द्यवि जुहूमसि— अपने संरक्षणके लिए सुन्दर रूप बनानेवाले इन्द्रके लिए हम प्रतिबिम्ब स्तुति करते हैं।

[ १६१ ] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (त्वा) तुझे (सुते) सोमयज्ञमें (सुतं पीतये) सोमरस पीनेके लिए (अभि सृजामि) मैं सोमरसका अर्पण करता हूँ, उस समय (तृप्ता मदं व्यश्नुहि) तृप्त करनेवाले या आनन्द देनेवाले सोमरसको स्वीकार करो ॥ ७ ॥

[ १६२ ] हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (सुतः सोमः) तैय्यार किया हुआ सोमरस (चमसेषु चमूषु आ) बड़े और छोटे बर्तनोंमें भरा हुआ रखा है। (अस्य त्वं पिव इत्) इसको तू पी, हे इन्द्र ! (त्वं ईशिषे) तू सामर्थ्य-शाली है ॥ ८ ॥

१ त्वं ईशिषे— तू सबका स्वामी है।



१६३ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमृतये ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।३०।७ )

१६४ आ त्वेता नि निषीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥ ( ऋ. १।३।१ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ [ स्व० ५ । उ० २ । धा० ३९ । (फो) ॥ ]

[ ८ ]

( १-१० ) १ विश्वामित्रो गायिनः, २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ कुसीवी काण्वः; ४ प्रियमेध आंगिरसः;

५, ८ वायदेवो गौतमः; ६, ९ श्रुतकक्षः सुकक्षोः वा आंगिरसः, ( ९ ऋ० सुकक्ष आंगिरसः );

७ मेधातिथिः काण्वः; १० बिन्वुः पूतदक्षो वा आंगिरसः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ७ सबसस्पतिः;

१० मरुतः ) ॥ गायत्री ॥

१६५ इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा इत्ये गिर्वणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।९।१० )

१६६ महा इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।९ )

१६७ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।८।११ )

१६८ अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।६९।४ )

[ १६३ ] ( योगे योगे ) प्रत्येक कार्यमें ( वाजे वाजे ) प्रत्येक संग्राममें ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( तवस्तरं इन्द्रं ) अति बलवान् इन्द्रको ( सखायः ) मित्रके समान व्यवहार करनेवाले हम ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ ९ ॥

१ योगेयोगे वाजेवाजे ऊतये तवस्तरं इन्द्रं हवामहे— प्रत्येक कार्य और संग्राममें अपना संरक्षण हो इसके लिए इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[ १६४ ] हे ( स्तोम-वाहसः ) यज्ञ करनेवालो ! ( सखायः ) हे मित्रो ! ( आ तु आ इत ) शीघ्र यहां आओ और ( निषीदत ) यहां बैठो, और ( इन्द्रं अभि प्र गायत ) इन्द्रके स्तोत्रोंका गान करो ॥ १० ॥

॥ यहां पांचवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १६५ ] हे ( राधानां पते ) धनोंके स्वामी ! हे ( गिर्वणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( ओजसा ) बलसे तैय्यार किए गए ( इदं सुतं ) इस सोमरसको ( अस्य तु अनु पिबं हि ) तू शीघ्र ही अनुकूल होकर पी ॥ १ ॥

[ १६६ ] ( नः इन्द्रः महान् ) हमारा यह इन्द्र महान् है, और ( परः च ) श्रेष्ठ भी है, ( वज्रिणे महित्वं अस्तु ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रका यश बढे, ( द्यौः न ) ध्रुलोकके समान ( शवः प्रथिना ) उसका बल बढ़ता है ॥ २ ॥

[ १६७ ] हे इन्द्र ! ( महा-हस्ती ) बड़े बड़े हाथोंवाला तू ( नः तु ) हमें देनेके लिए ( क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं ) प्रशंसनीय और अनेक प्रकारसे स्वीकार करने योग्य धन ( दक्षिणेन आ संगृभाय ) बायें हाथोंमें ले ॥ ३ ॥

[ १६८ ] ( गो-पतिं ) गायोंका पालन करनेवाले ( सत्यस्य सूनुं ) सत्यके प्रचारक ( सत्-पतिं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( गिरा अभि प्र अर्च ) बाणोंसे प्रार्थना कर ( यथा विदे ) जिससे कि उसकी सहायतासे यज्ञका और उस इन्द्रका ज्ञान हो ॥ ४ ॥

७ ( साम. हिंदी )



१६९ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥

( ऋ. ४।३।११; यजु. ३७।३९ )

१७० त्वमु वः सत्रासाह विश्वासु गीर्वायतम् । आ च्यावयस्युतये ॥ ६ ॥

१७१ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनि मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥

( ऋ. १।१८।६; यजु. ३२।१३; )

१७२ ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमेरयः । उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

१७३ भद्रं भद्रं न आ भरेपमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९३।२८ )

१७४ अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।९४।४ )

इति अष्टमी वसतिः ॥ ८ ॥ खण्डः ॥ ६ ॥ । स्व० १२ । उ० १ । धा० ४० । ( चौ ) ॥ ]

[ ९ ]

( १-१० ) १ देवजामय इन्द्रमातरः, २ गोधा ऋषिका; ३ दध्यङ्गाथर्वणः; ४ प्रस्कण्वः काण्वः; ५ गोतमो राहगणः; ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ वामदेवो-गौतमः; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुनःशेष आजीर्गतिः; १० उलो वातायनः ॥

इन्द्रः ( ऋ० ४ अश्विनौ; १० वायुः ) ॥ गायत्री ॥

१७५ ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१५३।१ )

[ १६९ ] ( सदा-वृधः ) सदा बढनेवाला ( चित्रः सखा ) विलक्षण श्रेष्ठ मित्र यह इन्द्र ( कया ऊति ) कौनसे संरक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर ( नः आ भुवत् ) हमारे पास आवेगा ? उसी प्रकार ( कया शचिष्ठया वृता ) कौनसी शक्तिसे युक्त व्यवहार वाला होकर वह हमारे पास आएगा ? ॥ ५ ॥

[ १७० ] ( त्वमु-साहं ) बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाले ( वः ) तुम्हारी ( विश्वासु गीर्षु आयतं ) सब स्तुतियोंमें वर्णित ( त्वं उ ) उस इन्द्रको ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए तुम ( आच्यावयसि ) अपने पास बुलावो ॥ ६ ॥

[ १७१ ] ( मेधां ) बुद्धि बढानेके लिए ( अद्भुतं ) अपूर्व ( इन्द्रस्य प्रियं ) इन्द्रको प्रिय ( काम्यं ) इच्छा करनेके योग्य धनके ( सनि ) दान देनेवाले ( सदसस्पतिं ) सदसस्पति देवको ( अथासिषं ) मंत्रें प्राप्त किया है ॥ ७ ॥

[ १७२ ] हे इन्द्र ! ( ये ते पन्थाः ) जो तेरे मार्ग ( दिवः अधः ) दुलोकसे नीचे हैं ( येभिः विश्वं ऐरयः ) जिन मार्गोंसे सब विश्वोंको तू चलाता है, ( ते ) वे मार्ग ( नः भुवः उत श्रोषन्तु ) हमारे यज्ञ स्थानमें पहुंचते हैं, उन मार्गोंसे हमारे यज्ञ स्थानको आ ॥ ८ ॥

[ १७३ ] हे ( शतक्रतो ) सैंकड़ों कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( भद्रं भद्रं ) अत्यन्त कार्य करनेवाले ( इषं ऊर्जं ) अन्न और बलको बढानेवाले धन ( नः आ भर ) हमें भरपूर दे । ( यत् ) क्योंकि ( नः मृडयासि ) तू हमें सुखी करता है ॥ ९ ॥

१ हे शतक्रतो ! भद्रं इषं ऊर्जं नः आभर— हे सैंकड़ों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! कल्याण करने वाले, अन्न और बलको हमें भरपूर दे । २ नः मृडयासि— हमें तू सुखी करता है ।

[ १७४ ] ( अयं सोमः सुतः अस्ति ) यह सोमरस हमने तैयार करके रखा हुआ है । ( अस्य ) इसे ( स्वराजः मरुतः ) तेजस्वी मरुद् गण ( पिबन्ति ) पीते हैं । ( उत अश्विना ) और अश्विनौ देव भी पीते हैं ॥ १० ॥

॥ यहां छठा खंड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १७५ ] ( सु-वीर्यं वन्वानासः ) उत्तम बल प्राप्त करनेकी इच्छावाली ( ईङ्खयन्तीः ) इन्द्रके पास ( अपस्युवः ) उत्तम कार्य करनेकी इच्छा वाली इन्द्रकी माता ( जातं तं उपासते ) प्रकट हुए उस इन्द्रकी सेवा करती है ॥ १ ॥



- १७६ न किं देवा इनीमसि न क्या योपयामसि । मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३।७ )
- १७७ दोषो आगाद् बृहद्राय द्युमद्रामन्नाथर्वण । स्तुहि देवसवितारम् ॥ ३ ॥ ( अथर्व. ६।१।१ )
- १७८ एषो उषा अपूर्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।४६।१ )
- १७९ इन्द्रो दधीचो अस्थभिष्ट्राण्यप्रतिष्कृतः । जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८४।१३ )
- १८० इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महान् अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।९।१ )
- १८१ आ तू न इन्द्र वृत्रहन्स्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरुतिभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।३२।१ )
- १८२ ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मैव रोदसी ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६।२ )

[ १७६ ] हे ( देवाः ) देवो ! ( न किं इनीमसि ) हम कोई हानि नहीं करते और ( न किं आयोपयामसि ) हम कोई विरुद्ध कार्य नहीं करते ( मन्त्र-श्रुत्यं चरामसि ) वेद-मंत्रोंमें जो कहा है, उसके अनुसार हम आचरण करते हैं ॥ २ ॥

१ न किं इनीमसि— हम किसीकी हानि नहीं करते । २ न किं आयोपयामसि— हम कोई विरुद्ध कार्य नहीं करते । ३ मन्त्रश्रुत्यं चरामसि— वेदमंत्रोंमें जो कहा है, उसके अनुसार हम आचरण करते हैं ।

[ १७७ ] हे ( बृहद् गाय ) बृहत् नामक सामका गायन करनेवाले, हे ( द्युमत्-गामन् ) प्रकाशके मार्गसे जानेवाले ( आथर्वण ) अथर्ववेदी ब्राह्मण ! ( दोषः अगात् ) यज्ञकर्ममें जो दोष हों उन्हें दूर करनेके लिए ( देवसवितारं स्तुहि ) सविता देवकी स्तुति कर ॥ ३ ॥

१ दोषः अगात्, देवसवितारं स्तुहि— दोष होनेपर सविता देवकी स्तुति कर ।

[ १७८ ] ( एषा प्रिया ) यह प्रिय ( अपूर्या उषा ) अपूर्व उषा ( दिवः व्युच्छति ) द्युलोकसे प्रकाशित होती है, हे ( अश्विनौ ) अश्विदेवो ! ( वां बृहत् स्तुषे ) तुम्हारी हम बहुत बड़ी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[ १७९ ] ( अ-प्रतिष्कृतः ) जिसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता ऐसे इस इन्द्रने ( दधीचः अस्थभिः ) दधीचिकी हड्डियोंसे ( नव नवतीः ) आठ सौ दस ( वृत्राणि ) वृत्रोंको ( जघान ) मारा ॥ ५ ॥

१ नव नवतीः— नौ गुना नब्बे; ९०×९ = ८१० ।

[ १८० ] हे इन्द्र ! ( एहि ) आ ( अन्धसः ) अन्न रूपी ( विश्वेभिः सोमपर्वभिः ) सब सोमरसोंसे ( मत्सि ) तू आनन्दित होता है, अब ( ओजसा ) अपने बलसे ( महान् अभिष्टिः ) बड़ेसे बड़े शत्रुको भी हराने वाला हो ॥ ६ ॥

१ ओजसा महान् अभिष्टिः— सामर्थ्यसे यह महान् शत्रुको भी हरानेवाला है ।

[ १८१ ] हे ( वृत्र-हन् ) वृत्ररूपी शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! तू ( नः ) हमारे पास ( महान् आ तू ) महान् होकर आ । ( महीभिः उतिभिः ) महान् संरक्षणके साधनोंके साथ ( अस्माकं अर्धं आगहि ) हमारे पास आ ॥ ७ ॥

१ महीभिः उतिभिः अस्माकं अर्धं आगहि— महान् संरक्षणके साधनोंके साथ हमारे पास आ ।

[ १८२ ] ( अस्य तत् ओजः ) इस इन्द्रका वह सामर्थ्य ( तित्विषे ) चमकने लगा है, ( यत् ) जिसके कारण यह इन्द्र ( उभे रोदसी ) द्युलोक और भूलोकको चर्म-इव समवर्तयत् ) चमड़ेके समान फैलाता है ॥ ८ ॥



१८३ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भेषिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥ ( ऋ १।३।०४ )

१८४ वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ १० ॥

( ऋ. १०।१८६।१ )

इति नवमी वसतिः ॥ ९ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १० । उ० २ । घा० ४५ । (फु) ॥ ]

[ १० ]

( १-९ ) १ कण्वो घोरः; २, ३, ९ वत्सः ( ऋ० २, ९ वशोऽव्यः ) काण्वः; ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः;

५ मधुच्छन्दा वेदवामित्रः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ हरिस्मिन्निः काण्वः; ८ सत्यधृतिर्वारुणिः ॥ इन्द्रः ( ऋ०

१ वरुणमित्रार्यमणः; ८ आदित्यः ) गायत्री ॥

१८५ यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।४।११ )

१८६ गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्य महोनाम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४६।१० )

१८७ इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहते आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६।१९ )

१८८ अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभुवः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।९३।१७ )

[ १८३ ] हे इन्द्र ! ( अयं उ ) यह सोमरस निश्चयसे ( ते ) तेरे लिए तैयार किया गया है, उसके पास ( सम-तसि ) तू जाता है ( कपोतः गर्भेषि इव ) जैसे कबूतर गर्भको धारण करनेमें समर्थ कबूतरीके पास जाता है ( तत् चित् ) उसी प्रकार ( नः वचः ) हमारी स्तुति ( ओहसे ) तू सुनता है ॥ ९ ॥

[ १८४ ] ( वातः ) यह वायु ( नः हृदे शंभु मयोभु ) हमारे हृदयको शान्ति और सुख देनेवाली ( भेषजं ) औष-धियोंको ( आ वातु ) लाकरके देवे, वे औषधियां ( नः आयूंषि प्रतारिषत् ) हमारी आयुको लम्बी करें ॥ १० ॥

१ वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आ वातु— यह वायु हमारे हृदयको सुख और आरोग्य देनेवाली औषधियोंको लाकर देवे । २ नः आयूंषि प्र तारिषत्— हमारी उम्र लम्बी करे ।

॥ यहाँ सातवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १८५ ] ( प्र-चेतसः ) ज्ञानी ( यं रक्षन्ति ) जिसका संरक्षण करते हैं ( सः जनः ) वह मनुष्य ( न किः दभ्यते ) किसीसे भी नहीं दबाया जा सकता ॥ १ ॥

१ प्रचेतसः यं रक्षन्ति स जनः न किः दभ्यते— ज्ञानी देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसे कोई भी नहीं दबा सकता ।

[ १८६ ] हे इन्द्र ! ( यथा पुरा ) पहलेके समान ( नः ) हमें ( सु गव्या ) उत्तम गायोंके समूह, ( उ अश्वया ) उत्तम घोड़े ( उत रथया ) और रथ तथा ( महोनां ) यश बढ़ानेवाले धन देनेकी इच्छासे ( वरिवस्य ) हमारे पास आ ॥ २ ॥

[ १८७ ] हे इन्द्र ! ( ते इमाः पृश्नयः ) तेरी ये गायें ( ऋतस्य पिप्युषीः ) यज्ञको बढ़ानेवाली हैं, और ( घृतं एनां आशिरं ) घी देनेवाले दूधको ( दुहते ) दुहती हैं ॥ ३ ॥

[ १८८ ] हे ( पुरु-नामन् ) अनेक नामोंवाले और ( पुरु-ष्टुत ) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! ( सोमे सोमे ) प्रत्येक सोमयज्ञमें ( यत् आभुवः ) जहां तू जाता है, वहां ( अया गव्यया धिया ) इस गायकी इच्छा करनेवाली स्तुतिसे हम तेरी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥



- १८९ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।३।१० )  
 १९० क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । स नो वसुन्या भरात् ॥ ६ ॥  
 १९१ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१७।१ )  
 १९२ महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१८५।१ )  
 १९३ त्वावतः पुरुवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३६।१ )

इति वंशमी वंशतिः ॥ १० ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० ६। उ० ४। धा० ३५। (घु) । ]

इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः; द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ।

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

- ( १-१० ) १ प्रगाथः काण्वः; २ विश्वामित्रो गायिनः; ३, १० वामदेवो गौतमः; ४, ६ श्रुतकक्षः आङ्गिरसः  
 ( ऋ० ४ सुकक्षोः वा; ६ सुकक्ष आङ्गिरसः ); ५ मधुच्छन्वा विश्वामित्रः; ७ गुत्समवः शौनकः; ८, ९ भरद्वाजः  
 ( ऋ० -८ शंयुः ) बार्हस्पत्यः ॥ इन्द्रः ( ९ ऋ० इन्द्रापूर्वणौ ) ॥ गायत्री ॥

१९४ उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिषः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६४।१ )

[ १८९ ] ( पावका ) पवित्रता करनेवाली ( वाजिनीवती ) अन्न देनेवाली ( धिया वसुः ) बुद्धिकी सहायतासे धन देनेवाली ( सरस्वती ) विद्या देवी ( वाजेभिः ) अग्नौसे ( नः यज्ञं वष्टु ) हमारे यज्ञको पूर्ण करे ॥ ६ ॥

[ १९० ] ( नाहुषीषु ) प्रजाजनोमें ( इमं इन्द्रं ) इस इन्द्रको ( कः तर्पयात् ) कौन भला तृप्त करता है ? ( सः ) वह इन्द्र ( नः वसुनि आ भरत् ) हमें भरपूर धन देवे ॥ ६ ॥

[ १९१ ] हे इन्द्र ! ( आयाहि ) तू आ, हमने ( ते ) तेरे लिए ( सुषुमा हि ) सोमरस उत्तम रीतिसे तैयार किया है, ( इमं सोमं पिब ) इस सोमरसको तू पी, ( मम ) मेरे ( इदं बर्हिः ) इस आसनपर ( आसदः ) बैठ ॥ ७ ॥

[ १९२ ] ( मित्रस्य, अर्यम्णः वरुणस्य ) मित्र अर्यमा और वरुण इन ( त्रीणां ) तीनोंसे मिलनेवाले ( द्युक्षं ) तेजस्वी ( दुराधर्षं ) दूसरोंके द्वारा सहनेमें कठिन ऐसे ( महि अवः ) महान् संरक्षण ( अस्तु ) हमारे लिए हों ॥ ८ ॥

१ द्युक्षं दुराधर्षं महि अवः अस्तु— तेजस्वी, दूसरोंको हरानेमें समर्थ, महान् संरक्षण हमें मिले ।

[ १९३ ] हे ( पुरु-वसो ) बहुतसे धनको अपने पास रखनेवाले, ( प्र-णेतः ) उत्तम कर्म करनेवाले, ( हरीणां स्थातः ) घोड़ोंपर बैठनेवाले इन्द्र ! ( त्वावतः वयं स्मसि ) तुमसे संरक्षित होकर हम सुरक्षित रहें ॥ ९ ॥

॥ यहाँ आठवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ ९. ] नवमः खण्डः ।

[ १९४ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( सोमाः ) ये सोमरस ( उत् मन्दन्तु ) उत्तम आनन्द देवें, हे ( अद्रि-षः ) बज्रका धारण करनेवाले इन्द्र ! तू हमें ( राधः कृणुष्व ) धन दे और ( ब्रह्म-द्विषः ) ज्ञानसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंको ( अव जहि ) तू मार ॥ १ ॥

१ राधः कृणुष्व— हमें धन दे ।

२ ब्रह्मद्विषः अवजहि— ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको तू मार ।



१९५ गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ २ ॥ (ऋ. ३।४।६)

१९६ सदा व इन्द्रश्चक्रेषदा उपो नु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

१९७ आ त्वा विशन्तिवन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ ४ ॥

(ऋ. ८।९२।२२)

१९८ इन्द्रमिद्राथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥ (ऋ. १।७।१)

१९९ इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमभुश्रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।९३।३४)

२०० इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥ (ऋ. २।४१।१०)

२०१ इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥ (ऋ. ६।४९।२८)

[ १९५ ] हे (गिर्वणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (नः सुतं पाहि) हमारे द्वारा निकाले गए सोमरसोंको पी, क्योंकि तू इस (मधोः धाराभिः अज्यसे) सोमरसकी धाराओंसे सींचा जाता है, और हे इन्द्र ! (त्वादातं इत् यशः) तेरी सहायतासे यश मिलता है ॥ २ ॥

१ त्वादानं यशः इत्— तेरी सहायतासे यश मिलता है ।

[ १९६ ] (इन्द्रः) यह इन्द्र (सदा उपो नु) सदा तुम्हारे पास है, (सः सपर्यन्) वह पूजित होता हुआ (वः आचक्रेषत्) तुम्हारे यज्ञकी ओर आकर्षित होता है, (नः वृतः इन्द्रः देवः शूरः) हमारे द्वारा स्वीकार किया गया इन्द्र देव महान् वीर है ॥ ३ ॥

१ नः वृतः इन्द्रः देवः शूरः— हमारे द्वारा स्वीकार किया गया इन्द्र देव बहुत वीर है ।

[ १९७ ] हे इन्द्र ! (सिन्धवः समुद्रं न) जिस प्रकार नदियां समुद्रसे मिलती हैं, उसी प्रकार ये (इन्द्रवः) सोमरस (त्वा आविशन्तु) तुझमें प्रविष्ट हों, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वां) तुझसे बढ़कर (न अतिरिच्यते) और कोई महान् नहीं है ॥ ४ ॥

१ हे इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते — हे इन्द्र ! तुझसे बढ़कर और कोई महान् नहीं है ।

[ १९८ ] (गाथिनः) सामगान करनेवाले मनुष्य (इन्द्रं इत्) इन्द्रको ही (बृहत् अनुषत) बृहत्सामको गाकर प्रसन्न करते हैं । (अर्किणः अर्केभिः) पूजा करनेवाले मनुष्य स्तोत्रोंसे उसीकी पूजा करते हैं, (वाणीः इन्द्रं अनुषत) हमारी वाणी इन्द्रका ही गान करती है ॥ ५ ॥

[ १९९ ] इन्द्र (ऋभुक्षणं रयिं) श्रेष्ठ धन हमें देवे (ऋभुं नः इषे ददातु) हमें अन्नके लिए कारीगर देवे (वाजी वाजिनं ददातु) बलवान् इन्द्र हमें धन देवे ॥ ६ ॥

१ ऋभु-क्षणं रयिं ददातु— इन्द्र कारीगरोंका पालन करनेवाले धन हमें देवे ।

२ नः इषे ऋभुं ददातु— हमें अन्न मिलनेके लिए कारीगर देवे ।

३ वाजी वाजिनं ददातु— बलवान् इन्द्र बल देवे ।

[ २०० ] (स्थिरः विचर्षणिः) स्थिर, अचंचल यह जानी इन्द्र (महत् भयं) महान् भयको (अंग हि अभीषत्) भीष्म ही दूर करता है, और उन भयोंको (अप-चुच्यवत्) स्थानसे हटा देता है ॥ ७ ॥

१ स्थिरः विचर्षणिः महद् भयं अभीषत् अपचुच्यवत्— युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला और जानी वह इन्द्र महान् भयको दूर करता है और उन्हें स्थानसे हटा भी देता है ।

[ २०१ ] हे (गिर्वणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (इमा गिरः) ये हमारी स्तुतियां (त्वां) तुझे ही (वत्सं धेनवः गावः न) जिस प्रकार बछड़ेको दूध देनेवालीं गायें प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥



२०२ इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।५७।१ )

२०३ न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । न कथं यथा त्वम् ॥ १० ॥

( ऋ. ४।१०।१ )

इति प्रथमा वसतिः ॥ १ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० ८ । उ० ७ । षा० ३५ । (ठु) ॥ ]

[ २ ]

( १-१० ) १,४ त्रिशोकः काण्वः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ वत्सः काण्वः; ( ऋ० वशोऽश्व्यः ); ५ सुकस आङ्गिरसः;

६, ९ वामदेवो गौतमः; ७ विश्वामित्रो गायिनः । ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० भुतकसः सुकसो वा

आङ्गिरसः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

२०४ तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४१।२८ )

२०५ असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।४ )

२०६ सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मिश्रास्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४६।४ )

२०७ यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शानि पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।४५।४१ )

[ २०२ ] ( इन्द्रा पूषणा ) इन्द्र और पूषा इन देवताओंको ( नु वयं ) हम ( स्वस्तये ) अपने कल्याणके लिए ( सख्याय ) मित्रताके लिए और ( वाज-सातये ) अश्वकी प्राप्तिके लिए ( हुवेम ) प्रार्थना करके बुलाते हैं ॥ ९ ॥

[ २०३ ] हे ( वृत्र-हन् इन्द्र ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( त्वत् उत्तरं न कि अस्ति ) तुमसे ज्यादा श्रेष्ठ और कोई नहीं है, और ( ज्यायान् ) महान् भी कोई नहीं है ( यथा त्वं ) जैसा तू है, ( एवं ) वैसा ( न कि ) दूसरा कोई नहीं है ॥ १० ॥

१ हे वृत्रहन् इन्द्र ! त्वत् उत्तरं न कि अस्ति— हे वृत्र नाशक इन्द्र ! तुमसे बढकर श्रेष्ठ कोई भी नहीं है ।

॥ यहाँ नववां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[ २०४ ] ( वः जनानां तरणिं ) तुम लोगोंको [ दुखोंसे ] पार करानेवाले ( त्रदं ) शत्रुको भय बिखानेवाले ( गोमतः वाजस्य ) गायोंसे मिलनेवाले अश्वका दान करनेवाले ( समानं उ ) और सदा उन्नत रहनेवाले इन्द्रकी ( प्रशंसिषम् ) में प्रशंसा करता हूँ ॥ १ ॥

१ जनानां तरणिं, त्रदं, समानं प्रशंसिषम्— सबका संरक्षण करनेवाले और शत्रुको भय देनेवाले इन्द्रकी हम सदा स्तुति करते हैं ।

[ २०५ ] हे इन्द्र ! ( ते गिरः असृग्रं ) तेरी स्तुतिके लिए स्तोत्रोंको मैंने तैय्यार किया है । वे स्तुतियाँ ( वृषभं पतिं त्वा ) बलवान् और सबका पालन करनेवाले तुझे ( प्रति उदहासत ) प्राप्त हुई हैं, और उनका तूने ( स-जोषाः ) सेवन किया है ॥ २ ॥

[ २०६ ] ( अ-द्रुहः ) द्रोह न करनेवाले मरुत्, मित्र और अर्यमा ( यं पान्ति ) जिसकी रक्षा करते हैं, ( सः मर्त्यः ) वह मनुष्य ( सु-नीथः घ ) निश्चयसे उत्तम मार्गपर चलनेवाला होता है ॥ ३ ॥

१ यं अद्रुहः पान्ति स मर्त्यः सुनीथः— जिसका द्रोह न करनेवाले देव संरक्षण करते हैं, वह मनुष्य उत्तम मार्गसे जानेवाला होता है ।

[ २०७ ] हे इन्द्र ! ( यत् ) जो धन तूने ( वीडौ ) मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, ( यत् स्थिरे ) जो धन स्थिर स्थानमें रखा हुआ है, ( यत् पर्शानि पराभृतं ) जो भूमिमें रखा हुआ है, ( तत् स्पार्हं वसु ) उस उत्तम धनको ( आभर ) हमें भरपूर दे ॥ ४ ॥



२०८ श्रुतं वा वृत्रहन्तमं प्र शर्धे चर्षणीनाम् । आशिषे राधसे मह ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१३।१६)

२०९. अं० तं इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरंशक परेमाणि ॥ ६ ॥

२१० धानावन्तं करमिणमपूवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥ (३५२११)

२११ अपां फेनेन नमुचैः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।१४।१३)

२१२ इमे त इन्द्र सौमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥

२१३ तुभ्यं<sup>१ २</sup> सुतासः<sup>३ २ ३</sup> सोमाः<sup>१ २</sup> स्तीर्णं<sup>३ २</sup> बहिर्विभावसो । स्तोतुभ्यं<sup>३ १ २</sup> इन्द्र मृडय ॥ २० ॥

(क्र. ८१३.१२५)

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० ८ । उ० २ । धा० ३३ । (ठि) । ]

[ २०८ ] ( वृत्र-हन्तामं शार्धं ) शत्रुके मारनेवाले बलको तुमने ( श्रुतं ) सुना ही है, ( चर्षणीनां ) मनुष्योंमें ( महे राधसे ) महान् धनकी प्राप्तिके लिए उस बलको ( प्र आशिषे ) उपभोगके लिए ( वः ) तुम्हें देता हूँ ॥ ५ ॥

[२०६] हे (शूर इन्द्र) वीर इन्द्र ! (ते श्रवसे) तेरा यश सुननेके लिए (अरं गमेम) बहुतसे अवसर हमें मिलें, हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (त्वावतः परेऽमणि) तेरे समान श्रेष्ठ देवताके संरक्षणमें (अरं) आनन्वित होनेके लिए हमें पर्याप्त अवसर मिले ॥ ६ ॥

[ २१० ] हे इन्द्र ! ( धानावन्तं ) भुंजे हुए, ( करस्मिभणं ) वही और सत्तूसे मिश्रित ( अपूपवन्तं ) पुर्णोंके साथ तथा ( उक्थिथनं ) स्तोत्र जिसके साथ बोले जाते हैं, ऐसे ( नः ) हमारे सोमरसको ( प्रातः जुषस्व ) सबरे सेवन कर ॥७॥

[ २११ ] ( यत् ) जब ( विश्वाः स्पृधः अजयः ) सब शत्रुकी सेनाओंको हरा दिया, तब ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( अपां फेनेन ) जलोंके मागसे ( नमुचे शिरः उद्वर्तयः ) नमुचिके सिरको तोड़ा ॥ ८ ॥

१ अथां फेन— पानीकां ज्ञान, समुद्री ज्ञान ।

२ नमुचिः— वीघ्र अच्छा न होनेवाला रोग, वीघ्र अच्छा न होनेवाला रोग समुद्री भागके अनुपानसे ठीक हो जाता है ।

[ २१२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( इमे सोमाः ) ये सोमरस ( सुतासः ) निकालकर तैय्यार किए गए हैं ( च ये सोत्वाः ) और जो रस निकालकर तैय्यार किए गए हैं, हे ( प्रभू-वसो ) बहुत सोरा घन पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( तेषां मत्स्व ) उन सोमरसोंसे तू आनन्दित हो ॥ ९ ॥

[ २१३ ] हे ( विभावसो ) तेजस्वी धन पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( तुभ्यं सोमाः सुतासः ) तेरे लिए ये सोमरस निकालकर तैय्यार किए हैं, और ( बर्हिः स्तीर्णं ) आसन फैलाकर रखा हुआ है, हे इन्द्र ! इस कुशासनपर बैठ और सोम पिए, तथा ( स्तोतृभ्यः ) उपासकोंको ( मृडय ) सुखी कर ॥ १० ॥

॥ यहाँ दसवां खंड समाप्त हुआ ॥



[ ३ ]

( १-९ ) १ शुनःशेष आजोगतिः; २ श्रुतकक्ष आंगिरसः ( ऋ० सुकक्षो आंगिरसो वा; ) ३ त्रिशोकः काण्वः;  
४ मेधातिथिः काण्वः; ५ गोतमो राहूगणः; ६ ब्रह्मातिथिः काण्वः; ७ विश्वामित्रो गायिनो जमदग्निर्वा;  
८ प्रस्कण्वः काण्वः ( ऋ० कण्वो घोरः ); ९ मेधातिथिः काण्वः ॥ इन्द्रः ( ऋ० ५ विश्वेदेवाः ),  
६ अश्विनौ; मित्रावरुणौ; ८ मरुतः; ९ विष्णुः ) ॥ गायत्री ॥

२१४ आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

( ऋ. १।३०।१ )

२१५ अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।१० )

२१६ आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥

( ऋ. ८।४५।४ )

२१७ वृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमृतये । साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।३२।१० )

२१८ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।९०।१ )

२१९ दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्चितत् । वि भानुं विश्वथातनत् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।५।१ )

[ ११ ] एकादशः खण्डः ।

[ २१४ ] ( वाजयन्तः ) अन्नवाले हम यजमान ( शतक्रतुं ) सैंकड़ों उत्तम काम करनेवाले ( मंहिष्ठं ) महान् ( वः इन्द्रं ) तुम्हारे इन्द्रको ( कृविं यथा ) खेतको जैसे पानीसे सींचते हैं, उसी प्रकार ( इन्दुभिः आ सिञ्चे ) सोमरसोंसे सींचते हैं ॥ १ ॥

[ २१५ ] हे इन्द्र ! ( अतः चित् ) इस धुलोकसे ( शत-वाजया ) सैंकड़ों प्रकारके बलसे तथा ( सहस्र-वाजया ) हजारों तरहके अन्नसे युक्त होकर ( इषा ) रसोंके साथ ( नः ) हमारे पास ( उप याहि ) आ ॥ २ ॥

[ २१६ ] ( जातः वृत्रहा ) उत्पन्न होते ही वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने ( बुन्दं आददे ) बाण हाथमें ले लिया और ( मातरं विपृच्छात् ) अपनी मातासे पूछा कि ( के के उग्राः इह शृण्विरे ) कौन कौन महान् वीर यहां प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥

[ २१७ ] ( ऊतये ) सभीके संरक्षणके लिए ( सृप्रकरस्नं ) हाथोंको फैलानेवाले, ( अवसे ) संरक्षणके लिए ( साधः कृण्वन्तं ) साधनोंको देनेवाले, और ( वृबदुक्थं ) जिसकी बहुत स्तुति की जाती है, ऐसे उस इन्द्रको ( हवामहे ) हम बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[ २१८ ] ( मित्रः वरुणः ) मित्र और वरुण ये ( विद्वान् ) ज्ञानी देव ( नः ) हमें ( ऋजु-नीती नयति ) सरल नीतिके मार्गसे लेजाते हैं । ( देवैः सजोषाः अर्यमा ) देवोंके साथ समान रीतिसे रहनेवाला अर्यमा भी हमें सरल मार्गसे उन्नतिको पहुंचावे ॥ ५ ॥

[ २१९ ] ( दूरात् ) दूर आकाशकी पूर्व दिशावाली ( इह सतः एव ) मानों यहीं है ऐसी दिखाई देनेवाली तथा ( अरुणप्सुः ) अरुण प्रकाशकी फैलानेवाली उषा ( यत् अशिश्चितत् ) जब प्रकाशित होने लगी, तब ( भानुं ) प्रकाशको ( विश्वथा व्यतनत् ) चारों ओर फैलाने लगी ॥ ६ ॥

८ ( साम. हिंदी )



२२० आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ७ ॥ (ऋ. ३।६२।१६)

२२१ उदु त्ये सूनुवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्तत । वाश्रा अभिजु यातवे ॥ ८ ॥ (ऋ. १।२७।१०)

२२२ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥ ९ ॥ (ऋ. १।२२।१७)

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ६ । उ० १ । धा० ३९ । (को) ॥ ]

[ ४ ]

( १-१० ) १, ७, ८ मेधातिथिः काण्वः; २ वामदेवो गौतमः; ३, ५ मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चाङ्गिरसः; ४ विश्वामित्रो गायिनः; ६ दुर्मित्रः ( सुमित्रो वा ) कौत्सः; ९ विश्वामित्रो गायिनोऽभीपाद् उदलो वा; १० श्रुतकक्षः

( ऋ० सुक्रतो वा ) आंगिरसः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

२२३ अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिव ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३२।२१)

२२४ कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिध्यस्य वर्धनम् ॥ २ ॥

२२५ उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।३।१४)

२२६ इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः । हरिवांसुतानां सखा ॥ ४ ॥

[ २२० ] ( सु-क्रतू मित्रा-वरुणा ) उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण ( नः गव्यूति ) हमारे गौ-समूहको ( घृतैः आ उक्षतं ) घीसे अथवा घी उत्पन्न करनेवाले दूधसे भरपूर करे, अर्थात् हमें बहुतसा दूध देनेवालीं गायें वे, ( रजांसि ) लोकोंको ( मध्वा ) मधुर रससे सिंचित करे ॥ ७ ॥

[ २२१ ] ( त्ये सूनुवः गिरः ) तेरे पुत्र मरुत् गर्जना करते हुए ( यज्ञेषु ) यज्ञमें ( काष्ठाः उ उत् अत्नते ) दिशाओंसे ज्वालाओंके समान फैलते हैं इस कारण ( वाश्राः ) रंभाती हुई गायोंको ( अभिजु यातवे ) घुटनेतक भरे पानीमें जाना पड़ता है ॥ ८ ॥

[ २२२ ] ( विष्णुः ) व्यापक ईश्वरने ( इदं विचक्रमे ) इस विश्वमें ऐसा पराक्रम किया है, कि यहां ( त्रेधा पदं निदधे ) तीन प्रकारसे अपने पैरोंको इसने रखा है । ( अस्य पांसुले ) इसके धूलसे भरे एक कवचके स्थानमें सब जगत् ( समूढं ) समा गया है ॥ ९ ॥

॥ यहां ग्यारहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १२ ] द्वादशः खण्डः ।

[ २२३ ] हे इन्द्र ! ( मन्यु-पाविणं ) क्रोधित होकर सोमरसोंको निकालनेवाले उज्जमानको ( अतीहि ) छोड़ दे, ( सु-सुवांस उपेरय ) और उत्तम रीतिसे सोमरस निकालनेवालेके पास जा, और ( अस्य रातौ ) इसके यज्ञमें ( सुतं पिव ) सोमरस पी ॥ १ ॥

[ २२४ ] ( महे प्रचेतसे देवाय ) महान् ज्ञानी इन्द्र देवके लिए ( कदु वचः शस्यते ) तुम्हसा दिखाई देनेवाला हमारा स्तोत्र भी प्रशंसित होता है, क्योंकि ( तत् इत् अस्य वर्धनं ) वे स्तोत्र इन्द्रके गुणोंका वर्णन करनेवाले ही हैं ॥ २ ॥

[ २२५ ] ( अ-गोः ) स्तुति न करनेवालेका ( अयिः ) शत्रु इन्द्र ( शस्यमानं उक्थं च न ) कहे जानेवाले स्तोत्रोंको ( न आचिकेत ) नहीं जानता है, ऐसी बात नहीं, और ( गीयमानं गायत्रं न ) गाये जानेवाले गायत्र सामको नहीं सुनता, ऐसा भी नहीं, वह अवश्य जानता और सुनता है ॥ ३ ॥

[ २२६ ] ( वाजानां वाजपतिः ) बलवानोंमें भी सबसे अधिक बलवान् ( हरिवान् इन्द्रः ) घोड़ोंको पास रखनेवाला इन्द्र ( उक्थेभिः मन्दिष्ठः ) स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर ( सुतानां सखा ) सोमयज्ञ करनेवालोंका मित्र होता है ॥ ४ ॥



२२७ आ याद्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः । महा इव युवजानिः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।२।१९ )

२२८ कदा वसो स्तोत्रं हृत आ अत्र श्मशा रुधद्राः । दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥ ६ ॥

( ऋ. १०।१०५।१ )

२२९ ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतं रनु । तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।१५।९ )

२३० वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ८ ॥

( ऋ. ८।३२।७ )

२३१ एन्द्र पृथु कासु चिक्ष्मणं तनूषु धेहि नः । सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ ९ ॥

२३२ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१२।२८ )

इति चतुर्थी वशतिः ॥ ४ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [ स्व० १२ । उ० ना । धा० ३० । यौ ॥ ]

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इत्येकसामि समाप्तम् ॥

[ २२७ ] हे इन्द्र ! हमारे ( सुतं उप आ याहि ) सोमयज्ञमें आ, ( वाजेभिः मा हृणीयथाः ) दूसरोंके द्वारा दिए गए हविष्यान्न पर दृष्टि भी मत डाल, ( युवजानिः महान् इव ) जवान स्त्री रखनेवाला तरुण पुरुष अपनी स्त्रीकी ओर जिस प्रकार नजर रखता है, उस प्रकार तू कर ॥ ५ ॥

[ २२८ ] हे ( वसो ) व्यापक इन्द्र ! ( स्तोत्रं हृतं ) स्तोत्रोंको सुननेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( दीर्घं सुतं ) विशेष रूपसे निकाले गए सोमरसोंमें ( वाताप्याय श्मशा ) जल मिलानेके लिए जैसे नहरें रोकते हैं, उसी प्रकार ( कदा अवारुधत् वा ) तुझे कब रोकें और तुझे वरण करें ॥ ६ ॥

[ २२९ ] हे इन्द्र ! ( ब्राह्मणात् राधसः ) ब्राह्मण ग्रंथोंको बोलनेवालेके यज्ञ पात्रसे ( सोमं ऋतून् अनु पिब ) सोमरसोंको ऋतुओंके अनुसार पी, क्योंकि ( तव इदं सख्यं ) तेरी यह मित्रता ( अस्तृतं ) कभी न टूटनेवाली है ॥ ७ ॥

१ तव सख्यं अस्तृतं— तेरी मित्रता कभी टूटती नहीं है ।

[ २३० ] हे ( गिर्वणः इन्द्र ) प्रशंसनीय इन्द्र ! ( ते ) तेरी ( वयं घा ) हम ( स्तोतारः स्मसि ) स्तुति करनेवाले हैं, हे ( सोम-पाः ) सोम पीनेवाले इन्द्र ! ( त्वं नः जिन्व ) तू हमें सन्तुष्ट कर ॥ ८ ॥

[ २३१ ] हे इन्द्र ! ( पृथु कासुचित् ) सम्बन्धमें आये हुए किन्हीं ( नः तनूषु ) हमारे अंगोंमें ( नृ-मणं आधेहि ) बल स्थापन कर, हे ( उग्र ) वीर इन्द्र ! ( सत्रा-जित् पौंस्यं ) सब शत्रुओंको जिससे हम एक साथ जीत लें ऐसा बल हममें स्थापित कर ॥ ९ ॥

१ पृथु नः तनूषु नृमणं आधेहि— हमारे सम्बन्धियोंमें नेतृत्वके गुणों और बलोंको बढ़ा ।

२ सत्राजित् पौंस्यं आधेहि— सब शत्रुको एक साथ जितानेवाले बलको हमें दे ।

[ २३२ ] हे इन्द्र ! ( वीर-युः एव असि ) बलशाली शत्रुओंके साथ भी तू युद्ध करनेवाला है । ( हि ) क्योंकि तू ( शूरः उत स्थिरः ) शूर है और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है । इसलिए ( ते मनः ) तेरा मन ( राध्यं ) स्तुतिके योग्य है ॥ १० ॥

१ वीरयुः असि— शत्रुओंके साथ तू युद्ध करनेवाला है, अथवा वीरोंको संयुक्त करके उन्हें तू लानेवाला है ।

२ शूरः उत स्थिरः असि— तू शूरवीर और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है ।

३ ते मनः राध्यं— तेरा मन स्तुति और पूजाके योग्य है ।

॥ यहां बारहवां खंड समाप्त हुआ ॥



## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

[ ५ ]

( १-१० ) १, ६, ९ वसिष्ठो भ्रातृवर्णः; २ भरद्वाजः ( ऋ० शंयुः ) बार्हस्पत्यः; ३ प्रस्कण्वः काण्वः, ४ नोधा गौतमः;  
५ कलिः प्रागायः; ६ मेधातिथिः काण्वः; ७ भर्गः प्रागायः; १० प्रगाथो घौरः काण्वः ॥ इन्द्रः, ९ मरुतः ॥ बृहती ॥

२३३ अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

इशानमस्य जगतः स्वर्दशमीशानमिन्द्र तस्थुषः

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।२२ )

२३४ त्वामिद्वि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्तः

॥ २ ॥ ( ऋ. ६।४६।१ )

२३५ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणैव शिक्षति

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४९।१ )

२३६ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे

॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८८।१ )

[ १३ ] त्रयोदशः खण्डः ।

[ २३३ ] हे ( शूर इन्द्र ) शूर इन्द्र ! ( अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं ) इस जगम और स्थावर जगत्के स्वामी तथा ( स्वर-दशं त्वा ) सबोंको देखनेवाले तुझे हम ( अ-दुग्धाः धेनवः इव ) दूध न डूही हुई गायोंके समान ( अभि नोनुमः ) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

१ अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं स्वर्दशं त्वा अभिनोनुमः— इस चलनेवाले और स्थिर जगत्का तू स्वामी है, तू सभीको देखनेवाला है, तुझे हम नमस्कार करते हैं ।

[ २३४ ] ( कारवः ) स्तुति करनेवाले हम ( वाजस्य सातौ ) अन्नका दान होनेके समय हे इन्द्र ! ( त्वां इत् हि हवामहे ) तुझे ही बुलाते हैं ( सत्पतिं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुझे ( नरः वृत्रेषु हवन्ते ) सब मनुष्य वृत्रके साथ होनेवाले युद्धमें सहायताके लिए बुलाते हैं, उसी प्रकार ( अर्चतः ) घोड़ोंके कारण होनेवाले ( काष्ठासु ) युद्धोंमें भी तुझे ही सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ २ ॥

१ सत्पतिं त्वा नरः वृत्रेषु हवन्ते— सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाले तुझे लोग युद्धोंमें मददके लिए बुलाते हैं ।

२ काष्ठासु त्वा हवन्ते— अन्य युद्धोंमें भी तुझे ही बुलाते हैं ।

[ २३५ ] ( यः पुरु-वसुः मघवा ) जो बहुतसा धन अपने पास रखनेवाला इन्द्र ( जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति ) स्तुति करनेवाले हमारे लिए हजारों प्रकारसे धन देता है, ( यथा-विदे ) जैसे जैसे तुम जानते हो, उस प्रकार हे यज्ञ करनेवालो ! ( वः ) तुम ( सु-राधसं इन्द्रं ) उत्तम धन देनेवाले इन्द्रकी ( अभि अर्चं ) पूजा करो ॥ ३ ॥

१ पुरुवसुः मघवा सहस्रेण शिक्षति— बहुत धनवाला वह इन्द्र हजारों प्रकारसे धन देता है ।

[ २३६ ] हे यजमानो ! ( दस्म ) सुन्दर और ( ऋती-षहं ) रुकावटें पैदा करनेवाले शत्रुको मारनेवाले ( वसोः अन्धसः मन्दानं ) सबको जीवन देनेवाले सोमरस रूपी अन्नको पीकर आनन्दित होनेवाले ( वः ) तुम्हारे पूज्य इन्द्रको ( स्वसरेषु ) गौशालामें ( धेनवः वत्सं न ) गायें जैसे बछड़ेके पास जाती हैं, उसी प्रकार ( गीर्भिः अभिनवामहे ) स्तुति करते हुए हम प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

१ ऋतीषहं गीर्भिः अभि नवामहे— बाधा करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ।



- २३७ तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।  
 बृहद्रायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।६६।१ )
- २३८ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।  
 आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।३२।२० )
- २३९ पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।  
 आपिनो बोधि सधमाद्ये वृधेऽस्मा अवन्तु ते धियः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३।१ )
- २४० त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।  
 उद्रावृषस्व मघवन् गविष्टये उदिन्द्राश्चमिष्टये ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६१।७ )

[ २३७ ] हे ऋत्विजो ! ( वः ) तुम ( तरोभिः ) तेज दौडनेवाले घोडोंसे युक्त ( विदद् वसुं ) धनवान् ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( स-बाधः ) शत्रुओंसे ( ऊतये ) संरक्षणके लिए ( बृहत् गायन्तः ) बृहत् साम गाते हुए पूजा करो, मैं भी ( सुत-सोमे अध्वरे ) सोम यज्ञमें ( भरं कारिणं न ) भरपूर पोषण करनेवाले इन्द्रको ( हुवे ) बुलाता हूँ ॥ ५ ॥

१ विदद्वसुं इन्द्रं ऊतये बृहत् गायन्तः हुवे— धनवान् इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बृहत् सामका गान करते हुए सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

[ २३८ ] ( तरणिः इत् ) युद्धोंमें तारनेवाला वीर ( युजा पुरन्ध्या ) उत्तम बुद्धिसे जैसे ( वाजं सिषासति ) अस्त्र प्राप्त करना चाहता है, और ( सुद्रुवं नेमिं ) उत्तम लकड़ीकी धुराको ( त्वष्टा इव ) जैसे बढई ठीक करता है, उसी तरह ( पुरु-हूतं ) अनेकोंके द्वारा पूजित होनेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( गिरा वः आं नमे ) वाणीसे नमस्कार करके अपने अनुकूल बनाते हैं ॥ ६ ॥

[ २३९ ] हे इन्द्र ! ( रसिनः गोमतः ) रसवाले तथा गौदुग्धसे मिश्रित इस ( नः सुतस्य पिब ) हमारे द्वारा निचोड़े गए सोमरसोंको पी, और ( मत्स्व ) आनन्दित हो, ( सधमाद्ये ) एक साथ बैठकर जिसमें आनन्दित होते हैं, ऐसे इस यज्ञमें ( आपिः ) तू हमारा भाई होता है, इसलिए ( नः वृधे बोधि ) हमारे उन्नतिके मार्गको दिखा, ( ते धियः अवन्तु ) तेरी बुद्धि हम सबोंका संरक्षण करे ॥ ७ ॥

१ सधमाद्ये आपिः नः वृधे बोधि— एकत्र बैठकर जहां कर्म किया जाता है, उस काममें तू हमारा मित्र हो, और हमारी उन्नतिका मार्ग हमें बता ।

२ ते धियः अवन्तु— तेरी बुद्धि हमारा संरक्षण करे ।

[ २४० ] हे इन्द्र ! ( हि त्वं ) निश्चयसे तू ( वसुत्तये एहि ) धन देनेके लिए आ, और आकर ( चेरवे ) उत्तम आचरण करनेवाले मुझे ( भगं विदाः ) धन दे, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( गविष्टये उत् वावृषस्व ) गायोंकी इच्छा करनेवाले मुझे गाय दे, हे इन्द्र ! ( इष्टये ) इच्छा करनेवाले मुझे ( अश्वं उत् ) घोडा भी दे ॥ ८ ॥

१ त्वं वसुत्तये एहि— तू धन देनेके लिए आ ।

२ चेरवे भगं विदाः— उत्तम आचरण करनेवाले मनुष्यको धन दे ।



२४१ न हि वध्वरमं च न वसिष्ठः परिमंसते ।

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिवन्तु कामिनः

॥ ९ ॥ ( ऋ. ७।५९।३ )

२४२ मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमिस्तोता वृषणंसचा सुते मुहुःकथा च शंसत

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

इति पञ्चमी वंशतिः ॥ ५ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्व० १२ । उ० ५ । धा० ७३ । ( जि ) ॥ ]

इति तृतीय प्रपाठके प्रथमोऽर्घः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ पुरुहन्मा आंगिरसः; २, ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वो; ४ विश्वामित्रो गाथिनः; ५ गौतमो

( गौतमो वा ) राहूगणः; ६ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ; ७, ८, ९ मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा ( ऋ० मेध्यातिथिः )

काण्वः; १० देवार्तिथीः काण्वः ॥ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

२४३ नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।३ )

२४४ य ऋते चिदभिथ्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।

सन्धाता सन्धि मघवा पुरुवसुर्निष्कर्ता विहृतं पुनः

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।१२ )

[ २४१ ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( वसिष्ठः चः ) वसिष्ठ ऋषि तुममेंसे ( चरमं चन ) छोटेको भी ( नहि परि-  
मंसते ) छोड़कर स्तुति नहीं करता, अपितु सभीकी स्तुति करता है, ( अद्य ) आज ( अस्माकं सुते ) हमारे यज्ञमें ( विश्वे  
मरुतः ) सब मरुत ( सचा ) एक स्थानपर बैठकर सोमरस ( पिवन्तु ) पीवें ॥ ९ ॥

[ २४२ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( अन्यत् मा चित् विशंसत ) इन्द्रके सिवाय और किसीकी स्तुति न करो,  
( मा रिषण्यत ) बेकार परिश्रम मत करो, ( सुते ) सोम यज्ञमें ( वृषणं इन्द्रं इत् ) बलवान् इन्द्रकी ही ( सचा  
स्तोत ) एक साथ बैठकर स्तुति करो, ( उक्था च ) और स्तोत्रोंको ( मुहुः शंसत ) बार बार कहो ॥ १० ॥

१ सचा स्तोत— एक जगह बैठकर स्तुति करो ।

॥ यहाँ तेरहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १४ ] चतुर्दशः खण्डः ।

[ २४३ ] ( यः ) जो यजमान ( सदा-वृधं ) सदा वृद्धिको प्राप्त होनेवाले ( विश्व-गूर्तं ) सभीसे प्रशंसित होने-  
वाले ( ऋभ्वसं ) महान् ( ओजसा अधृष्टं ) बलके कारण किसीसे न दबनेवाले ( धृष्णुं ) शत्रुकी दबानेवाले ( इन्द्रं )  
इन्द्रको भैं ( यज्ञैः न चकार ) यज्ञसे अपने अनुकूल बनाता हूँ । ( तं ) उस यजमानको ( कर्मणा न किः नशत् ) कर्मोंसे  
कोई बबा नहीं सकता ॥ १ ॥

न— समान, अनुकूल, नहीं ।

[ २४४ ] ( यः ) जो इन्द्र ( अभि-थ्रिषः ) जोड़नेके साधनोंके ( ऋते चित् ) बिना भी ( जत्रुभ्यः आतृदः )  
गलेकी स्नायुओंसे रक्त निकलनेपर भी ( पुरा संधि सन्धाता ) फिर संधियोंको जोड़ देता है, वह ( मघवा पुरुवसुः )  
बलवान् और बहुतसे द्रव्योंको पासमें रखनेवाला इन्द्र ( विहृतं पुनः निष्कर्ता ) कटे हुए भागोंको फिर जोड़ देता है ॥ २ ॥

१ पुरा संधि संधाता— फिर संधियोंको जोड़ता है ।

२ विहृतं पुनः निष्कर्ता— कटे हुए भागोंको जोड़ता है ।



२४५ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१।२४ )

२४६ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव तांइहि

॥ ४ ॥ ( ऋ. ३।४५।१ )

२४७ त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्दितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः

॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८४।१९ )

२४८ त्वमिन्द्र यशा अस्यूजीषी शवसस्पतिः ।

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः

॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।९०।९ )

२४९ इन्द्रमिदेवतातये इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये

॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३।९ )

[ २४५ ] हे इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजः केशिनः ) मंत्र बोलते ही जुड़ जानेवाले, अच्छे बालोंवाले ( हिरण्यये रथे ) सोनेके रथमें ( युक्ताः ) जुड़े हुए ( आ सहस्रं शतं ) सैंकड़ों और हजारों ( हरयः ) घोड़े ( त्वा ) तुझे ( सोमपीतये ) सोम पीनेके लिए ( आवहन्तु ) ले आवें ॥ ३ ॥

शतं सहस्रं हरयः— सैंकड़ों और हजारों घोड़े, किरण ।

[ २४६ ] हे इन्द्र ! ( मन्द्रैः ) आनन्ददायक ( मयूर-रोमभिः ) मोरके समान केशोंसे युक्त ( हरिभिः ) घोड़ोंसे यात्री जैसे ( धन्वा इव ) रेगिस्तानको पार कर जाता है, उसी प्रकार ( तान् अति आयाहि ) बीचमें आनेवाली रुकावटोंको बूर करते हुए आ, ( इत् ) और ( पाशिनः न ) हाथमें जालको लेकर शिकारी जैसे पक्षियोंको पकड़ता है, उस प्रकार ( त्वा मा नियेमुः ) तुझे पकड़कर तेरे बीचमें कोई रुकावट पैदा न करे, ( एहि ) तू आ ॥ ४ ॥

[ २४७ ] ( अङ्ग शविष्ठ ) हे प्रिय और बलवान् इन्द्र ! ( देवः ) प्रकाशित होनेवाला तू ( मर्त्यं प्रशंसिषः ) उपासक मनुष्योंकी प्रशंसा करता है, हे ( मघवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( त्वदन्यः ) तेरे सिवाय दूसरा कोई भी ( मर्दिता नास्ति ) सुख देनेवाला नहीं है, तेरे लिए ही ( वचः ब्रवीमि ) ये स्तुतियां करता हूं ॥ ५ ॥

१ त्वद् अन्यः मर्दिता नास्ति— तेरे अलावा और कोई सुख देनेवाला नहीं है ।

[ २४८ ] ( इन्द्र ) हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( शवसः पतिः ) बलवान् ( ऋजीषी ) सोमरस पीनेवाला और ( यशाः ) यशस्वी ( असि ) है, तू ( अ-प्रतीनि पुरु वृत्राणि ) अत्यधिक बलशाली बहुतसे मित्रोंको ( अनुत्तः ) किसीकी प्रेरणाके बिना ही ( चर्षणी-धृतिः ) लोगोंके संरक्षणके लिए ( एकः इत् ) अकेले ही ( हंसि ) मारता है ॥ ६ ॥

१ अप्रतीनि पुरु वृत्राणि अनुत्तः, चर्षणी-धृतिः एक इत् हंसि— पीछे न हटनेवाले बहुतसे शत्रुओंको दूसरे किसीकी प्रेरणाके बिना, सब मनुष्योंके हित करनेके लिए अकेले ही मार देता है ।

[ २४९ ] ( देवतातये ) देवोंके लिए किए गए यज्ञमें ( इन्द्रं इत् हवामहे ) इन्द्रको ही हम बुलाते हैं, ( प्रयते अध्वरे इन्द्रं ) यज्ञके प्रारम्भ हो जानेपर इन्द्रको ही बुलाते हैं ( समीके वनिनः इन्द्रं ) यज्ञके समाप्त हो जानेपर भी हम उपासक इन्द्रको बुलाते हैं, उसी प्रकार ( धनस्य सातये इन्द्रं ) धनकी प्राप्तिके लिए भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ७ ॥



२५० <sup>३ १ २</sup> इमा उ त्वा <sup>३ १ २</sup> पुरुवसो <sup>३ १ २</sup> गिरो वर्धन्तु या मम ।

<sup>३ १ २</sup> पावकवर्णाः <sup>३ १ २</sup> शुचयो <sup>३ १ २</sup> विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।३।३ )

२५१ <sup>२ ३ १</sup> उदु <sup>२ ३ १</sup> त्ये मधुमत्तमा <sup>३ १ २</sup> गिर स्तोमास ईरते ।

<sup>३ १ २</sup> सत्राजितो <sup>३ १ २</sup> धनसा <sup>३ १ २</sup> अक्षितोतयो <sup>३ १ २</sup> वाजयन्तो रथा इव

॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३।९ )

२५२ <sup>१ २ ३</sup> यथा <sup>१ २ ३</sup> गौरो अपा <sup>१ २ ३</sup> कृतं <sup>१ २ ३</sup> तृष्यन्नैत्यवेरिणम् ।

<sup>३ १ २</sup> आपित्वे नः <sup>३ १ २</sup> प्रपित्वे <sup>३ १ २</sup> तूयमा <sup>३ १ २</sup> गहि <sup>३ १ २</sup> कण्वेषु <sup>३ १ २</sup> सु सचा <sup>३ १ २</sup> पिव

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।४।३ )

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ [ स्व० ११ । उ० ७ । घा० ७२ । (खा) ॥ ]

[ ७ ]

( १-१० ) १ भर्गः प्रागाथः; २, ८ रेभः काश्यपः; ३ जमदग्निर्भागवः; ४, ९ मेधातिथिः काण्वः; ( ऋ० मेध्या-  
तिथिः काण्वः ); ५, ६ नृमेघपुरुमेधावांगिरसौ; ७ वसिष्ठो मित्रावरुणिः; १० भरद्वाजः ( ऋ० शंयुः ) बार्ह-

स्पत्यः ॥ इन्द्रः; ३ मित्रावरुणादित्याः ॥ बृहती ॥

२५३ <sup>३ २ १</sup> शग्ध्युषु <sup>३ २ ३</sup> शचीपत इन्द्र <sup>३ २ ३</sup> विश्वाभिरुतिभिः ।

<sup>२ ३ १</sup> भगं न हि त्वा <sup>२ ३ १</sup> यशसं <sup>३ २ ३</sup> वसुविदमनु <sup>३ २ ३</sup> शूर चरामसि

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१५ )

२५४ <sup>१ २ ३</sup> या इन्द्र <sup>१ २ ३</sup> भुज आभरः <sup>१ २ ३</sup> स्वर्वाऽअसुरेभ्यः ।

<sup>३ २ ३</sup> स्तोतारमिन्मघवन्नस्य <sup>३ २ ३</sup> वर्धय <sup>३ २ ३</sup> ये च त्वे <sup>३ २ ३</sup> वृक्तवर्हिषः

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९।७।१ )

[ २५० ] हे ( पुरु-वसो ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( मम इमाः याः गिरः ) मेरी ये जो स्तुतियां हैं, वे ( त्वा वर्धन्तु ) तेरे यशको बढ़ावें, ( पावक-वर्णाः ) अग्निके समान तेजस्वी ( शुचयः विपश्चितः ) पवित्र विद्वान् लोग तेरी ( स्तोमैः अभ्यनूषत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[ २५१ ] ( सत्रा-जितः ) सदा शत्रुओंको जीतनेवाले ( धन-सा ) धन देनेवाले ( अक्षित-ऊतयः ) क्षीण न होनेवाले संरक्षणोंको करनेवाले, ( वाजयन्तः ) बलवान् ( रथाः इव ) रथके समान ( त्ये मधुमत्तमाः गिरः ) उन बहुत उत्तम स्तुति और ( स्तोमासः ) स्तोत्रोंको ( उत् ईरते ) बोला जाता है ॥ ९ ॥

[ २५२ ] ( यथा गौरः ) जैसे गौर मृग ( तृष्यन् ) प्यासा होकर ( अपा कृतं हरिणं ) पानीसे भरे हुए तालाबके पास ( अवैति ) जाता है, उसी प्रकार ( आपित्वे प्रपित्वे ) भाई चारेको याद करके है ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः तूयं आगहि ) हमारे पास जल्दी आ, और ( कण्वेषु सचा सु पिव ) कण्वके यज्ञमें बैठकर उत्तम रीतिसे सोम पी ॥ १० ॥

॥ यहाँ चौदहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १५ ] पञ्चदशः खण्डः ।

[ २५३ ] हे ( शचीपते शूर इन्द्र ) शक्ति सम्पन्न शूर इन्द्र ! ( विश्वाभिः उतिभिः ) सब संरक्षणके साधनोंके साथ ( शग्ध्यु ) इच्छित वर हमें दे, ( भगं न ) ऐश्वर्यवान्के समान ( यशसं ) यशस्वी और ( वसु-विदं ) धन देनेवाले ( त्वा ) तेरी ( अनुचरामसि ) आराधना हम करते हैं ॥ १ ॥

[ २५४ ] हे इन्द्र ! ( स्वर्वान् ) आत्म शक्तिसे युक्त तू ( याः भुजः ) जो भोग ( असुरेभ्यः आभरः ) असुरोंसे ले आया है, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( अस्य ) इस धनसे ( स्तोतारं वर्धय ) तेरी स्तुति करनेवालोंका संरक्षण कर, ( च ) और ( ये त्वे वृक्त-वर्हिषः ) जो तेरे लिए यज्ञमें भासनको फैलाते हैं, उनको बढ़ा ॥ २ ॥



- २५५ <sup>२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २</sup> प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।  
<sup>३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २</sup> वरूथ्येऽवरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१०।१९ )
- २५६ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।  
<sup>३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> समीचीनास ऋभवः समस्वरनुद्रा गृणन्त पूष्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।३।७ )
- २५७ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्माचत ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।८९।३ )
- २५८ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> येन ज्योतिरजनयन्नतावधो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।८९।१ )
- २५९ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।३२।२६ )

१ स्वर्वाङ्गान् याः भुजः असुरेभ्यः आभरः, अस्य स्तोतारं वर्धय— अपनी शक्तिसे युक्त रहनेवाला तू जो धन असुरोंसे ले आया है, उस धनकी सहायतासे उपासकोंको बढ़ा ।

[ २५५ ] हे ( ऋता-वसो ) यज्ञके लिए अपने पास धन रखनेवाले यज्ञ करनेवाले ! ( मित्राय ) मित्रके लिए ( अर्यम्णे ) अर्यमाके लिए और ( वरूथ्ये वरुणे ) यज्ञ शालामें बैठे हुए वरुणके लिए ( सचथ्यं छन्द्यं वचः ) गानेके योग्य, छन्दोबद्ध स्तोत्रोंको ( राजसु प्रगायत ) उनके विराजमान होजानेके बाद गाओ ॥ ३ ॥

[ २५६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आयवः ) याज्ञिक जन ( पूर्व-पीतये ) सबसे पहले सोम पीनेके लिए ( स्तोमेभिः त्वां अभि ) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं, ( समीचीनासः ऋभवः ) एकत्रित हुए ऋभुओंने ( समस्वरन् ) तेरी स्तुति की, ( रुद्राः ) रुद्रके पुत्र मरुतोंने भी ( पूष्यं गृणन्त ) पहलेके पुरुषोंके समान तेरी स्तुति की ॥ ४ ॥

[ २५७ ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( बृहते ) महान् इन्द्रके लिए ( वः ) तुम ( ब्रह्म अर्चत ) स्तोत्रोंको कहो, उसके अनन्तर ( वृत्र-हा ) वृत्रका नाश करनेवाला ( शत-क्रतुः ) संकड़ों कर्म करनेवाला ( शत-पर्वणा वज्रेण ) संकड़ों धाराओंवाले वज्रसे ( वृत्रं हनति ) वृत्रको मारता है ॥ ५ ॥

१ मरुतः— मरुत् गण, स्तुति करनेवाले, यज्ञ करनेवाले ।

२ वृत्रहा शतक्रतुः शतपर्वणा वज्रेण वृत्रं हनति— वृत्रको मारनेवाला तथा संकड़ों कार्य करनेवाला इन्द्र संकड़ों धारवाले वज्रसे वृत्रको मारता है ।

[ २५८ ] हे ( मरुतः ) यज्ञ कर्त्ताओ ! ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( वृत्र-हन्तमं बृहत् गायत ) वृत्रको नष्ट करनेवाले बृहत् नामक सामका गान करो, ( ऋता-वृधः ) यज्ञको बढ़ानेवाले लोगोंने ( देवाय ) इन्द्र देवके लिए ( देवं जागृवि ज्योतिः ) दिव्य जागृतिको करनेवाली सूर्यकी ज्योति ( येन अजनयत् ) उसकी सहायतासे उत्पन्न की है ॥ ६ ॥

[ २५९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः क्रतुं आभर ) हमें यज्ञ कर्म करनेका ज्ञान दे, ( यथा पिता पुत्रेभ्यः ) जिस प्रकार पिता पुत्रको शिक्षा देता है, उसी प्रकार ( नः शिक्ष ) हमें शिक्षा दे, हे ( पुरु-हूत ) बहुतोंद्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! ( यामनि ) यज्ञमें ( जीवाः ) हम लोग ( ज्योतिः अशीमहि ) सूर्यकी ज्योति प्रतिदिन देखें ॥ ७ ॥

१ नः क्रतुं आभर— हमें सुबुद्धि दे, उत्तम कर्म करनेकी बुद्धि दे ।

२ यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष— जैसे पिता लड़कोंको शिक्षा देता है, उस प्रकार तू हमें शिक्षा दे ।

३ यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि— यज्ञमें जीवित रहकर हम तेज प्राप्त करें ।



- २६० मा न इन्द्र परा वृणग्मवा नः सधमाद्ये ।  
 त्वं न ऊती त्वमिक्का आप्यं मा न इन्द्र परावृणक् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९।७ )
- २६१ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।  
 पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३।१ )
- २६२ यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।  
 यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ १० ॥ ( ऋ. ६।४।७ )
- इति सप्तमी वसतिः ॥ ७ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० १० । उ० १ । षा० ६२ । (पा) ॥ ]

[ ८ ]

- ( १-१० ) १ मेधातिथिः ( ऋ० मेध्यातिथिः ) काण्वः; २ रेभः काश्यपः; ३ वत्सः ( ऋ० वशोऽश्व्यः );  
 ४ भरद्वाजः ( शंयुः ) बार्हस्पत्यः; ५ नृमेघ आंगिरसः; ६ पुरुहन्मा आंगिरसः; ७ नृमेघ-पुरुमेधावांगिरसौ;  
 ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; १० कलिः प्रागाथः ॥ इन्द्रः ॥ बृहती ॥
- २६३ सत्यमित्था वृषेदसि वषज्जतिर्नोऽविता ।  
 वृषा द्युग्र शृण्विष परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।१० )

[ २६० ] हे इन्द्र ! ( नः मा परावृणक् ) हमें दूर मत कर, ( नः सधमाद्ये भव ) हमारे यज्ञमें आ, हे इन्द्र !  
 ( त्वं नः ऊती ) तू हमारा रक्षक है, ( त्वं इत् नः आप्यं ) तू ही हमारा भाई है, हे इन्द्र ! ( नः मा परावृणक् )  
 हमें दूर मत कर ॥ ८ ॥

१ हे इन्द्र ! नः मा परा वृणक्— हे इन्द्र ! तू हमें दूर मत कर ।

२ नः सधमाद्ये भव— हमारे यज्ञमें आ और सबके साथ बैठ ।

३ त्वं नः ऊती— तू हमारा रक्षा करनेवाला है ।

४ त्वं नः आप्यं— तू हमारा भाई है ।

[ २६१ ] हे ( वृत्रहन् ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! ( त्वा ) तुम ( वयं घ सुतावन्तः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले  
 हम सोमयज्ञमें ( आपः न ) जल प्रवाहोंके समान प्राप्त होते हैं, ( पवित्रस्य प्रस्रवणेषु ) पवित्र यज्ञोंमें ( वृक्त-बर्हिषः  
 स्तोतारः ) आसन फैलाकर स्तुति करनेवाले ( परि आसते ) एकत्र बैठते हैं, उसी प्रकार हम बैठते हैं ॥ ९ ॥

[ २६२ ] हे इन्द्र ! ( नाहुषीषु कृष्टिषु ) मानवी प्रजाओंमें ( ओजः नृम्णं च ) जो बल और पौरुष है, ( यद्  
 वा ) अथवा जो ( पञ्चक्षितीनां द्युम्नं ) पांच जनोंमें जो धन है, उस प्रकारके धन ( आ भरद्वाज ) हमें भरपूर दे, उसी  
 प्रकार ( सत्रा ) एकतासे बढनेवाला ( विश्वानि पौंस्या ) सब बल हमें दे ॥ १० ॥

१ पञ्चक्षितीनां द्युम्नं आभर— पांचजनोंकी एकतासे उत्पन्न होनेवाले तेज हमें प्राप्त हों ।

२ सत्रा विश्वानि पौंस्या आभर— एकतासे उत्पन्न होनेवाले सब बल हमें प्राप्त हों ।

॥ यहां पंद्रहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १६ ] षोडशः खण्डः ।

[ २६३ ] हे ( उग्र ) वीर इन्द्र ! तू ( इत्था ) इस प्रकार ( सत्यं वृषा इत् असि ) निश्चयसे बलवान् है,  
 ( वृष-ज्जतिः नः अविता ) सोमयज्ञ करनेवालों द्वारा रक्षाके लिए बुलानेके कारण तू हमारा संरक्षण कर । तू ( वृषा  
 हि शृण्विषे ) बलवान् सुना जाता है, ( परावति वृषा ) दूर देशमें भी तू बलवान् है और ( अर्वावति श्रुतः ) पासमें



- २६४ <sup>२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यच्छक्रासि परावति यदवावति वृत्रहन् ।  
<sup>१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँआ विवासति ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९७।४ )
- २६५ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।  
<sup>२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २</sup> इन्द्रं नाम श्रुत्यंशाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।४६।१४ )
- २६६ <sup>१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथंस्वस्तये ।  
<sup>१ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> छर्दियच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।४६।९ )
- २६७ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९९।३ )

१ वृषा— बलवान्, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला,

२ वृषा शृण्विषे— तू बलवान् प्रसिद्ध है ।

३ परावति अर्वावति वृषा श्रुतः— तू दूर और पासके देशोंमें शक्तिमान् प्रसिद्ध है ।

[ २६४ ] हे ( शक्र ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( यत् परावति असि ) जब तू दूर देशमें रहता है, और हे ( वृत्र-हन् ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! ( यत् अर्वावति ) जब तू पासके देशमें रहता है, हे इन्द्र ! ( अतः ) इस स्थानसे ( केशिभिः गीर्भिः ) अयाल वाले घोड़ेके समान शीघ्रगामी स्तुतियोंसे ( सुतावान् ) सोमयज्ञ करनेवाला ( त्वा आविवासति ) तुझे बुलाता है ॥ २ ॥

१ शक्र ! परावति असि, अर्वावति अस्मि— हे इन्द्र ! जैसा तू दूर है, वैसा ही तू पास भी शक्तिमान् है ।

२ अयाल— गर्दनके बाल ।

[ २६५ ] हे उद्गाता ! ( वः ) तुम अपने हितके लिए ( अन्धसः मदेषु ) सोमरसके आनन्दमें ( वीरं नाम ) स्वयं वीर रहते हुए शत्रुको झुकानेवाले ( विचेतसं श्रुत्यं ) ज्ञानी और सुप्रसिद्ध ( शाकिनं इन्द्रं ) इन्द्रकी शक्तिशाली ( महा गिरा वचः यथा ) विशेष स्तुतिके स्तोत्रोंको जैसे हो वैसे ( गाय ) गाओ ॥ ३ ॥

[ २६६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्रि-धातु त्रिवरूथं ) तीन मंजिलवाला तथा तीनों ऋतुओंमें सुख देनेवाला ( स्वस्तये छर्दिः शरणं ) सुखसे रहने योग्य उत्तम घर ( मघवद्भ्यः ) धनवान् यजमानको ( मह्यं च ) और मुझे भी दे ( एभ्यः दिद्युं यावय ) और इनसे शस्त्रोंको दूर कर ॥ ४ ॥

१ त्रि-धातु त्रिवरूथं छर्दिः शरणं स्वस्तये— तीन मंजिलोंवाले और तीनों ऋतुओंमें सुख देनेवाले घर रहनेके लिए प्राप्त हों ।

[ २६७ ] ( सूर्यं श्रायन्तः इव ) जिस प्रकार किरणें सूर्यका आश्रय लेकर रहती हैं, उसी प्रकार ( विश्वं इत् ) सब जगत् ( इन्द्रस्य भक्षत ) इन्द्रके ही आश्रयसे रहता है क्योंकि वह इन्द्र ( जातः जनिमानि ) उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवालोंको ( ओजसा करोति ) बलसे भाग देता है जैसे पुत्रको अपने ( भागं न ) पिताके धनमेंसे भाग प्राप्त होता है, उस प्रकार ( प्रति दीधिमः ) हम अपने भागकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥

१ विश्वं इन्द्रस्य भक्षत— सब जगत् इन्द्रके आश्रयसे रहता है ।

२ जातः जनिमानि ओजसा करोति— उत्पन्न हुए और होनेवाले सबोंको वह अपनी शक्तिसे बनाता है ।



२६८ न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।

एतग्वा चित् एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते

॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।७०।७ )

२६९ आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रः समत्सु भूषत ।

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम

॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।९०।१ )

२७० तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।

सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्टा गोषु वृण्वते

॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।३२।१६ )

२७१ कवेयथ कवेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।

अलर्षिं युध्म खजकृत्पुरंदरं प्र गायत्रा अगासिषुः

॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१।७ )

[ २६८ ] हे ( दीर्घायो ) लम्बी आयुवाले इन्द्र ! ( अ-देवः मर्त्यः ) ईश्वरकी उपासना न करनेवाला मनुष्य ( सीं तत् ) उस प्रसिद्ध अन्नको ( न आप ) नहीं पा सकता, ( यः ) जो ( एतग्वा चित् ) वहां जानेकी इच्छा करते हुए ( एतशः युयोजते ) छोड़े जोड़ता है, उसी प्रकार ( इन्द्रः हरी युयोजते ) इन्द्र भी अपने घोड़ोंको यज्ञके स्थानको जानके लिए जोड़ता है ॥ ६ ॥

१ अदेवः मर्त्यः सीं न आप— ईश्वरकी उपासना न करनेवाला उस प्रसिद्ध धनको प्राप्त नहीं कर सकता ।

[ २६९ ] ( विश्वासु समत्सु ) सब युद्धोंमें ( हव्यं इन्द्रं ) सहायताके लिए बुलाने योग्य इन्द्रको ( नः ब्रह्माणि उप भूषत ) हमारे स्तोत्र सुशोभित करते हैं, इन्द्रकी स्तुति करते हैं । हे ( वृत्र-हन् ) वृत्रको मारनेवाले ( परम-ज्याः ) जिसके धनुषकी डोरी उत्तम है ऐसे ( ऋची-षम ) मंत्रोंसे स्तुति करनेके योग्य इन्द्र ! ( सवनानि ब्रह्माणि उप ) हमारे तीन सबनों और स्तोत्रोंको अलंकृत कर ॥ ७ ॥

[ २७० ] हे इन्द्र ! ( अवमं वसु तव इत् ) सबसे निम्न कोटिका धन तेरा ही है, ( त्वं मध्यमं पुष्यसि ) तू ही मध्यम कोटिके धनका पोषण करता है, ( परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि ) और तू ही सबसे उत्तम धनका भी अकेला ही स्वामी है, ( त्वा ) तुझे ( गोषु नकिः वृण्वते ) गाय आदि देते हुए कोई भी रोक नहीं सकता ॥ ८ ॥

१ हे इन्द्र अवमं वसु तव इत्— निकृष्ट धन तेरा ही है ।

२ त्वं मध्यमं ! पुष्यसि— तू ही मध्यम धनको बढ़ाता है ।

३ परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि— तू सबसे उत्तम धनका भी अकेला ही स्वामी है ।

[ २७१ ] हे इन्द्र ! ( क इयथ ) तू कहां गया था ? ( क इत् असि ) अब तू कहां है ? ( पुरु-त्रा चित् हि ते मनः ) बहुतसे स्थानोंपर तेरा मन जाता है, हे ( युध्म ) युद्ध करनेमें कुशल, ( खज-कृत् ) युद्ध करनेवाले ( पुरं-दर ) शत्रुकी नगरीका नाश करनेवाले इन्द्र ! ( अलर्षिं ) आ ( गायत्राः प्रगासिषुः ) हमारे गानेमें कुशल लोग स्तोत्रोंका गान करते हैं ॥ ९ ॥

१ हे युध्म, खजकृत्, पुरंदर, अलर्षिं— हे युद्धमें कुशल, युद्ध करनेवाले, शत्रुके नगर तोड़नेवाले इन्द्र ! आ ।



२७२ वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।६६।७ )

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० १४ । उ० १ । धा० ७४ । (ती) ॥ ]

[ ९ ]

( १-१० ) १, ६ पुरुहन्मा आंगिरसः; २ भर्गः प्रागाथः; ३ इरिम्बिठिः काण्वः; ४ जमदग्निभर्गवः; ५, ७ देवा-  
तिथिः काण्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १० मेध्यः काण्वः ॥ इन्द्रः

( ऋ० ३ वास्तोष्पतिर्वा; ४ सूर्यः; ९ इन्द्राग्नी ) ॥ बृहती ॥

२७३ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिराग्निगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।१ )

२७४ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६१।१३ )

२७५ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा अंसत्रं सोम्यानाम् ।

द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१७।१४ )

[ २७२ ] ( वयं ) हम यजमानोंने ( एनं वज्रिणं ) इस वज्रधारी इन्द्रको ( इदा ) इस समय और ( ह्यः ) कल  
( अपीपेम ) सोमरस पिलाकर तृप्त किया, ( तस्मा उ ) इसीलिए ( अद्य सवने ) आजके यज्ञमें भी ( सुतं भर ) सोमरस  
भरकर उसे दे, ( नूनं श्रुते आभूषत ) निश्चयसे इस समय स्तोत्र सुननेके बाद उसको अलंकृत कर ॥ १० ॥

॥ यहाँ सोलहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १७ ] सप्तदशः खण्डः ।

[ २७३ ] ( यः चर्षणीनां राजा ) जो इन्द्र मानवोंका राजा है, ( रथेभिः अग्नि-गुः याता ) रथसे शीघ्रतासे  
जो जाता है, ( विश्वासां पृतनानां तरुता ) सब शत्रु सेनाओंका जो नाश करता है, ( यः वृत्र-हा ) जो वृत्रको मारने-  
वाला है ( ज्येष्ठं गृणे ) उस श्रेष्ठ इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ २७४ ] हे इन्द्र ! ( यतः भयामहे ) जहाँसे हम डरते हैं, ( ततः नः अभयं कृधि ) वहाँसे हमें निर्भय बनाओ,  
हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( शग्धि ) तू समर्थ है, ( तत् ) इसलिए ( तव ) अपने सामर्थ्यसे ( नः ऊतये ) हमारे  
संरक्षणके लिए ( द्विषः विजहि ) शत्रुओंका नाश कर और ( मृधः विजहि ) हिंसकोंको नष्ट कर ॥ २ ॥

१ यतः भयामहे ततः नः अभयं कृधि — जहाँसे हम डरते हैं, वहाँसे हमें भयरहित करो ।

२ नः ऊतये द्विषः विजहि, मृधः विजहि — हमारे संरक्षणके लिए शत्रुओं और हिंसकोंको नष्ट कर ।

३ शग्धि — तू सामर्थ्यशाली है ।

[ २७५ ] हे ( वास्तोष्पते ) गृहस्वामी ! ( स्थूणा ध्रुवा ) घरके खम्भे दृढ़ हों, ( सोम्यानां अंसत्रं ) सोमयज्ञ  
करनेवालोंमें अन्नका बल उत्तम हो, ( द्रप्सः ) सोम पीनेवाला ( शश्वतीनां पुरां भेत्ता ) अमुरोंकी बहुतसी नगरियोंको  
तोड़नेवाला ( इन्द्रः ) इन्द्र ( मुनीनां सखा ) ऋषियोंका मित्र है ॥ ३ ॥

१ शश्वतीनां पुरां भेत्ता मुनीनां सखा इन्द्रः — अमुरोंकी बहुतसी नगरियोंको तोड़नेवाला इन्द्र मुनि-  
योंका मित्र है ।



- २७६ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वणमहा५ असि सूर्य बडादित्य महा५असि ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मद्वा देव महा५ असि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१०।११ )
- २७७ <sup>३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अश्वी रथी सुरूप इद्रोमा५यदिन्द्र ते सखा ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१।९ )
- २७८ <sup>१ २ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २</sup> यद्द्याव इन्द्र ते शत५ शतं भूमीरुत स्युः ।  
<sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> न त्वा वज्रिन्सहस्र५सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।७०।९ )
- २७९ <sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यदिन्द्र प्रागपागुदग्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सिमा पुरु नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )
- २८० <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाज५ सिषासति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।३२।१४ )

[ २७६ ] हे ( सूर्य ) प्रेरक इन्द्र ! ( महान् असि ) तू महान् है, ( वट् ) यह सत्य है, हे ( आदित्य ) अबितिके पुत्र इन्द्र ! तू ( महान् असि ) महान् है यह ( वट् ) सत्य है, ( महः ते सतः महिमा ) महान् होनेवाले तेरी महिमाका ( पनिष्टम ) वर्णन हम करते हैं, हे ( देव ) देव ! तू ( मद्वा महान् असि ) अपने बलसे तू महान् है ॥ ४ ॥

[ २७७ ] हे इन्द्र ! ( यत् ते सखा ) जब तेरा मित्र कोई मनुष्य होता है, तब ( इत् ) वह ( अश्वी ) घोड़ोंसे युक्त ( रथी ) रथ रखनेवाला, ( सुरूपः ) उत्तम रूपवाला ( गोमान् ) बहुत गायें रखनेवाला, ( श्वात्र-भाजा ) धनवान् ( वयसा सदा सचते ) अग्नसे सदा उन्नतिशील होता है, तथा वह हमेशा ( चन्द्रैः सभां उप याति ) उत्तम भूषणोंसे युक्त होकर सभामें जाता है ॥ ५ ॥

[ २७८ ] हे इन्द्र ! ( यत् द्यावः शतं स्युः ) यदि झुलोक सौ गुना हो जाये तब भी ( त्वा न अनु-अष्ट ) तुझे घेर नहीं सकते, ( उत भूमी शतं स्युः ) पृथ्वी सौ गुनी हो जाये, तो भी वह तुझे आधार नहीं दे सकती, हे ( वज्रिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्रं सूर्याः ) यदि हजारों सूर्य हो जायें, तो भी ( त्वा न ) तुझे प्रकाशित नहीं कर सकते, ( अनु-जातं न अष्ट ) तेरे पीछे हुए ये सब तुझे व्याप नहीं सकते, ये ( रोदसी ) झुलोक और पृथ्वी लोक तुझे व्याप नहीं सकते ॥ ६ ॥

[ २७९ ] हे इन्द्र ! ( यत् प्राग् ) क्योंकि पूर्व दिशासे ( अपाक् ) पश्चिमसे ( उदक् न्यक् ) उत्तर दिशा अथवा दक्षिण दिशासे ( नृभिः हूयसे ) तू मनुष्योंद्वारा सहायताके लिए बुलाया जाता है, इस कारण हे ( सि ) इन्द्र ! ( आनवे पुरु नृषूतः असि ) अनुके लिए बहुत प्रकारसे तेरी प्रार्थना होती है, हे ( प्रशर्ध ) शत्रुनाशक इन्द्र ! ( तुर्वशे ) तुर्वशके लिए भी उसी प्रकार तुझे बुलाया जाता है ॥ ७ ॥

[ २८० ] ( वसो इन्द्र ) हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( तं त्वा कः मर्त्यः आदधर्षति ) उस तुझे कौन मनुष्य भला भय दिखाता है ? हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( ते श्रद्धा ) तुझपर श्रद्धा रखनेवाला ( वाजी ) बलवान् होता है, और वह दुःखोंसे ( पार्ये दिवि ) पार होनेके दिनमें भी ( वाजं सिषासति ) अन्नका दान करनेकी इच्छा करता है ॥ ८ ॥

१ ते श्रद्धा वाजी— तुझपर श्रद्धा करनेवाला मनुष्य बलवान् होता है ।



२८१ इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।

हिक्त्वा शिरो जिह्वया रारपचरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत्

॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।५९।६ )

२८२ इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।

आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।५३।५ )

इति नवमी वशतिः ॥ ९ ॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ [ स्व० २६ । उ० ५ । घा ७२ । ( डा ) ॥ ]

[ १० ]

( १-१० ) १ नृमेध आंगिरसः; २, ३ वसिष्ठो भेन्नावरुणिः, ४ भरद्वाजः ( ऋ० शंयुः ) बार्हस्पत्यः; ५ परच्छेपो वैवो-  
वासिः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ मेध्यातिथिः काण्वः; ८ भर्गः प्रागाथः; ९, १० मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ ॥

इन्द्रः ( ५ ऋ० आश्विनौ ) ॥ बृहती ॥

२८३ इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशुं जेतारं हेतारं रथीतममर्तुं तुग्रियावृधम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९९।७ )

२८४ मो शु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।

आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३२।१ )

[ २८१ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( अ-पाद् इयं ) बिना पैरोंवाली यह उषा ( पद्वतीभ्यः ) पैरोंसे युक्त, सोई हुई प्रजाओंसे ( पूर्वा अगात् ) पहले ही आ गई है, ( शिरः हिक्त्वा ) सिरको छोड़कर ( जिह्वया रारपत् ) जीभसे प्रेरणा करती हुई यह ( चरत् ) आगे जाती हुई ( त्रिंशत् पदानि अक्रमीत् ) तीस कदम-तीस मुहूर्त एक दिनमें चलती है ॥ ९ ॥

[ २८२ ] हे इन्द्र ! ( नेदीयः ) पास ही हमारी यज्ञशाला है, इस कारण तू ( आ इत् इहि ) आ, ( मित-मेधाभिः ऊतिभिः ) बुद्धिमान्, और संरक्षणकी इच्छा करनेवालोंके साथ आ, हे ( शन्तम ) अत्यन्त शान्त स्वभाववाले इन्द्र ! ( शन्तमाभिः अभिष्टिभिः आ ) अत्यन्त सुख देनेवाली अभिलाषाओंके साथ आ, हे ( सु-आपे ) उत्तम बन्धो ! ( स्वापिभिः आ ) उत्तम भाइयोंके साथ आ ॥ १० ॥

॥ यहाँ सत्रहवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १८ ] अष्टादशः खण्डः ।

[ २८३ ] ( वः ) तुम ( अ-जरं ) बुढ़ापा रहित ( प्र-हेतारं ) शत्रुपर प्रहार करनेवाले, ( अ-प्रहितं ) कोई भी जिसे प्रेरणा नहीं दे सकता, ऐसे ( आशुं जेतारं ) शीघ्र विजय प्राप्त करनेवाले, ( हेतारं ) यज्ञमें जानेवाले ( रथीतमं ) उत्तम रथवाले ( अ-र्तुं ) किसीसे भी न मारे जानेवाले ( तुग्रिया-वृधं ) जलोंकी वृद्धि करनेवाले इन्द्रको ( ऊतये ) संरक्षणके लिए ( इतः ) यहाँ ले आओ ॥ १ ॥

[ २८४ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( वाघतः चन ) यजमान ( अस्मत् आरे ) हमसे दूर ( मा उ निरमन् ) लेजाकर आनन्वित न होवे, इसलिए तू ( आरात्ताद्वा ) पास रहकर ( नः सधमादं ) हमारे यज्ञमें ( सु आगहि ) उत्तम रीतिसे आ, ( वा इह सन् ) उसी प्रकार यहाँ रहकर ( उपश्रुधि ) हमारी स्तुतियोंको पाससे सुन ॥ २ ॥



२८५ सुनोत सोमपात्रे सोममिन्द्राय वज्रिणे ।

पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्तिपृणते मयः

॥ ३ ॥ ( ऋ. ७।३२।८ )

२८६ यः सत्राहा विश्वर्षणिर्इन्द्रं तं हूमहे वयम् ।

सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे

॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।४६।३ )

२८७ शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।

मा वा रातिरुपदसत्कदाचनास्मद्रातिः कदाचन

॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१३९।९ )

२८८ यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।

आदिद्वन्द्वेत् वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम्

॥ ६ ॥

२८९ पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।

यः संमिश्रा हयोर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः

॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३३।४ )

[ २८५ ] हे याजको ! ( वज्रिणे सोमपात्रे इन्द्राय ) वज्रको धारण करनेवाले और सोमरसको पीनेवाले इन्द्रके लिए ( सोमं सुनोत ) सोमरस निकालो, ( अवसे ) अपने संरक्षणके लिए अथवा उसकी प्रसन्नताके लिए ( पक्तीः पचत ) पुरोडाश पकाओ, ( कृणुध्वं इत् ) इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ करो, क्योंकि इन्द्र ( मयः पृणन् इत् ) यजमानको सुख देते हुए ( पृणते ) स्वयं भी हवि ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

[ २८६ ] ( यः सत्राहा ) जो एक साथ शत्रुओंको मारता और ( विश्व चर्षणिः ) सबको देखता है, ( तं इन्द्रं-वयं हूमहे ) उस इन्द्रको हम बुलाते हैं, हे ( सहस्र-मन्यो ) हजारों उत्साहोंसे युक्त ( तुवि-नृम्ण ) बहुत धनवान् ( सत्पते ) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! ( समत्सु ) युद्धमें ( नः वृधे भव ) हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धिमें सहायता करनेवाला हो ॥ ४ ॥

१ यः सत्राहा विश्व-चर्षणिः तं इन्द्रं वयं हूमहे— जो शत्रुओंको एक साथ मारता और मानवोंका कल्याण करता है, उस इन्द्रको सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

२ हे सहस्र-मन्यो तुविनृम्ण सत्पते ! समत्सु नः वृधे भव— हे हजारों उत्साहसे युक्त, बहुत धनवान् और सज्जनोंके पालक इन्द्र ! युद्धमें हमारा यश बढे ऐसा कर ।

[ २८७ ] हे ( शची-वसू ) कर्म करके धन प्राप्त करनेवाले अश्विनीकुमारो ! तुम ( शचीभिः ) अपनी शक्तिसे ( दिवा-नक्तं दिशस्यतं ) रात दिन हमें इच्छित धन दो, ( वां रातिः कदाचन ) तुम्हारे दान कभी भी ( मा उपदसत् ) कम नहीं होते, ( अस्मत् रातिः कदाचन ) हमारे दान भी कभी कम न हों ॥ ५ ॥

[ २८८ ] ( यदा कदा च ) जिस समय ( मीढुषे ) यज्ञ करनेवालेके लिए ( मर्त्यः ) मनुष्य ( स्तोता जरेत ) स्तुति करे, ( आत् इत् ) उस समय वह ( विव्रतानां धर्त्तारं वरुणं ) विशेष रूपसे अनेक कर्मोंको धारण करनेवाले वरुणकी ( विपा गिरा वन्देत् ) विशेष रक्षण करनेवाली-स्तुतियोंसे वन्दना करे ॥ ६ ॥

[ २८९ ] हे मेध्यातिथे ! ( यः इन्द्रः ) जो इन्द्र ( हयोर्योः संमिश्रः ) दो घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ता है, और जो ( वज्री ) वज्र धारण करता है, और जो ( हिरण्ययः ) रमणीय है, तथा जो ( हिरण्ययः ) सोनेके रथमें बैठता है ऐसे ( इन्द्राय ) इन्द्रको ( अन्धसः महे ) सोमपानसे उत्साह प्राप्त होनेके बाद ( गाः पाहि ) अपनी गायका संरक्षण कर ॥ ७ ॥



२९० उभयं ऋणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सत्राच्या मघवान्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।६।११ )

२९१ महे च न त्वाद्विवः परा शुल्काय दीयसे ।

न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतमघ

॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।१।१२ )

२९२ वस्यां हन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।

माता च मे छदयथः समा वसो नसुत्वनाय राधसे

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।१।६ )

इति दशमी वसतिः ॥ १० ॥ खण्डः खण्डः ॥ ६ ॥ [ स्व० १५ । उ० ४ । धा० ७६ । ( भू ) ॥ ]

इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, तृतीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

[ २९० ] ( नः इदं उभयं वचः ) हमारे इन दोनों ही प्रकारके स्तोत्रोंको ( अर्वाक् इन्द्रः ऋणवत् ) पास आकर इन्द्र सुने, ( च ) और ( सत्राच्या धिया ) एक स्थानपर बैठकर गाये जानेवाले स्तोत्रोंको सुनकर ( शविष्ठः मघवान् ) बलवान् और धनवान् इन्द्र यहाँ ( सोम-पीतये आगमत् ) सोम पीनेके लिए आवे ॥ ८ ॥

[ २९१ ] हे ( अद्वि-वः ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( महे च शुल्काय ) बहुतसे धनके बदलेमें भी ( त्वा ) तुझे ( न परा दीयसे ) बेचा नहीं जा सकता, हे ( वज्रि-वः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्राय न ) हजारके बदलेमें भी नहीं बेचा जा सकता, हे ( शता-मघ ) बहुत धनोंसे युक्त इन्द्र ! ( न शताय ) न सौके ( अयुताय न ) और न दस हजारके बदलेमें ही तुझे बेचा जा सकता है ॥ ९ ॥

१ हे अ-द्विवः ! महे शुल्काय त्वा न परा दीयसे— हे वज्रधारी इन्द्र ! बहुतसा धन मिलनेपर भी मैं तुझे नहीं दूंगा ।

२ हे वज्रि-वः ! सहस्राय न— हे वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! हजारोंमें भी तुझे नहीं दूंगा ।

३ हे शतामघ ! शताय न— हे धनवान् ! सौमें भी नहीं दूंगा ।

४ न अयुताय— दस हजारमें भी मैं तुझे नहीं बेचूंगा ।

[ २९२ ] हे इन्द्र ! तू ( मे पितुः वस्यान् ) मेरे पितासे भी अधिक धनवान् है, ( उत अभुञ्जतः भ्रातुः ) और भोजनको न देनेवाले मेरे भाईकी अपेक्षा भी तू महान् है, हे ( वसो ) सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( मे माता च समा ) मेरी माता और तू समान है, तू ( नसुत्वनाय राधसे छदयथः ) धनवान् और अस्रवान् होनेके लिए मुझे यशस्वी बना ॥ १० ॥

१ हे इन्द्र ! मे पितुः वस्यान्— है इन्द्र ! मेरे पिताकी अपेक्षा तू अधिक धनवान् है ।

२ अभुञ्जतः भ्रातुः— न खानेवाले भाईकी अपेक्षा तू महान् है ।

३ मे माता समा — मेरी माता तेरे समान है ।

४ नसुत्वनाय राधसे छदयथः— धनवान् और अस्रवान् होनेके लिए मुझे महान् बना ।

॥ यहाँ अष्टारहवां खंड समाप्त हुआ ॥



अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[ १ ]

( १-१० ) १ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः; २, ६, ७ वामदेवो गीतमः; ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वी, विश्वामित्र इत्येके;

४ नोधा गीतमः; ५ मेधातिथिः ( ऋ० मेध्यातिथिः ) काण्वः; ८ श्रुष्टिगुः काण्वः; ९ मेध्यातिथिः

( मेधातिथिर्वा ) काण्वः; १० नृमेघ आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ७ बहुः ॥ बृहती ॥

२९३ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

तां आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।४ )

२९४ इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।

मधोः पिपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः

॥ २ ॥

२९५ आ त्वा रेद्य सबर्दुघां दुवे गायत्रवेपसम् ।

इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्गतम्

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१।१० )

२९६ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।

यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते

॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।८।१३ )

२९७ क ई वेद सुते सचा पिबन्तं कद्रयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिष्यन्धसः

॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।३३।७ )

[ १९ ] एकोनविंशः खण्डः ।

[ २९३ ] हे ( वज्र-हस्त ) वज्रको हाथमें धारण करनेवाले इन्द्र ! ( दध्याशिरः इमे सोमासः ) वही मिले हुए ये सोमरस तुझ ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( सुन्विरे ) तैय्यार किये गये हैं, ( मदाय ) आनन्द प्राप्त करनेके लिए तथा ( तान् ) उन सोमरसोंको ( पीतये ) पीनेके लिए ( ओकः आ ) यज्ञमण्डपको ( हरिभ्यां आ याहि ) घोड़ोंके द्वारा आ ॥ १ ॥

[ २९४ ] हे इन्द्र ! ( ते मदाय ) तेरे आनन्दके लिए ( उक्थिनः ) यज्ञकर्ताओंने ( इमे सोमाः चिकित्र ) ये सोमरस बुद्धिपूर्वक तैय्यार किए हैं, ( मधोः पिपानः ) इन मधुर रसोंको पीकर ( नः गिरः उपशृणु ) हमारी स्तुति पाससे सुन, हे ( गिर्वणः ) प्रशंसित इन्द्र ! ( स्तोत्राय रास्व ) स्तुति करनेवालेके लिए धन दे ॥ २ ॥

[ २९५ ] हे इन्द्र ! ( अद्य ) आज ( सबर्दुघां ) अधिक दूध देनेवाली ( गायत्र-वेपसं ) प्रशंसनीय वेगवाली ( सु-दुघां ) सुखसे दूध देनेवाली ( अन्यां ऊरुधारां ) विलक्षण रीतिसे बहुत सा दूध देनेवाली ( इषं धेनुं ) पासमें रखने योग्य गायके समान तुझ ( अरं कृतं तु आहुवे ) अलंकृत इन्द्रको मैं बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[ २९६ ] हे इन्द्र ! ( बृहन्तः वीडवः अद्रयः ) महान् दृढ पर्वत भी ( त्वा न वरन्ते ) तुझे अपने कर्तव्यसे डिगा नहीं सकते, ( स्तुवते मावते ) स्तुति करनेवाले मुझ जैसे पुरुषको ( यत् वसु शिक्षसि ) तू जो बन देता है, ( ते तत् ) उस तेरे दानको ( न किः आ मिनाति ) कोई भी रोक नहीं सकता ॥ ४ ॥

[ २९७ ] ( सुते ) सोमयज्ञमें ( सचा पिबन्तं ईं ) एक जगह बैठकर सोमरस पीनेवाले इस इन्द्रको ( कः वेद ) भला कौन जानता है ? तथा वह ( कत् वयः दधे ) कितना अन्न धारण करना है इसे भी कौन जानता है ? ( यः अयं शिषी ) जो यह इन्द्र शिरस्त्राण धारण करके ( अन्धसः मन्दानः ) सोमरससे उत्साहित होकर ( ओजसा पुरः विभिनन्ति ) अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंके नगरोंको तोड़ता है ॥ ५ ॥



२९८ यदिन्द्र शासो अत्रतं व्यावया सदसस्परि ।

अस्माकमंशुं मघवन्पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय

॥ ६ ॥

२९९ त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः

॥ ७ ॥

३०० कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्वसि दाशुषे ।

उपोपेक्षु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।११।७ )

३०१ युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।

अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेमिरा गहि

॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।३।१७ )

३०२ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्जिन्भूर्णयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुष्युप स्वसरमा गहि

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।९९।१ )

इति प्रथमा वसतिः ॥ १ ॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १३। उ० २। धा ८२। (ठि) ॥ ]

[ २९८ ] हे इन्द्र ! ( यत् शासः ) जिस कारण अपराधियोंको तू दण्ड देता है, इसलिए ( सदसः परि अत्रतं व्यावय ) हमारे यज्ञस्थानके चारों ओरसे यज्ञ न करनेवालोंको दूर कर, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( पुरु-स्पृहं अस्माकं अंशुं ) हमारे प्रशंसनीय सोमरसको ( वसव्ये अधि बर्हय ) यज्ञ स्थानमें बढा ॥ ६ ॥

[ २९९ ] ( त्वष्टा ) देवोंका कारीगर त्वष्टा देव ( पर्जन्यः ) वृष्टीका देव, ( ब्रह्मणस्पतिः ) ब्रह्मणस्पति ( पुत्रैर्भ्रातृभिः अदितिः ) अपने पुत्र और भाइयोंके साथ अदिति-देवमाता, ये सब देवता ( दुष्टरं त्रामणं नः वचः ) दुःखों पार करानेवालीं और रक्षा करनेवालीं हमारी स्तुतियोंसे सन्तुष्ट होकर ( नु पातु ) निश्चयसे हमारी रक्षा करें ॥ ७ ॥

[ ३०० ] हे इन्द्र ! तू ( कदाचन ) कभी भी ( स्तरीः न असि ) सन्तान उत्पन्न न करनेवाली [ वन्ध्या ] गाय समान नहीं है ( दाशुषे सश्वसि ) हवि देनेवाले यजमानसे तू मिला हुआ रहता है, हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( देवस्य ते ) प्रकाशस्वरूप तेरे ( भूयः दानं ) बहुतसे दान ( उपोपेत् पृच्यते ) हमारे पास आकर पहुंचते हैं ॥ ८ ॥

[ ३०१ ] हे ( वृत्र-हन्तम ) वृत्रके नाश करनेमें कुशल इन्द्र ! ( हि हरी युङ्क्ष्व ) निश्चयसे अपने घोड़े रथमें जो है ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( उग्रः अर्वाचीनः ) बलवान् होकर सामने ( परावतः ) दूरके देशसे ( ऋष्वेभिः सुन्दर मरुतोंके साथ ( आ गहि ) आ ॥ ९ ॥

[ ३०२ ] हे ( वज्जिन् ) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां ) तुझे ( भूर्णयः नरः ) यज्ञकर्ता यजमानोंने ( इह्यः अपीप्यन् ) आज और पहलेके दिनोंमें भी सोमरस पीनेके लिए दिया, हे इन्द्र ! ( सः ) वह तू ( इह ) इस यः ( स्तोमवाहसः श्रुधि ) स्तोत्र कहनेवाले याज्ञिकोंके स्तोत्रोंको सुन, और इसके लिए ( स्वसरं उप आ गहि ) मण्डपमें आ ॥ १० ॥

॥ यहां उन्नीसवां खंड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

( १-१० ) १, २, ३, ८ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः; ३ अश्विनो वैवस्वतो; ४ प्रस्कण्वः काण्वः; ५ मेधातिथि-मैष्यातिथी काण्वी; ६ देवातिथिः काण्वः; ९ नृमेध आगिरसः; १० नोधाः गीतमः ॥ इन्द्रः; १ उषा; २, ३ ( ऋ० ४ ) अश्विनी ॥ बृहती ॥

३०३ प्रत्यु<sup>१ २</sup> अदर्श्यायत्यु<sup>३ २ ३</sup> रेच्छन्ती<sup>३ २ ३</sup> दुहिता<sup>३ २ ३</sup> दिवः ।

अपो<sup>१ २</sup> मही<sup>३ २</sup> वृणुते<sup>३ २</sup> चक्षुषा<sup>३ २</sup> तमो<sup>३ २</sup> ज्योतिष्कृणोति<sup>३ २</sup> सूनरी<sup>३ २</sup>

॥ १ ॥

३०४ इमा<sup>३ २</sup> उ वां<sup>३ २</sup> दिविष्टय<sup>३ २</sup> उस्मा<sup>३ २</sup> हवन्ते<sup>३ २</sup> अश्विना ।

अयं<sup>३ २</sup> वामह्वे<sup>३ २</sup> ऽवसे<sup>३ २</sup> शचीवसू<sup>३ २</sup> विशंविशं<sup>३ २</sup> हि गच्छथः<sup>३ २</sup>

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।७४।१ )

३०५ कुष्ठः<sup>३ २</sup> को<sup>३ २</sup> वामश्विना<sup>३ २</sup> तपानो<sup>३ २</sup> देवा<sup>३ २</sup> मर्त्यः ।

घ्नता<sup>३ २</sup> वामश्मया<sup>३ २</sup> क्षयमाणां<sup>३ २</sup> शुनेत्थसु<sup>३ २</sup> आद्वन्यथा<sup>३ २</sup>

॥ ३ ॥

३०६ अयं<sup>३ २</sup> वां<sup>३ २</sup> मधुमत्तमः<sup>३ २</sup> सुतः<sup>३ २</sup> सोमो<sup>३ २</sup> दिविष्टिषु ।

तमश्विना<sup>३ २</sup> पिवतं<sup>३ २</sup> तिरोअह्वं<sup>३ २</sup> धत्तश्चरत्नानि<sup>३ २</sup> दाशुषे<sup>३ २</sup>

॥ ४ ॥ ( ऋ. १।४७।१ )

३०७ आ<sup>३ २</sup> त्वा<sup>३ २</sup> सोमस्य<sup>३ २</sup> गल्दया<sup>३ २</sup> सदा<sup>३ २</sup> याचन्नहं<sup>३ २</sup> ज्या ।

भूर्णिं<sup>३ २</sup> मृगं<sup>३ २</sup> न सवनेषु<sup>३ २</sup> चुक्रुधं<sup>३ २</sup> क ईशानं<sup>३ २</sup> न याचिषत्<sup>३ २</sup>

॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१।२० )

[ २० ] विंशः खण्डः ।

[ ३०३ ] ( अयाती उच्छन्ती ) आनेवाली और प्रकाशित होनेवाली ( दिवः दुहिता ) सूर्यकी पुत्री उषा ( प्रति अदर्शि उ ) दोखने लग गई है, और ( चक्षुषा ) अपने प्रकाशसे ( मही अप वृणुते ) वह रात्रीका महान् अन्धकार दूर करती है, ( सूनरी ) वह सुन्दरी उषा ( ज्योतिः कृणोति ) प्रकाश करती है ॥ १ ॥

[ ३०४ ] हे ( उस्मा अश्विना ) सबके निवासक अश्विदेवो ! ( इमाः दिविष्टयः ) ये प्रकाशकी इच्छा करनेवाली प्रजायें ( वां हवन्ते ) तुम्हें बुलाती हैं ( अयं ) यह मैं ( शची-वसू वां ) शक्तिसे धन प्राप्त करनेवाले तुम्हें ( अवसे अह्वे ) अपने संरक्षणके लिए बुलाता हूँ ( हि ) क्योंकि तुम ( विशं विशं गच्छथः ) प्रत्येक मनुष्यके पास जाते हो ॥ २ ॥

[ ३०५ ] हे ( देवा अश्विना ) प्रकाशमान अश्विनी कुमारी ! ( कु-ष्ठः, कु-स्थः ) इस पृथ्वी पर रहनेवाला ( कः मनुष्यः ) कौनसा मनुष्य भला ( वां तपानः ) तुम्हें प्रकाशित कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं । ( वां ) तुम्हारे लिए ( अश्मया घ्नता अंशुना ) पत्थरोंसे सोम कूटनेके कारण ( क्षयमाणः ) थका हुआ यजमान ( यथा आद्वन् ) इच्छानुसार अन्न खानेवाले राजाके समान ( इत्थं उ ) इस प्रकार सामर्थ्यवान् होता है ॥ ३ ॥

[ ३०६ ] हे ( अश्विना ) अश्विनी कुमारी ! ( वां दिविष्टिषु ) तुम्हारे लिए होनेवाले यज्ञोंमें ( मधुमत्तमः अयं सुतः ) अत्यन्त मीठा यह सोमरस तैय्यार किया हुआ है, ( तिरो अह्वं पिवतं ) एक दिन पहले तैय्यार किया गया सोमरस भी तुम पियो । और ( दाशुषे रत्नानि धत्तं ) हवि देनेवाले यजमानकी रत्न दो, धन दो ॥ ४ ॥

[ ३०७ ] हे इन्द्र ! ( भूर्णिं मृगं न ) भरण पोषण करनेवाले शेरके समान ( त्वा ) तुझे ( सवनेषु ) यज्ञोंमें ( सोमस्य गल्दया ) सोमके रस देते हुए तथा ( ज्या ) जय दिलानेवाली स्तुतिके द्वारा ( अहं सदा याचन् ) तेरे पास हमेशा मांगते हुए ( आ चुक्रुधं ) क्या मैंने तुझे क्रोधित कर दिया है ? पर ( कः ईशानं न याचिषत् ) अपने स्वामीसे भला कौन नहीं मांगता ? ॥ ५ ॥



- ३०८ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।  
 उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।४।११ )
- ३०९ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।  
 पुरुवसुर्हि मधवन्वभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।३२।२४ )
- ३१० <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।  
 स्तोतारमिदधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।३२।१८ )
- ३११ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।  
 अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरासि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९९।९ )
- ३१२ <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००</sup> प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदाभ्यस्परि ।  
 न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥ १० ॥ ( ऋ. ८।८।८।१ )

इति द्वितीया वसतिः ॥ २ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ । स्व० १० । उ० ३ । धा० ७७ । ( वे ) ॥ ]

इति बृहती समाप्ता ।

[ ३०८ ] हे अध्वर्यु ! ( त्वं ) तू ( सोमं द्रावय ) सोमरस शीघ्र तैयार कर, क्योंकि ( इन्द्रः पिपासति ) इन्द्र सोमरस पीना चाहता है, इसने ( वृषणा हरी नूनं उप युयुजे ) रथमें बलवान् घोड़ोंको जोड़ दिया है और लो ( वृत्र-हा आ जगाम ) वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र आ भी गया ॥ ६ ॥

[ ३०९ ] हे ( ज्यायः इन्द्रः ) महान् इन्द्र ! ( ईषतः तत् ) उस इच्छित धनको ( कनीयसः अभि आभर ) मेरे जैसे छोटे मनुष्यको भी भरपूर दे, हे ( मधवन् ) धनवान् इन्द्र ! तू ( पुरु-वसुः वभूविथ ) बहुत धनवान् है, तू ( भरे भरे हव्यः ) प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए पास बुलाने योग्य है ॥ ७ ॥

[ ३१० ] हे इन्द्र ! ( यत् त्वं यावतः ईशिषे ) जिस कारणसे तू जितने धनका स्वामी है, ( एतावत् अहं ईशीय ) उतने धनका मैं भी स्वामी होऊँ, हे ( रदा-वसो ) धन देनेवाले इन्द्र ! ( स्तोतारं इत् दधिषे ) स्तुति करने-वालेको मैं धन देकर आधार देनेकी इच्छा करता हूँ ( पापत्वाय न रंसिषं ) वह धन पापी मनुष्योंके लिए देनेको मैं तैयार नहीं ॥ ८ ॥

[ ३११ ] हे इन्द्र ! ( त्वं प्रतूर्तिषु ) तू युद्धमें ( विश्वाः स्पृधः अभि असि ) सब शत्रुओंका नाश करता है, हे ( तूर्य ) शत्रु नाशक इन्द्र ! ( त्वं अशस्ति-हा ) तू अ-यशस्वियोंका नाश करता है, उसी प्रकार ( जनिता ) शत्रुके लिए आपत्तियोंको पैदा करनेवाला है, तू ( तरुष्यतः वृत्रतूः असि ) विघ्न करनेवालोंका नाश करनेवाला है ॥ ९ ॥

[ ३१२ ] हे इन्द्र ! तू ( दिवः सदाभ्यः ) बुलोकके स्थानोंमें ( ओजसा प्र रिरिक्षे ) अपने सामर्थ्यसे श्रेष्ठ होता है, यद्यपि ( पार्थिवं रजः ) पृथ्वीपरके धूल ( त्वा ) तुझे ( न विव्याच ) घेर नहीं सकते, पर ( विश्वं अति वव-क्षिथ ) तू विश्वको व्याप सकता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ बीसवां खंड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

( १-१० ) १, २, ६ बसिष्ठो भैत्रावरुणिः, ३ गानुरात्रेयः; ४ पृथुर्वैत्यः; ५ सप्तगुरांगिरसः; ७ गौरिवीतिः शाकल्यः;  
८ वेनो भार्गवः; ९ बृहस्पतिर्नकुलो वा; १० सुहोत्रो भारद्वाजः ॥ इन्द्रः; ( ऋ० ५ इन्द्रो वैकुण्ठः )  
८ वेनः ॥ त्रिष्टुप् ॥

३१३ असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यसिभिन्द्रो जनुषेमुवोच ।

बोधामसि त्वा हर्यश्च यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२।१ )

३१४ योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।

असो यथा नोऽविता वृधश्चिददो वसूनि ममदश्च सोमैः

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२।१ )

३१५ अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्वद्वधानाः अरम्णाः ।

महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्वारा अव यद्दानवान्हन्

॥ ३ ॥ ( ऋ. ५।३।१ )

३१६ सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् ।

आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सद्याम त्वोताः

॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१४।१ )

[ २१ ] एकविंशः खण्डः ।

[ ३१३ ] ( देवं गो-ऋजीकं अन्धः ) दिव्य तेजस्वी गायके दूधसे मिश्रित सोमरूपी अन्न ( असावि ) तैय्यार किया है, ( ईं इन्द्रः ) यह इन्द्र ( अस्मिन् जनुषा नी उवोच ) इस सोमरसमें स्वभावतः ही प्रेम करता है, हे ( हर्य अश्च ) घोड़ोंको पालनेवाले इन्द्र ! ( त्वा यज्ञैः बोधामसि ) तुझे इस यज्ञके द्वारा कहते हैं, कि ( अन्धसः मदेषु ) सोमरसके आनन्दमें ( नः स्तोमं बोध ) हमारी इन स्तुतियोंपर ध्यान दे ॥ १ ॥

[ ३१४ ] ( ते सदने योनिः अकारि ) तेरे बैठनेके लिए हमने स्थान बनाया है, हे ( पुरु-हूत ) बहुतसे प्रशंसित इन्द्र ! ( तं नृभिः आ प्र याहि ) उस स्थानपर अपने मनुष्योंके साथ तू जा, और ( नः यथा अविता ) हमारी रक्षा करनेवाला बन और ( वृधे च अस ) हमारा संवर्धन करनेके लिए तैय्यार रह, हमें ( वसूनि च ददः ) अनेक प्रकारके धन दे और ( सोमैः ममदः च ) सोमरसोंसे आनन्दित हो ॥ २ ॥

[ ३१५ ] हे इन्द्र ! ( त्वं उत्सं अदर्दः ) तूने मेघोंको फोड़ा, और ( खानि वि असृजः ) पानी निकलनेके बरबाजोंको लोला ( बद्धधानान् अर्णवान् अरम्णाः ) क्षुब्ध होनेवाले महान् समुद्रोंको आनन्दित किया, और ( महान्तं पर्वतं ) महान् बाबलोंको फाड़ा, और ( धाराः व्यसृजत् ) जलकी धाराओंको बहाया, और ( यत् दानवान् अवहन् ) तब तूने दानवोंको विनष्ट किया ॥ ३ ॥

[ ३१६ ] हे इन्द्र ! ( सुष्वाणासः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले यज्ञकर्त्ता ( त्वा स्तुमसि ) तेरी स्तुति करते हैं, हे ( चित्तु-नृम्ण ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( वाजं सनिष्यन्तः ) पुरोडाश तैय्यार करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं, इसलिये ( नः सुवितं आ भर ) हमें उत्तम धन भरपूर दे, ( यस्य कोना ) जिस धनकी हम इच्छा करते हैं, वह धन हमें दे, ( त्वा ऊताः ) तुझसे अच्छी प्रकार रक्षित हुए हम लोग ( तना ) बहुत धन ( त्मना सद्याम ) अपनी शक्तिसे प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥



- ३१७ जगृह्णा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।  
 विष्वा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रथिं दाः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।४।७।१ )
- ३१८ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पाया युनजते धियस्ताः ।  
 शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति ब्रजे भजा त्वं नः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।२।७।१ )
- ३१९ वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।  
 अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धिं चक्षुर्मुमुग्ध्याः स्माभिधयेव बद्धान् ॥ ७ ॥ ( ऋ. १०।७।३।११ )
- ३२० नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।  
 हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१२।३।६ )
- ३२१ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्भि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।  
 स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ९ ॥

अथर्व. ५।६।१; यजु. १३।३

[ ३१७ ] हे ( वसूनां वसुपते इन्द्र ) बहुतसे धनोंके स्वामी इन्द्र ! ( ते दक्षिणं हस्तं ) तेरे बायें हाथको ( वसूयवः जगृह्णा ) धनकी इच्छा करनेवाले हम पकड़ते हैं, हे ( शूर ) वीर दत्त ! हम ( त्वा ) तुझे ( गोनां गोपतिं विष्वा ) गायोंके पालन करनेवालेके रूपमें जानते हैं, इसलिए ( चित्रं वृषणं रथिं अस्मभ्यं दाः ) अनेक प्रकारसे बल बढ़ानेवाले धन तू हमें दे ॥ ५ ॥

[ ३१८ ] ( यत् ) जब ( ताः पायाः धियः युनजते ) संकटसे बचनेके लिए बुद्धिपूर्वक कर्म किए जाते हैं, तब ( नरः नेमधिता ) नेतागण युद्धके समय ( इन्द्रं हवन्ते ) इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, इस प्रकार ( त्वं शूरः नृषाता ) तू शूर और मनुष्योंको धन देनेवाला है, ( श्रवसः चकानः ) बल बढ़ानेकी इच्छा करनेवाला ( त्वं ) तू ( गोमति ब्रजे ) गायोंके बाड़ेमें ( नः आ भजा ) हमें पहुंचा ॥ ६ ॥

[ ३१९ ] ( सुपर्णाः वयः ) उत्तम पंखवाली चिड़ियोंके समान ( प्रिय-मेधाः, ऋषयः नाधमानाः ) यज्ञसे प्रेम करनेवालीं, सर्वदर्शी, प्रज्ञाबुद्धिकी पानेकी इच्छा करनेवालीं सूर्यकी किरणें ( इन्द्रं उपसेदुः ) इन्द्रको प्राप्त हुईं, अब हे इन्द्र ! तू ( ध्वान्तं अपोर्णुहि ) अन्धकार दूर कर, ( चक्षुः पूर्धिं ) तेजसे आँखोंको भर दे, ( निधया बद्धान् इव ) पाशोंसे बंधे हुए ( अस्मान् मुमुग्धि ) हमें मुक्त कर ॥ ७ ॥

१ निधया बद्धान् अस्मान् मुमुग्धि— पाशोंसे बंधे हुए हमें मुक्त कर ।

[ ३२० ] ( सुपर्ण पतन्तं ) उत्तम पंखसे युक्त और आकाशमें अच्छी तरह उड़नेवाले ( हिरण्यपक्षं ) सुनहरे पंखोंवाले ( वरुणस्य दूतं ) वरुणके दूत ( यमस्य योनौ ) अग्निके उत्पत्ति स्थान-अन्तरिक्षमें ( शकुनं ) पक्षी रूपमें रहने वाले, ( भुरण्युम् ) सबका पोषण करनेवाले ( त्वा ) तुझे ( हृदा वेनन्ता ) लोग हृदयसे जानते हैं, तब वे ( नाके अभ्य-चक्षत ) अन्तरिक्षमें तुझे देखते हैं ॥ ८ ॥

[ ३२१ ] ( वेनः ) वेनने ( पुरस्तात् जज्ञानं ब्रह्म ) अपनेसे प्रथम उत्पन्न हुए ब्रह्म तेजका ( प्रथमं विस्तीर्णं ) पहलेसे उपवेश करते हुए ( अतः सुरुचः आवः ) अपने उत्तम तेजसे सबका रक्षण करते हुए सबको कान्तियुक्त किया ( सः बुध्न्या ) वह अन्तरिक्षमें ( अस्य उपमाः ) इस ब्रह्मकी उपमा देने योग्य कान्तिकी ( विष्ठाः ) विशेष रूपसे स्थापित करता है, ( सतः असतः च योनिं ) पहले उत्पन्न हुए और आगे उत्पन्न होनेवाले बिन्दुकी उत्पत्तिके कारणको वही ( विवः ) उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥



३२२ अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।

विरिप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥ १० ॥ (ऋ. ६।३२।१)

इति तृतीया वशातिः ॥ ३ ॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [स्व० १३। उ० ६। धा० ११। ट॥]

[४]

(१-९) १, २, ४ द्यतानो मास्तः (ऋ० तिरश्चीराद्विगरसः); ३ बृहदुक्त्यो वामदेव्यः; ५ वामदेवोः गोतमः; ६, ८ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः; ७ विश्वामित्रो गायितः; ९ गोरिवीतिः शाक्त्यः ॥ इन्द्रः ॥ त्रिष्टुप्, (६ ऋ० विराट्) ॥

३२३ अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णा दशभिः सहस्रैः ।

आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहिति नृमणा अधद्राः ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९६।१३)

३२४ वृत्रस्य त्वा श्वसथादीपमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९६।७)

३२५ विधुं दद्राणंसमने बहूनां युवानंसन्तं पलितो जगार ।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।५५।५)

[३२२] (महे वीराय) महान् वीर (तवसे तुराय) बलवान् और जल्दी काम करनेवाले (विरिप्शिने वज्रिणे) स्तुतिके योग्य और वज्रधारी (स्थविराय अस्मै) वृद्ध इस इन्द्रके लिए (अपूर्व्या) अपूर्व और (पुरुतमानि) बहुतसे (शन्तमानि वचांसि) स्तुति करनेवाले स्तोत्र (तक्षुः) बोले जाते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ इक्कीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[२२] द्वाविंशः खण्डः ।

[३२३] (द्रप्सः) शीघ्र चलकर आनेवाला (दशभिः सहस्रैः इयानः) दस हजार सैनिकोंके साथ आक्रमण करनेवाला (कृष्णाः) कृष्ण नामका असुर (अंशुमतीं अवातिष्ठत्) अंशुमति नदी पर आकर पहुँच गया, (शच्या धमन्तं तं) अपने बलसे जगत्को कष्ट देनेवाले उस असुर पर (इन्द्रः आवत्) इन्द्र चढ़ दौड़ा, (अथ) बादमें (नृमणाः) लोगोंके मनोंको अपनी तरफ खेंचनेवाले इन्द्रने (स्नीहिति अधद्राः) उसकी हिंसक सेनाओंको भी मार गिराया ॥ १ ॥

[३२४] हे इन्द्र ! (ये विश्वे देवाः) जो सब देव तेरे (सखायः) मित्र थे, वे सब देव (वृत्रस्य श्वसथात्) वृत्रासुरके श्वाससे डरकर (ईपमाणाः त्वा अजहुः) चारों दिशाओंमें भाग गए और तुझे छोड़ गए, हे इन्द्र ! अब (मरुद्भिः ते सख्यं अस्तु) मरुतोंके साथ तेरी मित्रता होवे, और (अथ) इसके बाद तू (इमाः विश्वाः पृतनाः जयासि) इन सब शत्रुकी सेनाओंपर विजय प्राप्त कर ॥ २ ॥

[३२५] (समने विधुं) युद्धमें कार्य करनेवाले, (बहूनां दद्राणं) बहुतसे शत्रुके सैनिकोंको भगानेवाले (युवानं) तबल इन्द्रकी कृपासे (पलितः जगार) सफेद बालोंवाला वृद्ध भी अपने कर्तव्यमें जागरूक रहता है, (देवस्य महित्वा) इस इन्द्रके महत्व अथवा पराक्रमसे भरे हुए (काव्यं पश्य) काव्यको देखो जो (अद्य ममार) जो आज मर जाता है, पर अगले दिन (सः ह्यः समानः) वह ही कलके समान संसारमें कार्य करने लगता है ॥ ३ ॥



- ३२६ त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।  
 गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ ४ ॥ ( ऋ ८।९६।१६ )
- ३२७ मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्सुम् ।  
 करोष्यर्थस्तुरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥
- ३२८ प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।  
 विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ७।३१।१० )
- ३२९ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नूतमं वाजसातौ ।  
 शृण्वन्तमुग्रभूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥ ७ ॥ ( ऋ ३।३०।२२ )
- ३३० उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्थे महया वसिष्ठ ।  
 आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ ८ ॥ ( ऋ ७।२३।१ )

[ ३२६ ] हे इन्द्र ! ( त्वं त्यत् जायमानः ) तू उत्पन्न होते ही ( अ-शत्रुभ्यः सप्तभ्यः ) अबतक शत्रुओंसे रहित कृष्ण-वृत्र-नमुचि-शम्बर आदि सात असुरोंका ( शत्रुः अभवः ) शत्रु होगया, हे इन्द्र ! तू ( गूढे द्यावापृथिवी ) अन्धकारमें पड़े हुए द्यु और पृथ्वी लोकको ( अन्वविन्दः ) प्रकाशमें ले आया और अब तू ( विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः ) वैभवशाली भुवनोंमें ( रणं धा ) सुन्दरतासे स्थापित इन लोकोंको और अधिक रमणीय बनाता है ॥ ४ ॥

[ ३२७ ] हे इन्द्र ! ( दुवस्युः ) प्रशंसनीय ( अर्थः ) शत्रुनाशक तू हमें ( तरुषीः ) विजयी करता है, ( मेडिं न ) जिस प्रकार प्रशंसनीय मनुष्यकी स्तुति की जाती है, उसी प्रकार मैं ( वृत्र-हणं ) वृत्रको मारनेवाले ( द्यु-क्षं ) द्युलोकमें रहनेवाले ( पुरु-धस्मानं ) अनेक शत्रुओंके नाश करनेवाले ( वृषभं ) बलवान् ( स्थिर-प्सुम् ) युद्धमें स्थिर रहनेवाले ( वज्रिणं ) वज्रधारी ( भृष्टि-मन्तं ) शत्रुनाशक ( त्वा गृणीषे ) तुझ इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[ ३२८ ] हे मनुष्यो ! ( वः ) तुम ( महे वृधे महे प्रभरध्वं ) बड़े बड़े कार्य करनेवाले महान् इन्द्रको भरपूर सोम दो, ( प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं ) विशेष ज्ञानी इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो, हे इन्द्र ! ( चर्षणि-प्राः ) प्रजाओंकी इच्छा पूरी करनेवाला तू ( पूर्वी विशः प्रचर ) हवि देनेवाले हम प्रजाजनोंकी सहायता कर ॥ ६ ॥

[ ३२९ ] ( वाज-सातौ अस्मिन् भरे ) अन्नकी प्राप्ति होनेवाले इस युद्धमें ( शुनं ) उत्साही ( मघवानं नूतमं ) घनवान्, वीरोंमें श्रेष्ठ ( शृण्वन्तं ) प्रार्थनाओंको सुननेवाले, ( उग्रं ) शूरवीर ( समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं ) युद्धोंमें शत्रु-ओंको मारनेवाले, ( धनानि संजितं इन्द्रं ) धनोंको जीतनेवाले इन्द्रको हम ( ऊतये हुवेम ) अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[ ३३० ] ( श्रवस्या ) अन्नको पानेकी इच्छासे ( ब्रह्माणि उत् पेरयत ) स्तोत्रोंको कहो, हे ( वसिष्ठ ) इन्द्रियोंको जीतनेवाले ऋषे ! ( यः विश्वानि ) जो सब लोगोंको ( श्रवसा आततान ) अन्नसे अथवा यज्ञसे बढ़ाता है, और जो ( ईवतः मे ) उपासना करनेवाले मेरी ( वचांसि उप श्रोता ) प्रार्थनाओंको सुनता है ऐसे ( इन्द्रं ) इन्द्रकी महिमाका ( समर्थे महय ) यज्ञमें वर्णन कर ॥ ८ ॥



३३१ चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विचच्छद्यात् ।

पृथिव्यामतिषित यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु

॥ ९ ॥ ( ऋ. १०।७८।९ )

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० १६ । उ० ६ । धा० ७३ । कि ॥ ]

[ ५ ]

( १-१० ) १ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः; २ भरद्वाजः ( ऋ० गर्गो भारद्वाजः ); ३ विमद ऐन्द्रः, वसुकृद्वा वासुकः ( ऋ० प्राजापत्यो वा ) ४-६, ९ वामदेवो गौतमः ( १ ऋ० यमो वैवस्वती ) ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ८ रेणु-वैश्वामित्रः; १० गौतमो राहूगणः ॥ इन्द्रः; ( ऋ० १ तार्क्ष्यः; ७ पर्वतेन्द्रो; ९ यमो वैवस्वतः ) ॥ त्रिष्टुप् ॥

३३२ त्वम् षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।

अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा ह्रुवेम

॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१७८।१० )

३३३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।

ह्रुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः

॥ २ ॥ ( ऋ. ६।४७।११ )

३३४ यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां विवृतानाम् ।

प्र इमश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा

॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।२३।१ )

[ ३३१ ] ( अस्य चक्रं ) इस इन्द्रका वज्र ( अप्सु आ निषत्तं ) अन्तरिक्षमें चमकता है, ( उत उ ) और वह ( अस्मै मधु इत् चच्छद्यात् ) इस उपासकके लिए मीठा जल भेजता है, उसी प्रकार ( पृथिव्यां अतिषितं यत् ऊधः ) पृथ्वीपर जो जल बहता है, ( गोषुः पयः ) उन्हें गायोंमें दूधके रूपमें और ( ओषधीषु आदधाः ) औषधियोंमें रस रूपसे रखता है ॥ ९ ॥

॥ यहां वाइसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २३ ] त्रयोविंशः खण्डः ।

[ ३३२ ] ( त्वं वाजिनं ) उस बलवान् ( देव-जूतं सहोवानं ) देवोंके द्वारा सेवित, शक्तिमान्, ( रथानां तरुतारं ) रथोंके संग्राममें तारनेवाले ( अ-रिष्ट-नेमिं ) तीक्ष्ण शस्त्र अपने पास रखनेवाले ( पृतनाजं ) शत्रुकी सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले, ( आशुं तार्क्ष्यं ) शीघ्र उड़नेवाले सुपर्णको हम ( स्वस्तये इह ह्रुवेम ) अपने कल्याणके लिए यहां बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ३३३ ] ( त्रातारं इन्द्रं ह्रुवे ) संरक्षण करनेवाले इन्द्रको मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( अवितारं इन्द्रं ) सहायक इन्द्रको मैं बुलाता हूँ, ( हवे हवे सुहवं ) प्रत्येक युद्धमें बुलाने योग्य ( शूरं शक्रं पुरुहूतं इन्द्रं ) शूर, सामर्थ्यवान् और बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( मघवान् ) इन्द्र ( इदं हविः वेतु ) इस हविष्यान्नको खावे ॥ २ ॥

[ ३३४ ] ( वज्र-दक्षिणं ) अपने दाहिने हाथमें वज्रको धारण करनेवाले ( विवृतानां हरीणां रथ्यां ) वेगसे दौड़ने वाले घोड़ोंके रथमें बैठनेवाले ( इन्द्रं यजामहे ) इन्द्रके लिए हम यज्ञ करते हैं, वह इन्द्र ( इमश्रुभिः दोधुवत् ) अपनी दाढ़ी और मूँछके द्वारा ही सबको कंपाता है, वह ( ऊर्ध्वधा विभुवत् ) सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, ( सेनाभिः भयमानः ) अपनी सेनासे शत्रुओंको भयभीत करता हुआ वह ( राधसा वि ) उपासकोंको धन देता है ॥ ३ ॥



- ३३५ सत्राहणं दाधृषिं तुभ्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।  
 हन्ता यो वृत्रं सनितात वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ४।१७।८ )
- ३३६ यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।  
 क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्रामीष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥
- ३३७ यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।  
 यं शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥
- ३३८ इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतः सुवीराः ।  
 वीतः हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥ ( ऋ. ३।२३।१ )
- ३३९ इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात् ।  
 यो अक्षणेव चक्रियो शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।८९।४ )

[ ३३५ ] हम ( सत्रा-साहं ) एक साथ अनेक शत्रुओंको मारनेवाले, ( दाधृषिं ) शत्रुको भयभीत करनेवाले, ( तुभ्रं ) शत्रुको भगानेवाले ( महाम अपारं वृषभं ) महान् अत्यधिक शक्तिशाली ( सु-वज्रं इन्द्रं ) उत्तम वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं, ( यः वृत्रं हन्ता ) जो वृत्रका वध करता है, ( उत वाजं सनिता ) और अन्न देता है, वही ( सु-राधाः मघवा ) उत्तम धन पास रखनेवाला इन्द्र ( मघानि दाता ) भक्तोंको धन देनेवाला है ॥ ४ ॥

[ ३३६ ] ( यः मर्तः ) जो शत्रु मनुष्य ( नः वनुष्यन् ) हमें जानसे मारनेकी इच्छा करते हुए ( अभि दासति ) हमपर चढ़ा चला आता है, और जो ( मन्यमानः ) घमंडी ( क्षिधी युधा शवसा ) संहार करनेवाले हथियारोंको लेकर बहुत वेगसे ( उगणाः तुरः ) सेनाओंके साथ हम पर चढ़ाई करता हुआ चला आता है, उसको हम ( त्वा ऊताः ) तुझसे रक्षित होकर तथा ( वृष-मणः ) बलवान् मनसे युक्त होकर ( अभिष्याम ) हरायें ॥ ५ ॥

[ ३३७ ] ( वृत्रेषु स्पर्धमानाः क्षितयः ) शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाली प्रजायें, ( यं हवन्ते ) जिसको सहायताके लिए बुलाती हैं, ( युक्तेषु तुरयन्तः यं ) शस्त्रोंको हाथमें लेकर जल्दी ही मारकाट करनेवाले वीर जिसको बुलाते हैं, ( शूर-सातौ यं ) शूरोंके युद्धोंमें जिसे बुलाया जाता है ( अपां यं ) पानीके लिए जिसे पुकारते हैं, ( उपज्मन् यं ) वर्षा होनेके लिए जिसकी प्रार्थना की जाती है, ( विप्रासः वाजयन्ते ) ज्ञानी यज्ञ करनेवाले जिसके लिए हवि देते हैं, ( सः इन्द्रः ) वह इन्द्र है ॥ ६ ॥

[ ३३८ ] हे ( इन्द्रा पर्वता ) इन्द्र और पर्वत ! ( बृहता रथेन ) महान् रथसे आकर ( वामीः सुवीराः ) स्तुतिके योग्य, उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त ( इषः आवहत ) अन्न लाकर हमें दो, हे ( देवाः ) देवो ! ( अध्वरेषु हव्यानि वीत ) हमारे यज्ञोंमें हविको खाओ, ( इडया मदन्ता ) हमारे द्वारा दिये गए अन्नोंसे आनन्दित होनेवाले तुम्हारे यज्ञ ( गीर्भिः वर्धेथां ) हमारी स्तुतियोंसे बढ़ें ॥ ७ ॥

[ ३३९ ] ( यः ) जो इन्द्र ( शचीभिः ) अपनी शक्तियोंसे ( पृथिवीं उत द्यां ) पृथ्वी और द्युलोकको ( चक्रियो अक्षणेव ) जिस प्रकार चक्रोंको हाल थामता है, उसी प्रकार ( विष्वक् तस्तम्भ ) चारों ओरसे धारण करता है । ( इन्द्राय अनिशित सर्गा गिरः ) ऐसे इन्द्रकी ऊँचे स्वरसे की जानेवाली स्तुतियां ( सगरस्य बुध्नात् अपः प्रैरयत् ) अंतरिक्षके स्थानसे जलोंको बहाती हैं ॥ ८ ॥



३४० आ त्वा सखायः सखायः ववृत्युस्तिरः पुरु चिदणवां जगम्याः ।  
 पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन्क्षये प्रतरां दीधानः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १०।१०।१ )

३४१ को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून् ।  
 आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १० ॥

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० १८। उ० ४। घा ८६। (बू) ॥ ]

इति त्रिष्टुप् समाप्ता ॥ इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ६ ]

( १-१० ) १ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; २ जेता माधुच्छन्दसः; ३, ६ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिभौमः; ५, ८ तिर-  
 श्चीरांगिरसः; ७ नोपातिथिः काण्वः; ९ विश्वामित्रो गायिनः; १० तिरश्चीरांगिरसः शंयुर्बाहंस्पत्यो वा ॥

॥ इन्द्रः ॥ अनुष्टुप् ॥

३४२ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।  
 ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०।१ )

३४३ इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।  
 रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।११।१ )

[ ३४० ] हे इन्द्र ! ( सखायः ) मित्र जन ( सखायः त्वा आववृत्युः ) उत्तम स्तोत्रोंसे तुझे अपने सामने बुलाते हैं, तू तिरः पुरु अर्णवं जगम्याः ) ऊपर जाकर विस्तृत अन्तरिक्षमें पहुँच गया है । ( अस्मिन् क्षये ) इस यज्ञमें ( प्र तरां दीध्यानाः ) अत्यधिक प्रकाशित होकरके ( वेधाः ) वह इन्द्र ( पितुः नपातं आदधीत ) पिताके नाती पोते अर्थात् मेरे लडकेका लडका हो ऐसा करे ॥ ९ ॥

[ ३४१ ] ( अद्य ) आज ( ऋतस्य धुरिः ) यज्ञमें जानेवाले इन्द्रके रथकी धुरामें । गाः ) दौडनेवाले ( शिमीवतः भामिनः ) बीर और तेजस्वी ( दु-र्हणायून् ) शत्रुपर अत्यधिक क्रोध करनेवाले ( मयोभून् ) सुखदायक घोड़ोंको ( आसन् ) मुखसे कहे जानेवाले स्तोत्रोंकी सहायतासे ( कः युङ्क्ते ) भला कौन जोड़ता है ? ( यः एषां भृत्यां ऋणधत् ) जो इनके [ घोड़ोंके ] भरण पोषणके कार्य करता है, ( सः जीवात् ) वही जीवित रहता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ तेइसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २४ ] चतुर्विंशः खण्डः ।

[ ३४२ ] हे ( शत-क्रतो ) सैंकड़ों उत्तम कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( त्वा गायत्रिणः गायन्ति ) उद्गाता तेरा वर्णन करते हैं, ( अर्किणः अर्कं अर्चन्ति ) स्तुति करनेवाले पूजनीय इन्द्रका सत्कार करते हैं, ब्रह्माणः ) ब्रह्माण ( त्वा ) तुझे ( वंशं इव ) जिस प्रकार नट लोग बांसको ऊपर खड़ा रखते हैं उसी प्रकार ( उद्वंशमिव ) ऊपर स्थापित करते हैं, अर्थात् तेरी प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ३४३ ] ( विश्वाः गिरः ) सब स्तुतियां ( समुद्रव्यचसं ) समुद्रके समान विस्तृत ( रथीनां रथीतमं ) रथमें बैठनेवाले बीरोंमें श्रेष्ठ बीर ( वाजानां पतिं ) बलोंके और अश्वोंके स्वामी ( सत्पतिं इन्द्रं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्रकी महिमा बढाती हैं ॥ २ ॥



३४४ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने

॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८४।४ )

३४५ यदिन्द्र चित्रं म इह नास्ति त्वादातमाद्रिवः ।

राधस्तन्ना विदद्वस उभयाहस्त्या भर

॥ ४ ॥ ( ऋ. १।३९।१ )

३४६ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।

सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूधिं महाऽसि

॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९९।४ )

३४७ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

आ त्वा पणक्तिवन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः

॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८४।१ )

३४८ इन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवाचसो

॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।३४।१ )

३४९ आ त्वा गिरौ रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९९।१ )

[ ३४४ ] हे इन्द्र ! ( इमं ज्येष्ठं मदं ) इस श्रेष्ठ और आनन्द बढ़ानेवाले ( अमर्त्यं सुतं पिब ) अमर सोम रसोंको पी, क्योंकि ( ऋतस्य सादने ) यज्ञके मण्डपमें ( शुक्रस्य धाराः ) शुद्ध सोमरसकी धारा ( त्वा अभ्यक्षरन् ) तेरी तरफ बह रही है ॥ ३ ॥

[ ३४५ ] हे ( चित्रः अद्रिवः ) विलक्षण और वज्रको धारण करनेवाले ( विदद्वसो इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( यत् त्वादातं राधः ) जो तेरे देने योग्य धन ( इह मे नास्ति ) यहां मेरे पास नहीं है, ( तत् नः ) उस धनको हमें ( उभया हस्त्या आभर ) दोनों हाथोंसे भरपूर दे ॥ ४ ॥

[ ३४६ ] हे इन्द्र ! ( यः त्वा सपर्यति ) जो तेरी उपासना करता है, ऐसे उस ( तिरश्च्याः हवं श्रुधि ) तिरश्चि ऋषिकी प्रार्थना सुन, और तू ( सुवीर्यस्य गोमतः रायः ) उत्तम बल युक्त और राय युक्त धन देकर ( पूधिं ) हमें पूर्ण कर, ( महान् असि ) तू महान् है ॥ ५ ॥

[ ३४७ ] हे इन्द्र ! ( ते सोमः असावि ) तेरे लिए सोमरस निकाला है, हे ( शविष्ठ ) बलवान् ( धृष्णो ) शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्र ! ( आ गहि ) आ, ( इन्द्रियं त्वा ) सोमपानसे तेरे अन्दर शक्ति ( सूर्यः रश्मिभिः रजः न ) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे अन्तरिक्षको भर देता है, उसी प्रकार ( आ पृणक्तु ) भर जाए ॥ ६ ॥

[ ३४८ ] हे इन्द्र ! ( कण्वस्य सुष्टुतिं ) कण्वकी उत्तम स्तुतिके पास ( हरिभिः उप याहि ) घोड़ोंके द्वारा आ, ( अमुष्य ) इसके ( दिवः शासतः ) द्युलोकके शासनमें हमें सुख मिलता है, इसलिए हे ( दिवाचसो ) नेजके साथ रहनेवाले इन्द्र ! ( दिवं यय ) द्युलोक पर जा ॥ ७ ॥

[ ३४९ ] हे ( गिर्वणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( सुतेषु ) सोम यज्ञमें ( गिरः ) हमारी स्तुतियां ( रथीः इव ) रथमें बैठनेवाले वीर जिस प्रकार अपने ठीक स्थान पर पहुंच जाने हैं, उसी प्रकार ( त्वा अस्थुः ) तेरे पास पहुंचती हैं, हे इन्द्र ! ( वत्सं धेनवः गावः न ) बछड़ोंके पास जैसे दुधार गाय पहुंचती हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुति ( त्वा अभि समनूषत ) तेरे पास पहुंचती है ॥ ८ ॥



३५० एतो न्विन्द्रं स्त्वाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।

शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु

॥ ९ ॥ ( ऋ. ८।९५।७ )

३५१ यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नद्युम्नवत्तमः ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः

॥ १० ॥ ( ऋ. ६।४४।१ )

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ [ स्व० ४ । उ० ४ । धा० ५४ । ( धी ) ॥ ]

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

[ ७ ]

( १-१० ) १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ वामदेवो गौतमः, शाकपूतो वा; ३ प्रियमेध आंगिरसः; ४ प्रगाथः काण्वः;

५ श्यावाश्व आत्रेयः; ६ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ७ वामदेवो गौतमः; जेता माघुच्छन्दसः ॥ इन्द्रः; ५ भरतः;

७ दधिका वा ॥ अनुष्टुप् ॥

३५२ प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥ १ ॥

( ऋ. ६।४२।१ )

३५३ आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठां महान्तं पूर्विणेष्ठां । उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

[ ३५० ] ( नु एत उ ) जल्दी आ, ( शुद्धेन साम्ना ) शुद्ध साम और ( शुद्धैः उक्थैः ) शुद्ध मंत्रोंके द्वारा हम ( शुद्धं इन्द्रं स्त्वाम ) शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं, ( वावृध्वांसं ) शक्तिको बढ़ानेवाले इन्द्रको ( शुद्धैः ) शुद्ध मंत्रोंसे तैय्यार किए गए ( आशीर्वान् ममत्तु ) गौ दूधसे मिले हुए सोम आनन्द देवें ॥ ९ ॥

[ ३५१ ] हे इन्द्र ! ( यः रयिन्तमः ) जो अत्यन्त शोभायुक्त है, और ( यः द्युम्नैः द्युम्नवत्तमः ) जो तेजसे अत्यन्त तेजस्वी है, ( सः सोमः ) वह सोम ( वः ) तेरे उपासकोंको ( रयिं ) धन देता है, हे ( स्वधापते ) अपनी धारणा शक्तिसे युक्त इन्द्र ! ( सुतः ते मदः अस्ति ) यह सोमरस तुझे आनन्द देनेवाला हो ॥ १० ॥

॥ यहां चौबीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २५ ] पंचविंशः खण्डः ।

[ ३५२ ] हे याजको ! ( नरः ) यज्ञको आगे ले जानेवाले तुम यज्ञकर्त्ता ( अस्मै पिपीषते ) इस सोम पीनेकी इच्छा करनेवाले ( विश्वानि विदुषे ) सबको जाननेवाले ( अरं गमाय ) उचित समय पर ठीक स्थान पर पहुंचानेवाले ( जग्मये ) यज्ञमें जानेवाले ( अ-पश्चात्-अध्वने ) सबसे पहले पहुंचनेवाले ( प्रति भर ) इन्द्रको इच्छानुसार सोम दो ॥ १ ॥

[ ३५३ ] ( महान्तं गह्वरेष्ठां वयः शयं ) महान् पर्वतपर रहनेवाले और सब जगह मिलनेवाले ( वयः ) सोमरूपी अस्त्रको ( नः ) हमारे लिए ( आ भर ) भरपूर ले आ । ( महान्तं पूर्विणेष्ठां ) बहुत सारे प्रसिद्ध होनेवाले ( उग्रं वचः अपावधीः ) कठोर भाषणोंको दूर कर, बुरे शब्द हमारे पास न आवें ऐसा कर ॥ २ ॥



३५४ आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।

तुवि-कूर्मि-मृती-षहामिन्द्र-शविष्ठ सत्पतिम्

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६८।१ )

३५५ स पूर्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।

यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे

॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।६३।१ )

३५६ यदी वहन्त्याश्वो भ्राजमाना रथेष्व ।

पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते

॥ ५ ॥

३५७ त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे श्वसस्पतिम् ।

इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम्

॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।४४।४ )

३५८ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूषि तारिषत्

॥ ७ ॥ ( ऋ. ४।३९।६ )

[ ३५४ ] हे ( शविष्ठ ) बलवान् इन्द्र ! ( ऊतये सुम्नाय ) संरक्षण और सुखके लिए ( रथं यथा ) जैसे रथको घुमाते हैं, उसी प्रकार ( तुवि-कूर्मि ) बहुत पराक्रमी ( ऋती-षहं ) शत्रुओंको हरानेवाले ( सत्पतिं त्वा इन्द्रं ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुझ इन्द्रको ( वर्तयामसि ) हम लाते हैं ॥ ३ ॥

१ तुवि-कूर्मि ऋती-षहं सत्पतिं त्वा इन्द्रं वर्तयामसि— अत्यन्त पराक्रमी, शत्रुओंको हरानेवाले सज्जनोंका पालन करनेवाले इन्द्रको हम पास लाते हैं ।

[ ३५५ ] ( सः पूर्यः ) वह इन्द्र मुख्य है, ( महोनां क्रतुभिः ) महान् यजमानके यज्ञकी सहायतासे ( वेनः आनजे ) हविष्यान्नकी इच्छा करते हुए वह इन्द्र यज्ञमें आता है, ( यस्य द्वारा ) जिस यज्ञके द्वारा ( धियः ) कर्मोंको करते हुए ( देवेषु पिता मनुः आनजे ) देवोंमें सबका पालन करनेवाला मननशील वह इन्द्र प्रकट होता है ॥ ४ ॥

[ ३५६ ] ( यदि ) जहां जिस यज्ञमें ( भ्राजमानः आश्वः ) तेजस्वी और शीघ्र जानेवाले महत् ( आवहन्ति ) तुझे पहुंचाते हैं, ( तत्र ) उस यज्ञमें वे ( मदिरं मधु पिबन्तः ) आनन्द बढ़ानेवाले उस मधुर सोमरसको पीते हैं, और ( श्रवांसि कृण्वते ) अन्न उत्पन्न करते हैं, अर्थात् पानी बरसाकर अन्न उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

[ ३५७ ] ( वः ) तुम्हारे हितके लिए ( त्यं उ अप्रहणं ) उस उपकार करनेवाले—हिंसा न करनेवाले ( श्वसः पतिं ) बलके स्वामी, अन्नके स्वामी ( विश्वा-साहं ) सब शत्रुओंको हरानेवाले ( नरं शचिष्ठं ) नेता और शक्तिमान् ( विश्ववेदसं ) सर्वज्ञ इन्द्रकी ( गृणीषे ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

[ ३५८ ] ( जिष्णोः ) विजयी ( अश्वस्य वाजिनः ) अश्वरूपी वेगवान् ( दधिक्राव्णः ) दधिक्रावकी स्तुति ( अकारिषं ) मंने की, यह ( नः मुखा सुरभि करत् ) हमारे मुखानि अंगोंको शक्तिसम्पन्न करता है, ( नः आयूषि प्रतारिषत् ) और हमारी आयु बढ़ाता है ॥ ७ ॥



३५९ पुरां भिन्दुयुवा कविरमितोजा अजायत ।

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः

॥ ८ ॥ ( ऋ. १।१।१४ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्व० ५ । उ० २ । धा० ४५ । ( पु ) ॥ ]

[ ८ ]

( १-१० ) १, ३, ५ प्रियमेध आंगिरसः; २, १० वामदेवो गौतमः; ४ मधुच्छन्दा वंशवामित्रः; ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः;  
७ अत्रिर्भौमः; ८ प्रस्कण्वः काण्वः; ९ त्रित आप्त्यः । ऋ० आंगिरसो वा ) ॥ इन्द्रः; ( ६ ऋ० अग्निः )

८ उषाः; ९ विश्वेदेवाः ॥ अनुष्टुप् ॥

३६० प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्दीरायेन्दवे ।

धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६९।१ )

३६१ कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।

ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य

॥ २ ॥

३६२ अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।

अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्णवर्चत

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।६९।८ )

३६३ उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिःषिधे ।

शक्रो यथा सुतेषु नो रारणन्सख्येषु च

॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१०।९ )

[ ३५९ ] ( पुरां भिन्दुः ) शत्रुके नगरीको तोडनेवाला, ( युवाः कविः ) तरुण, ज्ञानी ( अ-मित-ओजाः ) अपरिमित बलवान्, ( विश्वस्य कर्मणः धर्ता ) सब शुभ कर्मोंको धारण करनेवाला ( पुरु-ष्टुतः इन्द्रः अजायत ) अनेकोंके द्वारा प्रशंसित यह इन्द्र उत्पन्न हुआ है ॥ ८ ॥

॥ यद्वा पच्छीसवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ २६ ] षड्विंशः खण्डः ।

[ ३६० ] हे याजको ! ( वः ) तुम ( त्रिष्टुभं इषं ) तीन स्तोत्रोंसे तैय्यार किया गया अन्न ( वन्दद् वीराय इन्दवे ) प्रशंसनीय दीर इन्द्रके पास ( प्रप्र ) पहुंचावो, वह इन्द्र ( वः ) तुम्हें ( मेधसातये ) यज्ञके अनुष्ठानके लिए ( पुरन्ध्या धिया ) विशेष बुद्धिसे किए गए कर्मोंसे ( आ विवासति ) इष्ट फल देकर तुम्हारा सत्कार करता है ॥ १ ॥

[ ३६१ ] ( कश्यपस्य ) सर्वद्वष्टा इन्द्रके ( यौ ) जो दोनों घोडे हैं, ( ययोः ) जिनके ( विश्वं अपि व्रतं ) सब कार्य ( यज्ञ इति ) यज्ञ ही हैं, ऐसा ( निचाय्य ) निश्चय करके ( सयुजौ ) वे दोनों घोडे रथमें जोडे जाते हैं, ऐसा ( स्वर्विदः धीराः आहुः ) ज्ञानी और बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं ॥ २ ॥

[ ३६२ ] हे ( नरः ) मनुष्यो ! तुम ( अर्चत ) इन्द्रका सत्कार करो, ( प्र अर्चत ) विशेष रूपसे सत्कार करो, हे ( प्रिय-मेधासः ) यज्ञसे प्रेम करनेवालो ! ( अर्चत ) इन्द्रका सत्कार करो, हे ( पुत्रकाः ) पुत्रो ! ( पुरं इत् धृष्णु ) भक्तोंको इच्छा पूर्ण करनेवाले, शत्रुको हरानेवाले इन्द्रका ( अर्चन्तु, अर्चत ) लोग सत्कार करें और तुम भी सत्कार करो ॥ ३ ॥

[ ३६३ ] ( पुरु-निः-षिधे इन्द्राय ) बहुतसे शत्रुओंके नाश करनेवाले इन्द्रके लिए ( वर्धनं उक्थं ) उसके यशको बढ़ानेवाले स्तोत्र ( शंस्यं ) कहो, वह ( शक्रः ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( नः ) हमारे ( सुतेषु च सख्येषु ) पुत्रोंमें और मित्रोंमें ( यथा रारणत् ) जिस रीतिसे उत्तम बोले, उस प्रकारसे इसके लिए स्तोत्रोंको कहो ॥ ४ ॥



- ३६४ विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य श्वसः ।  
 एवैश्च चर्षणीनामृती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।६८।४ )
- ३६५ स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।  
 ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ६ ॥ ( ऋ. ६।२।४ )
- ३६६ विभोष्ट इन्द्र राधमो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।  
 अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्न सुदत्र मंहय ॥ ७ ॥ ( ऋ. ५।३८।१ )
- ३६७ वयश्चित्त पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।  
 उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।४९।३ )
- ३६८ अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिव ।  
 कद्र ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१०५।५ )

[ ३६४ ] ( विश्वानरस्य ) सब शत्रुओंके सैनिकोंपर आक्रमण करनेवाले अथवा विश्वके नेता ( अनानतस्य ) शत्रुके आगे कभी न झुकनेवाले ( श्वसः पतिं ) बलके स्वामी इन्द्रको, हे मर्त ! ( वः ) तुम्हारे ( चर्षणीनां एवैः ) सैनिकोंके आक्रमणके लिए होनेवाले शोरके समय ( रथानां ऊती हुवे ) रथोंके संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥

३६५ ] ( यः ) जो ( शमतः मर्तस्य ) शान्त मनुष्यको ( दिवः ते धिया ) तेजस्वी दीखनेवाली उस स्तुतिकी सहायतासे ( नरः सखा ) मनुष्य मित्र होता है, ( सः ) वह मनुष्य ( बृहतः दिवः ऊती ) महान् दिव्य संरक्षणसे युक्त होकर ( अंहः न ) पापोंसे सुरक्षित होनेके समान ( द्विषः तरति ) शत्रुओंसे सुरक्षित होता है ॥ ६ ॥

१ सः बृहतः दिवः ऊती, अंहः न, द्विषः तरति — जो मनुष्य इस विशाल संरक्षणसे युक्त होता है, वह जैसे पापसे सुरक्षित होता है उसी प्रकार शत्रुओंसे भी सुरक्षित होता है ॥ ६ ॥

[ ३६६ ] हे ( शतक्रतो इन्द्र ) हे सैकड़ों पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! ( विभोः राधसः ) बहुतसे धनोंके ( ते रातिः विभ्वी ) तेरे दान महान् हैं, ( अथ ) इसके बाद ( विश्व-चर्षणे सु-दत्र ) हे सर्वव्रष्टा और उत्तम दान देनेवाले इन्द्र ! ( नः द्युम्नं मंहय ) हमें धन देकर महान् कर ॥ ७ ॥

[ ३६७ ] हे ( अर्जुनि उषः ) शुभ्र वर्णकी उषे ! ( ते ऋतूँ अनु ) तेरे आनेके बाद ( द्विपाद् चतुष्पाद् ) मनुष्य और पशु ( पतत्रिणः वयः चित् ) तथा पंखोंवाले पक्षी भी ( दिवः अन्तेभ्यः ) आकाशके अन्ततक ( परि प्रारन् ) ऊपर इच्छानुसार उड़ते हैं ॥ ८ ॥

[ ३६८ ] हे ( देवा ) देवो ! ( ये अभी ) जा इन ( दिवः आरोचने ) दिनोंके प्रकाशित होनेपर ( मध्ये स्थन ) तुम उस आकाशमें रहते हो, ( वः ऋतं कद्र ) तुम्हें वहां क्या यज्ञ प्राप्त होता है ? अथवा क्या ( वः प्रत्ना आहुतिः का ) वहां तुम्हें पहलेके समान कोई आहुति भी मिलती है ? ॥ ९ ॥



३६९ ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।

वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः

॥ १० ॥

इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ इत्यनुष्टुभः ॥ [ स्व० ७ । उ० ३ । धा० ५४ । जी ॥ ]

[ ९ ]

( १-११ ) १ रेभः काश्यपः; २ सुवेदाः शंलषिः; ३ वामदेवो गौतमः; ४, ७, ८ सव्य आङ्गिरसः; ५ विश्वामित्रो गायिनः; ६ कृष्ण आङ्गिरसः; ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १० मेधातिथिः काण्वः ( ऋ० मान्धाता यौवनाश्वः ), ११ कुत्स आङ्गिरसः ॥ इन्द्रः; ९ द्यावापृथिवी ॥ जगती; १ अति जगती; १० महापङ्क्तिः ॥

३७० विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजुस्ततश्चुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

ऋत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९७।१० )

३७१ श्रुते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यदस्युं नयं विवेरपः ।

उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसाते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१४७।१ )

३७२ समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवा य एक इन्द्ररतिथिजनानाम् ।

स पूर्यो नूतनमाजिगीषं तं वर्त्तनीरनु वावृत एक इत्

॥ ३ ॥

[ ३६८ ] ( याभ्यां कर्माणि कृण्वते ) जिसकी सहायतासे यज्ञादि कर्म किए जाते हैं, ( ऋचं साम यजामहे ) उस ऋचा और सामको गाकर हम यज्ञ करते हैं, ( ते ) वे ऋग् मंत्र और साम मंत्र ( सदसि विराजतः ) यज्ञ मण्डपमें विराजमान हैं, और वे ही ( देवेषु यज्ञं वक्षतः ) देवोंमें यज्ञको पहुंचाते हैं ॥ १० ॥

॥ यहाँ छन्दोसचां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २७ ] सप्तविंशः खण्डः ।

[ ३७० ] ( विश्वाः पृतनाः नरः ) सब शत्रुसेनाके नेता वीर सैन्यके साथ ( सजुः ) एकत्रित होनेके बाद वे ( अभि-भू-तरं इन्द्रं ततश्चुः ) शत्रुको बुरी तरह हरानेवाले इन्द्रको शस्त्रास्त्रोंसे युक्त करते हैं, ( च राजसे जजनुः ) और अधिक प्रकाशित करते हैं, ( उत ) और ( ऋत्वे वरे स्थेमनि ) यज्ञमें श्रेष्ठ स्थानपर ऋत्विग् बैठकर ( आमुरीं ) शत्रुको मारनेवाले ( उग्रं ओजिष्ठं तरसं तरस्विनं ) उग्र, वीर, सामर्थ्यवान्, प्रतापी और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ३७१ ] हे ( अद्रि-वः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते प्रथमाय मन्यवे ) तेरे महान् क्रोधपर मैं ( श्रुत् दधामि ) श्रद्धा करता हूँ, ( यत् दस्युं अहन् ) क्योंकि वह क्रोध दुष्टोंको मारता है, और ( नयं अपः विवेः ) मनुष्योंके लिए हितकारी पानीको प्रवाहित करता है, ( उभे रोदसी ) दोनों ही द्युलोक और पृथिवीलोक ( यत् त्वा अनु धावतां ) अब तेरे अनुकूल होकर गति करते हैं और ( पृथिवी चित् ) पृथिवी भी ( ते शुष्मात् भ्यसाते ) तेरे बलके कारण कांपने लगती है ॥ २ ॥

[ ३७२ ] हे ( विश्वाः ) सब प्रजाओ ! ( ओजसा दिवः पतिं ) अपने शक्तिसे इन्द्र द्युलोकका स्वामी है । उसकी ( समेत ) सब एक स्थानपर मिलकर स्तुति करो, ( यः एक इत् ) जो अकेला ही ( जनानां अतिथिः भूः ) मनुष्योंका अतिथिके समान पूज्य है, ( पूर्यः सः ) वह पुराण पुण्य इन्द्र ( आजिगीषं तं नूतनं ) अपने शत्रुओंको जीतनेकी इच्छावाले नये वीरोंको ( एकः इत् ) अकेला ही ( वर्त्तनीः अनुवावृते ) विजयके मार्गसे आगे ले जाता है ॥ ३ ॥



- ३७३ इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।  
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्वयं नो वचः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।९७।४ )
- ३७४ चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्याऽमिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।  
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ ५ ॥ ( ऋ. ३।२१।१ )
- ३७५ अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वध्रुवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।  
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मयं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।४३।१ )
- ३७६ अभि त्यं मेघं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।  
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।९१।१ )
- ३७७ त्यं सु मेघं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साममीरते ।  
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।९२।१ )

[ ३७३ ] ( प्रभूवसो पुरुष्टुत इन्द्र ) हे अत्यधिक धनवान् और बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! ( ये ) जो हम ( त्वा आरभ्य चरामसि ) तेरा आश्रय लेकर कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं, ( ते इमे वयं ते ) वे ये हम तेरे ही हैं, हे ( गिर्वणः ) प्रशंसनीय इन्द्र ! ( त्वद्-अन्यः ) तुझसे भिन्न और कोई दूसरा ( गिरः न हि सघत् ) स्तुतिके योग्य नहीं है, ( तत् ) इसलिए ( नः वचः ) हमारी स्तुतियोंको ( क्षोणीः इव ) पृथ्वी जैसे सबको स्वीकार करती है, उस प्रकार ( प्रति हर्यं ) स्वीकार कर ॥ ४ ॥

[ ३७४ ] ( बृहती गिरः ) हमारी बहुत स्तुति ( चर्षणी-धृतं ) सब मनुष्योंका भरणपोषण करनेवाले ( मघवानं उक्थ्यं ) धनवान् और प्रशंसनीय ( वावृधानं पुरुहूतं ) सब भक्तोंको बढानेवाले और बहुतोंसे प्रशंसित ( अमर्त्यं ) अमर, और ( सुवृक्तिभिः दिवे दिवे ) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रतिदिन ( जरमाणं ) प्रशंसित ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( अभि अनूषत ) प्रशंसा करती है ॥ ५ ॥

[ ३७५ ] ( यथा जनयः मयं पतिं न ) जैसे स्त्रियां अपने पतिका ( परिष्वजन्त ) आलिगन करती हैं, उसी प्रकार ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिये ( शुन्ध्युं मघवानं इन्द्रं ) शुद्ध और धनवान् इन्द्रकी ( स्वः-युवः ) आत्माकी शक्तिको बढानेवाली ( सध्रीचीः ) एकत्रित हुई हुई ( विश्वाः उशतीः मतयः ) सब उन्नतिकी इच्छा करनेवाली हमारी स्तुतियां ( अच्छा अनूषत ) प्रशंसा करती हैं ॥ ६ ॥

[ ३७६ ] ( त्यं मेघं ) उस शत्रुको हरानेवाले ( पुरु-हूतं मृग्मियं ) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित, वेद मंत्रोंसे जिसकी स्तुति की जाती है, ऐसे ( वस्वः अर्णवं ) धनके समुद्र ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( गीर्भिः अभि मदता ) स्तुतिसे आनंदित करो, ( यस्य मानुषं ) जिसके मनुष्योंके लिए हितकारी कार्य ( द्यावः न ) शूलोकके समान ( विचरन्ति ) चारों ही ओरसे प्रभावशाली होते हैं, अतः ( भुजे ) भोग मिले इसलिए ( मंहिष्ठं विप्रं ) महान् जानी इन्द्रकी ( अभि अर्चत ) पूजा करो ॥ ७ ॥

[ ३७७ ] ( यस्य सुभुवः ) जिसके उत्तम स्थान ( शतं साकं ईरते ) सैंकड़ों एक समयमें ही उन्नति करते हैं, ( त्यं मेघं स्वर्विदं रथं ) उस शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले, धन देनेवाले रथके समान इच्छित स्थानमें पहुंचानेवाले ( अत्यं वाजं न ) वेगसे दौड़नेवाले घोड़ेके समान ( हवन-स्यदं ) यज्ञके स्थानपर जानेवाले ( इन्द्रं ) इन्द्रके यज्ञकी ( अवसे ) अपने संरक्षणके लिए ( सु-वृक्तिभिः महया ) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रकट करो, और ( शतं आववृत्यां ) स्तुति सैंकड़ो बार कहो ॥ ८ ॥



३७८ घृतवती भुवनानामभिध्रियां पृथ्वी मधुदुध सुपेशसा ।

द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।७०।१ )

३७९ उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।

महान्तं त्वा महीनां सभ्राजं चर्षणीनाम् ।

देवी जानित्रीजीजनद्भ्रा जानित्रीजीजनत् ॥ १० ॥ ( ऋ. १०।१३४।१ )

३८० प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः ऋणगर्भा निरहन्नृजिश्चना ।

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥ ११ ॥ ( ऋ. १।१०।१।१ )

इति नवमी वसतिः ॥ ९ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० १४ । उ० ७ । धा० ९३ । धि ॥ ]

॥ इति जगत्यः ॥

[ १० ]

( १-१० ) १ नारवः काण्वः; २,३ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनैः; ४ पर्वतः काण्वः; ५-७, १० विश्वमना वयश्वः;

८ नृमेध आङ्गिरसः; ९ गोतमो राहूगणः ॥ इन्द्रः ॥ उष्णिक् ॥

३८१ इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।

विदे वृधस्य दक्षस्य महाहि षः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

[ ३७८ ] ( द्यावापृथिवी ) ये द्युलोक और पृथ्वीलोक ( घृतवती ) जलवाले, ( भुवनानां अभिध्रिया ) सब प्राणियोंको आश्रय देनेवाले ( उर्वी पृथ्वी ) महान् और विस्तीर्ण ( मधु दुधे ) मीठा जल देनेवाले ( सु-पेशसा ) उत्तम रूपसे युक्त ( वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते ) ईश्वरकी धारकशक्तिके रहनेवाले ( अजरे भूरि रेतसा ) जरारहित, नित्य और उत्तम वीर्यसे सम्पन्न हैं ॥ ९ ॥

[ ३७९ ] हे इन्द्र ! ( उभे रोदसी ) द्युलोक और पृथ्वीलोक इन दोनोंको ( यत् ) जो तू ( उपा इव ) उषाके समान अपने तेजसे ( आ पप्राथ ) भर देता है ऐसे ( महीनां महान्तं ) महान्से भी महान् ( चर्षणीनां सभ्राजं ) मनुष्योंमें सम्राट् ( त्वा इन्द्रं ) तुझ इन्द्रको ( देवी जानित्री ) देवमाता अदितिने ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया, ( भद्रा जानित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली देवीने उत्पन्न किया ॥ १० ॥

[ ३८० ] हे ऋत्विजो ! ( मन्दिने ) प्रशंसनीय इन्द्रकी ( पितुमत् वचः प्र अर्चत ) हविष्यान्त्रसे युक्त स्तुति करो, ( यः ) जिस इन्द्रने ( ऋजिश्चना ) ऋजिश्वकी सहायतासे ( ऋण-गर्भाः ) ऋण असुरकी गर्भवती स्त्रियोंको ऋणके साथ ( निरहन् ) जानसे मार दिया, उस ( वज्र-दक्षिणं ) दायें हाथमें वज्र धारण करनेवाले ( मरुत्वन्तं ) मरुतोंकी सेनाके साथ रहनेवाले ( वृषणं ) बलवान् इन्द्रको अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( सख्याय हुवेम ) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ११ ॥

॥ यहां सत्ताइसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २८ ] अष्टाविंशः खण्डः

[ ३८१ ] हे इन्द्र ! ( सोमेषु सुतेषु ) सोमरसोंको निकालनेके बाद ( वृधस्य दक्षस्य वृधे ) बढ़ानेवाले बलकी प्राप्त करनेके लिए ( क्रतुं उक्थ्यं पुनीषे ) यज्ञ और साम-गान सुनकर उन्हें तू पवित्र करता है, क्योंकि हे इन्द्र ! ( सः महान् हि ) वह तू महान् है ॥ १ ॥



३८२ तमु<sup>१ २ ३ १ २ ४ ३ १ २ ३ २</sup> अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुषुतम् ।

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१५।१ )

इन्द्रं<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ४</sup> गीर्भिस्तविषमा विवासत

३८३ तं ते<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ४</sup> मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।१५।४ )

उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्चियम्<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ४</sup>

३८४ यत्सोममिन्द्र विष्णवे यद्वा घ त्रित आप्तये ।

॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१२।१६ )

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ४</sup>

३८५ एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।

॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१४।१६ )

एवा हि वीरस्तवते सदावधः<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ४</sup>

३८६ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।१४।१३ )

प्र राधांसि चोदयते महित्वना<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ४</sup>

३८७ एतो न्विन्द्रं स्त्वाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।

॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१४।१९ )

कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत्<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ४</sup>

[ ३८२ ] हे स्तुति करनेवाले ! ( पुरु-हूतं ) अनेकोंसे बुलाये जानेवाले ( पुरु-स्तुतं ) और अनेकोंसे प्रशंसित होनेवाले ( तं उ अभि प्रगायत ) उस इन्द्रकी ही बार बार स्तुति करो, ( तविषं इन्द्रं ) महान् इस इन्द्रकी ( गीर्भिः आ विवासत ) मंत्रोंसे आराधना करो ॥ २ ॥

[ ३८३ ] हे ( आद्रि-वः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते ) तेरे ( तं ) उस ( वृषणं ) बलवान् ( पृक्षु सासहिं ) संग्राममें शत्रुको हरानेवाले ( लोक कृत्नुं ) मनुष्योंके लिए हितका काम करनेवाले ( हरि-श्चियं उ ) घोड़े जिसके पास शोभित होते हैं, ऐसे ( मदं ) सोमपानसे उत्पन्न हुए इस उत्साहकी ( गृणीमसि ) हम प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

[ ३८४ ] हे इन्द्र ! यद्यपि ( विष्णवे ) विष्णुके आनेके बाद होनेवाले यज्ञमें ( यत् सोमं ) जो सोमरस तूने पिया ( यद् वा ) अथवा ( आप्तये त्रिते ) आप्त्य त्रितके यज्ञमें ( यद्वा मरुत्सु ) अथवा मरुतोंके साथ अथवा ( मन्दसे ) अन्य यज्ञोंमें सोम पीकर आनन्दित होता है, तो भी तू ( इन्दुभिः सं ) हमारे सोमरस पीकर प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

[ ३८५ ] हे ( अध्वर्यो ) ऋत्विजो ! ( मधोः अन्धसः ) मीठे सोमके इस ( मर्दि-तरं इत् ) आनन्द देनेवाले रसकी ( आ सिञ्च ) इन्द्रको अर्पण करो क्योंकि वह ( वीरः सदा-वृधः ) पराक्रमी और सदा बढानेवाला इन्द्र ( एव हि स्तवते ) ही स्तोत्र पढनेवालोंके द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

[ ३८६ ] हे ऋत्विजो ! ( इन्द्राय इन्दुं सिञ्चत ) इन्द्रके लिए सोमरस दो, उसके बाव ( सोम्यं मधु पिबाति ) मीठा सोमरस वह पीता है, और वह अपनी ( महित्वना ) महत्तासे ( राधांसि प्र चोदयते ) धन देता है ॥ ६ ॥

[ ३८७ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( नु एत ) शीघ्र आओ, ( तं स्तोम्यं नरं स्त्वाम ) उस प्रशंसनीय नेता इन्द्रकी स्तुति करें, ( यः एकः इत् ) जो अकेला ही ( विश्वाः कृष्टीः अभि अस्ति ) सब शत्रुसेनाओंको हराता है ॥ ७ ॥



३८८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २</sup> इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।

<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे

॥ ८ ॥ ( ऋ. ८।९८।१ )

३८९ <sup>२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २</sup> ईशानो अप्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग

॥ ९ ॥ ( ऋ. १।८४।७ )

३९० <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

<sup>३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स्तुष ऊ षु वा नृतमाय धृष्णवे

॥ १० ॥ ( ऋ. ८।२४।१ )

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० १० । उ० ४ । धा० ६२ । खा ॥ ]

इति चतुर्थप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, चतुर्थः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

अथ पञ्चमः प्रपाठकः ।

[ १ ]

( १-८ ) १ प्रगाथो घोरः काण्वः; २ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ नृमेध आङ्गिरसः; ४ पर्वतः काण्वः; ५, ७ इरिम्बिठिः काण्वः; ६ विश्वमना वंयस्वः; ८ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः ॥ इन्द्रः; ५, ७ आदित्याः ॥ उष्णिक्; ८ विराडुष्णिक् ॥

३९१ <sup>३ ५ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।

<sup>१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यद् हंसि वृत्रमोजसा शचीपते

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६२।८ )

३९२ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।

<sup>३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अयंस सोम इन्द्र ते सुतः पिब

॥ २ ॥ ( ऋ. ६।४३।१ )

[ ३८८ ] हे उद्गाताओ ! ( विप्राय ) ज्ञानी ( बृहते ब्रह्मकृते ) महान् स्तुति जिसके लिए की जाती है ऐसे ( विपश्चिते ) विद्वान् और ( पनस्यते ) स्तुतिके योग्य ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( बृहत् साम गायत ) बृहत् नामके सामका गान करो ॥ ८ ॥

[ ३८९ ] ( यः एकः इत् ) जो अकेला ही ( दाशुषे मर्ताय ) दानशील मनुष्यको ( वसु विदयते ) धन देता है, ( अ-प्रतिष्कृतः इन्द्रः ) जिसका प्रतिकार कोई कर नहीं सकता, ऐसा यह इन्द्र ( अङ्ग ईशानः ) हे प्रिय ! सभीका स्वामी है ॥ ९ ॥

[ ३९० ] हे ( सखायः ) मित्रो ( वज्रिणे ) वज्रधारी इन्द्रकी ( ब्रह्म आशिषामहे ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए उससे हम आशीर्वाद मांगते हैं, ( वः ) तुम सबके लिए ( नृतमाय धृष्णवे सुस्तुषे ) श्रेष्ठ वीर और शत्रुओंका पराभव करनेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १० ॥

॥ यहाँ अष्टादशवां खंड समाप्त हुआ ॥

[ १९ ] एकोनविंशः खण्डः ।

[ ३९१ ] हे इन्द्र ! ( ते तत् शवः ) उस तेरे सामर्थ्यकी ( उपमां देवतातये ) गृणे ) पासके यज्ञमें स्तुति करता हूँ, हे ( शचीपते ) इन्द्र ! तू ( ओजसा वृत्रं हंसि ) अपने सामर्थ्यसे वृत्रको मारता है ॥ १ ॥

[ ३९२ ] हे इन्द्र ! ( यस्य मदे ) जिस सोमरसको पीकर उत्साह प्राप्त होनेपर ( दिवोदासाय ) दिवोदासके लिए ( त्यत् शम्बरं ) उस शम्बरसुरको ( अरन्धयन् ) जानसे मार डाला, ( सः अयं ) वह यह ( सोमः ) सोमरस ( ते सुतः ) तेरे लिए तैय्यार किया है, उसे तू पी ॥ २ ॥



३९३ <sup>१ २</sup> इन्द्र नो गधि <sup>३ १ २</sup> प्रिय सत्राजिदगोह्य ।

॥ ३ ॥ ( ऋ. ८।९८।४ )

<sup>१ २ ३ ४ ५</sup> गिरिर्न विश्वतः <sup>३ १ २ ३ ४</sup> पृथुः पतिर्दिवः

३९४ य इन्द्र <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।

॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।१२।१ )

<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> येना हंसि न्यात्रिणं तमीमहे

३९५ तुचे <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> तुनाय तत्सु ना द्राघीय आयुर्जीवसे ।

॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।१८।१८ )

<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> आदित्यासः सुमहसः कृणोतन

३९६ वेत्था हि <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

॥ ६ ॥ ( ऋ. ८।२४।२४ )

<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव

३९७ अपामीवामप <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> सिधमप सेधत दुर्मतिम् ।

॥ ७ ॥ ( ऋ. ८।१८।१० )

<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> आदित्यासो युयोतना नो अंहसः

३९८ पिवा <sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> सोममिन्द्र मन्दतु त्वा य ते सुषाव हयश्वाद्रिः ।

॥ ८ ॥ ( ऋ. ७।२२।१ )

<sup>१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०</sup> सोतुबाहुभ्यां सुयतो नार्व

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ इत्युष्णिहः । स्व० ५ । उ० २ । धा० ५१ । फ ॥ ]

[ ३९३ ] ( प्रिय ) हे, सबके प्रिय ! ( सत्राजित् ) एक साथ शत्रुओंको जीतनेवाले ( अ-गोह्य ) किसीसे न हारनेवाले इन्द्र ! ( गिरिः न ) पर्वतके समान ( विश्वतः पृथु ) चारों ओरसे विशाल ( दिवः पतिः ) धुलोकका स्वामी तू ( नः आगहि ) हमारे पास आ ॥ ३ ॥

[ ३९४ ] हे इन्द्र ! ( यः सोमपा-तमः ) तू अत्यधिक सोम पीनेवाला और ( शविष्ठः ) बलवान् है, वह तेरा ( यः मदः ) उत्साह तुझे ( चेतति ) जगाता है, ( येन ) जिस उत्साहसे ( अत्रिणं नि हंसि ) खाऊ राक्षसोंको मारता है, ( तं ईमहे ) उस तेरी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

[ ३९५ ] हे ( सुमहसः आदित्यासः ) महान् आदित्यो ! ( नः तुचे ) हमारे पुत्रोंके और ( तुनाय ) पौत्रोंके ( जीवसे ) दीर्घजीवनके लिए ( तत् द्राघीय आयुः ) वह दीर्घ आयु प्राप्त हो, ऐसा ( सु कृणोतन ) करो ॥ ५ ॥

[ ३९६ ] हे ( वज्र-हस्त ) हाथमें वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! ( निर्ऋतीनां परिवृजं ) विघ्न करनेवालोंको दूर करनेका मार्ग तू ( वेत्था हि ) जानता ही है, इसलिए ( अहः अहः शुन्ध्युः ) प्रतिदिन स्वयंको शुद्ध रखनेवाला मनुष्य जिस प्रकार ( परि-पदां इव ) आपत्तियोंको-रोगादिकोंको-दूर करता है, उसी प्रकार तू विपत्तियोंको दूर करता है ॥ ६ ॥

[ ३९७ ] हे ( आदित्यासः ) आदित्यो ! ( अमीवां अप सेधत ) हमारे रोगोंको दूर करो, ( सिधं अप ) शत्रुओंको दूर करो, ( दुर्मतिं अप ) दुष्टबुद्धिको दूर करो, और ( नः अंहसः युयोतन ) हमें पापोंसे दूर रखो ॥ ७ ॥

[ ३९८ ] हे इन्द्र ! ( सोमं पिवा ) सोमरस पी, वे सोमरस ( त्वा मदन्तु ) तुझे आनन्दित करें, हे ( हरि-अश्व ) घोड़े पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( ते सोतुः ) तेरे लिए सोमरस निकालनेवालेका ( बाहुभ्यां अर्वा न सुयतः ) रस्सीसे घोड़ेके समान अच्छी तरह रक्खा हुआ ( अयं अद्रिः ) यह पत्थर तेरे लिए ( सुषाव ) सोमरस निकालता है ॥ ८ ॥

॥ यहां उन्तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

( १-१० ) सौभरिः काण्वः; ७, ८ नृमेध आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ३, ६ मरुतः ॥ ककुप् ॥

३९९ अ॒भ्रातृ॑व्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । यु॒धेदा॑पित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

( ऋ. ८।२।१३ )

४०० यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमृतये ॥ २ ॥

( ऋ. ८।२।१९ )

४०१ आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः । दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥

( ऋ. ८।२।०१ )

४०२ आ याह्यमिन्द्रवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥ ४ ॥ ( ऋ. ८।२।१३ )

४०३ त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि । संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥

( ऋ. ८।२।११ )

४०४ गावश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सवन्धवः । रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥

( ऋ. ८।२।०११ )

[ ३० ] त्रिंशः खण्डः ।

[ ३९९ ] हे इन्द्र ! ( त्वं जनुषा अ॒भ्रातृ॑व्यः ) तू जन्मसे ही शत्रुरहित है, ( अ-ना ) तुझपर शासन करनेवाला कोई नहीं है, ( सनात् अनापिः ) सदासे ही भाईरहित है, ( यु॒धा इत् ) युद्धसे तू ( आपित्वं इच्छसे ) भाइयोंको पानेकी इच्छा करता है, भक्त हों ऐसी इच्छा करता है ॥ १ ॥

१ अ-भ्रातृव्यः— भाईबन्धोंके श्रगडसे मुक्त ।

२ अनापिः— अकेला, जिसकी सहायताके लिए कोई भी भाई नहीं है ।

[ ४०० ] हे ( सखायः ) मित्रों ! ( य ) जिस इन्द्रने ( पुरा ) पहले ( इदं वस्यः ) यह धन ( नः प्र आनिनाय ) हमें दिया, ( तं उ इन्द्रं ) उसी इन्द्रकी ( वः ऊतये स्तुषे ) तुम्हारे संरक्षणके लिए मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ ४०१ ] हे ( प्रस्थावानः ) गतिमान् मरुतो ! ( आगन्त ) हमारे पास आओ, ( मा रिषण्यत ) हमें हानि मत पहुंचाओ, ( स-मन्यवः ) हे उत्साही वीरो ! ( दृढा चित् यमयिष्णवः ) बलवान् शत्रुओंको भी तपानेवाले मरुतो ! ( मा अपस्थात ) हमसे दूर मत रहो ॥ ३ ॥

[ ४०२ ] हे ( अश्व-पते ) घोड़ोंके स्वामी ! ( गो-पते ) गौवोंके स्वामी ! और हे ( उर्वरा-पते ) भूमिके पालक इन्द्र ! ( इन्द्रवे ) सोमरस पीनेके लिए ( अयं ) यह सोमरस निकाला है, ( आयाहि ) आ और हे ( सोम-पते ) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! ( सोमं पिब ) सोमरस पी ॥ ४ ॥

४०३ ( वृषभ ) बलवान् इन्द्र ! ( गोमतः जनस्य संस्थे ) गाय पालन करनेवाले लोगोंके समूहमें ( श्वसन्तं ) क्रूर कर्म करनेके कारण लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शत्रुको ( त्वया युजा ) तेरी सहायतासे ( ह स्वित् ) ही ( प्रति ब्रुवीमहि ) योग्य उत्तर देकर उसे हटावें ॥ ५ ॥

[ ४०४ ] ( समन्यवः ) समान रीतिसे उत्साहित मरुतो ! ( गावः चित् ह ) वे गायें भी ( स-जात्येन सवन्धवः ) एक जातीय होनेके कारण परस्पर बहिनें हैं, ये ( ककुभः ) अनेक दिशाओं में घूमती हुई ( मिथः रिहते ) परस्पर एक दूसरेको खाटती हैं ॥ ६ ॥

१ गावः सजात्येन सवन्धवः ककुभः मिथः रिहते— गायें सजातीय होनेके कारण एक दूसरेकी बहिन हैं, वे नाना देशोंमें घूमती हुई परस्पर एक दूसरेकी खाटती हैं, उसी प्रकार मनुष्योंको भी एक दूसरेसे प्रेम करना चाहिए ।



४०५ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥  
( ऋ. ८।९।१० )

४०६ अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव गमन्त उदभिः ॥ ८ ॥  
( ऋ. ८।९।१० )

४०७ सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥  
( ऋ. ८।९।१० )

४०८ वयमु त्वामपूर्व स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वाजि चित्रं हवामहे ॥ १० ॥  
( ऋ. ८।९।१० )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ इति ककुभः ॥ [ स्व० २ । उ० २ । धा० ४१ । छ ॥ ]

[ ३ ]

( १-१० ) १-८ गोतमो ( सम्भवो वा ) राहूगणः; ९ त्रितः आप्त्यः ( ऋ० कुत्स आगिरसो वा )

१० अर्बत्युरात्रेयः ॥ इन्द्रः; ९ विश्वेदेवाः; १० अश्विनौ ॥ पंक्तिः ।

४०९ स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सयावरीवृणा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१० )

[ ४०५ ] हे ( शत-क्रतो वि-चर्षणे इन्द्र ) सैंकड़ों कार्य करनेवाले विशेष ज्ञानी इन्द्र ! ( त्वं नः ) तू हमें ( ओजः नृम्णं ) बल और धन ( आ-भर ) भरपूर दे । उसी प्रकार ( पृतना-सहं वीरं आ ) शत्रुसेनाको हरानेवाला वीर पुत्र भी दे ॥ ७ ॥

१. त्वं नः ओजः नृम्णं पृतना-सहं वीरं आ भर—तू हमें सामर्थ्य, मानसिकबल और शत्रुसेनाको हरानेवाले वीरोंका सामर्थ्य भरपूर दे ॥

[ ४०६ ] हे ( गिर्वण इन्द्र ) स्तुत्य इन्द्र ! ( अधा हि त्वा ) अब हम तुझसे ( कामः ईमहे ) अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिए प्रार्थना करते हैं, और ( उप ससृग्महे ) तेरी पाससे स्तुति करते हैं, जिस प्रकार ( उदा गमन्तः उदभिः इव ) पानी ले जानेवाले मित्र मित्रताके कारण पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हम तुझसे मित्रता करते हैं ॥ ८ ॥

[ ४०७ ] हे इन्द्र ! ( गोश्रीते ) गाय दूधसे मिश्रित ( मदिरे विवक्षणे ) उत्साह बढ़ानेवाले, प्रयत्न करनेवाले ( ते मधौ ) तेरे लिए निकाले गए सोमरसके पास ( वयो यथा ) जिस प्रकार पक्षी इकट्ठे होते हैं, उसी प्रकार हम ( त्वां अभि नोनुमः ) आकर तुझे नमन करते हैं ॥ ९ ॥

[ ४०८ ] हे ( अ-पूर्व्य वाजिन् ) अपूर्व, बज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां उ ) तुझे ही ( चित्रं भरन्तः ) इस बिलक्षण सोमरसको भरपूर देते हुए ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( हवामहे ) तेरी प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार ( कच्चित् स्थूरं न ) किसी गुणोंसे महान् मनुष्यके पास दूसरे मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार हम तेरे पास आते हैं ॥ १० ॥

॥ यहां तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३१ ] एकत्रिंशः खण्डः ।

[ ४०९ ] ( स्वादोः ) स्वादिष्ट ( इत्था विषूवतः ) इस प्रकार सब यज्ञोंमें होनेवाले इस ( मधोः ) मीठे सोमरस-को ( गौर्यः पिबन्ति ) श्वेत वर्णकी गायें पीती हैं, ( याः ) जो गायें ( वृणा सयावरीः ) भक्तोंकी कामना पूर्ण करने-वाले इन्द्रके साथ चलनेवाली ( मदन्ति ) आनन्दसे रहती हैं, और ( शोभथाः ) सुशोभित होती हैं, वे ( वस्वीः ) उत्तम दूध बेती हुई ( स्वराज्यं अनु ) स्वराज्यके अनुकूल कार्य करती हैं ॥ १ ॥

१३ ( साम. हिन्दी )



- ४१० इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।  
 शविष्ठ वज्रिभोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमचन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८०।१ )
- ४११ इन्द्रो मदाय वावृधे श्वसे वृत्रहा नृभिः ।  
 तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।८१।१ )
- ४१२ इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।  
 यद् व्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरचन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।८०।७ )
- ४१३ प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यःसते ।  
 इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽचन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८०।३ )
- ४१४ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।  
 युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कंहनः कं वसौ दधोऽस्मा इन्द्र वसौ दधः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८१।३ )

[ ४१० ] हे ( शविष्ठ वज्रिन् ) बलवान् और वज्रधारी इन्द्र ! ( इत्था हि ) इस प्रकार ( सोमे मदः ) सोम-रसमें उत्साह बढ़ानेवाले गुण हैं, इसलिए उनके ( वर्धनं ब्रह्म चकार ) गुणवर्णन करनेवाले ये स्तोत्र बनाये हैं, ( स्वराज्यं अनु अर्चन् ) स्वराज्यको लक्ष्य करके ( पृथिव्याः अ-हिं ) पृथिवीपर कम न होनेवाले शत्रु ( निः शशाः ) बिल्कुल नष्ट हो जायें, ऐसे करना चाहिए ॥ २ ॥

[ ४११ ] ( वृत्र-हा इन्द्रः ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रका यश ( मदाय श्वसे ) आनन्द और उत्साहको प्राप्त करनेके लिए ( नृभिः वावृधे ) मनुष्योंके द्वारा बढ़ाया जाता है, इस कारण ( तं ऊतिं इत् ) उस रक्षण करनेवाले इन्द्रको ही हम ( महत्सु आजिषु ) महान् युद्धोंमें और ( अर्भे ) छोटे युद्धोंमें ( हवामहे ) बुलाते हैं, ( सः वाजेषु नः प्राविषत् ) वह युद्धोंमें हमारा संरक्षण करे ॥ ३ ॥

[ ४१२ ] हे ( अद्रि-वः वज्रिन् इन्द्र ) पर्वतपर रहनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! ( तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत्तं ) तेरा ही सामर्थ्य शत्रुओंसे पराजित नहीं हो पाता, ( यत् ह ) जो निश्चयसे ( स्वराज्यं अर्चन् अनु ) स्वराज्यकी अर्चना करने-वालोंको उपयोगी है ऐसे सामर्थ्यसे ( मायिनं मृगं त्यं ) कपटसे लड़नेवाले, खोज करके मारने योग्य वृत्रको तू ( तव मायया अवधीः ) अपने छल और कपटके प्रयोगसे ही मारता है ॥ ४ ॥

[ ४१३ ] हे इन्द्र ! ( प्रेहि ) शत्रूपर चढ़ाई कर ( अभीहि ) चारों ओरसे हमला कर, ( धृष्णुहि ) शत्रुओंका नाश कर ( ते वज्रः न नियंसते ) तेरा वज्र कम शक्तिवाला नहीं है, ( ते शवः नृम्णं ) तेरा बल शत्रुओंको झुकाने-वाला है, ( हि स्व-राज्यं अनु अर्चन् ) स्वराज्यकी अर्चना अनुकूलतासे करते हुए ( वृत्रं हनः ) वृत्रको मार ( अपः जय ) और जलोंको जीत ॥ ५ ॥

[ ४१४ ] ( यत् आजयः उदीरते ) जब युद्ध शुरू हो जाते हैं, उस समय ( धृष्णवे धनं धीयते ) शत्रुको जीतने-वालोंको ही धन मिलते हैं, हे इन्द्र ! इस प्रकार युद्धके शुरू होनेपर ( मद-च्युता हरी युङ्क्ष्व ) मद चुआनेवाले अपने घोड़ोंको रथमें जोड़, ( कं हनः ) तू किसे मारे और ( कं वसौ दधः ) किसे धन दे, यह तेरे आधीन है, इसलिए हे इन्द्र ! ( अस्मान् वसौ दधः ) हमें धनोंमें स्थापित कर, हमें बहुत सारा धन दे ॥ ६ ॥

१ यत् आजयः उदीरते धृष्णवे धनं धीयते— जब युद्ध शुरू हो जाते हैं, तब शत्रुओंको पैरोंसे कुचलने-वालोंको ही धन मिलता है ।



४१५ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अक्षन्मीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २</sup> अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।८२।२ )

४१६ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।

<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २</sup> कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।८२।१ )

४१७ चन्द्रमा अप्सवाऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१०३।१ )

४१८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।

<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १० ॥ ( ऋ. ५।७२।१ )

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १३ । उ० ५ । घा० ४५ । णु ॥ ]

[ ४ ]

( १-८ ) १, ७ वसुश्रुत आत्रेयः; २, ४ विमद ऐन्द्रः ( ऋ० प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुकः ) ; ३ सत्यश्रवा आत्रेयः;

५, ६ गोतमो राहूगणः; ८ अंहोमुग्वामदेव्यः; ( ऋ० कुल्मलबर्हिषः शैलूषिर्वा; ) ॥ अग्निः; ३ उषाः;

४ सोमः; ५, ६ इन्द्रः; ८ विश्वेदेवाः ॥ पंक्तिः; ८ बृहती ॥

४१९ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यद्वा स्या ते पनीयसी समिदीदयति द्यवीषः स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।६।४ )

[ ४१५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! यजमानोंने ( अक्षन् ) अन्न खा लिया और ( हि अमीमदन्त ) वे तृप्त हो गए ( प्रियाः अव अधूषत ) आनन्दित होकर उन्होंने अपने सिर आनन्दसे हिलाये, उसके बाद ( स्व-भानवः विप्राः ) स्वयं तेजस्वी दीखनेवाले उन ब्राह्मणोंने ( नविष्ठया मती अस्तोषत ) नवीन स्तोत्रोंसे स्तुति की, अब तू इस यज्ञमें जानेके लिए ( ते हरी नु योज ) अपने घोड़े जोड़ ॥ ७ ॥

[ ४१६ ] ( मघवन् इन्द्र ) हे धनवान् इन्द्र ! ( गिरः उप उ सु शृणुहि ) हमारे स्तोत्र पास आकर सुन, ( अ-तथा इव मा ) पहलेके विरुद्ध व्यवहार मत कर, ( नः सूनृतावतः कदा करः ) हमें सत्यभाषण करनेवालों कब करेगा ? तू ( अर्थयासे इत् ) हमारी स्तुति जाननेकी इच्छा करता है, इसलिए ( ते हरी नु योज ) तू अपने घोड़े जोड़ ॥ ८ ॥

[ ४१७ ] ( अप्सु अन्तः ) अन्तरिक्षमें रहनेवाला ( सु-पर्णः चन्द्रमाः ) उत्तम किरणोंवाला चन्द्रमा ( दिवि आधावते ) आकाशमें दौड़ता है, ( हिरण्यनेमयः विद्युतः ) हे सोनेके समान चमकनेवाले बिजलीरूपी तेजो ! ( वः पदं ) तुम्हारे चरणरूपी किरणोंको मेरी इन्द्रियें ( न विन्दन्ति ) नहीं पा सकती, हे ( रोदसी ) द्यावापृथिवियों ! ( मे अस्य वित्तं ) मेरी इस स्तुतिको तुम जानो ॥ ९ ॥

[ ४१८ ] हे ( अश्विनौ ) अश्विनी देवो ! ( वां प्रियतमं ) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय, ( वृषणं वसु-वाहनं ) मजबूत और धनको ढोकर ले जानेवाले, ( रथं ) रथको ( स्तोता ऋषिः ) स्तुति करनेवाला ऋषि ( स्तोमेभिः प्रति भूषति ) स्तोत्रोंसे सुशोभित करता है, हे ( माध्वी ) मधुविद्याको जाननेवाले अश्विनीकुमारो ! ( मम हव श्रुतं ) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ १० ॥

॥ यद्वा इकतीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३२ ] द्वात्रिंशः खण्डः ।

[ ४१९ ] हे ( अग्ने देव ) अग्निदेव ! ( द्युमन्तं अजरं ते ) तेजस्वी और बुढ़ापेसे रहित तुझे ( आ इधीमहि ) हम जलाते हैं, ( यत् ह ) निश्चयसे ( ते स्या पनीयसी समित् ) तेरी वह प्रशंसनीय ज्योति ( द्यावि दीदयति ) द्यूलोकमें चमकती है, ( स्तोतृभ्यः इषं आ भर ) तू स्तोताओंको अन्न भरपूर दे ॥ १ ॥



४२० आग्निं न स्ववृत्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णवर्हिषं विवक्षसे ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।२।११ )

४२१ महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।

यथा चित्रो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनुते ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।७९।१ )

४२२ भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।

अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।२५।१ )

४२३ क्रत्वा महाऽनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।

श्रिय ऋष्य उपाकयोनिं शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।८।१।४ )

४२४ स घा तं वृषणऽरथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।

यः पात्रऽहारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा निवन्द्र ते हरी ॥ ६ ॥ ( ऋ. १।८।२।४ )

[ ४२० ] ( न ) इस समय ( सु-वृत्तिभिः । उत्तम स्तुतियोंसे ( होतारं ) हवन करनेवाले ( वः यज्ञेषु ) तुम्हारे यज्ञमें जिसके लिए ( स्तीर्ण-वर्हिषं ) आसन फैलाये गये हैं, ऐसे ( शीरं पावक-शोचिषं ) व्यापक, पवित्र करनेवाले तेजसे युक्त ( त्वा अग्निं ) तुझ अग्निकी ( वि-मदे आवृणीमहे ) विशेष आनन्द प्राप्त करनेके लिए हम आराधना करते हैं, ( विवक्षसे ) तू महान् है ॥ २ ॥

[ ४२१ ] ( उषः ) हे उषादेवी ! ( अद्य ) आज ( दिवित्मती ) तू प्रकाशित होकर ( नः महे राये बोधय ) हमें धनकी प्राप्तिके लिए उसी प्रकार जगा, ( यथा चित्र नः अबोधयः ) जैसे हमें पहले जगाती थी, हे ( सुजाते ) उत्तम रीतिसे प्रकट हुई उषे ! ( अश्व-सूनुते ) हे सत्यप्रिय उषे ! ( वाय्ये सत्यश्रवसि ) मैं वयका पुत्र सत्यश्रवा हूँ अतः मुझपर कृपा कर ॥ ३ ॥

[ ४२२ ] हे सोम ! ( विवक्षसे ) महान् होनेके लिए ( अन्धसः विमदे ) सोमरसके आनन्दमें ( नः मनः ) हमारा मन ( दक्षं उत क्रतुं ) बलकी, कर्म करनेकी तथा ( भद्रं वातय ) कल्याण करनेकी शक्ति प्राप्त करे ऐसी प्रेरणा कर, ( अथा ते सख्ये ) और तेरी मित्रता प्राप्त हो, ऐसा कर, ( यवसे रणाः गावः न ) जिस प्रकार घासको सुन्वर गाये प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार हम तेरी मित्रताको प्राप्त हों ॥ ४ ॥

[ ४२३ ] ( क्रत्वा ) सामर्थ्यसे ( महान् भीमः ) बहुत भयंकर इन्द्र ( अनु-ष्वधं शवः आ वावृते ) सोमरस पीकर अपना बल बढ़ाता है, उसके बाद ( ऋष्यः ) सुन्दर, ( शिप्री ) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाला और ( हरि-वान् ) रथमें घोड़े जोड़नेवाला वह ( उपाकयोः हस्तयोः ) बांधे हाथमें ( आयसं वज्रं ) फौलादसे बने वज्रको ( श्रिये निदधे ) शोभाके लिए धारण करता है ॥ ५ ॥

[ ४२४ ] ( यः ) जो रथ ( हारि-योजनं पूर्णं पात्रं ) खील और सोमसे भरे हुए पात्र धारण करता है, ऐसे ( वृषणं गोविदं रथं ) मजबूत और गायको प्राप्त करानेवाले रथपर ( सः घा ) वह इन्द्र ( अधि तिष्ठाति ) चढ़कर बैठता है, तथा ( तं चिकेतति ) उस रथको जानता है । इसलिए हे इन्द्र ! ( ते हरी नु योज ) अपने घोड़े रथमें तू जोड़ ॥ ६ ॥



४२५ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्वन्त आश्वोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।६।१ )

४२६ न तमश्नो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥ ८ ॥ ( ऋ. १०।१२६।१ )

इति चतुर्थी वसतिः ॥ ४ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० ७। उ० ३। धा० ५७। जे ॥ ]

इति पञ्चमः ॥

[ ५ ]

( १-१० ) ऋण व्रतदस्युः ( १, ३-५, १० आनेयो धिष्ण्या ऐश्वराः; २, ६ अग्रहणस्त्रैवृणः, व्रतदस्युः पौरकुस्तः )

७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ८ वामदेवो गौतमः ॥ पवमानः सोमः; ७ मरुतः; ८ अग्निः; ९ वाजिनः ॥

द्विषदा विराट्; ८ पदपङ्क्तिः; ९ पुरउष्णिक्; २, ६ त्रिषदा अनुष्टुप्पिपीलिकामध्या ॥

४२७ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१ )

४२८ पर्युषु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।

द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११०।१ )

४२९ पवस्व सोम महान्समुद्रः पिता देवानां विश्वानि धाम ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०९।४ )

[ ४२५ ] ( यः वसुः अस्तं ) जो धनरूपी अग्नि घरमें है, ( यं धेनवः यन्ति ) जिस अग्निके पास गायें जाती हैं, ( अस्तं आश्वः अर्वन्तः ) जिस यज्ञके घरकी ओर वेगवान् घोड़े जाते हैं, ( अस्तं नित्यासः वाजिनः ) जिस यज्ञस्थानकी ओर अश्वको पासमें रखनेवाले यजमान जाते हैं, ( तं अग्निं मन्ये ) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ, तू ( स्तोतृभ्यः इषं आ भर ) स्तोताओंके लिए भरपूर अन्न दे ॥ ७ ॥

[ ४२६ ] ( देवासः ) हे देवो ! ( स-जोषसः ) एक बिचारसे रहनेवाले ( अर्यमा, मित्रः, वरुणः ) अर्यमा, मित्र और वरुण ( अति-द्विषः ) शत्रुको दूर करके ( यं नयति ) जिसकी उन्नतिकी ओर ले जाते हैं, ( तं मर्त्यं ) उस मनुष्यको ( अंहः न ) पाप नहीं लगता और ( दुरितं न अष्ट ) दुर्गति उसे छूतीतक नहीं ॥ ८ ॥

॥ यहाँ चत्तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३३ ] त्रयस्त्रिंशः खण्डः ।

[ ४२७ ] हे सोम ! ( स्वादुः ) स्वादिष्ट तू ( इन्द्राय मित्राय पूष्णे ) इन्द्र, मित्र और पूषाके लिए और ( भगाय ) भगके लिए ( परि प्र धन्व ) बर्तनमें भरा रह ॥ १ ॥

[ ४२८ ] हे सोम ! तू ( वाज-सातये ) अश्वकी प्राप्तिके लिए ( सु परि प्र धन्व ) उत्तम रीतिसे बर्तनमें भरा रह, ( सक्षणिः वृत्राणि परि ) सामर्थ्यवान् होकर तू शत्रुपर हमला कर, ( नः ऋणया ) हमारे ऋणोंको नष्ट करनेवाला रह, ( वृत्राणि परि ) सामर्थ्यवान् होकर तू शत्रुओंपर चढ़ाई करनेके लिए जाता है ॥ २ ॥

[ ४२९ ] हे सोम ! ( महान् समुद्रः ) महान् समुद्रके समान ( पिता ) पालन करनेवाला तू ( देवानां विश्वानि धाम ) देवोंके सब स्थानोंमें - पात्रोंमें - ( अभि पवस्व ) भरा रह ॥ ३ ॥



- ४३० पवस्व सोम महे दक्षायश्चो न नित्तो वाजी धनाय ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१० )
- ४३१ इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्मगाय ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०९।११ )
- ४३२ अनु हि त्वा सुतः सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।  
वाजाः अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।११०।१२ )
- ४३३ क ई व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ७।९६।१ )
- ४३४ अद्य तमद्याश्च न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।  
ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ४।१०।१ )
- ४३५ आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अगमं देवस्य सवितुः सवम् । स्वर्गोऽर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥
- ४३६ पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाः अवीनामनुपूर्व्यः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१०९।७ )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० ८ । उ० २ । धा ३५ । ठु ॥ ]

इति पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ ४३० ] हे सोम ! ( अश्वः न ) घोड़ेके समान ( नित्तः ) पानीसे साफ किया हुआ ( वाजी ) बल बढ़ानेवाला तू ( महे दक्षाय ) महान् बल और ( धनाय ) धनकी प्राप्तिके लिए ( पवस्व ) वर्तनमें भरा रह ॥ ४ ॥

[ ४३१ ] ( चारुः कविः ) सुन्दर ज्ञानी ( इन्दुः ) यह सोम ( अपां उपस्थे ) पानीके पास ( भगाय मदाय ) ऐश्वर्ययुक्त आनन्दके लिए ( पविष्ट ) पहुंचता है, पानीमें मिलाया जाता है ॥ ५ ॥

[ ४३२ ] हे सोम ! ( सुतं त्वा ) रस निकालनेके बाद तेरी ( अनु मदामसि हि ) हम उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं । हे ( पवमान ) पवित्र सोम ! ( महे समर्य-राज्ये ) महान् श्रेष्ठ राजाके संरक्षणके लिए ( वाजान् अभि प्रगाहसे ) अपने बलसे युक्त होकर शत्रुसेनापर तू हमला करनेके लिए जाता है ॥ ६ ॥

[ ४३३ ] ( व्यक्ताः नरः ) हे प्रसिद्ध नेताओ ! ( स-नीडाः मर्याः ) एक घरमें रहनेवाले ( अथा स्वश्वाः ) उत्तम घोड़े पासमें रखनेवाले मरुत् ( ई रुद्रस्य के ) इस रुद्रके कौन लगते हैं ? ॥ ७ ॥

वीर मरुद्गण इस रुद्रके पुत्र हैं ।

[ ४३४ ] हे अग्ने ! ( अद्य ) आज हम इस यज्ञके ऋत्विज ( ओहैः स्तोमैः ) ओह नामक स्तोत्रोंसे ( अश्वं न ) घोड़ेके समान और ( क्रतुं न ) यज्ञकर्ताके समान ( भद्रं हृदि-स्पृशं ) कल्याण करनेवाले और हृदयको छूनेवाले अर्थात् अत्यन्त प्रिय ( ते ऋध्याम ) तेरे यशको बढ़ानेवाली स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

१ अश्वं न— जैसे घोड़ा यज्ञस्थानको पहुँचाता है उसी प्रकार तू उत्पत्तिके स्थानपर पहुँचाता है ।

२ क्रतुं न— यज्ञकर्ता जैसे उपकार करते हैं, उसी प्रकार तू उपकार करता है ।

[ ४३५ ] ( मर्याः ) मनुष्योंका हित करनेवाले तथा ( आविः वाजिनः ) प्रकाशित हुए इस बलवान् देवताने ( सवितुः सवं वाजं ) सवितादेवके लिए तैय्यार किए गए सोमरसरूपी अन्नको ( अगमं ) प्राप्त किया है, इसलिए हे यजमानो ! तुम ( स्वर्गं ) स्वर्गको और ( अर्वन्तः जयत ) घोड़ोंको विजयके लिए प्राप्त करो ॥ ९ ॥

[ ४३६ ] हे सोम ! तू ( द्युम्नी ) तेजस्वी, ( सु-धारः ) उत्तम प्रकारसे धार बंधकर वर्तनमें गिरनेवाला, ( अनु-पूर्व्यः महान् ) पहलेके समान ही महान् रहनेवाला है, अतः तू ( अवीनां अनु पवस्व ) रखे जानेवाले वर्तनमें ठीक प्रकारसे भर जा । वर्तनमें सोमरस भरा जाता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ तैत्तिरीयों का खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

( १-१० ) त्रसदस्युः; ७ संवर्त आगिरसः ॥ इन्द्रः; ६ विश्वेदेवाः; ७ उषाः ॥

द्विपदा विराट् ॥

- ४३७ विश्वतोदावन्विश्वतो न आ भर य त्वा शविष्ठमीमहे ॥ १ ॥
- ४३८ एष ब्रह्मा य ऋत्विष इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥
- ४३९ ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अकैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ३ ॥ ( ऋ. ५।३।१४ )
- ४४० अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ५।३।१४ )
- ४४१ शं पदं मघं रयीषिणो न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रथिम् ॥ ५ ॥
- ४४२ सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥ ६ ॥
- ४४३ आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनि यदूधभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. १०।१७२।१ )

[ ३४ ] चतुर्विंशः खण्डः ।

[ ४३७ ] हे ( विश्वतो दावन् ) सब तरफसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्र ! ( विश्वतः नः आ भर ) तू सब ओरसे हमें इच्छित धन भरपूर दे, ( यं शविष्ठं त्वा ईमहे ) जिस अत्यन्त बलवान् तेरी हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ४३८ ] ( ऋत्विषः यः इन्द्रः ) ऋतुओंके अनुसार काम करनेवाला जो यह इन्द्र ( नाम श्रुतः ) नामसे प्रसिद्ध है, ( एषः ब्रह्मा ) यह बहुत जानी है, उसकी मैं ( गृणे ) स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ ४३९ ] ( अहये हन्तवै ) अहि असुरको मारनेके लिए ( अकैः महयन्तः ब्रह्माणः ) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले जानी ( इन्द्रं अवर्धयन् ) इन्द्रके यज्ञको बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥

[ ४४० ] हे इन्द्र ! ( अनवः ) मनुष्यरूपी ऋभु देवताओंने ( ते अश्वाय ) तेरे घोड़ोंके लिए ( रथं तक्षुः ) रथ तैयार किया, हे ( पुरु-हूत ) अनेकोंसे बुलाये जानेवाले इन्द्र ! ( त्वष्टा ) त्वष्टाने ( द्युमन्तं वज्रं ) तेजस्वी वज्रको तेरे लिए बनाया ॥ ४ ॥

१ अनवः अश्वाय रथं तक्षुः— मनुष्यरूपी ऋभुदेवता या कारीगरोंने इन्द्रके घोड़ेके लिए उत्तम रथ तैयार किया ।

२ त्वष्टा द्युमन्तं वज्रं— त्वष्टाने तेजस्वी वज्र बनाया ।

[ ४४१ ] ( रयीषिणः ) धनको अर्पण करनेवाले याजक लोग ( शं पदं मघं ) सुख, उत्तम स्थान और धन प्राप्त करते हैं, ( अ-व्रतः ) यज्ञ न करनेवाला, ( न हिनोति ) कुछ भी प्राप्त नहीं करता, और ( कामं रथि न स्पृशत् ) अपने इच्छित धनको तो वह छू भी नहीं सकता ॥ ५ ॥

१ रयीषिणः शं पदं मघं— धनको देनेवाले याजक शान्ति, उत्तम स्थान और धन प्राप्त करते हैं ।

२ अ-व्रतः न हिनोति— जो व्रतका आचरण नहीं करता, उसको कुछ भी नहीं मिलता ।

[ ४४२ ] ( गावः ) गायें ( सदा शुचयः ) हमेशा शुद्ध रहती हैं, ( विश्व-धायसः ) सभीका पोषण करनेवाली और ( सदा देवा अ-रेपसः ) हमेशा उन्नत और निष्पाप रहती हैं ॥ ६ ॥

[ ४४३ ] हे उषे ! ( वनसा सह आयाहि ) इच्छित तेजके साथ आ, ( यत् ऊधभिः ) जो भरे हुए धनवाली हैं, वे ( गावः ) गायें ( वर्तनि सचन्ते ) तेरे मार्गमें चलती हैं ॥ ७ ॥



४४४ उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयि धीमहे त इन्द्र ॥ ८ ॥

४४५ अर्चन्त्यर्के मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ ९ ॥

४४६ प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गार्थं गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥

इति षष्ठी वशतिः ॥ ६ ॥ वशमः खण्डः ॥ १० ॥ [ स्व० ७ । उ० २ । वा० ४२ । छा ॥ ]

[ ७ ]

( १-१० ) १ पृषधः काण्वः; २, ३, ४ वन्धुः सुवन्धुः श्रुतवन्धुविप्रवन्धुश्च क्रमेण गोपायता लोपायता वा; ५ संवर्त मांगिरसः; ६ भुवन आप्यः; साधनो वा भौवनः; ७ कवय ऐलूषः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ आप्रेयः; १० वसिष्ठो मैत्रावशनिः ॥ अग्निः; ५ उषाः; ६, ७, ९ विद्वेदेवाः; ३, ४, ८, १० इन्द्रः ॥

द्विषवा विराट्; १० एकपदा ॥

४४७ अर्चन्त्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाद् न सुमद्रथः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१६।५ )

४४८ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवा वरुध्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।२४।१; यजु. ३।२५ )

४४९ भगो न चित्रो अग्निर्महोना दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥

४५० विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम् ॥ ४ ॥

[ ४४४ ] ( मधुमति प्रक्षे ) मधुरससे भरे हुए चमचेमें हविको रखकर ( ते क्षियन्तः ) तेरे पास रहनेवाले हम, हे इन्द्र ! ( रयि पुष्येम ) धन प्राप्त करें, और तेरा ( धीमहे ) ध्यान करें ॥ ८ ॥

[ ४४५ ] ( स्वर्काः मरुतः ) उत्तम तेजस्वी मरुतगण ( अर्के अर्चन्ति ) पूजनीय इन्द्रकी पूर्जा करते हैं, ( सः ) वह ( युवा ) तरुण ( श्रुतः ) प्रसिद्ध ( इन्द्रः ) इन्द्र ( आ स्तोभति ) सब शत्रुओंको मारता है ॥ ९ ॥

१ युवा श्रुतः आ स्तोभति — तरुण प्रसिद्ध वीर सब शत्रुओंको मारता है ।

[ ४४६ ] हे जानी लोगो ! ( वृत्र-हन्तमाय विप्राय इन्द्राय ) वृत्रको मारनेमें निपुण, जानी इन्द्रके लिए ( गार्थं गायत ) स्तोत्रोंका गान करो, ( यं जुजोषते ) जिनको वह आनन्दसे सुनता है ॥ १० ॥

॥ यहां चौतीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३५ ] पंचत्रिंशः खण्डः ।

[ ४४७ ] ( हव्य-वाद् ) हविको देवताके पास पहुंचानेवाला, ( चिकितिः ) विशेष बुद्धिमान् ( सुमद् ) उत्तम हविसे जो भरा हुआ है, वह ( रथः न ) रथके समान इच्छितस्थानको पहुंचानेवाला ( अग्निः अर्चति ) अग्नि सब जानता है ॥ १ ॥

[ ४४८ ] हे ( अग्ने ) अग्नि ! ( वरुध्यः ) सेवा करनेके योग्य ( त्वं ) तू ( नः अन्तमः ) हमारे समीप ( उत शिवः त्राता ) और कल्याण करनेवाला संरक्षक ( भुव ) हो गया है ॥ २ ॥

[ ४४९ ] ( महोनां भगः न ) बड़ोंमें सूर्यके समान ( चित्रः अग्निः ) पूज्य अग्नि याजकोंको ( रत्नं दधाति ) धन देता है ॥ ३ ॥

[ ४५० ] ( विश्वस्य प्रस्तोभ ) वह सारे शत्रुओंका नाश करता है, ( यदि वा इह नूनं ) और इस यज्ञमें निश्चयसे वह ( पुरो वा सन् ) पूर्ण रीतिसे निवास करता है ॥ ४ ॥



- ४५१ उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिः सुजातता ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१७२।४ )  
 ४५२ इमा नु कं भुवना सीपधेमन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।१५७।१ )  
 ४५३ वि स्तुतया यथा पथा इन्द्र त्वयन्तु रातयः ॥ ७ ॥  
 ४५४ अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ६।१७।१९ )  
 ४५५ ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥ ९ ॥  
 ४५६ इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥ ( वा. य. ३६।८ )

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ स्व० ५ । उ० ४ । धा० ४१ । भ ॥ ]

[ ८ ]

( १-१० ) १, १० गृत्समदः शौनकः; २ गौरांगिरसः; ३, ५, ९ पुरुच्छेपो देवोदासिः; ४ रेभः काश्यपः;

६ एवयामरुदात्रेयः; ७ अनानतः पारुच्छेपिः; ८ नकुलः ॥ १, ३, ४, १० इन्द्रः; २ सूर्यः; ५ विश्वेदेवाः;

६ मरुतः; ७ पवमानः सोमः; ८ सर्वाताः; ९ अग्निः ॥ १, १० अष्टिः ( १० अतिशक्वरी वा );

३, ५, ७-९ अत्यष्टिः; २, ४, ६ अतिजगती ( अष्टिर्वा ? ) ॥

४५७ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तुम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।

स इ ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुः सैनः सश्वदेवो देवः सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ११ ॥

( ऋ. २।२२।१ )

[ ४५१ ] ( उषाः ) उषा ( स्वसुः तमः ) अपनी बहिन रात्रीके अन्धकारको ( अप सं वर्तयति ) नष्ट करती है, और ( सु-जातता ) अपने उत्तम प्रकाशसे ( वर्तनि ) अपने मार्गको प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

[ ४५२ ] ( इमा भुवना ) इन सब भुवनोंको ( नु कं ) निश्चयसे भुल प्राप्तिके लिए ( सीपधेम ) में नियमोंमें चलाता है, ( इन्द्रः च विश्वेदेवाः च ) इन्द्र और सब अन्य देव इस कार्यमें मेरी सहायता करते हैं ॥ ६ ॥

[ ४५३ ] हे इन्द्र ! ( त्वत् रातयः ) तुझसे मिलनेवाले दान ( पथा स्तुतयः यथा ) बड़े राजमार्गमें जैसे दूसरे छोटे-छोटे रास्ते मिल जाते हैं, उसी प्रकार ( वि यन्तु ) सबको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

[ ४५४ ] ( अया देवहितं वाजं सनेम ) इस स्तुतिसे देवोंके द्वारा दिए गए अन्न अथवा बल प्राप्त करूँ, और ( सु-वीराः शत-हिमाः मदेम ) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्षतक आनन्दसे रहूँ ॥ ८ ॥

१ सु-वीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षतक आनन्दसे रहें ॥

[ ४५५ ] हे इन्द्र ! ( मित्रः वरुणः ) मित्र और वरुण देव ( ऊर्जाः इडाः पिन्वते ) बल बढ़ानेवाले अन्न हमें देते हैं, तू ( नः इषं ) हमारे अन्नको ( पीवरीं कृणुहि ) और अधिक पुष्ट करनेवाला बना ॥ ९ ॥

१ नः इषं पीवरीं कृणुहि— हमारे अन्नको अधिक पुष्ट देनेवाला बना ॥

[ ४५६ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( विश्वस्य राजति ) सब भुवनोंपर शासन करता है ॥ १० ॥

॥ यहां पैंतीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३६ ] षट्त्रिंशः खण्डः ।

[ ४५७ ] ( महिषः तुवि-शुष्मः ) बलवान् और अत्यंत सामर्थ्यशाली ( तृप्त ) तृप्त होनेवाले इन्द्रने ( त्रिकद्रुकेषु सुतं ) तीन पात्रोंमें रखे हुए सोमरसमें ( यवाशिरं ) जौका आटा मिलाकर ( सोमं ) उस सोमको ( विष्णुना ) विष्णुके साथ ( यथा-वशं ) इच्छानुसार ( अपिबत् ) पिया, ( सः ) उस सोमने ( महि कर्म कर्तवे ) महान् कर्म करनेके लिए ( महान् उरुं ई ) महान् श्रेष्ठ इन्द्रको ( ममाद ) उत्साहित किया, ( सत्यः इन्दुः देवः सः ) उत्तम, वह सोमरूपी प्रकाशमान् रस ( सत्यं एनं देवं इन्द्रं ) उत्तम गुणोंसे युक्त इस इन्द्र देवको ( सश्वत् ) प्राप्त हुआ ॥ १ ॥

१४ ( साम. हिन्दी )



४५८ अयं सहस्रमानवो दशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मः ।

ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥

४५९ एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदधानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।

हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥  
( ऋ. १।१३०।१ )

४६० तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कृतं श्रवांसि भूरि ।

मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥  
( ऋ. ८।९७।१३ )

४६१ अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमहे इन्द्रवायू वृणीमहे ।

यद्वा क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे ।  
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवा अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।१३९।१ )

[ ४५८ ] ( सहस्र-मानवः ) हजारों मनुष्योंका हित करनेवाला ( दशः ) दर्शनीय ( कवीनां मतिः ) बुद्धिमानों द्वारा सम्मानके योग्य ( विधर्म-ज्योतिः ) विशेष धर्मसे युक्त और तेजस्वरूप ( अयं ब्रध्नः ) यह सूर्य ( समीचीः अ-रेपसः ) निर्मल और अन्धकाररहित ( सचेतसः उषसः ) तेजस्वी उषाओंको ( समैरयत् ) प्रेरित करता है, उसके बाद ( स्वसरे ) दिनमें ( मन्युमन्तः ) तेजस्वी दीखनेवाले चन्द्र आदि ( गोः ) सूर्यके तेजके आगे ( चिताः ) तेजरहित फीके हो जाते हैं ॥ २ ॥

[ ४५९ ] हे इन्द्र ! ( परावतः नः अच्छा उप आयाहि ) दूरदेशसे तू हमारे पास आ, ( अयं न ) जैसे यह अग्नि ( सत्पतिः ) सज्जनोंका पालन करनेवाला होकर ( विदधानीव इव ) यज्ञशालामें आता है, और जैसे ( अस्ता सत्पतिः ) राजा इव शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला उत्तम पालक राजा अपने घर आता है, उसी प्रकार आ । ( प्रयस्वन्तः सुतेषु त्वा हवामहे ) हविष्यान्न लेकर हम सोमयज्ञमें तुझे बुलाते हैं, ( पुत्रासः वाजसातये पितरं न ) पुत्र जैसे अन्न पानेके लिए पिताको बुलाते हैं, और जैसे ( मंहिष्ठं वाज-सातये ) महान् वीरको महायुद्धमें बुलाते हैं, उसी प्रकार हम तुझे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ४६० ] ( मघवानं ) धनवान् ( उग्रं ) वीर ( सत्रा भूरि श्रवांसि दधानं ) एक साथ बहुतसा बल धारण करनेवाले तथा ( अ-प्रतिष्कृतं तं इन्द्रं ) शत्रुओंसे कभी भी पराजित न होनेवाले उस इन्द्रको ( जोहवीमि ) सहायताके लिए बुलाता हूँ, ( मंहिष्ठः यज्ञियः ) पूज्य और यज्ञोंमें सत्कारके योग्य इन्द्रकी ( गीर्भिः आ ववर्त ) स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है, इस प्रकार ( वज्री ) वज्रको धारण करनेवाला इन्द्र ( राये ) धनकी प्राप्तिके लिए ( नः विश्वा सुपथा कृणोतु ) हमारे सब मार्ग सुगम करे ॥ ४ ॥

[ ४६१ ] ( पुरः अग्निं ) उत्तरवेदीमें अग्निको ( धिया आदधे ) ज्ञानपूर्वक मनें स्थापित किया, ( त्यत् दिव्यं शर्धः ) उस दिव्य बलवान् अग्निकी ( आ वृणीमहे ) हम आराधना करते हैं, ( इन्द्रवायू ) इन्द्र और वायुकी ( वृणीमहे ) हम प्रार्थना करते हैं । ( यत् ह ) जो ( वि-वस्वते नव्यसे ) धनवान् और नवीन यजमानके ( नाभा ) यज्ञस्थानके मुख्य स्थानपर ( सन्दाय क्राणा ) एक जगह आकर मनोरथको पूरा करते हैं । ( श्रौषट् अस्तु ) उन स्तुतियोंका श्रवण होवे । ( अध ) इसके बाद ( नः धीतयः ) हमारी स्तुतियां ( प्र नूनं उपयन्ति ) निश्चयसे तेरी ओर जाएंगी, ( देवान् अच्छा नः ) देवोंकी ओर पहुंचानेके लिए हमारे ( धीतयः ) ये कर्म चल रहे हैं ॥ ५ ॥



- ४६२ प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।  
 प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय श्वसे ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।८७।१ )
- ४६३ अया रुचा हरिण्या पुनाना विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरौ न सयुग्वभिः ।  
 धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।  
 विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्कभिः सप्तास्येभिः क्रकभिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।११।१ )
- ४६४ अभि त्वं देवः सवितारमाण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवः रत्नधामभि प्रियं मतिम् ।  
 ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥  
 ( वा.य. ४।२९ )
- ४६५ अग्निः होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सनुः सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।  
 य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।  
 धृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१२७।१ )

[ ४६२ ] ( एवया मरुत् ) एवया मरुत् नामके ऋषिके द्वारा अपनी ( गिरिजाः मतयः ) वाणीसे की हुई स्तुतियां ( मरुत्वते विष्णवे ) मरुतोंके साथ रहनेवाले विष्णुको और ( महे वः प्रयन्तु ) महान् तुझ इन्द्रको प्राप्त हों, उसी प्रकार ( प्र-यज्यवे ) विशेष यज्ञ करनेवाले ( सु-खादये ) उत्तम आभूषण पहननेवाले ( तवसे ) बलवान् ( भन्ददिष्टये ) स्तुतिरूपी यज्ञ करनेवाले ( धुनि-व्रताय ) शत्रुको दूर करना जिनका व्रत है, ऐसे ( श्वसे शर्धाय ) उस उन्नतिवायक मरुतोंके बलको ( प्र ) प्राप्त हो ॥ ६ ॥

[ ४६३ ] ( पुनानः ) छाननीसे छानाजानेवाला सोमरस ( हरिण्या अया रुचा ) हरे रंगके अपने इस तेजसे ( विश्वा द्वेषांसि तरति ) सब शत्रुओंको दूर करता है, ( सूरः सयुग्वभिः न ) सूर्य अपनी किरणोंसे जैसे अन्धकारको नष्ट करता है, उसीप्रकार ( पृष्ठस्य धारा रोचते ) उत्तम दीखनेवाले इस सोमरसकी धार चमकती है, ( पुनानः हरिः अरुषः ) छानाजानेवाला हरे रंगका यह सोमरस चमकता है, ( यत् ) जो ( सप्तास्येभिः क्रकभिः ) तेजके सात मुखों तथा स्तोत्रोंसे और ( क्रकवभिः ) तेजोंसे ( विश्वा रूपाणि परियासि ) अनेक रूप धारण करता है ॥ ७ ॥

[ ४६४ ] ( यस्य भाः ) जिसका प्रकाश ( ऊर्ध्वा ओण्योः अदिद्युतत् ) उच्चगतिसे इस पृथिवी और द्युलोकके बीचमें फैलता है ऐसे उस ( कवि-क्रतुं ) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाले ( सत्य-सवः ) सत्यकी प्रेरणा देनेवाले ( रत्न-धां ) धन देनेवाले ( अभि-प्रियं ) अत्यन्त प्रिय ( मतिं त्वं सवितारं देवं ) बुद्धिमान् उस सवितादेवकी ( अर्चामि ) मैं आराधना करता हूँ, ( सवीमनि अमतिः ) उत्पन्न होनेके बाद इसका प्रकाश फैलता है, ( सु-क्रतुः हिरण्य-पाणिः ) उत्तम कर्म करनेवाला और सोनेके समान चमकनेवाला सविता ( कृपा स्वः अमिमीत ) कृपासे अपना प्रकाश फैलाता है ॥ ८ ॥

[ ४६५ ] ( होतारं ) जिसमें हवन किया जाता है, ऐसे ( दास्वन्तं ) धन देनेवाले ( वसोः सहसः ) निवासक बलके ( सनुं ) पुत्र अर्थात् बल बढ़ानेवाले, ( जात-वेदसं विप्रं न ) विद्वान् ब्राह्मणके समान ( जातवेदसं अग्निं मन्ये ) परम पूज्य अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ, ( यः देवः ) जो अग्निदेव ( सु-अध्वरः ) उत्तम यज्ञवाले ( ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा ) उच्च देवोंकी कृपा हो इस इच्छासे ( शुक्र-शोचिषः ) शुद्ध तेजस्वी ( आजुह्वानस्य ) जिससे हवन किया जाता है, ऐसे उस ( सर्पिषः ) तुम्हारी घीकी ( विभ्राष्टिं ) आहुतिके बाद प्रसन्न होता है ॥ ९ ॥



४६६ तव त्यन्नयं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूज्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।

यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।

भुवा विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेद्विषम्

॥ १० ॥ ( ऋ २।२२।४ )

इति अष्टमी वसतिः ॥ ८ ॥ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥ इत्येन्द्रं पर्व काण्डं वा समाप्तम् ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

### ऐन्द्रकाण्डे ।

|  |         |         |
|--|---------|---------|
| गाराज्यः                                   | ११५-२३२ | ( ११८ ) |
| तत्र १५५ ' पान्तं ' इत्यनुष्टुप् ।         |         |         |
| बृहत्यः                                    | २३३-३१२ | ( ८० )  |
| त्रिष्टुभः                                 | ३१३-३४१ | ( २९ )  |
| तत्र ३२८ ' प्र वो ' इति त्रिपाद्विराट् ।   |         |         |
| अनुष्टुभः                                  | ३४२-३६९ | ( २८ )  |
| जगत्यः                                     | ३७०-३८० | ( ११ )  |
| तत्र ३७९ ' उभे यदिन्द्रे ' ति महापंक्तिः । |         |         |
| उष्णिहः                                    | ३८१-३९८ | ( १८ )  |
| तत्र ३९८ ' पिबे ' ति विराट् ।              |         |         |

|  |         |        |
|--|---------|--------|
| ककुभः  | ३९९-४०८ | ( १० ) |
| पंक्तयः  | ४०९-४२६ | ( १८ ) |
| तत्र ४२६ ' नतमि ' त्युपरिष्ठाद्बृहती ।           |         |        |
| द्विपदाः   | ४२७-४५५ | ( २९ ) |
| [ ४२८; ४३२; ४३४; ४३५ अनुष्टुबादयस्तत्रैवोक्ताः ] |         |        |
| अत्यष्टयः  | ४५६-४६६ | ( ११ ) |
| तत्र ४५६ ' इन्द्रो विश्वस्ये ' त्येकपदा ।        |         |        |
|  |         | ३५२    |

|                             |     |
|-----------------------------|-----|
| ऐन्द्रकाण्डस्य मन्त्रसंख्या | ३५२ |
| आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या | ११४ |
| सर्वयोगः                    | ४६६ |

[ ४६६ ] हे ( नृतः इन्द्र ) सबको अपनी इच्छासे चलानेवाले इन्द्र ! ( नयं ) सब मनुष्योंका हित करनेवाले ( प्रथमं पूज्यं ) सर्व प्रथम, मुख्य ( तव त्यत् अपः ) तेरे वे कर्म ( दिवि प्रवाच्यं कृतं ) छुलोकमें प्रशंसनीय हुए हैं, वह बल यह है कि ( देवस्य असुः ) राक्षसोंके प्राणोंको तूने ( शवसा रिणन् ) अपने बलसे नष्ट किया, और ( अपः अरिण ) जलोंको बहाया । उस तूने ( विश्वं अदेवं ) सब अमुरोंको ( ओजसा अभिभुवः ) अपने बलसे हराया, इसलिए ( शतक्रतुः ) सैंकड़ों कर्म करनेवाला इन्द्र ( ऊर्जं इषं विदेत् ) बलवान् होवे और उसको हविष्यान्न प्राप्त होवे ॥ १० ॥

॥ यहां छत्तीसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ ऐन्द्र काण्ड समाप्त ॥

## ऐन्द्र काण्ड

सामवेदके इस ऐन्द्र काण्डमें ३५२ मंत्र हैं, यह काण्ड यद्यपि " ऐन्द्र-काण्ड " के नामसे प्रसिद्ध है तो भी उसमें " अग्नि, मरुत् " आदि अन्य देवताओंके भी मंत्र आये हैं । यह हम देवताओंकी सूचीमें स्पष्ट करेंगे । इस काण्डमें इन्द्र देवताके अधिक मंत्र होनेके कारण इस काण्डका नाम " ऐन्द्र-काण्ड " रखा गया है । इसमें विशेषरूपसे इन्द्रका ही वर्णन है, इसलिए पहले इन्द्रके गुणोंका अध्ययन

करके फिर बादमें यह देखेंगे, कि उस अध्ययनसे हमें क्या शिक्षा मिलती है ।

### इन्द्रके गुण

यह इन्द्र जैसा शूर है, वैसा ही ज्ञानी भी है । इसके ज्ञान और गुणको प्रकट करनेवाले ये विशेषण इस काण्डमें आये हैं—



१ युवा कविः ( ३५९ )- यह इन्द्र तरुण कवि है, कविका अर्थ है, कान्तदर्शी, दूरसे ही देखनेवाला, दूरदर्शी, ज्ञानी ।

२ एषः ब्रह्मा ( ४३८ )- यह ज्ञानी है, ब्रह्मको जानने-वाला है ।

३ विप्रः ( ३८८ )- विशेष बुद्धिमान्, विशेष ज्ञानी ।

४ विपश्चित्, बृहत् ब्रह्मकृत् ( ३८८ )- ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानका प्रसार करनेवाला ।

५ श्रुतः इन्द्रः ( ४४५ )- ज्ञानके लिए विशेष प्रसिद्ध ।

६ नाम श्रुतः ( ४३८ )- नामसे ही ज्ञानी प्रसिद्ध ।

७ कश्यपः ( पश्यकः ) ( ३६१ )- द्रष्टा, ठीक ठीक स्थिति जाननेवाला ।

८ विश्वानि विदुषे ( ३५२ )- सभी ज्ञानोंको जाननेवाला ।

९ विद्वत्सु चित्रः ( ३४५ )- विद्वानोंमें विलक्षण, श्रेष्ठ ज्ञानी ।

१० वि-चेताः ( २६५ )- विशेष बुद्धिमान्, विचार करनेवाला ।

११ विचर्षणिः ( १९९ )- विशेष ज्ञानी ।

१२ मुनीनां सखा ( २७५ )- ऋषि-मुनियोंका मित्र, उनका हित करनेवाला ।

१३ देवस्य महित्वा काव्यं पश्य ( ३२५ )- इस इन्द्रके महत्त्वके काव्य देख ।

१४ कंचित् स्थूरं न अवश्यवः त्वां वृणीमहे ( ४०८ )- जैसे मनुष्य विद्वान्के पास सलाह लेने और विचार करने जाते हैं, उसी प्रकार अपने संरक्षणके लिए इन्द्रके पास हम जाते हैं ।

१५ सुरूप-कृतनुः ( १६० )- उत्तम सुन्दर रूपको इन्द्र बनाता है, वह उत्तम कारीगर है ।

१६ युवा ( १२७ )- वह नवयुवकके समान उत्साही और विचार करनेवाला है ।

१७ सखा, मित्रः ( १२७ )- वह बराबरके मित्रके समान है ।

१८ चित्रः सखाः ( १६९ )- वह विलक्षण और हित करनेवाला मित्र है ।

१९ पतिः ( २०५ )- उत्तम पालक, उत्तम अधिकारी, स्वामी ।

२० सत्पतिः ( १६८ )- सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला है ।

२१ गोपतिः ( १६८ )- गायोंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाला है ।

२२ सत्यस्य सूनुः ( १६८ )- सत्यका प्रचारक है ।

२३ ऋध्वः ( ४२३ )- महान्, सुन्दर है ।

२४ शिप्री ( १४५ )- शिरपर शिरस्त्राण धारण करनेवाला है ।

२५ वः अचर्कषत् ( १९६ )- वह इन्द्र अपने ज्ञानसे और चतुराईसे तुम्हें अपने पास आकर्षित करता है ।

२६ चन्द्रः सदा उपो नु ( १९६ )- इन्द्र हमेशा पास ही रहता है । सबके पास जाकर निरीक्षण करता है ।

२७ त्वं नः ऊती ( २६० )- तू हमारा उत्तम संरक्षक है ।

२८ त्वं नः आप्यः ( २६० )- तू हमारा मित्र है ।

२९ नः सधमादे भव ( २६० )- हमारे एक साथ बैठनेके स्थानपर आकर बैठ ।

३० न परा वृणक् ( २६० )- हमारा त्याग मत कर ।

इस प्रकार इन्द्रके ज्ञानी और आकर्षक गुण सम्बन्धी विशेषण हैं, और उसके सार्वजनिक हित करनेवाले गुण ये हैं—

१ सु-नीती ( १२७ )- इन्द्र उत्तम नीतिके मार्गसे चलनेवाला है, और लोगोंको भी उत्तम नीतिसे चलाता है ।

२ नर्य-अपस् ( १२५ )- सब लोगोंके हितकारी कार्य करनेवाला ।

३ यस्य मानुषं द्यावः न विचारन्ति ( ३७६ )- जिसके सार्वजनिक हितके कार्योंमें कोई भी रोड़ा नहीं अटका सकता ।

४ चर्षणीनां सम्राट् ( १४४ )- मनुष्योंका सम्राट् ।

५ शत-क्रतुः ( ११६ )- सैंकड़ों प्रकारसे कर्म करनेवाला, सैंकड़ों प्रकारकी बुद्धि और युक्तियोंवाला, जिनकी सहायतासे वह जन्मते ही उत्तम हित कर सकता है ।

### इन्द्रका बल

इन्द्र जैसा विद्वान् है, वैसा ही वह बलवान् भी है—

१ सत्वा ( ११५ )- सत्त्ववान्, बलवान् ।

२ शाकिन् ( ११५ )- शक्तिमान् ।

३ शक्रः ( १४० )- सामर्थ्यवान् ।

४ वृषन्तमः ( १४८ )- अत्यन्त सामर्थ्यवान्, सबसे बलवान् ।



५ वृषभः, वृषा (११९)-बलवान्, वर्षा गिरानेवाला ।  
६ तुवि-ग्रीवः ( १४२ )- मजबूत गर्दनवाला, अर्थात् उसका सिर नहीं कांपता ।

७ मंहिष्ठः ( १४४ )- महान्, शक्तिसे महान् ।

८ इन्द्रः महान् परः ( १६६ )- इन्द्र महान् और श्रेष्ठ है ।

९ वज्रिणे महत्वं अस्तु ( १६६ )- वज्रधारी इन्द्रका महत्त्व है ।

१० महा-इस्ती ( १६७ )- इन्द्रके हाथ मजबूत और शक्तिशाली ह ।

११ त्वत्तः उत्तरः ज्यायान् न कि अस्ति ( २०३ )- तुझसे अधिक बलवान् कोई दूसरा नहीं है ।

१२ यथा त्वं एवं न कि ( २०३ )- जैसा तू है, वैसा दूसरा कोई नहीं है ।

१३ अमित-ओजाः ( ३५९ )-अपरिमित सामर्थ्यसे युक्त ।

१४ शची-पातिः ( २५३ )-शक्तिका स्वामी, सामर्थ्यवान् ।

१५ स्वर्वान् ( २५४ )- आत्मशक्तिसे युक्त ।

१६ शविष्ठः धृष्णः ( ३४७ )- बलवान् और शत्रुपर आक्रमण करनेवाला

१७ इन्द्रियं त्वा आपृणक्तु ( ३४७ )- इन्द्रियोंकी उत्तम शक्ति तेरे पास भरपूर है ।

१८ सहसः बलात् ओजसा अधिजातः ( १२० )- साहस, बल और सामर्थ्यके कारण जन्मसे ही वह प्रसिद्ध है ।

१९ सर्वं ते वशे ( १२६ )- सब कुछ तेरे आधीन है ।

२० ऊतथे तवस्तरं इन्द्रं हवामहे ( १६३ )- अपने संरक्षणके लिए हम महान् बलवान् इन्द्रको बुलाते हैं ।

२१ शवः प्रथिना ( १६६ )- उसका बल बढ़ता ही रहता है ।

२२ त्वां न अतिरिच्यते ( १९७ )- तेरी अपेक्षा कोई भी अधिक बलवान् नहीं है ।

२३ वन्दद्भीरः ( ३६० )- वीर पुरुष जिसका हमेशा बन्दन करते हैं ।

२४ वाजी वाजिनं ददातु- ( १९९ ) बलवान् इन्द्र हमें बल देवे, हमें बलवान् करे, हमें बलवान् वीरोंकी सहायता प्राप्त हो ।

२५ सन्नानि विश्वा पौस्या आ भर ( २६२ )- सब सामर्थ्य हमें एक ही समय प्राप्त हों ।

२६ अस्य तत् ओजः तित्विषे यत् उभे रोदसी

चर्म इव समवर्तयत् ( १८२ )- इसका वह सामर्थ्य कम-कता है कि जिसकी सहायतासे यह दोनों द्यावा-पृथिवियोंको चमड़ेके समान लपेट देता है ।

२७ त्वावतः परे मणिः अरं गमेम ( २०९ )- तेरी सहायतासे सुरक्षित होकर और तेरे आश्रयमें रहकर हम कृतकृत्य हों ।

२८ शग्धि ( २७४ )- तू सामर्थ्यवाला है ।

२९ वीरं नाम श्रुत्यं शाकिनं इन्द्रं गाय ( २६५ )- इन्द्र वीर है, शत्रुको झुकानेवाला है, प्रसिद्ध बलवान् है, इसलिए उसके गुणोंका गान करो ।

३० परावति वृषा, अर्वावति वृषा, वृषा हि शृण्विषे, सत्यं वृषा असि, वृषजूतिः नः अविता ( २६३ )- तू दूर देशमें बलवान् है, पासके देशमें भी बलवान् है, तेरी बलवान् कीर्ति मैं सुनता हूँ, निश्चयसे तू बलवान् है, बलसे तू हमारा संरक्षण करता है ।

वृषा- इसका दूसरा अर्थ है, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ।

३१ अ-देवः मर्त्यः सीं तं न आप ( २६८ )- ईश्वरकी उपासना न करनेवाला अन्न नहीं पासकता, अर्थात् इन्द्रकी उपासना करनेवाला ही उस योग्य अन्नको प्राप्त कर सकता है ।

३२ विश्वासु समत्सु हव्यः ( २६९ )- सब युद्धोंमें इन्द्र सहायताके लिए बुलाने योग्य है । ऐसा वह शक्तिमान् है ।

३३ युध्मः, खज-कृत्, पुरन्दरः अलर्षि ( २७१ )- इन्द्र युद्ध करनेमें कुशल, युद्ध करनेवाला, शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला है, वह हमारी सहायताके लिए आवे ।

३४ शश्वतीनां पुरां भेत्ता ( २७५ )- मजबूत बने हुए शत्रुओंके नगरोंको भी तोड़नेवाला है ।

३५ चर्षणीनां राजा, रथेभिः अधिगुः, याता, विश्वासां पृतनानां तरुता, वृत्रहा, ज्येष्ठः गृणे ( २७३ )- सब मनुष्योंका हित करनेवाला राजा, रथोंसे आगे जानेवाला, सबसे आगे जानेवाला, शत्रुपर आक्रमण करनेवाला, शत्रुसेनाका नाश करनेवाला, वृत्रको मारनेवाला, ऐसा श्रेष्ठ इन्द्र है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ ।

१६ द्यावा-पृथिवी शतं स्युः, भूमीः शतं स्युः, सहस्रं सूर्याः, न त्वा अनु अष्ट, अनु जातं न अनु अष्ट, रोदसी न अनु अष्ट ( २७८ )- द्यावापृथिवी,



भूमि ये संकड़ों हो जाएं, हजारों सूर्य हो जाएं, वे सभी भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते । पीछेसे होनेवाले पदार्थ तेरी बराबरी नहीं कर सकते ।

३७ यतः इन्द्र भयामहे, ततः नः अभयं कृधि ( २७४ )- हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय हो, वहांसे हमें निर्भय कर ।

३८ नः ऊतये द्विषः विजाहि, मृधः विजाहि ( २७४ )- हमारे संरक्षणके लिए शत्रुओंको जीत, दुष्टोंको हरा ।

३९ ते सखा अश्वी, रथी, गोमान्; सुरूपः, श्वाघ्नः भागः वयसा सदा सचते । चन्द्रैः सभां उपयाति ( २७७ )- तेरा मित्र इन्द्र घोड़े रखनेवाला, रथमें बैठनेवाला, गाय रखनेवाला, सुन्दर, शीघ्र ही कार्य करनेवाला, वयसे-तारुण्यसे युक्त रहता है, वह आभूषण पहनकरके सभामें जाता है ।

४० इन्द्र हरी युयोजते ( २६८ )- इन्द्र घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ता है ।

४१ इन्द्रः हर्योः संमिश्रः, वज्री हिरण्ययः ( २८९ )- इन्द्र घोड़े रखता है, वज्र धारण करनेवाला और तेजस्वी है ।

४२ सत्रा-हां विश्व-चर्षणिः तं वयं हूमे ( २८६ )- इन्द्र सब शत्रुओंको एक साथ मारता है । सब मनुष्योंका कल्याण करता है, इसलिए हम उसको सहायतार्थ बुलाते हैं ।

४३ प्रशर्धः ( २७९ )- शत्रुनाशक बलसे युक्त इन्द्र है ।

४४ अनवे पुरु नृषूतः असि ( २७९ )- सब मनुष्योंका हित करनेके लिए लोग तेरी बहुत प्रार्थना करते हैं ।

४५ त्वा कः मर्तः आदधर्षति ( २८० )- तुझे कौन मनुष्य डरा सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं ।

४६ ते श्रद्धा वाजी पार्ये दिवि वाजं सिषासाति ( २८० )- तेरे ऊपर श्रद्धा रखनेवाला बलवान् होता है और अन्तिम दिनतक भी दान कर सकता है ।

४७ अ-जरं, प्रहेतारं, अ-प्रहितं, आशुजेतारं, होतारं, रथीतमं, अ-तूर्तं, ऊतये इतः ( २८३ )- जरा-रहित, प्रेरणा देनेवाले, पीछे न रहनेवाले, शत्रुको शीघ्र जीतनेवाले, दान देनेवाले, रथमें बैठनेवाले, किसीसे भी न हारनेवाले, इन्द्रको यहां हमारे पास बुलावो, सहायताके लिए उसे अपने पास बुलावो ।

४८ सु आपे ! स्वापिभिः आ ( २८२ )- हे उत्तम मित्र इन्द्र ! अपने उत्तम मित्रोंके साथ यहां आ, हमारे पास हमारी सहायताके लिए आ ।

४९ सहस्रमन्यो तुवि-नृम्ण, सत्पते ! समत्सु नः वृधे भव ( २८६ )- हे हजारों उत्साहोंसे युक्त, बहुत बलवान्, सज्जनोंके पालक, इन्द्र ! तू युद्धमें हमारी उन्नति करनेवाला हो ।

५० त्वा वाघतः अस्मत् आरे मा निरमत् ( २८४ )- तेरी स्तुति करनेवाले भक्त तुझे हमसे दूर न लेजायें ।

५१ आरात्तात् नः सधमादे सु आगहि ( २८४ )- हमारे यज्ञमें हमारे पास ठीक तरह आ ।

५२ महे शुल्काय त्वा न परा देयां, न शताय न सहस्राय न अयुताय परा देयां ( २९१ )- बहुत साधन मिलनेपर भी मैं तुझे दूर नहीं कहूं, सौ, हजार या दसहजार-के बदलेमें भी तुझे न दूं ।

### इन्द्रका शौर्य

इस प्रकार इन्द्रके बलका वर्णन है, अब उसके शौर्यका वर्णन देखिए—

१ मघः शूरः वीरः ( १२३ )- इन्द्र आनन्द देनेवाला शूर और वीर है ।

२ अनाभयिन् ( १२४ )- निर्भय, भयरहित ।

३ अनानतः ( १४२ )- किसीके भी आगे न झुकनेवाला ।

४ अस्ता ( १२५ )- दाता, शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला ।

५ नरः ( १४४ ) प्रनेता- ( १९३ )- नेता, शौर्यके साथ आगे लेजानेवाला ।

६ त्वं ईशिषे ( १६२ )- तू सबपर शासन करता है ।

७ अ-प्रति-ष्कुतः ( १७९ )- जिसका विरोध कोई भी नहीं कर सकता ।

८ सदा-वृधः ( १६९ )- हमेशा बढ़नेवाला ।

९ स्थिरः ( २०० )- युद्धोंमें हमेशा स्थिर रहनेवाला ।

१० विश्वा-साहं चर्षणीनां मंहिष्ठं इन्द्रं अभि प्रगायत ( १५५ )- सब शत्रुओंको हरानेवाले, सब लोगोंमें श्रेष्ठ इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

११ महद् भयं अभीषत् अप चुच्युवत् ( २०० )- महान् भयोंसे हमें दूर करो ।

१२ वृत्रहणं, पुरु धस्मानं, वृषभं, स्थिरप्सुनं, वज्रिणं, भृष्टिमन्तं गृणे ( ३२७ )- वृत्रको मारनेवाले, बहुतों द्वारा पूजित, बलवान्, हमेशा दुष्टोंका नाश करनेवाले, वज्र-धारी, शत्रुनाशक इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१३ त्यत् जायमानः, अ-शत्रुभ्यः ससभ्यः शत्रुः त्वं अभवः ( ३२६ )- उत्पन्न होते ही, जिनका कोई भी शत्रु



नहीं था, ऐसे सात शत्रु राक्षसोंका तू अकेला ही शत्रु हुआ ।

१४ वहूनां दद्राणं युवानं पलितः जगार ( ३२५ )- बहुतोंको मारनेवाले जवान शत्रुको सफेद बालोंवाला बूढ़ा वीर भी पराजित करता है । ( यदि इन्द्र उनकी सहायता करे । )

१५ वाजसातौ अस्मिन् भरे नृत्यं इन्द्रं हुवेम ( ३२९ )- बलसे लड़े जानेवाले इस युद्धमें मनुष्योंमें श्रेष्ठ इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१६ शृण्वन्तं उग्रं समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं इन्द्रं हुवे ( ३२९ ) भक्तकी प्रार्थना सुननेवाले, वीर, युद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाले, इन्द्रको सहायताके लिए मैं बुलाता हूँ ।

१७ त्रातारं अवितारं हवे हवे सुहवं शक्रं इन्द्रं हुवे ( ३३२ )- संरक्षण करनेवाले और प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए बुलाये जानेवाले, सामर्थ्यवान् इन्द्रको मैं बुलाता हूँ ।

१८ वज्र-दक्षिणं विवृतानां हरीणां रथ्यं इन्द्रं यजामहे ( ३३४ )- अपने दायें हाथमें वज्रको धारण करनेवाले, वेगवान् घोड़ोंके रथमें बैठनेवाले इन्द्रकी मैं पूजा करता हूँ ।

१९ सत्रासाहं दाधृषिं तुघ्नं मह्यं अपारं वृषभं सुवज्रं ( ३३५ ) शत्रुओंका एक साथ नाश करनेवाले, शत्रुको डरानेवाले, शत्रुको दूर करनेवाले, महान् अपार भक्तिसे वज्रधारी इन्द्रकी प्रशंसा करता हूँ ।

२० इन्द्रा-पर्वता वामी सु-वीरा ( ३३८ )- इन्द्र और पर्वत ये प्रशंसनीय उत्तम वीर हैं ।

२१ अयं शिप्री ओजसा पुरः विभिनत्ति ( २९७ )- यह शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र अपने बलसे शत्रुके नगरोंको तोड़ता है ।

२२ महे वीराय तवसे तुराय विरश्शिने वज्रिणे स्थविराय अस्मै अपूर्व्या पुरुतमानि शंतमानि वचांसि तक्षुः ( ३२२ )- महान् वीर, बलवान्, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले, बड़े वज्रधारी, वृद्ध ऐसे इस इन्द्रके लिए अपूर्व, बहुत और शान्ति बढ़ानेवाले स्तोत्र कहे जाते हैं ।

२३ इमाः विश्वाः पृतनाः जयासि ( ३२४ )- इन सारे शत्रुओं पर तू विजय प्राप्त करता है ।

२४ द्रप्सः दशभिः सहस्रैः इयानः कृष्णः अंशु-मतीं अवातिष्ठत्, शच्या धमन्तं तं इन्द्रः आवत् नृमणाः स्निहति अधद्राः ( ३२३ )- आक्रमण करनेवाला कृष्ण असुर अपने दसहजार सैनिकोंके साथ अंशुमति नदी पर पहुँच गया, अपने आक्रमणसे लम्बी लम्बी साँसें लेनेवाले

उस असुरको घेरकर, मनुष्योंका हित करनेकी इच्छासे इन्द्रने उस हिंसक सेनाको नष्ट कर डाला ।

२५ यत् पार्या धियः युनजते, नरः नेमधिता इन्द्रं हवन्ते ( ३१८ )- जब संकटोंसे पार होनेकी बुद्धि होती है, तब संग्राममें लड़नेवाले लोग इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

नेमधिता - संग्राम ।

२६ यत् शासः सदसः परि अव्रतं च्यावय ( २९८ )- तू शासक है, इसलिए हमारे समूहसे व्रत न पालन करनेवाले अधार्मिकोंको दूर कर ।

२७ भरे भरे हव्यः ( ३०९ )- प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए इन्द्र बुलानेके योग्य है ।

२८ दिवः सदोभ्यः ओजसा प्र रिरिशे ( ३१२ )- शूलोकसे भी तू श्रेष्ठ है ।

२९ नः अविता वृधे च असः ( ३१४ )- तू हमारी रक्षा और वृद्धि करनेवाला है ।

३० त्वं यावत् ईशिषे एतावत् अहं ईशीय ( ३१० )- तेरा जितनेके ऊपर अधिकार है, उतनेपर मेरा भी अधिकार हो ।

३१ न पापत्वाय रंसिषम् ( ३१० )- पापोंमें हम न रमें, ऐसा कर ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन सामवेदमें आया है । ये गुण मनुष्य देखें और इन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढ़ावें । “ यद्देवाः अकुर्वन्स्तत्करवाणि ” जैसा आचरण देवोंने किया, उसी प्रकार मैं भी करूँ । यह उद्देश्य मनुष्य रखकर उसके अनुसार आचरण करें, इन्द्रके इन गुणोंको यहां इस मंत्रसंग्रहमें इसलिए कहा है कि मनुष्य भी इन्द्रके समान शूर, वीर, उत्साही, सतत परिश्रमी, युद्धमें कुशल, उदार, प्रजाओंके पालक और संरक्षक हों ।

इन्द्रके यदि दो चार मंत्रोंपर ही ध्यान दिया जाए और उनको अपने अंदर धारण करनेका प्रयत्न किया जाए, तो उनसे भी मनुष्यकी उन्नति अवश्य होगी, ऐसे ये गुण हैं ।

अब इन्द्रकी युद्धमें कुशलता किस प्रकारकी है, उसपर विचार करते हैं ।

### इन्द्रकी युद्ध कुशलता

इन्द्र विश्वराज्यमें संरक्षण-मंत्री अथवा युद्ध-मंत्री है । इस कारण उसका शत्रुओंके साथ युद्ध बराबर होता रहता है । अतः वह युद्ध कैसे करता है, उसके अन्दर युद्ध कुशलता कैसी है, इसका विचार अब करते हैं ।



१ नृ-पाहः ( १४४ )- शत्रुके वीरोंको हरानेवाला ।

२ अद्रिवः ( १९४ )- वज्रधारण करके लड़नेवाला, ( अद्रि-वः ) पहाड़ोंके किलोंमें रहनेवाला, अथवा किलेमें रहकर लड़नेवाला ।

३ पृतनासहः वीरः ( ४०५ )- शत्रुकी सेनाको हरानेवाला वीर ।

४ स्वराज्यं अनु अर्चन् त्वं मायिनं मृगं वृत्रं मायया अवधीः ( ४१२ )- स्वराज्यको वृद्ध बनानेके लिए उस मायावी वृत्रासुर और मायावी पणिका बध किया । वृत्रासुर कपटसे लड़ता था, उसे इन्द्रने कपटसे ही मारा । कपटियोंसे कपटका ही व्यवहार करें, यह बोध यहां मिलता है, और अपने स्वातन्त्र्य-संरक्षण और प्रजाओंके संरक्षणके लिए कपटी शत्रुओंका नाश करनेका उपदेश इसमें है ।

५ यः एकः इत् विश्वाः कृष्टीः अभ्यस्यति ( ३८७ )- यह इन्द्र अकेले ही सब शत्रुके सैनिकोंको हरा देता है । इसका इतना सामर्थ्य और युद्ध-कौशल्य है ।

६ विश्वतोदावन् ( ४३७ )- सब शत्रुओंका नाश करता है ।

७ विश्वस्य प्रस्तोमः ( ४५० )- सब शत्रुओंका इन्द्र प्रध्वंस करता है ।

८ यः कृष्णगर्भाः निरहन् ( ३८० )- कृष्ण नामके असुरकी गर्भवती पत्नियोंका भी इन्द्रने नाश किया । कृष्ण नामका एक असुर था, वह लोगोंको बहुत कष्ट देता था, दस-दस-हजार राक्षसोंकी सेना लेकर वह आक्रमण करता था, इन्द्रने सब सेनाके साथ कृष्णका बध किया, और जिससे आगे उसका वंश भी न रहे, इसलिए उसकी गर्भवती स्त्रियोंको भी मार डाला ।

९ वृत्रहन्तमं शर्धं श्रुतं, चर्षणीनां महे राधसे प्र आशिषे ( २०८ )- वृत्रनामक असुरके नाश करनेमें इन्द्रका जो बल प्रसिद्ध हुआ, उसे सभीने सुना । यह सब इन्द्रने इसलिए किया कि इससे प्रजाजनोंका महान् कल्याण हो । वृत्रासुर प्रजाओंको कष्ट देता था, वे कष्ट दूर हों इसलिए वृत्रासुर प्रजाओंको कष्ट देता था, वे कष्ट दूर हों इसलिए उसका इन्द्रने बध किया, उससे प्रजाओंकी महान् उत्पत्ति, प्रजाओंकी आर्थिकस्थिति उत्तम हुई और प्रजाओंका सुख बढ़ा ।

१० पृथु सासर्हि लोककृत्तुं मदं हरिभ्रियं गृणीमसि ( ३८३ )- युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाले, प्रजाओंका

१५ ( साम. हिन्दी )

कल्याण करके उन्हें आनन्दित करनेवाले, प्रजाओंकी सम्पत्ति बढ़ानेवाले इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं । “ हरि ” पदका अर्थ मनुष्य है, “ हरिरिति मनुष्य नाम ” ( निघं. २।३।१० ) । लोगोंकी शोभा बढ़ानेवाला इन्द्र है ।

११ तं महत्सु आजिषु अर्भे चित् ऊर्ति हवामहे ( ४११ )- उस इन्द्रको महान् और छोटे युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

१२ सः वाजेषु नः प्राविषत् ( ४११ )- वह इन्द्र युद्धमें हमारा उत्तम संरक्षण करता है । ऐसा वह पराक्रमी है ।

१३ ते शवः नृम्णं ( ४१३ )- तू हमें शत्रुओंको मुकानेवाला बल भरपूर दे ।

१४ उपाकयोः हस्तयोः आयसं वज्रं भ्रिये निदधे ( ४२३ )- अपने हाथोंमें फौलादी वज्रको कल्याणके लिए धारण करता है ।

१५ प्रेहि, अभीहि, धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते ( ४१३ )- शत्रुपर आक्रमण कर, चारों ओरसे आक्रमण कर, शत्रुका नाश कर, तेरा वज्र किसीसे पराजित होनेवाला नहीं है । इस स्थानपर ‘ प्रेहि, अभीहि, धृष्णुहि ’ ये तीन शब्द युद्धका वर्णन करनेवाले हैं । “ प्रेहि ” का अर्थ है, शत्रुपर चढ़ाई करना, “ अभीहि ” का अर्थ है चारों ओरसे शत्रुको घेरकर उन्हें चक्करमें डालकर फिर उनपर आक्रमण करना, और “ धृष्णुहि ” का अर्थ है शत्रुओंका धर्षण करना, शत्रुओंका बध करना और अन्य रीतिसे उसका नाश करना । इन्द्र इन सब युद्ध प्रणालियोंमें कुशल है ।

१६ अरंगमाय जग्मने अपइचादध्वने ( ३५२ )- इन्द्र पूर्ण रीतिसे शत्रुपर आक्रमण करता है, शत्रुओंको कुचलता चला जाता है । शत्रुओंको कुचलनेमें वह बेर नहीं करता । समयपर जहां पहुंचना होता है, वहां पहुंच जाता है । ये तीनों ही गुण वीरोंमें आवश्यक हैं । शत्रुपर चढ़ाई करना, शत्रुका पूर्णतया नाश करना और उचित समय पर आक्रमण करना ये आवश्यक तत्त्व हैं ।

१७ पुरां भिन्दुः, युवा कविः, अमितौजाः, विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता, अजायत ( ३५९ )- शत्रुके नगरोंको कर्मणः धर्त्ता, अजायत ( ३५९ )- शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला, तरुण, ज्ञानी, अपरिमित सामर्थ्यवाला, सब कर्मोंको धारण करनेवाला यह इन्द्र है, ऐसा यह वीर है ।

१८ पुरं धृष्णुं अर्चत ( ३६२ )- शत्रुके नगरोंके नाश करनेवाले इन्द्रकी अर्चना करो ।



१९ इन्द्रो विश्वस्य राजति ( ४५६ )- इन्द्र विश्वका राजा है, विश्वका आधिपत्य इन्द्रके पास है, इतना वह सामर्थ्यवान् है ।

२० ऊतये सुम्नाय तुवि-कूर्मिं कृतीपहं सत्पतिं इन्द्रं वर्तयामसि ( ३५४ )- हमारा संरक्षण हो इसलिए सुखदायी, विविध सामर्थ्योंका कार्य करनेवाले, हिंसक शत्रुओंको हरानेवाले, सज्जनोंका पालन करनेवाले, इन्द्रको हम यहां लाते हैं ।

२१ पुरु-निःपथे इन्द्राय उक्थं शंस्यम् ( ३६३ )- बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रकी प्रशंसाके स्तोत्र कहो ।

२२ विश्वानरस्य अनानतस्य शवसः पतिं हुवे ( ३६४ )- विश्वका नेता, किसीके आगे अपना सिर न झुकानेवाला, बलका स्वामी इन्द्र है, उसे मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ ।

२३ चर्षणीनां रथानां पवैः ऊती हुवे ( ३६४ )- मनुष्योंके रथोंके संरक्षणके साधनोंसे हमारा रक्षण हो, इस-लिए इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२४ विश्वाः पृतनाः नरः अभिभूतरं आसुरिं उग्रं ओजिष्ठं तरसं तरस्विनं इन्द्रं राजसे ततश्चुः ( ३७० )- सब मनुष्योंके नेताओंने दुराचारी शत्रुओंको हरानेवाले, शत्रुको मारनेवाले, उग्र, बलवान्, दुःखोंसे पार करानेवाले इन्द्रको राजा बनानेके लिए प्रकट किया ।

२५ यः सदावृधं, विश्वगूर्तं, ऋभ्वपसं, ओजसा अधृष्टं धृष्टं इन्द्रं यज्ञैः चकार ( २४३ )- जो हमेशा बढ़नेवाले, सबोंसे प्रशंसित, महाबुद्धिमान्, महान् सामर्थ्यके कारण जिसका कभी भी पराभव नहीं होता, ऐसे शत्रुको हरानेवाले इन्द्रकी यज्ञसे भक्ति करता है, ( वह महान् होता है ) ।

२६ तं कर्मणा न किः नशत् ( २४३ )- किसी भी कर्मसे उसका नाश नहीं हो सकता ।

२७ पृथु नः तनूषु नृम्णां आघेहि, सत्राजित् पौंस्यं आघेहि ( २३१ )- हे इन्द्र ! हमारी प्रजाओंके शरीरमें बहुतसा बल दे, और सब शत्रुओंको एकसाथ मारनेका बल भी बढ़ा ।

२८ कारवः वाजसातौ त्वां हवामहे ( २३४ )- हम कर्म करनेवाले युद्धमें तुझे ही सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२९ वृत्रेषु सत्पतिं नरः हवन्ते, अर्वतः काष्ठासु त्वा हवन्ते ( २३४ )- वृत्रादि असुरोंके साथ युद्ध करनेके समय नेता लोग सज्जनोंका पालन करनेवाले तुझ इन्द्रको ही बुलाते हैं । प्रयत्नको अत्यधिक करनेके बाद अपनी सहायताके लिए तुझे ही बुलाते हैं ।

३० उभे रोदसी त्वा अनुधावतां ( ३७१ )- दोनों ही बलोक और पृथ्वीलोक तेरे अनुकूल ही चलते हैं ।

३१ पृथिवी ते शुष्माद् अभ्यसाते ( ३७१ )- पृथिवी तेरे बलसे भयभीत है । इस प्रकार इन्द्रका बल है ।

३२ सत्राजितः अक्षित-ऊतयः, वाजयन्तः रथाः इव, गिरः उदीरते ( २५१ )- एकसाथ सब शत्रुओंको हरानेवाले, जिसके संरक्षणके साधन कभी क्षीण नहीं होते, ऐसे तेरे भक्त, बलवान् रथके समान, स्तोत्र कहते हैं । तुझ इन्द्रके यशका गान करते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रकी युद्ध कुशलताका वर्णन सामवेदमें किया गया है । इसको देखनेसे इन्द्रकी कितनी विशाल शक्ति थी इसकी कल्पना हो सकती है ।

यहां इन्द्रके वर्णन करनेका यही उद्देश्य है, कि इन्द्रके समान अपने भी वीर अपने राष्ट्रकी तैयारी करें, और अपने राष्ट्रको सबल बनावें ।

इन्द्र अपने पास वज्र रखता है, उसी प्रकार हम भी सैकड़ों धाराओंवाले फौलादी वज्र तैयार करें और उनका उपयोग करें यह उद्देश्य यहां नहीं है, अपितु जैसे उसके पास तीक्ष्ण वज्र है, उसी प्रकार हमारे पास भी हमेशा तीक्ष्ण शस्त्र रहें, यह उपदेश यहां ग्रहणीय है ।

इसी प्रकार दूसरे उपदेशोंके विषयमें भी समझें । इन्द्र अपने शत्रुओंका नाश करता है, उसी प्रकार हम भी अपने शत्रुओंका नाश करें । शत्रुनाशके साधन शस्त्रास्त्र समय समयपर बदलते हैं । पहलेके जमानेमें धनुष-बाणसे युद्ध होते थे, पर आज अणु अस्त्र हैं । पर दोनों दशाओंमें उद्देश्य एक ही है शत्रुका नाश करना । वह उद्देश्य जिन साधनोंसे भी पूरा हो, उन साधनोंका उपयोग करके समयानुसार शत्रु द्वारा पैदा किए जानेवाले कष्टोंको दूर करें ।

### शत्रुका नाश

इन्द्रका मुख्य कार्य सब प्रजाओंका उत्तम संरक्षण करना है । जो शत्रु आते हैं, उनका समूल नाश कर प्रजाजनोंका



संरक्षण करना यह कार्य इन्द्र करता है। उसीको वेदमंत्रोंमें कहा है—

१ महे वृत्राय हन्तवे इन्द्रं वाजयामसि ( ११९ )— महान् वृत्रका वध करनेके लिए हम इन्द्रके यशको गाते हैं। वृत्रका अर्थ है ( आवृणोति इति वृत्रः ) चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु। ऐसे शत्रुके आनेपर उसके लिए इन्द्रको बुलाते हैं।

२ वृत्र-हा ( १२६ )— वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र है। इन्द्रका यह नाम ही है।

३ वयं महाधने अर्भे इन्द्रं हवामहे ( १३० )— हम महान् युद्धमें और छोटे युद्धमें अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं।

४ वृत्रेषु युजं वज्रिणं हवामहे ( १३० )— वृत्रके साथ होनेवाले संग्राममें वज्रधारी इन्द्रको मित्र समझकर सहायता के लिए बुलाते हैं। यहां “ वृत्रेषु ” इस प्रकार बहुवचनका प्रयोग हुआ है। अनेक वृत्र हैं। वृत्रका अर्थ केवल एक शत्रु नहीं, अपितु घेरनेवाले अनेक शत्रु। ऐसे सब शत्रुओंका इन्द्रने नाश किया।

५ तत् त्वा युजा वनेम ( १२८ )— इस प्रकार तेरे साथ रहकर तेरी सहायतासे सब शत्रुओंको मार दें। इन्द्रके साथसे और उसकी सहायतासे हमारी शक्ति बढ़ती है।

६ आदिशः सूरः अकतुषु नः मा अभ्यायमत् ( १२८ )— आज्ञा करनेवाले शक्तिमान् राक्षस अथवा शत्रु रात्रिमें हमारे ऊपर आक्रमण न करें। “ आदिशः ” आज्ञा देनेवाले, ऐसा कर और ऐसा न कर ऐसी आज्ञा देनेवाले शत्रु। ‘ सूरः ’ ( सु-उरः ) जिसकी छाती विशाल है। ऐसे मजबूत सीनेवाले शत्रु रात्रि के समय हमपर आक्रमण न करें, इसलिए हे इन्द्र ! हमारी रक्षा कर।

आदिशः— आदेश देनेवाले, शस्त्र फेंकनेवाले।

सूरः— हमेशा चलनेवाले, विशाल छातीवाले।

७ सहस्र-बाह्वे तत्र पौंस्यं आदिष्ट ( १३१ )— हजारों सैनिकोंको साथ लेकर आक्रमण करनेवाले शत्रुपर जब इन्द्र चलकर गया, तब उसका सामर्थ्य प्रकट हुआ।

८ विश्वाः द्विषः अप भिन्धि ( १३४ )— सब शत्रुओंको मार।

९ बाधः मृधः परिजहि ( १३४ )— रुकावटें उत्पन्न करनेवाले जो शत्रु हैं, उनका पराभव कर।

१० इन्द्रः दधीचो अस्थभिः नवनवतीः वृत्राणि

जघान ( १७९ )— इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंसे नौ गुना नब्बे वृत्रोंको मारा।  $9 \times 90 = 810$  शत्रुओंका इन्द्रने नाश किया।

दधीचिः अस्थभिः— दधीचिकी हड्डी; दधीचिने अपनी हड्डी दी, और उससे बने हुए शस्त्रोंसे इतने राक्षसोंका नाश हुआ, यह आलंकारिक कथा है।

११ ओजसा महान् अभिष्टिः ( १८० )— अपने सामर्थ्यसे महान् शत्रुओंका पराभव करनेवाला।

१२ ब्रह्मद्विषः अवजहि ( १९४ )— ज्ञानसे द्वेष करनेवालेका पराभव कर।

१३ विश्वाः स्पृधः अजयः, इन्द्रः अपां फेनेन शिरः उदवर्तयः ( २११ )— सब शत्रुओंको हराया, और इन्द्रने पानीके झागसे नमुचिका सिर तोड़ा।

‘ अपां फेनः ’— यह समुद्री झाग है, “ न-मुचिः ” शीघ्र दूर न होनेवाला रोग, ऐसे रोग पर समुद्री झाग उत्तम औषध है, यह कथा आलंकारिक है।

१४ अप्रतीनि पुरु-वृत्राणि अनुतः, चर्षणीधृतिः, एक इत् हंसि- ( २४८ )— अत्यधिक शक्तिवाले बहुतसे शत्रुओंको स्वयं पराभूत न होनेवाले इन्द्रने सब प्रजाओंके कल्याणके लिए अकेले ही मारा।

१५ वृत्र-हा शतक्रतुः शतपर्वणा वज्रेण वृत्रं हनति ( २५७ )— वृत्रको मारनेवाले, सैंकड़ों कार्य करनेवाले, इन्द्रने सैंकड़ों धाराओंवाले वज्रसे वृत्रको मारा।

१६ इन्द्राय वृत्रहन्तमं बृहत् गायत ( २५८ )— इन्द्रके लिए वृत्रको मारनेवाले बृहत् नामके सामका गान करो।

१७ त्वं प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभ्यसि ( ३११ )— तू युद्धोंमें सब शत्रुओंका नाश करता है।

१८ तूर्यः ( ३११ )— शत्रुका विनाश करनेवाला।

१९ अशस्ति-हा ( ३११ )— अप्रशंसनीयोंका नाश करनेवाला।

२० जानिता ( ३११ )— शत्रुओंपर आपत्ति लानेवाला।

२१ तरुध्यतः वृत्र-तूः असि ( ३११ )— बिघ्न करनेवालोंका विनाशक है।

२२ ते प्रथमाय मन्यवे श्रुत् दधामि, यत् दस्युं अहन् ( ३७१ )— तेरे प्रथम आये हुए उत्साहपर मैं श्रद्धा करता हूँ, क्योंकि तूने उससे शत्रुको मारा।

२३ दिवोदासाय त्यत् शम्बरं अरंधयन् ( ३९२ )— दिवोदासके हितके लिए तूने उस शम्बर राक्षसको मारा।



२४ येन अत्रिणं नि हंसि ( ३९४ )- जिससे तूने केवल स्वयं खानेवाले शत्रुओंको मारा ।

२५ वृत्रेषु स्पर्धमानाः क्षितयः यं हवन्ते ( ३३७ )- युद्धोंमें लड़नेवाले मनुष्य जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२६ युक्तेषु तुरयन्तः यं हवन्ते ( ३३७ )- युद्धके प्रारम्भ होनेपर युद्ध करनेवाले जिसको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२७ शूरसातौ यं हवन्ते ( ३३७ )- शूरोंसे जिसमें लड़ाई होती है, ऐसे युद्धोंमें लड़नेवाले लोग जिसको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं । वह श्रेष्ठ इन्द्र है ।

२८ यः मर्तः नः वनुष्यन्, अभिदाति, मन्यमानः, क्षिधी युधा, शवसा उगणाः, तुरः त्वोताः वृषमणः अभिष्याम ( ३३६ )- जो शत्रु हमारी हिंसा करनेकी इच्छासे हमपर चढ़ा चला आता है, अपनेको बहुत शक्तिशाली समझता है, तथा बिनाशक शस्त्रोंसे आक्रमण करता हुआ चला आता है, उन सबको, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले हम सब जन तेरे संरक्षणसे सुरक्षित होकर तथा बलवान् मनसे युक्त होकर मारें ।

२९ त्वं उत्सं अदर्दः ( ३१५ )- तूने मेघोंको फोडा ।

३० खानि व्यसृजः ( ३१५ )- पानीके द्वारोंको खोल दिया ।

३१ महान्तं पर्वतं धारा असृजत् ( ३१५ )- महान् पर्वतके ऊपरसे पानीकी धाराएँ छोड़ीं ।

३२ बद्धधानान् अर्णवान् अरम्णाः ( ३१५ )- उफनते हुए समुद्रको आनंदित किया ।

३३ यत् दानवान् अवहन् ( ३१५ )- जब तूने दानवोंको मारा । यह वर्णन मेघोंसे पानी बरसानेका है । आलंकारिक रूपमें मेघ यह राक्षस है, और उसे इन्द्रने मारा यह वर्णन किया है ।

३४ गोमतः जनस्य संस्थे श्वसन्तं त्वा युजा प्रति ध्रुवीमहि ( ४०३ )- गाय पास रखनेवाले, लोगोंके स्थानोंपर आक्रमण करनेवाले, लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शत्रुको तेरी सहायतासे हम उत्तम उत्तर दें ।

३५ स्वराज्यं अनु अर्चन् पृथिव्याः अहिं निः शशाः ( ४१० )- स्वराज्यका संरक्षण करनेके लिए पृथिवीपर आये हुए अहि नामक शत्रुपर तूने शासन किया ।

३६ सक्षणिः वृत्राणि परि, नः ऋणया द्विषः, तरध्वै, ईरसे ( ४२८ )- तू उत्साहसे युक्त है, इसलिए

तू शत्रुओंको मारनेके लिए अपने शत्रुनाशक सामर्थ्यसे द्वेष करनेवालोंको दूर करनेका प्रयत्न करता है ।

इन्द्र शत्रुओंको मारता है, और इस प्रकार वह शत्रुरहित होता है । इसलिए वह प्रबल शक्तियोंसे सम्पन्न है । यह सब बातें इन वचनोंमें पाठकोंको मिलेंगी । इसलिए पाठक इन वचनोंको ध्यानसे पढ़ें और स्वयं शक्तिसम्पन्न कैसे हों, यह विचार करें । पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें और उससे बोध प्राप्त करें । जो इस रीतिसे अध्ययन करेगा, वह इन्द्रके समान शूरवीर और शत्रुको जीतनेवाला होगा ।

### संरक्षण करनेवाला इन्द्र

सभी देवता मनुष्योंका संरक्षण करते हैं, पर उनमें भी इन्द्रका संरक्षण विशेष महत्त्वका है, इस विषयमें निम्न मंत्रोंको देखो—

१ देवानां महत् अवः, ऊतये वयं आ वृणीमहे ( १३८ )- देवोंका महान् संरक्षण हम अपने रक्षणके लिए मांगते हैं ।

२ कया ऊती, कया शचिष्ठया वृता, नः आभुवत् ( १६९ )- कौनसी संरक्षणकी शक्तिके साथ, और कौनसे सामर्थ्यके साथ वह इन्द्र हमारे पास आवे ?

३ ऊतये सत्रा-साहं, विश्वासु गीर्षु, आयतं, आच्यावयसि ( १७० )- अपने संरक्षणके लिए, सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले, सब स्तुतियोंसे वर्णनके योग्य इन्द्रको अपने पास बुलाओ ।

४ महीभिः ऊतिभिः अस्माकं अर्धं आगहि ( १८१ )- महान् संरक्षणके साधनोंके साथ तू हमारे पास आ ।

५ प्रचेतसः यं रक्षन्ति, सः जनः न किः दभ्यते ( १८५ )- जानी जिसका संरक्षण करते हैं, उस मनुष्यको कोई भी दबा नहीं सकता ।

६ द्युक्षं दुराध्वं महि अवः अस्तु ( १९२ )- तेजस्वी, दूसरे जिसपर आक्रमण नहीं कर सकते, ऐसे संरक्षणके महान् साधन हमें प्राप्त हों ।

७ त्वावतः वयं स्मसि ( १९३ )- तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित रहें ।

८ जनानां तरणिं त्रदं गोमतः वाजस्य समानं प्रशंसिषम् ( २०४ )- लोगोंको दुःखोंसे तारनेवाला, शत्रुको भय दिखानेवाला, गायोंसे मिलनेवाले अश्वोंका दाता इन्द्र है, उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ ।

९ ऊतये खुग्रकरुनं, अवसे साधः कृण्वन्तं



वृवदुक्थं हवामहे ( २१७ )- संरक्षणके लिए अपना हाथ आगे बढ़ानेवाले, सुरक्षितताके लिए साधनोंको तैयार रखनेवाले सब जिसकी प्रशंसा करते हैं, ऐसे इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१० तरोभिः विद्वसुं इन्द्रं ऊतये वृहत् गायन्तः ( २३७ )- अनेक बलोंसे युक्त, सब प्रकारके ज्ञान जिससे होते हैं, ऐसे इन्द्रके लिए वृहत् नामके सामको हम अपने रक्षणके लिए गाते हैं ।

११ ते धियः नः अवन्तु ( २३९ )- तेरी बुद्धि हमारा संरक्षण करे ।

१२ विश्वाभिः ऊतिभिः शग्धि ( २५३ )- सब संरक्षणके साधनोंसे तू सामर्थ्यवान् है ।

१३ महिषः तुवि शुष्मः ( ४५७ )- तू सामर्थ्यवान् और अत्यधिक बलवान् है ।

१४ सत्रा भूरि श्रवांसि दधानं अप्रतिष्कुतं इन्द्रं जोहवीमि ( ४६० )- एकसाथ बहुतसा यज्ञ प्राप्त करनेवाले, जिसका मुकाबला कोई भी कर नहीं सकता ऐसे इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१५ वज्री राये विश्वा सुपथा करत् ( ४६० )- वज्रधारी इन्द्र धन प्राप्तिके सब मार्गोंको सरल करता है ।

इस तरह इन्द्र संरक्षण करता है, इस विषयके उत्तम वचन विचार करनेके योग्य हैं । उनका विचार पाठक करें, और अपनेमें ऐसी संरक्षणकी शक्ति बढ़ावें ।

### धनवान् और धनदाता इन्द्र

इन्द्र स्वयं धनवान् है और वह धन दूसरोंको देकर उनको सहायता करनेवाला भी है । इस विषयमें निम्न वचन द्रष्टव्य हैं—

१ श्रुता-मघः ( १२५ )- प्रसिद्ध धनवान् ।

२ वसुः ( १३२ )- सबको बसानेवाला, धनवान् ।

३ राधानां-पतिः ( १६५ )- अनेक प्रकारके धनोंका स्वामी ।

४ पुरु-वसुः ( १४६ )- बहुतसा धन जिसके पास है ।

५ विभा-वसुः ( २१३ )- तेजस्वी धन रखनेवाला ।

६ प्रभु-वसुः ( ३७३ )- प्रभुत्व करनेवाले धन जिसके पास हैं ।

७ दिवा-वसुः ( ३४८ )- दिव्य धनोंको रखनेवाला ।

८ तुवि-नृम्णः ( ३१६ )- बहुतसे धनोंसे युक्त ।

९ त्वं एकः इत् वस्वः ईशीयः ( १२२ )- तू अकेला ही धनोंका स्वामी है ।

१० धन-सा ( २५१ )- धनोंका दान करनेवाला ।

११ धनस्य सातये इन्द्रं हवामहे ( २४९ )- धनके दानके लिए हम इन्द्रको बुलाते हैं ।

१२ पंच क्षितीनां द्युम्नं आ भर ( २६२ )- पांच प्रकारके जनोंके तेजस्वी धन हमें भरपूर दे ।

१३ नः सुवितं आ भर ( ३१६ )- हमें उत्तम धन दे ।

१४ धनानि संजितं ऊतये हुवेम ( ३२९ )- धनोंको जीतकर लानेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं ।

१५ मावते स्तुवते यत् वसु शिखसि, तत् न किः आमिनाति ( २९६ )- मेरे जैसे स्तुति करनेवालेको जो धन तू देता है, उसे कोई भी रोक नहीं सकता ।

१६ देवस्य ते भूयः दानं उपोपेत् पृच्यते ( ३०० )- तू इन्द्रदेव है, तेरे दिए हुए दान पास आनेपर बढ़ते हैं ।

१७ ज्यायः इन्द्रः, इषतः कनीयसः तत् आ भर ( ३०९ )- हे इन्द्र ! तू श्रेष्ठ है, अतः इच्छा करनेवाले और तेरी अपेक्षा छोटे मुझे वह धन भरपूर दे ।

१८ वसूनि ददः ( ३१४ )- अनेक प्रकारके धन दे ।

१९ त्वं मेघं ऋग्मिथं, वस्वः अर्णवं गीर्भेः अभिष्टुत ( ३७६ )- उस प्रशंसनीय, मंत्रोंसे स्तुतिके योग्य, धनोंके समुद्र इन्द्रकी स्तोत्रोंसे स्तुति करो ।

२० महिष्ठं इन्द्रं अभ्यर्चत ( ३७६ )- महान् इन्द्रकी पूजा करो ।

२१ मे पितुः वस्यान् ( २९२ )- मेरे पिताकी अपेक्षा तू धनवान् है ।

२२ अभुञ्जतः भ्रातुः वस्यान् ( २९२ )- धनोंका उपभोग न करनेवाले भाईकी अपेक्षा भी तू धनवान् है ।

२३ मे माता समा ( २९२ )- मेरी माँ तेरे समान है ।

२४ वसुत्वनाय राधसे छदयथः ( २९२ )- धनप्राप्ति और सिद्धिके लिए हमारा संरक्षण कर ।

२५ द्योताः तना तमना सह्याम ( ३१६ )- तेरे पाससे संरक्षण प्राप्त होनेके बाद हम धनसे सुसंपन्न हों ।

२६ ऊतये सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं आ भर ( १२९ )- हमारे संरक्षणके लिए, उपभोगके योग्य, शत्रुको पराजित करनेवाले, हमेशा विजय प्राप्त करानेवाले, श्रेष्ठ धन हमें भरपूर दे ।

२७ हे शतक्रतो ! भद्रं इषं ऊर्जनः आ भर ( १७३ )- हे संकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! कल्याण करनेवाले अन्न और सामर्थ्य हमें दे ।



२८ ऋभु-क्षणं रयिं ददातु ( १९९ )- कारीगरोंके संरक्षण करनेवाले धन हमें इन्द्र देवे ।

२९ यत् वीडौ, यत्स्थिरं, यत् पर्शानि पराभृतं तत् स्पर्हिं वसु आ भर ( २०७ )- जो धन मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, जो धन स्थिर रूपसे रखा हुआ है, जो धन कठिन स्थानपर भूमिमें गाढ़ा गया है, उस सुन्दर धनको हमें भरपूर दे ।

३० पुरु-वसुः मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण शिक्षति ( २३५ )- बहुतसे धनोंको पासमें रखनेवाला, इन्द्र अपने उपासकोंको अनेक प्रकारके धन देता है ।

३१ हे इन्द्र ! वसुन्तये एहि, चेरवे भागं विदाः, गविष्ठये चावृषस्व ( २४० )- हे इन्द्र ! धन देनेके लिए आ, सदाचारी मनुष्योंको धन दे, गायोंकी अपने पास रखनेकी इच्छावालेको गाय देकर बलवान् कर ।

३२ दाशुणे रत्नानि धत्तं ( ३०६ )- दानशीलके लिए रत्न दे, अर्थात् धन दे ।

३३ याः भुजः असुरेभ्यः आ भरः, अस्य स्तोतारं वर्धय, ये च त्वे वृक्तवर्हिषः ( २५४ )- जो उपभोगके योग्य धन हैं, उन्हें असुरोंके पाससे ले आ, उनकी सहायतासे उपासकोंको महान् कर, जो तेरे लिए आसन फैलाते हैं, उन्हें भी महान् कर ।

३४ अवमं वसु तव, मध्यमं त्वं पुष्यसि, परमस्य विश्वस्य सत्रा राजसि, त्वा गोषु न किः वृण्वते ( २७० )- निकृष्ट धन तेरा है, मध्यम धनका तू पोषण करता है, परम श्रेष्ठ धनोंपर भी तेरा ही अधिकार है, गाय देनेवाले तेरा कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता ।

३५ अस्मत् रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ )- हमारा दान कभी भी नष्ट न होवे ।

३६ चित्रं वृषणं रयिं दाः ( ३१७ )- विलक्षण और बल बढ़ानेवाले धन हमें दे ।

३७ ते दक्षिणं हस्तं वसूयवः जगृह्मा ( ३१७ )- धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम तेरे दायें हाथको पकड़ते हैं, ( तू उस हाथसे धन देता है ) ।

३८ त्वा गोनां गोपतिं विद्म ( ३१७ )- तू गायोंका स्वामी है, यह हम जानते हैं, इसलिए तू गाय दे ।

३९ अहं सदा याचन् आचुक्रुधं ( ३०७ )- मेरे हमेशा मांगते रहनेसे क्या तू गुस्सा हो गया है ?

४० कः ईशानं न याचिषत् ( ३०७ )- अपने स्वामीसे

कौन भला नहीं मांगता ? सब अपने स्वामीसे ही मांगते हैं, उसी प्रकार मैं मांगता हूँ, अतः क्रोध न करते हुए मुझे धन दे ।

४१ सुराधाः मघवा मघानि दाता ( ३३५ )- उत्तम धनसे युक्त इन्द्र धन देता है ।

४२ यत् त्वा आदातं राधः मे नास्ति, तत् नः उभया हस्त्या भर ( ३४५ )- तेरे दिए गए धन अब मेरे पास नहीं रहे, इसलिए दोनों हाथोंसे मुझे भरपूर धन दे ।

४३ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्यि ( ३४६ )- उत्तम वीर्यसे युक्त गायोंवाले धन हमें भरपूर दे ।

४४ विश्वचर्षणे सुदत्र ! नः द्युम्नं मंहय ( ३६६ )- हे सब लोगोंके हित करनेवाले, उत्तम दान देनेवाले इन्द्र ! हमें धन देकर महान् बना ।

४५ महित्वना राधांसि प्रचोदयते ( ३८६ )- हे इन्द्र ! तू अपने यशके अनुरूप ही धन देता है ।

४६ यः पुरा इदं वस्यः नः प्र आ निनाय, तं इन्द्रं ऊतये स्तुवे ( ४०० )- जो इन्द्र पहलेसे ही हमें धन देता आया है उस इन्द्रकी हम अपने संरक्षणके लिए स्तुति करते हैं ।

४७ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धनं दीयते ( ४१४ )- जब युद्ध शुरू होते हैं, उस समय शक्तिशाली वीरोंको धन प्राप्त होता है ।

४८ कं हनः ? कं वसौ दधः ? अस्मान् वसौ दधः ( ४१४ )- तू किसको मारता है ? किसको धन देता है ? यह सब तेरे ऊपर है, पर हमें धन दे ।

इन्द्र धन प्राप्त करता है और उन्हें अपने उपासकोंको देता है, उन धनोंको लेकर उपासक उत्तम स्थितिमें रहते हैं, धनका अर्थ है गाय, घोड़े, रथ, भूमि, सोना, रत्न और दूसरे भी पदार्थ जिनकी सहायतासे मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है । सौ, हजार, अयुत-दसहजार आदि शब्द भी मंत्रोंमें प्रयुक्त हुए हैं । जैसे—

४९ मघवा सहस्रेण शिक्षति ( २३५ )- इन्द्र हजारों दान देता है ।

५० वीडौ, स्थिरं, पर्शानि पराभृतं ( २०७ )- तिजोरीमें रखे, स्थिर और भूमियोंमें गड़े हुए ये तीन प्रकारके धन होते हैं, ऐसा कहा है ।

ये धन मोहर, रुपये इस प्रकार कुछ होंगे ऐसे मालूम पड़ता है । सौ, हजार, दसहजार इन संख्याओंमें गिने जाते हों, ऐसी कोई चीज होगी । यह विचारणीय है ।



यह धन ऐसा होना चाहिए जो तिजोरीमें रखा जा सके, बैंकमें स्थिर रूपमें रक्खा जा सके, और भूमिमें बर्तनमें बन्द करके गाड़ा जा सके। सोनेके मोहरके रूपमें ये धन होंगे ऐसा कुछ प्रतीत होता है।

आजकल सौ, हजार, बसहजार तकके कागजके नोट प्रयोगमें आते हैं, पर उस समय इस प्रकार कागजके नोटोंका प्रचलन नहीं था। रत्नोंका प्रयोग था पहले, पर उन्हें भी हजार, बसहजारोंकी संख्यामें देना सम्भव नहीं था, इसलिए सोने, चांदीकी ही मुद्रायें होंगी ऐसा प्रतीत होता है। पर यह विचारणीय है।

यदि मैं धनवान् हो जाऊं तो ?

यदि मैं धनवान् हो जाऊं तो मेरी प्रतिष्ठा बढेगी, यह विचार प्रत्येक मनुष्यका स्वाभाविक है। इस प्रकारका एक वाक्य निम्न मंत्रमें आया हुआ है—

१ अहं यत् वस्वः ईशीय, मे स्तोता गोषखा स्यात् ( १२२ )— यदि मैं धनका स्वामी हो जाऊं तो मेरी स्तुति करनेवाला गायका मित्र हो जाए। मैं धनवान् हो जाऊं तो मेरी स्तुति होती रहेगी, ऐसा यहां कहा है। धनवान् की सब जगह स्तुति होती है। इन्द्र धनवान् है, इसलिए उसकी सब लोग स्तुति करते हैं। उसी प्रकार जो धनवान् होगा, उसकी स्तुति सभी करते रहेंगे। क्योंकि स्तुतिसे प्रसन्न होकर वह धन देगा। यहां प्रयुक्त हुआ धन ' वसु ' गौबोंके रूपमें नहीं है, यह व्यवहारमें आने योग्य कोई दूसरा ही धन है, जो हजारोंकी संख्यामें दूसरोंको दिया जाता था।

२ स्पार्हं वसु आ भर ( १३४ )— सुन्दर वसु नामका धन हमें भरपूर दे।

३ सः नः वसूनि आ भर ( १९० )— वह इन्द्र हमें वसुनामक धन देवे।

४ राधः कृणुष्व ( १९४ )— हमें धन दे।

५ धुमन्तं चित्रं ग्रामं दक्षिणेन आ संगृभाय ( १६७ )— शब्द करनेवाले, लेने योग्य, विलक्षण धन दांये हाथसे संग्रह करके हमें दें।

इसमें " चित्रं, ग्रामं, धुमन्तं " ये तीन धनके विशेषण हैं। यहां उनका थोड़ा सा विचार करते हैं।

चित्रं— विलक्षण, चमकनेवाले, तेजस्वी।

ग्रामं— हाथमें लेने योग्य।

धु-मन्तं— शब्द करनेवाले, अन्न देनेवाले।

इन शब्दोंके विचारसे यह ज्ञात होता है कि वे धन चमकनेवाले अर्थात् सोने, चांदीके, हाथोंमें अनेक संख्यामें लेने योग्य और शब्द करनेवाले, आवाज करनेवाले होते होंगे। धातुके सिक्के अथवा विशिष्ट प्रकारके टुकड़े ही ये हो सकते हैं। ' आ संगृभाय ' यह शब्द यह बताता है, कि लोग इनका संग्रह करते थे। इससे, ये सिक्के छोटे छोटे टुकड़ोंके रूपमें थे, यह भी प्रतीत होता है।

६ नः सुगन्धा अश्वया रथया महोनां वरिवस्य ( १८६ )— हमें उत्तम गाय, उत्तम घोड़े और उत्तम रथोंसे समृद्ध कर। इसमें गाय, घोड़े और रथ भी संपत्ति हैं ऐसा कहा है, पर यह धन ' ग्रामं ' अनेक संख्याओंमें हाथमें ग्रहण करने योग्य, ' धु-मन्तं ' आवाज देनेवाले, और ' चित्रं ' चमकनेवाले नहीं हैं। इस लिए गाय, घोड़े और रथोंकी सम्पत्ति हजारोंकी संख्यामें दिए जानेवाले धनसे भिन्न है।

इस प्रकारका धन वैदिक कालमें उपयोगमें आता था। यह विषय और भी विचारणीय है।

रथ और घोड़े

इन्द्रके रथ थे और रथ चलानेके लिए उत्तम शिक्षित घोड़े भी उसके पास थे।

१ मन्द्रैः मयूर-रोमभिः हरिभिः आयाहि ( २४६ )— सुन्दर मोरके रंगके समान अयालवाले घोड़ोंसे हे इन्द्र ! तू यहां आ।

२ हरीणां स्थाता ( १९३ )— घोड़ोंके रथमें बैठनेवाला इन्द्र।

३ वृषणा हरी उप युयुजे-वृत्रहा आ जगाम ( ३०८ )— बलवान् दोनों घोड़े उसने रथमें जोड़ लिए हैं, और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र आ गया है।

४ ब्रह्मयुजः केशिनः हिरण्यये रथे युक्ताः आ सहस्रं शतं हरयः त्वा आ वहन्तु ( २४५ )— कहने मात्रसे ही रथमें जुड़ जानेवाले सुन्दर अयालवाले, सुनहरे रथमें जोड़े जानेवाले हजारों और सैंकड़ों घोड़े इन्द्रको जहां जाना होता है, वहां पहुंचाते हैं। इस वचनमें इन्द्रके घोड़े कैसे सुशिक्षित थे, यह बताया गया है।

ब्रह्म-युजः— सूचनाके शब्द सुनकर ही उठकर खड़े हो जानेवाले, मंत्र बोलते ही रथमें जुड़ जानेवाले। यह उसम



सुशिक्षित घोड़ोंका लक्षण है। इशारा होते ही खुद-ब-खुद जागकर खड़े हो जानेवाले। अत्यन्त सुशिक्षित घोड़े ही ऐसा कर सकते हैं।

केशिनः— उत्तम अयाल ( गर्दन के बाल ) वाले।

हिरण्यये रथे युक्ताः— सोनेके रथमें जोड़े जानेवाले।

सहस्रं शतं हरयः— हजारों अथवा सौ घोड़े।

एक रथमें हजार अथवा सौ घोड़ोंका जोड़ा जाना सम्भव नहीं। इन्द्रके साथ दूसरे अधिकारी भी होंगे, ये घोड़े उन्हींके होंगे। बड़े लोगोंके रथके साथ अनेक घुडसवार होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रके साथ भी होंगे। अथवा आलंकारिक भाषामें यह “ किरणों ” का वर्णन होगा क्योंकि अनेक स्थलपर “ हरी ” दो घोड़ोंके जोड़े जानेका वर्णन है। दो घोड़ोंका रथमें जोड़ा जाना सम्भव है। अतः हजार और सौ यह वर्णन आलंकारिक होना चाहिए अथवा किरणोंका वाचक होना चाहिए।

### गाय

इन्द्रका सम्बन्ध जैसा घोड़ोंके साथ है, वैसा ही गायोंके साथ भी है। जैसे—

१ यज्ञस्य मही रप्सुदा ( ११७ )— यज्ञके लिए बहुतसा दूध देनेवाली गायकी आवश्यकता होती है, क्योंकि यज्ञमें इन्द्रको बुलाया जाता है।

२ उभा कर्णा हिरण्यया ( ११७ )— गायके दोनों कान सोनेके चिन्हसे सुशोभित होते हैं।

३ नः रेवतीः तुवि-वाजाः सन्तु ( १५३ )— हमारी गायें बहुत दूध देनेवाली हों।

४ श्रवसः च कामः गोमति व्रजे नः आ भज ( ३१८ )— बल अथवा अन्नकी इच्छा करनेवाला तू हमें गायोंके गोष्ठको दे। गायोंके गोष्ठमें हम रहें।

५ सबर्दुघां सुदुघां उरुधारां इषं धेनुं इन्द्रं आहुवे ( २९५ )— दूध देनेवाली, सरलतासे दुहनेवाली, बहुत दूध देनेवाली, अन्नरूपी गायके लिए इन्द्रकी मैं प्रार्थना करता हूँ।

६ नः गव्यूर्ति घृतैः आ उक्षतं ( २२० )— हमारे गायोंके स्थानोंपर घीकी वर्षा हो, हमें घी बहुत मिले।

७ धेनुवः गावः वत्सं ( २०१ )— बुहार गायें अपने बछड़ोंके पास जाती हैं।

यह गायोंका वर्णन इस ऐन्द्र काण्डमें है। बहुतसी गायें हमारे पास रहें, और दूध व घी खूब मिले, यह तात्पर्य है।

### इन्द्रकी माता

१ इन्द्रं त्वा देवी जनित्री अजीजनत् ( ३७९ )— तुझ इन्द्रको सबको उत्पन्न करनेवाली द्यावापृथिवी इन देवियोंने उत्पन्न किया। इस इन्द्रकी दो मातायें हैं।

२ वन्वानासः ईख्यन्तीः अचस्युवः जातं तं उपासते ( १७५ )— स्तुतिके योग्य, गति करनेवाली, निरन्तर कार्य करनेवाली उस माताका यह बलशाली पुत्र उत्पन्न हुआ, उस पुत्रकी वह उपासना करने लगी, उसके पास रहकर उसकी सेवा करने लगी।

### एक स्थानपर बैठकर स्तुति करना

एक स्थानपर बैठकर, सब संगठित होकर इन्द्र परमेश्वर की उपासना आर्य लोग करते थे।

१ तत् सचा गाय ( ११५ )— उन स्तोत्रोंको एक स्थानपर बैठकर गावो।

२ आ इत, निषीदत, इन्द्रं अभिप्र गायत ( १६४ )— आओ, बैठो और, सब मिलकर इन्द्रके स्तोत्र गाओ।

३ इन्द्रं इत् सचा स्तोत, मुहुः शंसत ( २४२ )— इन्द्रकी एक जगह बैठकर स्तुति करो और उसकी बारबार स्तुति करो।

४ यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि ( २५९ )— यज्ञमें एक जगह मिलकर स्तोत्र गावें और तेज प्राप्त करें।

५ सत्राच्या धिया मघवान् आगमत् ( २९० )— एकत्र बैठकर गाये गये स्तोत्रोंको मुननेके लिए इन्द्र आता है।

६ विश्वा ओजसा दिवः पतिं समेत ( ३७२ )— अपने बलसे द्युलोकके स्वामी इन्द्रकी एक जगह इकट्ठे होकर बैठकर स्तुति करो।

७ वयो यथा, त्वा सीदन्तः अभिनोनुमः ( ४०७ )— पक्षी जैसे एक जगह इकट्ठे होते हैं, उसी प्रकार हम भी एक जगह इकट्ठे होकर तुझे नमस्कार करते हैं।

८ सधमाद्ये आपि नः वृधे भव ( २३९ )— यज्ञ स्थानमें एकत्र बैठकर तू इन्द्र ! हमारा मित्र हो, और हमारी उन्नतिमें सहायक हो।

जहां यज्ञ होता था, वहां सब आर्ब भाते थे, एक जगह



इकट्ठे होकर बैठते थे और सब मिलकर इन्द्रकी प्रार्थना, स्तुति और उपासना करते थे और एक जगह बैठकर प्रार्थना करनेके कारण उनमें एकता थी। एक जगह इकट्ठे होनेका यह लाभ है।

### ज्ञानी कैसे होता है ?

१ कः ब्रह्मा तं इन्द्रं सपर्यति ( १४२ )- कौन ज्ञानी उस इन्द्रकी उपासना करता है ? एक स्थानपर बैठकर उसकी प्रार्थना करनेसे ज्ञानकी वृद्धि और सामर्थ्य प्राप्त होता है।

२ उपद्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रो अजायत ( १४३ )- पर्वतकी उत्पत्तिका और नदीके संगम पर बैठकर अपना मन उस परमात्मामें लगानेसे महाज्ञानी बनता है।

ज्ञानी बननेके लिए ऐसी तपस्या करनी चाहिए। पर्वतपर और नदीके संगमपर मनकी एकाग्रताके लिए अनुकूल वातावरण मिलता है। घरमें भी यदि एकान्त स्थान मिले और मन एकाग्र हो इसके लिए आवश्यक तैयारी करके साधना प्रारम्भ होनेपर मन एकाग्र होनेसे जो लाभ होने सम्भव हैं, वे लाभ हो सकते हैं। थोड़े अधिक कष्ट होंगे, बस इतना ही है, पर लाभ होगा अवश्य।

### इन्द्रका रथ और वज्र

१ अनवः (ऋभवः) ते अश्वाय रथं ततश्चुः, त्वष्टा द्युमन्तं वज्रं ( ४४० )- मनुष्य कारीगर ऋभुओंने इन्द्रके घोड़ोंके लिए रथ बनाया, और देवोंके कारीगर त्वष्टाने इन्द्रके लिए तेजस्वी वज्र तैयार किया।

उत्तमसे उत्तम रथ और वज्र लेकर इन्द्र उत्तम प्रकारसे तैयार हो जाता था, और ऋभु रथ इत्यादि बनाते थे और त्वष्टा फौलादके वज्र बनाकर इन्द्रको देता था। युद्ध करनेवाले वीरोंको उत्तमसे उत्तम शस्त्रास्त्र बनाना आवश्यक है, नहीं तो युद्धमें विजय मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इन्द्रके पास ऋभु, त्वष्टा आदि उत्तम कारीगर हैं, और युद्धके लिए आवश्यक शस्त्रोंका उत्तम रीतिसे निर्माण करते हैं। इस कारण इन्द्र सदा ही विजयी होता है।

### इन्द्र जखम ठीक करता है

१ यः अभिथिषः क्रते चित् जन्मभ्यः आतुदः पुरा संधि संधाता, मघवा पुरु-वसुः विहृतं पुनः निष्कर्ता

१६ ( साम. हिन्दी )

( २४४ )- यह इन्द्र जोड़नेका कोई साधन न होते हुए भी किसी संधिके टूट जानेपर शीघ्र जोड़ देता है, और धनवान्, बहुत ऐश्वर्यवान् इन्द्र टूटे हुए भागोंको उत्तम रीतिसे फिर जोड़ देता है, और घावोंको ठीक करता है।

शस्त्रास्त्रोंसे युद्ध करनेवाले वीरोंको इसका ज्ञान आवश्यक है। युद्धमें शस्त्रोंके जखम तो होने ही हैं, पर उनको शीघ्र ही ठीक करनेका ज्ञान होना आवश्यक है। इन्द्र इस विद्यामें कुशल है, इसे उपरोक्त वचन स्पष्ट करता है। अन्य देवोंमें अश्विनीकुमार इस कार्यमें निपुण हैं, पर इन्द्र वीर होते हुए भी घावोंको ठीक करनेमें वह कुशल है। यह यहाँ द्रष्टव्य है।

### दुःख दूर करना

इन्द्र दूसरोंके दुःख दूर करता है। इस विषयमें निम्न मंत्र हैं—

१ दुष्पुण्यं परासुव ( १४१ )- बुरे स्वप्नोंको और उनके कारणोंको दूर कर। दुःख देनेवाले स्वप्न आवें ही न ऐसा कर।

२ निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ ( ३९६ )- दुःखोंको दूर कैसे किया जाए यह तू जानता है।

३ अहः अहः शुन्ध्युः परिपदां इव ( ३९६ )- प्रतिदिन अपनी शुद्धता करनेवाला अपनी अनिष्ट अवस्था दूर करता है। उसी प्रकार रोज साफ रहनेसे विपत्तियां दूर होती हैं।

४ अमीवां अप, दुर्मतिं अप, नः अंहसः अप युयोतन ( ३९७ )- रोग दूर करो, दुर्बुद्धि दूर करो और हमसे होनेवाले पाप दूर करो। दुष्ट बुद्धि दूर होनेका अर्थ है, पाप दूर होना और पाप दूर होनेका मतलब है रोगोंका दूर होना।

५ यं द्विषः अति नयति, तं मर्त्यं अंहः न, दुरितं न अष्ट ( ४२६ )- जिसे शत्रुसे दूर ले जाया जाता है, उस मनुष्यको पाप नहीं लगता और दुष्ट भाव भी उसके पास नहीं आते।

पापके कारण दुःख उत्पन्न होते हैं, इसलिए अपनेमें पापकी प्रवृत्ति न हो, अतः सावधान रहना चाहिए। अपना शरीर, मन, इन्द्रियें शुद्ध रहें, पापकी प्रवृत्ति दूर हो। इन सबके होनेसे हमसे दुःख स्वयं ही दूर हो जायेंगे, और हम सुखी होंगे। पापसे दूर होनेका यह प्रयत्न प्रत्येकको करना चाहिए।



### विरुद्ध आचरण न करना

हम विरुद्ध आचरण न करें, इस विषयमें आगेके मंत्र देखें—

१ न कि इनीमासि ( १७६ )- हम कोई हानिकारक काम नहीं करते ।

२ न कि आयोपयामसि ( १७६ )- हम कोई विरुद्ध कार्य नहीं करते ।

३ मंत्रश्रुत्यं चरामसि ( १७६ )- मंत्रोंमें जो उपदेश किया है । उसीका हम आचरण करते हैं ।

४ हे आथर्वण ! दोषः आगात् सवितारं देवं स्तुहि ( १७७ )- हे अथर्ववेदके अध्ययन करनेवाले । यदि तेरे आचरणमें कोई दोष हो गया हो तो जगत्के उत्पन्न करनेवाले देवकी स्तुति कर ।

“ सविता वै सर्वस्य प्रसविता ” सविता यह सब जगत्का उत्पन्न करनेवाला देव है । उसकी स्तुतिसे सब दोष दूर होते हैं ।

५ उग्रं वचः अपावधीः ( ३५३ )- क्रोधयुक्त बातें न कर, इससे बहुत कष्ट होते हैं ।

६ अव्रतः न हिनोति, कामं रयिं न स्पृशते ( ४४१ )- शुद्ध आचरण न करनेवाला मनुष्य उस उच्च स्थानको नहीं पा सकता । जितना चाहिए उतना धन नहीं पासकता ।

७ विद्वान् मित्रः नः ऋजुनीती नयति ( २१८ )- ज्ञानी मित्र हमें सरल मार्गसे ले जाता है ।

८ यं अद्रुहः पान्ति सः मर्त्यः सुनीथः घ ( २०६ )- जिसकी द्रोह न करनेवाले देव रक्षा करते हैं, वह मनुष्य सुनीतिसे चलनेवाला होता है । उत्तम मार्गसे चलनेवाले मनुष्यको देवोंके संरक्षण मिलते हैं, इसलिए सदाचारसे बर्ताव करें, यह वेदमें कहा है ।

९ वि-व्रतानां धर्तारं वरुणं वपा गिरा वन्देत ( २८८ )- विशेष शुद्ध नियमोंके पालन करनेवाले वरुणकी स्तुतिपूर्वक वन्दना करें, और उसके समान स्वयं भी उत्तम नियमोंका पालन करें ।

### पुष्टिकारक अन्न खावें

१ नः इषं पीवरीं कृणुहि ( ४५५ )- हमारे अन्न अधिक पोषण करनेवाले कर, और ऐसे अन्न तू खा ।

### भाईबन्ध कोई नहीं

१ त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः, अ-ना, सनात् अनापिः, युधा इत् आपित्वं इच्छसे ( ३९९ )- हे इन्द्र ! तू जन्मसे

ही शत्रुरहित है, तेरे ऊपर शासन करनेवाला कोई नहीं है, तेरा भाई कोई नहीं, युद्धसे तू भाईपनेकी इच्छा करता है ।

इन्द्रका कोई भाई नहीं, इस कारण भाईबन्धका झगडा उसके लिए कुछ है ही नहीं । इन्द्र पर शासन करनेवाला भी कोई दूसरा नहीं है, क्योंकि यह ही सब पर अधिकार करता है । इसको किसी मित्रकी भी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह इतना सामर्थ्यवान् है, कि यह अकेला ही सारे शत्रुओंका नाश कर सकता है । यह युद्ध द्वारा सब शत्रुओंको दूर करता है, इस कारण जिसके शत्रु दूर होते हैं, वह इससे प्रेम करता है । इस प्रकार इसके चाहनेवाले मित्र बहुत हैं, पर वे इन्द्रकी युद्ध कुशलताके कारण ही मिले हैं ।

### घर कैसे हों

१ त्रिधातु त्रिवरुथं स्वस्तये छर्दिः दिव्युं शरणं मय्यं [ देहि ] ( २६६ )- तीन मंजिल, तीन छप्परवाले, रहनेवालोंका कल्याण करनेवाले, आश्रयके योग्य और उत्तम प्रकाशयुक्त घर मुझे दे ।

घर तीन मंजिलोंवाले हों, तीन भागवाले हों, उसमें बहुत प्रकाश आवे रहनेवालोंका कल्याण हो, उसमें लोगोंको रहनेकी इच्छा हो, ऐसे सुखकारक घर हों ।

### दीर्घायु हों

१ वातः नः हृदे शंभुः मयोभुः भेषजं आवातु, नः आयूंषि प्रतारिषत् ( १८४ )- वायु हमारे घरमें हृदयको सुख और आरोग्य देनेवाले औषध अपने साथ लावे, इससे हमारी आयु लम्बी हो । घरमें शुद्ध वायु आवे, उसके साथ आरोग्य देनेवाले, शुभ गुण हमारे घरमें मनुष्योंको प्राप्त हों, और इस कारण हम सब दीर्घायु हों ।

२ नः तुचे तुनाय जीवसे द्राघीयः आयुः सु कृणोतन ( ३९५ )- हमारे पुत्र पौत्रोंकी दीर्घजीवन उत्तम रीतिसे प्राप्त हो ।

३ सुवीराः शतहिमाः मदेम ( ४५४ )- उत्तम वीर सन्तान हमारे हों, और वे सब सौ वर्ष तक आनन्दसे रहें ।

### यश प्राप्त हो

१ त्वादातं इत् यशः ( १९५ )- तेरी सहायतासे यश मिले ।

२ शवसः पातिः यशाः असि ( २४८ )- तू बलका स्वामी है, ओर यशस्वी है ।

इसलिए हम यशस्वी हों, ऐसा कर ।



## भूमि घूमती है

भूमि घूमती है, इस विषयका आगेके मंत्रभागमें उल्लेख है—  
१ भूमिं व्यवर्तयत् ( १२१ )- उसने भूमिको फिरने-  
वाली बनाया ।

## चन्द्रको सूर्यकी किरणें प्रकाशित करती हैं

१ गोः चन्द्रमसः गृहे त्वष्टुः अपीच्यं नाम  
अमन्वत ( १४७ )- प्रकाशित होनेवाले, चन्द्रके मण्डलमें  
सूर्यकी गुप्त किरणें विलीन होकर उसे प्रकाशित करती हैं,  
ऐसा माना जाता है ।

## विद्यादेवी

१ पावका वाजिनीवती धियावसुः सरस्वती  
( १८९ )- पवित्र करनेवाली, अन्न और बल देनेवाली, बुद्धि  
बढ़ाकर धन देनेवाली, सरस्वतीदेवी है ।

## सौभाग्य प्राप्त हो

१ अद्य नः प्रजावत् सौभगं सावीः ( १४१ )-  
आज हमें उत्तम सन्तानोंके साथ सौभाग्य दे ।

२ नः मृळयासि ( १७३ )- हमें तू सुखी करता है ।

३ स्तोत्रभ्यः मृळय ( २१३ )- स्तुति करनेवालोंको  
सुखी कर ।

४ इन्द्रापूर्वणा वयं स्वस्तये सख्याय वाजसातये  
हुवेम ( २०२ )- हम इन्द्र और पूषाको अपने कल्याणके  
लिए, अपने साथ मित्रताके लिए, अन्न और बल बढ़ानेके  
लिए बुलाते हैं ।

## सोमरस

इन्द्रको यज्ञमें बुलाया जाता है, वह आता है और आसन  
पर बैठता है, उसके बाद उसे सोमरस दिया जाता है । उन  
सोमरसोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ अन्धः ( १२४ )- सोमरस यह अन्न है ।

२ द्युक्षितमः ( ११६ )- सोमरस तेजस्वी है, वह  
चमकता है ।

३ इन्दुः ( १४५ )- चन्द्रके समान वह चमकता है ।

४ तेन नूनं मदः ( ११६ )- उससे उत्साह और आनन्द  
मिलता है ।

५ यवा शिरः ( १४५ )- जौका आटा और दूध  
मिलाकर उसे पिया जाता है ।

\*

६ सोमः विश्वासां सुक्षितीनां चेतुः ( १५४ )-  
सोम सब उत्तम मनुष्योंका उत्साह बढ़ानेवाला है ।

७ नि पूतः ( १५९ )- सोमरस छानकर शुद्ध किया  
जाता है ।

८ दध्याशिरः सोमामः ( २९३ )- सोमरसमें दही  
मिलाकर वह पिया जाता है ।

९ आशीर्वान् ममत्तु ( ३५० )- दूध आदि जिसमें  
मिलाया जाता है, ऐसा वह सोमरस हमारा उत्साह बढ़ाता है ।

१० रायन्तमः द्युक्ष्वन्तमः सोमः ( ३५१ )-  
शोभावाला और तेजस्वी सोमरस है ।

११ पुनानः हरिण्या रुचा विश्वा द्वेषांसि तरति  
( ४६३ )- सोम शुद्ध होकर अपने हरे रंगके तेजसे सभी  
शत्रुओंको मारता है । उसके पीनेसे इतना बल अंगमें बढ़ता है ।

१२ धारा रोचते । पुनानः हरिः अरुषः ( ४६३ )-  
इस सोमरसकी धारा चमकती है । छाननेके बाद यह  
सोमरस चमकता है ।

१३ रसिनः गोमतः सुतस्य पिब ( २३९ )- गायके  
दूधसे मिश्रित सोमको पी ।

१४ सोमं सुनोत । पक्तीः पचत ( २८५ )- सोमरस  
निकालो और पुरोडाशको पकाओ ।

१५ धानावन्तं करम्भिणं अपूपवन्तं उक्थिनं नः  
प्रातः जुषस्व ( २१० )- धानकी खीलसे मिश्रित, पुरोडाशसे  
तथा स्तोत्रोंसे युक्त हमारे इस सोमरसको सबेरे पी । ( धाना-  
वन्तं ) धानको भूँजकर उसका आटा सोमरसमें मिलाते हैं,  
( करम्भ ) सत्तू मिले हुए दहीको करम्भ कहते हैं, ( अपूप )  
पुए और धानके खील सोमके साथ खाये जाते हैं । यह इन्द्रका  
सबेरेका नाश्ता है ।

१६ अश्मया घृता अंशुना क्षपमाणः, यथा आद्वन्,  
इत्थं उ ( ३०५ )- पत्थरोंसे सोम पीसनेके कारण यजमान  
थक जानेपर भी बहुतसा अन्न खानेवाले राजाके समान,  
सामर्थ्यवान् ही होता है, निर्बल नहीं होता ।

सोमलता यह एक वनस्पति हिमालयके मौजवान् शिखर  
पर उगती थी । १०-१२ हजार फीटकी ऊँचाई पर मिलने-  
वाला सोम अत्युत्तम माना जाता था, यज्ञमें यह सोमलता  
लाई जाती थी, अथवा गांववालोंसे खरीदी जाती थी । यह  
लता पत्थरोंसे कूटी जाती थी, ओर हाथकी अंगुलियोंसे  
दबाकर उसका रस निकाला जाता था, उसके बाद उसे  
बारीक छलनीसे छान कर उसमें पानी, दूध, दही मिलाया  
जाता था, शहब भी उसमें मिलाया जाता था, तब वह पीनेके



लायक होता था । केवल रस तीखा होता था, उममें पानी, दही अथवा दूध मिलाकर थोडा शहद मिलानेसे वह पीनेके योग्य होता था ।

यह रस अन्धेरेमें चमकता था । इसके साथ पुआ, बडे, खिलें और पुरोडाश आदि खानेके लिए दिया जाता था । इसको पीनेके बाद शूर पुरुषोंमें महान् उत्साह उत्पन्न होता था, और उस उत्साहमें वीर पुरुष महान् शौर्यके काम करते थे ।

इन्द्र यह रस पेट भरकर पीता था, दूसरे लोग भी इसे पीते थे । आनन्द बढ़ानेवाला, उत्साह बढ़ानेवाला यह पेय होता था । यज्ञमें यह पेय तैय्यार किया जाता था । हवनके करनेके बाद यह पिया जाता था । यह सोमरसका वर्णन है ।

### इन्द्र स्तुत्य है

इन्द्र बहुत पराक्रमी है, इसलिए उसकी चारों ओरसे स्तुति की जाती है । देखिए—

१ पुरु-हूतः ( ११५ )- बहुत लोग जिसकी स्तुति करते हैं ।

२ गिर्वणः ( १६५ )- प्रशंसनीय ।

३ त्वदन्यः गिरः न हि सद्यत् ( ३७३ )- तुझ इन्द्रके सिवाय और किसीकी स्तुति नहीं होती ।

४ ये त्वा आरभ्य चरामसि, ते इमे वयं ते ( ३७३ )- जो तुझसे स्तुति करना प्रारम्भ करते हैं, वे ये हम तेरे ही हैं, तेरे भक्त हैं ।

५ महान् असि ( ३४६ )- इन्द्र ! तू महान् है ।

६ विश्वा गिरः समुद्र-व्यचसं, रथीनां रथीतमं, वाजानां पतिं, सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् ( ३४३ )- सब स्तुतियां, समुद्रके समान विस्तीर्ण, रथियोंमें मुख्य, बलोंके स्वामी, सज्जनोंके पालनकर्ता इन्द्रके यशको बढ़ाती हैं ।

७ वाजानां वाजपतिः, हरिवान् इन्द्रः उक्थेभिः मन्दिष्ट ( २२६ )- बलोंके और अन्नोंके स्वामी, घोड़ोंको रखनेवाला इन्द्र स्तोत्रोंसे प्रशंसित होता है ।

८ तव इदं सख्यं अस्तुतं ( २२९ )- तेरी यह मित्रता अद्भुत है ।

९ त्वदन्यः मर्दिता न अस्ति ( २४७ )- तेरे सिवाय स्तुतिके योग्य और कोई भी नहीं है ।

१० ऋची-षमः ( १६९ )- वेदमंत्रोंसे इस इन्द्रकी स्तुति की जाती है ।

### इन्द्रकी स्तुति

१ बोधन्मना शक्रः आशिषं शृणोतु ( १४० )- हमारे मनकी इच्छा जाननेवाला सामर्थ्यवान् इन्द्र हमारी स्तुति सुने ।

२ चर्षणीनां सम्राजं, गीर्भिः नव्यं, नृपाहं नरं मंहिष्ठं इन्द्रं प्रस्तोत ( १४४ )- मनुष्योंके सम्राट्, स्तोत्रोंसे स्तुति करने योग्य, शत्रुका पराभव करनेवाले, नेता महान् इन्द्रकी स्तुति करो ।

३ ऊतये सुरूप-कृत्नुं द्यवि द्यवि जुहमसि ( १६० )- हमारे संरक्षणके लिए, उत्तम रूप करनेवाले इन्द्रको हम प्रतिदिन बुलाते हैं ।

४ इन्द्रं गिरा अभि प्र अर्च ( १६८ )- इन्द्रकी स्तुति करो ।

५ इन्द्रं वाणी अनूपत ( १९८ )- इन्द्रकी हमारी वाणी स्तुति करती है ।

६ ते गिरः असृग्रं, वृषभं पतिं त्वा प्रति उदहासत् ( २०५ )- तेरी स्तुति हमने की, वह बलवान् स्वामी तुझ इन्द्रको पहुँच गई है ।

७ महे प्रचेतसे देवाय कदु वचः शस्यते, तत् इत् अस्य वर्धनम् ( २२४ )- महान् ज्ञानी इन्द्रकी साधारण स्तुति भी उसके महत्त्वका वर्णन करती है ।

८ यथा विदे सु-राधसं इन्द्रं अभि अर्च ( २३५ )- जैसा जानते हो, वैसा ही इन्द्रकी आराधना करो ।

९ अन्यत् मा चित् विशंसत, मा रिपण्यत, वृषणं इत् स्तोत ( २४२ )- दूसरा कुछ न करो, बेकार प्रयत्न मत करो, बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो ।

१० इमा गिरः त्वा वर्धन्तु ( २५० )- यह स्तुति तेरा प्रभाव बढ़ाती है ।

११ पावकवर्णाः शुचयः विपादिचतः स्तोमैः अभ्यनूपत ( २५० )- अग्निके समान तेजस्वी शुद्ध ज्ञानी स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

१२ बृहते ब्रह्म अर्चत ( २५७ )- महान् इन्द्रके लिए स्तोत्र कहो ।

१३ इन्द्रं नः ब्रह्माणि उप भूषत ( २६७ )- इन्द्रकी हमारे स्तोत्र अलंकृत करते हैं ।

१४ गायत्रिणः त्वा गायन्ति, अर्किणः अर्कं अर्चन्ति, ब्रह्माणः त्वा उद्येमिरे ( ३४२ )- गायन करनेवाले मनुष्य तेरे स्तोत्र गाते हैं, उपासक तेरी उपासना



करते हैं, और ब्राह्मण तुझ इन्द्रका यह सबसे श्रेष्ठ है, ऐसा वर्णन करते हैं ।

१५ शुद्धेन साम्ना शुद्धैः उक्थैः, शुद्धं इन्द्रं स्त्वाम् ( ३५० )- शुद्ध सामगानसे, शुद्ध स्तोत्रोंसे शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

१६ अप्रहणं शवसः पतिं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसं इन्द्रं गृणीषे ( ३५७ )- धार्मिकोंका संरक्षण करनेवाले, बलके स्वामी, सब शत्रुओंका नाश करनेवाले, नेता, सामर्थ्यवान्, सर्वज्ञ इन्द्रकी स्तुति करो ।

१७ विश्वा ओजसा दिवः पतिं समेत ( ३७२ )- सब सामर्थ्यसे द्युलोकके पालक इन्द्रकी एक स्थानपर बैठकर उपासना करो ।

१८ यः एक इत् जनानां अतिथिः भूः ( ३७२ )- जो अकेला ही इन्द्र अतिथिके समान लोगोंका पूज्य है ।

१९ बृहतीः गिरः चर्षणी-धृतं इन्द्रं अभ्यनूपत ( ३७४ )- बहुत स्तुतियां मनुष्योंके पूज्य इन्द्रकी स्तुति करती हैं ।

२० अवसे इन्द्रं सुवृत्तिभिः मंहये ( ३७७ )- अपने संरक्षणके लिए इन्द्रके महत्त्वको उत्तम वचनोंसे बढावो ।

२१ शतं आववृत्याम् ( ३७७ )- इन्द्रकी स्तुति सैकड़ों समय करो ।

इस प्रकार इन्द्रकी स्तुति की जाए, यह इस वर्णनका उद्देश्य है । इन्द्रके गुण गानेवाले, सुननेवाले और दूसरे लोग जो सभामें हैं, उन सबका लाभ इस स्तुतिके श्रवणसे होता है । जैसे—

“ वज्रधारी, शूरवीर, पराजित न होनेवाला, हमेशा विजयी, सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाला, युद्धमें किसीके आगे न झुकनेवाला इन्द्र है । ”

यही इन्द्रकी स्तुति है । बारबार यह कहा गया है । बार-बार सुननेसे अपने मनपर उसका परिणाम क्या होगा इसका विचार पाठक करें । इस स्तुतिकी करनेवालेमें और सुननेवालेमें, मेरे अन्दर ये गुण आवें, ऐसा भाव उत्पन्न होता है, और यदि वह यत्न करे तो कुछ दिनोंके अनुष्ठानसे उसमें ये गुण आ जायेंगे और तब वह शूर बन सकेगा । स्तुतिसे यह लाभ होता है देवोंके गुण मुझमें आवें ऐसे विचार आनेका मतलब है कि उन्नति प्रारम्भ हो गई । उसके आगे उन गुणोंको अपने अन्दर लानेका यत्न करना चाहिए । ऐसा जो यत्न करेगा वह श्रेष्ठ होगा इसमें कोई शंका ही नहीं है ।

## उपमा

वेदोंमें उपमायें देकर विषय समझाया जाता है, वे उपमायें ऐन्द्र-काण्डमें इस प्रकार हैं—

१ गवे शं न ( ११५ )- गायको जैसे घास सन्तोष देते हैं, उसी प्रकार ये स्तोत्र ( शाकिने इन्द्राय शं ) शक्तिमान् इन्द्रको सन्तोष देते हैं ।

२ पुष्टावन्तः यथा पशुं ( १३६ )- जाल हाथमें लिए शिकारी जैसे पशुको खोजते हैं, उसी प्रकार हम ( त्वा विचक्षते ) तुझ इन्द्रको खोजते हैं ।

३ सिन्धवः समुद्राय इव ( १३७ )- नदियां जैसे समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार ( विश्वा कृष्टयः विशः अस्य मन्यवे सं नमन्त ) सब प्रजायें इस इन्द्रके उत्साहके आगे झुकती हैं ।

४ गावः धेनवः वत्सं न ( १४६ ) जैसे दुधार गाय बछड़ेके पास जाती हैं, उसी तरह हमारी ( इमाः गिरः त्वा अभि प्रनोनुवः ) ये स्तुतियां तुझ इन्द्रके पास जाती हैं ।

५ सुदुघां गोदुहे इव ( १६० )- उत्तम दूध देनेवाली गायको जिस प्रकार दूध-दुहनेके समय बुलाते हैं, उस तरह ( ऊतये सुरूपकृत्नुं द्यावि द्यावि जुहमसि ) अपने संरक्षणके लिए उत्तम रूप करनेवाले इन्द्रको रोज बुलाते हैं ।

६ द्यौः न ( १६६ )- जिस प्रकार द्युलोक विस्तीर्ण है, उस प्रकार ( शवः प्रथिना ) इस इन्द्रका बल विस्तृत है ।

७ कपोतः गर्भधिं इव ( १८३ )- जिस प्रकार कबूतर कबूतरीके पास जाता है, उसी प्रकार ( अयं ते ) यह तेरे पास आता है ।

८ सिन्धवः समुद्रं न ( १९७ )- जिस प्रकार नदियां समुद्रको प्राप्त होती हैं, उस प्रकार ( इन्द्रवः त्वा आवि-शन्तु ) ये सोमरस तुझे प्राप्त होते हैं ।

९ ऋभुं ऋभुक्षणं रयिं न ( १९९ )- कारीगरको जिस प्रकार पोषण करनेवाले अन्न मिलते हैं, उसी प्रकार ( वाजी वाजिनं ददातु नः ) बलवान् इन्द्र हमें धन देवे ।

१० वाजयन्तः कृविं यथा ( २१४ )- अन्न उत्पन्न करनेवाले जिस प्रकार कुंअके पानीसे खेतको सींचते हैं, उसी प्रकार ( मंहिष्ठं इन्दुभिः सिन्ध ) महान् इन्द्रको सोमरसोंसे सींचो ।

११ युवजानिः महान् इव ( २२७ )- तरुण स्त्रीका पति जिस प्रकार स्त्रीके पास जाता है, उसी प्रकार ( सुतं



उप याहि ) इस सोमके पास तू आ । इसमें समान मनके आकर्षणका वर्णन है ।

१२ सुतं वाताप्याय श्मशा ( २२८ )- सोमरसमें पानी मिलानेके लिए लोग जिस प्रकार पानीके नहरोंके पास जाते हैं, उसी तरह ( दीर्घं सुतं कदा अवारुध्यात् ) इस महान् यज्ञमें तुझे लानेके लिए तेरे पास कब आये ?

१३ अदुग्धाः धेनवः न ( २३३ )- जिस तरह लोग न दुही गायके पास जाते हैं, उसी तरह ( अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं स्वर्दशं त्वा अभिनोनुमः ) इस स्थावर व जंगम जगतके स्वामी और आत्मज्ञानी हम तुझे नम्र होकर कब मिलें ?

१४ स्वसरेषु धेनवः वत्सं न ( २३६ )- गौशालामें दुधार गाय जिस तरह अपने बछड़ेके पास जाती है, उसी प्रकार ( दसं ऋतीपहं इन्द्रं गीर्भिः अभि नवामहे ) सुन्दर और शत्रुको हरानेवाले इन्द्रके पास स्तुति करते हुए जाते हैं ।

१५ सुद्रुवं नेमि त्वष्टा इव ( २३८ )- उत्तम लकड़ीकी धुराकी बढई जिस प्रकार उत्तम बनाता है, उसी तरह ( पुरुहूतं गिरा आ नमे ) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रको मैं प्रणाम करके अनुकूल बनाता हूँ ।

१६ पाशिनः धन्वा इव तान् अति आयाहि ( २४६ )- जाल हाथोंमें धारण करनेवाले शिकारी जिस तरह रेगिस्तानको पार करके जाते हैं, उस प्रकार तू दुष्टोंको पार करके आ ।

१७ पाशिनः न, मा त्वा नियेमुः, एहि ( २४६ )- जाल लिए हुए शिकारी जिस प्रकार पक्षियोंको पकड़ते हैं, उस प्रकार तुझे बीचमें कोई भी न पकड़े, तू हमारे पास आ ।

१८ वाजयन्तः रथाः इव ( २५१ )- अन्न लेकर जानेवाले रथके समान ( मधुमत्तमाः गिरः त्वा उदीरते ) मधुर स्तोत्र तेरे लिए बोले जाते हैं, वे तुझतक पहुँचते हैं ।

१९ यथा गौरः ( मृगः ) तृष्यन् अपाकृतं इरिणं अवैति ( २५२ )- जिस प्रकार प्यासा हिरण पानीसे भरे हुए तालाबके पास जाता है, उसी प्रकार तू ( नः तूयं आगहि ) हमारे पास जल्दी आ ।

२० भगं न ( २५३ )- भाग्यवान्के समान ( यशसं वसुविदं त्वा पराचरामि ) यशस्वी, धनवान् तेरी हम आराधना करते हैं ।

२१ यथा पुत्रेभ्यः पिता ( २५९ )- जैसे पुत्रोंको पिता

शिक्षा देता है, वैसे ही ( नः शिक्ष ) तू हमें भी शिक्षा दे ।

२२ आपः न ( २६१ )- जैसे पानी सोममें मिलाया जाता है, वैसे ही हम तुझे प्राप्त करते हैं ।

२३ सूर्यं श्रायन्तः इव ( २६७ ) जिस प्रकार किरणें सूर्यका सहारा लेती हैं, उसी प्रकार ( विश्वेत् इन्द्रस्य भक्षत ) सब विश्व इन्द्रका आश्रय लेता है ।

२४ भागं न ( २६७ )- पिताके धनके भागको जिस तरह पुत्र पानेकी इच्छा करता है, उसी तरह ( प्रति दीधिमः ) हम अपने पिताके धनमेंसे हिस्सा मिले ऐसा चाहते हैं ।

२५ निधया वृद्धान् इव ( ३१९ )- बन्धनमें पड़े हुएको जैसे मुक्त किया जाता है, उसी तरह ( अस्मान् मुमुग्धि ) हमें मुक्त कर ।

२६ चक्रियौ अक्षेण इव ( ३३९ )- जैसे चक्र धुरिके आधारपर रहते हैं, उसी तरह ( पृथिवीं उत द्यां विष्वक् तस्तंभ ) पृथिवी और द्यु ये दोनों ही लोकोंको वह आधार देता है ।

२७ वंशं इव त्वा उद्येमिरे ( ३४२ )- बांस जैसे उपर उठाते हैं, उस तरह तूझे उन्नत करते हैं । इन्द्रकी स्तुति गाकर इन्द्रके यशको बढ़ाते हैं ।

२८ सूर्यः रश्मिभिः रजः न ( ३४७ )- जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अन्तरिक्षको भर देता है । उस प्रकार ( इन्द्रियं त्वा आ पृणक्तु ) तेरी इन्द्रियकी शक्ति तुझे भर दे ।

२९ रथीः इव ( ३४९ )- रथमें बैठनेवाले वीर जैसे अपने इच्छित स्थानपर पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार हमारी ( गिरः ) स्तुतियां तुझे पहुँचती हैं ।

३० वत्सं धेनवः गावः इव ( ३४९ )- बछड़ेके पास जैसे दुधार गाय जाती है, उस तरह ( त्वा अभि अनूषत ) तेरे पास हमारी स्तुति पहुँचती है ।

३१ रथं यथा ( ३५४ )- रथको जैसे हम चलाकर अपने इच्छित स्थानको ले जाते हैं, उसी तरह ( इन्द्रं आ वर्तयामासि ) इन्द्रको हम यज्ञमें लाते हैं ।

३२ अंहः न ( ३६५ )- हम पापसे जैसे बचते हैं, उसी तरह ( द्विषः तरति ) शत्रुओंसे भी अपना बचाव करते हैं ।

३३ क्षोणीः इव ( ३७३ )- पृथ्वी जैसे सबको आधार देती है, ( नः वचः प्रति हर्य ) उसी तरह हमारी स्तुति स्वीकार कर ।

३४ यथा जनयः मर्यं पतिं न परिष्वजन्तः ( ३७५ )- जैसे स्त्रियां अपने पतिका आलिंगन करती हैं, उस तरह



( ऊतये इन्द्रं स्वर्-युवः मतयः अच्छा अनूपत ) अपने संरक्षणके लिए इन्द्रको आत्मज्ञानयुक्त अपनी स्तुतिसे प्राप्त होते हैं ।

३५ उषा इव ( ३७९ )- उषा जिस प्रकार प्रकाशसे विश्वको भर देती है, उस प्रकार तू ( उभे रोदसी आ पप्राथ ) पृथ्वी और द्युलोकको अपने तेजसे भर देता है ।

३६ गिरिः न ( ३९३ )- पर्वतके समान ( विश्वतः पृथुः दिवस्पतिः ) सबसे महान् तू द्युलोकका स्वामी है ।

३७ उदा गमन्तः उदभिः इव ( ४०६ )- पानी लेकर जानेवाले मित्र जिस प्रकार पानीसे खेलते हैं, उसी तरह हम ( त्वा उप ससृग्महे ) तेरे पास आते हैं ।

३८ यवसे रणा गावः न ( ४२२ )- जिस प्रकार घासको सुन्दर गायें प्राप्त करती हैं, उसी तरह ( ते सख्ये ) तेरी मित्रताके लिए हम तेरे पास आते हैं ।

३९ पुत्रासः वाज-सातये पितरं न ( ४५९ )- पुत्र अन्न प्राप्तिके लिए जैसे पिताके पास जाते हैं, वैसे ही हम तेरे पास आते हैं ।

४० महिषं वीरं वाज-सातये ( ४५९ )- जिस प्रकार महान् वीरको युद्धमें बुलाते हैं, उसी तरह तुझे अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ।

४१ सूरः सयुग्भिः न ( ४६३ )- सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे चमकता है, उसी प्रकार सोमरस ( पृष्ठस्य धारा रोचते ) अपने तेजसे चमकता है ।

४२ नृतः ! नर्यं प्रथमं पूर्यं तव तत् अपः दिवि प्रवाच्यं ( ४६६ )- हे इन्द्र ! मनुष्योंका हित करनेवाले तेरे वे अपूर्व कर्म द्युलोकमें प्रशंसनीय हो गए हैं ।

४३ देवस्य असुः सहसा रिणन् ( ४६६ )- राक्षसोंके प्राण तू नष्ट करता है । ( देवः= राक्षस )

४४ विश्वं अ-देवं सहसा अभिभुवः ( ४६६ )- सभी असुरोंको तूने अपने सामर्थ्यसे पराजित किया ।

### सुभाषित

१ सत्त्वने सचा गाय ( ११५ )- सामर्थ्यशाली इन्द्रको एक साथ स्तुति करो ।

२ शाकिने शं ( ११५ )- शक्तिमान्को सुख प्राप्त होता है ।

३ हे शतक्रतो ! ते द्युमिन्नतमः ( ११६ )- हे सैकड़ों कर्म करनेवाले वीर ! तेरा आनन्द निश्चयसे तेजको बढ़ानेवाला है ।

४ त्वं सहसः बलात् ओजसः अधिजातः ( १२० )- तू शत्रुको हरानेवाले बल और श्रेष्ठ सामर्थ्यसे उत्पन्न हुआ है ।

५ भूमिं व्यवर्तयत् ( १२१ )- उसने भूमिको घुमाते हुए स्थापित किया है ।

६ त्वं एक इत् वस्व ( १२२ )- तू अकेला ही धनोंका स्वामी है ।

७ हे अनाभयिन् ! ते ररिम ( १२४ )- हे निर्भयवीर ! तुझे हम आनन्दित करते हैं ।

८ नर्यापुसं वृषभं अस्तारं ( १२५ )- सार्वजनिक हितके काम करनेवाले, बलवान् और शत्रुपर शस्त्रको फेंकनेवालेकी मैं प्रशंसा करता हूँ ।

९ हे इन्द्र ! तत् सर्वं ते वशे ( १२६ )- इन्द्र ! ये सब तेरे आधीन हैं ।

१० युवा सखा सुनीती आनयत् ( १२७ )- जो तरुण मित्र है, वह सुनीतिसे सुख लाता है ।

११ आदिशः सूरः अकनुषु नः मा अभ्यायमत ( १२८ )- चारों ओरसे शस्त्रोंकी मार करनेवाला शत्रु हमारे ऊपर रात्रीके समय चढ़ाई न करे ।

१२ तत् त्वा युजा वनेम ( १२८ )- यदि वैसा शत्रु आवे भी तो हम तेरी सहायतासे उसे दूर करें ।

१३ ऊतये सानसि सजित्वानं सदासहं वार्षिष्ठं रयिं आभर ( १२९ )- हमारे संरक्षणके लिए, उपभोगके योग्य, शत्रुपर विजय प्राप्त करानेवाले, हमेशा शत्रुको हरानेवाले, श्रेष्ठ धनसे हमें भर दे ।

१४ वयं महाधने अभें वृत्रेषु युजं वज्रिणं इन्द्रं हवामहे ( १३० )- हम बड़े तथा छोटे युद्धोंमें और घेरनेवाले शत्रुके साथ होनेवाले छोटे युद्धमें सहायताके लिए मित्रके समान इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१५ सहस्रवाहे पौंस्यं आददिष्ट ( १३१ )- हजारों भुजाओंवाले राक्षसोंके साथ होनेवाले युद्धमें इन्द्रका बल प्रकट होता है ।

१६ विश्वा द्विषः अपभिन्धि ( १३४ )- सब शत्रुओंका नाश कर ।

१७ बाधः मृधः परिजहि ( १३४ )- बाधा करनेवाले शत्रुओंको नष्ट कर ।

१८ स्पाई तत् वसु आभर ( १३४ )- सुन्दर धन हमें भरपूर दे ।

१९ यामं चित्रं न्युजते ( १३५ )- युद्धमें अद्भुत शूरवीरता वह दिखाता है ।



२० विश्वाः कृष्टयः विशः अस्य मन्यवे सं नमन्त ( १३७ )- सब प्रजायें इसके क्रोधके आगे झुकती हैं ।

२१ देवानां अयः इत् महत् ( १३८ )- देवोंसे प्राप्त होनेवाले संरक्षण निश्चयसे महान् हैं ।

२२ तत् अस्माकं ऊतये वयं आवृणीमहे ( १३८ )- उन संरक्षणोंको हम अपनी रक्षाके लिए स्वीकार करते हैं ।

२३ नः प्रजावत् सौभगं सार्वीः ( १४१ ) हमें पुत्र पौत्रोंको प्राप्त करानेवाले सौभाग्य दे ।

२४ दुष्पण्यं परासुव ( १४१ )- दुःखकारक स्वप्न दूर हों ।

२५ सः वृषभः युवा तुवि ग्रीवः अनानतः क ? ( १४२ )- वह बलवान्, तरुण, मजबूत गर्दनवाला, और किसीके आगे न झुकनेवाला इन्द्र कहाँ है ?

२६ गिरिणां उपह्वरे च नदीनां संगमे धिया विप्रः अजायत ( १४३ )- पर्वतोंकी उपत्यका और नदियोंके संगम पर बैठकर बुद्धि स्थिर करके मनुष्य जानी होता है ।

२७ चर्षणीनां सम्राजं नृपाहं मंहिष्ठं नरं इन्द्रं प्रस्तोत ( १४४ )- मनुष्योंमें सम्राट्के समान, शत्रुका पराभव करनेवाले, श्रेष्ठ नेता इन्द्रकी स्तुति करो ।

२८ चन्द्रमसः गृहे त्वष्टुः अपीच्यं नाम ( १४७ )- चन्द्रके मण्डलमें सूर्यका प्रकाश चमकता है ।

२९ अहं पितुः क्रतस्य मेधां परिजग्रह सूर्यः इव अजनि ( १५२ )- मैंने पालन करनेवाली सत्यकी बुद्धि स्वीकार करली है, इस कारण मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

३० नः रेवतीः तुवि-वाजाः सन्तु ( १५३ )- हमारी गायें बहुत दूध देनेवाली हों ।

३१ विश्वासां सुक्षितीनां चेतनुः ( १५४ )- सब उत्तम मनुष्योंको उत्तम प्रेरणा मिले ।

३२ विश्वा-साहं शतक्रतुं चर्षणीनां मंहिष्ठं इन्द्रं अभि प्र गायत ( १५५ )- सब शत्रुओंके नाश करनेवाले, सैकड़ों कार्य करनेवाले, सब प्रजाओंमें श्रेष्ठ इन्द्रकी स्तुति करो ।

३३ ऊतये सुरुपकृत्नुं धावि धनि जुहूमसि ( १६० )- अपने संरक्षणके लिए सुन्दर रूप बनानेवाले इन्द्रको रोज हम बुलाते हैं ।

३४ त्वं ईशिषे ( १६२ )- तू सभीका स्वामी है ।

३५ योगे योगे वाजे वाजे ऊतये तवःतरं इन्द्रं हवामहे ( १६३ )- प्रत्येक कार्यमें अपनी रक्षाके लिए इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ।

३६ इन्द्रः महान् परः च ( १६६ )- इन्द्र महान् और श्रेष्ठ है ।

३७ वज्रिणे महत्वं अस्तु ( १६६ )- वज्रधारी इन्द्रको यश प्राप्त हो ।

३८ द्यौः न शवः प्रथिना ( १६६ )- धूलोकके समान उसका यश विशाल है ।

३९ श्रुमन्तं चित्रं ग्राभं दक्षिणेन आ संगृभाय ( १६७ )- तेजस्वी, विलक्षण और ग्रहण करने योग्य धन हमें दायें हाथसे दे ।

४० सत्रासाहं ऊतये आच्यावयामसि ( १७० )- सब शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए अपने पास बुलाते हैं ।

४१ हे शतक्रतो ! भद्रं भद्रं इपं ऊर्जं नः आ भर ( १७३ )- हे सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! हमें कल्याण-कारक अन्न और बल भरपूर दे ।

४२ नः सृळयासि ( १७३ )- हमें तू ही सुखी करता है ।

४३ न कि इनीमसि ( १७६ )- हम कोई हानिकारक कार्य नहीं करते ।

४४ न कि आयोपयामसि ( १७६ )- हम कोई भी विरुद्ध कार्य नहीं करते ।

४५ मंत्रश्रुत्यं चरामसि ( १७६ )- वेदमंत्रोंमें जो कहा है, वही हम करते हैं ।

४६ हे आथर्वण ! दोषः अगात् देवं सवितारं स्तुहि ( १७७ )- हे अथर्वा ! यदि कोई दोष हो गया है तो सवितादेवकी स्तुति कर ।

४७ अप्रतिपुतः इन्द्रः दधीचः अस्थभिः नव नवतीः वृत्राणि जघान ( १७९ )- जिसका कोई मुकाबला नहीं कर सकता ऐसे इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंसे ८१० वृत्रोंको मारा ।

४८ औजसा महान् अभिष्टिः ( १८० )- तू अपने सामर्थ्यसे शत्रुको हराता है ।

४९ महीभिः ऊतिभिः अस्माकं अर्धं आगहि ( १८१ )- महान् संरक्षणके साधनोंके साथ हमारे पास आ ।

५० वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आवातु, नः आयूंषि प्रतारिषत् ( १८४ )- यह वायु शान्ति और सुख-कारक औषधि हमारे पास लावे और हमारी आयु बढ़ावे ।



५१ पाचका वाजिनीवती धिया वसुः सरस्वती ( १८९ )- पवित्र करनेवाली, अन्न देनेवाली और बुद्धिसे धन देनेवाली यह विद्याकी देवी है ।

५२ सः नः वसूनि आभरात् ( १९० )- वह हमें भरपूर धन दे ।

५३ युशं दुराधर्षं महि अवः अस्तु ( १९२ )- तेजस्वी और शत्रु जिस पर आक्रमण नहीं कर सकते, ऐसे महान् संरक्षण हमें मिले ।

५४ हे अद्रिवः ! राधः कृणुष्व ( १९४ )- हे वज्र-धारी इन्द्र ! हमें धन दे ।

५५ ब्रह्म-द्विषः अवजहि ( १९४ )- ज्ञानसे द्वेष करने-वालोंको मार ।

५६ त्वादातं इत् यशः ( १९५ )- तेरी सहायतासे ही यश मिलता है ।

५७ नः वृतः देवः इन्द्रः शूरः ( १९६ )- हमारे द्वारा अरण किया हुआ इन्द्र देव शूर है ।

५८ हे इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते ( १९७ )- हे इन्द्र ! तेरी अपेक्षा कोई भी महान् नहीं है ।

५९ ऋभुक्षणं रयिं ददातु ( १९९ )- कारीगरोंका रक्षण करनेवाला धन हमें दे ।

६० नः इषे ऋभुं ददातु ( १९९ )- हमें अन्न प्राप्त हो इसलिए कारीगरी दे ।

६१ वाजी वाजिनं ददातु ( १९९ )- बलवान् इन्द्र हमें बल देवे ।

६२ स्थिरः विचर्षणिः महत् भयं अभीपत्, अचु-  
च्युवत् ( २०० )- जो युद्धोंमें स्थिर रहता है तथा महाज्ञानी है, वह महान् भयको दूर करता है ।

६३ हे वृत्रहन् ! त्वत् उत्तरं न किः अस्ति ( २०३ )- हे वृत्रनाशक इन्द्र ! तुझसे महान् कोई नहीं है ।

६४ जनानां तरणिं, त्रदं, समानं प्रशंसिषम् ( २०४ )- सब लोगोंको तारनेवाले, शत्रुको कष्ट देनेवाले, सबको समान सुख देनेवाले, इन्द्रकी मैं प्रशंसा करता हूँ ।

६५ यं अद्रुहः पान्ति, स मर्त्यः सुनीथः ( २०६ )- जिसका संरक्षण ग्रीह न करनेवाले देव करते हैं, वह मनुष्य उत्तम और नीतिवाला होता है ।

६६ विश्वाः स्पृधः अजयः ( २११ )- सब स्पर्धा करने-वाले शत्रुओंपर जय प्राप्त हो ।

६७ अपां फेनेः नमुचेः शिरः उदवर्तयः ( २११ )- इन्द्रने पानीके झागसे नमुचिके सिरको फोडा ।

१७ ( साम. हिन्दी )

६८ जातः वृत्रहा बुन्दं आददे, के के उग्राः  
शृण्वरे, मातरं वि पृच्छात् ( २१६ )- उत्पन्न होते ही इन्द्रने बाण हाथमें लिया और अपनी मातासे पूछा कि कौन कौनसे वीर मुने जाते हैं ।

६९ ऊतये सृप्रकरस्नं, साधः कृण्वन्तं हवामहे ( २१७ )- हमारे संरक्षणके लिए जो बाहुओंको फैलाता है, और जो संरक्षणके साधनोंको तैय्यार करता है, उस इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

७० तव इत् सख्यं अस्तृतं ( २२९ )- तेरी ही मित्रता न टूटनेवाली है ।

७१ नः पृशु तनूषु नृम्णं आधेहि ( २३१ )- हम लोगोंमें नेतृत्व करनेवाले बलको बढ़ा ।

७२ सत्राजित् पौंस्यं आधेहि ( २३१ )- सब शत्रुओंको एकसाथ जीतनेवाला सामर्थ्य हमें दे ।

७३ वीरयुः असि ( २३२ )- शत्रुके साथ लड़नेवाला तू है ।

७४ शूरः उत स्थिरः अभि ( २३२ )- तू शूर वीर और युद्धोंमें स्थिर रहनेवाला है ।

७५ ते मनः राध्यं ( २३२ )- तेरा मन आराधनाके योग्य है ।

७६ अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्दशं त्वा  
अभिनोनुम- ( २३३ ) इस स्थावर और जंगम जगत्के स्वामी और आत्मज्ञानी तुझे हम नमस्कार करते हैं ।

७७ सत्पतिं त्वा नरः वृत्रेषु हवन्ते ( २३४ )- सज्जनोंके उत्तम पालन करनेवाले तुझे युद्धमें सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

७८ काष्ठासु त्वा हवन्ते- ( २३४ ) छोटे युद्धोंमें भी तुझे बुलाते हैं ।

७९ पुरुवसुः मघवा सहस्रेण शिक्षति ( २३५ )- बहुत धनवान् इन्द्र हजारों प्रकारसे धन देता है ।

८० ऋतीषहं गीर्भिः अभि नवामहे ( २३६ )- बाधक शत्रुको हरानेवाले इन्द्रको हम नमस्कार करते हैं ।

८१ विद्वस्सु इन्द्रं ऊतये हुवे ( २३७ )- धनवान् इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ।

८२ सधमादे आपिः नः वृधे वोधि ( २३९ )- एक जगह बैठकर जहां कर्म किए जाते हैं, वहां इन्द्र हमारा मित्र और उन्नति करनेवाला हो ।

८३ ते धियः अवन्तु ( २३९ )- तेरी बुद्धियां हमारा संरक्षण करें ।



८४ सचा स्तोत, मुहुः शंसत ( २४२ )- एक स्थान पर बैठकर स्तुति करो, बारबार स्तुति करो ।

८५ यः सदावृधं विश्वगूर्ति, ओजसा अधृष्टं, धृष्टं इन्द्रं चकार, तं नकिः कर्मणा नशत् ( २४३ )- जो सदा बढ़ानेवाले, सबके द्वारा स्तुति किए जानेवाले, सामर्थ्यके कारण जो किसीसे दबाया नहीं जा सकता, जो शत्रुओंको मारता है, उस इन्द्रकी जो उपासना करता है, उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ।

८६ संधिं सन्धाता ( २४४ )- टूटी हुई सन्धियोंको जोड़नेवाला ।

८७ विन्धुतं पुनः निष्कर्त्ता ( २४५ )- कटे हुए भागोंको फिर ठीक करता है ।

८८ त्वदन्यः मर्दिता नाऽस्ति ( २४७ )- तेरे सिवाय दूसरा कोई भी सुख देनेवाला नहीं है ।

८९ अप्रतीनि पुरुवृत्राणि अनुत्तः चर्षणी-धृतिः एक इत् हंसि ( २४८ )- बहुत बलशाली बहुतसे वृत्रोंको स्वयं ही, केवल सब लोगोंके हित करनेके लिए अकेलाही तू मारता है ।

९० हे शचीपते शूर इन्द्र ! विश्वाभिः ऊतिभिः शग्धि ( २५३ )- हे सामर्थ्यवान् इन्द्र ! सब संरक्षणके साधनोंके साथ तू सामर्थ्यवाला है ।

९१ भगं यशसं वसुविदं त्वा परिचरामि ( २५३ )- ऐश्वर्यवान्, यशस्वी और धनवान् तेरी आराधना हम करते हैं ।

९२ याः भुजः असुरेभ्यः आ भरः अस्य वर्धय ( २५४ )- जो धन तू असुरोंसे छीनकर लाया, उनसे हमें बढ़ा ।

९३ नः कर्तुं आ भर ( २५९ )- हमें अच्छी बुद्धि दे :

९४ यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष ( २५९ )- जैसे पिता अपने लड़कोंको शिक्षा देता है, उसी प्रकार तू हमें शिक्षा दे ।

९५ जीवाः ज्योतिः अशीमाहि ( २५९ )- हम जीवित रहकर तेजस्विता प्राप्त करें ।

९६ नः मा परावृणक् ( २६० )- हमें दूर मतकर ।

९७ त्वं नः ऊती ( २६० )- तू हमारा संरक्षक है ।

९८ त्वं न आप्यः ( २६० )- तू हमारा भाई है ।

९९ नः सधमाद्ये भव ( २६० )- तू हमारे साथ बैठ ।

१०० सचा विश्वानि पौस्या आ भर ( २६२ )- एकसाथ सब बल हमें दे ।

१०१- पंच क्षितीनां युष्मं आ भर ( २६२ )- पांच जनकोंकी युक्तासे उत्पन्न होनेवाले तेज हमें दें ।

१०२ परावति अर्वावति वृषा श्रुतः ( २६३ )- दूर और पासके देशोंमें तू ही शक्तिके लिए प्रसिद्ध है ।

१०३ शक्र ! परावति असि, अर्वावति असि ( २६४ )- हे इन्द्र ! तू दूर है और पास भी है ।

१०४ त्रिधातु त्रिवरुथं स्वस्तये छर्दिः शरण मय्यं ( २६६ )- तीन मंजिलोंवाला और तीनों ऋतुओंमें सुखकारक, हमारे कल्याणके लिए उत्तम आश्रय देनेवाला घर दे ।

१०५ विश्वा इन्द्रस्य भक्षत ( २६७ )- सब जगत् इन्द्रके आश्रयसे रहता है ।

१०६ जातः जनिमानि ओजसा करोति ( २६७ )- उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थोंको अपनी शक्तिसि बनाता है ।

१०७ अदेवः मर्त्यः सीं न आपः ( २६८ )- ईश्वरकी उपासना न करनेवाला उस धनको प्राप्त नहीं कर सकता ।

१०८ हे इन्द्र ! अवमं मध्यमं पुण्यसि, परमस्य विश्वस्य सचा राजसि ( २७० )- हे इन्द्र ! कनिष्ठ और मध्यम धन तेरे ही हैं, श्रेष्ठ धनका तू अकेला ही स्वामी है ।

१०९ हे युध्म, खजकृत्, पुरन्दर ! अलर्षि ( २७१ )- हे योद्धा, संग्राम करनेवाले और शत्रुओंके नगरोंको तोड़नेवाले वीर इन्द्र ! तू यहां आ ।

११० यः चर्षणीनां राजा, रथेभिः अधिगुः याता, विश्वासां पृतनानां तरुता, वृत्र-हा ज्येष्ठं गृणे ( २७३ )- जो सब मनुष्योंका राजा, रथसे शीघ्र ही आगे जानेवाला, सब शत्रुसेनाका नाश करनेवाला, और वृत्रको मारनेवाला है, उस इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१११ यतः भयामहे, ततः नः अभयं कृधि ( २७४ )- जहां जहांसे हम डरते हैं, वहांसे हमें निर्भय कर ।

११२ नः ऊतये द्विषः विजहि, मृधः विजहि ( २७४ )- हमारे संरक्षणके लिए शत्रुओंको दूर कर और द्वेष करनेवालोंका नाश कर ।

११३ शग्धि ( २७४ )- वह सामर्थ्यवान् है ।

११४ शश्वतीनां पुरां भेत्ता, मुनीनां सखा इन्द्रः ( २७५ )- असुरोंकी बहुतसी नगरियोंका नाश करनेवाला और मुनियोंका मित्र इन्द्र है ।



११५ महः सतः ते महिमा पनिष्ठम ( २७६ )- तेरे-  
जैसे महा पुरुषकी महिमाका ही वर्णन किया जाता है ।

११६ मद्वा महान् असि ( २७६ )- तू अपने यशसे  
महान् है ।

११७ यः अश्वी रथी सुरूपः गोमान्, श्वात्रभाजा  
वयसा, सदा सचते, चन्द्रैः सभां उपयाति ( २७७ )  
जो घोड़े रखता है, रथमें बैठता है, उत्तम रूपवाला है,  
गायोंको पालता है, धन और अन्नसे युक्त है, ऐसा वह इन्द्र  
आभूषणोंको पहनकर सभामें जाकर बैठता है ।

११८ यत् द्यावः शतं स्युः, उत भूमी शतं स्युः,  
सहस्रं सूर्याः, अनुजातं त्वा न अष्ट ( १७८ )- सैंकड़ों  
द्युलोक, सैंकड़ों पृथिवी, हजारों सूर्य अथवा जो कुछ भी पीछे  
उत्पन्न हुए पदार्थ हैं, वे सब भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते ।

११९ वसो इन्द्र ! तं त्वा कः मर्तः आदधर्षति-  
( २८० )- हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! उस तुझे कौनसा  
मनुष्य भयं दिखा सकता है ?

१२० ते श्रद्धा वाजी ( २८० )- तुझ पर श्रद्धा रखने-  
वाला बलवान् होता है ।

१२१ सु आपे ! स्वापिभिः आ ( २८२ )- हे उत्तम  
मित्र ! उत्तम मित्रोंके साथ आ ।

१२२ अ-जरं, प्र-हेतारं अ-प्रहितं आशुं जेतारं  
हेतारं रथीतमं अतूर्तं ऊतयेदत ( २८३ )- जरारहित,  
शत्रुपर प्रहार करनेवाले, कोई भी जिसका विरोध नहीं  
कर सकता, शीघ्र विजय प्राप्त करनेवाले, प्रेरणा करनेवाले,  
रथियोंमें श्रेष्ठ, जिसे कोई भी मार नहीं सकता, ऐसे इन्द्रको  
यहां ला ।

१२३ यः सत्राहा विश्वचर्षणिः, तं इन्द्रे वयं हूमहे  
( २८६ )- शत्रुओंको एकसाथ मारनेवाले, और सब मनुष्योंका  
हित करनेवाले उस इन्द्रको हम सहायार्थ बुलाते हैं ।

१२४ हे सहस्रमन्यो ! तुविनृम्ण सत्पते ! समत्सु  
नः वृधे भव ( २८६ )- हे हजारों उत्साहसे कार्य करनेवाले !  
बहुत धनवान्, और सज्जनोंके पालक इन्द्र ! युद्धमें हमारा  
यश बढे ऐसा कर ।

१२५ शचीभिः दिवानक्तं दिशस्यतं ( २८७ )- तू  
अपनी शक्तियोंसे हमें रातदिन धन दे ।

१२६ वां रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ )-  
तेरा दान कभी भी कम न हो !

१२७ अस्मत् रातिः कदाचन मा उपदसत् ( २८७ )  
हमारा दान भी कभी कम न हो ।

१२८ विव्रतानां धत्तारिं वरुणं वपा गिरा वन्देत  
( २८८ )- विशेष अनेक कर्मोंको धारण करनेवाले वरुणकी  
विशेष संरक्षणके लिए स्तुति करके वन्दता करते हैं ।

१२९ गाः पाहि ( २८९ )- गायोंका रक्षण कर ।

१३० इन्द्रः हर्योः संमिश्रः वज्री हिरण्ययः ( २८९ )  
- इन्द्र अपने रथमें घोड़े जोड़ता है, वज्र धारण करता है,  
और सुनहरे रथमें बैठता है ।

१३१ हे अद्रिवः ! महे शुल्काय त्वा न परादीथसे  
( २९१ )- हे वज्रधारी इन्द्र ! यदि बहुत धन प्राप्त हो तो  
भी मैं तुझे दूसरेको देनेको तैयार नहीं ।

१३२ हे वज्रिवः ! न अयुताय, न सहस्राय, न  
शताय ( २९१ )- बस हजार, एक हजार अथवा सौ मिले  
तो भी मैं तुझे छोड़नेवाला नहीं ।

१३३ हे इन्द्र ! मे पिनुः वस्यान् ( २९२ )- हे  
इन्द्र मेरे पिताकी अपेक्षा तू अधिक धनवान् है ।

१३४ मे अभुंजतः भ्रातुः वस्यान् ( २९२ )- भोग  
न भोगनेवाले मेरे भाईसे भी तू अधिक धनवान् है ।

१३५ मे माता समा ( २९२ )- मेरी माता तेरे  
समान है ।

१३६ वसुत्वनाय राधसे छदयथः ( २९२ )- धन  
और अन्नके लिए महान् बना ।

१३७ बृहन्तः नीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते ( २९६ )  
- बहुत बड़े बड़े पर्वत भी तुझे अपने कर्तव्यसे डिगा नहीं  
सकते ।

१३८ यत् वसु शिक्षसि, तत् न किः आ मिनाति  
( २९६ )- तू जो धन देनेकी इच्छा करता है, उस तेरे दानको  
कोई भी रोक नहीं सकता ।

१३९ यः अयं शिघ्री ओजसा पुरः विभिनत्ति  
( २९७ )- यह शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र अपनी  
शक्तिसे शत्रुके नगरोंको तोड़ता है ।

१४० यत् शासः सदसः परि अव्रतं च्यावय  
( २९८ )- तू शासन करता है, इसलिए हमारे स्थानसे  
दुराचारियोंको दूर कर ।

१४१ कदाचन स्तरीः नः असि ( ३०७ )- तू कभी  
भी बाँझ गायके समान नहीं होता ।

१४२ देवस्य ते दानं भूयः उपोपेत् पृच्यते ( ३०० )  
तेरे जैसे देवके दान बहुत होकर हमारे पास आकर बढते हैं ।

१४३ शची-वसु ( ३०४ )- यह इन्द्र अपनी शक्तियसे  
धन प्राप्त करनेवाला है ।



१४४ दाशुपे रत्नानि धत्तं ( ३०६ )- दानशीलको रत्न व. धन दे ।

१४५ अहं सदा याचन् अचुकुधं ( ३०७ )- क्या हमेशा मांगते रहनेके कारण तू मुझसे नाराज हो गया है ?

१४६ कः ईशानं न याचिषत् ( ३०७ )- अपने स्वामीसे भला कौन नहीं मांगता ।

१४७ वृषणा हरी उपयुयुजे, वृत्रहा आ जगाम ( ३०८ )- बलवान् घोड़ोंको रथमें जोड़ लिया है, और वृत्रको मारनेवाला आ गया है ।

१४८ ज्यायः इन्द्रः ईपतः तत् कनीयसः अभि आ भर ( ३०९ )- महान् इन्द्र इच्छा करनेवाले छोटेको भी वह धन भरपूर दे ।

१४९ पुरु-वसुः भरे भरे हव्यः ( ३०९ )- बहुत धनवान् वह इन्द्र प्रत्येक युद्धमें सहायताके लिए बुलाने योग्य है ।

१५० यत् त्वं यावतः ईशिषे एतावत् अहं ईशीय ( ३१० )- तू जितने धनोंका स्वामी है, उतने मुझे मिलें, ऐसी मैं इच्छा करता हूँ ।

१५१ पापत्वाय न रंसिषं ( ३१० )- पापी होनेको मैं तैयार नहीं ।

१५२ त्वं प्रनर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभ्यसि ( ३११ )- तू युद्धमें सभी शत्रुओंका नाश करता है ।

१५३ त्वं अशस्तिहा ( ३११ )- तू दुष्टोंका नाश करता है ।

१५४ जनिता ( ३११ )- शत्रुके लिए आपत्तियोंको पैदा करनेवाला है ।

१५५ तरुण्यतः वृत्रन् असि ( ३११ )- तू विघ्न करनेवालोंको नष्ट करता है ।

१५६ विश्वं अति ववक्षिथ ( ३१२ )- तू सब विश्वमें व्याप्त है ।

१५७ नः अविता वृधे च असः ( ३१४ )- तू हमारा रक्षक और हमें बढ़ानेवाला है ।

१५८ वसूनि ददः- ( ३१४ )- धन दे ।

१५९ यत् दानवान् अवहन् ( ३१५ )- जब तूने दानवोंको मारा ।

१६० नः सुवित्तं आ भर ( ३१६ )- हमें उत्तम धन दे ।

१६१ ततोताः तनात्मना सह्याम ( ३१६ )- तुझसे संरक्षित हुए हम स्वयं ही धन कमायें ।

१६२ हे वसूनां वसुपते ! वसूयवः ते दक्षिणं हस्तं जगृह्ण ( ३१७ )- हे धनोंके स्वामी ! धनकी इच्छा करने वाले हम तुझे दांये हाथसे पकड़ते हैं ।

१६३ हे शूर ! चित्रं वृषणं रथि दाः ( ३१६ )- हे शूर ! अनेक प्रकारके बल बढ़ानेवाले धन दे ।

१६४ यत् पार्याः धियः युनजते नरः नेमधिता इन्द्रं हवन्ते ( ३१८ )- जब संकटोंसे पार होनेके लिए बुद्धि-पूर्वक काम किए जाते हैं, तब युद्धके समय लोग इन्द्रको मददके लिए बुलाते हैं ।

१६५ त्वं शूरः नृपाता शवसः चकानः ( ३१५ )- तू शूर, मनुष्योंको धन देनेवाला, बलसे तेजस्वी है ।

१६६ निधया वद्वान् अस्मान् मुमुग्धि ( ३१८ )- पाशोंसे बंधे हुए हमें मुक्त कर ।

१६७ महे वीराय तवसे तुराय विरग्शिने वज्रिणे स्थविराय अस्मै अपूर्व्या वचांसि तक्षुः ( ३२२ )- महान्, वीर, शक्तिमान्, और शीघ्र कार्य करनेवाले, वज्र-धारी, स्थिर ऐसे इस इन्द्रके लिए अद्भुत स्तुति करो ।

१६८ द्रष्टव्यः दशभिः सहस्रैः इयानः कृष्णः अंशुमती अवातिष्ठत्, शच्या धमन्तं तं इन्द्रः आवत्, अथ नृमणाः स्नीहितं अधद्राः ( ३२३ )- आक्रमण करनेवाला कृष्ण असुर दस हजार सैनिकोंके साथ अंशुमती नदी पर आया पर अपने बलसे जगको भय देनेवाले उस असुर पर इन्द्रने आक्रमण किया और उसकी हिंसक सेनाको भी मार डाला ।

१६९ इमाः विश्वाः पृतनाः जयासि ( ३२४ )- सब शत्रुसेनाओं पर तू जय प्राप्त करता है ।

१७० देवस्य महित्वा काव्यं पश्य ( ३२५ )- देवके यशको प्रकट करनेवाले काव्यको देख ।

१७१ अद्य ममार स ह्यः समान ( ३२५ ) जो आज मर गया, वही कल पहलेके समान कार्य करने लगता है ।

१७२ त्वं तत् जायमानः अशत्रुभ्यः सप्तभ्यः शत्रुः अभवः ( ३२६ )- तू उत्पन्न होते ही शत्रुओंसे रहित उन सात असुरोंका शत्रु हुआ ।

१७३ गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दः ( ३२६ )- तू ही अंधकारमें पड़े हुए द्यावा पृथिवीयोंको प्रकाशमें लाया ।

१७४ विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः रणं धाः ( ३२६ )- वैभवशाली भुवनोंकी और अधिक सुन्दर बनाया ।



१७५ दुवस्युः अर्यः तरुषीः ( ३२७ )- प्रशंसनीय और शत्रुनाशक तू हमें विजयी करता है ।

१७६ वृत्रहणं युक्षं पुरु-धस्मानं वृषभं स्थिरप्सुं वज्रिणं भृष्टिमन्तं त्वा गृणीषे ( ३२७ )- वृत्रको मारने-वाले तेजस्वी, अनेक शत्रुओंका नाश करनेवाले, बलवान् युद्धमें स्थिर रहनेवाले, वज्रधारी, शत्रुनाशक ऐसे तुझ इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१७७ वाजसातौ अस्मिन् भरे शुनं मघवानं इन्द्रं हुवेम ( ३२९ )- धन प्राप्त होनेवाले इस युद्धमें उत्साही धनवान् इन्द्रको अपने मददके लिए बुलाते हैं ।

१७८ शृण्वन्तं उग्रं समत्सु वृत्राणि घनन्तं धनानि संजितं ऊतये हुवेम ( ३२९ )- प्रार्थना सुननेवाले, उग्र-वीर, युद्धमें वृत्रका नाश करनेवाले, धनोंको जीतनेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

१७९ वाजिनं देवजुतं सहोवानं रथानां तरुतारं अरिष्टनेमिं पृतनाज्यं, आशुं तार्क्ष्यं स्वस्तये हुवेम ( ३३२ )- बलवान्, देवोंसे सेवित, सामर्थ्यवान्, रथोंको संग्रामोंमें पार करनेवाले, तेज अस्त्र पासमें रखनेवाले, शत्रु सेनापर विजय प्राप्त करनेवाले, शीघ्रगामी सुपर्णको अपने कल्याणके लिए हम बुलाते हैं ।

१८० त्रातारं अवितारं, हवे हवे सुहवं, शूरं शक्रं इन्द्रं हुवे ( ३३३ )- दुःखोंसे पार करनेवाले, संरक्षण करनेवाले प्रत्येक युद्धमें सहायार्थ बुलाने योग्य इस शूर और बलवान् इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

१८१ वज्र-दक्षिणं, वि व्रतानां हरीणां, रथ्यं इन्द्रं यजामहे ( ३३४ )- दायें हाथमें वज्रको धारण करनेवाले, तेज दौड़नेवाले घोड़ोंके रथमें बैठनेवाले इन्द्रको हम यज्ञमें बुलाते हैं ।

१८२ इमश्रुभिः दोधुवत्, ऊर्ध्वया वि भुवत् ( ३३४ )- वह अपनी बाढी और मूँछोंको हिलाते हुए सबसे श्रेष्ठ हुआ है ।

१८३ सेनाभिः भयमानः राधसा वि ( ३३४ )- अपनी सेनासे शत्रुको भय दिखलाकर धन लेता है ।

१८४ सत्रासाहं दाधृषिं तुभ्रं महं अपारं वृषभं सुवज्रं इन्द्रं ( ३३५ )- हम एकसाथ अनेक शत्रुओंको मारनेवाले, शत्रुको भयभीत करनेवाले, शत्रुओंको भगानेवाले, महान्, अपार बलवान्, उत्तम वज्रधारी इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं ।

१८५ यं वृत्रं हन्ता, वाजं सनिता, सुराधाः मघवा, मघानि दाता ( ३३५ )- वह इन्द्र वृत्रको मारने-वाला, अन्न देनेवाला, उत्तम धनवान् है, वह भक्तोंको धन देता है ।

१८६ यः मर्तः नः वनुष्यन् अभिदाति, मन्यमानः क्षिधी युधा शवसा उगणाः तुरः, त्वोताः वृष-मणाः अभिष्याम ( ३३६ )- जो शत्रु हमें मारनेकी इच्छा करता हुआ हम पर चढाई करता हुआ आता है, जो घमण्डी विनाशक शस्त्रोंको लेकर तेजसे सेनाके साथ चढाई करता है, उसे हम तेरे संरक्षणोंसे रक्षित होकर बलवान् मनसे युक्त होकर पराजित करें ।

१८७ विश्वानि विदुषे अरं गमाय जग्मये अपश्चा-दध्वने प्रति भर ( ३५२ )- सर्व ज्ञानी, ठीक समय पर पहुंचनेवाले, सबसे पहले पहुंचनेवाले इन्द्रको भरपूर सोम दे ।

१८८ उग्रं वचः अपावधीः ( ३५३ )- कठोर भाषण मत करो ।

१८९ तुवि-कर्मिं ऋतविहं सत्पतिं त्वा इन्द्रं वर्तयामसि ( ३५४ )- बहुत पराक्रमी, शत्रुओंका पराभव करनेवाले, सज्जनोंके पालक इन्द्रको हम लाते हैं ।

१९० त्वं अ-प्रहणं श्रवसः पतिं विश्वासाहं शचिष्टं विश्ववेदसं नरं गृणीषे ( ३५७ )- उस उपकार करनेवाले बलके स्वामी, सब शत्रुओंको हरानेवाले, शक्तिमान्, सर्वज्ञ नेताकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१९१ पुरां भिन्दुः युवा कविः अमितोजाः विश्वस्य कर्मणः धर्ता, पुरुष्टुतः इन्द्रः अजायत ( ३५९ )- शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला, तरुण, कवि, अपरिमित सामर्थ्यवाला, सब कर्मोंको धारण करनेवाला, ब्रह्मोंसे प्रशंसित इन्द्र है ।

१९२ हे नरः ! अर्चत, प्रार्चत, धृष्णं अर्चन्तु ( ३६२ )- हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रका सत्कार करो, खूब सत्कार करो, शत्रुको हरानेवाले इन्द्रका सत्कार सभी करें ।

१९३ पुरु-निःषिधे इन्द्राय वर्धनं उक्थं शंस्यं ( ३६३ )- बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्रके यश प्रकट करनेवाले स्तोत्र गावो ।

१९४ विश्वानरस्य अनानतस्य शवसः पतिं हुवे ( ३६४ )- सब शत्रुसेनाओंपर आक्रमण करनेवाले, शत्रुके आगे कभी न झुकनेवाले, सामर्थ्यके स्वामीकी मैं बुलाता हूँ ।

१९५ सः बृहतः दिवः ऊती द्विषः तरति ( ३६५ )-



वह सहान् विषय संरक्षणोंसे युक्त होकर सब शत्रुओंको दूर करता है।

१९६ शतक्रतो ! विभोः राधसः ते रातिः विभ्वी ( ३६६ )- हे सैंकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! बहुत धनोंके तेरे दान बहुत सहान् और विशाल हैं।

१९७ विश्वचर्षणे सुदत्र ! नः शुम्भं मंहय ( ३६६ )- हे सर्व द्रष्टा, उत्तम दान देनेवाले इन्द्र ! हमें धन देकर सहान् कर।

१९८ आसुरि उग्रं ओजिष्ठं तरसं तरस्विनं ( ३७० ) - हम शत्रुको मारनेवाले, उग्रवीर, सामर्थ्यवान्, प्रतापी और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

१९९ पूर्यः सः आ जिगीषन्तं नूतनं एकः इत् वर्तनीं अनु वावृते ( ३७२ )- वह पुराण पुरुष इन्द्र शत्रुओंको जीतनेकी इच्छावाले नये वीरोंको अकेला ही विजयके मार्गसे लेजाता है।

२०० बृहती गिरः चर्षणीधृतं वावृधानं अमर्त्यं इन्द्रं अभ्यनूषत ( ३७४ )- हमारी बृहत्तरी स्तुतियां मनुष्योंका धारणपोषण करनेवाले, बढ़ानेवाले अमर इन्द्रकी प्रशंसा करती हैं।

२०१ ऊतये शुन्ध्यु इन्द्रं स्वर्युवः उशतीः मतयः अच्छ अनूषत ( ३७५ )- हमारे संरक्षणके लिए पवित्र करनेवाले इन्द्रकी, आत्मशक्ति बढ़ानेवाली, उन्नतिकी इच्छा करनेवाली, हमारी स्तुति प्रशंसा करती है।

२०२ त्वं मेघं वस्वः अर्णवं इन्द्रं गीभिः अभि-मदत ( ३७६ )- उस शत्रुका पराभव करनेवाले धनके समुद्र इन्द्रको स्तुतिसे आनन्दित करो।

२०३ यस्य मानुषं द्यावः न विचरति ( ३७६ )- जिसके मनुष्योंके लिए हितकारी कार्य दुलोकके समान सब जगह फैले हुए हैं।

२०४ भुजे मंहिष्ठं विप्रं अभ्यर्चत ( ३७६ )- भोग प्राप्तिके लिए सहान् जानी इन्द्रकी अराधना करो।

२०५ यः कृष्णगर्भाः निरहन् ( ३८० )- जिस इन्द्रने कृष्णकी गर्भवती स्त्रियोंको मारा।

२०६ वज्रदक्षिणं वृषणं अवस्यवे हुवेम ( ३८० ) बायें हाथमें वज्र धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रको अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम बुलाते हैं।

२०७ हे वज्रिवः ! ते तं वृषणं पृथु सासहिं लोकः कृतुं मवं गृणीमसि ( ३८३ )- हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरे

उस बलवान्, युद्धमें शत्रुओंका पराभव करनेवाले, सब लोगोंका हित करनेवाले आनन्दकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

२०८ यः एकः इत् विद्वा कृष्टीः अभ्यस्यति ( ३८७ )- जो अकेला ही इन्द्र सब शत्रुसेनाओंका विनाश करता है।

२०९ यः एकः इत् दाशुपे मर्ताय वसु विदयते ( ३८९ )- जो अकेला ही दान देनेवाले मनुष्यको धन देता है।

२१० अप्रतिष्कुतः इन्द्रः ईशानः ( ३८९ )- जिसका कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता ऐसा इन्द्र सबका ईश्वर है।

२११ नृतमाय धृष्णवे सुस्तुपे ( ३९० ) मैं श्रेष्ठ-वीर और शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करता हूँ।

२१२ ओजसा त्वं वृत्रं हंसि ( ३९१ )- अपने सामर्थ्यसे तू वृत्रको मारता है।

२१३ सत्राजित् अगोह्य ! विश्वतः पृथु दिवः, पतिः, नः आगाहि ( ३९३ )- हे सब शत्रुओंको जीतनेवाले, जिसे कोई भी हरा नहीं सकता ऐसे इन्द्र ! तू सब ओरसे विशाल और दुलोकका स्वामी है। तू हमारे पास आ।

२१४ अत्रिणं निहंसि, तं ईमहे ( ३९४ )- खाऊ शत्रुओंको तू मारता है, अतः तेरी हम प्रार्थना करते हैं।

२१५ समहसः आदित्यासः नः तुचे तुनाय जीवसे द्राघीयः आयुः सुकृणोतन ( ३९५ )- सहान् आदित्य हमारे पुत्रपौत्रोंको जीनेके लिए दीर्घायु करें।

२१६ वज्रहस्त ! निर्ऋतीनां परिव्रजं वेत्थ ( ३९६ )- हे वज्रधारी इन्द्र ! विघ्न दूर करनेके मार्ग तू जानता है।

२१७ अहः अहः शुन्ध्युः परिपदां ( ३९६ )- प्रति-दिन स्वच्छता रखनेवाला रोगोंको दूर करता है।

२१८ हे आदित्यासः ! अमीवां, स्वधं, दुर्मतिं अंहसः नः अप युयोतन ( ३९७ )- हे आदित्यो ! रोग, शत्रु, दुष्टबुद्धि, पाप इन सबको हमसे दूर करो।

२१९ त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः, अ-नाः, अनापिः ( ३९९ )- हे इन्द्र ! तू जन्मसे ही शत्रुरहित है, तेरा नेता कोई नहीं है, और भाई भी कोई नहीं है।

२२० युधा इत् आपित्वं इच्छसे ( ३९९ )- तू युद्धसे ही कोई भाई मिले ऐसी इच्छा करता है।

२२१ यः पुरा वस्यः नः प्र आनिनाय तं इन्द्रं ऊतये स्तुवे ( ४०० )- जिसने हमें पहले भी धन दिया, उस इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ।



२२२ दृढा चित् यमयिष्णवः मा अवस्थात (४०१)  
- क्लवान् और शत्रुको झुकानेवाले वीरो ! हमसे दूर मत  
रहो ।

२२३ श्वसन्तं त्वया युजा प्राति ब्रुवामिहि (४०३)  
- क्रूर कर्म करनेके कारण लम्बी सासें लेते हुए शत्रुको तेरी  
सहायतासे हम ठीक जवाब दें ।

२२४ त्वं नः ओजः नृम्णं आ भर, पृतनासहं वीरं  
आ भर (४०५) - तू हमें सामर्थ्य और धन भरपूर दे,  
और शत्रुसेनाको पराजित करनेवाला पराक्रम भी हमें दे ।

२२५ स्वराज्यं अनु अर्चन् पृथिव्याः अहिं निः  
शासा (४१०) - स्वराज्यके संरक्षणकी दृष्टिसे पृथिवीके  
अहि नामक शत्रुपर तूने शासन किया ।

२२६ तं महत्सु आजिषु अर्भे च ऊर्तिं हवामहे  
(४११) - उससे बड़े और छोटे संग्रामोंमें संरक्षणके साधन  
मांगते हैं ।

२२७ सः वाजेषु नः प्राविषत् (४११) - वह युद्धोंमें  
हमारा संरक्षण करे ।

२२८ अद्रिवन् वज्रिन् इन्द्र ! तुभ्यं इत् वीर्यं  
अनुत्तं (४१२) - हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरा पराक्रम  
अजेय है ।

२२९ स्वराज्यं अनु अर्चन् मायिनं मृगं वृत्रं मायया  
अवधीः (४१२) - अपने स्वराज्यकी रक्षाके लिए कपटी  
वृत्रको तूने कपटसे ही मारा ।

२३० प्रेहि अभिहि धृष्णुहि (४१३) - शत्रुपर आक्रमण  
कर, चारों ओरसे आक्रमण कर और उनका नाश कर ।

२३१ ते वज्रः न नियंसते (४१३) - तेरा वज्र  
किसीसे भी रोका नहीं जा सकता ।

२३२ ते शवः नृम्णं (४१३) - तेरे बल शत्रुको  
झुकानेवाले हैं ।

२३३ स्वराज्यं अनु अर्चन् वृत्रं हनः अपः जय  
(४१३) - स्वराज्यकी अर्चना करनेके लिए शत्रुको मार  
और जल जीतकर अपने अधिकारमें ले ।

२३४ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धनं धीयते  
(४१४) - जब युद्ध शुरु होता है, तब शत्रुको जीतनेवालेको  
धन मिलता है ।

२३५ कं हनः (४१४) - तू किसको मारता है ।

२३६ कं वसौ दधः (४१४) - किसको धनमें स्थापित  
करता है अर्थात् किसे धन देता है ।

२३७ नः सूनृतावतः कदा करः (४१६) - हमें  
सत्यबोलनेवाला कब करेगा, कब धन दान देगा ।

२३८ स्तोतृभ्यः इषं आ भर (४१९) - स्तुति करने-  
वालोंको भरपूर धन दे ।

२३९ नः मनः दक्षं उत क्रतुं भद्रं वातय (४२२)  
- हमारे मन, बल, कर्म और कल्याण प्राप्त हों इसलिए  
प्रेरित कर ।

२४० शिप्री उपाकयोः हस्तयोः आयसं वज्रं  
निदधे (४२३) - शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रने अपने  
दोनों हाथोंमें फौलादके वज्रको धारण किया ।

२४१ यं सजोषसः द्विषः अति नयन्ति, तं मर्त्यं  
अंहः न, दुरितं न अष्ट (४२६) - जिसको समान विचार  
और मनवाले देव शत्रुओंसे दूर करके उन्नतिके रास्ते ले जाते  
हैं, उस मनुष्यको पाप नहीं लागता और दुर्गति उसके पास  
फटकती भी नहीं ।

२४२ सक्षाणिः वृत्राणि पारि, नः ऋणया द्विषः  
तरध्वै ईरसे (४२५) - सामर्थ्यशाली तू शत्रुपर चढ़ाई  
करनेके लिए जा, हमारे ऋणोंको दूर करनेवाला तू शत्रु-  
ओंसे पार होनेके लिए शत्रुपर चढ़ाई करनेके लिए जाता है ।

२४३ हे विश्वतो-दावन् ! विश्वतः नः आ भर  
(४३७) - हे चारों ओरसे शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्र !  
चारों ओरसे हमें भरपूर धन दे ।

२४४ एष ब्रह्मा (४३८) - यह इन्द्र ज्ञानी है ।

२४५ त्वष्टा द्युमन्तं वज्रं (४४०) - त्वष्टाने तेजस्वी  
वज्र तैय्यार किया ।

२४६ रयीषिणः शं पदं मयं (४४१) - धनसे यज्ञ  
करनेवाले शान्ति, उत्तम स्थान और धन प्राप्ति करते हैं ।

२४७ अ-व्रतः नः हिनोति (४४१) - जो व्रतका  
पालन नहीं करता उसे कुछ भी नहीं मिलता ।

२४८ गावः सदा शुचयः (४४२) - गायें हमेशा शुद्ध  
रहती हैं ।

२४९ युवा श्रुतः इन्द्रः आ स्तोभति - (४४५) -  
तरुण और प्रसिद्ध इन्द्र सब शत्रुओंको मारता है ।

२५० हे अग्ने ! त्वं नः अन्तमः शिवः आता भुवः  
(४४८) - हे अग्ने ! तू हमारे पास कल्याण करनेवाला  
और संरक्षक है ।

२५१ विश्वस्य प्रस्तोभः (४५०) - सब शत्रुओंका  
नाश करनेवाला बड़ इन्द्र है ।



२५२ सु वीराः शतहिमाः मदेम ( ४५४ ) उत्तमवीर  
पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्ष तक आनन्दसे रहें ।

२५३ नः इषं पीवरीं कृणुहि ( ४५५ )- हमारे  
अन्नको पुष्टिकारक बना ।

२५४ इन्द्रः विश्वस्य राजति ( ४५६ )- इन्द्र सब  
विश्वपर राज्य करता है ।

२५५ मघवानं उग्रं सत्रा भूरि श्रवांसि दधानं

अप्रतिष्कृतं तं इन्द्रं जोहवीमि ( ४६० )- हम धनवान्,  
उग्रवीर, बहुत बल धारण करनेवाले, शत्रुसे कभी पराजित  
न होनेवाले, उस इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२५६ वज्री राये विश्वा सुपथा कर्तु ( ४६० )-  
वज्रधारी इन्द्र धन प्राप्तिके सब मार्ग सुगम करता है ।

इस प्रकार इस ऐन्द्र काण्डमें सुभाषित हैं । ये व्याख्यान,  
लेख अथवा पुस्तकोंमें प्रयोग करनेके लिए उपयोगी और  
शिक्षाप्रद हैं ।

### ऐन्द्रकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                 | देवता                          | छन्दः   |
|-------------|--------------|--------------------------------------|--------------------------------|---------|
|             |              | ( ३ )                                |                                |         |
| ११५         | ६।४५।१२      | शंयुर्बाह्रस्पत्यः                   | इन्द्रः                        | गायत्री |
| ११६         | ८।९१।१६      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | "                              | "       |
| ११७         | ८।७२।१२      | हर्यतः प्रागाथः                      | इन्द्रः ( ऋ. अग्निर्हवीषि वा ) | "       |
| ११८         | ८।९२।२५      | श्रुतकक्षः आंगिरस                    | इन्द्रः                        | "       |
| ११९         | ८।९३।७       | श्रुतकक्षः आंगिरसः                   | "                              | "       |
| १२०         | १०।१५३।२     | देवजामयः इन्द्रमातरः ऋषिकाः          | "                              | "       |
| १२१         | ८।१४।५       | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ       | "                              | "       |
| १२२         | ८।१४।१       | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ       | "                              | "       |
| १२३         | ८।१।२५       | मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः | "                              | "       |
| १२४         | ८।१।१        | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः  | "                              | "       |
|             |              | ( ४ )                                |                                |         |
| १२५         | ८।९३।१       | सुकक्षश्रुतकक्षौ                     | "                              | "       |
| १२६         | ८।९३।४       | सुकक्षश्रुतकक्षौ                     | "                              | "       |
| १२७         | ६।४५।१       | भारद्वाजः                            | "                              | "       |
| १२८         | ८।९१।३१      | श्रुतकक्षः                           | "                              | "       |
| १२९         | १।८।१        | मधुच्छन्दा वंश्वामित्रः              | "                              | "       |
| १३०         | १।७।५        | मधुच्छन्दा वंश्वामित्रः              | "                              | "       |
| १३१         | ८।४५।२६      | त्रिशोकः काण्वः                      | "                              | "       |
| १३२         | ७।३१।४       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                 | "                              | "       |
| १३३         | ८।४५।१       | त्रिशोकः काण्वः                      | "                              | "       |
| १३४         | ८।४५।४०      | त्रिशोकः काण्वः                      | "                              | "       |
|             |              | ( ५ )                                |                                |         |
| १३५         | १।३७।३       | काण्वो घौरः                          | "                              | "       |
| १३६         | ८।४५।१६      | त्रिशोकः काण्वः                      | "                              | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                 | वेवता   | छन्दः   |
|-------------|--------------|--------------------------------------|---------|---------|
| १३७         | ८।६।४        | वत्सः काण्वः                         | इन्द्रः | गायत्री |
| १३८         | ८।८३।१       | कुसीदी काण्वः                        | "       | "       |
| १३९         | १।१८।१       | मेधातिथिः काण्वः                     | "       | "       |
| १४०         | ८।९३।१८      | श्रुतकक्षः आंगिरसः                   | "       | "       |
| १४१         | ५।८१।४       | श्यावाश्वः आत्रेयः                   | "       | "       |
| १४२         | ८।६४।७       | प्रगाथः काण्वः                       | "       | "       |
| १४३         | ८।६।१८       | वत्सः काण्वः                         | "       | "       |
| १४४         | ८।१६।१       | हरिम्बिठिः काण्वः                    | "       | "       |
| ( ६ )       |              |                                      |         |         |
| १४५         | ८।९२।४       | श्रुतकक्षः आंगिरसः                   | "       | "       |
| १४६         | ६।४५।२५      | मेधातिथिः काण्वः                     | "       | "       |
| १४७         | १।८४।१५      | गौतमो राहूगणः                        | "       | "       |
| १४८         | ६।५७।४       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः                | "       | "       |
| १४९         | ८।९४।१       | बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः          | भरतः    | "       |
| १५०         | ८।९३।३१      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा                | इन्द्रः | "       |
| १५१         | ८।९३।२३      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा                | "       | "       |
| १५२         | ८।६।१०       | वत्सः काण्वः                         | "       | "       |
| १५३         | १।३०।१३      | शुनःशेष आजोगतिः                      | "       | "       |
| १५४         | —            | शुनःशेष आजोगतिः वामदेवो वा           | "       | "       |
| ( ७ )       |              |                                      |         |         |
| १५५         | ८।९१।१       | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | "       | "       |
| १५६         | ७।३१।१       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                 | "       | "       |
| १५७         | ८।२।१६       | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः | "       | "       |
| १५८         | ८।९१।१९      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | "       | "       |
| १५९         | ८।१७।११      | हरिम्बिठिः काण्वः                    | "       | "       |
| १६०         | १।४।१        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः              | "       | "       |
| १६१         | ८।४५।२९      | त्रिशोकः काण्वः                      | "       | "       |
| १६२         | ८।८२।७       | कुसीदी काण्वः                        | "       | "       |
| १६३         | १।३०।७       | शुनःशेष आजोगतिः                      | "       | "       |
| १६४         | १।५।१        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः              | "       | "       |
| ( ८ )       |              |                                      |         |         |
| १६५         | ३।५१।१०      | विश्वामित्रो गायनिः                  | "       | "       |
| १६६         | १।८।५        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः              | "       | "       |
| १६७         | ८।८१।१       | कुसीदी काण्वः                        | "       | "       |
| १६८         | ८।६९।४       | प्रियमेध आंगिरसः                     | "       | "       |
| १६९         | ४।३१।१       | वामदेवो गौतमः                        | "       | "       |
| १७०         | ८।९१।७       | श्रुतकक्ष सुकक्षो वा आंगिरसः         | "       | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                          | देवता   | छन्दः   |
|-------------|--------------|-------------------------------|---------|---------|
| १७१         | १।१८।६       | मेधातिथिः काण्वः              | इन्द्रः | गायत्री |
| १७२         | —            | वामदेवो गौतमः                 | "       | "       |
| १७३         | ८।९३।९८      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | "       | "       |
| १७४         | ८।९४।४       | बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः   | "       | "       |
| ( ९ )       |              |                               |         |         |
| १७५         | १०।१५३।१     | देवजामयः इन्द्रमातरः          | "       | "       |
| १७६         | १०।१३४।७     | गोधा ऋषिका                    | "       | "       |
| १७७         | —            | दध्यङ्ङाय वंणः                | "       | "       |
| १७८         | १।४६।१       | प्रस्कण्वः काण्वः             | "       | "       |
| १७९         | १।८४।१३      | गौतमो राहूगणः                 | "       | "       |
| १८०         | १।९।१        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः       | "       | "       |
| १८१         | ४।३१।१       | वामदेवो गौतमः                 | "       | "       |
| १८२         | ८।६।५        | वत्सः काण्वः                  | "       | "       |
| १८३         | १।३०।४       | शुनःशेष आजीगर्तिः             | "       | "       |
| १८४         | १०।१८६।१     | उलो वातायनः                   | "       | "       |
| ( १० )      |              |                               |         |         |
| १८५         | १।४१।१       | कण्वो घोरः                    | "       | "       |
| १८६         | ८।४६।१०      | वत्सः काण्वः                  | "       | "       |
| १८७         | ८।६।१३       | वत्सः काण्वः                  | "       | "       |
| १८८         | ८।९३।१७      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | "       | "       |
| १८९         | १।३०।१       | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः       | "       | "       |
| १९०         | —            | वामदेवो गौतमः                 | "       | "       |
| १९१         | ८।१७।१       | इरिम्बिठिः काण्वः             | "       | "       |
| १९२         | १०।१८५।१     | सत्यधृतिर्वारुणिः             | "       | "       |
| १९३         | ८।४६।१       | वत्सः काण्वः                  | "       | "       |
| ( ११ )      |              |                               |         |         |
| १९४         | ८।६४।१       | प्रगाथः काण्वः                | "       | "       |
| १९५         | ३।४०।६       | विश्वामित्रो गाथिनः           | "       | "       |
| १९६         | —            | वामदेवो गौतमः                 | "       | "       |
| १९७         | ८।९१।२२      | श्रुतकक्ष आंगिरसः             | "       | "       |
| १९८         | १।७।१        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः       | "       | "       |
| १९९         | ८।९३।३४      | श्रुतकक्षः आंगिरसः            | "       | "       |
| २००         | १।४१।१०      | गृत्समदः शौनकः                | "       | "       |
| २०१         | ६।४५।९८      | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः         | "       | "       |
| २०२         | ६।५७।१       | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः         | "       | "       |
| २०३         | ४।३०।१       | वामदेवो गौतमः                 | "       | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                | देवता               | छन्दः   |
|-------------|--------------|-------------------------------------|---------------------|---------|
| ( १२ )      |              |                                     |                     |         |
| १०४         | ८४५।२८       | त्रिशोकः काण्वः                     | इन्द्रः             | गायत्री |
| १०५         | १।९।४        | मधुच्छन्दा वैः शमित्रः              | "                   | "       |
| १०६         | ८४६।४        | वत्सः काण्वः                        | "                   | "       |
| १०७         | ८४५।१        | त्रिशोकः काण्वः                     | "                   | "       |
| १०८         | ८।९३।१६      | सुकक्ष आंगिरसः                      | "                   | "       |
| १०९         | —            | वामदेवो गौतमः                       | "                   | "       |
| ११०         | ३।५२।१       | विश्वामित्रो गाथिनः                 | "                   | "       |
| १११         | ८।१४।१३      | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ      | "                   | "       |
| ११२         | —            | वामदेवो गौतमः                       | "                   | "       |
| ११३         | ८।९३।२५      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः       | "                   | "       |
| ( १३ )      |              |                                     |                     |         |
| ११४         | १।३०।१       | शुनः शेष आजोगतिः                    | "                   | "       |
| ११५         | ८।९२।१०      | श्रुतकक्ष आंगिरसः                   | "                   | "       |
| ११६         | ८।४५।४       | त्रिशोकः काण्वः                     | "                   | "       |
| ११७         | ८।३२।१०      | मेधातिथिः काण्वः                    | "                   | "       |
| ११८         | १।९०।१       | गौतमो राहगणः                        | "                   | "       |
| ११९         | ८।५।१        | ब्रह्मातिथिः काण्वः                 | अश्विनौ मित्रावरुणौ | "       |
| १२०         | ३।६२।१६      | विश्वामित्रो गाथिनो जमदग्निर्वा     | इन्द्रः             | "       |
| १२१         | १।३७।१०      | प्रस्कण्वः काण्वः                   | मरुतः               | "       |
| १२२         | १।२२।१७      | मेधातिथिः काण्वः                    | विष्णुः             | "       |
| ( १४ )      |              |                                     |                     |         |
| १२३         | ८।३२।२१      | मेधातिथिः काण्वः                    | इन्द्रः             | "       |
| १२४         | —            | वामदेवो गौतमः                       | "                   | "       |
| १२५         | ८।२।१४       | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | "                   | "       |
| १२६         | —            | विश्वामित्रो गाथिनः                 | "                   | "       |
| १२७         | ८।२।१९       | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | "                   | "       |
| १२८         | १०।१०५।१     | दुमित्रः ( सुमित्रो वा ) कौत्सः     | "                   | "       |
| १२९         | १।१५।५       | मेधातिथिः काण्वः                    | "                   | "       |
| १३०         | ८।३१।७       | मेधातिथिः काण्वः                    | "                   | "       |
| १३१         | —            | विश्वामित्रो गाथिनोऽभीपाद् उदलो वा  | "                   | "       |
| १३२         | ८।९२।२८      | श्रुतकक्षः आंगिरसः                  | "                   | "       |
| ( १५ )      |              |                                     |                     |         |
| १३३         | ७।३२।२२      | वसिष्ठो मित्रावरुणिः                | "                   | बृहती   |
| १३४         | ४।४६।१       | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः               | "                   | "       |
| १३५         | ८।४९।१       | प्रस्कण्वः काण्वः                   | "                   | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                 | देवता   | छन्दः |
|-------------|--------------|----------------------|---------|-------|
| २३६         | ८।८८।१       | नोषा गौतमः           | इन्द्रः | बृहती |
| २३७         | ८।६६।१       | कलिः प्रागाथः        | "       | "     |
| २३८         | ७।३१।२०      | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "     |
| २३९         | ८।३।१        | मेघातिथिः काण्वः     | "       | "     |
| २४०         | ८।६१।७       | भर्गः प्रागाथः       | "       | "     |
| २४१         | ७।५९।३       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | मरुतः   | "     |
| २४२         | ८।१।१        | प्रागाथो घोरः काण्वः | इन्द्रः | "     |

( १६ )

|     |         |                                 |   |   |
|-----|---------|---------------------------------|---|---|
| २४३ | ८।७०।३  | पुरुहन्मा आंगिरसः               | " | " |
| २४४ | ८।१।१२  | मेघातिथि-मेघ्यातिथी काण्वौ      | " | " |
| २४५ | ८।१।२४  | मेघातिथि-मेघ्यातिथी काण्वौ      | " | " |
| २४६ | ३।४५।१  | विश्वामित्रो गायिनः             | " | " |
| २४७ | १।८४।१९ | गौतमो राहूगणः                   | " | " |
| २४८ | ८।९०।५  | नृमेघपुरुमेघावांगिरसौ           | " | " |
| २४९ | ८।३।५   | मेघातिथिर्मेघ्यातिथिर्वा काण्वः | " | " |
| २५० | ८।३।३   | मेघातिथिर्मेघ्यातिथिर्वा काण्वः | " | " |
| २५१ | ८।३।१५  | मेघातिथिर्मेघ्यातिथिर्वा काण्वः | " | " |
| २५२ | ८।४।३   | देवातिथिः काण्वः                | " | " |

( १७ )

|     |         |                       |   |   |
|-----|---------|-----------------------|---|---|
| २५३ | ८।६१।५  | भर्गः प्रागाथः        | " | " |
| २५४ | ८।९७।१  | रेभः काश्यपः          | " | " |
| २५५ | ८।१०१।५ | जमदग्निर्भर्गवः       | " | " |
| २५६ | ८।३।७   | मेघातिथिः काण्वः      | " | " |
| २५७ | ८।८२।३  | नृमेघपुरुमेघावांगिरसौ | " | " |
| २५८ | ८।८९।१  | नृमेघपुरुमेघावांगिरसौ | " | " |
| २५९ | ७।३१।२६ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः  | " | " |
| २६० | ८।९७।७  | रेभः काश्यपः          | " | " |
| २६१ | ८।३३।१  | मेघातिथिः काण्वः      | " | " |
| २६२ | ६।४६।७  | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः | " | " |

( १८ )

|     |         |                       |   |   |
|-----|---------|-----------------------|---|---|
| २६३ | ८।३३।१० | मेघातिथिः काण्वः      | " | " |
| २६४ | ८।९७।४  | रेभः काश्यपः          | " | " |
| २६५ | ८।४६।१४ | वत्सः                 | " | " |
| २६६ | ६।४६।९  | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः | " | " |
| २६७ | ८।९९।३  | नृमेघः आंगिरसः        | " | " |
| २६८ | ८।७०।७  | पुरुहन्मा आंगिरसः     | " | " |
| २६९ | ८।९०।१  | नृमेघपुरुमेघावांगिरसौ | " | " |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                       | वेद्यता | छन्दः |
|-------------|--------------|----------------------------|---------|-------|
| २७०         | ७।३१।१६      | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः       | इन्द्रः | बृहती |
| २७१         | ८।१।७        | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | "       | "     |
| २७२         | ८।६६।७       | कलिः प्रागाथः              | "       | "     |

( १९ )

|     |          |                       |   |   |
|-----|----------|-----------------------|---|---|
| २७३ | ८।७०।१   | पुरुहन्मा आंगिरसः     | " | " |
| २७४ | ८।६१।१३  | भर्गः प्रागाथः        | " | " |
| २७५ | ८।१७।१४  | हरिन्मिठिः काण्वः     | " | " |
| २७६ | ८।१०।१११ | जमवग्निभर्गवः         | " | " |
| २७७ | ८।४।९    | देवातिथिः काण्वः      | " | " |
| २७८ | ८।७०।५   | पुरुहन्मा आंगिरसः     | " | " |
| २७९ | ८।४।१    | देवातिथिः काण्वः      | " | " |
| २८० | ७।३१।१४  | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः  | " | " |
| २८१ | ६।५९।६   | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | " | " |
| २८२ | ८।५३।५   | मेघ्यः काण्वः         | " | " |

( २० )

|     |         |                            |   |   |
|-----|---------|----------------------------|---|---|
| २८३ | ८।९९।७  | नृमेधः आंगिरसः             | " | " |
| २८४ | ७।३१।१  | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः       | " | " |
| २८५ | ७।३१।८  | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः       | " | " |
| २८६ | ६।४६।३  | भरद्वाजः बार्हस्पत्यः      | " | " |
| २८७ | १।१३९।५ | परुच्छेपो देवोदासिः        | " | " |
| २८८ | —       | वामदेवो गौतमः              | " | " |
| २८९ | ८।३३।४  | मेध्यातिथिः काण्वः         | " | " |
| २९० | ८।६१।१  | भर्गः प्रागाथः             | " | " |
| २९१ | ८।१।५   | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | " | " |
| २९२ | ८।१।६   | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ | " | " |

( २१ )

|     |        |  |  |   |
|-----|--------|--|--|---|
| २९३ | ७।३१।४ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः                           | "  | " |
| २९४ | —      | वामदेवो गौतमः                                  | "  | " |
| २९५ | ८।१।१० | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ विश्वामित्र इत्येके | "  | " |
| २९६ | ८।८८।३ | नौषा गौतमः                                     | "  | " |
| २९७ | ८।३३।७ | मेधातिथिः काण्वः                               | "  | " |
| २९८ | —      | वामदेवो गौतमः                                  | "  | " |
| २९९ | —      | वामदेवो गौतमः                                  | "  | " |
| ३०० | ८।५१।७ | श्रुष्टिगुः काण्वः                             | त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः | " |
| ३०१ | ८।३।१७ | मेधातिथिः काण्वः                               | इन्द्रः                                  | " |
| ३०२ | ८।९९।१ | नृमेधः आंगिरसः                                 | "  | " |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                           | देवता   | छन्दः      |
|-------------|--------------|--------------------------------|---------|------------|
|             |              | ( २२ )                         |         |            |
| ३०३         | ७।८१।१       | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | उषा     | बृहती      |
| ३०४         | ७।७४।१       | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | अश्विनौ | "          |
| ३०५         | —            | अश्विनौ वेवस्वतौ               | "       | "          |
| ३०६         | १।४७।१       | प्रस्कण्वः काण्वः              | इन्द्रः | "          |
| ३०७         | ८।१।१०       | मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ     | "       | "          |
| ३०८         | ८।४।११       | देवातिथिः काण्वः               | "       | "          |
| ३०९         | ७।३२।२४      | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | "       | "          |
| ३१०         | ७।३२।१८      | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | "       | "          |
| ३११         | ८।९९।१       | नृमेध आंगिरसः                  | "       | "          |
| ३१२         | ८।८८।५       | नौधाः गौतमः                    | "       | "          |
|             |              | ( २३ )                         |         |            |
| ३१३         | ७।२१।१       | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | "       | त्रिष्टुप् |
| ३१४         | ७।२४।१       | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | "       | "          |
| ३१५         | ५।३२।१       | गातुरात्रेयः                   | "       | "          |
| ३१६         | १०।१४८।१     | पृथुर्वेन्यः                   | "       | "          |
| ३१७         | १०।४७।१      | सप्तगुरांगिरसः                 | "       | "          |
| ३१८         | ७।२७।१       | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | "       | "          |
| ३१९         | १०।७३।११     | गोरिवीतिः शाक्यः               | "       | "          |
| ३२०         | १०।१२३।६     | धेनो भार्गवः                   | देवः    | "          |
| ३२१         | —            | बृहस्पतिर्नकुलो वा             | इन्द्रः | "          |
| ३२२         | ६।३१।१       | सुहोत्रो भारद्वाजः             | "       | "          |
|             |              | ( २४ )                         |         |            |
| ३२३         | ८।९६।१३      | द्युतानो मारुतः                | "       | "          |
| ३२४         | ८।९६।७       | द्युतानो मारुतः                | "       | "          |
| ३२५         | १०।५५।५      | बृहवृक्यो वामदेव्यः            | "       | "          |
| ३२६         | ८।९६।१६      | द्युतानो मारुतः                | "       | "          |
| ३२७         | —            | वामदेवो गौतमः                  | "       | "          |
| ३२८         | ७।३१।१०      | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | "       | "          |
| ३२९         | ३।३०।२२      | विश्वामित्रो गाथिनः            | "       | "          |
| ३३०         | ७।२३।१       | वसिष्ठो मंत्रावरणिः            | "       | "          |
| ३३१         | १०।७३।९      | गोरिवीतिः शाक्यः               | "       | "          |
|             |              | ( २५ )                         |         |            |
| ३३२         | १०।१७८।१     | अरिष्टनेमिस्ताक्यः             | "       | "          |
| ३३३         | ६।४७।११      | भरद्वाजः                       | "       | "          |
| ३३४         | १०।२९।१      | विमद ऐन्द्रः, वसुकुन्दा वासुकः | "       | "          |
| ३३५         | ४।१७।८       | वामदेवो गौतमः                  | "       | "          |



| संज्ञासंख्या | संज्ञासंख्या | श्रुतिः                               | देवता       | छन्दः      |
|--------------|--------------|---------------------------------------|-------------|------------|
| ३३६          | —            | वामदेवो गौतमः                         | इन्द्रः     | त्रिष्टुप् |
| ३३७          | —            | वामदेवो गौतमः                         | "           | "          |
| ३३८          | ३५३१२        | विश्वामित्रो गायितः                   | "           | "          |
| ३३९          | १०८९१४       | रेणुर्विश्वामित्रः                    | "           | "          |
| ३४०          | १०१०११       | वामदेवो गौतमः                         | "           | "          |
| ३४१          | १८४११६       | गौतमो राहूगणः                         | "           | "          |
| ( २६ )       |              |                                       |             |            |
| ३४२          | ११०११        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः               | "           | अनुष्टुप्  |
| ३४३          | १११११        | जेता माधुच्छन्दासः                    | "           | "          |
| ३४४          | १८४१४        | गौतमो राहूगणः                         | "           | "          |
| ३४५          | ५१३९११       | अत्रिभौमः                             | "           | "          |
| ३४६          | ८१९५१४       | तिरश्चीरांगिरसः                       | "           | "          |
| ३४७          | १८४११        | गौतमो राहूगणः                         | "           | "          |
| ३४८          | ८१३४११       | नीपातिथिः काण्वः                      | "           | "          |
| ३४९          | ८१९५११       | तिरश्चीरांगिरसः                       | "           | "          |
| ३५०          | ८१९५१७       | विश्वामित्रो गायितः                   | "           | "          |
| ३५१          | ६१४४११       | तिरश्चीरांगिरसः शंयुर्बाह्रस्पत्यो वा | "           | "          |
| ( २७ )       |              |                                       |             |            |
| ३५२          | ६१४४११       | भरद्वाजो बाह्रस्पत्यः                 | "           | "          |
| ३५३          | —            | वामदेवो गौतमः, शाकपूतो वा             | "           | "          |
| ३५४          | ८१६८११       | प्रियमेषः आंगिरसः                     | "           | "          |
| ३५५          | ८१६३११       | प्रगाथः काण्वः                        | "           | "          |
| ३५६          | —            | स्यावाश्व आत्रेयः                     | मरुतः       | "          |
| ३५७          | ६१४४१४       | शंयुर्बाह्रस्पत्यः                    | इन्द्रः     | "          |
| ३५८          | ४१३९१६       | वामदेवो गौतमः                         | वसिष्ठा     | "          |
| ३५९          | १११११४       | जेता माधुच्छन्दासः                    | इन्द्रः     | "          |
| ( २८ )       |              |                                       |             |            |
| ३६०          | ८१६९११       | प्रियमेषः आंगिरसः                     | "           | "          |
| ३६१          | —            | वामदेवो गौतमः                         | "           | "          |
| ३६२          | ८१६९१८       | प्रियमेषः आंगिरसः                     | "           | "          |
| ३६३          | ११०१५        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः               | "           | "          |
| ३६४          | ८१६८१४       | प्रियमेषः आंगिरसः                     | "           | "          |
| ३६५          | ६१११४        | भरद्वाजो बाह्रस्पत्यः                 | "           | "          |
| ३६६          | ५१३८११       | अत्रिभौमः                             | "           | "          |
| ३६७          | ११४९१३       | प्रस्कण्वः काण्वः                     | उषा         | "          |
| ३६८          | ११०५१५       | त्रित आप्त्यः                         | विश्वेदेवाः | "          |
| ३६९          | —            | वामदेवो गौतमः                         | इन्द्रः     | "          |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                           | देवता        | छन्दः        |
|-------------|--------------|--------------------------------|--------------|--------------|
| ( २९ )      |              |                                |              |              |
| ३७०         | ८.९७।१०      | रेभः काश्यपः                   | "            | अति जगती     |
| ३७१         | १०।१४७।१     | सुवेदाः शैलूषिः                | "            | जगती         |
| ३७२         | —            | वामदेवो गौतमः                  | "            | "            |
| ३७३         | १।५७।४       | सव्य आंगिरसः                   | "            | "            |
| ३७४         | ३।५१।१       | विश्वामित्रो गाथिनः            | "            | "            |
| ३७५         | १०।४३।१      | कृष्ण आंगिरसः                  | "            | "            |
| ३७६         | १।५१।१       | सव्य आंगिरसः                   | "            | "            |
| ३७७         | १।५२।१       | सव्य आंगिरसः                   | "            | "            |
| ३७८         | ६।७०।१       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः          | द्यावापृथिवी | "            |
| ३७९         | १०।१३४।१     | मेधातिथिः काण्वः               | इन्द्रः      | महर्षिः      |
| ३८०         | १।१०१।१      | कुत्स आंगिरसः                  | "            | जगती         |
| ( ३० )      |              |                                |              |              |
| ३८१         | ८।१३।१       | नारदः काण्वः                   | "            | उष्णिक्      |
| ३८२         | ८।१५।१       | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो काण्वायनो | "            | "            |
| ३८३         | ८।१५।४       | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो काण्वायनो | "            | "            |
| ३८४         | ८।१२।२६      | पर्वतः काण्वः                  | "            | "            |
| ३८५         | ८।१४।२६      | विश्वमना वयश्वः                | "            | "            |
| ३८६         | ८।१४।२३      | विश्वमना वयश्वः                | "            | "            |
| ३८७         | ८।१४।२९      | विश्वमना वयश्वः                | "            | "            |
| ३८८         | ८।९८।१       | नृमेघ आंगिरसः                  | "            | "            |
| ३८९         | १।८४।७       | गोतमो राहूगणः                  | "            | "            |
| ३९०         | ८।१४।१       | विश्वमना वयश्वः                | "            | "            |
| ( ३१ )      |              |                                |              |              |
| ३९१         | ८।६२।८       | प्रगाथो घोरः काण्वः            | "            | "            |
| ३९२         | ६।४३।१       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः          | "            | "            |
| ३९३         | ८।९८।४       | नृमेघ आंगिरसः                  | "            | "            |
| ३९४         | ८।१२।१       | पर्वतः काण्वः                  | "            | "            |
| ३९५         | ८।१८।१८      | हरिम्बिठिः काण्वः              | आदित्याः     | "            |
| ३९६         | ८।१४।२४      | विश्वमना वयश्वः                | इन्द्रः      | "            |
| ३९७         | ८।१८।१०      | हरिम्बिठिः काण्वः              | आदित्याः     | "            |
| ३९८         | ७।२२।१       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः           | इन्द्रः      | विराडुष्णिक् |
| ( ३२ )      |              |                                |              |              |
| ३९९         | ८।२१।१३      | सौभरिः काण्वः                  | "            | ककुप्        |
| ४००         | ८।२१।९       | सौभरिः काण्वः                  | "            | "            |
| ४०१         | ८।२०।१       | सौभरिः काण्वः                  | मरुतः        | "            |
| ४०२         | ८।२१।३       | सौभरिः काण्वः                  | इन्द्रः      | "            |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                        | देवता             | छन्दः                  |
|-------------|--------------|-----------------------------|-------------------|------------------------|
| ४०३         | ८।२१।११      | सौभरिः काण्वः               | इन्द्रः           | ककुप्                  |
| ४०४         | ८।२०।२१      | सौभरिः काण्वः               | मरुतः             | "                      |
| ४०५         | ८।२०।१०      | नृमेध आंगिरसः               | इन्द्रः           | "                      |
| ४०६         | ८।२०।७       | नृमेध आंगिरसः               | "                 | "                      |
| ४०७         | ८।२१।५       | सौभरिः काण्वः               | "                 | "                      |
| ४०८         | ८।२१।१       | सौभरिः काण्वः               | "                 | "                      |
| ( ३३ )      |              |                             |                   |                        |
| ४०९         | १।८४।१०      | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | "                 | पंक्तिः                |
| ४१०         | १।८०।१       | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | "                 | "                      |
| ४११         | १।८१।१       | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | "                 | "                      |
| ४१२         | १।८०।७       | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | "                 | "                      |
| ४१३         | १।८०।३       | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | "                 | "                      |
| ४१४         | १।८१।३       | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | "                 | "                      |
| ४१५         | १।८१।२       | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | "                 | "                      |
| ४१६         | १।८१।१       | गोतमो ( सम्मदो वा ) राहूगणः | "                 | "                      |
| ४१७         | १।१०५।१      | त्रित आप्त्यः               | "                 | "                      |
| ४१८         | ५।७५।१       | अवस्युरात्रेयः              | विश्वेदेवाः       | "                      |
| ( ३४ )      |              |                             |                   |                        |
| ४१९         | ५।६।४        | वसुधुत आत्रेयः              | अग्निः            | "                      |
| ४२०         | १।०।२१।१     | विमद ऐन्द्रः                | "                 | "                      |
| ४२१         | ५।७९।१       | सत्यश्रवा आत्रेयः           | उषा               | "                      |
| ४२२         | १।०।२५।१     | विमद ऐन्द्रः                | सोमः              | "                      |
| ४२३         | १।८१।४       | गोतमो राहूगणः               | इन्द्रः           | "                      |
| ४२४         | १।८१।४       | गोतमो राहूगणः               | "                 | "                      |
| ४२५         | ५।६।१        | वसुधुत आत्रेयः              | अग्निः            | "                      |
| ४२६         | १।०।१९६।१    | अंहोमुग्वामदेव्यः           | विश्वेदेवाः       | बृहती                  |
| ( ३५ )      |              |                             |                   |                        |
| ४२७         | ९।१०९।१      | ऋण त्रसदस्यू                | पवमानः सोमः       | द्विपदा विराट्         |
| ४२८         | ९।११०।१      | ऋण त्रसदस्यू                | "                 | त्रिपदा अनुष्टुप्पिपी- |
| ४२९         | ९।१०९।४      | ऋण त्रसदस्यू                | "                 | लिकामध्या              |
| ४३०         | ९।१०९।१०     | ऋण त्रसदस्यू                | "                 | द्विपदा विराट्         |
| ४३१         | ९।१०९।१३     | ऋण त्रसदस्यू                | "                 | "                      |
| ४३२         | ९।११०।२      | ऋण त्रसदस्यू                | "                 | "                      |
| ४३३         | ७।५६।१       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः        | त्रिपदा अनुष्टुप् | पिपीलिका मध्या         |
| ४३४         | ४।१०।१       | वामदेवो गौतमः               | मरुतः             | द्विपदा विराट्         |
| ४३५         | —            | ऋण त्रसदस्यू                | अग्निः            | पदपंक्तिः              |
|             |              |                             | वाजिनः            | पुर उष्णिक्            |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः   | देवता       | छन्दः          |
|-------------|--------------|--|-------------|----------------|
| ४३६         | २।१०९।७      | ऋण त्रसदस्युः<br>( ३६ )  | पवमानः सोमः | द्विपदा विराट् |
| ४३७         | —            | त्रसदस्युः   | इन्द्रः     | द्विपदा विराट् |
| ४३८         | —            | त्रसदस्युः   | "           | "              |
| ४३९         | ५।३१।४       | त्रसदस्युः   | "           | "              |
| ४४०         | ५।३१।४       | त्रसदस्युः   | "           | "              |
| ४४१         | —            | त्रसदस्युः   | "           | "              |
| ४४२         | —            | त्रसदस्युः   | विश्वेदेवाः | "              |
| ४४३         | १०।१७९।१     | संवर्त आंगिरसः   | उषा         | "              |
| ४४४         | —            | त्रसदस्युः   | इन्द्रः     | "              |
| ४४५         | —            | त्रसदस्युः   | "           | "              |
| ४४६         | —            | त्रसदस्युः   | "           | "              |
| ४४७         | ८।५६।५       | ( ३७ )   | अग्निः      | "              |
| ४४८         | ५।१४।१       | पृषधः क्राण्वः   | "           | "              |
| ४४९         | —            | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुः विप्र-<br>बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा | इन्द्रः     | "              |
| ४५०         | —            | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुविप्र-<br>बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा   | "           | "              |
| ४५१         | १०।१७२।४     | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुविप्र-<br>बन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा   | उषा         | "              |
| ४५२         | १०।१५७।१     | संवर्त आंगिरसः   | विश्वेदेवाः | "              |
| ४५३         | —            | भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः  | "           | "              |
| ४५४         | ६।१७।१५      | कवष ऐलूषः  | इन्द्रः     | "              |
| ४५५         | —            | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | विश्वेदेवाः | "              |
| ४५६         | यजु० ३६।८    | आत्रेयः  | इन्द्रः     | एकपदा          |
| ४५७         | २।२२।१       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः<br>( ३८ )   | इन्द्रः     | अष्टिः         |
| ४५८         | —            | गुत्समदः शौनकः   | सूर्यः      | अतिजगती        |
| ४५९         | १।१३०।१      | गौरांगिरसः   | इन्द्रः     | अत्यष्टिः      |
| ४६०         | ८।९७।१३      | परुच्छेपो देवोदासिः  | "           | अतिजगती        |
| ४६१         | १।१३९।१      | रेभः काश्यपः   | विश्वेदेवाः | अत्यष्टिः      |
| ४६२         | ५।९७।१       | परुच्छेपो देवोदासिः  | मरुतः       | अतिजगती        |
| ४६३         | २।१११।१      | एवयामरुदात्रेयः  | पवमानः सोमः | अत्यष्टिः      |
| ४६४         | —            | अनानतः पारुच्छेपिः   | सविता       | "              |
| ४६५         | १।१२७।१      | नकुलः  | अग्निः      | "              |
| ४६६         | २।१२।४       | परुच्छेपो देवोदासिः  | इन्द्रः     | अष्टिः         |
|             |              | गुत्समदः शौनकः   |             |                |



## अथ पक्वमानं काण्डम् ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

[ ९ ]

( १-१० ) १, ४ अमहीयुराङ्गिरसः; २ मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः; ३ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भर्गवो वा; ५ त्रित आप्त्यः;  
६ कश्यपो मारीचः; ७ जमदग्निर्भर्गवः; ८ वृद्धयुत आगस्त्यः; ९, १० असितः काश्यपो देवलो वा ॥

पक्वमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४६७ उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१० )  
४६८ स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )  
४६९ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।६५।१० )  
४७० यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघश्च सहा ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।६१।१९ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ४६७ ] हे सोम ! ( ते अन्धसः ) तेरे इस अन्नरूपी रसका ( जातं उच्चा ) जन्म ऊँचे ( दिवि ) द्युलोकमें हुआ है, ( सत् उग्रं शर्म ) द्युलोकमें होनेवाले प्रभावशाली सुख और ( महि श्रवः ) महान् अन्न ( भूम्या ददे ) भूमि पर प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

१ ते जातं दिवि उच्च— तुझ सोमका जन्म द्युलोकमें ऊँचे स्थान पर हुआ है ।

२ उग्रं शर्म महि श्रवः भूम्या ददे— वहासे महान् सुख और उत्तम अन्न पृथ्वी पर हमें प्राप्त होते हैं ।

[ ४६८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( इन्द्राय पातवे सुतः ) इन्द्रके पीनेके लिए निकाला गया यह रसरूप तू ( स्वादिष्टया ) स्वादिष्ट और ( मदिष्टया ) हर्ष उत्पन्न करनेवाली ( धारया पवस्व ) धारासे प्रवाहित हो ॥ २ ॥

१ इन्द्राय पातवे सुतः— इन्द्रके पीनेके लिए यह रस निकाला गया है ।

२ स्वादिष्टया मदिष्टया धारया पवस्व— वह रस स्वादिष्ट और हर्ष बढ़ानेवाला है ।

[ ४६९ ] हे सोम ! ( वृषा धारया पवस्व ) बलशाली धारासे तू कलशमें आ और ( मरुत्वते ) मरुत् जिसकी सहायता करते हैं, उस इन्द्रके लिए ( विश्वा ओजसा दधानः ) सब सामर्थ्यसे युक्त होकर ( मत्सरः ) आनन्द बढ़ाने-वाला हो ॥ ३ ॥

१ वृषा पवस्व धारया— जोरके प्रवाहसे बर्तनमें रस पड़े ।

२ मरुत्वते ( इन्द्राय )— इन्द्रके मदके लिए मरुत् आते हैं ।

३ विश्वा ओजसा दधानः— सब सामर्थ्यसे धारण कर ।

४ मत्सरः ( मद-सरः )— आनन्द बढ़ानेवाला हो । सोमरस पीनेसे शक्ति और आनन्द बढ़ता है ।

[ ४७० ] हे सोम ! ( ते देवावीः ) तेरा जो देवोंको बुलानेवाला ( अघ-शंस-हा ) पापी और दुष्टोंका नाश करनेवाला, ( वरेण्यः मदः ) श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला ( यः रसः ) जो रस है, ( तेन अन्धसा ) उस अन्न रूप रसके साथ ( पवस्व ) कलशमें तू आ ॥ ४ ॥



- ४७१ <sup>३ २ ३</sup> तिस्रो <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> वाच उदीरते <sup>३ १ २</sup> गावो <sup>१ २ ३ १ २</sup> मिमन्ति <sup>३ १ २</sup> धेनवः । <sup>१ २ ३ १ २</sup> हरिरेति <sup>३ १ २</sup> कनिक्रदत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३३।४ )
- ४७२ <sup>१ २</sup> इन्द्रायेन्दो <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मरुत्वते <sup>३ १ २</sup> पवस्व <sup>३ १ २</sup> मधुमत्तमः । <sup>३ १ २</sup> अर्कस्य <sup>३ १ २</sup> योनिमासदम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।६४।२२ )
- ४७३ <sup>१ २ ३</sup> असाव्य <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अंशुमदायाप्सु <sup>३ १ २</sup> दक्षो <sup>३ १ २</sup> गिरिष्ठाः । <sup>३ १ २</sup> श्येनो <sup>३ १ २</sup> न <sup>३ १ २</sup> योनिमासदत् ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।६२।४ )
- ४७४ <sup>१ २</sup> पवस्व <sup>३ १ २</sup> दक्षसाधनो <sup>३ १ २</sup> देवेभ्यः <sup>३ १ २</sup> पीतये <sup>३ १ २</sup> हरे । <sup>३ १ २</sup> मरुद्भ्यो <sup>३ १ २</sup> वायवे <sup>३ १ २</sup> मदः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।२९।१ )

१ देवावीः ( देव-आवीः )— देवोंको प्रिय, देव जिसे पीते हैं ।

२ अघ-शंस-हा— पापी और दुष्टोंका नाश करनेवाला ।

३ वरेण्यः मदः— श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला ।

४ पवस्व— स्वच्छ होनेके लिए वर्तनमें डाला जाता है, साफ होकर वर्तनमें गिर ।

[ ४७१ ] ( तिस्रः वाचः उदीरते ) ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीन वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं । ( धेनवः गावः मिमन्ति ) दुधार गायें दूध दुहनेके लिए शब्द करती हैं, ( हरिः कनिक्रदत् एति ) हरे रंगका सोम शब्द करता हुआ छाना जाता है ॥ ५ ॥

१ तिस्रः वाचः उदीरते— तीन वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं ।

२ धेनवः गावः मिमन्ति— दुधार गायें अपना दूध जल्दी ही दुहानेके लिए शब्द करती हैं ।

३ हरिः कनिक्रदत् एति— हरे रंगका सोम शब्द करता हुआ छाना जाता है ।

सबरे यज्ञशालामें क्या होता है, उसका यह वर्णन है ।

[ ४७२ ] हे ( इन्द्रो ) सोमरस ! ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा तू ( अर्कस्य योनि ) यज्ञके मध्य भागमें ( आसदं ) बैठनेके लिए ( मरुत्वते इन्द्राय ) मरुत् जिसकी सहायता करते हैं, उस इन्द्रके लिए ( पवस्व ) कलशमें जा ॥ ६ ॥

१ मधु-मत्तमः— अत्यन्त मीठा ।

२ अर्कस्य योनिः— पूजनीय यज्ञ जहाँ होते हैं, अर्क-पूज्य ।

३ पवस्व— रस छाननेके लिए एक वर्तनसे दूसरे वर्तनमें डाला जाता है ।

[ ४७३ ] ( गिरि-ष्ठाः अंशुः ) पर्वत पर होनेवाले सोमकी रस ( मदाय असावि ) आनन्द प्राप्तिके लिए निचोड़ा है, ( अप्सु दक्षः ) पानीमें मिलकर वह बड़ा है, ( श्येनः न ) श्येन पक्षीके समान ( योनि आसदत् ) अपने स्थान पर वह आकर बैठा है ॥ ७ ॥

१ गिरि-ष्ठाः अंशुः— पर्वत पर सोमलता होती है ।

२ असावि— उसका रस निकाला है ।

३ अप्सु दक्षः— पानीमें मिलकर वह बड़ा है । वह बल बढ़ानेवाला हो गया है ।

४ श्येनः न योनि आसदत्— श्येन पक्षी जैसे पर्वतसे उड़कर अपने स्थान पर आता है, उसी प्रकार यह सोम पर्वतसे यहाँ यज्ञशालामें आया है ।

[ ४७४ ] हे ( हरे ) हरे रंगके सोम ! ( दक्ष-साधनः ) बल बढ़ानेका साधन तू ( मदः ) आनन्ददायक ( देवेभ्यः मरुद्भ्यः पीतये ) देवों और मरुतोंके पीनेके लिए ( पवस्व ) इस वर्तनमें आ ॥ ८ ॥

१ हरिः— सोम हरे रंगका होता है ।

२ दक्ष-साधनः— बल बढ़ानेका यह साधन है ।

३ मदः— आनन्द बढ़ानेवाला सोमरस है ।

४ देवेभ्यः पीतये— यह देवोंके पीनेमें आता है ।

५ पवस्व— वह छाना जाता है ।



४७५ परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१८।१ )

४७६ परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योहितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१९।१ )

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ [ स्व० ६ । उ० ३ घा० । ४२ । गा ॥ ]

[ १० ]

( १-१० ) १ ( कविर्मेधावी ) इयावाश्व आत्रेयः; २ त्रित आप्त्यः; ३, ८ अमहीयुराङ्गिरसः; ४ भृगुर्वारुणिर्जमद-  
निभर्गिबो वा; ५, ६ काश्यपो मारीचः; ७ निध्रुविः काश्यपः; ९, १० असितः काश्यपो देवलो वा ॥

पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४७७ प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२०।१ )

४७८ प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि माहिषा इव ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२१।१ )

[ ४७५ ] ( सोमः पवित्रे पर्यक्षरत् ) सोमरस छलनीसे नीचे गिरता है, ( गिरि-ष्ठाः स्वानः ) यह सोम पर्वतपर होता है, वहांसे लाकर इसका रस निकाला जाता है । ( मदेषु सर्वधा असि ) आनन्द देनेवालोंमें तू सबसे श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

१ स्वानः— उसका रस निकाला जाता है ।

२ सोमः पवित्रे परि-अक्षरत्— सोमरस छलनीमेंसे छाना जाता है, और वह नीचे वर्तनमें गिरता है ।

३ मदेषु सर्व-धा असि— आनन्द देनेवाले पदार्थोंमें वह सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है ।

[ ४७६ ] ( कवि-क्रतुः कविः ) बुद्धिको बढ़ानेवाला तथा स्वयं ज्ञानवान् यह सोम ( नप्त्योः हितः ) सोमरसे निकालनेके दो तत्त्वोंके बीचमें रखा गया है, ( दिवः प्रिया वयांसि ) वे झूलोकके प्रिय पक्षी अर्थात् पहाडके पत्थर ( स्वानैः ) रस निकालनेके लिए ( परियाति ) उसके ऊपर चलते हैं, सोम पत्थरोंसे पीसा जाता है ॥ १० ॥

१ कवि-क्रतुः— सोम बुद्धि और कार्य करनेकी शक्ति बढ़ाता है ।

२ नप्त्योः हितः— दो लकड़ीके पट्टोंके बीचमें सोम रखा जाता है, और दबाकर उसका रस निकाला जाता है ।

३ दिवः वयांसि— पहाडके पत्थर, झूलोकके पक्षी ।

४ स्वानैः परियाति— ( स्वानैः-सुवानैः ) रस निकालनेवाले याजक पत्थरोंसे सोम पीसकर उसका रस निकालते हैं ।

॥ यहां प्रथम खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ४७७ ] ( मद-च्युतः सोमासः ) आनन्द बढ़ानेवाले सोमरस ( सुताः ) निचोड़े गए हैं । ( मघोनां नः विदथे ) हवि देनेवाले हमारे इस यज्ञमें ( श्रवसे प्राक्रमुः ) अन्न और यज्ञके लिए वे रस पात्रमें भरे गए हैं ॥ १ ॥

१ सोमासः मद-च्युताः— सोमरस आनन्द बढ़ानेवाले हैं ।

२ मघोनां नः विदथे— हविष्यान्न तैय्यार करके हम यज्ञ करते हैं ।

३ श्रवसे प्राक्रमुः— सोमरसरूपी अन्नरस पीनेके लिए उन रसोंको बर्तनोंमें भरा है ।

[ ४७८ ] ( विपश्चितः सोमासः ) बुद्धिको बढ़ानेवाले सोमरस ( अपः ऊर्मयः ) पानीके लहरोंके साथ मिलाये जाते हैं, ( माहिषाः वनानि इव ) भैंसे जैसे वनमें जाते हैं, उस तरह वे सोमरस ( प्र नयन्त ) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ २ ॥

२० ( साम. हिन्दी )



- ४७९ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।६।१२८ )  
 ४८० वृषा असि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वदृशम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।६।१४ )  
 ४८१ इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वरथीरिव ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।६।१० )  
 ४८२ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।६।१४ )

- १ सोमासः विपश्चितः— सोमरस बुद्धि और उत्साह बढ़ानेवाला है ।  
 २ अपः ऊर्मयः— पानीकी लहर । पानीमें वे रस मिलाये जाते हैं ।  
 ३ महिषाः वनानि इव— पशु जैसे वनमें जाते हैं, उसी तरह वे रस पानीमें जाते हैं ।  
 ४ प्र-नयन्त— विशेष पद्धतिसे वे पानीमें मिलाये जाते हैं ।

[ ४७९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( सुतः ) निचोड़ा गया और ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला तू ( पवस्व ) पवित्र हो, ( जने नः यशसः कृधि ) लोगोंमें हमें यशस्वी कर, और ( विश्वाः द्विषः अप जहि ) सब शत्रुओंको हरा ॥ ३ ॥

- १ हे इन्दो ! सुतः— हे सोम ! तेरा रस निकाला है ।  
 २ वृषा पवस्व— तू बल बढ़ानेवाला है, तू इस पात्रमें छाना जाता है ।  
 ३ जने नः यशसः कृधि— लोगोंमें तू हमें यशस्वी कर ।  
 ४ विश्वाः द्विषः अप जहि— सब शत्रुओंको पराभूत कर, दूर कर ।

[ ४८० ] हे सोम ! ( हि वृषा असि ) निश्चयसे तू बल बढ़ानेवाला है । हे ( पवमान ) पवित्र होनेवाले सोम ! ( स्व-दृशं ) सबको देखनेवाले ( भानुना द्युमन्तं ) तेजसे चमकनेवाले ( त्वा हवामहे ) तुझे हम बुलाते हैं ॥ ४ ॥

- १ हि वृषा असि— निश्चयसे तू बल बढ़ानेवाला है ।  
 २ पवमानः— छनकर पवित्र होनेवाला, छाननेके बाद वह साफ होता है ।  
 ३ स्वः-दृशं— अपने आप चमकनेवाला ।  
 ४ भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे— तेजसे चमकनेवाले तुझे हम बुलाते हैं, तेरा वर्णन करते हैं ।

[ ४८१ ] ( चेतनः प्रियः इन्दुः ) उत्साह बढ़ानेवाला प्रिय सोमरस ( कवीनां मतिः ) ज्ञानी लोगोंकी स्तुतिके साथ ( पविष्ट ) बर्तन में छाना जाता है, ( रथीः अश्वं इव ) रथका स्वामी जैसे घोड़ेको चलाता है, उसी प्रकार ( सृजत् ) यह पात्रमें भरा जाता है, ॥ ५ ॥

- १ चेतनः प्रियः इन्दुः— उत्साह बढ़ानेवाला होनेके कारण यह सोमरस सभीको अच्छा लगता है ।  
 २ कवीनां मतिः पविष्ट— ज्ञानी लोगोंके स्तोत्रके साथ-साथ यह छाना जाता है, और बर्तनमें भरा जाता है ।  
 ३ रथीः अश्वं इव सृजत्— रथमें बैठनेवाला जिस प्रकार घोड़ोंको हांकता है, उसी प्रकार यह सोमरस पात्रमें भरा जाता है ।

[ ४८२ ] ( वाजिनः ) बल बढ़ानेवाले ( आशवः ) और उत्साह बढ़ानेवाले, और ( शुक्रासः सोमासः ) चमकनेवाले सोमरस ( गव्या अश्वया वीरया ) गाय, घोड़े और वीर पुरुषोंकी इच्छा करनेवालोंके द्वारा ( प्रासृक्षत ) निचोड़े जाते हैं ॥ ६ ॥

- १ वाजिनः आशवः सोमासः— ये सोमरस बल और उत्साह बढ़ानेवाले हैं ।  
 २ गव्या अश्वया वीरया प्रासृक्षत्— गाय, घोड़े और वीर पुरुष प्राप्त हों, इस इच्छासे यजमान द्वारा रस निकाला जाता है ।



४८३ पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥ ( ऋ. १।६३।२२ )

४८४ पवमानो अजीजनद्विचित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥ ( ऋ. १।६३।१६ )

४८५ परि स्वानास इन्द्रो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥ ( ऋ. १।१०।४ )

४८६ परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरुर्मावाधि श्रितः । कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥ ( ऋ. १।१४।१ )

इति दशमी वंशतिः ॥ १० ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥ ( स्व० ११।३० ना। धा० ४९। हो ॥ )

इति पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः, पञ्चमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५ ॥

[ ४८३ ] हे सोम ! ( देवः पवस्व ) तू चमकनेवाला है, अब पात्रमें छननेके लिए जा, ( ते मदः ) तेरा यह आनन्द बढ़ानेवाला रस ( आयुषक् इन्द्रं गच्छतु ) सबके साथ इन्द्रके पास जावे, ( धर्मणा ) अपनी धारकशक्तिसे ( वायुं आरोह ) वायुसे मिल ॥ ७ ॥

१ देवः पवस्व— तू चमकते हुए छाना जाकर साफ हो ।

२ ते मदः आयुषक् इन्द्रं गच्छतु— तेरा यह आनन्द बढ़ानेवाला रस सबके साथ इन्द्रको प्राप्त हो ।

३ धर्मणा वायुं आरोह— अपनी धारकशक्तिसे वह वायुको प्राप्त होवे ।

सोमरस शुद्ध होनेके बाद इन्द्र और वायुको दिया जाता है ।

[ ४८४ ] ( पवमानः ) पवित्र हुए इस सोमरसने ( दिवः चित्रं ) द्युलोकमें दीखनेवाले ( बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) महात् वैश्वानर तेजको ( तन्यतुं न ) बिजलीके समान ( अजीजनत् ) उत्पन्न किया ॥ ८ ॥

सोमरस छनकर शुद्ध हो जानेपर चमकने लगता है, उसको देखकर देखनेवाले समझते हैं कि मानों बिजली ही चमक रही है ।

[ ४८५ ] ( स्वानासः इन्द्रः ) निचोड़े जानेके बाद ये सोमरस ( बर्हणा गिरा ) मधुर स्तोत्रोंके साथ तथा ( मधोः धारया ) इस मीठे रसकी धाराके साथ ( मदाय ) आनन्द बढ़ानेके लिए ( परि अर्षन्ति ) छाननीसे छाने जाते हैं ॥ ९ ॥

१ स्वानासः—सुवानासः इन्द्रः— सोमरस निकालते हुए ( बर्हणा गिरा ) ऊंची आवाजसे स्तोत्र बोले जाते हैं, और उस समय यह मीठे रसकी धारा, पीनेवालोंका आनन्द बढ़ानेके लिए बर्तनमें छोड़ी जाती है, और छाननीसे छानी जाती है ।

[ ४८६ ] ( कविः ) ज्ञान वर्धक, ( सिन्धोः ऊर्मौ ) सिन्धु नदीके लहरमें ( अधिश्रितः ) मिला हुआ ( पुरु-स्पृहं कारुं बिभ्रत् ) अनेकोंसे प्रशंसनीय, स्तुति करनेवाले यज्ञकर्त्ताओंको धारण करनेवाला यह सोम ( परि प्रासिष्यदत् ) पात्रमें टपकता है ॥ १० ॥

१ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः— ज्ञान बढ़ानेवाला यह सोमरस नदीके पानीमें मिलाया जाता है । इसमें पानी मिलाया जाता है ।

२ पुरुस्पृहं कारुं बिभ्रत्— प्रशंसनीय याजक एक स्थानपर बैठते हैं । यज्ञमण्डपमें सभी याजक बैठते हैं ।

३ परि प्रासिष्यदत्— यह सोम छाननीसे छाना जाता है । छाननीका नाम " वशापवित्र " है, इस वशापवित्रसे यह रस नीचे बर्तनमें पड़ता है ।

॥ यहां द्वितीय खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ १ ]

अथ षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ६ ॥

( १-१० ) १, ८, ९ अमहीयुरांगिरसः; २ बृहन्मतिराङ्गिरसः; ३ जमदग्निर्भागवः; ४ प्रभूवसुरांगिरसः; ५ मेघ्या-  
तिथिः काण्वः; ६, ७ निध्रुविः काश्यपः; १० उच्चथ्य आंगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४८७ उपो पु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१३ )

४८८ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४०।१ )

४८९ आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नाभि श्रियः । इन्द्रुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।६२।१९ )

४९० असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्बोः सुतः । कार्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३६।१ )

४९१ म यद्वावो न भूर्णयस्त्वेपा आयासो अक्रमुः । मन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥

( ऋ. ९।४१।१ )

४९२ अपधन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।६३।२४ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ४८७ ] ( सु-जातं ) उत्तम रीतिसे तैय्यार किये हुए ( अप्तुरं ) पानीमें मिलाये हुए ( भंगं ) शत्रुको मारने-  
वाले ( गोभिः परिष्कृतं ) गायके दूधमें मिले हुए ( इन्दुं ) सोमरसके पास ( देवाः उप अयासिषुः ) देव पहुंचे ॥ १ ॥  
सोमरस निकालनेके बाद ( अप-तुरं ) उसमें पानी मिलाया जाता है, ( गोभिः परिष्कृतं ) उसमें गायका  
दूध मिलाया जाता है, और यह ( भङ्गं ) शत्रुको मारनेवालोंका उत्साह बढ़ानेवाला होता है । उसके पास सोमरस  
पीनेकी इच्छासे देव आते हैं ।

[ ४८८ ] ( विचर्षणिः ) ज्ञान बढ़ानेवाला ( पुनानः ) पवित्र हुआ सोमरस ( विश्वाः मृधः अभ्यक्रमीत् )  
सब शत्रुओंपर आक्रमण करता है, ( विप्रं ) उस ज्ञान बढ़ानेवाले सोमको ऋत्विक् ( धीतिभिः शुम्भन्ति ) स्तोत्रोंसे  
सुशोभित करते हैं ॥ २ ॥

सोमरस पीनेके बाद उत्साह बढ़ता है, उस रसको छानकर पीनेसे सब शत्रुओंपर आक्रमण करनेका बल  
बढ़ता है । उस सोमरसको निकालनेके समय मंत्र बोले जाते हैं इस कारण वे और अधिक सुशोभित होते हैं ।

[ ४८९ ] ( सुतः ) सोमरस निकालनेके बाद ( कलशं आविशन् ) कलशमें भरनेके समय ( विश्वाः श्रियः  
अभ्यर्पन् ) सब शोभाओंको बढ़ानेवाला ( इन्द्रुः ) यह सोमरस ( इन्द्राय धीयते ) इन्द्रके लिए दिया जाता है ॥ ३ ॥

[ ४९० ] ( यथा रथ्यः ) जिस प्रकार रथका घोड़ा छोड़ा जाता है, उस प्रकार ( चम्बोः सुतः ) दो लकड़ियोंके  
पट्टोंसे निचोड़ा गया यह सोमरस ( पवित्रे असर्जि ) छाननेके बर्तनमें छोड़ा जाता है, इस प्रकार यह ( वाजी )  
बलवान् सोमरस ( कार्मन् न्यक्रमीत् ) देवोंको आकर्षित करके लाता है और बर्तनमें भरा रहता है ॥ ४ ॥

[ ४९१ ] ( यत् भूर्णयः ) जो शीघ्रता करनेवाले ( त्वेषाः अयासः ) तेजस्वी और गति करनेवाले सोम अपनी  
( कृष्णां त्वचं ) काली चमड़ीकी ( अपधन्तः ) दूर करते हुए यज्ञको ( प्र अक्रमुः ) प्रारम्भ करते हैं । ( गावः न )  
गावें जिस प्रकार बाड़ेमें जाती हैं, उसी प्रकार सोमरस यज्ञमें जाता है और यज्ञ करता है ॥ ५ ॥

सोमरसके ऊपरकी काली पपड़ी रसको छाननेसे दूर हो जाती है, और वह सोमरस छलनीसे नीचे रखे बर्तनमें  
छाना जाता है । वहांसे वह यज्ञशालामें जाता है, और याजकोंको आगे कार्य करनेके लिए प्रवृत्त करता है ।

[ ४९२ ] हे सोम ! ( मत्-सरः ) आनन्द बढ़ानेवाला और ( क्रतु-वित् ) यज्ञकी पद्धति जाननेवाला तू ( मृधः  
अपधन् ) शत्रुओंको दूर करते हुए ( पवसे ) पवित्र होता है, तू ( अ-देव-युं जनं नुदस्व ) देवकी भक्ति न  
करनेवाले मनुष्यको दूर कर ॥ ६ ॥



- ४९३ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।६३।६ )  
 ४९४ स पवस्व य आविथेन्द्र वृत्राय हन्तवे । वविवांसं महीरपः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।६१।२२ )  
 ४९५ अया वीती परि स्रव यस्त इन्द्रो मदेष्वा । अवाहनवतीनव ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।६१।१ )  
 ४९६ परि द्युक्षं सनद्रयि भरद्वाज नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।६२।१ )  
 इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ [ स्व० ९ । उ० ६ । धा० ३५ । तु ॥ ]

[ २ ]

- ( १-१४ ) १ मेधातिथिः काण्वः; २, ७ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भागवो वा; ३ उच्यथ आङ्गिरसः; ४ अवत्सारः काश्यपः ।  
 निध्रुविः काश्यपः; ६, १० असितः काश्यपो देवलो वा; ८, ९ कश्यपो मारीचः; ११ कविर्भागवः;  
 १२ जमदग्निर्भागवः; १३ अयास्य आंगिरसः; १४ असहीयुरांगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥  
 ४९७ अचिक्रदवृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । ससूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।६ )

१ अदेवयुं जनं नुदस्व — देवकी भक्ति न करनेवाले मनुष्यको दूर कर ।

२ मृधः अपञ्चन् — शत्रुको नष्ट कर ।

३ पवसे — तुझे शुद्ध किया जाता है, तुझे छाना जाता है ।

[ ४९३ ] हे सोम ! ( मानुषीः अपः हिन्वानः ) मनुष्योंके लिए हितकारी पानीको प्रेरणा देते हुए ( यया सूर्य अरोचयः ) जिस प्रकार तूने सूर्यको प्रकाशित किया, ( अया पवस्व ) उसी धारासे नीचेके बर्तनमें छनता हुआ तू जा ॥ ७ ॥

पानी मनुष्योंका हित करनेवाला है, उस पानीको सोमरसमें मिलाया जाता है; तब वह रस और अधिक चमकने लगता है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह सूर्यको भी प्रकाशित करता हो, ऐसा यह सोमरस नीचेके पात्रमें छाना जाता और भरा जाता है ।

[ ४९४ ] हे सोम ! ( महीः अपः वविवांसं ) महान् जल प्रवाहोंको अपने अधिकारमें रखनेवाले ( वृत्राय हन्तवे ) वृत्रको मारनेके लिए ( इन्द्रं आविथ ) इन्द्रको उत्साहित कर और ( सः पवस्व ) वह तू नीचे बर्तनमें छनता जा ॥ ८ ॥

वृत्रने जल प्रवाहोंको रोक दिया था, इन्द्रने वृत्रको मारकर जल बहाया । इस इन्द्रका उत्साह सोम पीनेसे ही बढ़ा था । वृत्रका अर्थ है मेघ । इन्द्र मेघोंको तोड़ता है और पानी बहाता है । बरसात होती है ।

[ ४९५ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( अया वीती परिस्त्रव ) इस प्रकार इन्द्रको सोम पिलानेके लिए तू कलशमें छन । ( ते यः ) तेरा यह रस ( मदेष्वा ) संग्राममें ( नवतीः नव अवाहन ) शत्रुके निन्द्यानवे तगरोंको तोड़नेके लिए इन्द्रको सामर्थ्यशाली बनाता है ॥ ९ ॥

[ ४९६ ] ( द्युक्षं ) तेजस्वी और ( सनद्रयि ) देने योग्य धनको और ( वाजं ) बलको ( अन्धसा नः परि भरत् ) अपने अन्नरूपी रससे हममें बढ़ा तथा ( स्वानः पवित्रे आ अर्ष ) रस निकालनेके बाद साफ होकर पात्रमें भरा रह ॥ १० ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ४९७ ] ( वृषा हरिः ) बलवान् और हरे रंगका तथा ( महान् मित्रः न ) महान् मित्रके समान ( दर्शतः ) दर्शनीय सोम ( अचिक्रदत् ) शब्द करता है, ( सूर्येण सं दिद्युते ) और सूर्यके समान प्रकाशित होता है ॥ १ ॥  
 सोमरस चमकता है और उसके रस निकालनेका शब्द भी होता है ।



- ४९८ आ त दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।२८ )  
 ४९९ अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।६५।२९ )  
 ५०० तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।६५।३० )  
 ५०१ आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।६५।३१ )  
 ५०२ अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।६५।३२ )  
 ५०३ अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।६५।३३ )  
 ५०४ वृषा सोम द्युमांसि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।६५।३४ )  
 ५०५ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।६५।३५ )

[ ४९८ ] हे सोम ! ( ते ) तेरे ( मयो-भुवं ) सुख देनेवाले ( वह्नि ) धन आदि देनेवाले, ( पान्तं ) शत्रुओंसे रक्षा करनेवाले और ( पुरु-स्पृहं ) अनेक लोगों द्वारा चाहने योग्य ( दक्षं ) बलको हम ( अद्य आवृणीमहे ) आज धारण करते हैं ॥ २ ॥

[ ४९९ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यु ! ( अद्रिभिः सुतं सोमं ) पत्थरोंसे कूटकर निकाले गए सोमरसको ( पवित्र आयय ) छाननेके बर्तनके पास ला ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रको पिलानेके लिए ( पुनाहि ) उसे छानकर पवित्र कर ॥ ३ ॥

[ ५०० ] ( सुतस्य अन्धसः धारा ) सोमरसरूपी अन्नरसकी धारा ( मन्दी ) आनन्द देनेवाली है, ( सः तरत् ) वह सोम नीचभावोंसे दूर रहता है और वह ( धावति ) प्रगति करता है ॥ ४ ॥

सोमरसको पीनेके बाद उत्साह बढ़ता है और उस कारण वह उत्तम काम करने लगता है ।

[ ५०१ ] ( सोम ) हे सोम ! ( सहस्रिणं सुवीर्यं रयिं ) हजारों प्रकारसे उत्तम शक्ति बढ़ानेवाले धन ( आ पवस्व ) हमें दे, और ( अस्मे ) हमें ( श्रवांसि धारय ) अन्न दे ॥ ५ ॥

[ ५०२ ] ( प्रत्नासः आयवः ) प्राचीन लोगोंने ( नवीयः पदं ) नवीन उत्तम स्थान ( अनु अक्रमुः ) प्राप्त किया और ( रुचे ) तेजको प्राप्त करनेके लिए ( सूर्यं ) सूर्यके समान तेजस्वी सोमको ( जनन्त ) उत्पन्न किया ॥ ६ ॥

सूर्यः— सूर्यके समान तेजस्वी बोलनेवाले सोमरसको निकाला ।

[ ५०३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( द्युमत्तमः ) अत्यन्त तेजस्वी तू ( द्रोणानि ) पात्रमें ( रोरुवत् अर्ष ) शब्द करता हुआ छनता जा, ( वनेषु योनौ आसीदन् ) और तू वनमें और यज्ञशालामें रह ॥ ७ ॥

सोमरसको छानते समय शब्द होता है, उस समय वह बहुत चमकता है, वनोंमें यज्ञशालायें बनाते हैं, उत्तम यह सोमरस तैय्यार किया जाता है ।

[ ५०४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषा द्युमान् असि ) तू बलवान् और तेजस्वी है, हे ( देव ) सोमदेव ! तू ( वृषा वृषव्रतः ) बलवान् और बल बढ़ानेके व्रतका पालन करनेवाला है । ( वृषा धर्माणि दधिषे ) बल बढ़ानेवाले धर्मोंको तू धारण करता है ॥ ८ ॥

[ ५०५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( मनीषिभिः मृज्यमानः ) ज्ञानी ऋत्विजों द्वारा छाना जाता हुआ तू ( इषे धारया पवस्व ) अन्नरसकी प्राप्तिके लिए धारासे छनता जा, ( रुचा ) तेजसे ( गाः आभि इहि ) गायोंको प्राप्त हो ॥ ९ ॥

ऋत्विज रस निकालते हैं, और वह रस छाना जाता है, बादमें—

१ गाः आभि इहि — गायको प्राप्त हो । गायका दूध उसमें मिलाते हैं । गायको प्राप्त होनेका अर्थ है, सोममें गायका दूध मिलाना । ( रुचा ) यह सोमरस चमकता है ।



- ५०६ मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्या वारेभिरस्मयुः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।६।१ )  
 ५०७ अया सोम सुकृत्यया महान्तसन्नभ्यवर्धथाः । मन्दान इद्रुषायसे ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।४।१ )  
 ५०८ अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।६।१० )  
 ५०९ प्र न इन्द्रो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाः अयास्यः ॥ १३ ॥ ( ऋ. ९।४।१ )  
 ५१० अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अरावणः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥ ( ऋ. ९।६।१२९ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ [ स्व० १५ । उ० २ । धा० ५७ । फो ॥ ]

इति गायत्र्यः ॥

[ ३ ]

( १-१२ ) सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहगणः, ४ अत्रिभौमः, ५ विश्वामित्रो गायिनः, ६ जमदग्निभर्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ) ॥ पवमानः सोमः ॥ बृहती ॥

५११ पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।

आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।४ )

[ ५०६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला ( देव-युः ) देवताओंको प्राप्त होनेवाला ( अस्म-युः ) हमें मिलनेवाला ( अव्या ) संरक्षण करनेवाला तू ( वारेभिः ) बालोंकी छाननीसे ( मन्द्रया धारया पवस्व ) आनन्द देनेवाली धारासे शुद्ध हो ॥ १० ॥

१ वारेभिः— बालोंकी छाननी, दशापवित्र, इस छलनीसे सोमरस छाना जाता है ।

२ देव-युः— छान कर देवोंको पीनेके लिए दिया जाता है ।

३ अस्मयुः— बादमें ऋत्विज भी पीते हैं ।

[ ५०७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अया सुकृत्यया ) इस उत्तम कार्यसे तू ( महान् सन् ) सम्मानके योग्य होकर ( अभ्य-वर्धथाः ) महान् होता है, ( मन्दानः इत् ) आनन्द देकर ( वृषायसे ) बल बढ़ाता है ॥ ११ ॥

सोम स्वयं सम्माननीय है, और वह दूसरोंको भी अधिक बलवान् करता है ।

[ ५०८ ] ( वि-चर्षणिः ), विशेष ज्ञान बढ़ानेवाला ( हितः पवमानः ) पात्रमें भरा हुआ और शुद्ध किया हुआ ( अयं ) यह सोमरस ( आप्यं ) जलसे मिश्रित होकर ( बृहत् हिन्वानः ) बहुत अन्न देता हुआ ( सचेतति ) प्रसिद्ध होता है ॥ १२ ॥

[ ५०९ ] ( इन्द्रो ) हे सोम ! ( नः महे तु न ) हमें बहुत धन मिले, इसके लिए ( प्र अर्षसि ) तू कलशमें छाना जाता है । ( अयास्यः न ) अयास्य ऋषि अब ( ऊर्मिं बिभ्रत् ) तेरी लहरोंको धारण करते हुए ( देवान् अभिः ) देवोंकी पूजा करनेके लिए जाता है ॥ १३ ॥

अयास्य ऋषिने सोमरस छान लिया है, और अब वह आगे यज्ञकर्म करनेके लिए जाता है ।

[ ५१० ] ( सोमः मृधः अपघ्नन् ) सोम शत्रुओंको मारता है, ( अरावणः ) दान न देनेवालोंको भी मारता है, और ( इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् ) इन्द्रके स्थानके पास जाता हुआ ( पवते ) छनता है ॥ १४ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ५११ ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) पवित्र होते हुए ( अपः वसानः ) पानीसे मिलते हुए ( धारया अर्षसि ) धारासे तू नीचेके बर्तनमें गिरता है, ( रत्न-धा ) रत्न-धन-देनेवाला तू ( ऋतस्य योनिं ) यज्ञके स्थानपर ( आसीदसि ) जाकर बैठता है, और ( देवः ) प्रकाशित होकर ( हिरण्ययः उत्सः ) चमकते हुए बहता है ॥ १ ॥



- ५१२ परीतो विञ्चता सुतः सोमो य उत्तमः हविः ।  
 दधन्वाः यो नर्यो अप्स्यन्तः सुपाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१ )
- ५१३ आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।  
 जनो न पुरि चम्बोर्विशद्वरिः सदो वनेषु दधिषे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१० )
- ५१४ प्र सोम देववीतये सिन्धुने पिप्ये अर्णसा ।  
 अंशोः पयसा मदिरा न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१२ )
- ५१५ सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि णुभिरवीनाम् ।  
 अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०७।८ )
- ५१६ तवाहः सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।  
 पुरुणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीरति तां इहि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१९ )

[ ५१२ ] ( यः सोमः उत्तमं हविः ) जो यह सोम है, वह उत्तम हवि है । ( नर्यः ) वह मनुष्योंका हित करने-वाला है, ( यः अप्सु अन्तः दधन्वान् ) जो पानीमें मिला हुआ है, ऐसा ( सोमं अद्रिभिः सुपाव ) यह सोमका रस पत्थरोंसे कूटकर यजमान द्वारा निकाला गया है । हे ऋत्विजो ! इस ( सुतं इतः परिधिञ्चत ) सोमरसमें पानी मिलाओ ॥ २ ॥

[ ५१३ ] हे ( सोम ) सोम ! तेरा ( अद्रिभिः स्वानः ) पत्थरोंसे कूटकर निकाला हुआ रस ( अव्यया वाराणि तिरः ) भेड़ोंके बालोंकी छाननीसे नीचेके पात्रमें छाना जाता है, ( हरिः चम्बोः ) हरे रंगका यह रस बर्तनमें ( पुरि जनः न ) नगरीमें पहुँच जैसे प्रवेश करते हैं, उस प्रकार ( विशत् ) प्रविष्ट होता है, और ( वनेषु सदः दधिषे ) लकड़ीके बर्तनमें अपने स्थान पर रहता है ॥ ३ ॥

१ वन— जंगल, जंगलमें होनेवाले वृक्षोंकी लकड़ी, लकड़ीके बर्तन ।

[ ५१४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( त्वं देव-वीतये ) तू देवोंके पीनेके लिए ( सिन्धुः न ) सिन्धु नदीके समान ( अर्णसा प्रपिप्ये ) पानीसे मिश्रित किया जाता है । ( मदिरा न जागृविः ) तू आनन्ददायक होनेके साथ साथ जाग्रति उत्पन्न करनेवाला भी है, तू ( अंशोः पयसा ) बर्तनमें पानीसे मिलकर ( मधुश्चुतं कोशं अच्छ ) सीढ़े रसको उछेलनेवाले बर्तनमें जा ॥ ४ ॥

[ ५१५ ] ( सोतृभिः स्वानः ) रस निचोड़नेवाले याजकोंके द्वारा निचोड़ा गया ( सोमः ) सोमरस ( अवीनां स्तुभिः ) बकरीके बालोंकी बनी छलनीसे शुद्ध होकर ( अधि याति ) नीचे बर्तनमें पड़ता है, ( उ ) यह सत्य है, ( अश्वया इव ) घोड़ीके समान ( हरिता धारया याति ) हरे रंगकी धारासे यह सोम बर्तनमें जाता है, ( मन्द्रया धारया याति ) आनन्ददायक धारासे यह बर्तनमें जाता है ॥ ५ ॥

[ ५१६ ] हे ( इन्दो सोम ) सोमरस ! ( तव ) तेरी ( सख्ये ) मित्रतामें ( दिवे दिवे अहं ) प्रतिदिन मैं ( रारण ) आनन्दित होऊँ, ( बभ्रो ) हे सोम ! ( पुरुणि मां न्यचरन्ति ) बहुतसे कुष्ट मनुष्य मुझे कष्ट देते हैं, ( तान् परिधीन् अतीहि ) उन कुष्टोंको नष्ट कर ॥ ६ ॥



- ५१७ मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।  
 रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१०७।२१ )
- ५१८ अभि सोमास आयवः पवन्ते मधं मदम् ।  
 समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१४ )
- ५१९ पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।  
 त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०७।६ )
- ५२० इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।  
 सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१०७।१७ )
- ५२१ पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।  
 त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्म देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।१०७।२३ )

[ ५१७ ] हे ( सु-हस्त्या ) उत्तम हाथोंकी अंगुलिसे तनकाले गये सोम ! ( मृज्यमानः ) पवित्र करनेवाला तू ( समुद्रे वाचं इन्वसि ) नीचे पानीके बर्तनमें पड़ता हुआ शब्द करता है, हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( पिशङ्गं ) पीले रंगके ( बहुलं पुरु-स्पृहं रयिं ) बहुत चाहने योग्य धन ( अभ्यर्षसि ) देता है ॥ ७ ॥

१ समुद्रः— पानीसे भरे हुए बर्तन ।

२ पिशङ्गं रयिं— पीले रंगका सोना, सोनेके सिक्के ।

[ ५१८ ] ( आयवः मनीषिणः ) मनुष्योंका हित करनेवाले, ज्ञान बढ़ानेवाले ( मत्सरासः मदच्युतः सोमासः ) आनन्द देनेवाले, छाननीसे नीचे गिरनेवाले सोमरस ( समुद्रस्य विष्टपे अधि ) पानीसे भरे हुए कलसेमें ( मधं मदं ) आनन्द देनेवाले अपने रसको ( अभि पवन्ते ) साफ करके छोड़ते हैं ॥ ८ ॥

[ ५१९ ] ( जागृविः प्रियः पुनानः ) उत्साही, प्रिय और शुद्ध होनेवाला तू ( अव्याः वारैः परि ) बकरीके बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है, हे ( अङ्गिरस्तम ) अङ्गिरसोंमें श्रेष्ठ सोम ! तू ( विप्रः ) ज्ञानी, ( अभवः ) हुआ है, अतः अब तू ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञको ( मध्वा मिमिक्ष ) मधुर रससे पवित्र कर ॥ ९ ॥

[ ५२० ] ( मदः सुतः सोमः ) आनन्ददायक निचोड़ा हुआ सोम ( मरुत्वते इन्द्राय पवते ) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिए शुद्ध होता है, बावमें वह ( सहस्र-धारः ) अनेक धाराओंसे ( अव्यं अत्यर्षति ) बकरीके बालोंकी छलनीसे छनता है, ( तं ) उसे ( आयवः मृजन्ति ) ऋत्विज शुद्ध करते हैं ॥ १० ॥

[ ५२१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( विश्वानि वार्या ) सब स्तोत्रोंसे पवित्र हुआ और ( अभि ) मुख्य रूपसे ( वाज-सातमः ) अन्न प्राप्त करनेवाला तू ( पवस्व ) शुद्ध हो, हे सोम ! ( देवेभ्यः मत्सरः ) देवताओंको आनन्द देनेवाला तू ( समुद्रः ) पानीके बीचमें मिलकर ( विधर्मन् ) विशेष गुणधर्मोंसे युक्त होकर ( प्रथमे ) श्रेष्ठ यज्ञमें पवित्र हो ॥ ११ ॥



५२२ पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।

मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।१०।१९ )

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ इति बृहत्पुः ॥ स्व० १९। उ० ३। षा ११। व ॥

[ ४ ]

( १-१० ) १, ९ उशना काव्यः, २ वृषगणो वासिष्ठः, ३, ७ पराशरः शाक्त्यः, ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ५, १०

प्रतर्वनो देवोदासिः, ८ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानः सोमः ॥ त्रिष्टुप् ॥

५२३ प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।

अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हि रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८।१ )

५२४ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

महिब्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।७ )

५२५ तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीति ब्रह्मणो मनीषाम् ।

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९।३४ )

[ ५२२ ] ( मरुत्वन्तः ) मरुतोसे युक्त ( मत्सराः ) आनन्द देनेवाले ( इन्द्रियाः ) इन्द्रको चाहनेवाले, ( मेधां प्रयांसि ) स्तुति और अन्नको ( अभि ) सामने रखनेवाले ( हयाः पवमानाः ) यज्ञमें जानेवाले और शुद्ध होनेवाले सोमरस ( धारया पवित्रं असृक्षत ) धाराके रूपमें छाननीमेंसे नीचे गिरने लगते हैं ॥ १२ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ५२३ ] हे सोम ! ( तु द्रव ) तू शीघ्र जा, और ( कोशं परि निषीद ) बर्तनमें जाकर रह, ( नृभिः पुनानः ) याजकोंके द्वारा शुद्ध किए जानेके बाद ( वाजं अभ्यर्ष ) अन्न यजमानको दे, ( वाजिनं अश्वं न ) बलवान् घोड़ेको जैसे शुद्ध करते हैं, उसी प्रकार ( त्वा मर्जयन्तः ) तुझे शुद्ध करनेवाले ऋत्विज ( रशनाभिः बर्हि ) अच्छा नयन्ति ) अंगुलियोंसे यज्ञ स्थानके पास तुझे लेजाते हैं ॥ १ ॥

[ ५२४ ] ( उशना इव ) उशना ऋषिके समान ( काव्यं ब्रुवाणः ) स्तोत्र बोलनेवाला ( देवः ) स्तोता ( देवानां जनिमा प्र विवक्ति ) देवोंके जन्म वृत्तान्तोंका वर्णन करता है । ( महि-ब्रतः शुचि-बन्धुः पावकः ) महान् व्रत करनेवाला, शुद्ध तेजसे युक्त और शुद्धि करनेवाला ( वराहः ) उत्तम श्रेष्ठ दिनमें निकाला हुआ सोमरस ( रेभन् पदा अभ्येति ) शब्द करते हुए पात्रमें जाता है ॥ २ ॥

[ ५२५ ] ( वान्हिः ) हवि लेजानेवाला यजमान ( तिस्रः वाचः ) ऋक्, यजु, साम इन तीनोंसे स्तुति ( प्रेरयति ) करता है, ( ऋतस्य धीति ) यज्ञको धारण करनेवाली ( ब्रह्मणः मनीषां ) ज्ञानसे की गई स्तुति वह बोलता है, ( गोपतिं गावः यन्ति ) बलके पास जैसे गावें जाती हैं, उसी प्रकार, ( पृच्छमानाः वावशानाः ) पूछा करनेवाले, इच्छा करनेवाले तथा ( मतयः ) स्तुति करनेवाले ( सोमं यन्ति ) सोमके पास जाते हैं ॥ ३ ॥

१ पृच्छमानाः— श्रेष्ठताका विचार करनेवाले ।

२ वावशानाः— सुखकी इच्छा करनेवाले ।

३ मतयः— बुद्धिमान्, स्तुति करनेवाले ।

४ सोमं यन्ति— सोमयागमें जाते हैं ।



- ५२६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।  
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सन्न पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।९७।१ )
- ५२७ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।  
जनिताग्नेजनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ८।९६।९ )
- ५२८ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।  
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।९०।२ )
- ५२९ अक्रांसमुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।  
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृषे स्वानो अद्रिः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९७।४० )

[ ५२६ ] ( अस्य प्रेषा ) इस यज्ञका प्रेरक ( हेमना पूयमानः ) सुवर्णसे पवित्र हुआ ( देवः रसं ) दिव्य सोमरस ( देवेभिः समपृक्त ) देवोंको दिया जाता है, ( सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ) निचोड़ा हुआ यह सोमरस छाननीसे बर्तनमें गिरता है । ( होता मित ) हवन और यज्ञ करनेवाला तथा ( पशुमन्ति सन्न इव ) गायोंको रखनेवाला जैसे यज्ञशालामें जाता है, उसी तरह सोमरस बर्तनमें छाना जाता है ॥ ४ ॥

१ हिरण्यपाणिः अभिषुणोति— ( सा० भा० ) सोनेकी अंगूठी पहने हुए हाथोंसे सोमरस निकाला जाता है ।

[ ५२७ ] ( मतीनां जनिता ) बुद्धिको उत्पन्न करनेवाला ( दिवः जनिता ) बुलोकको उत्पन्न करनेवाला ( पृथिव्याः जनिता ) पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला ( अग्नेः जनिता ) अग्निको उत्पन्न करनेवाला ( सूर्यस्य जनिता ) सूर्यको उत्पन्न करनेवाला ( इन्द्रस्य जनिता ) इन्द्रको उत्पन्न करनेवाला ( उत विष्णोः जनिता ) और विष्णुको उत्पन्न करनेवाला ( सोमः पवते ) सोम पवित्र किया जा रहा है । छाना जा रहा है ॥ ५ ॥

सोमयाग प्रारंभ होनेपर देव आते हैं । इसलिए सोमको यहाँ देवोंका लानेवाला या प्रेरक बताया है, उसीको आलंकारिक भाषामें देवोंको उत्पन्न करनेवाला कहा है ।

[ ५२८ ] ( त्रि-पृष्ठं ) तीन स्थानोंमें रहनेवाले, ( वृषणं वयो-धां ) बलवान् और अन्नदाता सोमकी ( अङ्गो-षिणं ) ऊँचे स्वरसे ( वाणीः वावशन्त ) स्तोताकी वाणियां स्तुति करती हैं । ( सिन्धुः वरुणः न ) जैसे पानीमें वरुण रहता है, उसी तरह ( वना वसानः ) पानीमें मिला हुआ सोम ( रत्न-धाः ) रत्न और ( वार्याणि दयते ) धन स्तोताओंको देता है ॥ ६ ॥

[ ५२९ ] ( समुद्रः ) जलमें मिला हुआ ( गो-पाः ) गायोंका पालन करनेवाला, ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला ( स्वानः ) रस निकाला हुआ सोम ( प्रथमे ) पहले ( भुवनस्य विधर्मन् ) प्रजाओंको उत्साह देते हुए ( प्रजाः जनयन् ) प्रजाजनोंकी उत्पत्ति करते हुए ( अक्रान् ) सबसे श्रेष्ठ हो गया है ॥ ७ ॥

१ गोपाः— गायका पालन करनेवाला, सोमरसमें गौ दूध मिलाते हैं, इसलिए सोम गौवोंको पालनेवाला है ।

२ भुवनस्य विधर्मन्— भुवनमें प्राणियोंका उत्साह बढ़ाता है ।

३ प्रजाः जनयन्— प्रजाओंमें शक्ति बढ़ाता है ।



- ५३० कनिक्कन्ति हरिरा सज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।  
 नभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधामिः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।९५।१ )
- ५३१ एष स्य ते मधुमाः इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।  
 सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बहिरा वाज्यस्थात् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।८७।४ )
- ५३२ पवस्व सोम मधुमाः ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।  
 अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।९६।१३ )
- इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ खण्डः ॥ ६ ॥ ॥ [ स्व० १८। उ० ३। धा० ८७। डे ॥ ]

[ ५ ]

( १-१२ ) १ प्रतद्वनो देवोदासिः; २, १० पराशरः शाक्यः; ३ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः; ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ५ कर्णश्रुदासिष्ठः; ६ नोधा गौतमः; ७ कण्वो घोरः; ८ मन्युर्वासिष्ठः; ९ कुत्स आङ्गिरसः; ११ कश्यपो भारीजः; १२ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानः सोमः ॥ त्रिष्टुप् ॥

- ५३३ प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।  
 भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांसखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९६।१ )

[ ५३० ] ( आ सज्यमानः ) रस निकाले जानेवाला ( हरिः ) हरे रंगका सोम ( कनिक्कन्ति ) शब्द करता है, छानते समय उसका शब्द होता है, ( पुनानः ) पवित्र किया जाता हुआ ( वनस्य जठरे सीदन् ) वनकी लकड़ीसे तैय्यार किए गए बर्तनमें पड़ता हुआ ( नृभिः यतः ) मनुष्यों द्वारा दवाकर निकाला गया सोम ( गां निर्णिजं कृणुते ) गायके दूधका रूप धारण करता है। गौ दुग्धमें वह मिलाया जाता है। इसकी ( मतिं स्वधामिः जनयत ) स्तुति हविष्यान्नके साथ यज्ञकर्ता करते हैं ॥ ८ ॥

[ ५३१ ] हे इन्द्र ! ( वृष्णः ते ) बल बढ़ानेवाले तेरा ( एषः स्यः ) यह वह सोम ( मधुमान् वृषा ) मीठा और बलवान् होकर ( पवित्रे पर्यक्षाः ) बर्तनमें टपकता है, उसी प्रकार वह ( सहस्रदाः शतदाः ) हजारों और सैंकड़ों और ( भूरिदावा ) बहुतसा धन देनेवाला ( वाजी ) बलवान् सोम ( शश्वत्तमं बहिः ) निरन्तर चलनेवाले यज्ञमें जाकर ( अस्थात् ) बैठता है ॥ ९ ॥

[ ५३२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) मीठा तू ( अपः वसानः ) पानीमें मिलकर ( अधि सानोः ) अव्ये पवस्व ) अंचे स्थानपर रखे हुए बकरीके बालकी छलनीसे छनता जा, उसके बाद ( मदिन्तमः ) आनन्ददायक और ( इन्द्र-पानः ) इन्द्रके पीने योग्य ( मत्सरः ) आनन्द देनेवाला यह सोम ( घृतवन्ति द्रोणानि ) जलयुक्त पात्रमें ( अवरोह ) जाकर रहता है ॥ १० ॥

॥ यहां छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ५३३ ] ( सेनानीः ) सेनाको चलानेवाला ( शूरः सोमः ) शूर सोम ( गव्यन् ) गायकी इच्छा करते हुए ( रथानां अग्रे ) रथके आगे ( प्रैति ) जाता है, ( अस्य सेना हर्षते ) इसकी सेना आनन्दित होती है। ( सखिभ्यः ) मित्रोंके लिए-याजकोंके लिए ( इन्द्र-हवान् भद्रान् कृण्वन् ) इन्द्रकी प्रार्थनाको कल्याणकारी बनाते हुए ( रभसानि वस्त्रा आदत्ते ) तेजस्वी वस्त्रोंको धारण करता है ॥ १ ॥

१ सेनानीः— सेना, याजकोंका समूह ।

२ सोमः गव्यन्— सोम गायकी इच्छा करता है। सोम अपनेमें गायका दूध मिलाया जाए, ऐसी इच्छा करता है।

३ अस्य सेना हर्षते— सब याजकोंको आनन्द होता है ।

४ रभसानि वस्त्रा आदत्ते—तेजस्वी वस्त्रोंको धारण करता है। दूध मिलानेके कारण वह तेजस्वी होता है



- ५३४ प्र ते धारा मधुमतीरसग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।  
पवमान पवसे धाम गोनां जनयत्सूर्यमपिन्वो अकैः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।३१ )
- ५३५ प्र गायताभ्यर्चाम देवांसोमं हिनोत महते धनाय ।  
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९७।४ )
- ५३६ प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत् ।  
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।९७।५ )
- ५३७ तक्षधदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं युक्षोरनीके ।  
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं प्रति कलशं गाव इन्दुम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।९७।२२ )
- ५३८ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः  
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्राणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२३।१ )

[ ५३४ ] ( यत् पूतः अव्यं वारं अत्येषि ) जब पवित्र होनेके लिए बकरीके बालोंकी छलनीसे नीचे बर्तनमें गिरता है, तब ( ते मधुमतीः धाराः प्रासृग्रन् ) तेरी मोठी धारायें बहती हैं। हे ( पवमान ) पवित्र सोम ! ( धाम पवसे ) दूधमें तू पवित्र होता है। ( जनयन् ) उत्पन्न होनेके बाद मानों ( अकैः सूर्य अपिन्वः ) तू अपने तेजसे सूर्यको चमकाता है ॥ २ ॥

१ धाम पवसे— अपने स्थानसे पवित्र होता है। दूध सोमका स्थान है। सोममें दूध मिलाया जाता है।

२ अकैः सूर्य अपिन्वः— तेजसे सूर्यको पूर्ण करता है। सोमरस विशेष चमकने लगता है।

[ ५३५ ] ( प्र गायत ) सोमकी स्तुति करो, ( देवान् अभि अर्चामः ) देवोंकी हम पूजा करें ( महते धनाय सोमं हिनोत ) बहुत धनकी प्राप्तिके लिए सोमको प्रेरित करो। ( स्वादुः अव्यं वारं अति पवतां ) पश्चात् यह मोठा रस बकरीके बालोंकी छलनीसे छाना जावे ( देवः इन्दुः ) यह तेजस्वी सोमरस ( कलशं अति आसीदतु ) कलसेमें भरा रहे ॥ ३ ॥

[ ५३६ ] ( प्र हिन्वानः ) गति करनेवाला या बहनेवाला ( रोदस्योः जनिता ) द्यावापृथिवीका उत्पादक यह सोम ( इन्द्रं गच्छन् ) इन्द्रके पास जाता हुआ ( वाजं सनिषन् ) अन्नको देता है। ( आयुधा सं शिशानः ) शस्त्रोंको उत्तम रीतिसे तीक्ष्ण करता हुआ यह सोम ( विश्वा वसु हस्तयोः आदधानाः ) सब धन अपने दोनों हाथोंसे धारण करता हुआ ( प्र अयासीत् ) हमें देनेके लिए आया है ॥ ४ ॥

[ ५३७ ] ( वेनतः मनसः वाक् ) उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके मनमें विचारों द्वारा प्रेरित स्तुति ( यत् तक्षत् ) जिसको तैय्यार करती है, उस ( धर्मं ज्येष्ठस्य युक्षोः अनीके ) यज्ञके श्रेष्ठ हविके पास सोमकी प्रशंसा होती है, ( आ वरं जुष्टं ) इसके बाद अच्छी तरह तैय्यार किए गए ( प्रति ) पालक और ( कलशे ) कलशमें रहनेवाले ( इं इन्दुं ) इस सोमके पास ( वावशानाः गावः आयन् ) इच्छा करनेवाली गायें आती हैं ॥ ५ ॥

यज्ञोंमें स्तोत्रोंका गान होता है, सोम कूटकर उसका रस निकालते हैं, वह कलशमें छाना जाता है, और बादमें उसमें गायका दूध मिलाया जाता है। इस विधिका यह भालंकारिक वर्णन है।

[ ५३८ ] ( साकं उक्षः स्वसारः ) एक जगह रहकर कार्य करनेवाली बहिर्-अंगुलियां ( मर्जयन्तः ) सोमको शुद्ध करती हैं, ये ( दश धीतयः ) दस अंगुलियां ( धीरस्य धनुत्रीः ) सामर्थ्यवान् सोमको धारण करती और हिलाती हैं। यह ( हरिः ) हरे रंगका सोम ( सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत् ) सूर्यके द्वारा उत्पन्न दिशाओंमें घुमाया जाता है। ( अत्यः वाजी न ) बेगसे दौड़नेवाले घोड़ोंके समान यह सोम ( द्राणं ननक्षे ) कलसेमें गिरता है ॥ ६ ॥



५३९ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २</sup> अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरं न विशः ।

<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अपो वृणानः पवते कवीयान्ब्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।९४।१ )

५४० <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्दुवाजी पवते गोन्योधा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

<sup>२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> हन्ति रक्षो बाधते पर्यराति वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।९७।१० )

५४१ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अया पवा पवस्वैना वसूनि माश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।

<sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।९७।९२ )

[ ५३९ ] ( अस्मिन् वाजिनि इव शुभः ) जिस प्रकार घोड़ेको जेवर पहनाकर उसे सजाते हैं, उसी प्रकार ( सूरं विशः न ) सूर्यकी किरणें उस सोमकी शोभा बढ़ाती हैं, ( धियः अधि स्पर्धन्ते ) बुद्धिपूर्वक अंगुलियां रस निकालनेमें स्पर्धा करती हैं, ( अपः वृणानः ) पानीमें मिलते हुए और ( कवीयान् पवते ) स्तोत्रोंको सुनते हुए सोम छनता जाता है, जिस प्रकार ( पशुवर्धनाय मन्म ब्रजं न ) पशुसंवर्धनके लिए गोपाल उत्तम गोशालामें जाता है ॥ ७ ॥

१ वाजिनि शुभः— जैसे घोड़ोंको जेवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार सोममें दूध आदि मिलाकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं ।

२ सूरं विशः— सूर्यमें जैसे किरणें चमकती हैं, उसी तरह सोमका तेज चमकता है ।

३ धियः अधि स्पर्धन्ते— बुद्धिपूर्वक अंगुलियां रस निकालनेकी स्पर्धा करती हैं । इस तरह रस बढ़ता है ।

४ कवीयान्— रस निकालते हुए स्तोत्रोंका पाठ किया जाता है ।

५ पवते— सोमरस छाना जाता है ।

६ पशुवर्धनाय मन्म ब्रजं— पशुसंवर्धनके लिए जैसे गोपाल गोशालामें जाता है, वैसे ही सोम बर्तनमें छाना जाता है ।

[ ५४० ] ( वाजी इन्दुः ) बलवान् ( गोन्योधाः ) नीचे रखे बर्तनमें छाना जानेवाला ( इन्द्रे सहः इन्वन् ) इन्द्रका बल बढ़ानेवाला ( वरिवः कृण्वन् ) याजकोंको धन देता हुआ ( वृजनस्य राजा सोमः ) बलका राजा सोम ( मदाय ) आनन्द बढ़ानेके लिए ( पवते ) छाना जाता है । वह ( रक्षः हन्ति ) राक्षसोंको मारता है, और ( अ-रातिं परि बाधते ) दुष्टोंको दूर करता है ॥ ८ ॥

[ ५४१ ] हे सोम ! ( अया पवा ) इस शुद्ध हुई धारासे ( एना वसूनि पवस्व ) ये धन हमें दे, हे ( इन्दो ) सोम ! ( माश्चत्वे ) सम्मानको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ( सरसि ) पानीके कलसेमें ( प्र धन्व ) जा । ( यस्य ब्रध्नश्चित् ) जिसका मूल आधार आदित्य ( वसः न ) जिस प्रकार वायुको प्रेरित करता है, उसी तरह ( नरं जूतिं धात् ) नेतासे वेगको वह सोम धारण करता है, और वह सोम ( पुरु-मेधाः चित् ) बहुत बुद्धिमान् इन्द्रकी भी ( तकवे ) प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

१ अया पवा— एक धारसे सोम छाना जाता है । बादमें—

२ सरसि प्र धन्व— पानीके कलसेमें पहुंचता है । छाननेके बाद उसे पानीमें मिलाया जाता है ।

३ ब्रध्नः वातः न— सूर्य जैसे वायुको प्रेरित करता है, उस तरह छाननेवाला सोमको गति देता है, और वह ( पुरु-मेधाः तकवे ) बुद्धिमान् इन्द्रको दिया जाता है ।

४ माश्चत्वे सरसि प्र धन्व— जैसे लोग संमाननीय लोगोंके पास जाते हैं, उसी प्रकार पानी सम्मानके योग्य सोममें मिलाया जाता है ।



५४२ महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्रर्भोवृणीत देवान् ।

अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।९।७।१ )

५४३ असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनीषा प्रथमा मनीषा ।

दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निः सदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।९।१।१ )

५४४ अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।

नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।९।१।३ )

इति पञ्चमी वंशतिः ॥ ५ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ [ स्व० १९। उ० ३। धा० ८२। बा ॥ ]

इति त्रिष्टुभः ॥ इति षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ६ ॥

[ ५४२ ] ( महिषः सोमः ) महान् बलवान् सोम ( महत् तत् चकार ) उन महान् कार्योको करता है । उसके कार्य ये हैं—( यत् अपां गर्भः ) पानीको अपने गर्भमें धारण किया, बादमें ( देवान् अवृणीत ) देवोंको प्राप्त किया ( पवमानः इन्द्रे ओजः न्यधात् ) शुद्ध हुए सोमने इन्द्रमें सामर्थ्यको स्थापित किया और ( इन्दुः सूर्ये ज्योतिः ) सोमने सूर्यमें तेज ( अजनयत् ) उत्पन्न किया ॥ १० ॥

१ अपां गर्भः— पानीको अपने गर्भमें धारण किया । सोममें पानी मिलाया जाता है ।

२ देवान् अवृणीत— देवोंका वरण किया । देवोंको पीनेके लिए सोम दिया जाता है ।

३ इन्द्रमें बल बढ़ाया, सूर्यमें तेज बढ़ाया । सोमरस पीनेके कारण देवोंका सामर्थ्य बढ़ा ।

[ ५४३ ] ( मन ऊता ) सबका मन जिसमें संलग्न है, ( प्रथमा मनीषा ) पहले ही जिसकी स्तुति की है, वह ( वक्वा ) शब्द करनेवाला सोम ( आजौ धिया ) यज्ञमें स्तोत्र पाठके साथ ( रथ्ये यथा ) जिस प्रकार संग्राममें घोड़े भेजे जाते हैं, उस तरह ( असर्जि ) पानीमें मिलाया जाता है ( दश स्वसारः ) दश अंगुलियां ( सदनेषु वह्निः ) यज्ञ स्थानमें पहुंचनेवाले सोमको ( सानो अधि ) उच्च स्थानपर ( अव्ये अच्छ मृजन्ति ) बकरीके बालोंकी छाननीसे उत्तम रीतिसे शुद्ध करती हैं ॥ ११ ॥

१ मनीषा— मन जिस पर लग गया है, वह सोम ।

२ प्रथमा मनीषा— प्रथम जिसकी स्तुति की है, ऐसा सोम ।

३ वक्वा— शब्द करनेवाला; छाने जाते हुए यह शब्द करता है ।

४ आजौ धिया असर्जि— यज्ञमें स्तोत्र पाठ करते हुए सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।

५ अव्ये मृजन्ति— बकरीके बालकी छाननीसे छाना जाता है ।

[ ५४४ ] ( अपां ऊर्मयः इव ) पानीकी लहरें जिस प्रकार जल्दी चलती हैं, उस प्रकार ( तर्तुराणाः इत् ) शीघ्रता करनेवाले ऋत्विज ( मनीषाः ) स्तुतियोंको ( सोमं अच्छ प्र ईरते ) सोमके पास शीघ्र प्रेरित करते हैं । ( उशतीः नमस्यन्तीः ) उन्नतिकी इच्छा करनेवाली और नमस्कार करनेवाली स्तुतियां ( उशन्तं तं उपयन्ति च ) इच्छा करनेवाले सोमके पास पहुंचती हैं । ( सं आविशन्ति च ) और उसमें प्रवेश करती हैं ॥ १२ ॥

सब ऋत्विज सोमकी एकदम स्तुति करते हैं ।

॥ यहाँ सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

( १-९ ) १ अन्धीगुः श्यावाश्विः; २ नहुषो मानवः; ३ ययातिर्नाहुषः; ४ मनुः सांवरणः; ५, ८, अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिष्वा भारद्वाजश्च; ६, ७ रेभसून् काश्यपौ; ९ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ पचमानः सोमः ॥ अनुष्टुप्; ७ बृहती ॥

अथ षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्थः ॥ ६ ॥

५४५ पुरोजिती वा अन्धसः सुताय सादयित्त्नवे ।

अप श्वानश्शथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

५४६ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्पति ।

पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।७ )

५४७ सुतासा मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः

॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०।४ )

५४८ सोमाः पवन्त इन्द्रास्समभ्यं गातुवित्तमाः ।

मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वविदः

॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०।१० )

५४९ अमी नो वाजसातमश्चरयिमर्ष शतस्पृहम् ।

इन्द्रो सहस्रभर्गसं तुविद्युम्नं विभासहम्

॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।९।१ )

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ ५४५ ] ( सखायः ) स्तुति करनेवाले याजको ! ( वः ) तुम ( पुरोजिती अन्धसः ) आगे रखे हुए सोमरूपी अश्वके ( मादयिष्णवे सुताय ) आनन्द देनेवाले इस रसके पास ( दीर्घ-जिह्वं श्वानं अपश्नथिष्टन ) जानकी हज्जा-वाले बड़ी जीभ वाले कुत्तेको दूर हटावो ॥ १ ॥

कुत्ते सोमरस न चाटें ऐसा करो ।

[ ५४६ ] ( पूषा भगः रयिः अयं सोमः ) पोषण करनेवाला, सेवन करने योग्य, शोभावान् ऐसा यह सोमरस ( पुनानः अर्पति ) छाना जाता हुआ नीचेके वर्तनमें गिरता है । ( विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः ) सब प्राणियोंका पालन करनेवाला यह सोमरस ( उभे रोदसी व्यख्यत् ) दोनों ही द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

सोमरस चमकता है, इसलिए आलंकारिक भाषामें उसे दोनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाला बताया है ।

[ ५४७ ] ( मधुमत्तमाः मन्दिनः ) मीठे और आनन्द बढ़ानेवाले ( सुतासः ) सोमरस ( पवित्रवन्तः ) छनते हुए इन्द्रके लिए तैय्यार होते हैं, हे सोम ! ( वः ) तुम्हारे ( मदाः ) ये आनन्ददायक रस ( देवान् गच्छन्तु ) देवोंके पास पहुंचें ॥ ३ ॥

[ ५४८ ] ( गातु-वित्-तमाः ) सगोंको उत्तमरीतिसे जाननेवाले ( मित्राः ) मित्रके समान ( स्वानाः ) रस निकाले हुए ( अ-रेपसः ) निष्पाप ( स्वाध्यः ) मनको उत्तमतासे एकाग्र करनेवाले ( स्वः-विदः इन्द्रवः ) आत्म-ज्ञानी ये ( सोमाः ) सोमरस ( अस्मभ्यं पवन्ते ) हमारे लिए पवित्र होते हैं, छाने जाते हैं ॥ ४ ॥

[ ५४९ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( शत-स्पृहं ) सैकड़ों जिसकी प्रशंसा करते हैं ( सहस्र-भर्गसं ) हजारोंका जो पोषण करता है ( तुविद्युम्नं ) बहुत तेजस्वी ( विभा-सहं ) विशेष प्रकाशकी अपेक्षा भी अधिक प्रकाशमान ( वाज-सातमं ) बल बढ़ानेवाले ( रयिं ) धन ( नः अभ्यर्ष ) हमें दे ॥ ५ ॥

१ विभा-सहं—विशेष तेजस्वी लोकोंसे भी यह सोम अधिक तेजस्वी है ।



- ५५० अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियामिन्द्रस्य काम्यम् ।  
वत्सं न पूव आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )
- ५५१ आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्वन्ति पौंस्यम् ।  
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विषामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।११।१ )
- ५५२ परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।  
यो देवान्विश्वा इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१८।७ )
- ५५३ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।  
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०।१।१३ )

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥ [ स्व० १० । उ० ५ । धा० ६१ । म ॥ ]  
इत्यनुष्टुभः ( एका बृहती ) ॥

[ ५५० ] ( मातरः ) गोमातायें ( पूर्वे आयुनि जातं वत्सं ) पहली आयुमें उत्पन्न हुए बछड़ों ( रिहन्ति न ) चाटती हैं, उस प्रकार ( अ-द्रुहः ) द्रोह न करनेवाले जल ( इन्द्रस्य प्रियं काम्यं ) इन्द्रके प्रिय और चाहने योग्य सोमको ( अभी नवन्ते ) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

१ अ-द्रुहः इन्द्रस्य प्रियं अभी नवन्ते— द्रोह न करनेवाले जल, इन्द्रको प्रिय लगनेवाले सोमको प्राप्त होते हैं । जल सोमरसमें मिलाया जाता है ।

[ ५५१ ] ( हर्यताय ) सबोंसे पूजनीय और ( धृष्णवे ) शत्रुका पराजय करनेवाले सोमको ( पौंस्यं धनुः आतन्वन्ति ) जैसे पुरुषार्थ प्रकट करनेवाले धनुष लेकर उसपर डोरी चढ़ाते हैं, उसी प्रकार ऋत्विज छाननेके लिए तैय्यार करते हैं । ( विषां अग्रे ) बिद्वानोंके आगे ( महीयुवः शुक्राः ) पृथ्वीपर पूजित होनेवाले अध्वर्यु स्वच्छ गायके दूधको ( असुराय निर्णिजे ) बलवान् सोमके रूपको चमकानेके लिए ( वयन्ति ) आच्छादित करते हैं ॥ ७ ॥

१ क्षत्रिय जिस प्रकार धनुषपर डोरी चढ़ाकर युद्धकी तैय्यारी करते हैं, उसी प्रकार ऋत्विज सोम छाननेकी तैय्यारी करते हैं ।

२ स्वच्छ गायके दूधसे सोमरसको ढक देते हैं । अर्थात् सोमरसमें गायका दूध मिलाते हैं ।

[ ५५२ ] ( हर्यतं हरिं ) सुन्दर हरे रंगके और ( बभ्रुं त्यं ) भूरे रंगके उस सोमको ( वारेण परि पुनन्ति ) ऊनकी छाननीसे छाना जाता है । ( यः ) वह सोम ( विश्वान् देवान् इत् ) सब देवोंके पास ( मदेन सह परि गच्छति ) अपने आनन्ददायक गुणोंके साथ जाता है ॥ ८ ॥

[ ५५३ ] ( सुन्वानाय अन्धसः ) सोमका रस निकालनेके बाद उस अन्नका ( तत् वचः ) वह वर्णन ( मर्तः न प्रवष्ट ) सभी मनुष्य न सुनें, ( अ-राधसं मखं भृगवः न ) जैसे बान-बकिणासे रहित यज्ञको भृगुऋषिने दूर कर दिया उसी प्रकार ( श्वानं अप हत ) कुत्तेको दूर करो ॥ ९ ॥

१ अन्धसः तत् वचः मर्तः न प्रवष्ट— सोमरसके उस वर्णनको सभी आदमी न सुनें । केवल विशेष योग्यतावाले ही उसे सुनें ।

॥ यहां आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ७ ]

( १-१२ ) १-३, ५ कविर्भागवः; ४, ६ सिकता निवावरी; ७ रेणुर्वैश्वामित्रः; ८ वेनो भार्गवः; ९ वसुभरिद्वाजः;  
१० वत्सप्रिभालन्वः; ११ गृत्समवः; शौनकः; १२ पवित्र आङ्गिरसः ॥ पचमानः सोमः ॥ जगती ॥

५५४ अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यद्धो अधि येषु वर्धते ।

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्मधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७५।१ )

५५५ अचोदसो नो धन्वन्तित्वन्दवः प्र स्वानासो बृहदेवेषु हरयः ।

वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७६।१ )

५५६ एष प्र कोशे मधुमाऽअचिक्रदादिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।

अभ्यश्तस्य सदुघा घृतश्चुतो वाश्ना अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।७७।१ )

५५७ प्रो अयासीदिन्द्रस्य निष्कृतऽसखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।

मर्य इव युवतीभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।७८।६ )

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ ५५४ ] ( चनो-हितः ) अन्न अर्थात् हितकारक सोमः प्रियाणि नामानि अभि पवते ) प्रिय जलोंमें मिलाकर छाना जाता है । ( येषु यद्धः अभिवर्धते ) उन जलोंमें वह मिलकर बढ़ता है, वादमें ( बृहन् : महान् होकर ( बृहतः सूर्यस्य महान् सूर्यके ( विष्वञ्चं रथं अधि ) सब जगह जानेवाले रथपर ( विचक्षणः आरुहत् ) विश्वको देखनेवाला सोमदेव चढता है ॥ १ ॥

[ ५५५ ] ( अ-चोदसः ) किसी दूसरेके द्वारा प्रेरित न होनेवाले ( हरयः स्वानासः ) हरे रंगके उत्तम रीतिसे निकाले गये ( इन्द्रवः सोमरस ( नः बृहदेवेषु प्र धन्वन्तु ) हमारे यज्ञमें हमें प्राप्त हों । ( अ-रातयः ) दान न करनेवाले ( नः अरयः ) हमारे शत्रु ( इषयः ) अन्नकी इच्छा करते हुए ( अश्नानाः वि चित् ) भूखे-अन्न न पाने-वाले ( सन्तु ) होवें, ( नः धिया सनिषन्तु ) हमारे स्तोत्र देवोंको प्राप्त होवें ॥ २ ॥

१ अ-रातयः नः अरयः इषयः अश्नानाः वि चित्— हमारे शत्रुओंको खानेके लिए अन्न न मिले, वे वैसेही बिना अन्नके भूखे रहें ।

[ ५५६ ] ( इन्द्रस्य वज्रः ) इन्द्रका वज्र मानों यही है, ऐसा ( वपुषा वपुष्टमः ) बलसे बहुत बलशाली ( एषः मधुमान् ) यह मीठा सोमरस ( कोशे प्र अचिक्रदत् ) कलसेमें शब्द करता है । ( ऋतस्य ) यज्ञके लिए ( सुदुघः घृतश्चुतः ) उत्तम रूपसे दूध देनेवाली, और घी चुवानेवाली ( वाश्नाः पयसा धेनवः च ) रंभाती हुई दुधार गायें ( अभि अर्षन्ति ) पास आती हैं ॥ ३ ॥

१ सोमके पास दुधार गायें आती हैं, -सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है ।

[ ५५७ ] ( इन्द्रः ) यह सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके स्थानमें-पेटमें ( प्र उ अयासीत् ) जाता है और वहां जाकर ( सखा ) मित्ररूपी यह सोम ( सख्युः संगिरं ) मित्ररूपी इन्द्रके पेटमें ( न प्र मिनाति ) कोई भी कष्ट नहीं देता, ( युवतीभिः मर्यः इव ) जिस प्रकार तरुण पुरुष अनेक स्त्रियोंके साथ रहता है, उस प्रकार सोम जलके साथ ( सं अर्षति ) मिलकर रहता है । यह सोम ( शत-यामना पथा ) सौ छेदवाले छलनीके रास्ते ( कलशे ) कलशमें छाना जाता है ॥ ४ ॥

१ युवतीभिः मर्यः इव सं अर्षति— अनेक स्त्रियोंके साथ जैसे एक पति मिलकर रहता है, उस प्रकार सोम जलमें मिलाया जाता है अर्थात् सोमरस बहुत सारे जलमें मिलाया जाता है ।



- ५५८ <sup>३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।  
<sup>१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्व ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।७६।१ )
- ५५९ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रदादिन्द्रस्य हार्द्याविश्वमनीषिभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।८६।१ )
- ५६० <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुहिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> चत्वायन्या भुवनानि निर्णिजे चारुणि चक्रे यद्वतैरवर्धत ॥ ७ ॥ ऋ. ९।७७।१ )
- ५६१ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मा ते रसस्य मत्सत द्रयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्तिवन्दवः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।८१।१ )
- ५६२ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अभिक्रदत् ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥ ऋ. ९।८१।१ )

[ ५५८ ] ( धर्ता कृत्व्यः रसः ) धारणशक्तिसे युक्त कर्म करनेवाला यह सोमरस ( देवतानां दक्षः ) देवताओंका बल बढ़ानेवाला ( नृभिः अनुमाद्यः ) ऋत्विजों द्वारा प्रशंसित ( हरिः ) हरे रंगका सोम ( दिवः पवते ) उपरके बर्तनसे छनता हुआ नीचेके कलशमें गिरता है । ( सत्वभिः सृजानः ) बलवान् ऋत्विजों द्वारा निकाला गया यह रस ( अन्य न ) घोड़ेके समान ( वृथा ) सरलतासे ही ( पाजांसि ) अपनी शक्तिसे ( नदीषु कृणुते ) नदीके जलमें अपनेको मिलाता है ॥ ५ ॥

[ ५५९ ] ( मतीनां वृषा ) स्तुति करनेवालोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाला ( वि-चक्षणः ) विशेष ज्ञानी ( अह्नां उपसां दिवः ) दिन, उषा और सूर्यके बलको ( प्रतरीता ) बढ़ानेवाला ( सोमः पवते ) सोम छाना जाता है । ( सिन्धूनां प्राणाः ) नदीके प्राणरूपी जलमें मिलाया गया ( मनीषिभिः ) ज्ञानी ऋत्विजों द्वारा निकाला गया यह सोमरस ( इन्द्रस्य हार्दि आविशत् ) इन्द्रके पेटमें जानेके लिए ( कलशान् अभि ) कलशमें ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ ५६० ] ( परमे व्योमनि ) श्रेष्ठ यज्ञमें रहनेवाले ( अस्मै ) इस सोमरसके लिए ( त्रि सप्त धेनवः ) इक्कीस गायें ( सत्यां आशिरं दुदुहिरे ) निश्चयसे दूध देती हैं, और यह सोम ( यत् क्रतैः अवर्धत ) जब यज्ञसे बढ़ाया जाता है । तब ( अन्या चत्वारि भुवना ) दूसरे चार भुवनोंमें जलके चार बर्तनोंमें निर्णिजे छानकर शुद्ध करनेके लिए ( चारुणि चक्रे ) उत्तम कल्याणकारी पद्धतिसे शुद्ध किया जाता है ॥ ७ ॥

बारह मास, पांच ऋतु, तीन लोक और यह आदित्य मिलकर २१ गायें हैं, यह भाव यहां दिखाया है ।

[ ५६१ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( सु-षुतः ) उत्तम प्रकारसे रस निकालनेके बाद ( इन्द्राय परिस्रव्य इत्येके ) लिए प्रवाहित हो, ( अमीवा रक्षसा सह अप भवतु ) रोग राक्षसोंके साथ दूर हो जाएं ( ते रसस्य ) तेरे रसको पीकर ( द्रया विनः ) सत्य और असत्य दोनोंका आचरण करनेवाले दुष्ट आनन्दित न हों । ऐसे दुष्टोंको सोमरस पीनेको न मिले । ( इन्द्रवः ) सोमरस ( इह ) इस यज्ञमें ( द्रविणस्वन्तः सन्तु ) धनयुक्त हों ॥ ८ ॥

[ ५६२ ] ( अरुषः वृषा ) तेजस्वी, बलवर्धक ( हरिः सोमः ) हरे रंगका सोमरस ( असावि ) निकाला है । यह ( राजा इव दस्म ) राजाके समान सुन्दर है । ( गाः अभिः ) गायका दूध मिलानेके बाद ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ वह ( पुनानः ) छाने जाते हुए ( अव्यं वारं अत्येषि ) बकरीके बालोंकी बनी छाननीसे छाना जाता है, छाना जानेके बाद ( श्येनः न ) श्येन पक्षीके समान ( घृतवन्तं योनिं आसदत् ) जलयुक्त कलशमें वह जाकर रहता है ॥ ९ ॥



- ५६३ प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्द्रवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।  
 वर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्त्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।६८।१ )
- ५६४ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।  
 सिन्धोरुऽङ्घ्रासे पतयन्तमुक्षुणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।६८।४३ )
- ५६५ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।  
 अतस्तनूनं तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १२ ॥ ( ऋ. ९।६८।३१ )

इति सप्तमी वसतिः ॥ ७ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥ [ स्व० १५। उ० ११। घा० १३७। पे ॥ ]

इति जगत्यः ॥

[ ८ ]

( १-१२ ) १, ७, ११ अग्निश्चाक्षुषः; २ चक्षुर्मनिवः; ३, ४, ९, १० पर्वतनारदौ काण्वौ ( ३, १० शिखण्डिन्या-  
 वस्परसौ काश्यपो वा ); ५ त्रित आप्त्यः; ६ मनुराप्सवः; ८, १२ द्वित आप्त्यः; ॥ पवमानः सोमः ॥ उष्णिक् ॥

- ५६६ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्द्रवः स्वविदः ॥ १ ॥  
 ( ऋ. ९।१०६।१ )

[ ५६३ ] ( मधुमन्तः इन्द्रवः ) मोठे सोमरस ( देवं अच्छ ) इन्द्र देवके पास ( प्रासिष्यदन्त ) प्रवाहित होते हैं, बर्तनमें डाले जाते हैं ( न धेनवः गावः आ ) जैसे दुधार गायें बछड़ेके पास जाती हैं ( वर्हिषदः वचनावन्तः उस्त्रियाः ) यज्ञशालामें रहनेवाली और शब्द करनेवाली गायें ( ऊधभिः परिस्रुतं निर्णिजं ) अपने थनोंसे टपकनेवाले दूधमें सोमरसको ( धिरे ) धारण करती हैं । सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है ॥ १० ॥

[ ५६४ ] ( अञ्जते ) ऋत्विज सोमरसको गायके दूधमें मिलाते हैं ( वि अञ्जते ) विशेष रीतिसे मिलाते हैं । ( सं अञ्जते ) अच्छी तरह मिलाते हैं । देवगण ( क्रतुं रिहन्ति ) इस सोमरसका स्वाद लेते हैं, ( मध्वा अभि अञ्जते ) शहद और घी उसमें मिलाते हैं । बाबमें ( सिन्धोः उच्छ्वासे ) नदीके पानीमें ( पतयन्तं उक्षुणं ) पड़े हुए सोमको ( हिरण्य पावः ) सोनेसे पवित्र करते हुए ( पशुं गृभ्णते ) तेजस्वी रूप देते हैं ॥ ११ ॥

१ उक्षा- सोम, पशु- ( पश्यति इति ), द्रष्टा, देखनेवाला, अन्धेरेमें चमकनेवाला ।

२ हिरण्य-पावः— हाथमें सोनेकी अंगूठी पहनकर रस निकालते हैं और बादमें उन्हीं हाथोंसे छानते हैं ।

[ ५६५ ] हे ( ब्रह्मणस्पते ) ज्ञानपते सोम ! ( ते पवित्रं विततं ) तेरे पवित्र अंग सब जगह फैले हुए हैं ( प्रभुः गात्राणि पर्येषि ) तू सामर्थ्यशाली होनेके कारण पीनेवालेके शरीरमें स्फूर्ति बढ़ाता है, ( विश्वतः ) सब जगह ही यह नियम है कि ( अ-तस्तनूः ) तपसे बिना तपे हुए शरीरवाले ( आमः ) कच्चे व्रतवाले मनुष्यको वह फल ( न अश्नुते ) नहीं मिलता, लेकिन ( शृतासः इत् ) परिपक्व होनेके बाद ही ( तत् समासते ) उसे वह प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

॥ यहां नौवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[ ५६६ ] ( श्रुष्टे जातासः इन्द्रवः ) शीघ्र तैयार हुए ( स्वः विदः ) आत्मज्ञान बढ़ानेवाले ( इमे हरयः सुताः ) ये हरे रंगके सोमरस ( वृषणं ) बलवान् इन्द्रके पास ( अच्छ यन्तु ) सीधे पहुंचे ॥ १ ॥



- ५६७ प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्द्रो परि स्रव । द्युमन्तश्शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०६।४ )
- ५६८ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥  
( ऋ. ९।१०४।१ )
- ५६९ तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ४ ॥  
( ऋ. ९।१०९।१ )
- ५७० प्राणा शिशुर्महीनाऽहिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदंघ्रि द्विता ॥ ५ ॥  
( ऋ. ९।१०२।१ )
- ५७१ पवस्व देववीतय इन्द्रो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमांसोम नः सदः ॥ ६ ॥  
( ऋ. ९।१०६।७ )
- ५७२ सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥  
( ऋ. ९।१०६।१० )
- ५७३ प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥  
( ऋ. ९।१०३।१ )

[ ५६७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( जागृविः प्रधन्व ) उत्साह युक्त तू बर्तनमें जा, हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( इन्द्राय परिस्रव ) इन्द्रके लिए कलशमें जा, ( द्युमन्तं स्वर्विदं ) तेजस्वी और ज्ञान प्रसारक ( शुष्म आ भर ) बल हमें भरपूर दे ॥ २ ॥

[ ५६८ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! हे ऋत्विजो ! ( आ निषीदत ) आओ बैठो, ( पुनानाय प्रगायत ) सोमको छानते हुए सामगान करो, ( शिशुं न ) बालकको जिस प्रकार जेवरोंसे सजाते हैं, उस प्रकार ( श्रिये यज्ञैः परि भूषतः ) शोभाके लिए यज्ञ साधनोंसे इस सोमको अलंकृत करो ॥ ३ ॥

[ ५६९ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः ) तुम ( मदाय ) आनन्दको बढ़ानेके लिए ( पुनानं तं अभि गायत ) छानते हुए उस सोमकी स्तुति करो, ( शिशुं न ) बालकको जिस प्रकार सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार ( हव्यैः ) हवनसे और ( गूर्तिभिः ) स्तुतियोंसे इसे ( स्वदयन्त ) स्वादिष्ट करो ॥ ४ ॥

[ ५७० ] ( प्राणाः ) यज्ञका प्राण ( महीनां अपां शिशुः ) महान् जलोंका पुत्र सोम ( ऋतस्य दीधितिं हिन्वन् ) यज्ञके प्रकाशक अपने रसको प्रेरणा करता है ( विश्वा प्रिया परिभुवत् ) सब प्रिय हवियोंमें वह व्याप्त होता है, और ( द्विता ) भू और द्युलोकोंमें वह रहता है ॥ ५ ॥

[ ५७१ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( देववीतये ) देवोंको देनेके लिए ( ओजसा धाराभिः पवस्व ) वेगसे और धाराओंसे पात्रमें छनता जा, हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) आनन्द देनेवाला तू ( नः कलशं आ सदः ) हमारे कलशमें आकर रह ॥ ६ ॥

[ ५७२ ] ( पवमानः ) शृद्ध होनेवाला ( वाचः अग्रे ) स्तोत्र पाठके बाद ( कनिक्रदत् ) शब्द करता हुआ ( पुनानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( ऊर्मिणा ) धारसे ( अव्यं वारं विधावति ) बकरीके बालोंसे बनी छलनीसे छनता चला जाता है ॥ ७ ॥

[ ५७३ ] ( पुनानाय वेधसे सोमाय ) पवित्र होनेवाले, कर्म करनेवाले सोमके लिए ( वचः प्रोच्यते ) स्तोत्र बोले जाते हैं, ( मतिभिः जुजोषते ) स्तुतिसे प्रसन्न होनेवालेके लिए ( भृतिं न ) जिस प्रकार सेवकको धन देते हैं, उसी प्रकार ( प्र भर ) विशेष रूपसे स्तोत्र बोलो ॥ ८ ॥



५७४ गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमभि गोषु धारय ॥ ९ ॥

( ऋ. ९।१०५।४ )

५७५ अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूपत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥

( ऋ. ९।१०४।४ )

५७६ पवते हर्यता हरिरति ह्वरांसि रक्षा । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ ११ ॥

( ऋ. ९।१०६।१३ )

५७७ परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूपत ॥ १२ ॥

( ऋ. ९।१०३।३ )

इत्याष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥ ( स्व० ८। उ० ३। धा० ४६। ठ ॥ )

[ ९ ]

( १-८ ) १ गौरवीतिः शाक्यः; २ उर्ध्वसद्या आङ्गिरसः; ३, ८ ऋजिश्वा भारद्वाज; ४ कृतयशा आंगिरसः;

५ ऋणंचयो राजर्षिः; ६ शक्तिर्वासिष्ठः; ७ ऊर्वांगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ ककुप्, ५ यवमध्या गायत्री ॥

५७८ पवस्व मधुत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०८।९ )

[ ५७४ ] सुदक्ष इन्दो ) हे ऋग्वान् सोम ! ( सुतः ) रस निकालनेके बाद ( नः ) हमें ( गोमत् अश्ववत् धनिव ) गाय, घोंड़ोंसे युक्त धन दे । उसके बाद तू ( शुचिं वर्णं ) शुद्ध वर्णको ( गोषु आधि धारय ) गायके दूधमें प्राप्त कर ॥ ९ ॥

गोदूधमें सोमरस मिलाया जाता है, फिर उड़का तेजस्वी वर्ण चमकता है ।

[ ५७५ ] हे सोम ! ( वसु-विदं त्वा ) धन देनेवाले तेरी ( अस्मभ्यं वाणीः अभि अनूपत ) हमें धन मिले इसलिए हमारी वाणी बहुत स्तुति करती है । उसी प्रकार हम ( ते वर्णं ) तेरे वर्णको ( गोभिः अभिवासयामसि ) गायके दूधसे आच्छादित करते हैं ॥ १० ॥

[ ५७६ ] ( हर्यतः हरिः ) प्रशंसनीय हरे रंगका सोम ( इह्या ह्वरांसि अति पवते ) वेगसे बुरे भागोंको दूर करता हुआ नीचेके पात्रमें जाता है । खराब हिस्सेको दूर करता हुआ छनता जाता है । हे सोम ! तू ( स्तोतृभ्यः ) स्तोताओंको ( वीरवत् यशः ) पुत्रयुक्त कीर्ति ( अभ्यर्ष ) दे ॥ ११ ॥

[ ५७७ ] ( पुनानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( मधुश्चुतं कोशं परि अर्षति ) मीठे रसको कलशमें छोड़ता है ( ऋषीणां सप्त वाणीः ) ऋषियोंकी सात पदोंवाली वाणी इस सोमकी ( अभि अनूपत ) स्तुति करती है ॥ १२ ॥

॥ यहां दसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] एकादशः खण्डः ।

[ ५७८ ] हे सोम ! ( मधुत्तमः ) बहुत मीठा ( क्रतु वित्तमः ) उसके सम्बन्धमें सब कुछ जाननेवाला, ( महि द्युक्षतमः ) महान् तेजस्वी और ( मदः ) हर्ष बढ़ानेवाला तू ( इन्द्राय मदः पवस्व ) इन्द्रको आनन्द देनेके लिए बित्र हो ॥ १ ॥



- ५७९ अ॒भि॒ द्यु॒म्नं॑ बृ॒ह॒द्य॒श इ॒ष॒स्प॒ते दि॒दी॒हि दे॒व दे॒व॒यु॒म् । वि॒ का॒शं म॒ध्य॒मं यु॒व ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०।८।९ )
- ५८० आ सो॒ता परि॑ वि॒श्व॒ता॒श्वं न स्तो॒मम॑प्तु॒र॒रज॑स्तु॒रम् । वन॑प्र॒क्षमु॑द॒प्रुत॑म् ॥ ३ ॥  
( ऋ. ९।१०।८।७ )
- ५८१ ए॒त॒मु॒ त्वं म॑द॒च्यु॒तं सह॑स्र॒धारं वृ॒षभं॑ दि॒वो॒दु॒हम् । वि॒श्वा व॑सू॒नि वि॒भ्रत॑म् ॥ ४ ॥  
( ऋ. ९।१०।८।११ )
- ५८२ स सु॒न्वे यो व॑सू॒नां यो रा॑या॒माना॑ य इ॒डा॒नाम् । सो॒मो यः सु॑क्षि॒ता॒नाम् ॥ ५ ॥  
( ऋ. ९।१०।८।१२ )
- ५८३ त्वं ह्य॒रि॒ङ्गं दै॒व्यं प॑व॒मान॑ ज॒नि॒मा॒नि द्यु॒म॒त्त॒मः । अ॒मृ॒त॒त्वा॒य घो॑ष॒यन् ॥ ६ ॥  
( ऋ. ९।१०।८।१३ )
- ५८४ ए॒ष स्य॑ धा॒रया॑ सु॒तो॒ऽव्या॑ वारे॒भिः प॑व॒ते म॑दि॒न्त॒मः । क्री॒डन् नू॒र्मि॑रपा॒मिव ॥ ७ ॥  
( ऋ. ९।१०।८।१४ )

[ ५७९ ] हे ( इषस्पते ) अन्नके स्वामी ( देव ) प्रकाशमान देव लोग ! ( देवयुं ) तू देवोंको प्राप्त होनेवाला है, तू हमें ( द्युम्नं बृहत् यशः ) तेजस्वी और श्रेष्ठ यशः ( अभि दीदिहि ) दे, और ( मध्यमं कोशं ) शहदके कलशमें ( वि युव ) जाकर भर जा ॥ २ ॥

[ ५८० ] हे ऋत्विजो ! ( अश्वं न ) घोड़ेके समान वेगवान् ( स्तोमं ) स्तुतिके योग्य ( अप्तुरं ) जलके समान वेगवान् ( रजस्तुरं ) प्रकाशकी किरणके समान शीघ्रता करनेवाले ( वन-प्रक्षं ) जलते मिश्रित ( उद-प्लुतं ) जलके साथ मिले हुए सोमका ( सोत ) रस निचोड़ो, ( परि विचित ) और उसमें दूध मिलाओ ॥ ३ ॥

[ ५८१ ] ( दिवः ) तेजस्वी ऋत्विज ( मदच्युतं सहस्रधारं ) आनन्दके प्रेरक और हजारों धाराओंसे बर्तनमें गिरनेवाले ( वृषभं ) बलवर्धक ( विश्वा वसूनि विभ्रतं ) सब धनोंके धारण करनेवाले ( एतं त्वं उ ) इस उस सोमका ( दुहं ) रस निकालते हैं ॥ ४ ॥

[ ५८२ ] ( यः वसूनां ) जो धनोंका ( यः रायां ) जो दूध आदि पदार्थोंका ( यः इडानां ) जो भूमियोंका ( यः सुक्षितानां ) जो उत्तम सन्तानोंका ( आनेता ) देनेवाला है, ( सः ) उस सोमका रस ( सुन्वे ) निकाल लिया है ॥ ५ ॥

[ ५८३ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( द्युमत्तमः ) अत्यन्त तेजस्वी ( त्वं हि ) तू ( दैव्यं जनिमानि ) दिव्य जन्मोंको जानता है, और हे ( अंग ) प्रिय सोम ! तू ( अमृतत्वाय घोषयन् ) अमरताकी घोषणा करता है ॥ ६ ॥

[ ५८४ ] ( मदिन्तमः ) अत्यन्त आनन्द देनेवाला ( अपां ऊर्मिः इव क्रीडन् ) जलके लहरके समान खेल करते हुए ( स्यः एषः सुतः ) यह सोमरस ( अव्याः वारेभिः ) बकरीके बालोंसे बने हुए छाननीसे ( धारया पवते ) धार बांधकर कलशमें छाना जाता है ॥ ७ ॥



५८५ य उस्त्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।

अभि ब्रजं तत्तिषे गव्यमश्व्यं वर्माव धृष्णवा रुज । ओ३म् वर्माव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥

( ऋ. १।१०।६ )

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥ [ स्व० ७ । उ० १ । धा० ४३ । चि ॥ ] इत्युष्णिक्कुम्भः ॥

इति षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्ध, षष्ठप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ६ ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति छन्दोगप्रकृतिऋक् समाप्ता ॥ इति सौम्यं पावमानं काण्डं पर्व वा समाप्तम् ॥

॥ इति पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः ) समाप्तः ॥ पावमानकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११९

तत्र गायत्र्यः ४६७-५१० ( ४४ ), बृहत्यः ५११-५२२ ( १२ ), त्रिष्टुभः ५२३-

५४४ ( २२ ), अनुष्टुभः ५४५-५५३ ( ९ ), [ तत्र ' आह्वयत ' इति ५५१ बृहती ],

जगत्यः ५५४-५६५ ( १२ ), उष्णिक्कुम्भः ५६६-५८५ ( २० ), ११९

|                             |     |
|-----------------------------|-----|
| ऐन्द्रकाण्डस्य मन्त्रसंख्या | ३५२ |
| आग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या | ११४ |
| सर्वयोगः                    | ५८५ |

[ ५८५ ] ( यः ) जो ( उस्त्रियाः अपि याः ) फैलनेवाले और जलोंको धारण करनेवाले ( अश्मनि अन्तः ) मेघोंमें ( गाः ) जलोंको ( ओजसा निरकृन्तन् ) बलसे छिन्नभिन्न करते हुए तू ( गव्यं अश्व्यं ब्रजं ) गाय और घोड़ोंके समूहको ( अभि तत्तिषे ) चारों ओरसे घेरता है । हे ( धृष्णो ) शत्रुओंको मारनेवाले सोम ! ( वर्मा इव आरुज ) कवच धारण करनेवाले वीरोंके समान तू शत्रुओंका नाश कर ॥ ८ ॥

॥ यहाँ ग्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पवमानं काण्डम् ॥

## पवमान काण्ड

“ पवमान ” का अर्थ है, ‘ शुद्ध होनेवाला, छाना जाने-वाला, छानकर जिसका कूड़ा बाहर निकाल देते हैं, इस प्रकार “ पवमान ” का अर्थ हुआ वह सूक्त जिसमें सोमको छाननेका वर्णन है । पवमान सूक्तका अर्थ है सोमरस छान कर स्वच्छ करनेका वर्णन करनेवाला सूक्त । “ पवमान ” इस पदके कारण ही सामवेदके इस काण्डका नाम “ पवमान काण्ड ” है । ऋग्वेदके नवम मण्डलमें “ पवमान सूक्त ” ही है । उनमेंसे कहीं कहींसे मंत्र लेकर सामवेदके पवमान काण्डकी रचना की है । इस पवमान काण्डमें सोमरस छाननेके, उसे

इन्द्रको देनेके ओर ऋत्विजों द्वारा स्वयं पीनेके वर्णन करने-वाले मंत्र हैं ।

सोम यह एक बेल है उसका रंग हरा होता है । उसके रसको निकालकर उसे देवोंको पिलाकर बादमें ऋत्विज लोग स्वयं पीते हैं ।

### सोमका उत्पत्ति स्थान

सोमका उत्पत्ति स्थान पर्वतका ऊँचा प्रदेश है । इसलिए उसे—



१ गिरि-घ्राः अंशुः ( ४७३ )- ‘ पर्वत पर होनेवाली सोम बेल है ’, ऐसा कहा है ।

२ ते अन्धसः जातं उच्चा दिवि ( ४६७ )- “ अन्न-रूप सोमका स्थान ऊँचे प्रदेश छुलोकमें है । ” इससे यह मालूम पड़ता है कि पर्वतके ऊँचे स्थान पर सोम उगता था । वहाँसे वह मंदानोंमें लाया जाता था । देखिए—

१ सत् उग्रं शर्म भूम्या ददे ( ४६७ )- “ वे मुख देनेवाले उग्र अन्न भूमिपर लाये गये ” पर्वतके ऊँचे भाग पर उगनेवाली यह सोमवल्ली वहीसे यज्ञके लिए भूमिपर लाई गई । ऋग्वेदमें इस सोमको “ मौजवान् ” कहा गया है ।

सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः ॥ ऋ. ( १०।३।११ )

“ मौजवान् पर्वतपर होनेवाले सोमरसरूपी अन्न अत्यन्त प्रिय हैं, ” इस मंत्रमें “ मौजवान् ” पर्वत पर होनेवाले सोमको उत्तम माना गया है । मौजवान् हिमालयका एक शिखर है । उसपर १२ हजार फीटकी ऊँचाई पर पाया जानेवाला सोम उत्तम माना जाता है । ऊपर ‘ उच्चा दिवि ’ ऊँचे छुलोकमें यह सोमरूपी अन्न उत्पन्न होता है, ऐसा कहा है । हिमालय पर्वतपर १२ हजार फीट या उससे अधिककी ऊँचाईके स्थानको छुलोक समझा जाता है । “ त्रिविष्टिप् ” इस शब्दका अपभ्रंश होकर “ तिब्बत ” शब्द बना है । यह “ तिब्बत ” हिमालय पर्वतमें १२ हजार फीटकी ऊँचाईपर है । त्रिविष्टिप् ही छुलोक या स्वर्गलोक है ।

गंगा नदीका नाम “ त्रिपथगा ” है । स्वर्ग, भूलोक और पाताल लोक इन तीनों स्थानोंपर वह बहती है । वह हिमालयसे निकलकर, भूमिपर बहती हुई नीचे जाकर समुद्रसे मिलती है । इससे भी यह ज्ञान होता है कि हिमालयका ऊँचा प्रदेश ही स्वर्ग है । ओर छुलोकपर उगनेवाली सोमवल्ली श्रेष्ठ होती है ।

यज्ञ करनेवाले लोग इस मौजवान् पर्वतसे सोमवल्ली लाते थे, अथवा यहाँसे लाकर बेचनेवाले लोगोंसे वे खरीदते थे । सोमको गाय देकर खरीदते थे । इस सोमवल्लीको गुच्छेमें बांधकर लाते थे । उन्हें लकड़ियोंके दो तख्तोंके बीचमें रखते थे—

१ नप्त्योः हितः ( ४७६ )- दो तख्तोंके बीचमें उसे रखा जाता था, इन लकड़ीकी पहियोंको “ अभिषवण फलक ” कहते थे । इसका अर्थ “ सोमरस निकालनेकी पट्टी ” है । ये पट्टियाँ दो होती थीं । प्रत्येक पट्टीकी लम्बाई और चौड़ाई ३६×१८ अंगुल होती थी । दोनों पट्टियोंको मिलाकर रखनेसे

२३ ( साम. हिन्दी )

३६ अंगुलकी वर्गाकार पहियां हो जाती थीं । इन पट्टियोंपर काले हिरणकी खाल बिछाते थे । उसपर सोमवल्ली रखकर पत्थरोंसे कूटते थे ।

चम्बोः सुतः ( ४९० )- दोनों पट्टियों पर रखकर और सोमका रस निकालकर उसे बर्तनोंमें भरकर रखते थे ।

### पत्थरोंसे कूटना

रस निकालनेके लिए सोमको पत्थरोंसे अच्छी तरह कूटते थे । इन पत्थरोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ कविक्रतुः, नप्त्योः हितः, दिवः प्रिया वयांसि, स्वानैः परियाति ( ४७६ )- ज्ञानी और कर्ममें कुशल इस सोमके पट्टियोंपर रखे जानेके बाद छुलोकसे प्रियपक्षी अर्थात् कूटनेके पत्थर रस निकालनेवाले अध्वर्युके द्वारा इसपर फिराये जाते थे । अध्वर्युका मतलब है यज्ञ करनेवाले । वे उन पत्थरोंसे सोमवल्ली कूटते थे और उसका रस निकालते थे । यहाँ पत्थरोंको “ प्रिया वयांसि ” प्रिय पक्षी कहा है । पर्वतसे जैसे सोमवल्ली लाते थे, वैसे ही पत्थर भी पहाड़ोंसे ही लाये जाते थे । इसलिए पत्थर ऊपर बैठनेवाले पक्षी ही हैं, यह अलंकारमें कहा है ।

स्वानैः ( सुवानैः )- रस निकालनेवाले ऋत्विज् सोम कूटते थे, उसके बाद उनका रस निकालते थे ।

२ सोमं अद्रिभिः सुषाव ( ५१२ )- सोमरस पत्थरोंसे कूटकर निकाला गया । यहाँ “ अद्रिः ” पद “ पर्वत ” का वाचक है और वह पद यहाँ पर्वतपर होनेवाले पत्थरोंका वाचक है । यह वेदकी अपनी विशेष शैली है । उस शैलीको समझानेके लिए यहाँ कुछ उदाहरण देते हैं ।

### अंशके लिए पूर्णका प्रयोग

पत्थर पर्वतका अंश है । उस अंशरूपी पत्थरके लिए पूर्ण पर्वतका प्रयोग किया गया है । “ पर्वत ” का अर्थ पर्वतका अंश “ पत्थर ” है । इस प्रयोगके और भी उदाहरण हैं, जैसे—

१ अद्रिभिः सुतः ( ४९९ )-

२ अद्रिभिः स्वानः ( ५१३ )- ( अद्रि ) पर्वतोंसे अर्थात् पहाड़के पत्थरोंसे कूटकर सोमवल्लीका रस निकाला जाता था, यह रस लकड़ीके बर्तनोंमें रखा जाता था । उसका वर्णन इस प्रकार किया है ।

३ वनेषु सदः दग्धिषे ( ५१३ )-

४ आसृज्यमानः हरिः कनिकन्ति, वनस्य जठरे



सीदन् ( ५३० )- वनको अपना घर बनाया है। सोमका हरे रंगका रस शब्द करता हुआ वनके पेटमें जाता है। “ वनेषु सदः ” और “ वनस्य जठरे ” इन वाक्योंका अर्थ है, पात्र-‘वनमें वृक्ष होते हैं, उन वृक्षोंसे लकड़ी बनती है, और उस लकड़ीसे वर्तन बनते हैं, इसलिए पात्र अंश है और वृक्ष अथवा वन पूर्ण है। इस अंशके लिए पूर्णका प्रयोग यहां हुआ है। इस कारण “ वनेषु सदः दधिपे ”, अथवा “ वनस्य जठरे सीदन् ” इसका अर्थ है, कि लकड़ीके वर्तनमें सोमरसका रखा जाना। यह वैदिक वर्णनकी शैली है। “ वन ” का अर्थ है, “ लकड़ीके वर्तन ” यह वेदकी परिभाषा है। यह शैली ठीक तरह समझ लेनी चाहिए, नहीं तो वेदमंत्रोंका अर्थ ठीक तरहसे ध्यानमें नहीं आएगा और अर्थके अनर्थ होनेमें कठिनाई भी नहीं होगी। इस शैलीके दूसरे उदाहरण भी यहां देखने योग्य हैं—

५ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः ( ४८६ )- ज्ञानी सिन्धुके लहरोंमें रहता है। ( कविः ) ज्ञानी, ज्ञान बढ़ाने-वाला सोम नदीके पानीमें मिलाया जाता है।

६ सोमासः अप ऊर्मयः प्रनयन्त ( ४७८ )- सोमरस पानीके लहरके पास लाया गया। सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

७ मृज्यमानः समुद्रे वाचं इन्वसि ( ५१७ )- शुद्ध होता हुआ यह सोमरस समुद्रमें शब्द करता हुआ जाता है। सोमरस छनते समय पानीके वर्तनमें शब्द करते हुए पड़ता है। नीचे पानीके वर्तन हैं, उसका निर्देश यहां “ समुद्र ” पदसे किया है।

८ सोमासः समुद्रस्य विष्टपे अभि पवन्ते ( ५१८ )- सोमरस समुद्रके ऊपरके भागमें छाने जाते हैं। सोमरस पानीके वर्तनमें छाने जाते हैं।

९ देवेभ्यः मत्सरः समुद्रः ( ५२१ )- देवोंके लिए आनन्द देनेवाला यह सोमरस समुद्रमें मिलाया जाता है, अथवा सोमरसका समुद्र लहरा रहा है। अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाया जाता है।

१० अत्यः न वृथा पाजांसि नदीषु कृणुते ( ५५८ )- घोडा जैसे सरलतापूर्वक अपनी शक्तिसे स्नान करता है, उसी प्रकार ये सोमरस नदीमें स्नान करते हैं। अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाया जाता है। इस स्थानपर “ नदीषु ” ( नदियोंमें ) यह पद बहुवचनमें प्रयुक्त हुआ है। अनेक नदियोंमें स्नान करता है। सोमरस पानीमें मिलाया जाता

है यह कहनेके बजाय सोम नदियोंमें स्नान करता है, ऐसा कहा है।

११ सिन्धूनां प्राणाः कलशान् अभि अचिक्रदत् ( ५५९ )- नदीके प्राण वर्तनमें शब्द करते हुए जाते हैं। इसका अर्थ है कि नदीके प्राणरूपी पानी वर्तनमें भरे जाते समय शब्द करते हैं।

१२ सिन्धोः उच्छ्वासे पतयन्तं उक्ष्णं हिरण्य-पावः पशुं गृभ्णते ( ५६४ )- नदीके पानीमें पड़े हुए बेलको सोनेके आभूषणको पहने हुए हाथोंसे पशु समझकर पकड़ते हैं। “ उक्षा ”- बेल, सोमरस; पशु, जानवर, देखनेवाला, चमकनेवाला, नदीके पानीमें सोम मिलाया जाता है, और वह वहां चमकने लगता है, और वह सोनेकी अंगूठी पहने हुए हाथोंसे छाना जाता है। यहां “ सिन्धोः उच्छ्वासे ” ( नदीके भंवरमें ) यह शब्द नदीके पानीसे भरे हुए वर्तनके लिए प्रयुक्त हुआ है। “ पशु ” शब्दका अर्थ है, चमकने-वाला सोमरस।

“ पश्यति इति पशुः ” जो देखता है वह पशु है। देखनेका अर्थ है चमकना। रस चमकता है, वह अपने तेजसे सबको देखता है। उक्षाः- बेल, बल बढ़ानेवाला सोम।

इस प्रकार “ अंशके लिए पूर्णका प्रयोग ” वेदमें संकड़ों स्थानपर आता है। उन्हें समझ लेना अत्यावश्यक है। इसके थोड़ेसे और भी उदाहरण देखिए—

### दूधमें सोमरसका मिलाना

गायके दूधमें सोम मिलाया जाता है। इसका वर्णन वेदमें इस प्रकार है—

१ सुजातं अप्तुरं गोभिः परिष्कृतं इन्दुं ( ४८७ )- उत्तम प्रकारसे तैयार किया गया और शीघ्रतासे पानीमें मिलाया गया सोमरस ( गोभिः परिष्कृतं ) गायके दूधमें मिलाया जाता है। “ गायसे मिश्रित ” का अर्थ है “ गायके दूधसे मिश्रित ”। दूध गायका अंश है, इस अंशके लिए पूर्ण “ गाय ” का प्रयोग किया है। और भी देखिए—

२ हे इन्दो ! गाः अभि इहि ( ५०५ )- हे सोमरस ! तू गायके पास जा, अर्थात् तू गायके दूधमें मिल जा ! यहां पर “ गाः ” अनेक गायोंका प्रयोग “ गायके दूध ” के लिए किया है। उसी प्रकार—

३ नृभिः यतः गाः निर्णिजं कुरुते ( ५३० )- मनुष्यों-श्रुतिजों द्वारा बबाकर निचोड़ा गया सोमरस गायका रूप



धारण करता है, अर्थात् सोमरस गायके दूधमें मिलाया जाता है । “ गमः निर्णिजं ” गायके रूपका मतलब है “ गायके दूधका रूप ” । गौ शब्द गायके दूधका वाचक है । अंशके लिए पूर्णका प्रयोग वेदमें इस प्रकार होता है । और भी देखिए—

४ कलशे इन्दुं वावशानाः गावः आयन् ( ५३७ )— कलशमें सोमके पास इच्छा करती हुई गायें आईं । इसका अर्थ है कि कलशमें भरे हुए सोमरसमें गायोंका दूध मिलाया जाता है । कलशमें गाय जा ही नहीं सकती । जब एक ही नहीं जा सकती तो फिर अनेक कैसे जा सकती हैं । अतः यहां गायको दूधका वाचक मानना पड़ेगा ।

५ शुचिं वर्णं गोषु अधि धारय ( ५७४ )— शुद्ध वर्णको गायमें स्थापित कर । सोमरसके शुद्ध वर्णको गायके दूधमें मिला । सोमरस और गायके दूधका मिश्रण कर ।

६ ते वर्णं गोभिः अभिवासयामसि ( ५७५ )— हरे सोमके रंगको गायसे आच्छादित करते हैं । सोमरसमें गायका दूध मिलाकर उसमें दूधका सफेदपन हम लाते हैं ।

७ रसः हरिः दिवः पवते ( ५७८ )— हरे रंगका सोमरस धुलोकसे छानी जाता है । “ ऊपरके बर्तनसे ” सोमरस छाननीसे छाना जाता है । “ ऊपरके बर्तनसे ” कहनेके बजाय “ दिवः ” धुलोकसे कह दिया । धुलोक हमेशा ऊपर ही है, इसलिए ऊपरके बर्तनको “ धु ” लोकका सूचक मंत्रमें माना गया ।

इस प्रकार “ अंशके लिए पूर्णके प्रयोग ” की वैदिक शैली देखने योग्य है । यह वैदिक मंत्रोंकी विशेषता मन्नीय है ।

### सोमको सोनेसे छाना

सोमवल्ली पत्थरोंसे कूटी जाती थी । ये पत्थर कूटनेके समय पकड़नेके लिए ऊपर पतले और नीचेकी ओर गोल और मोटे होते थे । कूटनेके बाद हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर रस बर्तनमें भरते थे । उस हाथमें सोनेकी अंगूठी पहनते थे । इस सोनेके उस रसके साथ लगनेसे रसमें विशेष गुण उत्पन्न होते थे । इसलिए कहा भी है—

१ हेमना पूयमानः देवः रसः देवेभिः सम्पृक्त ( ५२६ )— सोनेसे पवित्र होनेवाला यह दिव्यरस देवोंको पिलाया जाता है ।

२ हिरण्य-पावः ( ५२७ )— सोनेसे पवित्र होनेवाला यह रस है ।

\*

इस प्रकार हाथमें पहनी हुई सोनेकी अंगूठी सोमरससे छूती थी । इससे सोनेसे उसमें कुछ विशेष गुणोंका आना स्वाभाविक है ।

इस कूटे हुए सोमका रस हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर निकाला जाता था । उसका वर्णन इस प्रकार है—

१ साकं उक्षः स्वसारः मर्जयन्तः, दश धीतयः धीरस्य धनुत्रीः ( ५३८ )— एक जगह रहकर कार्य करनेवाली बहनें— हाथकी अंगुलियां सोमको शुद्ध करती हैं, सोमको पीसकर उसका रस निकालती हैं । ये दस अंगुलियां धैर्यवान् सोमको धारण करती हैं, हाथसे रस निकालती हैं । इस प्रकार सोमवल्लीसे रस निकलता था ।

### सोमरसमें पानी मिलांना

ऊपर लिखे हुएके अनुसार सोमका रस निकालनेके बाद जो खराब हिस्सा हाथसे बचता उसे “ ऋजीप ” कहते थे । यह खराब हिस्सा एक तरफ करके रस निकाला जाता था । फिर यह रस छलनीसे छाना जाता था । इसे छाननेके पहले इसमें पानी मिलाते थे । पानीको मिलानेके सम्बन्धमें वर्णन इस प्रकार है—

१ अप्सु दक्षः ( ४७३ )— पानीमें मिला हुआ सोमरस बल बढ़ानेवाला होता है ।

२ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः ( ४८६ )— यह ज्ञान बढ़ानेवाला सोमरस नदीके पानीमें मिलाया गया है ।

३ मानुषीः अपः हिन्वानः ( ४९३ )— मनुष्योंका हित करनेवाले पानीमें सोमरस मिलाया गया है ।

४ महीः अपः वविवांसं ( ४९४ )— महत्त्ववाले जलोंमें सोमरस मिलाया गया है ।

५ विचर्षाणिः हितः पवमानः अयं आप्यं बृहत् हिन्वानः स चेतति ( ५०८ )— ज्ञानी, हितकारी, शुद्ध किया जानेवाला यह सोमरस महान् जलोंमें मिलानेके बाद शक्तिको बढ़ानेवाला होता है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सोमरस दुगुने या तिगुने पानीमें मिलाया जाता था ।

“ बृहत् आप्यं हिन्वानः ” अधिक पानीमें वह मिलाया जाता था ।

६ अप्सु अन्तः दध्वान् ( ५१२ )— पानीमें सोमरस मिलाया जाता है ।

७ सुतं परि पिंचत ( ५१२ )— सोमरसमें पानी डालो । इससे भी मालूम पड़ता है कि सोमरससे पानी अधिक होता था ।



८ अर्णसा प्रपिप्ये ( ५१४ )- पानीमें सोम मिलाया जाता है, “ अर्णस् ” का अर्थ है पानीका समुद्र । समुद्रमें मिलानेका अर्थ है, बहुतसे पानीमें मिलाना ।

९ देवेभ्यः मत्सरः समुद्रः विधर्मन् ( ५२१ )- देवोंको देनेके लिए आनन्दवर्धक सोम पानीमें मिलाया जाता है । इसे मिलानेके बाद वह विशेष गुणोंसे युक्त होता है, अर्थात् पीनेके लायक होता है ।

१० वना वसानः रत्न-धा ( ५२८ )- पानीमें मिला हुआ सोम रत्नोंको धारण करता है । वह चमकता है ।

११ मधुमान् अपः वसानः ( ५३२ )- मीठा सोम पानीमें मिलाया जाता है ।

१२ सरसि प्रधन्व ( ५४१ )- पानीमें जाकर मिल जा ।

१३ अपां गर्भः सोमः महिषः ( ५४२ )- पानीमें मिला हुआ सोम बलवान् है । पानीके गर्भमें सोम रहता है, अर्थात् पानी अधिक और सोम थोड़ा रहता है ।

१४ रथ्ये यथा असर्जि ( ५४३ )- युद्धमें जिस प्रकार घोड़ा भेजा जाता है, उसी प्रकार सोम पानीमें छोड़ा जाता है ।

१५ अ-द्रुहः प्रियं काम्यं अभि नवन्ते ( ५५० )- द्रोह न करनेवाले पानी प्रिय और चाहने योग्य सोमसे मिलनेके लिए जाता है । अर्थात् यह मिश्रण सुन्दर और उत्तम होता है ।

१६ सिन्धूनां प्राणाः इन्द्रस्य हार्दि आविशन् ( ५५९ )- नदीके प्राण इन्द्रके प्रिय सोममें मिल गए । इन्द्रको सोमरस बहुत अच्छा लगता है, उसमें नदीके प्राण अर्थात् पानी मिलाया जाता है ।

१७ अश्वं न अत्तुरं वनप्रश्नं उदधुतं सोत परि पिचत ( ५८० )- घोड़ेके समान पानीमें जानेवाला, पानीसे मिश्रित होनेवाला सोम है । उसका रस निकालकर उसमें पानी मिलाओ ।

१८ मदिन्तमः अपां ऊर्मिः इव क्रीडन् ( ५८४ )- आनन्द देनेवाला सोम पानीके लहरोंके साथ खेलता है । सोमरस पानीमें मिलाया जाता है ।

१९ समुद्रः गोपाः वृषा स्वानः ( ५२९ )- पानीमें और गायके दूधमें मिलानेके बाद वह बल बढ़ानेवाला होता है ।

२० अपः वसानः पुनानः धारया अर्षति ( ५११ )- पानी मिलानेके बाद छाना जाता हुआ सोम धारसे नीचेके बर्तनमें गिरता है ।

२१ अंशोः पयसा मधुश्चुतं दोरां अच्छ ( ५१४ )-

सोमका दूधसे मिश्रण होनेके बाद वह शहबसे भरे बर्तनमें सीधा जाता है ।

इस प्रकार सोमरसमें पहले पानी मिलाकर वह छाना जाता था । हाथोंसे दबाकर निकाला गया सोमरस गाढ़ा होता था, उसमें पानी मिलानेसे वह पतला होता था । उसके बाद वह वशापवित्र अर्थात् बकरीके बालोंसे बनी छलनीसे वह छाना जाता था, उससे छननेसे सोमबल्लीका मोटा-मोटा भाग उसमें नहीं जाता था, और वह पीनेलायक होता था ।

### सोमरसकी छलनी

सोमरस छाननेकी छाननी बकरीके बालोंकी बुनी हुई होती थी । उस छलनीका वर्णन इस प्रकार है—

१ वृषा देवयुः अव्या वारोभिः मंद्रया धारया पवस्व ( ५०६ )- बल बढ़ानेवाला देवोंके पास जानेवाला सोमरस बकरीके बालोंकी छलनीसे धीरे-धीरे छाना जाता है ।

२ सोतुभिः स्वानः अवीनां स्नुभिः अभियाति ( ५१५ )- रस निकालनेवाले ऋत्विजों द्वारा निचोड़ा गया सोमरस बकरीके बालोंसे छाना जाता है ।

३ अव्याः वारैः परि पुनानः ( ५१९ )- बकरीके बालोंसे छनकर वह रस नीचे गिरता है ।

४ पुनानः अव्यं वारं अत्येषि ( ५६२ )- छाना जाता हुआ वह रस भेड़की बालोंकी छाननीसे नीचे गिरता है ।

५ पुनानः सोमः ऊर्मिणा अव्यं वारं विधावति ( ५७२ )- छाना जाता हुआ सोमरस लहरोंसे युक्त होकर भेड़के बालोंकी छाननीमें दौड़कर जाता है । जल्दी ही नीचे छाना जाता है ।

६ सुतः अव्या वारोभिः धारया पवते ( ५८४ )- सोमरस निकालनेके बाद वह भेड़के बालोंकी छाननीसे शुद्ध होता है ।

७ सोमः पवित्रे पर्यक्षरत् ( ४७५ )- सोमरस छलनीसे नीचे चूता है ।

८ सहस्रधारः अव्यं अत्यर्षति ( ५२० )- हजारों धाराओंसे, भेड़के बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है ।

९ पूतः अव्यं वारं अत्येषि ( ५३४ )- शुद्ध होकर हुआ तू भेड़के बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है ।

१० स्वादु अव्यं वारं अति पवताम् ( ५३५ )- मीठा यह सोमरस भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ।



११ हरिं त्वं चारेण परि पुनन्ति ( ५५२ )- हरे रंगके उस सोमको छलनीमें छानते हैं।

१२ हरिः रंक्षा हरांसि अति पवते ( ५७६ )- हरे रंगका यह सोमरस अपनेसे खराब हिस्सेको दूर करते हुए शुद्ध होता है।

इन वचनोंसे सोमरस छाननेकी कल्पना अच्छी तरह की जा सकती है। भेडके बालोंकी बुनी हुई यह छलनी होती है, वह बर्तनके ऊपर बांधी जाती है, और उपरसे एक बर्तनसे धार बांधकर उस छाननीपर पानी मिश्रित सोमरस डाला जाता है। जो कुछ सोममें कूड़ा करकट होता है, वह रस छाननीपर रह जाता है, और नीचे बर्तनमें शुद्ध रस भर जाता है। छाननीसे छाने बिना रसको किसी भी देवताके लिए नहीं दिया जाता। इन्द्रादि देवोंको देनेके लिए, कुछ कुड़ा सोमरसमें न रहने पाये, इसलिए बड़ी ही सावधानीसे छाना जाता था। इस प्रकार यह सोमरस छाना जाता था, उसके बाद उसमें दूध आदि मिलाया जाता था। इसलिए पहले इस छाननेके सम्बन्धमें मंत्रमें क्या कहा है, वह द्रष्टव्य है।

**सोमरस छानते हुए शब्द होता है**

कोई द्रव पदार्थ जब दूसरे द्रव पदार्थमें डाला जाता है, तब शब्द होता है। उसी प्रकार सोमरसको छानते हुए शब्द होता था। नीचेके बर्तनमें पानी होता था। उसमें छलनीके द्वारा सोमरस छाना जाता था। इस कारण आवाज होती थी। उसका वर्णन वेदमंत्रमें इस प्रकार है—

१ हरिः कनिक्रदत् एति ( ४७१ )- हरे रंगका सोमरस शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें जाता है।

२ सुतासः श्रवसे प्राक्रमुः ( ४७७ )- सोमरस यज्ञके लिए शब्द करते हुए नीचेके बर्तनमें जाता है।

३ सोमासः अगः ऊर्मयः प्र नयन्त ( ४७८ )- सोमरस पानीके लहरोंमें लेजाया जाता है। पानीमें मिलाया जाता है।

४ सुतः वृषा पवस्व ( ४७९ )- रस निकालनेके बाद बल बढ़ानेके लिए छनता जा।

५ पवमानः ( ४८० )- छाना जानेवाला सोम।

६ स्वानासः इन्दवः मधोः धारया मदाय परि अर्षति ( ४८५ )- रस निकाला हुआ सोम मीठी धारासे आनन्द बढ़ानेके लिए छाना जाता है।

७ कविः सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः परि प्रासिष्यत् भर जा।

( ४८६ )- ज्ञान बढ़ानेवाला सोमरस नदीके पानीमें मिलानेके बाद नीचे बर्तनमें गिरता है।

८ सुतः कलशं आविशत् ( ४८९ )- सोमरस कलशमें गिरता है।

९ सुतः पवित्रे असर्जि न्यक्रमीत् ( ४९० )- सोमरस छाननीसे छाना जाता है।

१० भूर्ययः त्वेषा अयासः कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः प्राक्रमुः ( ४९१ )- जल्बीसे जानेवाले तेजस्वी, गतिशील सोमरस अपने हरे रंगके खालको उतार कर बर्तनमें छनते हुए जाते हैं।

११ अया पवस्व ( ४९३ )- इस धारासे छन जा।

१२ अया वीती पवस्व ( ४९५ )- इस रीतिसे शुद्ध हो।

१३ स्वानः पवित्रे आ अर्ष ( ४९६ )- रस निकालनेके बाद छाननीसे छन।

१४ वृषा हरिः कनिक्रदत् ( ४९७ )- बल बढ़ानेवाला यह हरे रंगका सोम शब्द करता हुआ छनता जाता है।

१५ पवित्रे आनय, इन्द्राय पातवे पुनीहि ( ४९९ )- छलनीमें सोमरस डाल। इन्द्रके पीनेके लिए पवित्र कर।

१६ द्रोणानि रोखवत् अर्ष ( ५०३ )- बर्तनमें शब्द करता हुआ जा।

१७ मनीषिभिः मृज्यमानः धारया पवस्व ( ५०५ )- बुद्धिमान् ऋत्विजों द्वारा शुद्ध होनेवाला तू धारासे शुद्ध हो।

१८ इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् पवते ( ५१० )- इन्द्रके पास जानेके लिए शुद्ध होता है।

१९ अव्यया वाराणि तिरः आ पवसे ( ५१३ )- भेडके बालोंकी बनी छलनीसे सोमरस शुद्ध होता है।

२० हरिः चम्बोः, पुरि जनः न, विशत् ( ५१३ )- हरे रंगका सोमरस बर्तनमें, जिस प्रकार नगरमें मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार जाता है।

२१ सुहस्वया मृज्यमानः समुद्रे वाचं इन्वति ( ५१७ )- उत्तम हाथोंसे निकाला गया और छाना गया यह सोमरस समुद्रमें शब्द करता हुआ प्रविष्ट होता है। नीचे बर्तनमें रखे हुए पानीमें सोमरस मिलाया जाता है।

२२ धारया पवित्रं असृक्षत ( ५२२ )- धार बांधकर छलनीसे नीचे सोमरस आता है।

२३ प्रद्रव कोषं परि निषीद् ( ५२३ )- बर्तनमें भर जा।



२४ वराहः रेभन् पदा अभ्येति ( ५२४ )- उत्तम दिनमें शब्द करता हुआ बर्तनमें जाता है ।

२५ सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ( ५२५ )- सोमरस शब्द करते हुए छाननीसे नीचे आता है ।

२६ मधुमान् वृषा पवित्रं पर्यक्षाः ( ५३१ )- मीठा और बल बढ़ानेवाला सोमरस छाननीसे टपकता है ।

२७ अधिसानौ अव्ये पवस्व ( ५३२ )- ऊँचे स्थान-पर भेड़के बालकी छलनीसे छनता जा ।

२८ मत्सरः घृतवन्ति द्रोणानि अवरोह ( ५३२ )- आनन्द देनेवाला सोमरस जलके पात्रमें उतरता है ।

२९ मधुमतीः धाराः प्रासृग्रतं ( ५३४ )- मीठी धारा बहती है ।

३० दैवः इन्दुः कलशं मति आसीदतु ( ५३५ )- तेजस्वी सोमरस कलशमें जाकर बँठता है ।

३१ धियः अधिस्पर्धते ( ५३९ )- अंगुलियां रस निकाल-नेके लिए परस्पर स्पर्धा करती हैं ।

३२ सोम पुनानः अर्षति ( ५४६ )- सोम छाना जाता हुआ बर्तनमें जाता है ।

३३ स्वानाः स्वर्विदः इन्दवः सोमा पवन्ते ( ५४८ )- रस निकालनेके बाद ये तेजस्वी सोमरस छाने जाते हैं ।

३४ चनोहितः प्रियाणि नामानि अभि पवन्ते ( ५५४ )- अन्नके समान हितकारी सोम प्रिय जलोंमें मिला-कर छाना जाता है ।

३५ येषु यद्वः अभिवर्धते ( ५५४ )- इन जलोंमें मिलानेके कारण सोमरस बढ़ता है ।

३६ एष कोशे प्र अचिक्रदत् ( ५५६ )- यह सोम-रस बर्तनमें शब्द करता है ।

३७ शतयामना पथा कलशे सं अर्षति ( ५५७ )- सौ छिद्रोंवाली चलनीके रास्तेसे यह सोमरस कलशमें जाता है ।

३८ पवमानः कनिक्रदत् ( ५७२ )- सोम छानते समय शब्द करता है ।

३९ पुनानः सोमः मधुश्चुतं कोशं परि अर्षति ( ५७७ )- छाना जाता हुआ सोमरस मीठे रस छानेजाने-वाले बर्तनमें जाता है ।

४० मध्यमं कोशं वि युव ( ५७९ )- शहदके बर्तनमें मिल ।

इस प्रकार सोम छाना जाता है । ऊपरके बर्तनसे सोम-

रस भेड़के बालोंसे बने छलनीसे नीचेके पानीके बर्तनमें छाना जाता है, तब उसका शब्द होता था । ये वर्णन ऊपरके मंत्रोंमें अनेक प्रकारसे किये हैं । उनको देखनेसे छाननेकी क्रिया अच्छी तरह ज्ञात होगी ।

### सोमका दूधमें मिलाना

सोमरसको पानीमें मिलाकर छाननेके बाद वह दूधमें मिलाया जाता था । इस सम्बन्धमें वर्णन इस प्रकार है—

१ सु-जातं अप्तुरं गोभिः परिष्कृतं इन्दुं देवाः उप अयासिषुः ( ४८७ )- उत्तम प्रकारसे तैय्यार किये गये सोमरसमें पानी मिलानेके बाद गाग्रका दूध मिलाते हैं, और फिर सब देव सोमके पास जाते हैं । इससे सब प्रक्रियाका ज्ञान हो जाता है, प्रथम सोमरस निकालना, फिर उसमें पानी मिलाकर उसे छानना, उसके बाद उसमें दूध और शहद मिलाना फिर अन्तमें पीना यह सोमरसकी प्रक्रिया थी ।

२ रुचा गाः अभि इहि ( ५०५ )- चमकनेवाला सोमरस गायके दूधके पास जाता है, अर्थात् वह गायके दूधमें मिलाया जाता है ।

३ सोमः गव्यन् ( ५३३ )- सोम गायके दूधमें मिलाया जाता है ।

४ हे पवमान ! धाम पवसे ( ५३४ )- हे सोमरस ! तू दूधमें मिलाया जाता है, अपना स्थान पवित्र करता है । दूध मिलानेके बाद सोमका घर पवित्र होता है ।

५ कलशे इन्दुं वावशानाः गावः आयन् ( ५३७ )- कलशमें सोमरसकी इच्छा करती हुई गायें आईं, अर्थात् सोमरसमें गायका दूध मिलाया गया ।

६ शुक्लाः असुराय निर्णिजे वयन्ति ( ५५१ )- सफेद रंगका गायका दूध बलवान् सोमके रूपको साफ करनेके लिए आच्छादित करता है । दूधमें सोम मिलाया जाता है ।

७ सुदुग्धः घृतश्चुतः वाश्राः पयसा धेनवः अभि अर्षन्ति ( ५५६ )- उत्तम दूध देनेवाली, घी चुआनेवाली, रंभाती हुई गायें सोमके पास आती हैं । अर्थात् सोममें गाय-का दूध मिलाया जाता है ।

८ असै त्रिसप्त धेनवः आ शिरं दुदुहिरे ( ५६० )- इस सोमके लिए २१ गायें दूध देती हैं । इन गायोंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है ।

९ धेनवः वचनवन्तः उस्त्रियाः ऊधभिः परिस्नुतं निर्णिजं धिरे ( ५६३ )- गायें रंभाती हुई अपने थनसे



टपकनेवाले दूधसे सोमकी रूपको धारण करती हैं, अर्थात् दूधमें सोम मिलाकर उसे सफेद बनाती हैं।

१० शुचिं वर्णं गोषु अधिवारय ( ५७४ )- शुद्ध रंगको गायोंमें स्थापित कर। सोमरस गायके दूधमें मिलकर ध्वेत रंगका हो जाता है।

११ ते वर्णं गोभिः अभिवासयामासि ( ५७५ )- तेरे सोमके रंगको हम गायके दूधसे आच्छादित करते हैं। अर्थात् सोमरसका हरा रंग गायके दूधसे आच्छादित होनेपर सफेद रंगका दीखने लगता है।

इस प्रकार गायका दूध सोमरसमें मिलानेके बाद वह हरे रंगका सोमरस सफेद दीखने लगता था और चमकने लगता था। इसके बाद वह पिया जाता था। पीनेके पहले उसमें शहद डाला जाता था, जोका आटा आदि इच्छा हो तो मिलाया जाता था, जो भूतकर उसका आटा बनाकर मिलाते थे और फिर उसे पीते थे।

वह चमकता भी था, उसके विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

### सोमरस चमकता है

सोमरस पानी और दूधमें मिलानेके बाद चमकने लगता था, और इनके बिना भी वह चमकता था। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि उसमें फास्फोरसकी मात्रा अधिक होती होगी। उसके चमकनेका यह गुण बहुत महत्वका है, इसी कारण उसे बुद्धिबर्धक, उत्साहवर्धक और आनन्दवर्धक कहा है। अब उसके चमकनेके विषयमें वर्णन देखिए—

१ स्वर्दशं भानुना द्युमन्तं हवामहे ( ४८० )- स्वयं तेजस्वी और अपने तेजसे चमकनेवाले सोमरसको हम बुलाते हैं, हम उसकी स्तुति करते हैं।

२ देवः पवस्व ( ४८३ )- चमकनेवाला सोम शुद्ध होवे, तू छनता जा।

३ पवमानः वैश्वानरं ज्योतिः दिवः चित्रं अजीजनत् ( ४८४ )- छानो जानेवाला यह सोमरस सब मनुष्योंका हित करनेवाला, तेजस्वी, द्युलोकमें चमकनेवाला उत्पन्न हुआ।

४ आयवः रुचे सूर्यं जनन्त ( ५०२ )- मनुष्योंने-ऋत्विजोंने तेजके लिए सूर्य-सोम-उत्पन्न किया है।

५ द्युमन्तमः ( ५०३ )- सोम बहुत तेजस्वी है।

६ हे देव ! वृषा द्युमान् असि ( ५०४ )- हे प्रकाशमान् सोम ! तू बल बढ़ानेवाला और तेजस्वी है।

७ हिरण्ययः देवः ( ५११ )- यह सोनेके समान चमकता है।

८ रभसानि वस्त्रा आदत्ते ( ५३३ )- यह सोम तेजस्वी वस्त्र पहनता है।

९ अकैः सूर्यं अपिन्वः ( ५३४ )- तेजसे सूर्यको भरता है। सूर्यको भी तेज देता है, इतना यह सोमरस तेजस्वी है।

१० सोमः उभे रोदसी व्यख्यत् ( ५४६ )- सोमरस दोनों ही लोकों-द्यावापृथिवीकी-तेजस्वी करता है।

११ विचक्षणः सूर्यस्य रथं अधि आरुहत् ( ५५४ )- यह ज्ञानी सोमरस सूर्यके रथपर चढ़ गया है, अर्थात् इससे सूर्यका तेज बढ़ा है, अर्थात् यह स्वयं तेजस्वी है।

१२ राजा इव दस्म ( ५६२ )- राजाके समान यह तेजस्वी दीखता है।

इस प्रकार सोमरस अपने तेजसे चमकता है, इस विषयमें यह वर्णन उपरोक्त मंत्रोंमें आया है। अब इसका एक दूसरा गुण देखिए—

### उत्साह बढ़ानेवाला सोम

सोमरस चमकता है, अर्थात् उसमें स्वाभाविक तेज है। ऐसा कोई पदार्थ उसमें है, जिसके कारण वह चमकता है। अपने चमकनेवाले गुणके कारण ही वह उत्साह बढ़ानेवाला है। देखिए—

१ चेतनः प्रियः इन्दुः ( ४८१ )- यह सोमरस चेतना बढ़ानेवाला है, इस कारण वह सभीको प्यारा है।

२ वाजिनः आशवः सोमासः प्रासृक्षत ( ४८२ )- बलवर्धक और उत्साह बढ़ानेवाले सोमरस छाने जाते हैं।

३ मदिरः जागृविः ( ५१४ )- आनन्द बढ़ानेवाला और उत्साह बढ़ानेवाला, सबको जाग्रत रखनेवाला यह सोम है।

४ मदाय पवते ( ५४० )- आनन्द बढ़ानेवाला यह सोम शुद्ध किया जाता है।

इस प्रकार सोमरस उत्साह बढ़ानेवाला है, ये इस सम्बन्धमें वर्णन हैं। जिस कारण वह चमकता है, इसीलिए वह उत्साह बढ़ानेवाला है। अब उसके आनन्द बढ़ानेवाले गुणोंका वर्णन देखिए—

### आनन्द बढ़ानेवाला सोम

१ मद्देषु सर्वथा असि ( ४७५ )- आनन्द देनेवाले रसोंमें सोमरस सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है।



२ ते मदः इन्द्रं गच्छतु ( ४७८ )- तेरा आनन्द बढ़ाने-  
वाला गुण इन्द्रको प्राप्त हो ।

३ मत्सरः क्रतुवित् पवसे ( ४९२ )- आनन्द बढ़ाने  
वाला और यज्ञमें जानेवाला सोमरस छाना जाता है ।

४ सुतस्य अन्धसः धारा मन्दी ( ५०० )- सोमरस  
रूपी अन्नकी धारा आनन्द देनेवाली है ।

५ मन्दानः वृषायसे ( ५०७ )- हे सोम ! तू आनन्द  
और बल बढ़ानेवाला है ।

इस प्रकार यह सोमरस आनन्द बढ़ानेवाला है ।

### बुद्धिवर्धक सोम

अब सोमके बुद्धिवर्धक गुण देखें—

१ कविः ( ४८६ )- ज्ञानी, बुद्धिमान्, क्रान्तदर्शी ।

२ कवीनां मतिः ( ४८१ )- ज्ञानी लोगोंकी बुद्धि  
बढ़ानेवाला ।

३ कविक्रतुः ( ४७६ )- ज्ञानी और कर्म जाननेवाला ।

४ विप्रः अभवः ( ५१९ )- सोम ज्ञानका बढ़ानेवाला है ।

५ पुरुमेधाः ( ५१४ )- बहुत बुद्धिमान् ।

६ सोमासः विपश्चितः ( ४७६ )- सोमरस बुद्धि  
बढ़ानेवाला है ।

७ मनीषिणः सोमासः ( ५१८ )- बुद्धि बढ़ानेवाले  
सोमरस हैं ।

इस प्रकार सोम बुद्धिवर्धक है ।

### बलवर्धक सोम

सोम पीनेके बाद बल बढ़ाता है ।

१ दक्षसाधनः ( ४७४ )- सोमरस बल बढ़ानेवाला है ।

२ वृषा असि ( ४८० )- तू बलवान् है ।

३ वृषा वृषवतः ( ५०४ )- सोम बलवान् हैं, और  
पीनेवालेके व्रत और बल बढ़ानेवाले हैं ।

४ ते दक्षं बलं आवृणीमहे ( ४९८ )- तेरे सामर्थ्य  
और बल हम ग्रहण करते हैं ।

इस प्रकार उसके बल बढ़ानेवाले गुणका वर्णन है ।

### स्वादिष्ट और मीठा सोम

सोम स्वादिष्ट और हर्ष बढ़ानेवाला है ।

१ स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व ( ४६८ )-  
स्वादिष्ट और उत्साहवर्धक धारासे सोमरस छाना जाता है ।

इस मंत्रमें सोमरस अत्यन्त स्वादिष्ट और हर्ष बढ़ानेवाला है,  
यह कहा है ।

२ तेन अन्धसा पवस्व ( ४७० )- सोममें अन्नका  
सत्त्व है और वह सुखदायक है ।

३ मधुमत्तमः ( ४७२ )- वह अत्यन्त मीठा है ।

४ एष मधुमान् ( ५५६ )- यह मीठा है ।

इस प्रकारका यह सोमरस है, स्वादिष्ट और मीठा होता  
था । इस कारण वह लोकप्रिय हो गया था ।

### मनुष्योंका हित करनेवाला सोम

सोम मनुष्योंका हित करनेवाला है, यह मं. ५१२ में  
“ नर्यः ” शब्दसे प्रगट किया है ।

### दुष्टोंका नाश करनेवाला सोम

सोम शूरवीरोंका उत्साह बढ़ानेवाला है । उससे बल और  
शीर्ष बढ़ता है, इस कारण शूर सोमरसका पान करते हैं, और  
वे शूर-वीरताके काम करने लगते हैं । इस कारण दुष्टोंका  
नाश होता है । इस विषयमें निम्न मंत्र हैं—

१ अघ-शंस-हा ( ४७० )- पापकर्मोंके लिए प्रसिद्ध  
मनुष्योंका नाश करनेवाला है । सोमरस पीनेसे वीरोंमें  
उत्साह बढ़ता है, और वह उत्साह पापीलोगोंका नाश करता है ।

२ अ-रावणः अपघ्नन् ( ५१० )- दान न देनेवाले  
कंजूसोंका सोम नाश करनेवाला है ।

३ विश्वाः द्विषः अप जहि ( ४७९ )- सब द्वेष करने-  
वालोंका नाश करनेवाला है ।

४ विश्वाः मृधः अभ्यक्रमीत् ( ४८८ )- सब दुष्टोंका  
नाश कर ।

५ मृधः अपघ्नन् ( ४९२ )- वह शत्रुओंको मारता है ।

६ अदेवयुं जनं नुदस्व ( ४९२ )- देवोंकी भक्ति न  
करनेवाले दुष्टोंको दूर कर ।

७ ते मदेषु नवतीः नव अवाहन् ( ४९५ )- तेरे  
पीनेसे उत्साह बढ़नेके कारण वीरोंने शत्रुके निग्यानवे नगरों-  
को तोड़ा ।

८ सेनानीः शूरः सोमः रथानां अग्रे प्रैति, अस्य  
सेना हर्षते ( ५३३ )- सेनाका संचालन करनेवाला शूर  
सोम रथके अग्रभागमें जाता है और इसकी सेना हर्षित  
होती है । सोमरस पीनेसे इस प्रकार बल बढ़ता है ।

९ रक्षः हन्ति, अरातीः परि बाधते ( ५४० )-



राक्षसोंको भारता और दुष्टोंको पौडा देता है। ऐसा यह सोम है।

१० वृत्राय हन्तवे इन्द्रं आविथ ( ४९४ )- वृत्रको मारनेके लिए इन्द्रका बल बढ़ाया। सोमरस पीनेके कारण वृत्रको मारनेका बल इन्द्रमें बढ़ा।

सोम पीकर शूर सैनिक ऐसा कार्य कर सकते हैं।

### इन्द्रके लिए सोमरस

इन्द्रमें सोमपानसे शौर्य बढ़ता है और वह राक्षसोंका वध करनेमें समर्थ होता है। इसलिए इन्द्रको सोम देनेकी परिपाटी है, देखिए—

१ इन्द्राय पातवे सुतः ( ४६८ )-इन्द्रको पिलानेके लिए यह सोम तैय्यार किया गया है।

२ इन्द्रुः इन्द्राय धीयते ( ४८९ )- सोमरस इन्द्रके लिए है।

३ मधुमत्तमः युक्षतमः मदः इन्द्राय पवस्व ( ४७८ )- अत्यन्त मीठा, तेजस्वी और आनन्द बढ़ानेवाला यह सोमरस इन्द्रके लिए छान।

४ मरुत्वते इन्द्राय पवस्व ( ४७२ )- मरुतोंकी सेनाके साथ इन्द्रको यह सोमरस छानकर दे। इन्द्रको पिलानेके साथ उसके सैनिकोंकी भी रस पीनेके लिए दिया जाता है। अर्थात् सब उत्साहित होकर शत्रुओंका ज्ञाश करते हैं।

५ सुतासः पवित्रवन्तः इन्द्राय क्षरन् ( ५४७ )- सोमरस छाना जानेके बाद इन्द्रको दिया जाता है।

६ इन्द्रुः इन्द्रस्य निष्कृतं प्र अयासीत्, सख्युः संगिरं न ग्रामिनाति ( ५५७ )- सोमरस इन्द्रके पेटमें जाता है, और वहां अपने मित्रके पेटमें कुछ भी कष्ट नहीं देता। सोमरसको पीनेसे इन्द्रको कोई कष्ट नहीं होता।

सोमरस अकेले इन्द्रको ही दिया जाता हो ऐसी बात नहीं, अपितु सभी देवोंको दिया जाता है। देखिए—

७ देवेभ्यः पीतये पवस्व ( ४७४ )- देवोंको पिलाने योग्य सोमरस छान।

८ मदाः देवान् गच्छन्तु ( ५४७ )- सोमरस देवोंको दो।

९ विश्वान् देवान् मदेन सह परि गच्छति ( ५५२ )- सब देवोंके पास यह सोमरस अपने आनन्द बढ़ानेवाले गुणके साथ जाता है।

इस प्रकार सब देव सोमरस पीते हैं और उस कारण वे उत्साह और आनन्द युक्त होते हैं।

२४ ( साम. हिन्दी )

### सोम धन देता है

सोम धनको भी देनेवाला है। इस विषयमें निम्न मंत्र हैं—

१ रत्नधाः ( ५११ )- सोम रत्न देनेवाला है।

२ वार्याणि दयते ( ५२९ )- सोम धन देता है।

३ सहस्रदाः शतदाः भूरिदावा वाजी ( ५३१ )- हजारों, सैकड़ों और बहुतसा धन देनेवाला सोम है।

४ शतस्पृहं, सहस्रभर्गसं तुविद्युम्नं रयिं न अभ्यर्ष ( ५४९ )- सैकड़ोंके द्वारा चाहने योग्य हजारोंका पोषण करनेवाले, तेजस्वी धन हमें दे।

५ पिशंगं बहुलं पृरुस्पृहं रयिं अभ्यर्षसि ( ५१७ )- पीले रंगके बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य बहुतसे धनको तू देता है।

६ सहस्रिणं सुवीर्यं रयिं आ पवस्व ( ५०१ )- हजारों प्रकारके उत्तम पराक्रम करनेवाले धन हमें दे।

७ नः महे तुने प्र अर्षसि ( ५०९ )- हमें बहुत धन प्राप्त हो इसलिए तू छाना जाता है।

सोम धन देता है, अर्थात् सोमयाग करनेवाले यजमानको लोगोंसे धन मिलता है। यज्ञ-याग महान् पवित्र कार्य हैं। उसमें बड़ा खर्च होता है। वह धनिकोंसे दानरूपमें मिलता है।

### वेदमंत्रोंका गान

सोमरस निकालते हुए मंत्रोंका पाठ भी साथ-साथ चलता है, उसके सम्बन्धमें ये-निर्देश हैं—

१ तिस्रः वाचः उदीरते ( ४७१ )- तीन वेदोंका पाठ होता है।

२ पुनानाय प्रगायत ( ५६८ )- सोमरसको छानते समय वेद मंत्रोंका गान करो।

३ पुनानं तं अभिगायत ( ५६८ )- सोमरस छानते हुए वेद मंत्रोंका गान करो।

४ ऋषीणां सप्तवाणीः अभि अनूपत ( ५७७ )- ऋषियोंकी सात छन्दोंवाली वाणी-वेद कहो।

५ इन्द्रवाहान् भद्रान् कृण्वन् ( ५३३ )- इन्द्रकी कल्याण करनेवाली स्तुतिका गान करो।

६ विप्रं धीतिभिः शुम्भन्ते ( ४८८ )- ज्ञानी सोमको छाननेके समय स्तोत्रोंकी शोभा बढ़ाई जाती है।

७ बर्हणा गिरा ( ४८५ )- महान् स्तोत्रोंसे मंत्र बोले जाते हैं।

इस प्रकार वेदपाठ करते हुए सोमरस छाना जाता है।



## यज्ञ कर्ताओंका संगठन

सोम यज्ञकर्ताओंका संगठन करनेवाला है। इस विषयमें मंत्र देखिए—

१ पृरुस्पृहं कारुं विभृत् ( ४८६ )- अनेक जिसकी प्रशंसा करते हैं, उन यज्ञ कर्ताओंको यह सोम संगठित करता है। यज्ञ करनेसे महान् संगठन होता है। यज्ञ संगतिकरणका एक महान् साधन है।

## कुत्तेको दूर करो

यज्ञमें कुत्तेको आने नहीं देना चाहिए। मंत्र भी कहता है—

१ श्वानं अप हत ( ५५३ )- कुत्तेको दूर करो।

२ सुताय दीर्घजिह्वं श्वानं अपश्नाविष्टन ( ५४५ )- सोमरसके पास लम्बी जीभवाले कुत्तेको मत जाने दो।

इस प्रकार यज्ञ मण्डपमें कुत्तेको सोमरसके पास नहीं जाने देना चाहिए यह स्पष्ट कहा है।

## उपमा

इस पाचमान काण्डमें जो उपमायें आई हैं, और उन उपमाओं द्वारा जो जान दिया गया है, वह उनके अर्थोंको देखकर समझमें आएगा—

१ श्वेनः न गिरिष्ठाः अंशुः योनिं आ सदत् ( ४७३ )- श्वेन पक्षीके समान पर्वत पर रहनेवाला सोम यज्ञशालामें जाकर बैठता है। श्वेनके समान सोम भी पर्वत पर रहता है, और वहांसे जैसे श्वेन पक्षी उड़कर अपने स्थानपर जाता है, उसी प्रकार सोम यज्ञशालामें आता है।

२ महिषा वनानि इव, सोमासः अप ऊर्मयः प्र नयन्त ( ४७८ )- अंसे जिस प्रकार वनमें जाकर पानी पीते हैं, उसी प्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है, और जिस प्रकार अंसे बलवान् होते हैं, उसी प्रकार सोमभी बलवान् होता है।

३ रथीः अश्वं इव इन्दुः पविष्ट असृजत् ( ४८१ )- जिस प्रकार रथमें बैठनेवाला घोड़ेको हांकता है उसी प्रकार सोम छाना जाता हुआ नीचेके बर्तनमें जाता है।

४ पचमानः दिवः चित्रं ज्योतिः, तन्यतुं न, अजी-जनत् ( ४८४ )- छाना जानेवाला सोम, झूलोकमें चमकने वाले बिजलीके समान, चमकता है।

५ यथा रथ्यः, चम्बोः सुतः पवित्रे असर्जि

( ४९० )- जिस प्रकार रथके घोड़े छोड़े जाते हैं, उसी प्रकार बर्तनमें सोमरस छलनीसे छाने जाते हैं, नीचे छोड़े जाते हैं।

६ त्वेषाः अयासः, गावः न प्र अक्रमुः ( ४९१ )- तेजस्वी प्रगमनशील सोमरस, जिस प्रकार गायें गोष्ठमें जाती हैं, उसी प्रकार यज्ञ-मण्डपमें जाता है।

७ यथा सूर्य अरोच्यः, अपः हिन्वानः ( ४९३ )- जिस प्रकार सूर्यको प्रकाशित किया, उसी प्रकार पानीमें जाकर तू भी तेजस्वी हो गया।

८ महान् मित्रो न दर्शत, सूर्येण सं दिद्युते ( ४९७ )- महान् मित्रके समान दर्शनीय सोमरस सूर्यके समान चमकता है।

९ हरि चम्बोः, पुरि जनः न, विशत् ( ५१३ )- हरे रंगका सोम बर्तनमें, नगरमें जिस प्रकार मनुष्य जाते हैं, उसी प्रकार जाता है।

१० मदिरः न जागृविः ( ५१४ )- आनन्दित होनेके समान तू जागृत है।

११ अश्वया इव हरिता धारया याति ( ५१६ )- घोड़ीके समान, यह सोम हरे रंगकी धारासे बर्तनमें जाता है। घोड़ी जिस-प्रकार एक लगामसे चलती है, उसी प्रकार यह सोमरस एक धारासे बर्तनमें पड़ता है।

१२ हयाः पचमानाः, मत्सराः धारया पवित्रं असृ-क्षत ( ५२२ )- घोड़े जैसे धोये जाते हैं, उसी प्रकार सोमरस एक धारासे छानकर शुद्ध किया जाता है।

१३ वाजिनं अश्वं न, त्वा मर्जयन्तः ( ५२३ )- जिस प्रकार बलवान् घोड़ेको धोते हैं, उसी प्रकार सोमको छानकर शुद्ध करते हैं।

१४ अत्यः वाजी न, हरिद्रोणं न नक्षे ( ५३८ )- घुड़ दौड़में दौड़नेवाले घोड़ेके समान, हरे रंगका सोम बर्तनमें जाता है।

१५ वाजिनि इव शुभः, सूर्ये विशः, पशुवर्धनाय वज्रं न मन्म ( ५३९ )- जिस प्रकार घोड़ेको जेवरोंसे सजाते हैं, सूर्यमें किरणें चमकती हैं, जिस प्रकार पशुओंके संवर्धनके लिए ग्वाला विचारशील होकर गायोंके बाड़ेमें जाता है, उसी प्रकार सोमरस बर्तनमें छाना जाता है, तब वह चमकने लगता है।

१६ मातरः पूर्वे आयुनि जातं वत्सं रिहन्ति न, अद्रुहः इन्द्रस्य काम्यं अभिनवन्ते ( ५५० )- जिस प्रकार गाय पहले पहलके बच्चेको चाटती है, उसी प्रकार



ब्रोह न करनेवाले जल इन्द्रको प्रिय लगनेवाले सोममें मिलाये जाते हैं ।

१७ अराधसं मखं भृगवः न, श्वानं अप हत ( ५५३ )- जिस प्रकार बान दक्षिणासे रहित यज्ञको भृगुऋषि- ने त्याग दिया था अर्थात् दूर कर दिया था, उसी प्रकार यज्ञ भूमिसे कुत्तेको दूर करो ।

१८ युवतिभिः मर्यः इव, इन्दुः सं अर्पति ( ५५७ )- अनेक स्त्रियोंके साथ जैसे एक पुरुष रहता है, उसी प्रकार सोमरस जलोंके साथ मिलाता है ।

१९ अत्यः न, वृथा रसः नदीषु कृणुते ( ५५८ )- जैसे घुड़दौडका घोड़ा दौडता है, उसी प्रकार सरलतासे ही सोमरस नदीके पानीमें मिलाया जाता है ।

२० श्येनः न, सोमः घृतवन्तं योनिं आ सदत् ( ५६२ )- श्येनके समान सोमरस जलसे भरे हुए बर्तनमें जाकर बैठता है । पानीमें मिलाया जाता है ।

२१ शिशुं न, श्रिये परिभूषत ( ५६८ )- जिस प्रकार बालकको जेवरसे सजाते हैं, उसी प्रकार सोमरसको शोभाके लिए गायके दूधमें मिलाते हैं ।

२२ शिशुं न, हव्यैः गूर्तभिः स्वदयन्त ( ५६९ )- जिस प्रकार बालकको जेवरोंसे सजाते हैं, उसी प्रकार हव्य पदार्थों अर्थात् दूध आदि पदार्थोंसे और स्तुतियोंसे स्वादिष्ट करते हैं ।

२३ भृतिं न, सोमाय वचः प्रोच्यते ( ५७३ )- नौकरको जैसे धन देते हैं, उसी प्रकार सोमकी स्तुति करते हैं, यहां प्राचीनकालमें भी नौकर वेतन देकर रखे जाते थे, और उन्हें मासिक अथवा दैनिक वेतन धनके रूपमें दिया जाता था ऐसा प्रतीत होता है ।

### सुभाषित

१ तत् उग्रं शर्म, महि श्रवः भूम्या ददे ( ४६७ )- वे शौर्यसे मिलनेवाले सुख और महान् यज्ञ अथवा अन्न भूमिपर हमें मिलें ।

२ विश्वा ओजसा दधानः मत्सरः ( ४६९ )- सब सामर्थ्यसे युक्त होकर आनन्द बढ़ानेवाला वह सोम हो ।

३ ते देवावीः अधशंसहा वरेण्यः मदः ( ४७० )- तेरा आनन्द देवोंके पास पहुंचानेवाला, पापियोंका नाश करनेवाला और श्रेष्ठ है ।

४ दक्षसाधनः मदः ( ४७४ )- तेरा यह आनन्द बल बढ़ानेवाला है ।

५ मर्देषु सर्वधा असि ( ४७५ )- आनन्द देनेवाले पदार्थोंमें तू सबसे अधिक आनन्द देनेवाला है ।

६ जने नः यशसः कृधि ( ४७९ )- तू लोगोंमें हमें यशस्वी कर ।

७ विश्वा द्विषः अप जाहि ( ४७९ )- सब शत्रुओंको हरा ।

८ स्वर्दशं भानुना द्युमन्तं त्वा हरामहे ( ४८० )- निरीक्षण करनेवाले और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाले तुझे हम बुलाते हैं ।

९ चेतनः प्रियः कवीनां मतिः पविष्ट ( ४८१ )- ज्ञान देनेवाला, प्रिय और ज्ञानियोंको बुद्धि देनेवाला शुद्ध होता है ।

१० देवः पवस्व ( ४८१ )- तू तेजस्वी और शुद्ध हो ।

११ पवमानः वैश्वानरं ज्योतिः अनीजनत् ( ४८४ )- शुद्ध होनेके बाद सब मनुष्योंका हित करनेवाले तेज प्रकट होते हैं ।

१२ पुरुस्पृहं कारुं विभ्रत् ( ४८६ )- बहुतोंसे प्रशंसित कारीगरको धारण करता है । “ कारु ”= कारीगर याजक ।

१३ भंगं देवाः उप अयासिषुः ( ४८७ )- शत्रुका नाश करनेवाले वीरको देव प्राप्त होते हैं ।

१४ विचर्षणिः विश्वाः मृधः अभ्यक्रमीत् ( ४८८ )- विशेष ज्ञानी सब शत्रुओंको हराता है ।

१५ विश्वाः श्रियः अभ्यर्षन् ( ४८९ )- सब शोभाको बढ़ाओ ।

१६ मत्सरः मृधः अपघ्नन् ( ४९२ )- सोमका आनन्द शत्रुको दूर करनेवाला है ।

१७ अ-देव-युं जनं नुदस्व ( ४९२ )- देवकी भक्ति न करनेवाले मनुष्यको दूर कर ।

१८ ते यः मर्देषु नवतीः नवः अवाहन् ( ४९५ )- तेरा वह उत्साह युद्धमें शत्रुके ९९ नगरोंको तोड़ता है ।

१९ युक्षं सनत् रयिं अन्धसा नः परिभरत् ( ४९६ )- तेजस्वी और देने योग्य धन अन्नके साथ हमें दे ।

२० ते दक्षं बलं अद्य आवृणीमहे ( ४९८ )- तेरे बल और सामर्थ्यको आज हम ग्रहण करते हैं ।

२१ ते बलं मयोभुवं वन्हि पान्तं पुरुस्पृहं ( ४९८ )- तेरे बल सुखदायी, धन देनेवाले, रक्षा करनेवाले और बहुतों द्वारा प्रशंसित होते हैं ।

२२ सहस्रिणं सुधीर्यं रयिं असौ श्रवांसि धारय



- ( ५०१ )- हजारों प्रकारसे बल बढ़ानेवाले और उत्तम पराक्रम करनेवाले धन दे, और इसे अन्न अथवा यज्ञ दे ।
- २३ वृषा द्युमान् असि ( ५०४ )- तू बलवान् और तेजस्वी है ।
- २४ वृषतमः धर्माणि दधिपे ( ५०४ )- तू अत्यन्त बलवान् है और बल बढ़ानेवाले सब गुणधर्मोंको धारण करता है ।
- २५ वृषा-देवयुः ( ५०६ )- तू बलवान् और देवोंको प्राप्त करनेवाला है ।
- २६ अया सुकृत्यया महान् अभ्यवर्धथाः ( ५०७ )- इस उत्तम शुभ कर्मसे तू महान् होता है ।
- २७ मन्दानः वृषायसे ( ५०७ )- तू आनन्दित होकर बलवान् होता है ।
- २८ विचर्यणिः हितः स चेति ( ५०८ )- ज्ञानी हितकारक होकर ज्ञान देते हैं ।
- २९ मृधः अप्राणः अपधनन् ( ५०९ )- शत्रुओं और दान न देनेवालोंको वह मारता है ।
- ३० रत्नधा क्रतस्य योनिं आसीदसि ( ५११ )- रत्नोंको धारण करके सत्यके आधारसे वह रहता है ।
- ३१ नर्यः ( ५१२ )- मानवोंका हित करनेवाला है ।
- ३२ मंदिरः न अगृविः ( ५१४ )- तू आनन्द देनेवाला और जाग्रत रहनेवाला है ।
- ३३ पुरुणि मां न्यवचरन्ति, तान् परिधीन् अतीहि ( ५१६ )- बहुतसे दुष्ट मुझे कष्ट देते हैं, उन दुष्टोंका तू नाश कर ।
- ३४ पिशंगं बहुलं पुरुस्पृहं रयिं अभ्यर्षसि ( ५१७ )- पीले सोनेके रंगवाले बहुतों द्वारा प्रशंसनीय बहुतसे धन तू देता है ।
- ३५ आयवः मृजन्ति ( ५२० )- मनुष्य शुद्ध होते हैं ।
- ३६ देवः देवानां जनिमा प्र विवर्त्ति ( ५२४ )- देव देवोंके जन्मोंका वर्णन करता है ।
- ३७ रत्नधाः वार्याणि दयते ( ५२८ )- रत्नोंको धारण करनेवाला धनोंको धारण करता है ।
- ३८ सहस्रदाः शतदाः भूरिदावा वाजी शश्वत्तमं वहिः अस्थात् ( ५३१ )- हजारों, सैंकड़ों और बहुत साधन देनेवाला सामर्थ्यवान् वीर नित्य आसनपर बैठता है ।
- ३९ सेनानीः शूरः रथानां अग्रे प्रैति ( ५३३ )- सेनाका संचालक शूरवीर रथके आगे दौड़ता है ।
- ४० अस्य सेना हर्षते ( ५३४ )- इसकी सेना आनन्दित होती है ।
- ४१ धाम पवसे ( ५३४ )- अपना घर स्वच्छ रखता है ।
- ४२ देवान् अभि अर्चामि ( ५३५ )- देवोंकी हम पूजा करते हैं ।
- ४३ महते हिंनोति ( ५३५ )- महान् कार्यके लिए प्रेरित करता है ।
- ४४ आयुधा संशिशानः ( ५३६ )- शस्त्रोंको तीक्ष्ण करता है ।
- ४५ विश्वा वसु हस्तयोः आदधानः प्रायासीत् ( ५३६ )- सब धनोंकी अपने दोनोंही हाथोंमें रखकर वह आता है ।
- ४६ अरातीः परि वाधते ( ५४० )- वह शत्रुओंको दूर करता है ।
- ४७ शतस्पृहं सहस्रभणसं तुविद्युमन् विभासहं वाजसातमं रयिं नः अभ्यर्ष ( ५४१ )- सैंकड़ों जिसकी स्तुति करते हैं, हजारों मनुष्योंका जो पोषण करता है, जो तेजस्वी है, जो विशेष प्रकाशमान है, जो बल बढ़ाता है वह धन हमें दे ।
- ४८ अ-रातयः नः अरयः इपयः अश्रन्तः वि चिन् सन्तु ( ५५५ )- दान न देनेवाले हमारे शत्रु, अन्नकी इच्छा करते हुए भी अन्न न मिलनेसे भुंके ही रहें ।
- ४९ युवतिभिः मर्यः सं अर्पति ( ५५७ )- अनेक स्त्रियोंके साथ एक पुरुष आनन्दसे रहता है ।
- ५० अमीवा रक्षसा सह अप भवतु ( ५३१ )- रोगके कीटाणु राक्षसोंके साथ दूर जावें ।
- ५१ द्वयाविनः मा मत्सत ( ५६१ )- दो तरहका आचरण करनेवाले ( मनसे और आचरणसे और ) आनन्दित न-होवें ।
- ५२ राजा इव दस्म ( ५६२ )- राजाके समान सुन्दर है ।
- ५३ अ-तप्त-तनूः तत् आमः न अश्नुते ( ५६६ )- तप न करनेवाला उस सुखको प्राप्त नहीं कर सकता ।
- ५४ श्रुतासः इत् तत् समाशते ( ५६६ )- तपसे तपा हुआही उस आनन्दको पा सकता है ।
- ५५ द्युमन्तं स्वर्विदं शुष्म आ भर ( ५६७ )- तेजस्वी ज्ञान बढ़ानेवाले बल हमें दे ।
- ५६ भूर्ति न प्रभर ( ५६२ )- नौकरको जिस प्रकार वेतन देते हैं, उस प्रकार हमें धन दें ।



५७ वीरवत् यशः अभ्यर्ष ( ५७६ )- वीर पुत्रोंसे ( ५७८ )- तेरा आनन्द अत्यन्त मीठा, कर्म करनेकी पद्धति युक्त यश दे । जाननेवाला, और अत्यधिक तेजस्वी है ।

५८ ऋषीणां सप्तवाणीः अभि अनूषत् ( ५७७ )- ऋषियोंकी सात छन्दोंवाली वाणी कहो-वेदमंत्र बोलो ।

६० देवयुं द्युम्नं बृहद् यशः अभि दिदीहि ( ५७९ )

५९ मधुमत्तमः क्रतुवित्तमः महि द्युक्षत्तमः मदः -देवोंको प्राप्त करनेवाले तेजस्वी और महान् यश हमें दे ।

### पवमानकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                          | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|-------------------------------|-------------|---------|
|             |              | ( ३९ )                        |             |         |
| ४६७         | ९।६१।१०      | अहमीयुरांगिरसः                | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ४६८         | ९।१।१        | मधुच्छन्दा वंश्वामित्रः       | "           | "       |
| ४६९         | ९।६५।१०      | भृगुर्वाणिर्जमदग्निर्भागवो वा | "           | "       |
| ४७०         | ९।६१।१९      | अहमीयुरांगिरसः                | "           | "       |
| ४७१         | ९।३३।४       | त्रित आप्त्यः                 | "           | "       |
| ४७२         | ९।६४।२२      | कश्यपो मारीचः                 | "           | "       |
| ४७३         | ९।६१।४       | जमदग्निर्भागवः                | "           | "       |
| ४७४         | ९।२५।१       | वृद्धच्युत आगस्त्यः           | "           | "       |
| ४७५         | ९।१८।१       | असितः काश्यपो देवलो वा        | "           | "       |
| ४७६         | ९।९।१        | असितः काश्यपो देवलो वा        | "           | "       |
|             |              | ( ४० )                        |             |         |
| ४७७         | ९।३२।१       | श्यावाश्व आत्रेयः             | "           | "       |
| ४७८         | ९।३३।१       | त्रित आप्त्यः                 | "           | "       |
| ४७९         | ९।६१।२८      | अमहीयुरांगिरसः                | "           | "       |
| ४८०         | ९।६५।४       | भृगुर्वाणिर्जमदग्निर्भागवो वा | "           | "       |
| ४८१         | ९।६४।१०      | कश्यपो मारीचः                 | "           | "       |
| ४८२         | ९।६४।४       | कश्यपो मारीचः                 | "           | "       |
| ४८३         | ९।३३।२२      | निध्रुविः काश्यपः             | "           | "       |
| ४८४         | ९।६१।१६      | अमहीयुरांगिरसः                | "           | "       |
| ४८५         | ९।१०।४       | असितः काश्यपो देवलो वा        | "           | "       |
| ४८६         | ९।१४।१       | असितः काश्यपो देवलो वा        | "           | "       |
|             |              | ( ४१ )                        |             |         |
| ४८७         | ९।६१।१३      | अमहीयुरांगिरसः                | "           | "       |
| ४८८         | ९।४०।१       | बृहन्मतिरांगिरसः              | "           | "       |
| ४८९         | ९।६२।१९      | जमदग्निर्भागवः                | "           | "       |



| मंत्रसंख्या | अक्षरेवस्थानं | अक्षिः             | देवता      | छन्दः   |
|-------------|---------------|--------------------|------------|---------|
| ४२०         | ९।३६।१        | प्रभूवसुरांगिरसः   | पथमानः सोम | गायत्री |
| ४२१         | ९।४१।१        | मेघ्यातिथिः काण्वः | "          | "       |
| ४२२         | ९।६३।२४       | निधुविः काश्यपः    | "          | "       |
| ४२३         | ९।६३।७        | निधुविः काश्यपः    | "          | "       |
| ४२४         | ९।६१।२२       | अमहीयुरांगिरसः     | "          | "       |
| ४२५         | ९।६१।१        | अमहीयुरांगिरसः     | "          | "       |
| ४२६         | ९।१२।१        | उच्चध्य आंगिरसः    | "          | "       |

( ४२ )

|     |         |                                  |   |   |
|-----|---------|----------------------------------|---|---|
| ४२७ | ९।२।६   | मेघातिथिः काण्वः                 | " | " |
| ४२८ | ९।६५।२८ | भृगुर्वाणिर्जम्बवन्निर्भागंबो वा | " | " |
| ४२९ | ९।५१।१  | उच्चध्य आंगिरसः                  | " | " |
| ५०० | ९।५८।१  | अबस्तारः काश्यपः                 | " | " |
| ५०१ | ९।६३।१  | निधुविः काश्यपः                  | " | " |
| ५०२ | ९।२३।२  | असितः काश्यपो देवलो वा           | " | " |
| ५०३ | ९।६५।२९ | भृगुर्वाणिर्जम्बवन्निर्भागंबो वा | " | " |
| ५०४ | ९।६४।१  | काश्यपो मारीचः                   | " | " |
| ५०५ | ९।६४।२३ | काश्यपो मारीचः                   | " | " |
| ५०६ | ९।६।१   | असितः काश्यपो देवलो वा           | " | " |
| ५०७ | ९।४७।१  | कविर्भागंबः                      | " | " |
| ५०८ | ९।६३।२० | जम्बवन्निर्भागंबः                | " | " |
| ५०९ | ९।४४।१  | अयास्य आंगिरसः                   | " | " |
| ५१० | ९।६१।२५ | अमहीयुरांगिरसः                   | " | " |

( ४३ )

|     |          |   |   |       |
|-----|----------|---|---|-------|
| ५११ | ९।१०७।३  | सप्तर्षयः [ १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ काश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहुगन्धः; ४ अत्रिर्मौसः; ५ विश्वामित्रो गायिनः; ६ जम्बवन्निर्भागंबः ७ बसिष्ठो मेधावदनिः ] | " | बृहती |
| ५१२ | ९।१०७।१  | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५१३ | ९।१०७।१० | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५१४ | ९।१०७।१२ | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५१५ | ९।१०७।८  | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५१६ | ९।१०७।१९ | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५१७ | ९।१०७।२१ | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५१८ | ९।१०७।१४ | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५१९ | ९।१०७।६  | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५२० | ९।१०७।१७ | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५२१ | ९।१०७।२३ | सप्तर्षयः   | " | "     |
| ५२२ | ९।१०७।२५ | सप्तर्षयः   | " | "     |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                    | देवता       | उत्पत्तिः |
|-------------|--------------|---|-------------|-----------|
|             |              | ( ४४ )                                  |             |           |
| ५२३         | ९।८७।१       | उशाना काण्वः                            | पवमानः सोमः | बृहती     |
| ५२४         | ९।९७।७       | बृषगणो बसिष्ठिः                         | "           | "         |
| ५२५         | ९।९७।३४      | पराशरः शाकल्यः                          | "           | "         |
| ५२६         | ९।९७।१       | बसिष्ठो मैत्रावरुणिः                    | "           | "         |
| ५२७         | ९।९६।५       | प्रतर्दनो वैश्वोदासिः                   | "           | "         |
| ५२८         | ९।९०।२       | बसिष्ठो मैत्रावरुणिः                    | "           | "         |
| ५२९         | ९।९७।४०      | पराशरः शाकल्यः                          | "           | "         |
| ५३०         | ९।९५।१       | प्रस्कण्वः काण्वः                       | "           | विष्णुः   |
| ५३१         | ९।८७।४       | उशाना काण्वः                            | "           | "         |
| ५३२         | ९।९६।१३      | प्रतर्दनो वैश्वोदासिः                   | "           | "         |
|             |              | ( ४५ )                                  |             |           |
| ५३३         | ९।९६।१       | प्रतर्दनो वैश्वोदासिः                   | "           | "         |
| ५३४         | ९।९७।३१      | पराशरः शाकल्यः                          | "           | "         |
| ५३५         | ९।२७।४       | द्वन्द्वप्रमतिर्वसिष्ठः                 | "           | "         |
| ५३६         | ९।९०।१       | बसिष्ठो मैत्रावरुणिः                    | "           | "         |
| ५३७         | ९।९७।२२      | कर्णभृद्वासिष्ठः                        | "           | "         |
| ५३८         | ९।९३।१       | नौषा गौतमः                              | "           | "         |
| ५३९         | ९।९४।१       | कण्वो घोरः                              | "           | "         |
| ५४०         | ९।९७।१०      | मन्युर्वसिष्ठः                          | "           | "         |
| ५४१         | ९।२७।५२      | कुत्स आगिरसः                            | "           | "         |
| ५४२         | ९।९७।४१      | पराशरः शाकल्यः                          | "           | "         |
| ५४३         | ९।९१।१       | कश्यपो भारीचः                           | "           | "         |
| ५४४         | ९।९५।३       | प्रस्कण्वः काण्वः                       | "           | "         |
|             |              | ( ४६ )                                  |             |           |
| ५४५         | ९।१०१।१      | अध्रोणुः श्यावाश्विः                    | "           | अनुष्टुप् |
| ५४६         | ९।१०१।८      | नहुषो मानवः                             | "           | "         |
| ५४७         | ९।१०१।४      | ययातिर्नाहुषः                           | "           | "         |
| ५४८         | ९।१०१।१०     | मनुः सावरणः                             | "           | "         |
| ५४९         | ९।९८।१       | अम्बरीषो वार्वागिरः ऋजिष्वा भारद्वाजश्च | "           | "         |
| ५५०         | ९।१००।१      | रेभसूनु काश्यपो                         | "           | "         |
| ५५१         | ९।९९।१       | रेभसूनु काश्यपो                         | "           | बृहती     |
| ५५२         | ९।९८।७       | अम्बरीषो वार्वागिरः ऋजिष्वा भारद्वाजश्च | "           | अनुष्टुप् |
| ५५३         | ९।१०१।१३     | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा        | "           | "         |
|             |              | ( ४७ )                                  |             |           |
| ५५४         | ९।७५।१       | कविर्भर्गवः                             | "           | जगती      |
| ५५५         | ९।७९।१       | कविर्भर्गवः                             | "           | "         |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                | देवता       | छन्दः           |
|-------------|--------------|---------------------|-------------|-----------------|
| ५५६         | ९।७७।१       | कविभार्गवः          | पवमानः सोमः | जगती            |
| ५५७         | ९।८६।१६      | सिकता निवावरी       | "           | "               |
| ५५८         | ९।७६।१       | कविभार्गवः          | "           | "               |
| ५५९         | ९।८६।१९      | सिकता निवावरी       | "           | "               |
| ५६०         | ९।७०।१       | रेणुर्वैश्वामित्रः  | "           | "               |
| ५६१         | ९।८५।१       | वेनोभार्गवः         | "           | "               |
| ५६२         | ९।८२।१       | वसुभरिद्वाजः        | "           | "               |
| ५६३         | ९।६८।१       | वत्सप्रिभालिन्दः    | "           | "               |
| ५६४         | ९।८६।४३      | गृत्समवः शौनकः      | "           | "               |
| ५६५         | ९।८३।१       | पवित्र आंगिरसः      | "           | "               |
| ( ४८ )      |              |                     |             |                 |
| ५६६         | ९।१०६।१      | अग्निश्चाक्षुषः     | "           | उष्णिक्         |
| ५६७         | ९।१०६।४      | चक्षुर्मनिवः        | "           | "               |
| ५६८         | ९।१०४।१      | पर्वतनारदो काण्वो   | "           | "               |
| ५६९         | ९।१०५।१      | पर्वतनारदो काण्वो   | "           | "               |
| ५७०         | ९।१०२।१      | त्रित आप्त्यः       | "           | "               |
| ५७१         | ९।१०६।७      | मनुराप्सवः          | "           | "               |
| ५७२         | ९।१०६।१०     | अग्निश्चाक्षुषः     | "           | "               |
| ५७३         | ९।१०३।१      | द्वित आप्त्यः       | "           | "               |
| ५७४         | ९।१०५।३      | पर्वतनारदो काण्वो   | "           | "               |
| ५७५         | ९।१०५।४      | पर्वतनारदो काण्वो   | "           | "               |
| ५७६         | ९।१०६।१३     | अग्निश्चाक्षुषः     | "           | "               |
| ५७७         | ९।१०३।३      | द्वित आप्त्यः       | "           | "               |
| ( ४९ )      |              |                     |             |                 |
| ५७८         | ९।१०८।१      | गौरवीतिः शाक्यः     | "           | ककुप्           |
| ५७९         | ९।१०८।३      | ऊर्ध्वसद्या आंगिरसः | "           | "               |
| ५८०         | ९।१०८।७      | ऋजिश्वा भारद्वाजः   | "           | "               |
| ५८१         | ९।१०८।११     | कृतयशा आंगिरसः      | "           | "               |
| ५८२         | ९।१०८।१३     | ऋणंचयो राजर्षिः     | "           | यवमध्या गायत्री |
| ५८३         | ९।१०८।३      | शक्तिर्वसिष्ठः      | "           | ककुप्           |
| ५८४         | ९।१०८।५      | ऊररांगिरसः          | "           | "               |
| ५८५         | ९।१०८।६      | ऋजिश्वा भारद्वाजः   | "           | "               |



## अथ आरण्यं काण्डम् ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

[ १ ]

( १-९ ) १ शंयुर्बाह्रस्पत्यः ( भरद्वाजः ); २ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३, ६ वामदेवो गौतमः; ४ शुनःशेष आजीर्गतिः  
कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा; ५ कुत्स आंगिरसः ( गृत्समदः ); ७, ८ अमहीयुरांगिरसः; ९ आत्मा ॥  
इन्द्रः; ४ वरुणः; ५, ७, ८ पवमानः सोमः; ६ विश्वे देवाः; ९ अन्नम् ॥ बृहती; २, ४, ५, ९ त्रिष्टुप्;  
३, ७-८ गायत्री; ६ एकपाज्जगती ॥

५८६ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।

यदिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः

॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४६।९ )

५८७ इन्द्रा राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।

ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदवाक्

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२७।३ )

५८८ यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनस्स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत्

॥ ३ ॥ ( अथर्व. ६।३३।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ५८६ ] हे ( वज्र-हस्त ) हाथमें वज्र धारण करनेवाले तथा ( सु-शिप्र ) सुन्दर ठोड़ीवाले इन्द्र ! ( ज्येष्ठं ओजिष्ठं ) श्रेष्ठ और बल बढ़ानेवाले ( पुपुरि श्रवः ) इच्छा पूर्ण करनेवाले अन्न ( नः आभर ) हमें भरपूर दे । ( यत् ) जो अन्न हम ( दिधृक्षेम ) पासमें रखनेकी इच्छा करते हैं, और जो ( उभे रोदसी ) धूलोक और पृथ्वीलोक दोनोंको ही ( आ पप्राः ) पूर्ण करते हैं, उसे हमें दे ॥ १ ॥

१ ज्येष्ठं ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः नः आभर— सबसे उत्तम और सामर्थ्य बढ़ानेवाले तथा इच्छा पूरी करने-वाले अन्न हमें भरपूर दे ।

२ यत् दिधृक्षेम— जिसको हम अपने पास रखनेकी इच्छा करते हैं, उसे हमें दे ।

[ ५८७ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( जगतः चर्षणीनां राजा ) चलनेवाले पशुओं और मनुष्योंका राजा है, उसी प्रकार ( अधिक्षमा ) इस पृथ्वीपर ( विश्वरूपं यत् ) अनेक रूपोंवाले जो कुछ हैं ( अस्य ) इन सबका वही राजा है । ( ततः दाशुषे वसूनि ददाति ) इसलिए दानशीलको वह धन देता है, उसी प्रकार ( उप-स्तुतं ) पाससे उत्तम स्तुति करनेवालेको ( राधः ) धन ( अवाक् चोदत् ) लाकर देता है ॥ २ ॥

१ इन्द्रः जगतः चर्षणीनां, अधिक्षमा विश्वरूपं यत् अस्य राजा— इन्द्र इस स्थावर जंगम, मनुष्य और इस पृथ्वीपर अनेक रूपोंवाले जितने पदार्थ हैं, उन सबका अकेला ही राजा है ।

२ दाशुषे वसूनि ददाति— दानशीलको वह धन देता है ।

३ उपस्तुतं अवाक् राधः चोदत्— उत्तम स्तुति करनेवालेके पास वह धन भेजता है ।

[ ५८८ ] ( यस्य रजो युजः ) जिस अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रका ( इदं ) यह दान ( स्वः तुजे जने वनं ) स्वर्गमें और दान देनेवाले जनोंमें प्रशंसनीय है, इसलिए ( इन्द्रस्य बृहत् रन्त्यं ) इन्द्रके दान महान् और रमणीय हैं ॥ ३ ॥

२५ ( साम. हिन्दी )



- ५८९ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।  
 अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२४।१९ )
- ५९० त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।  
 तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥
- ५९१ इमं वृषणं कृणुतेकमिन्माम् ॥ ६ ॥
- ५९२ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः वरिवोवित्परिस्त्रव ॥ ७ ॥  
 ( ऋ. १।६।१।१२; वा. य. २६।२९ )
- ५९३ एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिंषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥  
 ( ऋ. ७९।६।१।११; वा. य. २६।१९ )

[ ५८९ ] हे ( वरुण ) उत्तम देव ! ( उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय ) उत्तम बन्धनोंको हमसे बुर कर, ( अधमं पाशं अवश्रथाय ) अधम पाश शिथिल कर और ( मध्यमं पाशं विश्रथाय ) मध्यम पाशको ढीला कर, ( अथ ) इसके बाद हे ( आदित्य ) अवितिके पुत्र वरुण ! ( तव व्रते ) तेरे कार्यमें ( वयं ) हम ( अ-दितये ) हमारा नाश न हो इसलिए ( अनागसः स्याम ) पापरहित होकर रहें ॥ ४ ॥

१ वरुणः— उत्तम देव, श्रेष्ठ ईश्वर ।

२ उत्तम, मध्यम और अधम पाश—बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके बंधन, इनके कारण होनेवाले विघ्न बुर कर ( अव-श्रथाय, उच्छ्रथाय, विश्रथाय ) ढीले कर ।

३ अदितिः— अपराधीनता, स्वतंत्रता, अविनाश ।

४ अदितये अनागसः स्याम— मुक्त होनेके लिए निष्पाप होऊं ।

५ तव व्रते— तेरे नियमके अनुसार मैं रहूँ, तेरे नियमोंका पालन करूँ ।

[ ५९० ] हे ( सोम ) सोम ! ( पवमानेन त्वया ) दृढ़ होनेवाले तेरी सहायतासे ( भरे ) संग्राममें ( शश्वत् कृतं ) हमेशा किए जानेवाले कर्तव्य ( वयं वि चिनुयाम ) हम विशेष सावधानीसे करें, ( तत् ) इसलिए वरुण, अविति, सिन्धु, पृथिवी ( उत द्यौः ) और द्युलोक ये ( मा महन्तां ) मुझे यश प्रदान करें ॥ ५ ॥

१ भरे शश्वत् कृतं वयं चिनुयाम— युद्धमें किए जानेवाले कर्मोंको हम सावधानीसे करें ।

३ तत् मा महन्तां— उसकी सहायतासे मुझे यश प्राप्त होवे ।

[ ५९१ ] हे देवो ( एकं इमं ) इस एकको ( वृषणं कृणुत ) तुम बलवान् करो, उसी प्रकार ( मां ) मुझे भी अपने कार्यमें सफल करो ॥ ६ ॥

[ ५९२ ] हे सोम ! ( सः वरिवो वित् ) धनको अपने पास रखनेवाला वह तू ( नः यज्यवे इन्द्राय ) हमारे द्वारा जिसके लिए यज्ञ किया जाता है, उस पूज्य इन्द्रके लिए ( वरुणाय मरुद्भ्यः ) वरुण और मरुतोंके लिए ( परिस्त्रव ) उत्तम प्रकारसे छनता जा ॥ ७ ॥

[ ५९३ ] ( एना ) इस सोमकी सहायतासे ( मानुषाणां ) मनुष्योंके ( विश्वानि द्युम्नानि ) सब अस्त्रोंके ( अर्यः ) पात जाकर ( सिंषासन्तः ) उसके उपभोगकी इच्छा करनेवाले हम ( वनामहे ) उस अस्त्रको प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥



५९४ <sup>३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्व देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।

<sup>२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमग्नि

॥ ९ ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

( १-७ ) श्रुतकक्ष आंगिरसः; २ पवित्र आंगिरसः; ३, ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ५ प्रथो वासिष्ठः; ६ गृत्समदः शौनकः; ७ नृमेधपुरमेधावांगिरसौ ॥ इन्द्रः; २ पवमानः सोमः, ५ विश्वे देवाः; ६ वायुः ॥ गायत्री, जगती,

५ त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप् ॥

५९५ <sup>२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१३ )

५९६ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अरुरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।

<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८३।३ )

[ ५९४ ] ( देवेभ्यः पूर्वं ) देवोंसे पहले ( अहं ) में अन्नरूपी देवता ( अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि नाम ) विनाशरहित यज्ञमें प्रथम उत्पन्न हुआ हूँ । ( यः मां ददाति ) जो मुझे दानमें देता है ( सः इत् एवं आवत् ) वह निश्चयपूर्वक इस दानसे सभीका रक्षण करता है । ( अन्नं अदन्तं ) अन्नको स्वयं खानेवाले लोभी मनुष्यको ( अहं अन्नं अग्नि ) में अन्न देवता ही खा जाता हूँ ॥ ९ ॥

१ देवेभ्यः पूर्वं अहं अन्नं — सब देवोंसे पहले उनके लिए आवश्यक यह अन्न उत्पन्न हुआ । प्राणियोंके उत्पन्न होनेके पहले ही उनका पोषण करनेवाला अन्न उत्पन्न हुआ ।

२ अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि — अमर यज्ञके पहले ही यह अन्न उत्पन्न हुआ । उस अन्नके उत्पन्न होनेके बाद यज्ञ किया गया ।

३ यः मां ददाति स आवत् — जो अन्नका दान करता है, वह इस दानसे सबका संरक्षण करता है ।

४ अन्नं अदन्तं अहं अन्नं अग्नि — अन्नका दान न करते हुए जो स्वयं ही अन्नको खाता है, उस स्वार्थी मनुष्यको वह अन्न देवता ही खा जाता है, नष्ट कर देता है ।

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ५९५ ] हे इन्द्र ! ( कृष्णासु ) काली ( रोहिणीषु ) लाल ( परुष्णीषु ) और अनेक रंगोंवाली गायोंमें ( रुशत् पयः ) तेजस्वी सफेद रंगका दूध ( त्वं आधारयः ) तूने रखा है, यह तेरा अद्भुत सामर्थ्य है ॥ १ ॥

[ ५९६ ] ( उपसः पृश्निः ) उषासे सम्बन्ध रखनेवाला सूर्य ( अग्रियः ) यहां मुख्य है । वही ( अरुरुचत् ) चमकता है । ( उक्षा ) बरसात गिरानेवाला मेघ आकाशमें ( मिमेति ) गडगडाहटका शब्द करता है । ( भुवनेषु वाजयुः ) प्राणियोंमें अन्नकी इच्छा उत्पन्न करके ( मायाविनः ) कर्मोंमें कुशलता दिखानेवाले देवोंने ( अस्य मायया ममिरे ) इस अपनी कुशलतासे जगत्का निर्माण किया । ( नृचक्षसः पितरः ) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले पितरोंने माताके पेटमें ( गर्भं आदधुः ) गर्भ स्थापित किया । इस प्रकार सृष्टि उत्पन्न हुई ॥ २ ॥

१ उपसः पृश्निः अग्रियः अरुरुचत् — उषःकालके बाद उदय होनेवाला सूर्य इस स्थानपर मुख्य है और वह उदय होनेके बाद प्रकाशित होने लगता है ।

२ उक्षा मिमेति — जलोंसे भूमिको सींचनेवाला मेघ आकाशमें गर्जना करता है ।

३ भुवनेषु वाजयुः — प्राणियोंमें अन्न खानेकी इच्छा उत्पन्न होती है ।

४ मायाविनः अस्य मायया ममिरे — जो कुशल हैं वे अपनी कुशलतासे सृष्टिका निर्माण करते हैं ।

५ नृचक्षसः पितरः गर्भं आदधुः — मानवोंके कर्मोंका निरीक्षण करनेवाले पितर माताके पेटमें गर्भ स्थापित करते हैं, जिससे सृष्टि होती है ।

\*



५९७ इन्द्र इदृयोः सचा सम्मिश्र आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७।२ )

५९८ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिः कृतिभिः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।७।४ )

५९९ प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।

धातुद्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१८।११ )

६०० नियुत्वान्वायवा गद्ययः शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. २।४।१२ )

६०१ यज्ञायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय । तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्रा उतो दिवम् ॥ ७ ॥

( ऋ. ८।८९।९ )

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

( १-१३ ) १, ५, ७, १० वामदेवो गौतमः; २, ३, गौतमो राहगणः; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ गृत्समदः शौनकः  
८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ ऋजिश्वा भारद्वाजः; ११ हिरण्यस्तूप आंगिरसः; १२, १३ विश्वामित्रो गाथिनः ( १२ ब्रह्म ) ॥

१ प्रजापतिः; २, ३ सोमः; ४, ५, ८, १३ अग्निः; ६ अपानपात्; ७ रात्रिः; ९ विश्वेदेवाः; १० लिङ्गोक्ताः;

११ इन्द्रः; १२ आत्मा अग्निर्वा ॥ त्रिष्टुप्; १, ७ अनुष्टुप्; ४ गायत्री; ८, ९ जगती; १० महापङ्क्तिः ॥

६०२ मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः । परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ १ ॥

[ ५९७ ] ( इन्द्र इत् ) इन्द्र ही ( हयोः ) दो घोड़ोंको अपने रथमें ( सचा सम्मिश्रः ) एक साथ जोड़नेवाला है । ये घोड़े ( वचो-युजा ) संकेतसे ही रथमें जुड़ जानेवाले हैं, इस प्रकार यह ( इन्द्रः वज्री हिरण्ययः ) इन्द्र वज्र धारण करनेवाला और सोनेके आभूषण धारण करनेवाला है ॥ ३ ॥

[ ५९८ ] तू ( उग्रः ) बीर है, इसलिए ( उग्राभिः कृतिभिः ) बीरतासे युक्त संरक्षणोंसे ( वाजेषु ) छोटे युद्धोंमें ( सहस्र-प्रधनेषु च ) हजारों प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले बड़े बड़े संग्रामोंमें ( नः अव ) हमारा संरक्षण कर ॥ ४ ॥

१ सहस्र प्र-धनं— शत्रुको हरानेके बाद उसे लूटकर अनेकों तरहके धन जिसमें मिलते हैं, ऐसे बड़े संग्राम ।

२ उग्रा कृतिः— बीरतासे किए गए संरक्षण ।

[ ५९९ ] ( यस्य प्रथः च स-प्रथः च नाम ) जिसके प्रथ और सप्रथ ये नाम हैं, जिनके लिए ( अनुष्टुभस्य हविषः हवि यत् ) अनुष्टुभ छन्दमें मंत्रका पाठकर हविका अर्पण किया जाता है । उत ( द्युतानात् धातुः ) तेजस्वी धाता, सविता, विष्णुके पाससे वसिष्ठने ( रथन्तरं आजभार ) रथन्तर साम प्राप्त किया ॥ ५ ॥

[ ६०० ] हे ( वायो ) वायुदेव ! तू ( नियुत्वान् ) नियुत नामके रथसे ( आ गहि ) आ । ( अयं शुक्रः ) यह धमकनेवाला सोमरस ( ते अयामि ) तेरे लिए तैयार किया गया है, ( सुन्वतः गृहं ) तू सोम यज्ञ करनेवालेके घरको ( गन्ता असि ) जाता है ॥ ६ ॥

[ ६०१ ] हे ( अ-पूर्व्य मघवन् ) अद्भुत धनवाले इन्द्र ! ( वृत्रहत्याय ) वृत्रके वध करनेके लिए ( यत् जायथाः ) जब तू तैयार हुआ ( तत् पृथिवीं अप्रथयः ) तब तूने पृथ्वीको विस्तृत किया ( उत उ दिवं अस्तभ्नाः ) और धुलोकको ऊपर स्थिर किया ॥ ७ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ६०२ ] ( परमेष्ठी प्रजापतिः ) श्रेष्ठ स्थानपर रहनेवाला प्रजाओंका पालक परमेश्वर ( मयि ) मुझमें ( वर्चः तेज ) अथो यशः ) और यज्ञ ( अथो यज्ञस्य यत्पयः ) और यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाला जो दूध है, उन्हें ( दिवि द्यां दृष्व ) धुलोकमें जिस प्रकार तेज होता है, उसी प्रकार ( दृंहतु ) बढ़ावे ॥ १ ॥



६०३ सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्णान्यभिमातिषाहः ।

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।१८ )

६०४ त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।

त्वमातनोरुर्वान्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।९।१२२ )

६०५ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।१।१ )

६०६ ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।

ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीयशसा गावः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ४।१।१६ )

परमेश्वर मुझे तेज, यश और दूध आदि अन्नके पदार्थ भरपूर देवे, आकाश जिस प्रकार तेजस्वी है, उसी प्रकार मैं भी तेजस्वी होऊँ ।

[ ६०३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अभिमाति-षाहः ) शत्रुका पराभव करनेवाले ( ते ) तेरे पास ( पयांसि सं यन्तु ) दूध हो, ( वाजाः सं यन्तु ) अन्न तेरे पास हों और ( वृष्णाणि सं ) बल तुझे प्राप्त हों । ( अमृताय आप्यायमानः ) अमरत्व प्राप्त करनेके लिए बढ़ते हुए ( दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ) द्युलोकमें उत्तम अन्नको प्राप्त कर ॥ २ ॥

१ ते पयांसि सं यन्तु— तेरे पास दूध हो, तेरे अन्दर दूध मिलाया जाए । सोमरसमें दूध मिलाने हैं ।

[ ६०४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( त्वं ) तूने ( इमा विश्वाः ओषधीः अजनयः ) इन सभी औषधियोंको उत्पन्न किया, ( त्वं अपः ) तूने जल उत्पन्न किया, ( त्वं गाः ) तूने गायोंको उत्पन्न किया, ( त्वं उरुः अन्तरिक्षं आ तनोः ) तूने ही विस्तृत अन्तरिक्षको फैलाया ( त्वं तमः ज्योतिषा वि ववर्थ ) तूने अन्धकारका तेजसे नाश किया ॥ ३ ॥

[ ६०५ ] ( पुरः-हितं ) आगे रहनेवाले ( यज्ञस्य देवं ) यज्ञके प्रकाशक ( ऋत्विजं ) ऋतुओंके अनुसार हवन करनेवाले ( होतारं ) देवोंको बुलाकर लानेवाले ( रत्न-धातमं ) रत्नोंको धारण करनेवाले ( अग्निमीडे ) अग्निकी में स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

यज्ञमें अग्निका सामने स्थापन किया जाता है, उसमें हवन किया जाता है । ऋतुओंके अनुसार यज्ञ होता है, वह सब देवोंको बुलाकर लाता है, याजकोंके शरीरपर धारण करनेके लिए वह रत्नोंको देता है, ऐसे अग्नि देवकी हम स्तुति करते हैं ।

[ ६०६ ] ( ते ) उन ऋषियोंने ( गोनां नाम ) वाणीके शब्द ( प्रथमं अमन्वत ) स्तुति करनेके योग्य हैं, यह प्रथम समझा, फिर ( त्रि सप्त परमं नाम जानन् ) तीन गुना सात अर्थात् २१ छंदोंमें स्तोत्र होते हैं, यह जाना इसके बाद उन्होंने सावधानीसे ( ता जानतीः क्षा अभ्यनूषत ) उस वाणीसे उषाकी स्तुति की, उस ( यशसा ) तेजसे ( अरुणीः गावः आविर्भुवन् ) अरुण रंगकी गायें - किरणें - प्रकट हुई ॥ ५ ॥

१ ऋषियोंने भाषाके शब्द स्तुतिके योग्य हैं, यह प्रथम समझा ।

२ उसके बाद २१ छंदोंमें स्तोत्र हो सकते हैं, यह जाना ।

३ उससे उषा देवताके स्तोत्र बनाये और उनका गान किया ।

४ तब सूर्यकी किरणें बाहर निकलीं, सूर्यका उदय हुआ ।



- ६०७ समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूवे नद्यस्पृणन्ति ।  
तमू शुचिः शुचयो दीदिवाः समपान्नपातमुप यन्त्यापः ॥ ६ ॥ ( ऋ. २।३५।३ )
- ६०८ आ प्रागाद्भद्रा युवतिरहः केतूत्समोत्सति ।  
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥
- ६०९ प्रक्षस्य वृष्णो अरुपस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे ।  
वैश्वानराय मतिनव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥ ८ ॥ ( ऋ. ६।८।१ )
- ६१० विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।  
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचः सुम्रष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥ ( ऋ. ६।९।१४ )
- ६११ यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती । यशो भगस्य विदन्तु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।  
यशसाऽस्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥ १० ॥

[ ६०७ ] ( अन्याः संयन्ति ) दूसरे वर्षाके जल मिल जाते हैं, ( अन्याः उपयन्ति ) दूसरे पानी भी इसमें मिलाये जाते हैं, वे सब पानी ( समानं नद्यः ) एक साथ मिलकर नदीके रूपसे ( ऊर्वं पृणन्ति ) बाडवानल-सागरकी अग्नि-को आनन्दित करते हैं, ( तं उ शुचिं दीदिवांसं अपां नपातं ) उस शुद्ध तेजस्वी जलके पौत्ररूपी अग्निके पास ( आपः उपयन्ति ) सब जलप्रवाह पहुंचते हैं ॥ ६ ॥

१ अपां न-पातः — जलोंको नीचे न गिरने देनेवाला मेघ, ( अपां नपातः ) जलोंका पौत्र-अग्नि ।

२ सब पानी मिलकर नदीके रूपमें सागरमें मिल जाते हैं, उसी प्रकार सोमरसमें पानी मिलाया जाता है, दोनों ही तरहके पानी सोमरसमें मिलाये जाते हैं ।

[ ६०८ ] ( भद्रा युवतिः ) कल्याण करनेवाली स्त्री ( प्रगात् ) रात्री आगई है, ( अहः केतून् ) दिवसकी किरणोंका ( सं ईत्सति ) वह प्रतिबन्ध करनेकी इच्छा करती है, ( विश्वस्य जगतः निवेशनी ) सब जगत्को विश्राम देनेवाली यह ( रात्री भद्रा अभूत् ) रात्री कल्याण करनेवाली है ॥ ७ ॥

[ ६०९ ] ( प्रक्षस्य वृष्णः ) व्यापक, बलवान् ( अरुपस्य ) और तेजस्वी अग्निके ( महः ) तेजकी में ( नू ) स्तुति करता हूँ, वे ( नः वचः ) हमारे स्तोत्र ( विदथा ) यज्ञमें ( जातवेदसे ) अग्निके लिए ( प्र ) बोले जाते हैं, ( नव्यसे वैश्वानराय अग्नये ) नवीन, सब मनुष्योंका हितकरनेवाले अग्निके पास वे ( शुचिः चारुः मतिः ) शुद्ध सुन्दर स्तोत्र ( सोमः इव पवते ) सोमके समान जाते हैं ॥ ८ ॥

[ ६१० ] ( विश्वे देवाः ) सब देव ( मम यज्ञे मन्म ) मेरे पूज्य स्तोत्र ( शृण्वन्तु ) सुनें, ( उभे रोदसी ) दोनों छुलोक और पृथ्वीलोक ( अपां नपात् ) और अग्नि मेरे स्तोत्र सुनें, हे ( देवाः ) देवो ! ( वः परिचक्ष्याणि ) तुम्हारे द्वारा न सुनने योग्य ( वचांसि मा वोचं ) स्तोत्रोंकी मैं न बोलूँ । इसीलिए ( वः अन्तमाः सुम्रेषु इत् मदेम ) तुम्हारे पास जाकर तुम्हारे द्वारा दिए गए सुखोंमें आनन्दित होऊँ ॥ ९ ॥

[ ६११ ] ( द्यावा-पृथिवी ) छुलोक और पृथ्वीलोकके ( यशः मा ) यज्ञ मुझे प्राप्त हों, ( इन्द्रावृहस्पती मा यशः ) इन्द्र और बृहस्पतिसे भी मुझे यज्ञ मिले ( भगस्य यशः मा विदन्तु ) भग देवका यज्ञ मुझे प्राप्त हो, मुझे ( यशः ) यज्ञ ( मा प्रति मुच्यताम् ) छोड़कर दूर न जाए, ( अस्याः संसदः यशसा ) इस संसदके यज्ञसे मैं दूर न होऊँ ( अहं प्रवदिता स्यां ) मैं सभामें भाषण करनेवाला बनूँ ॥ १० ॥



१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २  
६१२ इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम्

॥ ११ ॥ ( ऋ. १।३२।१ )

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १  
६१३ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।

त्रिधातुरर्को रजसो विमानोजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम्

॥ १२ ॥ ( ऋ. ३।२६।७ )

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
६१४ पात्यग्निर्विपो अग्ने पदं वेः पाति यद्वह्मश्चरणं सूर्यस्य ।

पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः

॥ १३ ॥ ( ऋ. ३।१५।९ )

इति तृतीया दशतिः ॥ ३ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

( १-१२ ) वामदेवो गौतमः ३-७ नारायणः ॥ १-२ अग्निः; ३-७ पुरुषः; ८ द्यावापृथिवी; ९-११ इन्द्रः; १२ गावः ॥ अनुष्टुप्; १-२ पंक्तिः; ८, ११, १२ त्रिष्टुप् ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
६१५ भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।

स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रथि वचो ददोऽदाः

॥ १ ॥

[ ६१२ ] ( वज्री ) वज्र धारण करनेवाले इन्द्रने ( यानि प्रथमानि ) जिन मुख्य ( वीर्याणि चकार ) पराक्रमके कार्य किए, उस ( इन्द्रस्य ) इन्द्रके उन पराक्रमके कार्योंका ( नु प्रवोचं ) मैं वर्णन करता हूँ, ( अहि अहन् ) अहि मेघोंको उसने मारा, ( अनु अपः ततर्द ) उसके बाद उनसे पानी बहाया, और ( पर्वतानां वक्षणाः प्र अभिनत् ) पर्वतपरकी नदियोंको बहने योग्य बनाया ॥ ११ ॥

[ ६१३ ] ( जन्मना अग्निः अस्मि ) मैं जन्मसे ही अग्नि हूँ, मैं ( जात-वेदाः ) सबको जाननेवाला हूँ ( मे चक्षुः घृतं ) मेरी आँखें प्रकाशके साधन थी हैं, ( अमृतं मे आसन् ) अमरत्व मेरे मुखमें है, ( त्रिधातु अर्कः ) प्राण, अपान और व्यान इन तीनोंमें रहनेवाला प्राण मैं हूँ ( रजसः विमानः ) अन्तरिक्षको मापनेवाला वायु मैं हूँ, ( अ-जस्रं ज्योतिः ) हमेशा तेजसे युक्त रहनेवाला सूर्य मैं हूँ ( सर्वं हविः अस्मि ) सभी प्रकारका हवि मैं हूँ ॥ १२ ॥

मैं जन्मसे ही अग्नि-तेजरूप हूँ, मैं सर्वज्ञ हूँ, घृतके हवनसे जो प्रकाश होता है, उसको देखनेवाला मैं हूँ। अमरत्व देनेवाली वाणी मेरे मुखमें है, मैं प्राण हूँ, वायु मैं हूँ, सूर्य मैं हूँ, हवि भी मेरा ही रूप है।

अग्निका अर्थ है अग्रणी, शरीरमें अग्रणी आत्मा है, और वही ज्ञान स्वरूप है, सभीमें वही है।

[ ६१४ ] ( अग्निः ) यह अग्नि ( वेः विषः ) गति करनेवाली भूमिके ( अग्रं पदं पाति ) मुख्य स्थानका रक्षण करती है। ( यद्वहः सूर्यस्य चरणं पाति ) महान् अग्नि सूर्यके जानेके मार्गोंका रक्षण करती है ( नाभा ) अन्तरिक्षमें ( सप्त शीर्षाणं ) सात गणोंमें रहनेवाले मरुतोंका ( पाति ) रक्षण करती है, ( ऋष्वः अग्निः ) दर्शनीय यह अग्नि ( देवानां उपमादं पाति ) देवोंको आनन्द देनेवाले यज्ञका रक्षण करती है ॥ १३ ॥

अग्नि, भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोकका संरक्षण करती है। भूमि पर अग्नि रूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे और द्युलोकमें सूर्यरूपसे यह अग्नि रहती है। मरुत् वायु है, वहां विद्युत् अग्नि है, और यज्ञमें अग्नि जो होती है, वह हवनके द्वारा सब देवोंका संरक्षण करती है।

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ६१५ ] ( समिधान अग्ने ) हे प्रदीप्त हुए अग्नि देव ! तेरे ( भ्राजन्ती आसनि ) तेजस्वी मुखमें तेरी ( जिह्वा ) जीभ ज्वाला ( चरति ) हविका भक्षण करती है, हे ( अग्ने वसुवित् ) धनयुक्त अग्ने ! ( सः त्वं ) वह तू ( नः ) हमें ( पयसा ) दूधरूपी अन्नसे युक्त ( रथि ) धन और ( ददो वचः ) दर्शनीय तेज ( अदाः ) दे ॥ १ ॥



- ६१६ वसन्तं इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।  
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥ २ ॥
- ६१७ सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।  
स भूमिः सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गलम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।९।१ )
- ६१८ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।  
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।९।४ )
- ६१९ पुरुष एवेदः सर्वं यद्धूतं यच्च भाव्यम् ।  
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।९।५ )
- ६२० तावानस्य महिमा ततो ज्यायाश्च पुरुषः ।  
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ६ ॥ ( ऋ. १०।९।६ )
- ६२१ ततो विराडजायत विराजो अधि पुरुषः ।  
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ७ ॥ ( ऋ. १०।९।७ )

[ ६१६ ] ( वसन्तः इत् नु रन्त्यः ) वसन्तऋतु निश्चयसे रमणीय है, ( ग्रीष्मः इत् नु रन्त्यः ) ग्रीष्मऋतु भी रमणीय है, ( वर्षाणि शरदः हेमन्तः शिशिरः ) वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ये ऋतुयें भी ( इत् नु रन्त्यः ) रमणीय हैं ॥ २ ॥

[ ६१७ ] ( सहस्रशीर्षाः ) हजारों सिरवाला, ( सहस्र-अक्षः ) हजारों आंखोंवाला और ( सहस्रपात् ) हजारों पैरवाला एक पुरुष है, ( सः भूमिं सर्वतो वृत्वा ) वह भूमिको सब ओरसे घेर कर ( दशाङ्गलं अत्यतिष्ठत् ) वस इन्द्रियोंसे भोगने योग्य इस जगत्को घेरकर भी शेष बचा हुआ है ॥ ३ ॥

[ ६१८ ] ( त्रिपाद् पुरुषः ) तीन भागोंवाला यह पुरुष ( ऊर्ध्वः उदैत् ) ऊंचे स्थानपर रहता है, ( अस्य पादः पुनः इह अभवत् ) इसका चौथा भाग इस संसारमें फिर फिर प्रकट होता है, ( साशन-अनशने अभि ) अन्न खानेवाले और अन्न न खानेवालेके चारों ओर ( तथा विष्वङ् व्यक्रामत् ) विविध रूपोंवाला वह व्याप्त है ॥ ४ ॥

[ ६१९ ] ( यत् भूतं ) जो उत्पन्न हुआ ( यत् च भाव्यं ) और जो उत्पन्न होनेवाला है, ( इदं सर्वं पुरुषः एव ) यह सब पुरुष ही है, ( अस्य पादः सर्वा भूतानि ) इसका चौथा भाग ये सब प्राणी हैं, और ( अस्य त्रिपाद् दिवि अमृतं ) इसके तीन भाग छलोकमें अमर हैं ॥ ५ ॥

[ ६२० ] ( अस्य तावान् महिमा ) इस पुरुषकी ऐसी महिमा है, वास्तवमें वह ( पुरुषः ) पुरुष ( ततः ज्यायाश्च ) उसकी अपेक्षा भी बड़ा है, ( उतामृतत्वस्य ईशानः ) और वह अमरत्वका स्वामी है, ( यत् अन्नेनाति रोहति ) जो अन्नसे बढ़ते हैं, उनका भी वह स्वामी है ॥ ६ ॥

[ ६२१ ] ( ततः विराद् अजायत ) उस पुरुषसे विराद् पुरुष हुआ, ( विराजः अधि पुरुषः ) उस विराद् पुरुषका निरीक्षण करनेवाला एक पुरुष है, ( सः जातः ) वह उत्पन्न होते ही ( अति अरिच्यतः ) सबसे श्रेष्ठ हुआ, उसने सबसे पहले ( भूमिं ) पृथ्वी उत्पन्न की और ( अथो पश्चात् पुरः ) बादमें शरीर उत्पन्न किए ॥ ७ ॥



६२२ म॒न्ये वां द्यावा॑पृथि॒वी सु॒भोज॑सौ ये अ॒प्रथे॑था॒ममि॑तम॒भि यो॒ज॒नम् ।

द्यावा॑पृथि॒वी भव॑तः स्यो॒ने ते नो॑ मुञ्च॒तम॑हसः ॥ ८ ॥ (अथर्व. ४।२६।१)

६२३ ह॒री त इन्द्र॑ इ॒मश्रू॑ण्यु॒तो ते ह॑रि॒तौ ह॒री । तं त्वा स्तु॑वन्ति क॒वयः॑ पु॒रुषा॑सो व॒नर्ग॑वः ॥ ९ ॥

६२४ यद्व॒र्चो हिर॑ण्यस्य यद्वा व॒र्चो ग॒वा॒मु॒त । स॒त्यस्य॑ ब्र॒ह्म॒णो व॒र्चस्ते॑न मा स॒सृ॒जाम॑सि ॥ १० ॥

६२५ सह॑स्तन्न इन्द्र दद्व॒योज॑ ई॒शे ह्य॑स्य म॒हतो॑ वि॒र॒ण्शि॒न् ।

क्र॒तुं न नृ॑म॒ण॑स्थवि॒रं च॑ वा॒जं वृ॒त्रेषु॑ श॒त्रून्त्स॑ह॒ना कृ॒धी नः॑ ॥ ११ ॥

६२६ सह॑र्षभाः सह॒वत्सा॑ उदे॒त वि॒श्वा रू॒पाणि॑ बिभ्र॒तीद्व॑र्यू॒धनीः॑ ।

उ॒रुः पृ॒थु॒रयं॑ वो अस्तु॒ लोक॑ इ॒मा आ॒पः सु॒प्रपा॑णा इ॒ह स्त॑ ॥ १२ ॥

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ६२२ ] हे ( द्यावा-पृथिवी ) द्युलोक और पृथ्वी लोको ! ( वां सु-भोजसौ ) तुम उत्तम भोजन देनेवाले हो, इस प्रकार ( मन्ये ) मैं मानता हूँ ( ये ) जो ये दोनों लोक हैं, वे ( अमितं योजनं ) अपरिमित धन आदि ( अभि-प्रथेथां ) हमें देवें; हे ( द्यावा-पृथिवी ) हे द्युलोक और पृथ्वी लोको ! तुम ( स्योने भवतं ) हमारे लिए सुखदायी होवो, ( ते नः अहसः मुञ्चतं ) वे हमें पापसे छुड़ावें ॥ ८ ॥

[ ६२३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते इमश्रूणि हरी ) तेरी मूछें हरे रंगकी हो गई हैं, ( उत ते हरितौ हरी ) और तेरे दोनों घोड़े पीले रंगके हैं, ( वनर्गवः ) उत्तम गायोंको पालनेवाले ( कवयः पुरुषासः ) ज्ञानी पुरुष ( तं त्वा स्तुवन्ति ) उस तेरी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

१ ते इमश्रूणि हरी— सोमरस हरे रंगका होता है, उसे पीनेके कारण तेरी मूछें हरे रंगकी हो गई हैं ।

[ ६२४ ] ( हिरण्यस्य यत् वर्चः ) सोनेका जो तेज है, ( यत् वा गवां यत् वर्चः ) जो गायोंका तेज है, ( उत ) और ( सत्यस्य ब्रह्मणः वर्चः ) सत्यज्ञानका जो तेज है, ( तेन मा संसृजामसि ) उस तेजसे मैं युक्त होता हूँ ॥ १० ॥

[ ६२५ ] हे ( विरण्शिन् इन्द्र ) बहुतसा धन अपने पास रखनेवाले इन्द्र ! ( तत् सहः ओजः न दद्वि ) वह बल और सामर्थ्य हमें दे, ( हि अस्य महतः ईशे ) क्योंकि तू इस महान् बलका स्वामी है, हे इन्द्र ! ( नः ) हमारे ( क्रतुं न ) यज्ञके समान ( नृमणं स्थविरं वाजं ) धन और महान् सामर्थ्य ( नः कृधि ) हमें दे, और ( वृत्रेषु शत्रून् सहना कृधि ) युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेका बल हमें दे ॥ ११ ॥

[ ६२६ ] हे ( सह-ऋषभाः ) बैलोंके साथ रहनेवाली, ( सह-वत्साः ) बछड़ोंके साथ रहनेवाली, ( द्यूधनीः ) दुग्धने बड़े दुग्धशायवाली ( विश्वा रूपाणि बिभ्रतीः ) अनेक रूपोंको धारण करनेवाली गायो ! तुम ( उदेत ) हमारे पास आओ, ( उरुः पृथुः अयं लोकः वः अस्तु ) महान् और विशाल यह लोक तुम्हारे लिए हो, ( इमाः आपः ) ये जल प्रवाह ( सु-प्र-पाणाः इह स्त ) सुखसे पीने योग्य होकर तुम्हें यहां मिलें ॥ १२ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ५ ]

( १-१४ ) १ शतं वैखानसाः; २ विभ्राद् सौर्यः; ३ कुत्स आंगिरसः; ४-६ सार्वराज्ञी; ७-१४ प्रस्कण्वः काण्वः ॥  
सूर्यः; १ अग्निः पवमानः; ४-६ आत्मा वा ॥ गायत्री; २ जगती; ३ त्रिष्टुप् ॥

६२७ अग्न आयूँषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. २।६६।१९ )

६२८ विभ्राड् बृहत्पिवतु सोम्यं मध्वायुर्दधत्तपतावविहृतम् ।

वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपतिं बहुधा वि राजति ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१७०।१ )

६२९ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगत्स्तस्थुषश्च ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।११५।१ )

६३० आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥

( ऋ. १०।१८९।१; वा. य. ३।६ )

६३१ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥

( ऋ. १०।१८९।२; यजु. ३।७ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ६२७ ] ( अग्ने ) अग्ने ! ( आयूँषि पवसे ) दीर्घ आयु हमें दे, ( नः ऊर्जं इषं च आसुव ) हमें बल और अन्न दे, और ( दुच्छुनां आरे बाधस्व ) राक्षसोंको दूर कर ॥ १ ॥

१ दुच्छुनां— ( दुः-शुनां ) पागल कुत्ते, राक्षस, दुर्वै, दुःखदायक ।

[ ६२८ ] ( वि-भ्राड् ) विशेष प्रकाशमान सूर्य ( बृहत् सोम्यं मधु पिवतु ) बहुत सोमरस पीवे, ( यज्ञ-पतौ ) यज्ञ करनेवालेको ( अ-वि-हृतं आयुः दधत् ) कुटिलतारहित आयुष्य प्राप्त हो, ( वात-जूतः यः ) वायुसे युक्त यह सूर्य ( त्मना प्रजाः अभिरक्षति ) स्वयं ही सब प्रजाओंका रक्षण करता है, उससे ( पिपतिं ) अन्नको पूर्ण करता है और ( बहुधा विराजति ) अनेक प्रकारसे प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

१ अ-वि-हृतं आयुः— उपद्रवरहित आयु ।

२ वात-जूतः सूर्यः त्मना प्रजाः अभिरक्षति पिपतिं— वायुके साथ सूर्य सब प्राणियोंका रक्षण करता है, और उन्हें अन्न देकर पुष्ट करता है ।

[ ६२९ ] ( देवानां चित्रं अनीकं उदगात् ) देवोंका अद्भुत तेज समूहरूपी सूर्य उदय हो गया है, यह मित्र, वरुण और अग्निका ( चक्षुः ) नेत्ररूप है, उदय होते ही इसने ( द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आप्राः ) छुलोक, भूलोक और अन्तरिक्षको तेजसे भर दिया है, ऐसा यह सूर्य ( जगत् तस्थुषः च आत्मा ) जंगम और स्थावर जगत्की आत्मा है ॥ ३ ॥

[ ६३० ] ( अयं गौः ) यह गतिमान् ( पृश्निः ) तेजस्वी सूर्य ( आ अक्रमीत् ) उदय होकर ऊपर हो गया है, ( पुरः मातरं असदत् ) पहले वह पृथ्वी माताको प्राप्त हुआ, फिर वह ( पितरं स्वः च प्रयन् ) छुलोकरूपी अपने पिताको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

[ ६३१ ] ( अस्य रोचना ) इस सूर्यका प्रकाश ( अन्तः चरन्ति ) आकाशमें संचार करता है । ( प्राणाद् अपानती ) उदयके बाद प्रकाशित होता है और अस्त होनेके बाद वह विलीन हो जाता है । ( महिषः दिवं व्यख्यत् ) यह महान् सूर्य छुलोकको विशेष रूपसे प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥



- ६३२ <sup>३ २३ ३ १ २ ३ १ २३ २</sup> त्रिंशद्भाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । <sup>२३ २ ३ २३ १ २</sup> प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥  
( ऋ. १०।१८९।३; यजु. ३।८ )
- ६३३ <sup>२३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २</sup> अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । <sup>१ २ ३ १ २</sup> सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥  
( ऋ. १।९०।२; अथर्व. १३।२।१७; २०।४७।१४ )
- ६३४ <sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २</sup> अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाऽनु । <sup>१ २ ३ १ २</sup> भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥  
( ऋ. १।९०।३; अथर्व. १३।२।१८; २०।४७।१५ )
- ६३५ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥  
( ऋ. १।९०।४; अथर्व. १३।२।१९; २०।४७।१६ )
- ६३६ <sup>३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ् दुदेषि मानुषान् । <sup>३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्रत्यङ् विश्वस्वदृशे ॥ १० ॥  
( ऋ. १।९०।५; अथर्व. १३।२।२०; २०।४७।१७ )
- ६३७ <sup>१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २</sup> येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाऽनु । <sup>१ २ ३ १ २</sup> त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥  
( ऋ. १।९०।६; अथर्व. १३।२।२१; २०।४७।१८ )

आत्मपक्ष — ( अस्य रोचना ) इस आत्माका तेज ( अन्तः चरति ) शरीरके अन्दर संचार करता है, ( प्राणात् अपानती ) प्राण और अपानके रूपोंसे उसकी गति शरीरमें होती है, यह ( महिषः ) महान् शक्तिमान् आत्मा ( दिवं व्यख्यत् ) मस्तिष्कमें ज्ञानका प्रकाश करता है ॥ ५ ॥

[ ६३२ ] ( वस्तोः त्रिंशत् धाम विराजति ) दिनके तीस मुहूर्त होते हैं ( अहः ) वह सूर्य ( द्युभिः विराजति ) अपनी किरणोंसे प्रकाशित होता है, ( पगङ्गाय वाक् प्रति धीयते ) उस सूर्यकी स्तुति की जाती है ॥ ६ ॥

[ ६३३ ] ( विश्व-चक्षसे सूराय ) सबको प्रकाश देनेवाले सूर्यके उदय होनेके बाद ( नक्षत्राः अक्तुभिः ) नक्षत्र रात्रिके साथ साथ ( यथा त्ये तायवः ) जैसे दिनमें चोर छिप जाते हैं, उसी प्रकार ( अप यन्ति ) छिप जाते हैं ॥ ७ ॥

[ ६३४ ] ( अस्य केतवः रश्मयः ) इस सूर्यकी प्रकाशकी किरणें ( जनान् अनु वि अदृश्रन् ) लोगोंको देखती हैं, ( यथा भ्राजन्तः अग्नयः ) जिस प्रकार प्रज्वलित हुई अग्निकी किरणें देखती हैं ॥ ८ ॥

[ ६३५ ] हे ( सूर्य ) सूर्य ! तू ( तरणिः ) सबोंको तारनेवाला ( विश्व-दर्शतः ) सबोंके द्वारा देखे जाने योग्य ( ज्योतिष्कृत् असि ) प्रकाश करनेवाला है, ( विश्वं रोचनं आभासि ) सब चमकनेवाले पदार्थोंको प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

अध्यात्मपक्ष — ( सूर्य ) हे सबको प्रेरणा देनेवाले परमात्मन् ! तू ( तरणिः ) सबको तारनेवाला है, ( विश्व दर्शतः ) सबोंके द्वारा साक्षात्कार करनेके योग्य ( ज्योतिष्कृत् असि ) तेजस्वी गोलकोंका तू कर्ता है, ( विश्वं रोचनं आभासि ) सब तेजस्वी लोगोंको तू ही प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

[ ६३६ ] हे सूर्य ! तू ( देवानां विशः प्रत्यङ् ) देवोंके प्रजाजन जो मरत हैं, उनके सामने ( मानुषान् प्रत्यङ् ) मनुष्योंके आगे, ( विश्वं स्वदृशे प्रत्यङ् ) सब विश्वको देखनेके लिए सामने ( उदेषि ) उदय होता है ॥ १० ॥

[ ६३७ ] हे ( पावक वरुण ) पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ सूर्य ! ( त्वं ) तू ( जनान् भुरण्यन्तं ) प्राणियोंके पोषण करनेवाले इस लोकको ( येन चक्षसा अनु पश्यसि ) जिस प्रकाशसे देखता है, उस तेरे प्रकाशकी हम स्तुति करते हैं ॥ ११ ॥



६३८ उदयामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अकतुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १२ ॥

( ऋ. १।५०।७; अथर्व. १३।२।२२; २०।४७।१९ )

६३९ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूर्यो रथस्य नण्ड्यः । तामिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥

( ऋ. १।५०।९; अथर्व. १३।२।२४; २०।४७।२१ )

६४० सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥

( ऋ. १।५०।८; अथर्व. १३।२।२३; २०।४७।२० )

इति पञ्चमी दशतिः ॥ ५ ॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ इति सामवेद-संहितायामारण्यं काण्डं पर्वं वा समाप्तम् ॥

[ ६३८ ] हे सूर्य ! ( पृथु रजः द्यां उदेषि ) तू इस विस्तृत अन्तरिक्ष और ब्रूलोकमें संचार करता है, ( अहा अकतुभिः मिमानः ) दिनको रात्रीसे नापता हुआ तू ( जन्मानि पश्यन् ) जन्म लेनेवाले प्राणिमात्रको देखता जाता है ॥ १२ ॥

[ ६३९ ] ( सूर्यः ) सूर्यने ( शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त ) शुद्ध करनेवाले सात घोडोंको अपने रथमें जोडा है, ( रथस्य नण्ड्यः ) जो रथको चलाते हैं, ( तामिः स्वयुक्तिभिः याति ) उनसे और अपनी योजनाओंसे वह सूर्य जाता है ॥ १३ ॥

१ शुन्ध्युवः— सूर्यकिरणें स्वच्छता करनेवाली होती हैं ।

२ सप्त— सूर्यकिरणें सात रंगकी होती हैं ।

३ रथस्य नण्ड्यः— रथ चलानेवाली घोडेरूपी किरणें हैं ।

[ ६४० ] ( वि-चक्षण देव सूर्य ) हे प्रकाशक सूर्यदेव ! ( सप्त हरितः ) सात घोडे-सात किरणें ( शोचि-ष्केशं त्वा ) शुद्ध करनेवाली किरणोंसे युक्त तुझे ( रथे वहन्ति ) रथसे ले जाती हैं ॥ १४ ॥

१ शोचिष्केशः— सूर्यकी किरणें शुद्धता करनेवाली हैं ।

२ सप्त हरितः— सात रंगकी सात किरणें ।

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति आरण्यं काण्डम् ॥



## अथ महानाम्न्याचिकः ।

( १-१० ) प्रजापतिः ॥ इन्द्रस्त्रैलोक्यात्मा ॥ त्रिकं = [ ९ प्रथमं द्विपदा + ( २ ) ततस्त्रयः शाक्वराः पादाः + ( ३ ) तत उपसर्गौ + ( ३ ) उभयं ( शाक्वरोपसर्गौ ) + ( ५ ) ततः शाक्वरास्त्रयः पादाः + ( ६ ) उपसर्गः ]

६४१ विदा मधवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः । शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरुवसो ॥ १ ॥

६४२ आभिष्टमभिष्टिभिः स्वाऽऽन्नांशुः । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र युम्नाय न इषे ॥ २ ॥

६४३ एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।

शविष्ठ वज्रिन्नृजसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृजसे । आ याहि पिव मत्स्व ॥ ३ ॥

६४४ विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाऽनु ।

मंहिष्ठ वज्रिन्नृजसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥

६४५ या मंहिष्ठो मघोनामं शुन्न शचिः । चिकित्वो अभि नो नयेद्रो विदे तमु स्तुहि ॥ ५ ॥

६४६ ईश हि शक्रस्तमृतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

स नः स्वर्षदति द्विपः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥ ६ ॥

[ ६४१ ] हे ( मधवन् ) धनवान् परमात्मन् ! ( विदाः ) तू सब जानता है, ( गातुं विदाः ) तू योग्य मार्ग जानता है, ( दिशः अनु शंसिषः ) हम कौनसी दिशासे जायें, उसका हमें उपदेश कर, हे ( पूर्वीणां शचीनां पते ) आदि शक्तिके स्वामी ! ( पुरु-वसो ) हे धनसम्पन्न प्रभो ! ( शिक्षा ) हमें शिक्षा दे ॥ १ ॥

[ ६४२ ] हे ( प्रचेतन ) चेतनता देनेवाले ईश्वर ! हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( स्वाऽऽन्नांशुः ) सूर्यके समान ( अंशुः ) तेजस्वी तू आभिः अभिष्टिभिः ) इन संरक्षणोंसे ( इषे युम्नाय ) अन्न और तेज प्राप्त करनेके लिए हमें ( प्रचेतय ) प्रेरित कर ॥ २ ॥

[ ६४३ ] हे ( मंहिष्ठ वज्रिवः ) महान् और वज्रधारी इन्द्र ! तू ( शक्रः एव हि ) सामर्थ्यवान् है, इसलिए हे ( शविष्ठ ) बलवान् प्रभो ! तू हमें राये वाजाय वज्रजसे धन और बल अथवा अन्न प्राप्त करनेके लिए समर्थ करता है ( वज्रजसे ) हमें सामर्थ्यवान् कर । ( आ याहि ) हमारे पास आ ( पिव ) यह मोम पी और ( मत्स्व ) आनन्दित हो ॥ ३ ॥

[ ६४४ ] हे इन्द्र ! ( राये सुवीर्यं विदाः ) धन प्राप्त करनेके लिए उत्तम सामर्थ्य कैसे प्राप्त करें यह तू जानता है, ( यः शूराणां शविष्ठः ) जिस प्रकार शूर पुरुषोंमें बलवान् है, उस प्रकार जो तू है, हे ( मंहिष्ठ वज्रिन् ) महान् वज्रधारी इन्द्र ! वह तू वाजानां पति भव ) सब शक्तियोंका स्वामी है, तू ( वशान् अनु वज्रजसे ) अपने वशमें होकर अनुकूल हुए भक्तोंको सामर्थ्यवान् करता है ॥ ४ ॥

[ ६४५ ] ( यं मघोनां मंहिष्ठः ) जो महान् धनिकोंमें भी बहुत महान् है, ( अंशुः न ) और स्वयं प्रकाशित होने-वालोंके समान ( शोचिः ) प्रकाशमान है, वैसा तू है, हे ( चिकित्वः ) ज्ञानवान् ! तू ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यसम्पन्न है, इस लिए ( नः विदे अभिनय ) हमें ज्ञान प्राप्त करानेके लिए योग्य मार्गोंसे ले जा, ( तं ऊ स्तुहि ) तू उसीकी प्रशंसा कर जो ज्ञानमार्गसे जाता है ॥ ५ ॥

[ ६४६ ] ( शक्रः ईश हि ) शक्तिशाली होते हुए वह स्वामित्व करता है, इसलिए ( ऊतये जेतारं अपराजितं तं हवामहे ) अपने संरक्षणके लिए हम विजयी और पराजित न होनेवाले उस वीरको बुलाते हैं, ( सः नः द्विपः सु अर्षत् ) वह हमारे शत्रुओंको दूर करता है, वह ही ( क्रतुः ) सत्कर्मोंका कर्ता ( छन्दः ) रक्षक, ( ऋतं ) सत्य भक्त और ( बृहत् ) महान् है ॥ ६ ॥



६४७ इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः

॥ ७ ॥

६४८ पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोऽशुभदाय । सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ।

वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यसंन्यसे

॥ ८ ॥

६४९ प्रभो जनस्य वृत्रहन् त्समर्थेषु ब्रवावहे ।

शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्रयुः

॥ ९ ॥

अथ पञ्च पुरीषपदानि ॥

६५० एवाह्येऽऽऽऽऽ व । एवा ह्यमे । एवाहीन्द्र ।

एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॐ एवाहि देवाः

॥ १० ॥

इति पञ्च पुरीषपदानि ॥

इति महानाम्न्याचिकः समाप्तः ॥

इति सामवेद संहितायां पूर्वार्चिकः समाप्तः ॥

पूर्वार्चिकस्य मन्त्रसंख्या

|                     |                      |     |
|---------------------|----------------------|-----|
| १ आग्नेयस्य         | काण्डस्य ( १-११४ )   | ११४ |
| २ ऐन्द्रस्य         | काण्डस्य ( ११५-४६६ ) | ३५२ |
| ३ पावमानस्य         | काण्डस्य ( ४६७-५८५ ) | ११९ |
| ४ आरण्यकस्य         | काण्डस्य ( ५८६-६४० ) | ५५  |
| ५ महानाम्न्याचिकस्य | ( ६४१-६५० )          | १०  |

सर्वयोगः ६५०

[ ६४७ ] ( धनस्य सातये ) धनकी प्राप्तिके लिए हम ( अपराजितं जेतारं इन्द्रं ) पराजित न होनेवाले विजयी इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं, ( सः नः द्विषः अति अर्षत् ) वह हमारे शत्रुओंको दूर करे ॥ ७ ॥

[ ६४८ ] हे ( अद्रिवः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( पूर्वस्य ) सबसे पहले रहनेवाले तेरे ( यत् अंशुः मदाय ) जो प्रकाश आनन्द बढ़ानेके लिए है, हे ( वसो ) हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! उसे ( नः सुम्ने आधेहि ) हमारे सुखके लिए हमें दे, हे ( शविष्ठ ) बलवान् ! ( पूर्तिः शस्यते ) पूर्णता करनेकी शक्तिकी ही सब जगह प्रशंसा होती है, ( नूनं शक्रः वशी ) निश्चयसे तू सामर्थ्यवान् और सबको वशमें करनेवाला है, इसलिए ( तत् नव्यं संन्यसे ) मैं इस नवीन स्तुतिके योग्य तुझे अपने आगे स्थापित करता हूँ ॥ ८ ॥

[ ६४९ ] हे ( वृत्रहन् प्रभो ) वृत्रको मारनेवाले प्रभो ! ( जनस्य समर्थेषु प्र ब्रवावहे ) श्रेष्ठ मनुष्योंमें तेरी ही हम प्रशंसा करते हैं, ( यः ) जो ( गोषु गच्छति ) गायोंमें रहता है, वह ( सखा ) मित्र ( सुशेवः ) उत्तम प्रकारसे सेवा करने योग्य और ( अ-द्रयुः ) अद्वितीय श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

[ ६५० ] ( एवा हि एव ) यह ऐसा ही है, हे अग्ने ! ( एवा हि ) तुम ऐसे प्रकाशस्वरूप हो, हे इन्द्र ! ( एवा हि ) तुम इस प्रकार शत्रुको हरानेवाले हो, हे ( पूषन् ) पूषा ! ( एवा हि ) तुम ऐसे ही पोषण करनेवाले हो, हे ( देवाः ) सब देवो ! तुम ( एवा हि ) इस प्रकार दिव्यगुणसम्पन्न हो ॥ १० ॥



## आरण्यक काण्ड

संहिता-ब्राह्मण-आरण्यक और उपनिषद् ये प्राचीन वाङ्मयके चार विभाग हैं। संहितामें मंत्रपाठ, ब्राह्मणोंमें यज्ञकाण्ड और आरण्यक तथा उपनिषदोंमें वेदमंत्रोंमें आये हुए अध्यात्म-विद्याका विस्तारसे वर्णन है। इस आरण्यक काण्डमें अन्तके महानाम्नि आर्चिकको तथा कुछ अन्य मंत्रोंको छोड़कर शेष सब मंत्र ऋग्वेदके ही हैं। उनका पता हर मंत्रके नीचे दिया हुआ है। जो मंत्र ऋग्वेदमें नहीं हैं, उनका नहीं दिया गया।

आरण्यकोंका विषय अध्यात्मज्ञानका स्पष्टीकरण ही है। इस प्रकार इस सामवेदीय आरण्यक-काण्डका विषय भी अध्यात्मज्ञानका प्रकटीकरण ही है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चार वेद हैं। ऋग्वेदमें देवोंकी स्तुति है, यजुर्वेदमें यज्ञकाण्डका विषय है, सामवेद उपासनाका वेद है, और अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञान मुख्य है। यद्यपि इस प्रकार ये विभाग हैं, पर प्रत्येक वेदमें किसी न किसी रूपसे अध्यात्मका विषय आ ही गया है। यजुर्वेद कर्मकाण्डका ग्रन्थ है, पर फिर भी उसका अन्तिम चालीसवाँ अध्याय “ ईश-उपनिषद् ” है। अथर्ववेदमें ब्रह्मज्ञानके अनेक सूक्त हैं।

उसी प्रकार सामवेदके इस आरण्यक-काण्डमें अध्यात्मका विषय आया है। इसके मंत्र यद्यपि ऋग्वेदके ही हैं, पर उनका आशय अध्यात्मकी दृष्टिसे देखना चाहिए।

इसमें अग्नि, इन्द्र, वायु, उषा आदि देवताओंके मंत्र हैं, ये विभिन्न देवता हैं, इनका अध्यात्मके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा कोई यदि समझे, अथवा ऐसा समझकर शंका भी करे, तो उसका निराकरण ऋग्वेदके निम्न मंत्रमें उत्तम रीतिसे किया गया है—

**एक सत्य वस्तु**

**इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः**

**अथो दिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान् ।**

**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**

**अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥**

( ऋ. १।१६४।४६; अथर्व. १।१०।२८ )

( एकं सत् ) सत्य वस्तु एक ही है, पर उस एक ही

सत्य वस्तुको ( विप्राः बहुधा वदन्ति ) ज्ञानीलोग अनेक नामोंसे पुकारते हैं, उसीका अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम, मातरिश्व आदि नामोंसे वर्णन करते हैं। अर्थात् अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, तथापि उन नामोंसे वर्णित की जानेवाली सद्वस्तु एक ही है। इस सिद्धान्तसे बहु-देवतावादका खण्डन होता है और एक-देवतावाद ( सब देवता मिलकर एक देवताका प्रतिपादन करते हैं ) की सिद्धि होती है।

इस आरण्यक काण्डका विचार करते हुए यह आवश्यक है कि हम अपनी दृष्टि एकात्मवाद पर ही केन्द्रित रखें। और इस दृष्टिसे ही इस काण्डका विचार करना चाहिए—

१ अथ तव व्रते वयं अ-दितये अनागसः स्याम ( ५८९ )— हे ईश्वर ! तेरे नियममें रहकर, हमारा विनाश न हो, इसलिए हम पापरहित हों। “ दिति ” का अर्थ है खण्डित होना, टुकड़े होना, विभक्त होना, और अदितिका अर्थ है, अखण्डित स्थिति, स्वतंत्रता अविनाश, मोक्षकी अवस्था। यह अवस्था पानेके लिए मैं पाप-रहित होऊँ। परमेश्वरका जो नियम है मनुष्योंकी उन्नतिके लिए उसने जो नियम निश्चित किए हैं, उन नियमोंका पालन करके हम उस पूर्णविस्थाको प्राप्त करें। मुक्त होनेका वर्णन यह मंत्र उत्तम रीतिसे करता है—

**बन्धन ढीले कर**

**१ उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय ।**

**मध्यमं पाशं अस्मत् वि श्रथाय ।**

**अधमं पाशं अस्मत् अव श्रथाय ।**

उत्तम, मध्यम और अधम ऐसे तीन बन्धनोंसे मनुष्य बांधा गया है। बुद्धि, मन और शरीर इन तीन स्थानोंमें ये बन्धन हैं। बुद्धिका बंधन अज्ञानसे है, मनका बन्धन विचारोंकी हीनताके कारण है और शरीरका बन्धन आचार हीनताके कारण है। बहुतसे मनुष्य इन बन्धनोंसे जकड़कर बांध दिये गए हैं। उत्तम सत्यज्ञान प्राप्त करके बुद्धिके पाशोंको ढीले करो, उत्तम विचारोंसे मनके और उत्तम आचारोंसे शरीरके बन्धन दूर करने चाहिए। ऐसा करनेसे तीनों पाशोंसे मनुष्य मुक्त हो सकता है।



२ त्वया भरे शश्वत् कृतं वयं चिनुयाम ( ५९० ) - हे ईश्वर ! तेरी सहायतासे हमेशा करने योग्य स्पर्धाओंमें हम अपने कर्तव्योंको सावधानीसे करें। प्रमाद न करें। मनुष्य इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ तबसे उसके जीवनमें स्पर्धा शुरु हुई, छोटीसी स्पर्धा ही विशाल स्पर्धा अर्थात् संग्रामका रूप धारण कर लेती है। यह स्पर्धा चालू ही है। इस स्पर्धामें अपना कर्तव्य न चूकते हुए विजयी होना ही मनुष्यका कर्तव्य है। पाश या बन्धन ढीले करनेके लिए इसकी आवश्यकता है।

३ वः अन्तमाः सुम्नेषु मदेम ( ६१० ) - हे ईश्वर ! तेरे पास रहकर तेरे द्वारा दिए गए सुखमें आनन्दसे हम रहें। मनुष्योंको देवोंके पास जाकर रहना चाहिए। देवोंके कौन-कौनसे गुण हैं उन्हें देखना चाहिए, और वे ही गुण अपने अन्दर बढ़ाकर देवोंके सान्निध्यमें आनन्दसे रहें। मनुष्योंकी उन्नति का यही साधन है।

देवोंमें देवोंकी स्तुति इसी लिए है कि उस स्तुतिमें जो देवोंके गुण वर्णित हैं, वे ही गुण उपासक अपनेमें बढ़ावें ! यह ही मनुष्योंकी उन्नति है। “ यत् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि ” ( शतपथ ब्राह्मण ) जो देव करते हैं उसीको मैं करूं। यह उन्नति का नियम है। देवोंकी जो स्तुति है उसका विचार करके, उसका मनन करके उपासक देवताओंके गुण अपने अन्दर अधिकसे अधिक किस तरह बढ़ावें, यह देखना चाहिए देवोंकी स्तुति मानवोंकी उन्नतिमें इस प्रकार सहायक होती है। प्रथम अपनेमें देवत्व लावें, फिर शुभ गुणोंसे उसकी वृद्धि करें। यही अनुष्ठान मनुष्यों द्वारा करना चाहिए।

### बुरे वचन न बोलना

सबसे पहले वाणीकी शुद्धता करनी चाहिए ! वह इस प्रकार है -

१ हे देवाः ! वः परिचक्ष्याणि वचांसि मा वोचं ( ६१० ) - हे देवो ! तुम्हें अच्छे न लगनेवाले वचनोंको मैं न बोलूं। यह रीति वाणीकी शुद्ध करनेकी है। वाणीकी शुद्धिसे बहुतसे काम सिद्ध हो जाते हैं।

### शुद्ध मार्गोंका ज्ञान

अपने आचरणके मार्ग शुद्ध और स्वच्छ होने चाहिए। इस विषयमें ये वेदवचन हैं -

१ हे मधवन् ! विदाः गातुं विदाः । दिशः अनु शंसिषः । पूर्वाणां शचीनां पते, पुरुवसो ! शिक्ष ।

( ६४१ ) - हे धनवान् इन्द्र ! तू सब मार्गोंको जाननेवाला है, उत्तम मार्ग कौनसा है, यह तू जानता है। हम कौनसी दिशासे जाएं इसका तू हमें उपदेश कर। हे आविशक्तिके स्वामी ! हे धनसम्पन्न प्रभो ! हमें उत्तम शिक्षा दे, और उत्तम मार्गसे हमें चला।

यह प्रार्थना उपासकोंको करनी चाहिए। ईश्वरके पास अनन्य भावनासे ही यह प्रार्थना करनी चाहिए। तब देवगण मार्गको बताते हैं। इस प्रकार निर्दोष मार्ग ध्यानमें आता है। उपासक स्वयं भी कौनसा मार्ग उत्तम है और कौनसा नहीं इसका विचार करके निश्चय करें।

### मुझे श्रेष्ठ होना है

मुझे महान् होना है, यह भावना मनमें होनी चाहिए। इस विषयमें उपदेश इस प्रकार है -

१ तत् नः मित्रो वरुणो मा महन्तां अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ( ५९० ) - “ इसके लिए मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक मुझे महान् करें। ” इसमें पृथ्वीसे लेकर द्युलोक तक, रहनेवाले सब देव भरे महान् होनेके काममें सहायक हों, यह प्रार्थना है। मनुष्यको यदि महान् होना है तो उसे इन सब देवोंकी सहायता अवश्य ही चाहिए। मनुष्यके शरीरमें ये सब देवताएं हैं। यदि एक भी देव प्रतिकूल होगा तो वह अवयव रोगी हो जाएगा और उसकी उन्नतिमें रुकावट आ जाएगी।

२ इमं एकं वृषणं कृणुत ( ५९१ ) - इसको अद्वितीय शक्तिमान् करो। अद्वितीय शक्तिवाला यदि मनुष्य हो जाए तो उसके महान् होनेमें कोई सन्देह ही नहीं।

३ हे प्रचेतन ! आभिः अभिष्टिभिः इषे द्युम्नाय प्रचेतय ( ६४२ ) - हे प्रेरक ईश्वर ! इस अपने संरक्षणसे अन्न व तेज प्राप्त करनेके लिए हमें प्रेरित कर, अर्थात् हम उत्तम मार्गसे जावें तथा अन्नवाले और तेजस्वीं होवें।

४ द्यावापृथिवी, इन्द्रा-बृहस्पती, भगस्य यशः मा विन्दतु ( ६११ ) द्यु, पृथ्वी, इन्द्र, बृहस्पति, और भग इन देवोंसे मुझे यश प्राप्त हो।

५ यशः मा प्रति मुञ्चतां ( ६११ ) यश मुझे छोड़कर दूर न जावे। हमेशा यश मुझे ही मिलता रहे, अर्थात् मैं सदा यशस्वी होऊं।

६ एना मानुषाणां विश्वानि द्युम्नानि अर्यः सिषा-सन्तः वनामहे ( ५९३ ) इसकी सहायतासे मनुष्योंके



पास रहनेवाले सब तेजोंको प्राप्त करके उसका उपभोग करनेकी इच्छावाले हम उत्तम तेज प्राप्त करें ।

७ अस्याः संसदः यशसा अहं प्रवदिता स्याम् ( ६११ )— इस संसदके यशसे मैं युक्त होऊँ और मैं इस सभामें उत्तम भाषण करनेवाला होऊँ ।

सब प्रकारसे मेरी उन्नति होकर मैं सभामें उत्तम प्रकारसे प्रभावशाली भाषण करनेवाला होऊँ, राष्ट्रमें ऐसा मान प्राप्त होना उन्नतिका लक्षण है ।

### पूर्णताकी प्रशंसा

जगत्में पूर्णताकी ही प्रशंसा होती है इसलिए कहा है कि—

१ पूर्तिः शस्यते नूनं शक्रः वशी ( ६४८ )— पूर्णता सदा प्रशंसित होती है, निश्चयसे जो शक्तिशाली है वह सभीको वशमें करके अपने अधीन करता है ।

२ शक्रः ईशो हि ( ६४६ )— सामर्थ्यवान् ही ईशान करता है । निर्बल शासन नहीं कर सकता इसीलिए कहा है ।

३ जेतारं अपराजितं ऊतये हवामहे ( ६४६ )— जो विजयी और अपराजित है उस वीरको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

४ वज्रिवः शविष्ठ ( ६४७ )— हे वज्रधारी बलवान् वीर ! हमारी सहायता कर ।

५ राये वाजाय क्रंजसे ( ६४३ )— धन और अन्नकी प्राप्ति करनेके लिए हमें तू समर्थ करता है ।

६ यः शूराणां शविष्ठः, वाजानां वाजपतिः, वशान् अनु क्रंजसे ( ६४४ )— जो शूरोमें अत्यधिक बलवान् है, जो बलिष्ठोंमें भी सबसे अधिक बलवान् है, वह अपने वशमें रहनेवालोंको सामर्थ्यवान् बनाता है ।

ऐसी ही शक्ति हमें भी प्राप्त हो, ऐसी इच्छा मनुष्योंको मनमें करनी चाहिए । सामर्थ्यशाली होनेसे धन मिलता है । इस धनके विषयमें निम्न वचन इस काण्डमें हैं ।

### धन

जिससे मनुष्य धन्य होता है, वह धन है । धनका अर्थ केवल रुपये ही नहीं है, अपितु घर, पुत्र, गाय, घोड़े आदि भी धन हैं । इनको पास रखनेसे मनुष्य धन्य होता है ।

१ नः सुम्ने आधेहि ( ६४८ )— हमें मुख देनेवाले धनमें स्थापित कर ।

२ धनस्य सातये जेतारं अपराजितं हवामहे

२७ ( साम. हिन्दी )

( ६४७ )— धनकी प्राप्तिके लिए विजयी और कभी भी पराजित न होनेवाले वीरको हम अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ।

३ राये सुवीर्यं विदाः ( ६४४ )— धन प्राप्त करनेके लिए उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति अपनेमें किस प्रकार लावें वह तू जानता है ।

४ राये वाजाय क्रंजसे ( ६४३ )— धन प्राप्त करनेके लिए हम बल प्राप्त करें, अतः तू हमें सहायता दे ।

५ नः ऊर्जे इषं च आसुव ( ६२७ )— हमें सामर्थ्य और अन्न दे ।

६ हे विरिणिन् ! तत् सहः ओजः न दद्धि । अस्य महतः ईशे । नः नृम्णं स्थविरं वाजः कृधि ( ६२५ )— हे बहुतसा धन पासमें रखनेवाले इन्द्र ! वह साहस और सामर्थ्य हमें दे । इस महान् सामर्थ्यका तू स्वामी है, तू हमको धन और महान् स्थायी बल दे ।

७ हिरण्यस्य, गवां, सत्यस्य ब्रह्मणः, यत् वर्चः, तेन मा संसृजामसि ( ६२४ )— सोता, गाय और सत्य ज्ञानका जो तेज है, उससे मुझे युक्त कर ।

८ अमितं योजनं अभि अप्रथेथाम् ( ६२२ )— अपरिमित धन योजनापूर्वक हमें दे ।

९ द्यावापृथिवी स्योने भवतं, ते नः अंहसः मुंचतम् ( ६२२ )— बुलोक और पृथ्वीलोक हमें सुख देनेवाले हों, और वे हमें पापसे बचावें ।

हम निष्पाप हों, अर्थात् हमारे पास धन आवे, उसी प्रकार बल और सामर्थ्य भी प्राप्त हो । धन आदि साधन मिलें तो भी आयुके रहनेपर ही उसका उपभोग किया जा सकता है, इसलिए आयुकी कामना हम करें, ऐसा कहा है—

### दीर्घ आयुष्य

१ अग्ने ! आयूंषि पवसे ( ६२७ )— हे अग्ने ! हमें दीर्घायु दे ।

२ यक्षपतौ अ-विह्रुतं आयुः दधत् ( ६२८ )— यज्ञ करनेवालेको उपद्रवरहित दीर्घ आयु दे । इस प्रकार आयु प्राप्त करें यह इच्छा इन वचनोंमें है ।

### संरक्षण

हमें धन, बल, तेज, दीर्घायु आदि प्राप्त हों और अपने लिए संरक्षण मिले यह मनुष्यकी इच्छा स्वाभाविक है । इस विषयमें निम्न वचन देखिये—



१ उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः वाजेषु सहस्रप्रधनेषु नः अव ( ५९८ )- तू महान् वीर है, इसलिए अपने उत्तम संरक्षणोंसे छोटे और बड़े युद्धोंमें हमारा संरक्षण कर ।

२ वातजूतः ( सूर्यः ) त्मना प्रजाः अभिरक्षाति, पिपति बहुधा विराजति ( ६२८ )- वायुके साथ सूर्य स्वयं ही सब प्रजाओंका संरक्षण करता है, सभी अन्नोंको पूर्ण करता है, और उन्हें विशेष रीतिसे प्रकाशित करता है ।

३ सूर्यः जगतः तस्थुषः आत्मा ( ६२९ )- सूर्य इस स्थावर और जंगम जगत्का राजा है ।

४ सूर्यः तरणिः विश्वदर्शितः ज्योतिष्कृत् असि विश्वं रोचनं आभासि ( ६३५ )- सूर्य सबको तारनेवाला, सब देखनेवाला, प्रकाश करनेवाला और संरक्षण करनेवाला है । सब विश्वको वह प्रकाशित करता है ।

### युद्ध

यदि संरक्षण करना है तो शत्रुके साथ युद्ध करके शत्रुको पराजित करना ही पड़ता है । उसके बिना उत्तम संरक्षण हो ही नहीं सकता । इसलिए युद्ध करना आवश्यक ही है । इस युद्धके सम्बन्धमें निम्न वचन हैं—

१ सः नः द्विषः सु अर्षत् ( ६४६ )- वह हमारे शत्रुओंको दूर करता है ।

२ वृत्रेषु शत्रून् सहना कृधि ( ६२५ )- युद्धमें शत्रुओंको अपने बलसे पराजित कर ।

३ अहिं अहन् ( ६१२ )- शत्रुको तूने मारा ।

४ हे अपूर्व्य मघवन् ! वृत्रहत्याय जायथाः ( ६०१ )- हे अद्वितीय धनवान् इन्द्र ! तू वृत्रको मारनेके लिए उत्पन्न हुआ है ।

इस प्रकार शत्रुसे युद्ध करना अत्यावश्यक है, उसको किए बिना प्रजाका संरक्षण हो ही नहीं सकता । युद्धमें उत्तम वीर होने चाहिए । वे वीर कैसे हों यह इन्द्र देवताके वर्णनके द्वारा दिखाया है । इसलिए इन्द्र देवताका वर्णन यहां देखें—

### देवोंके गुण

देवोंमें विशेष सामर्थ्य होता है, इसी सामर्थ्यके कारण उनको देवत्व प्राप्त हुआ है । उन देवोंके गुण देखिए—

१ वज्रहस्त ( ५८६ )- हाथोंमें वज्र धारण करनेवाला इन्द्र ।

२ इन्द्रः वज्री क्षिरण्ययः ( ५९७ )- इन्द्र वज्र धारण करता है और वह सोनेके आभूषण भी धारण करता है ।

३ अभिमातिषाहः ( ६०३ )- वह शत्रुओंका पराभव करनेवाला है ।

४ वज्री यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार, जु प्रवोचं ( ६१२ )- वज्रधारी इन्द्रने प्रथम जो पराक्रम किया उसका मैं वर्णन करता हूँ ।

५ इन्द्रः जगतः चर्षणीनां राजा ( ५८७ )-

६ अधिक्षमा विषुरूपं यत् अस्ति ( ५८७ )-

७ दाशुये वसूनि ददाति ( ५८७ )-

८ उपस्तुतं राधः अर्वाक् चोदत् ( ५८७ )-

इन्द्र स्थावर जंगम और सब मनुष्योंका राजा है । इस पृथ्वीपर अनेक रंगरूपवाले जो कुछ भी पदार्थ हैं, उनका भी वही राजा है । दानशीलको वह अनेक प्रकारके धन देता है । जो उसकी स्तुति करता है, उसके पास वह धन भेजता है ।

९ ज्येष्ठं ओजिष्ठं पपुरि श्रवः नः आभर ( ५८६ )- श्रेष्ठ, बलवर्धक और पूर्णता करनेवाले यश और अन्न हमें भरपूर दे ।

१० परमेष्ठीः प्रजापतिः मयि वर्चः अथो यशः पयः दंहतु ( ६०२ )- परमेष्ठी प्रजापति मुझे तेज, यश और दूध देवे ।

११ हे अग्ने ! नः पयसा रयिं दशे वर्चः अदाः ( ६१५ )- हे अग्ने ! हमें दूधके साथ धन और तेज दे । हमें अन्न और तेज दे ।

१२ द्यावापृथिवी सुभोजसौ ( ६२२ )- द्युलोक पृथ्वीलोक हमें उत्तम भोजन दें ।

१३ वरिवोचित् ( ५९२ )- धन अपने पास रखनेवाला ।

१४ रत्नधातमं अग्निं ईडे ( ६०५ )- रत्न देनेवाले अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ।

ये देवताओंके गुण हैं । उन्हें देखें और उन गुणोंको अपने अन्दर बढ़ानेका उपाय करें और देवत्वसे युक्त हों ।

### सभी समय उत्तम हैं

प्रायः लोग समयको दोष देते हैं, पर सभी समय उत्तम हैं—

१ वसन्तः, ग्रीष्मः, वर्षाणि, शरदः, हेमन्तः, शिशिरः रन्त्यः ( ६१६ )- ये सभी ऋतुयें रमणीय हैं, सुख देनेवाली हैं, इसलिए समयको दोष देना ठीक नहीं । अपने प्रयत्नमें दोष होते हैं, उन प्रयत्नोंको यथायोग्य करना चाहिए । इसीलिए वेदोंमें मनुष्यको “ ऋतु ” कहा गया



है। मानवी जीवन क्रतुरूप-यज्ञरूप होता चाहिए। इस उद्देश्यसे कहा है—

### क्रतु

२ सः क्रतुः छन्दः क्रतं बृहत् ( ६४६ )- वह कर्म करनेवाला है, उसका पुरुषार्थ करनेका स्वभाव है, वह सत्य-निष्ठ और सरल व्यवहार करनेवाला है, इस कारण वह महान् है। ये चार शब्द बहुत ही महत्त्वके होनेके कारण इनके अर्थ आगे दिए जाते हैं—

क्रतुः- निश्चय, शक्ति, बुद्धि, यज्ञ, अन्तःप्रकाश, प्रज्ञा।

छन्दः- आनन्द, इच्छा, निश्चय, तत्परता।

क्रतं- योग्य, सत्य, सामर्थ्य, शूर, पूज्य, तेजस्वी, नियम।

बृहत्- उच्च, महान्, बहुत, सामर्थ्यवान्।

इस प्रकार इनके अनेक उत्तम अर्थ हैं, और वे अर्थ साधकोंको मार्ग दिखाते हैं।

### अन्न

अन्नका यज्ञ किया जाता है। ये अन्न देवोंके पहले भी उत्पन्न हुए—

१ देवेभ्यः पूर्वं अहं अमृतस्य क्रतस्य प्रथमजा अस्मि ( ५९४ )- देवोंके पहले, अमरत्व देनेवाले यज्ञके पूर्व मैं अन्न उत्पन्न हुआ। पहले अन्न उत्पन्न हुए और उसके बाद उसे खानेवाले उत्पन्न हुए। घास पहले पैदा हुई और घास खानेवाले पशु बादमें उत्पन्न हुए। फलके वृक्ष पहले पैदा हुए और फल खानेवाले मनुष्य पीछेसे पैदा हुए।

### गायोंमें दूध

१ कृष्णासु रोहिणीषु परुष्णीषु रुशत् पयः अधारयः ( ५९५ )- काली, लाल और अनेक रंगके गायोंमें तेजस्वी दूधको तूने स्थापित किया। यह देवोंका महान् सामर्थ्य है।

२ सहक्रवभाः सहवत्साः द्यूध्नीः विश्वा रूपाणि विभ्रतीः उदेत ( ६२६ )- बेलोंके साथ रहनेवाली, बछड़ोंके साथ रहनेवाली, दुग्ने बडे थनोंवाली अनेक रंगकी गायें हमारे पास आवें।

### दानका महत्त्व

अन्न उत्पन्न हुआ, दूध मिलने लगा, और उससे यज्ञ होने शुरू हुए। तब दानका महत्त्व समझमें आया। उसके संबन्धमें वचन इस प्रकार हैं—

\*

१ यः मां ददाति स आवत् अन्नं अदन्तं अहं अन्नं अग्नि ( ५९४ )- ‘ जो मुझ अन्नको दानरूपसे दूसरोंको देता है, उसका संरक्षण होता है, पर जो दान न देता हुआ अन्नको स्वयं ही खाता है उस कंजूस मनुष्यको मैं स्वयं अन्न ही खा जाता हूँ, अर्थात् पहले अन्नका दान करें फिर स्वयं अन्न खावें।

### सच्चा मित्र

१ सखा सुशेवः अद्वयुः ( ६४९ )- वह ही सच्चा मित्र है, जो उत्तम सेवाके योग्य और दोहरा व्यवहार नहीं करता। अन्तरसे दूसरा और बाहरसे दूसरा जो व्यवहार करता है वह सच्चा मित्र नहीं।

### कल्याण करनेवाली रात्री

१ भद्रा युवातिः रात्री प्रागात्, अह्नः केतून् सं ईत्सति, विश्वस्य जगतः निवेशनी रात्री भद्रा अभूत् ( ६०८ )- कल्याण करनेवाली रात्रीरूपी स्त्री आ गई है। वह दिनके प्रकाशको रोकती है। सब जगत्को विश्राम देनेवाली यह रात्री निश्चयसे लोगोंका हित करनेवाली है।

### कुत्तोंको दूर करो

१ दुच्छुनां आरे बाधस्व ( ६२७ )- दुष्ट कुत्तोंको दूर कर। दुष्टोंको दूर कर। दुष्ट हमारे काममें विघ्न न पैदा करें ऐसा कर।

### घोडे

देवोंके रथमें घोडे जुते होते हैं। उसका वर्णन उस प्रकार है—

१ इन्द्र इत् हर्योः सच्चा आ संमिश्रः वचोयुजा ( ५९७ )- इन्द्र ही घोडोंका सच्चा मित्र है और उन घोडोंको अपने रथमें जोड़नेवाला है। वे घोडे कहने मात्रसे ही रथमें जुड़ जानेवाले हैं। इतने वे शिक्षित हैं। इस प्रकार घोडोंको सिखाकर सुशिक्षित करना चाहिए।

२ वायो । नियुत्वान् आगाहि ( ६०० )- हे वायो ! तू अपने नियुत नामके घोडोंको अपने रथमें जोड़कर उनसे आ।

यहां वायुके घोडोंको नियुत कहा है। “नियुत” इस शब्दका अर्थ ही, रथमें उत्तम प्रकारसे जोड़े जानेवाले, है।

३ शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त, रथस्य नप्यः ( ६३९ )-

४ सप्त हरितः शोचिष्केशं त्वा रथे वहन्ति ( ६४० )- पवित्रता करनेवाले सात घोडे, पवित्रता करनेवाली सात किरणें जिसकी हैं, ऐसे तुझे रथसे ले जाते हैं।

यह सूर्यका विशेषण “शोचिष्केशं” दिया है। सूर्यकी किरणें शुद्धता करनेवाली होती हैं। सात घोडे ये किरणोंके



सात रंग हैं। अर्थात् सात घोड़े व घोड़ियां आलंकारिक हैं। वायु और इन्द्रके घोड़ोंका प्रयोग आलंकारिक है। वायु रथमें बैठता है, इन्द्र और सूर्य रथमें बैठते हैं यह भी सब आलंकारिक है। सच्चे घोड़ेका यहां कोई सम्बन्ध नहीं है।

### नक्षत्र

जिस प्रकार चोर रात्रीमें घूँसते हैं और दिनमें छिप जाते हैं, उसी प्रकार तारे रात्रीके समय आकाशमें घूमकते हैं और दिनमें सूर्यके आते ही छिप जाते हैं। इसका वर्णन देखिए—

१ नक्षत्रा अकृतुभिः अपथन्ति यथा त्ये तायवः ( ६३३ )— जिस प्रकार चोर रात्रीके समाप्त होनेके साथ साथ विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार नक्षत्र रात्रीके साथ साथ छिप जाते हैं, यह उपमा आलंकारका एक उत्तम उदाहरण है।

### मोक्ष

मनुष्य जो कुछ भी प्रयत्न करता है वह बंधनसे छूटनेके लिए ही करता है। सभी आध्यात्मिक ज्ञान, जो अवतक कहा है, बन्धनसे निवृत्ति और मोक्ष प्राप्तिके लिए ही है। इस विषयमें कहा है—

१ अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व ( ६०३ )— अमरत्व प्राप्त करनेके लिए उच्चस्थिति प्राप्त करते हुए झुलोकसे उत्तम अन्न प्राप्त कर। स्वर्गसे उत्तम उपभोग प्राप्त कर।

अमरता प्राप्तिकी इच्छासे जो अनुष्ठान किया जाता है, उन्हें करते हुए मनुष्यकी उन्नति होती रहती है और उसे उन्नतिके मार्गमें स्वर्गके भोग मिलनेसे आनन्द प्राप्त होता रहता है। यह इस अनुष्ठानके करनेवालेको प्रत्यक्ष अनुभव होता है। इस अनुष्ठानका साधक पृथ्वीपर रहते हुए भी उसका मन दिव्य आनन्दका लाभ उठाता है। इसे झुलोकमें जानेकी जरूरत नहीं। उसे यहीं दिव्यसुखकी प्राप्ति होती है और वह सदा आनन्द प्रसन्न रहता है।

### ऋषिका कार्य

१ कवयः पुरुषासः त्वा स्तुवन्ति ( ६२३ )— कवि देवोंकी स्तुति करते हैं। यह स्तुति मनुष्योंकी उन्नतिका मार्ग दिखाती है। इसलिए स्तुतिकी साधक सावधानीसे करे और उसमें अर्थ और गूढार्थको अपने ध्यानमें लावे।

२ ते गोनां नाम प्रथमं अमन्वत। त्रिः सप्त परमं

नाम जानन् ( ६०६ )— इन ऋषियोंने वाणीके शब्दोंका प्रथम विचार करके स्तुति करने योग्य है ऐसा समझा। यह स्तुति इक्कीस छन्दोंमें हो सकती है, इस प्रकार उस ऋषिने अनुभव किया।

भाषाके शब्दोंमें गूढ़ अर्थ हैं और उन शब्दोंसे इक्कीस छन्दोंमें स्तोत्र बनते हैं। इस प्रकारका महान् ज्ञान ऋषिको हुआ, यह ज्ञान होनेके बाद अनेक छन्दोंमें स्तोत्र बनाये और मंत्र प्रकट हुए। उन मंत्रोंमें अध्यात्म-विद्या प्रकट हुई, उसे देखनेके लिए मानवजाति उत्पन्न हुई। मानवोंकी कृत-कृत्यता इस ज्ञानसे हुई।

### वैश्वानरकी कल्पना

वैश्वानर, विश्वकृष्टि, सब मनुष्य अथवा पृथ्वीके सब मनुष्य मिलकर एक “ पुरुष ” है, पृथ्वीके सब मनुष्य एक विशाल “ शरीर ” है। इतनी एकता मनुष्य समाजमें होनी चाहिए, यह ध्येय वेदने इस स्थानपर कहा है। वह मंत्र यहां देखिए—

१ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रक्षः सहस्रपात् । स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ( ६१७ ) — “ हजारों सिर, हजारों आँख और हजारों पैरोंवाला एक पुरुष है। वह पृथ्वीके चारों ओर व्याप्त है, वस इन्द्रियोंसे ज्ञात होनेवाले जगत्को व्याप रहा है।

पृथ्वीपर आज लगभग २०० करोड़ मनुष्य हैं। सम्पूर्ण मनुष्योंका मानव समाज रूपी एक शरीर है। उस शरीरके २०० करोड़ मस्तक, चारसौ करोड़ पैर, चारसौ करोड़ आँखें आदि हैं। यह पृथ्वीपर चारों ओर है। ये दो सौ करोड़ मनुष्य परस्पर मिलकर शरीरमें अवयवोंके समान एकताका बर्ताव करें। एक शरीरमें जिस प्रकार सिर, हाथ, पेट और पाँव सब एक दूसरेकी मदद करते हुए सुखसे रहते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य एकतासे रहते हुए अपनी उन्नति करें इस सन्देशको व्यवहारमें लानेके लिए सब मिलकर प्रयत्न करें, इसकी यहां सूचना दी है।

### सुभाषित

१ ज्येष्ठं ओजिष्ठं पपुरि श्रवः नः आभर ( ५८६ )— श्रेष्ठ और बल बढ़ानेवाले, तृप्त करनेवाले अन्न हमें भरपूर वे।

२ इन्द्रः जगतः चर्षणीनां राजा ( ५८७ )— इन्द्र-प्रभु-चलनेवाले प्राणियों और मानवोंका राजा है।

३ अधिक्षमा विश्वरूपं यत्, अस्य राजा ( ५८७ )



- इस पृथ्वीपर अनेक रूपवाले जो कुछ भी पदार्थ हैं उनका भी वही राजा है ।

४ दाशुषे वसूनि ददाति ( ५८७ )- दानशील मनुष्यको वह राजा धन देता है ।

५ उपस्तुतं राधः अर्वाक् चोदत् ( ५८७ )- ईश्वरकी स्तुति करनेवालेको वह धन मिलता है ।

६ यस्य रजोयुजः इन्द्रस्य इदं बृहत् रन्त्यं स्वः तुजे जने वनम् ( ५८८ )- इस तेजस्वी इन्द्रके ये महान् रमणीय धन दानी और प्रेरणा करनेवाले लोगोंमें प्रशंसनीय हैं ।

७ वरुणः ! उत्तमं, अधमं, मध्यमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय ( ५८९ )- हे वरुण ! उत्तम, अधम और मध्यम बन्धनोंको हमसे दूर कर ।

८ तव व्रते वयं अ-दितये अनागसः स्याम ( ५८९ )- तेरे नियममें रहते हुए हम स्वतंत्रता प्राप्तिके लिए निष्पाप होंगे ।

९ पवमानेन त्वया भरे शश्वत् कृतं वयं विचि-  
नुयाम ( ५९० )- पवित्र रहनेवाले तेरी सहायतासे हमेशा  
किए जानेवाले कर्तव्य हम सावधानीसे करते रहें ।

१० तत् मा महन्तां ( ५९० )- उसकी सहायतासे मुझे  
महानता प्राप्त हो ।

११ इमं एकं वृषणं कृणुत ( ५९१ )- इस एकको तुम  
बलवान् करो ।

१२ एना मानुषाणां विश्वानि द्युम्नानि अर्थः,  
सिंघासन्तः, वनामहे ( ५९२ )- इसकी सहायतासे मनुष्यों  
द्वारा इच्छित धनोंके पास जाकर उसके उपभोग करनेकी  
इच्छा करनेवाले हम उस धनको प्राप्त करते हैं ।

१३ अमृतस्य ऋतस्य प्रथमजा अस्मि ( ५९४ )-  
अमर यज्ञके पहले अन्न उत्पन्न हुआ, मैं भी यज्ञके पहले  
उत्पन्न हुआ, अतः मैं इस अन्नका यज्ञ करता हूँ ।

१४ यः मां ददाति स आवत् ( ५९४ )- जो इस  
अन्नका दान करता है, वह सबका संरक्षण करता है ।

१५ अन्नं अदन्तं अहं अन्नं अग्नि ( ५९४ )- जो  
अन्नका दान न करके स्वयं खाता है, उसे मैं अन्न स्वयं खा  
जाता हूँ ।

१६ हे इन्द्र ! कृष्णासु, रोहिणीषु, परुष्णीषु रुशत्  
पयः आधारयः ( ५९५ )- हे इन्द्र ! तू काली, लाल और  
अनेक रंगकी गायोंमें तेजस्वी दूध स्थापित करता है ।

१७ उपसः अग्रियः पृश्निः अरुरुचत् ( ५९६ )-  
उषःकालके बाद उगनेवाला सूर्य प्रकाशने लगता है ।

१८ भुवनेषु वाजयुः ( ५९६ )- प्राणियोंमें अन्न खानेकी  
इच्छा होती है ।

१९ मायाविनः अस्य मायया ममिरे ( ५९६ )-  
कुशल लोग अपनी कुशलतासे पदार्थोंका निर्माण करते हैं ।

२० उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः वाजेषु सहस्रप्रधनेषु  
च नः अव ( ५९८ )- तू शूर है, इसलिए अपने विशेष  
संरक्षणोंसे छोटे और महान् युद्धोंमें हमारा संरक्षण कर ।

२१ परमेष्ठी प्रजापतिः मयि वर्चः, यशः, पयः  
दंहतु ( ६०२ )- परमेश्वर मुझे तेज, बल, यश और दूध  
भरपूर देवे ।

२२ अभिमातिषाहः ते पयांसि वाजाः वृष्ण्यानि  
सं यन्तु ( ६०३ )- तू शत्रुका पराभव करनेवाला है, इस  
लिए तुझे दूध, अन्न और बलकी प्राप्ति हो ।

२३ अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि  
धिष्व ( ६०३ )- मोक्ष प्राप्तिके लिए तू अपनी उन्नति करते  
हुए धुलोकमें उत्तम यश प्राप्त कर ।

२४ त्वं तमः ज्योतिषा वि ववर्थ ( ६०४ )- तू  
अन्धकारका तेजसे नाश करता है ।

२५ पुरोहितं, यज्ञस्य देवं, ऋत्विजं, होतारं, रत्न-  
धातमं अग्नि ईडे ( ६०५ )- आगे रहनेवाले, यज्ञके प्रवर्तक,  
ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाले, देवोंको अपने साथ लाने-  
वाले और उपासकोंको रत्न देनेवाले अग्रणीकी मैं स्तुति  
करता हूँ ।

२६ भद्रा युवतिः रात्री प्रागात् ( ६०८ )- कल्याण  
करनेवाली रात्रीरूपी स्त्री आ गई ।

२७ विश्वस्य जगतः निवेशनी रात्री भद्रा अभूत्  
( ६०८ )- सब जगत्को आराम देनेवाली रात्री सबका  
कल्याण करनेवाली है ।

२८ प्रक्षस्य वृष्णः अरुषस्य महः नः वचः ( ६०९ )  
- व्यापक, बलवान्, तेजस्वी और महान् देवकी मैं स्तुति  
करता हूँ ।

२९ वैश्वानराय शुचिः चारुः मतिः ( ६०९ )-  
सब मनुष्योंके हित करनेवालेकी शुद्ध और सुन्दर स्तुति की  
जाती है ।

३० हे देवाः ! वः परिचक्ष्याणि वचांसि मा वोचं  
( ६१० )- हे देवो ! तुम्हारे न सुननेके योग्य वाणीको मैं  
न बोलूँ ।

३१ वः अन्तमाः सुम्नेषु इत् मदेम ( ६१० )-



तुम्हारे पास रह करके तुम्हारे द्वारा दिए गए सुखमें हम आनन्दसे रहें ।

३२ यशः मा प्रति मुच्यतां ( ६११ )- यश मुझे छोड़कर दूर न जावे । मुझे यश मिलता रहे ।

३३ अस्याः संसदः यशसा अहं प्रवदिता स्याम् ( ६११ )- इस सभामें मैं तेजस्वितासे बोलनेवाला होऊं ।

३४ वर्ज्या यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार, प्रवोचम् ( ६१२ )- वज्रधारी इन्द्रने जो महान् पराक्रम किए उनका मैं वर्णन करता हूँ ।

३५ जन्मना जातवेदाः अग्निः अस्मि ( ६१३ )- जन्मसे ही मैं सर्वज्ञ और अग्रणी हूँ ।

३६ हे वसुवित् अग्ने ! नः पयसा रयिं दशे वर्चः अदाः ( ६१५ )- हे धनवान् अग्ने ! हमें दूधके साथ धन और दर्शनीय तेज दे ।

३७ वसन्तः, ग्रीष्मः, वर्षाणि, शरदः, हेमन्तः, शिशिरः, रन्त्यः, ( ६१६ )- वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ये ऋतुयें रमणीय हैं ।

३८ सहस्रशोर्पा, सहस्राक्षः, सहस्रपात्, पुरुषः, स भूमिं विश्वतो वृत्वा दशांगुलं अत्यतिष्ठत् ( ६१७ )- हजारों सिर, हजारों आंखें, हजारों पांववाला एक पुरुष है, वह सब पृथ्वीपर चारों ओर व्याप्त होकर दस अंगुलियोंके समान इस विश्वको व्याप्त करके रह रहा है ।

३९ त्रिपाद् पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत् ( ६१८ )- तीन भागोंवाला यह पुरुष ऊपर स्वर्ग स्थानमें रह रहा है ।

४० अस्य पादः इह पुनः अभवत् ( ६१८ )- इसका एक भाग इस जगत्में बार-बार पैदा होता है ।

४१ ततः अशन-अनशने अभि विष्वङ् व्यक्रामत् ( ६१८ )- बादमें अन्न खानेवाले और न खानेवाले ऐसे विविध रूपोंसे चारों ओर प्रकट होता है ।

४२ यत् भूतं यत् च भाव्यं इदं सर्वं पुरुष पय ( ६१९ )- जो उत्पन्न हो चुका और जो होनेवाला है वह सब यह पुरुष ही है ।

४३ सर्वा भूतानि अस्य पादः ( ६१९ )- सारे उत्पन्न हुए प्राणी इसके चौथे ही हिस्से हैं ।

४४ अस्य तावान् महिमा ( ६२० )- इसकी ऐसी महिमा है ।

४५ अमृतत्वस्य ईशानः ( ६२० )- अमरताका वह स्वामी है ।

४६ ततः विराट् अजायत ( ६२१ )- इस पुरुषसे विराट् पुरुष हुआ ।

४७ विराजः अधि पूरुषः ( ६२१ )- विराट् पुरुषका अधिष्ठाता एक पुरुष है ।

४८ स जातः अत्यरिच्यत, भूमिं पश्चात्, पुरः ( ६२१ )- वह उत्पन्न हुए प्राणियोंसे श्रेष्ठ था, पहले भूमि, बादमें भूमिपर उत्पन्न हुए दूसरे पदार्थोंके रूपसे वह प्रकट हुआ ।

४९ हे द्यावापृथिवी ! वां सुभोजसौ ( ६२२ )- हे धु और पृथ्वी लोको ! तुम ही उत्तम भोजन देनेवाले हो ।

५० हे द्यावापृथिवी ! स्योने भवतं ( ६२२ )- हे द्यावापृथिवी ! तुम हमारे लिए सुख देनेवाले होवो ।

५१ ते नः अंहसः मुंचतम् ( ६२२ )- तुम हमें पापोंसे छुड़ावो,

५२ अमितं योजनं अभि अप्रथेथां ( ६२२ )- हमें अपरिमित धन योजनापूर्वक दो ।

५३ वनर्गवः कवयः पुरुषासः त्वा स्तुवन्ति ( ६२३ )- गाय पालनेवाले जानी जन तुझ इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

५४ हिरण्यस्य, गवां, सत्यस्य ब्रह्मणः यत् वर्चः, तेन मां संसृजामसि ( ६२४ )- सोना, गाय और सत्य-ज्ञान इनमें जो तेज है उस तेजसे मुझे युक्त कर ।

५५ हे विरिञ्चिन् ! सहः ओजः नः दद्धि ( ६२५ )- हे बहुत धनवान् ! हमें सामर्थ्य और बल दे ।

५६ अस्य महतः ईशे ( ६२५ )- इस महान् बलका तू स्वामी है ।

५७ नः नृम्णं स्थविरं वाजं कृधि ( ६२५ )- हमारे लिए धन और स्थायी महान् बल दे ।

५८ वृत्रेषु शत्रून् सहना कृधि ( ६२५ )- संग्राममें शत्रुओंको पैरोंसे कुचलनेका सामर्थ्य हमें दे ।

५९ सह-ऋषभाः सहवत्साः द्व्यूधनीः उदैत ( ६२६ )- बलोंके साथ रहनेवालीं, बछड़ोंके साथ आनन्दित, दुगुने बड़े दुग्धाशयवालीं गायें हमारे पास आवें ।

६० उरुः पृथुः अयं लोकः ( ६२६ )- यह भूलोक तुम्हारे लिए महान् और विस्तृत हो ।

६१ अग्ने ! आयूषि पवसे ( ६२७ )- हे अग्ने ! तू हमें दीर्घ आयु दे ।

६२ नः ऊर्जं इषं च आसुव ( ६२७ )- हमें बल और अन्न दे ।

६३ दुच्छुनां आरे बाधस्व ( ६२७ )- दुष्टोंको दूर कर ।



६४ यज्ञपतौ अविहंसतं आयुः दधत् ( ६२८ )-  
यजमानको उपद्रवरहित आयु दे ।

६५ प्रजाः अभिरक्षति, पिपर्ति ( ६२९ )- वह  
प्रजाओंका संरक्षण करता है । और अन्नको पूर्ण करता है ।

६६ सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा ( ६२९ )- सूर्य  
स्थावर और जंगम जगत्का आत्मा है ।

६७ महिषः दिवं व्यख्यत् ( ६३१ )- यह महान्  
सूर्य द्यूलोकको प्रकाशित करता है ।

६८ यथा त्ये तायवः, विश्वचक्षसे सूराय, नक्षत्रा  
अक्तुभिः अपयन्ति ( ६३३ )- जैसे चोर दिनमें छिप  
जाते हैं, उसी तरह सबको प्रकाश देनेवाले सूर्यके उदय होते  
ही तारे रात्रीके साथ विलीन हो जाते हैं ।

६९ अस्य केतवः रश्मयः जनान् अनु व्यदृश्यन्  
( ६३४ )- इस सूर्यकी किरणें लोगोंको देखती हैं । लोगोंका  
निरीक्षण करती हैं ।

७० तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत् असि ( ६३५ )  
- तू सबको तारनेवाला, सबोंसे देखने योग्य और प्रकाश  
करनेवाला है ।

७१ विश्वं रोचनं आभासि ( ६३५ )- सब तेजस्वी  
पदार्थोंको तू प्रकाशित करता है ।

७२ मानुषान् विश्वं स्वर्दशे प्रत्यङ् उदेधि ( ६३६ )  
- मनुष्योंके आगे सब विश्व दीखे इसलिए तू उदय होता है ।

७३ मघवन ! विदाः ( ६४१ )- हे धनवान् परमात्मन् !  
तू सब कुछ जाननेवाला है ।

७४ गातुं विदाः ( ६४१ )- तू उत्तम मार्गोंको जानता है ।

७५ दिशः अनु संशिषः ( ६४१ )- हम कौनसी  
दिशासे जाए यह बता ।

७६ पूर्वानां शचीनां पते ! पुरुवसो ! शिक्ष ( ६४१ )  
- हे आदिशक्तिके स्वामी ! धनवान् ! हमें ज्ञान दे ।

७७ प्रचेतन ! आभिः अभिष्टिभिः इषे द्युम्नाय प्र  
चेतय ( ६४२ )- हे चेतना देनेवाले देवो ! इन संरक्षणोंसे अन्न  
और तेज प्राप्त करनेके लिए हमें उत्तम मार्गसे प्रेरित करो ।

७८ मंहिष्ठः वज्रिवः ! शक्रः एव हि ( ६४३ )- हे  
महान् वज्रधारी इन्द्र ! तू सामर्थ्यवान् है ।

७९ हे शविष्ठ ! महे वाजाय ऋज्जसे ( ६४३ )-  
हे बलवान् ! महान् धन और बल प्राप्त करनेके लिए हमें  
समर्थ कर ।

८० ऋज्जसे ( ६४३ )- तू सामर्थ्यशाली बनाता है ।

८१ राये सुवीर्यं विदाः ( ६४४ )- धन प्राप्त करनेके  
लिए उत्तम सामर्थ्य किस प्रकार प्राप्त करें, यह जानता है ।

८२ शूराणां शविष्ठः ( ६४४ )- शूरोमें तू सबसे अधिक  
शूर है ।

८३ वाजानां पतिः ( ६४४ )- तू बलोंका स्वामी है ।

८४ वशान् अनु ऋज्जसे ( ६४४ )- अपने अनुकूल  
रहनेवालोंको तू सामर्थ्यशाली बनाता है ।

८५ मघोनां महिष्ठः ( ६४५ )- महान् धनवानोंसे भी  
तू अधिक धनवान् है ।

८६ अंशुः न शोचिः ( ६४५ )- सूर्यके समान तू  
प्रकाशमान् है ।

८७ नः विदे अभिनय ( ६४५ )- हमें ज्ञान प्राप्त  
करनेके लिए तू उत्तम मार्गसे ले जा ।

८८ शक्रः ईशे ( ६४६ )- जो सामर्थ्यशाली होता है,  
वह स्वामी होता है ।

८९ ऊतये जेतारं अपराजितं हवामहे ( ६४६ )-  
संरक्षणके लिए विजयी और अपराजित वीरको हम बुलाते हैं ।

९० सः नः द्विषः अर्षत् ( ६४६ )- वह हमारे  
शत्रुओंको दूर करता है ।

९१ सः क्रतुः छन्दः क्रतं बृहत् ( ६४६ )- वह  
कर्म करनेवाला, रक्षक सत्यनिष्ठ और महान् है ।

९२ धनस्य सातये अपराजितं जेतारं इन्द्रं हवामहे  
( ६४७ )- धनकी प्राप्तिके लिए अपराजित और विजयी  
इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

९३ पूर्तिः शस्यते ( ६४८ ) पूर्णता करनेकी शक्तिकी  
प्रशंसा होती है ।

९४ शक्रः वशी ( ६४८ )- सामर्थ्यवान् सबको वशमें  
करता है ।

९५ यः सखा सुशेवः अद्रयुः ( ६४९ )- जो उत्तम  
मित्र, उत्तम प्रकारसे सेवाके योग्य तथा दोगला व्यवहार न  
करनेवाला है, वह उत्तम होता है ।

### उपमा

१ दिवि द्यां इव ( ६०२ )- जिस प्रकार द्यूलोकमें  
तेज है, उसी प्रकार ( यज्ञस्य पयः ) यज्ञका दूध होता है ।

२ यथा त्ये तायवः ( ६३३ )- जैसे चोर दिनमें भाग  
जाते हैं, उसी प्रकार ( नक्षत्रा अक्तुभिः अपयन्ति )  
तारे रातके साथ छिप जाते हैं, दिनमें दीखते नहीं ।

३ यथा भ्राजन्तः अग्नयः ( ६३४ )- जिस प्रकार  
तेजस्वी अग्नि जलती है, उसी प्रकार ( अस्य केतवः  
रश्मयः ) इस सूर्यकी किरणें चमकती हैं ।

इस आरण्य-काण्डमें इतनी ही उपमायें हैं ।



## आरण्यकाण्डान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                             | देवता           | छन्दः      |
|-------------|--------------|----------------------------------|-----------------|------------|
| ( १ )       |              |                                  |                 |            |
| ५८६         | ६।४६।५       | शंयुर्बाह्रस्पत्यः ( भरद्वाजः )  | इन्द्रः         | बृहती      |
| ५८७         | ७।२७।३       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः             | "               | त्रिष्टुप् |
| ५८८         | —            | वामदेवो गौतमः                    | "               | गायत्री    |
| ५८९         | १।१४।१५      | शुनःशेष आजीगतिः कृत्रिमो देवरातो |                 |            |
|             |              | वैश्वामित्रो वा                  | वरुणः           | त्रिष्टुप् |
| ५९०         | ९।९७।५८      | कुत्स आंगिरसः ( गृत्समदः )       | पवमानः सोमः     | "          |
| ५९१         | —            | वामदेवो गौतमः                    | विश्वेदेवाः     | एकपादजगती  |
| ५९२         | ९।३१।१२      | अमहीयुरांगिरसः                   | पवमानः सोमः     | गायत्री    |
| ५९३         | ९।६१।११      | अमहीयुरांगिरसः                   | "               | "          |
| ५९४         | —            | आत्मा                            | अन्नम्          | त्रिष्टुप् |
| ( २ )       |              |                                  |                 |            |
| ५९५         | ८।२३।१३      | श्रुतकक्ष आंगिरसः                | इन्द्रः         | गायत्री    |
| ५९६         | ९।८३।३       | पवित्र आंगिरसः                   | पवमानः सोमः     | जगती       |
| ५९७         | १।७।२        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः          | इन्द्रः         | गायत्री    |
| ५९८         | १।७।४        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः          | "               | "          |
| ५९९         | १०।१८।११     | प्रथो वासिष्ठः                   | विश्वेदेवाः     | त्रिष्टुप् |
| ६००         | ९।३१।२       | गृत्समदः शौनकः                   | वायुः           | गायत्री    |
| ६०१         | ८।८९।५       | नृमेघपुरुमेधावांगिरसौ            | इन्द्रः         | अनुष्टुप्  |
| ( ३ )       |              |                                  |                 |            |
| ६०२         | —            | वामदेवो गौतमः                    | प्रजापतिः       | अनुष्टुप्  |
| ६०३         | १।९१।१८      | गौतमो राहूगणः                    | सोमः            | त्रिष्टुप् |
| ६०४         | १।९१।२२      | गौतमो राहूगणः                    | "               | "          |
| ६०५         | १।१।१        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः          | अग्निः          | गायत्री    |
| ६०६         | ४।१।१६       | वामदेवो गौतमः                    | "               | त्रिष्टुप् |
| ६०७         | ९।३५।३       | गृत्समदः शौनकः                   | अपांनपात्       | "          |
| ६०८         | —            | वामदेवो गौतमः                    | रात्रिः         | अनुष्टुप्  |
| ६०९         | ६।८।१        | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः            | अग्निः          | जगती       |
| ६१०         | ६।५२।१४      | ऋजिश्वा भारद्वाजः                | विश्वेदेवाः     | "          |
| ६११         | —            | वामदेवो गौतमः                    | लिंगोक्ताः      | महापंक्तिः |
| ६१२         | १।३२।१       | हिरण्यस्तूप आंगिरसः              | इन्द्रः         | त्रिष्टुप् |
| ६१३         | ३।२६।७       | विश्वामित्रो गाथिनः ( ब्रह्म )   | आत्मा अग्निर्वा | "          |
| ६१४         | ३।२।१        | विश्वामित्रो गाथिनः ( ब्रह्म )   | अग्निः          | "          |





# सामवेदका सुबोध अनुवाद

( उत्तरसंहिता ) उत्तरार्चिकः ।

## अथ प्रथमोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ असितः काश्यपो देवलो वा; २ कश्यपोः मारीचः; ३ शतं वैखानसः; ४, २१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५, ७ विश्वामित्रो गायिनः; ५ जमदग्निर्वा; ६ इरिम्बिठिः काण्वः; ८ अमहोयुरांगिरसः; ९ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गायिनः; ६ जमदग्निर्भागवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ); १० उशना काव्यः; ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १२ वामदेवो गौतमः; १३ नोधा गौतमः; १४ कलिः प्रागाथः; १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १६ गौरवीतिः शाक्यः; १७ अग्निश्चाक्षुषः; १८ अन्धीगुः श्यावाश्विः; १९ कविर्भागवः; २० शंयुर्बार्हस्पत्यः; ( तृणपाणिः ) २२ सोमरिः काण्वः; २३ नृमेधः आंगिरसः ॥ १-६, ८-१०, १५-१९ पवमानः सोमः; ४, २०, २१ अग्निः; ५ मित्रावरुणो; ७ इन्द्राग्नी; ६, ११-१४, २२-२३ इन्द्रः ॥ १-८, १२ ( १-२ ), १५, १८ ( २-३ ), २१ गायत्री; ९, ११, १३, १४, २० प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ); १० त्रिष्टुप्; १२ ( ३ ) सोदनिचृत्; १६, २२ काकुभः प्रगाथः = ( विषमा ककुप् समा सतो बृहती १७ उष्णिक्; १८ ( १ ) अनुष्टुप्; १९ जगती; २३ ( १ ) ककुप्, ( २ ) उष्णिक् ( ३ ) पुर उष्णिक् ॥

६५१ <sup>१ २</sup>उपास्मै <sup>३ १ २</sup>गायता <sup>३ १ २</sup>नरः <sup>३ २ ३ १</sup>पवमानाय <sup>२२</sup>इन्दवे । <sup>३ २ ३ १</sup>अभि <sup>२२</sup>देवा इयक्षते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )

६५२ <sup>३ २ ३ १ २ ३ १</sup>अभि ते <sup>२२</sup>मधुना <sup>३ २ ३ १ २ ३ २</sup>पयोथर्वाणो <sup>३ २</sup>अशिश्नयुः । <sup>३ २ ३ १ २ ३ २</sup>देवं <sup>३ २</sup>देवाय <sup>३ २</sup>देवयु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।२ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ६५१ ] हे ( नरः ) ऋत्विजो ! ( देवान् अभि इयक्षते ) देवोंके लिए हवन करनेकी इच्छावाले ( पवमानाय अस्मै इन्दवे ) शुद्ध होनेवाले इस सोमकी ( उप गायत ) तुम स्तुति करो ॥ १ ॥

सोमरसको छानकर तैय्यार करके उससे देवोंके लिए हवन किया जाता है । उसे छानते हुए यज्ञ करनेवाले उस सोमके लिए स्तोत्रोंका गायन करते हैं ।

[ ६५२ ] ( ते देवयु देवं ) तेरे देवोंको दिए जानेवाले दिव्य रसको ( देवाय ) इन्द्रदेवके लिए ( मधुना पयः ) मोठे दूधके साथ ( अथर्वाणः ) अथर्ववेदके ऋषियोंने ( अभि-अशिश्नयुः ) मिलाया है ॥ २ ॥

दिव्य सोमरस देवोंको दिये जानेके लिए गायके मोठे दूधके साथ मिलाकर उसे ऋषिलोग तैय्यार करते हैं । अथर्ववेदीयज्ञ करनेवाले सोमरसको दूधके साथ मिलते हैं ।

१ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



- ६५३ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय अमर्वते । शंराजन्नापधीभ्यः ॥ ३ ॥ १ ( ती ) ॥  
( ऋ. ९।१।१३ )
- ६५४ दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।२८ )
- ६५५ हिन्वानो हेतुभिहित आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।२९ )
- ६५६ ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे । पवस्व सूर्यो द्यौ ॥ ३ ॥ २ ( यि ) ॥  
( ऋ. ९।६४।३० )
- ६५७ पवमानस्य ते कवे वाजित्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६६।१० )

[ ६५३ ] हे ( राजन् ) तेजस्वी सोम ! ( सः ) वह तू ( नः गवे शं ) हमारी गायोंका कल्याण कर, ( जनाय शं ) पुत्रपौत्रोंका कल्याण कर ( अर्वते शं ) हमारे घोड़ोंका कल्याण कर और ( ओषधिभ्यः शं ) औषधियोंका कल्याण कर, तथा ( पवस्व ) तू स्वयं भी छाना जाकर शुद्ध हो ॥ ३ ॥

सोम गाय, घोड़े, पुत्रपौत्र और औषधियोंका हित करे और वह स्वयं भी छनकर पवित्र होवे ।

[ ६५४ ] ( दविद्युतत्या रुचा ) तेजस्वी कान्तिसे युक्त और ( परिष्टोभन्त्या ) शब्द करनेवाली धारासे युक्त ( शुक्राः सोमाः ) स्वच्छ सोमरस ( गवाशिरः ) गायके दूधमें मिलाकर तैयार किये गये हैं ॥ १ ॥

सोमरस चमकता है और धार बांधकर छाना जाता है, तब शब्द होता है, उसमें गायका दूध मिलाकर उसे तैयार किया जाता है ।

[ ६५५ ] ( वाजी ) बलवर्धक सोमरस ( हेतुभिः हिन्वानः ) स्तोताओंसे प्रशंसित होता है, ( हितः ) वह हित करनेवाला ( वाजं अक्रमीत् ) यज्ञमें चलता आता है, ( यथा ) जिस प्रकार ( वनुषः सीदन्तः ) युद्ध करनेवाले वीर युद्धभूमिमें आक्रमण करते हैं ॥ २ ॥

सोमरसके स्तोत्र गाये जाते हैं, और उनका रस निचोड़ा जाता है । बादमें वह सोम सबका हित करनेवाला होकर यज्ञमें उसी प्रकार प्रविष्ट होता है, जिस प्रकार घोड़ा शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए युद्धभूमिमें प्रविष्ट होते हैं । सोम पीनेके बाद उत्साह बढ़ता है और उससे वीरोंकी वीरता भी बढ़ती है । वे वीर शत्रुओंपर आक्रमण करके यशस्वी होते हैं ।

[ ६५६ ] हे ( कवे सोम ) ज्ञानी सोम ! तू ( सूर्यः ) सूर्यके समान ( ऋधक् ) ऊपर चढ़कर ( संजग्मानः ) तेजसे युक्त होकर ( स्वस्तये द्यौ ) सबके कल्याणके लिए ( दिवा ) दिव्य प्रकाशसे युक्त होकर ( पवस्व ) छनता जा ॥ ३ ॥

सोमरससे ज्ञानयुक्त उत्साह बढ़ता है । जैसे सूर्य ऊपर चढ़ता-चढ़ता तेजस्वी होता है, उसी प्रकार सोमरसकी चमक बढ़ती जाती है । सोमरससे सबका कल्याण होता है, तेज और उत्साह बढ़ता है ।

[ ६५७ ] हे ( कवे वाजिन् ) ज्ञानी और बलवर्धक सोम ! ( पवमानस्य ते ) छाने जानेवाले तेरी ( श्रवस्यवः सर्गाः ) यशस्वी धारा ( अर्वन्तः न ) घोड़े जैसे घुड़सालसे बाहर वेगसे दौड़ते हैं, उसी प्रकार ( असृक्षत ) बर्तनमें गिरती है ॥ १ ॥

सोमरस ज्ञान और बल बढ़ाता है, छानते समय उसकी धारा छाननीसे नीचेके बर्तनमें उसी प्रकार गिरती है, जिस प्रकार घोड़े घुड़सालसे बाहर आकर दौड़ते हैं । घोड़े जिस प्रकार वेगसे दौड़ते हैं, उसी प्रकार सोमकी धारा ऊपरकी छाननीसे नीचेके बर्तनमें वेगसे गिरती है ।



६५८ अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६६।११ )

६५९ अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अगमन्नृतस्य योनिमा ॥ ३ ॥ ३ ( कौ ) ॥  
( ऋ. १।६६।१२ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

६६० अग्ने आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१० )

६६१ तं त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।११ )

६६२ स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ( ऋ. ६।१६।१२ )

६६३ आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।६२।१६ )

[ ६५८ ] ( मधुश्चुतं कोशं अच्छा ) मीठा रस जिसमें भरा जाता है, उस कलशमें ( अव्यये वारे ) भेडके बालसे बनी छलनीसे हम सोमरसको ( असृग्रं ) छानते हैं, ( धीतयः ) हमारी उंगलियां ( अवावशन्त ) बारबार दबाकर रस निचोड़नेकी इच्छा करती हैं ॥ २ ॥

वर्तनके ऊपर भेडके बालोंसे बनी छलनी होती है, उससे रस छाना जाता है और वह नीचेके कलशमें गिरता है । हमारी उंगलियां सोम दबाकर रस निचोड़नेका प्रयत्न करती हैं ।

[ ६५९ ] ( इन्दवः ) सोमरस ( समुद्रं ) जलयुक्त कलसेमें ( गावः धेनवः अस्तं ऋतस्य योनिं न ) जिस प्रकार चलती हुई गायें अपने घर अर्थात् यज्ञस्थानमें ( आ अगमन् ) जाती हैं, उसी प्रकार ( अच्छ ) सीधा जाता है ॥ ३ ॥

सोमरस पानीसे युक्त कलसेमें छाना जाता है, वे सोमरसके प्रवाह कलसेमें उसी वेगसे जाते हैं, जिस वेगसे गायें अपने स्थानमें जाती हैं ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ६६० ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! तू ( गृणानः ) स्तुतिके बाद ( वीतये ) हवि द्रव्योंके भक्षण करनेके लिए और ( हव्य-दातये ) हवि देवोंको पहुंचानेके लिए ( आ याहि ) आ, हमारे यज्ञमें ( होता ) देवोंको बुलानेवाला होकर ( बर्हिषि नि षत्सि ) आसनपर बैठ ॥ १ ॥

[ ६६१ ] हे ( अंगिरः ) सुन्दर अग्ने ! ( तं त्वा ) उस तुझे ( समिद्धिः ) समिधाओंसे और ( घृतेन ) घीसे ( वर्धयामसि ) हम प्रज्वलित करते हैं, हे ( यविष्ठय ) तरुण अग्ने ! ( बृहत् शोच ) तू अधिक प्रकाशित हो ॥ २ ॥

[ ६६२ ] हे ( देव ) तेजस्वी अग्निदेव ! ( सः ) वह तू ( पृथु श्रवाय्यं ) बहुत यशस्वी ( बृहत् सुवीर्यं ) महान् पराक्रम करनेवाले सामर्थ्य ( नः ) हमें ( अच्छ विवाससि ) सरलतासे प्राप्त हों ऐसा कर ॥ ३ ॥

[ ६६३ ] हे ( सुक्रतू ) उत्तम करनेवाले ( मित्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण देवो ! ( नः गव्यूतिं ) हमारे गायके स्थानको ( घृतैः आ उक्षतं ) घीसे सींचो, और ( मध्वा ) मीठे रससे ( रजांसि ) रजो लोक - दूसरे लोकके स्थानको उत्तम रीतिसे सिंचित करो ॥ १ ॥

हमें गायसे भरपूर घी मिले और सब स्थानोंपर मीठा अन्नरस प्राप्त हो ।

✽



६६४ उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचित्रता ॥२॥ ( ऋ. ३।६२।१७ )

६६५ गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥ ३ ॥ ५ ( यि ) ॥  
( ऋ. ३।६२।१८ )

६६६ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥ ( ऋ. ८।१७।१ )

६६७ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१७।२ )

६६८ ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ ६ ( फौ ) ॥  
( ऋ. ८।१७।३ )

६६९ इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१२।१ )

६७० इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥२॥ ( ऋ. ३।१२।२ )

[ ६६४ ] हे ( शुचि-त्रता ) हे शुद्ध कर्म करनेवाले मित्रावरुणो ! ( उरुशंसा ) बहुत प्रशंसित और ( नमो वृधा ) हविष्याग्नसे बढनेवाले तुम ( द्राघिष्ठाभिः ) महान् स्तुतिसे प्रशंसित होकर ( दक्षस्य मह्ना राजथः ) अपने बलके माहात्म्यसे शोभित होते हो ॥ २ ॥

[ ६६५ ] हे मित्रावरुणो ! ( जमदग्निना ) जमदग्नि ऋषिके द्वारा ( गृणाना ) स्तुति किए गए तुम दोनों ( ऋतस्य योनौ ) यज्ञके स्थानपर ( सीदतं ) बैठो, और ( ऋता-वृधा ) यज्ञको बढानेवाले तुम दोनों ( सोमं पातं ) सोमरस पियो ॥ ३ ॥

[ ६६६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आ याहि ) आ, हमने ( ते ) तेरे लिए ( सुषुमा हि ) सोमरस निकाला है, ( इमं सोमं पिब ) यह सोमरस पी, और ( मम इदं बर्हिः आ सदः ) मेरे इस आसनपर बैठ ॥ १ ॥

[ ६६७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजा ) मंत्र बोलते ही रथमें जुड़ जानेवाले ( केशिना हरी ) अयालवाले दोनों घोड़े ( त्वा आवहतां ) तुम्हें यहां ले आवें, और यहां आकर तू ( नः ब्रह्माणि ) हमारे स्तोत्र ( उप शृणु ) पाससे सुन ॥ २ ॥

[ ६६८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सोमिनः सुतावन्तः वयं ) सोमयज्ञ करनेवाले और सोमरस तैय्यार करनेवाले हम ( ब्रह्माणः ) ज्ञानी यज्ञकर्ता ( सोमपां त्वा ) सोमरस पीनेवाले तुम्हें ( युजा हवामहे ) योग्य स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ६६९ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( गीर्भिः ) स्तोत्रोंसे प्रशंसित ( नभः आगतं ) आकाशसे अर्थात् पर्वतके ऊंचे शिखरसे आया हुआ यह ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ सोमरस है ( धिया इषिता ) बुद्धिसे प्रेरित किए गए तुम ( अस्य पातं ) इसका पान करो ॥ १ ॥

सोमलता पर्वतके ऊंचे शिखरसे लाई जाती थी, इसलिए उसे “ नभः आगतं ” आकाशसे लाया हुआ सोम ऐसा कहा गया है ।

[ ६७० ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! तुम ( जरितुः सचा ) स्तुति करनेवालेके सहायक होवो, ( यज्ञः चेतनः जिगाति ) जिससे यज्ञ होता है, और जो चेतना - स्फूर्ति देता है, वह सोम तुम्हें प्राप्त होता है, ( अया ) इस स्तुतिसे बुलाये गये तुम ( इमं सुतं पातं ) इस सोमरसका पान करो ॥ २ ॥



६७१ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृप्पताम् ॥ ३ ॥ ७ ( ता ) ॥  
( ऋ. ३।१२।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

६७२ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सङ्गम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१० )

६७३ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।१२ )

६७४ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> एना विश्वान्यय आ द्युमानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ ८ ( ठी ) ॥  
( ऋ. ९।६१।११ )

६७५ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।४ )

[ ६७१ ] ( यज्ञस्य जूत्या ) यज्ञसे प्रेरित होकर ( कविच्छदा ) स्तुति करनेवालोंको योग्य फल देनेवाले इन्द्र और अग्नि देवोंको ( वृणे ) में स्वीकार करता हूँ, ( ता इह ) वे दोनों इस यज्ञमें ( सोमस्य तृप्पतां ) सोमरसके पानसे तृप्त होवें ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ६७२ ] हे सोम ! ( ते अन्धसः ) तेरे अग्निरूपी सोमका ( दिवि उच्चा जातं ) छलोकमें ऊंचे स्थानपर जन्म हुआ है, तेरे ( उग्रं सत् ) शौर्यको बढ़ानेवाले ( शर्म महि श्रवः ) सुख देनेवाले महान् यशवाले अग्न ( भूमि आददे ) भूमिपर हम प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

सोमलता हिमालय पर्वतकी मौजवान् नामक ऊंची चोटीपर उगती है, वहांसे वह पृथ्वीपर लाई जाती है, और यज्ञमें उसका प्रयोग किया जाता है, उस सोमलताका रस शक्तिवर्धक, सुखदायक और पुष्टि करनेवाला है ।

[ ६७३ ] हे ( वरिवो-वित् ) धन देनेवाले सोम ! ( सः ) वह तू ( नः यज्यवे ) हमारे पूज्य ( इन्द्राय वरुणाय ) इन्द्र, वरुण और ( मरुद्भ्यः ) मरुतोंके लिए ( परिस्त्रव ) छनता जा ॥ २ ॥

[ ६७४ ] हे सोम ! ( मानुषाणां ) मनुष्यों द्वारा प्राप्त करने योग्य ( एना विश्वानि द्युमानि ) इन सारे धनोंको ( आ अर्थः ) प्राप्त करके तेरी ( सिषासन्तः ) सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले हम ( वनामहे ) तेरा भजन करते हैं ॥ ३ ॥

[ ६७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) छाना जाता हुआ तू ( आपः वसानः ) पानीमें मिलाया हुआ ( धारया अर्षसि ) धार बांधकर बर्तनमें गिरता है । ( रत्नधा ) रत्नोंको देनेवाला और ( उत्सः देवः ) जलरूपसे चमकनेवाला ( हिरण्ययः ) सोनेके समान तेजस्वी तू ( ऋतस्य योनिं आसीदसि ) यज्ञके स्थानपर बैठता है ॥ १ ॥

सोमरस पानीमें मिलाया जाता है, फिर वह छलनीसे छाना जाता है, तब वह चमकता है, ऐसा यह सोम यज्ञमें रखा जाता है ।



- ६७६ <sup>३ १ २२ ३ १ २२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २</sup> दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रल५ सधस्थमासदत् ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २</sup> आपृच्छयं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥ २ ॥ ९ ( लु ) ॥ ( ऋ. ९।१०।९ )
- ६७७ <sup>१ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २</sup> प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हि रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८।१ )
- ६७८ <sup>३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २</sup> स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २</sup> पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८।२ )
- ६७९ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धोर उग्रना काव्येन ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्या३५ गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥ १० ( हु ) ॥ ( ऋ. ९।८।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ६७६ ] ( मधु प्रियं दिव्यं ऊधः ) मीठे, प्रिय और दिव्यरसको ( दुहानः ) दुहनेवाला यह सोम ( प्रल५ सधस्थं ) प्राचीन यज्ञस्थानपर ( आसदत् ) बैठ गया है, उसके बादमें ( वाजी ) बलवर्धक सोम ( नृभिः धौतः ) यज्ञ-कर्ताओं द्वारा छाना गया है, यह ( विचक्षणः ) विशेषरूपसे निरीक्षण करनेवाला सोम ( आपृच्छयं धरुणं ) प्रशंसनीय यज्ञको धारण करनेवाले यजमानको ( अर्पसि ) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

पर्वतसे सोम यज्ञशालामें लाया जाता है, यज्ञकर्ताओं द्वारा उसका रस निकालकर वह छाना जाता है उसके बाद वह यज्ञ करनेवाले यजमानके पास पहुंचाया जाता है ।

[ ६७७ ] हे सोम ! तू ( तु प्र द्रव ) शीघ्र दौड़कर आ, ( कोशं परि निषीद ) कलश में आकर भर जा ( नृभिः पुनानः ) याजकोंसे छाना जानेके बाद ( वाजं अभि अर्प ) हविरूप अन्न होकर रह, ( वाजिनं अश्वं न ) बलवान् घोड़ेको जिस प्रकार स्वच्छ करते हैं, उसी प्रकार ( त्वा मर्जयन्तः ) तुझे शुद्ध करनेवाले ऋत्विज ( बर्हिः अच्छ ) यज्ञ स्थानके पास ( रशनाभिः ) अंगुलियोंसे तुझे ( नयन्ति ) ले जाते हैं ॥ १ ॥

सोमरस छानकर साफ किया जाता है, घोड़ेको जिस प्रकार साफ करते हैं, उसी प्रकार सोमरसको साफ करते हैं, और बादमें यज्ञस्थानके पास ले जाते हैं और वहां उसका हवन करते हैं ।

[ ६७८ ] ( स्वायुधः ) उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त ( अ-शस्ति-हा ) शत्रुका नाश करनेवाला ( वृजना ) उपद्रवोंको दूर करनेवाला, ( रक्षमाणः ) रक्षण करनेवाला ( पिता ) पालन करनेवाला ( देवानां जनिता ) देवोंको उत्पन्न करनेवाला ( सु-दक्षः ) उत्तम बलवान् ( दिवः विष्टम्भः ) धुलोकको आधार देनेवाला ( पृथिव्याः धरुणः ) पृथिवीको धारण करनेवाला ( देवः इन्दुः पवते ) दिव्य सोम छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस बल और उत्साह बढ़ानेवाला होनेके कारण ऊपरके विशेषण आलंकारिक रूपसे उसे दिए गए हैं ।

[ ६७९ ] ( विप्रः पुरः एता ) ज्ञानी और आगे आगे चलनेवाला ( जनानां ऋभुः ) लोगोंका तेजस्वी नेता ( धीरः उशना ऋषिः ) धैर्यशाली उशना ऋषि है, ( सः चित् ) वह ही ( आसां गोनां ) इन गायोंमें रहनेवाला ( यत् अपीच्यां गुह्यं नाम ) जो गुप्तरूपसे दूध है, उसे ( काव्येन विवेद ) काव्यकी सहायतासे जानता है ॥ ३ ॥

गोबोंमें जो गुप्तरूपसे रहनेवाला उत्तम दूध है, उसे उशना ऋषिने जान लिया और नेता होनेके कारण उसे सब मनुष्योंको बताया ।

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ४ ]

६८० अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

इशानमस्य जगतः स्वदेशमीशानमिन्द्र तस्थुषः

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३।१२ )

६८१ न त्वावाऽन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।

अश्वयन्तो मघवानिन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे

॥ २ ॥ ११ ( यी ) ॥

( ऋ. ७।३।२३ )

६८२ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।३।११ )

६८३ कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।३।१२ )

६८४ अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥ १२ ( टा ) ॥

( ऋ. ४।३।१३ )

६८५ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे

॥ १ ॥

( ऋ. ८।८।१२ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ६८० ] हे ( शूर ) शूरवीर इन्द्र ! ( अ-दुग्धाः धेनवः इव ) न दुही गईं गायें जिस प्रकार बछड़ेके पास जाती हैं, उसी प्रकार हम ( अस्य जगतः ईशानं ) इस जंगम जगत्के स्वामी और ( तस्थुषः ईशानं ) स्थावर जगत्के स्वामी ( स्वः दशं त्वा ) स्वयं सभीका दर्शन करनेवाले तुझे ( अभिनोनुमः ) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

[ ६८१ ] हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( त्वावान् ) तेरे समान ( अन्यः ) दूसरा कोई भी ( दिव्यः न ) छुलोकमें नहीं है, और ( पार्थिवः न ) पृथ्वीपर रहनेवाला भी नहीं है, ( न जातः ) न कोई हुआ और ( नः जनिष्यते ) न कोई होगा, हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अश्वयन्तः ) घोड़ोंकी इच्छा करनेवाले ( वाजिनः ) धनकी इच्छा करनेवाले ( गव्यन्तः ) गायकी इच्छा करनेवाले हम ( त्वा हवामहे ) तेरी प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८२ ] ( सदा-वृधः ) सदा बढनेवाला ( चित्रः सखा ) विलक्षण मित्र यह इन्द्र ( कया ऊती ) कौन कौनसे संरक्षणके साधनोंसे ( शचिष्ठया कया वृता ) और कौनसी शक्तिसे युक्त होकर ( नः आभुवत् ) हमारे पास आएगा ? ॥ १ ॥

[ ६८३ ] ( मंहिष्ठः ) महान् ( सत्यः ) सत्यकर्म करनेवाला और ( मदानां कः ) आनन्द देनेवालोंमें कौन भला विशेष आनन्द देनेवाला है ? ( अन्धसः ) सोमरस ऐसे आनन्दका देनेवाला है, क्योंकि वह ( दृढा चित् वसु आरुजे ) सुदृढ रहनेवाले शत्रुओंके धनको विनष्ट करनेके लिए ( त्वा मत्सत् ) तुझे उत्साहित करता है ॥ २ ॥

[ ६८४ ] ( सखीनां जरितृणां ) अपने मित्र स्तोताओंकी तू ( अविता ) रक्षा करनेवाला है, इसलिए ( नः ) हमारी ( शतं ऊतये ) सैंकड़ों प्रकारकी रक्षा करनेके लिए ( सु अभि भवासि ) उत्तम प्रकारसे तैय्यार होकर सामने स्थिर रह ॥ ३ ॥

[ ६८५ ] ( स्वसरेषु ) गौशालाओंमें ( वत्सं धेनवः इव ) बछड़ेके पास जिस प्रकार गायें जाती हैं, उसी प्रकार ( दस्मं ) दर्शनीय और ( ऋतीषहं ) शत्रुओं हरानेवाले ( वसोः अन्धसः मन्दानं ) पात्रमें रखे हुए सोमरससे आनन्दित होनेवाले ( वः तं इन्द्रं ) तुम्हारे उस इन्द्रकी ( गीर्भिः नवामहे ) स्तोत्रोंसे हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥



६८६ <sup>३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २</sup> द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २</sup> क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥ १३ ( ही ) ॥ ( ऋ. ८।८।१२ )

६८७ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> बृहद्रायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१ )

६८८ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।

<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥ १४ ( जु ) ॥ ( ऋ. ८।६।२ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

६८९ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २</sup> स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।१ )

६९० <sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> रक्षोहा विश्वचर्षणिभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।२ )

[ ६८६ ] ( द्यु-क्षं ) द्युलोकमें रहनेवाले ( सु-दानुं ) उत्तम दान देनेवाले ( तविषीभिः आवृतं ) अनेक सामर्थ्यसे युक्त और ( पुरु-भोजसं ) बहुत भोजन करनेवाले इन्द्रके पाससे ( क्षुमन्तं ) पोषण करनेवाले ( शतिनं सहस्रिणं ) सैंकड़ों और हजारों धनसे युक्त ( गोमन्तं वाजं ) गायोंसे उत्पन्न किए अन्न ( मक्षु ईमहे ) शीघ्र मिलें ऐसी इच्छा हम करते हैं ॥ २ ॥

[ ६८७ ] हे ऋत्विजो ! ( वः ) तुम ( सुतसोमे अध्वरे ) सोमयागमें ( तरोभिः ) वेगवान् अश्वोंके साथ रहनेवाले ( विदद्वसुं इन्द्रं ) धनके दान करनेवाले इन्द्रके लिए ( स-बाधः ) शत्रुओंसे ( ऊतये ) रक्षणके लिए ( बृहत् गायन्तः ) बृहत् नामके सामका गायन करो, ( भरं न ) भरण पोषण करनेवाले जिस प्रकार बुलाये जाते हैं, उसी प्रकार ( कारिणं हुवे ) हित करनेवाले इन्द्रको मैं सहायतार्थ बुलाता हूं ॥ १ ॥

[ ६८८ ] ( सु-शिप्रं यं ) सुन्दर ठोड़ीवाले इस इन्द्रको ( दु-ध्राः न वरन्ते ) दुष्ट शूर असुर भी नहीं हटा सकते, ( स्थिराः न ) युद्धमें स्थिर रहनेवाले शूर भी इन्द्रको नहीं हटा सकते, ( मुरः ) मरनेवाले शत्रु भी उसका निवारण नहीं कर सकते, ऐसा ( यः ) जो इन्द्र है, वह ( अन्धसः मदे ) सोमरसके आनन्दमें ( आदृत्य शशमानाय ) अन्दरसे स्तुति करनेवाले ( सुन्वते जरित्रे ) सोमयज्ञ करनेवाले स्तोताके लिए ( उक्थ्यं दाता ) प्रशंसनीय धन देता है ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ६८९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रके पीनेके लिए ( सुतः ) निकाला हुआ यह सोमरस है, तू ( स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया ) स्वादिष्ट और आनन्द बढ़ानेवाली धारासे ( पवस्व ) छनता जा ॥ १ ॥

[ ६९० ] ( रक्षो-हा ) राक्षसोंका नाश करनेवाला ( विश्व-चर्षणिः ) सब मनुष्योंका हित करनेवाला ( अयोहते द्रोणे ) सोनेके बर्तनमें छनकर ( सधस्थं योनिं ) पासके यज्ञस्थानमें ( अभि आरुदत् ) सोमरस जाकर बैठ गया ॥ २ ॥  
सोमरसको छानकर सोनेके बर्तनमें भर दिया ।



६९१ वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥ १५ ( पौ ) ॥  
( ऋ. ९।१।३ )

६९२ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।१०।१ )

६९३ यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वविदः ।  
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥ १६ ( प ) ॥ ( ऋ. ९।१०।२ )

६९४ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्द्रवः स्वविदः ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।१०।१ )

६९५ अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवंते सुतः । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०।२ )

६९६ अस्यिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।  
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥ १७ ( कि ) ॥ ( ऋ. ९।१०।३ )

[ ६९१ ] हे सोम ! तू ( वरिवो-धातमः ) धन देनेवाला ( मंहिष्ठः ) महान् ( वृत्र-हन्तमः ) शत्रुका बुरी तरह नाश करनेवाला ( भुवः ) है, इसलिए ( मघोनां राधः पर्षि ) धनवान् शत्रुके पास रहनेवाले धन हमें दे ॥ ३ ॥

[ ६९२ ] हे सोम ! तू ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा ( क्रतु-वित्त-तमः ) कर्म करनेके मार्गको उत्तम रीतिसे जाननेवाला ( महि द्युक्षतमः ) महान् तेजस्वी और ( मदः ) आनन्द देनेवाला है इसलिए ( इन्द्राय मदः ) इन्द्रको आनन्द देनेके लिए ( पवस्व ) छनकर तैय्यार हो ॥ १ ॥

[ ६९३ ] हे सोम ! ( वृषभः ) बलवान् इन्द्र ( यस्य ते पीत्वा ) जिस तुझे पीकर ( वृषायते ) अधिक बलवान् होता है, ( स्वः-विदः अस्य पीत्वा ) आत्मज्ञानी भी इसे पीकर आनन्दित होता है । ( सु-प्र-केतः सः ) उत्तम ज्ञानी वह इन्द्र ( इषः ) शत्रुके अश्वोंको ( एतशः वाजं अभि न ) जिस प्रकार घोडा संग्राममें जाकर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार ( अभ्यक्रमीत् ) अपने अधिकारमें करता है ॥ २ ॥

[ ६९४ ] ( श्रुष्टे ) शीघ्र ही ( जातासः इन्द्रवः ) तैय्यार हुए, चमकनेवाले और ( स्वः-विदः हरयः इमे सुताः ) ज्ञान बढ़ानेवाले हरे रंगके ये सोमरस ( वृषणं इन्द्रं अच्छ यन्तु ) बलवान् इन्द्रके पास शीघ्र पहुँचें ॥ १ ॥

[ ६९५ ] ( भराय ) संग्रामके समय ( सानसिः ) सेवन करनेके योग्य ( अयं सुतः ) यह सोमरस ( इन्द्राय क्षरति ) इन्द्रके लिए छाना जाता है, यह ( जैत्रस्य चेतति ) विजयी इन्द्रको उत्साहित करता है, ( यथा विदे ) जैसा कि सब लोग जानते हैं ॥ २ ॥

[ ६९६ ] ( अस्य इत् मदेष्वा ) इस सोमके आनन्दमें ( सानसि ) सेवन करनेके योग्य ( ग्राभं गृभ्णाति ) धनुषको पकड़ता है, बादमें ( अप्सुजित् इन्द्रः ) पानीके प्रवाहोंको जीतनेवाला इन्द्र ( वृषणं वज्रं च ) बलवान् वज्रको ( सं भरत् ) धारण करता है ॥ ३ ॥



६९७ पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।

अप श्वानश्शथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।११ )

६९८ यो धारया पात्रकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१२ )

६९९ तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ ३ ॥ १८ ( यि ) ॥

( ऋ. ९।१०।१३ )

७०० अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यद्वो अधि येषु वर्धते ।

आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वश्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७५।१ )

७०१ ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।

दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यांश्नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७५।२ )

[ ६९७ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः पुरोजिती ) तुम अपने आगे विजय है ऐसा समझकर ( अन्धसः सुताय ) अन्नरूपी इस सोमरससे ( मादयित्नवे ) आनन्द देनेवाला होनेके कारण आनेवाले ( दीर्घ-जिह्वयं ) लम्बी जीभवाले कुत्तेको ( अपश्नथिष्टन ) दूर करो ॥ १ ॥

कुत्ता सोमरसको न चाटे ऐसी सावधानी बरतो ।

[ ६९८ ] ( सुतः कृत्व्यः ) सोमरस यज्ञका सहायक है, ( यः इन्दुः ) वह सोमरस ( पात्रकया धारया ) शुद्ध होनेवाली धारासे ( अश्वः न ) जैसे घोड़ा जोरसे दौड़ता है, उसी प्रकार ( परि प्रस्यन्दते ) छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस यज्ञका सहायक है, वह शुद्ध होनेके लिए छलनीसे छाना जाता है, और नीचेके बर्तनमें अखण्ड धारसे छनता जाता है, घोड़ा जैसे दौड़ता है, उसी प्रकार वह नीचेके बर्तनमें वेगसे गिरता है ।

[ ६९९ ] ( नरः ) ऋत्विज लोग ( दुरोषं ) दुष्टोंका नाश करनेवाले ( तं सोमं अभि ) उस सोमके पास जाकर ( विश्वाच्या धिया ) सबके संरक्षण करनेकी बुद्धिसे ( यज्ञाय ) यज्ञको ( अद्रयः सन्तु ) आदरसे देखनेवाले हों ॥ ३ ॥

[ ७०० ] ( चनो-हितः ) अन्नरूपसे हित करनेवाला सोम ( प्रियाणि नामानि अभि पवते ) सबको तृप्त करनेवाले पानीको पवित्र करता है, ( येषु ) जिन जलोंमें ( यद्वः अधिवर्धते ) यह महान् सोम बढ़ता है । ( बृहतः सूर्यस्य ) महान् सूर्यके ( विष्वं च अधिरथं ) सब जगह जानेवाले रथपर ( बृहत् विचक्षणः आरुहत् ) यह महान् और सर्व द्रष्टा सोम चढ़ता है ॥ १ ॥

सोम अन्नरूप है, वह पानीमें मिलाया जाता है, तब वह पानीको पवित्र करता है । पानी मिलानेके कारण सोमरस बढ़ता है, बादमें वह सूर्यके प्रकाशमें रखा जाता है ।

[ ७०१ ] ( ऋतस्य-जिह्वा ) मानों यह यज्ञकी जीभ ही है, ऐसा यह ( वक्ता ) शब्द करनेवाला सोमरूपी ( प्रियं मधु पवते ) प्रिय और मीठा रस छाना जाता है, ( अस्य धियः पतिः ) इस यज्ञकर्मका पालक यह सोम किसीसे ( अ-दाभ्यः ) न दबनेवाला है, और ( पुत्रः ) यजमानरूपी यह पुत्र ( पित्रोः अपीच्यां ) मातापिताके नामको न जाननेवाले ( दिवः रोचनं ) छलोकके प्रकाशन करनेवाले ( तृतीयं नाम ) तीसरे नामको ( अधि दधाति ) धारण करता है ॥ २ ॥

सोमरसको छाने जाननेके समय उसका शब्द होता है, इसलिए वह सोम वक्ता है । यह न दबाया जानेवाला यज्ञका कर्ता है, यज्ञके बाद इस यज्ञकर्ताको " सोमयाजी " यह तीसरा नाम मिलता है । नक्षत्रपर एक नाम, व्यवहारमें दूसरा नाम और यज्ञ करनेके कारण " सोमयाजी " यह तीसरा नाम उसे मिलता है ।



७०२ अव द्युतानः कलशाऽअचिक्रदन्नुभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये ।

अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उपसो वि राजसि ॥ ३ ॥ १९ ( दि ) ॥  
( ऋ. ९।७९।३ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

७०३ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४८।१ )

७०४ ऊर्जा नपातऽस हिनायमस्सयुदाशेम हव्यदातये ।

भुवद्वाजेष्वविता भुवद्बुध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥ २० ( यु ) ॥ ( ऋ. ६।४८।२ )

७०५ एह्यु पु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१६ )

७०६ यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।१७ )

[ ७०२ ] ( द्युतानः ) तेजस्वी सोम ( नृभिः ) ऋत्विजों द्वारा ( हिरण्यये कोशे ) सोनेके कलशमें ( येमानः ) छाना जाता हुआ ( कलशान् अचिक्रदत् ) कलसेमें शब्द करता हुआ भरता है, इस समय ( ऋतस्य दोहनाः ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमकी ( अभी अनूषत ) स्तुति करते हैं, हे सोम ! ( त्रि-पृष्ठः ) तीन सवनोंमें ( उपसः अधि ) उपःकालके प्रकाशके बाद ( विराजसि ) तू चमकता है ॥ ३ ॥

सोमरस ऋत्विजोंके द्वारा सोनेके पात्रमें छाना जाता है, वह शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें गिरता है । उस समय ऋत्विज इस सोमके स्तोत्र कहते हैं । तीनों ही सवनोंमें यह सोमरस चमकता है ।

॥ यहाँ पाचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ७०३ ] हे स्तुति करनेवाले ऋत्विजो ! ( वः ) तुम ( यज्ञायज्ञा ) प्रत्येक यज्ञमें ( दक्षसे अग्नये ) प्रदीप्त होनेवाले अग्निकी ( गिरागिरा ) अपनी वाणीसे स्तुति करो । ( च ) और ( वयं ) हम भी ( अमृतं जातवेदसं ) अमर ज्ञानी अग्निकी ( प्रियं मित्रं-न ) प्रिय मित्रके समान ( प्र प्रशंसिषम् ) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ७०४ ] ( ऊर्जाः न-पातं ) बल कम न करनेवाले अग्निकी हम स्तुति करते हैं, ( हिना सः अयं ) निश्चयसे वह यह अग्नि ( अस्सयुः ) हमारा हित करनेवाला है, ( हव्य-दातये दाशेम ) देवोंकी हवि पहुँचानेवाले इस अग्निकी हम हवि देते हैं, यह ( वाजेषु अविता ) युद्धोंमें हमारी रक्षा करनेवाला और ( बुधः ) हमारी वृद्धि करनेवाला ( भुवत् ) होवे, ( उत ) और ( तनूनां त्राता भुवत् ) हमारे शरीरोंका रक्षण करनेवाला होवे ॥ २ ॥

[ ७०५ ] हे अग्ने ! ( एहि ) आ, ( ते गिरः ) तेरे स्तोत्रोंको हम ( इत्था सु ब्रवाणि ) इस प्रकार उत्तम रीतिसे कहते हैं, ( उ ) और ( इतराः ) दूसरे स्तोत्रोंको भी कहते हैं, उन्हें तू सुन, ( एभिः इन्दुभिः ) इन सोम-रसोंसे ( वर्धासे ) तू बढ़ता है ॥ १ ॥

[ ७०६ ] ( ते मनः ) तेरा मन ( यत्र क्व च ) जहाँ कहीं है, ( तत्र ) वहाँ ( उत्तरं दक्षं ) श्रेष्ठ बलका ( दधसे ) तू स्थापन करता है, उसी प्रकार वहाँ ( योनिं कृणवसे ) घरका भी निर्माण करता है ॥ २ ॥



७०७ न हि ते पूर्वमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते । अथा दुवो वनवसे ॥ ३ ॥ २१ ( यी ) ॥  
( ऋ. ६।१६।१८ )

७०८ वयमु त्वामपूर्व्यं स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रि चित्रं हवामहे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२१।१ )

७०९ उप त्वा कर्मन्तुतये स नो युवाग्रश्चक्राम यो धृपत् ।  
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥ २२ ( च ) ॥ ( ऋ. ८।२१।२ )

७१० अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव गमन्त उदभिः ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१९।१७ )

७११ वार्ष त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्विवो दिवेदिवे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।१९।१८ )

७१२ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा ।  
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥ २३ ( यि ) ॥ ( ऋ. ८।१९।१९ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

[ ७०७ ] हे अग्ने ! ( ते पूर्व अक्षिपत् ) तेरा तेज नेत्रोंको हानिकारक ( नहि भुवत् ) नहीं होता, हे ( नेमानां पते ) नियमोंमें रहनेवाले मनुष्योंके स्वामिन् ! ( अथः दुवः ) अब हमारी सेवा तू ( वनवसे ) स्वीकार कर ॥ ३ ॥

[ ७०८ ] हे ( अपूर्व्यं वज्रिन् ) अपूर्व वज्रधारी इन्द्र ! ( भरन्तः ) तुझे सोमरस देनेवाले और ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( चित्रं त्वां उ ) विलक्षण और श्रेष्ठ तुझे सहायताके लिए ( कच्चिद् स्थूरं न ) जैसे कोई बड़े आदमीको बुलाता है उसी प्रकार ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ७०९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( कर्मन् ) कर्म करते हुए ( ऊतये ) संरक्षणके लिए ( उपचक्राम ) तेरे पास हम आते हैं, ( यः ) जो ( धृपत् ) शत्रुओंका पराभव करनेवाला ( युवा उग्रः ) तरुण और शूरवीर है ऐसा तू ( नः ) हमारे पास आ, ( सखायः ) हम तेरे मित्र ( सानसिं अवितारं त्वा इत् ) सेवा करने योग्य और संरक्षण करनेवाले तुझे ही सहायताके लिए ( ववृमहे ) स्वीकार करते हैं, ( हि ) यह सभीको मालूम है ॥ २ ॥

[ ७१० ] हे ( गिर्वणः इन्द्र ) हे स्तुत्य इन्द्र ! ( अधा हि ) अब ( त्वा कामे ईमहे ) तेरी अपनी इच्छा तृप्त करनेके लिए प्रार्थना करते हैं, और ( उदा गमन्तः उदभिः इव ) पानी लेजानेवाले मनुष्य जिस प्रकार पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हम ( उप ससृग्महे ) तेरे पास आते हैं ॥ १ ॥

पानी लेजानेवाले जिस प्रकार एक दूसरेपर पानी फेंककर खेलते हैं, उसी प्रकार हम अपनी इच्छा तृप्त करनेके लिए इन्द्रके पास जाते हैं, वह हमारी इच्छा पूर्ण करेगा, जो भी इच्छा हम इन्द्रसे करते हैं, उसे वह पूरा करता है ।

[ ७११ ] ( अद्विवः शूर ) हे वज्रधारी शूर इन्द्र ! जिस प्रकार ( वार्ष ) समुद्रको ( अव्याभिः वर्धन्ति ) नदियां बढ़ाती हैं उसी प्रकार स्तुति करनेवाले ( ब्रह्माणि ) स्तोत्र गा-गाकर ( वावृध्वांसं चित् ) महान् बड़े हुए ( त्वा दिवेदिवे ) तुझे प्रतिदिन बढ़ाते हैं ॥ २ ॥

[ ७१२ ] ( इषिरस्य ) प्रगतिशील इन्द्रके ( उरुयुगे ) महान् जुआवाले ( उरौ रथे ) महान् रथमें ( इन्द्र-वाहा ) इन्द्रको ढोनेवाले, ( वचो-युजा ) शब्दोंसे जुड़ जानेवाले ( स्वः-विदः ) स्वयं ही जानेके स्थानको जानेवाले ( हरी ) दोनों घोड़े ( गाथया युञ्जन्ति ) स्तोत्रके बोलते ही जुड़ जाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥



## प्रथम अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र, सोम, अग्नि, मित्र, वरुण इत्यादि देवोंके मंत्र हैं। इन देवताओंका गुणवर्णन इस अध्यायमें किया है। देवताओंके ये गुण उपासक अपने अन्दर धारण करें और बढ़ावें इसलिए यह गुणवर्णन है। अतः यहां पहले हम उनके गुणोंका विचार करते हैं—

१ शुचि-व्रता [ ६६४ ]- शुद्ध और पवित्र व्रतके आचरण करनेवाले, अपवित्र आचरण कभी न करनेवाले।

२ उरु-शंसा [ ६६४ ]- जिनकी प्रशंसा बहुत होती है, सब लोग जिनकी प्रशंसा गाते हैं।

३ नमो-वृधा [ ६६४ ]- अन्नसे बढ़नेवाले, अपने पास बहुतसा अन्न रखनेवाले, नम्रतासे बढ़नेवाले।

४ दक्षस्य मन्त्रा राजथः [ ६६४ ]- अपने सामर्थ्यसे विराजमान होते हैं। अपनी स्वयंकी महानतासे जो तेजस्वी होता है।

५ ऋता-वृधा [ ६६५ ]- यज्ञकी बढ़ानेवाले, सत्य-मार्गसे बढ़नेवाले, सत्यको बढ़ानेवाले।

६ ऋतस्य योनौ सीदतं [ ६६५ ]- यज्ञके स्थानपर बैठते हैं, सत्यकर्मको करनेके लिए तैयार रहते हैं।

७ कवि-च्छदा [ ६७१ ]- जानी जिसकी स्तुति करते हैं। दूरदर्शी लोग जिसका बखान करते हैं।

मित्र और वरुणके उपर्युक्त गुण हैं, अब इन्द्रके गुण देखिए—

१ वृषणः इन्द्रः [ ६९४ ]- बलवान् इन्द्र है।

२ सदा-वृधः [ ६८२ ]- हमेशा बढ़नेवाला, महान् होनेवाला।

३ चित्रः सखा [ ६८२ ]- अद्भुत और बड़ा मित्र, सहायक।

४ अप्सु-जित् [ ६९६ ]- अन्तरिक्षमें विजयी होनेवाला, पानीके प्रवाहोंको जीतकर अपने अधिकारमें रखनेवाला।

५ वज्रं संभरत् [ ६९६ ]- वज्र धारण करके लड़ता है।

६ सानसि ग्राभं गृभ्णाति [ ६९६ ]- हाथोंमें पकड़ने योग्य धनुषको हाथमें धारण करके लड़ता है।

७ कया ऊती कया शचिष्ठया वृता, नः आभुवत् [ ६८२ ]- कौनसे संरक्षणके साधनोंके साथ और कौनसे

सामर्थ्यसे युक्त होकर वह हमारी सहायताके लिए हमारे पास आवे ?

८ यं सु-शिप्रं दुधाः न वरन्ते [ ६८८ ]- उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले जिस इन्द्रको कोई भी बुष्ट शत्रु हरा नहीं सकता।

९ स्थिराः यं न वरन्ते [ ६८८ ]- युद्धमें स्थिर रहनेवाले वीर भी जिसे हरा नहीं सकते।

१० मुरः न वरन्ते [ ६८८ ]- वध करनेमें कुशल शत्रु भी जिसका पराभव नहीं कर सकते। नाश करनेमें चतुर शत्रुके वीर भी जिसके आगे स्थिर नहीं रह सकते।

११ देव ! सः त्वं पृथु श्रवाय्यं बृहत् सुवीर्यं नः अच्छ विवाससि [ ६९२ ]- वह तू महान् यशस्वी प्रचण्ड सामर्थ्य हमें सरलतासे मिले ऐसा कर।

१२ वाजेषु अविता [ ७०४ ]- युद्धमें हमारा रक्षण करनेवाला।

१३ वृधः-भुवत् [ ७०५ ]- हमें बढ़ानेवाला।

१४ तनूनां व्राता भुवत् [ ७०४ ]- हमारे शरीरोंका संरक्षण करनेवाला होवे।

१५ ते मनः यत्र क च, तत्र, उत्तरं दक्षं दधसे, योनिं कृणवसे [ ७०६ ]- तेरा मन जहां रहता है, वहां तू श्रेष्ठबल बढ़ाता है, और अपना घर निर्माण करता है।

१६ दस्मं ऋतीषहं वसोः अन्धसः मन्दानं इन्द्रं नवामहे [ ६८५ ]- दर्शनीय शत्रुको हरानेवाले, सोमरससे आनन्दित होनेवाले इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं।

१७ सखीनां अविता [ ६८४ ]- मित्रोंका रक्षण करनेवाला।

१८ नः शतं ऊतये सु अभि भवासि [ ६८४ ]- हमारे सैकड़ों प्रकारसे रक्षण करनेके लिए तू उत्तम प्रकारसे तैयार रहता है।

१९ स-बाधः ऊतये [ ६८७ ]- बाधा करनेवाले शत्रुओंसे रक्षण करनेके लिए तैयार रह।

२० हे अपूर्व्य वज्रिन् ! अवस्यवः भरतः वयं चित्रं त्वां हवामहे [ ७०८ ]- हे अद्वितीय शस्त्रधारी इन्द्र ! अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम विलक्षण शक्ति धारण करनेवाले तुझे अपने संरक्षणके किए बुलाते हैं।



२१ कर्मन् ऊतये उप चक्राम [ ७०९ ]- हम कर्म करते हुए अपने संरक्षणके लिए तेरे पास आते हैं।

२२ यः धृषत् युवा उग्रः नः चक्राम [ ७०९ ]- वह शत्रुओंका पराभव करनेवाला तबण उग्रवीर हमारे पास हमारे संरक्षणके लिए आवे।

२३ सानसि अचितारं त्वा ववृमहे [ ७०९ ]- विजयी संरक्षक तुझे हम धरण करते हैं।

२४ गर्विणः इन्द्र ! त्वा कामे ईमहे, उप ससृग्महे [ ७१० ]- हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिए हम तेरी प्रार्थना करते हैं।

अब सोमके विशेषण देखिए—

१ देवः [ ६५२ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।

२ देवयुः [ ६५२ ]- देवोंके साथ रहनेवाला।

३ राजन् [ ६५३ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।

४ दविद्युतत्या रुचा [ ६५४ ]- चमकनेवाले तेजसे युक्त।

५ शुक्रः सोमः [ ६५४ ] वीर्यवान् सोम, स्वच्छ।

६ वाजी [ ६५५ ]- बलवान्।

७ हितः [ ६५५ ]- हितकारक।

८ हेतुभिः हिन्वानः [ ६५५ ]- स्तोताओंके द्वारा प्रशंसित होनेवाला।

९ कविः [ ६५६ ]- ज्ञानी।

१० संजग्मानः [ ६५६ ]- तेजस्वी, मिलकर रहनेवाला।

११ दिवा [ ६५६ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।

१२ रक्षो-हा [ ६९० ]- राक्षसोंको मारनेवाला।

१३ विश्व-चर्षणिः [ ६९० ]- सब देखनेवाला।

१४ मंहिष्ठः [ ६९१ ]- महान्।

१५ वृत्रहन्तमः [ ६९१ ]- धरनेवाले शत्रुको मारनेमें प्रवीण।

१६ वरिवो-धा-तमः [ ६९१ ]- अधिक धन देनेवाला।

१७ मधुमत्तमः [ ६९२ ]- अत्यन्त मीठा।

१८ क्रतुवित्तमः [ ६९२ ]- कर्मोंको उत्तम प्रकारसे करनेमें प्रवीण।

१९ महि व्यक्षतमः [ ६९२ ]- महान् तेजस्वी।

२० मदः [ ६९२ ]- आनन्द बढ़ानेवाला।

२१ वृषभः [ ६९३ ]- बलवान्।

२२ तस्य पीत्वा वृषायते [ ६९३ ]- उसके पीनेसे बल बढ़ता है।

२३ स्वः विदः [ ६९३ ]- ज्ञान बढ़ानेवाला, जाननेवाला।

२४ सु-प्र-केतः [ ६९३ ]- उत्तम ज्ञानी।

२५ हरयः इन्द्रवः [ ६९४ ]- हरे रंगका सोम।

२६ चनोहितः [ ७०० ]- अन्नरूपसे हितकर।

२७ द्युतानः [ ७०२ ]- तेजस्वी।

२८ विचक्षणः [ ६७६ ]- विशेष ज्ञानी।

२९ वाजं अभि अर्ष [ ६७७ ]- बल बढ़ा।

३० प्र-द्रव [ ६७७ ]- दौड़, वेगसँ जा।

३१ पुनानः [ ६७७ ]- साफ होनेवाला, साफ किया जानेवाला।

३२ स्वायुधः [ ६७८ ]- उत्तम शस्त्रास्त्रोंको पासमें रखनेवाला।

३३ अशस्ति-हा [ ६७८ ]- अप्रशस्तोंका नाश करनेवाला।

३४ वृजना [ ६७८ ]- उपद्रवकारी शत्रुओंको दूर करनेवाला।

३५ रक्षमाणः पिता [ ६७८ ]- पिताके समान रक्षा करनेवाला।

३६ सु-दक्षः [ ६७८ ]- उत्तम दक्ष।

३७ पृथिव्या धरुणः [ ६७८ ]- पृथिवीका धारण करनेवाला।

३८ विप्रः [ ६७९ ]- ज्ञानी।

३९ जनानां पुर एता [ ६७९ ]- लोगोंके आगे चलनेवाला, नेता।

४० धीरः [ ६७९ ]- धैर्यशाली वीर।

४१ सत्यः [ ६८३ ]- सत्य कार्य करनेवाला।

४२ कृत्वयः [ ६९८ ]- कर्म करनेवालेका सहायक।

४३ दुरोषं सोमं [ ६९९ ]- दुष्टोंका नाश करनेवाला सोम है।

अब अग्निके विशेषण देखिए—

१ ऊर्जः न-पातः [ ७०४ ]- बलको कम न करनेवाला।

इस अध्यायमें ये देवताओंके गुण वर्णित हैं। उन्हें उपासक अपने अन्दर धारण करें और बढ़ावें तथा इन गुणोंसे युक्त हों, इसलिए इन गुणोंका यहां वर्णन किया है।

इससे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है। इन गुणोंमें कुछ गुण इन्द्रके, अग्निके, वरुणके और मित्रके हैं, और कुछ सोमके हैं, चाहे देवता बड़े हों या छोटे, उनके गुणोंकी ओर लक्ष्य रखना चाहिए, और देवत्व प्राप्त करना चाहिए। दूसरेकी ओर ध्यान न देना चाहिए, यह नियम यहां पालनीय है।



### धन प्राप्त करना

मनुष्यकी उन्नतिके सब कार्य धनसे होते हैं। धनके बिना कुछ नहीं हो सकता। धनका उचित उपयोग करनेसे मनुष्य धन्य होता है। इस प्रकार यह धन मनुष्यको सुख प्राप्त करानेवाला है। इस धनके सम्बन्धमें इस अध्यायमें इस प्रकार कहा है—

१ द्यु-क्षं [६८६]— द्युलोकमें रहनेवाला, तेजस्वी, द्युलोकमें जो कुछ भी है, वह तेजस्वी है, उसी प्रकार धन तेजस्वी है।

२ सु-दानुं [६८६]— उत्तम दान देने योग्य।

३ तविषीभिः आवृतं [६८६]— अनेक सामर्थ्योंसे युक्त, जिसके कारण अनेक प्रकारके सामर्थ्य प्रकट होते हैं।

४ पुरुभोजसं [६८६]— बहुतसा अन्न देनेवाले। यदि धन पासमें हो तो बहुतसा अन्न प्राप्त हो सकता है।

५ शु-मन्तं [६८६]— बहुत अन्नसे युक्त।

६ शतिनं सहस्रिणं [६८६]— सैंकड़ों और हजारों सामर्थ्योंसे युक्त।

७ गोमन्तं वाजं [६८७]— गायोंसे युक्त अन्न देनेवाला।

धनके ये गुण इन मंत्रोंमें कहे हैं, वे मननीय हैं—

८ मानुषाणां विश्वा द्युम्नानि आ अर्यः सिषासन्तः वनामहे [६७४]— मनुष्योंके लिए उपयोगी सब धनोंको प्राप्त करके तेरी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं।

९ रत्नधा देवः हिरण्ययः ऋतस्य योनिं आसी-  
दसि [६७५]— रत्नोंकी धारण करनेवाला यह सुवर्णमय देव यज्ञमें अपने स्थानपर बैठता है। यह देव रत्नोंकी धारण करता है। यह अपने भक्तोंको धन देता है।

१० हे इन्द्र ! अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः त्वा हवामहे [६८१]— हे इन्द्र ! घोड़े, गाय और धन अथवा अन्नकी इच्छा करनेवाले हम तेरी प्रार्थना करते हैं। हमें यह सब दे।

११ दृढा चित् वसु आरुजे त्वा मत्सत् [६८३]— सुवृद्ध रहनेवाले शत्रुओंका धन विनष्ट करनेके लिए यह सोम तुझे प्रसन्न करता है।

१२ जरित्रे उक्थ्यं दाता [६८८]— स्तुति करने-  
वालोंको प्रशंसनीय धन देता है।

१३ मघोनां राधः पर्थि [६९१]— धनवान् शत्रुके पास रखे हुए धन हमें दे।

इस प्रकार धनके विषयमें इस अध्यायमें कहा है। शत्रुके

धनको उसे हराकर हम अपने पास ले आवें ऐसी इच्छा यहां है। शत्रुको हरानेका बल अपनेमें हो यह इसका उद्देश्य है। धनके साथ-साथ बल, सामर्थ्य, शूरवीरता आदि गुण अपने अन्दर होने चाहिए यह भाव यहां है।

### देवोंके लिए सोम

सोमरसको तैय्यार करके पहले देवोंको अर्पण करना चाहिए फिर याजकोंको पीना चाहिए। वह दिखानेके लिए कहा है—

१ इन्द्राय मदः पवस्व [६९२]—

२ इन्द्राय वरुणाय मरुद्भ्यः परिस्रव [६७३]—  
इन्द्र, वरुण, मरुत् आदि देवोंके लिए सोमरस छानकर शुद्ध करो।

३ सः अस्मयुः, हव्यदातये दाशेम [७०४]— वह अग्नि हमारा हित करनेवाला है। उसे हव्य देनेके लिए हम हवनीय द्रव्य देते हैं।

४ पुरोजिती [६९७]— तुम ऐसा समझो कि जय तुम्हारे सामने है। अपनी पराजय कभी न हो इतना बल अपनेमें होना चाहिए, जरा भी भय न होना चाहिए। तभी विजय निश्चित है।

### सोमरसके पास कुत्ता न आवे

सोमरस जहां रखा जाता है, उस जगह कुत्ता न आवे, इतनी सावधानी रखनी चाहिए। इसलिए कहा है—

१ सुतार्य मादयित्त्नवे दीर्घजिह्वयां अप श्रथिष्ठन [६९७]— यह सोमरस आनन्द देनेवाला होनेके कारण लम्बी जीभवाला कुत्ता पास न आवे। कुत्तेको बहुत क्रूर करना चाहिए। वह सोमरसके पास न पहुंचे, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए।

### स्तुतिसे लाभ

इन्द्रादि देवोंकी स्तुति यज्ञमें मुख्य होती है। देवोंकी स्तुति सुनें और देवोंके समान हों, यह स्तुतिका उपयोग है।

१ नः ब्रह्माणि उप शृणु [६६७]— हमारे स्तोत्रोंको पाससे सुन। “ ब्रह्मा ” शब्दका अर्थ है, “ ज्ञान ” देनेवाले स्तोत्र। महान् होनेकी शिक्षा देनेवाले स्तोत्र, मनुष्योंको महान् होनेकी शिक्षा देते हैं। देवोंके गुण सुनकर उन्हें अपने अन्दर धारण करके उन्हें बढ़ानेसे मनुष्य महान् होता है। प्रशंसनीय होता है।



२ मघवन् ! त्वावान् अन्यः दिव्यः न, पार्थिवः न, न जातः न जनिष्यते [ ६८१ ]- हे इन्द्र ! तेरे समान दूसरा कोई भी द्युलोकमें अथवा पृथ्वीपर न हुआ है, न होगा। ऐसे अद्वितीय हम स्वयं भी बनें, यह स्तुतिका आशय है।

३ यज्ञायज्ञा दक्षसे अग्नये गिरागिरा [ ७०३ ]- प्रत्येक यज्ञमें चतुर और बलवान् अग्निकी स्तुति करो। जो दक्ष और बलवान् होता है, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, इसलिए कर्तव्यमें चतुर और बलवान् बनें। ऐसा जो होगा, उसकी सब जगह प्रशंसा होगी।

देवताओंकी स्तुतिसे ऐसा लाभ होता है।

### यज्ञ

यज्ञ देवोंकी सन्तुष्टिके लिए है।

ऋतुसंधिषु व्याधिर्जायते।

ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ॥ ( गोपथ ब्रा. )

ऋतुओंके सन्धिकालमें हवा बिगड़ती है, इस कारण दोष दूर करनेके लिए यज्ञ किए जाते हैं। ये यज्ञ औषधियोंसे होते हैं, अर्थात् जिन रोगोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना होती है, अथवा जो रोग शुरू हो गए हैं उन रोगोंको दूर करने-वाली औषधियोंके चूर्णसे हवन किए जाते हैं। इससे हवामें रहनेवाले रोगबीज नष्ट हो जाते हैं, और वायु शुद्ध होती है।

१ त्वा समिद्धिः घृतेन वर्धयामसि [ ६६१ ]- तुझे लमिधाओं और गायके घीसे हम प्रदीप्त करते हैं। यज्ञमें गायका घी ही डालना चाहिए, और दूसरे घीसे काम नहीं चल सकता।

२ यविष्ठ्य ! बृहत् शोच [ ६६१ ]- हे तरुण अग्ने ! तू अधिक प्रकाशित हो, अधिक जल।

३ द्रव्यदातये आ याहि [ ६६० ]- हवनीय द्रव्योंको देवोंके पास पहुंचानेके लिए आ। अर्थात् तुझमें हम जो भी हवनीय द्रव्य डालें, उन्हें तू देवोंकी प्रसन्न करनेके लिए उन्हें देवोंके पास पहुंचा।

४ नः गव्यूतिं घृतैः उक्षतम् [ ६६३ ]- हमारी गायें जहां रहती हैं, वहां गायके घीका सिंचन होकर वह स्थान पवित्र हो। गायके घृतके हवनसे सब स्थान पवित्र होता है, इतना विषको नष्ट करनेका सामर्थ्य गायके घीमें है।

### इन्द्रके घोड़े

इन्द्रके घोड़े प्रसिद्ध हैं। इन्द्र घोड़ोंकी नस्ल सुधारता है

और उन्हें शिक्षित करता है। इस विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

१ तरोभिः इन्द्रं बृहत् गायत [ ६८७ ]- घोड़ोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको बृहत् नामका साम सुनाओ। “तरु” का अर्थ यहां शीघ्र दौड़नेवाले घोड़े ऐसा है। युद्धोंमें जिन घोड़ोंका प्रयोग होता है, वे घोड़े इन्द्रके पास रहते हैं।

२ ब्रह्मयुजा केशिनौ हरी त्वा आ ब्रह्तां [ ६६७ ]- शब्दोंका संकेत होते ही रथमें जुड़जानेवाले, सुन्दर अयालवाले दो घोड़े इन्द्रको रथसे ले जाते हैं। घोड़ोंके अयाल उत्तम होते हैं, इसलिए उन्हें यहां “केशिनौ” कहा गया है।

३ इपिरस्य उरुयुगे उरौ रथे इन्द्रवाहा वचोयुजा स्वर्विदः हरी गाथया युजन्ति [ ७१२ ]- प्रगतिशील, इन्द्रके महान् जुएवाले रथमें शब्दोंके संकेतसे ही जुड़ जाने-वाले इन्द्रके दोनों घोड़े स्वयं ही अपने स्थानपर जानेवाले, स्तोत्रके कहते ही जुड़ जाते हैं।

इस प्रकार इन्द्रके घोड़े हैं। उनको केवल इशारेकी ही जरूरत है, शेष सारा काम वे स्वयं ही कर देते हैं। इतनेवे होशियार हैं। यहां यह बताया है कि घोड़ोंको इस प्रकार शिक्षित करना चाहिए।

### सोम

सोमरसका यज्ञमें बहुत महत्त्व है। यह ऊंचे पर्वतसे लाया जाता है। देखिए—

१ नभः आगतं वरेण्यं सुतं [ ६६९ ]- आकाशसे लाया गया यह महान् सोम है, उसका रस निकाला है। हिमालयके ऊंचे शिखरसे यह सोम लाया गया है।

२ ते अन्धसः दिवि उच्चा जातं [ ६७२ ]- तुझ अन्ध-रूप सोमकी उत्पत्ति ऊंचे द्युलोकमें हुई है। यहाँ द्युलोकका अर्थ है हिमालयका ऊंचा शिखर।

३ मधु प्रियं दिव्यं ऊधः दुहानः [ ६७६ ]- मीठे प्रिय ऐसे द्युलोकरूपी दुग्धाशयसे यह दुहकर निकाला गया है।

४ दिवः विष्टम्भः देवः [ ६७८ ]- द्युलोकको आधार देनेवाला यह दिव्य सोम है।

इस प्रकार सोमका स्थान ऊंचे हिमालयका शिखर है। वहांसे यह लाया जाता है, और उसका रस निकालकर उससे यज्ञ किया जाता है।

५ उग्रं सत् शर्म महि श्रवः भूमि आददे [ ६७२ ]- उग्रता और क्षीरता बढ़ानेवाले सुखदायी सोमरसरूपी महान् अन्न भूमिपर आगये हैं। सोम स्वर्गसे पृथ्वीपर लाया



जाता है। सोमरस यश-प्राप्तिके उत्कृष्ट साधन हैं। सोमयज्ञ करनेवालेको महान् यश प्राप्त होता है।

### सोमरसको पानीमें मिलाना

१ सोमः पुनानः, आपः वसानः धारया अर्षति [६७५]- सोमरसको छाननेसे पहले पानीमें मिलाया जाता है, फिर वह छाननीसे नीचेके बर्तनमें छाना जाता है। वह नीचेके बर्तनमें धार बांधकर पड़ता है, तब उसका शब्द होता है।

२ धीतयः अवावशान्त [ ६५८ ]- हाथकी अंगुलियां सोमको बारबार दबाकर रस निकालनेकी इच्छा करती हैं। अच्छी तरह दबाये बिना उससे सारा रस बाहर नहीं निकलता।

३ वहिः अच्छ रशनाभिः नयन्ति [ ६७७ ]- यज्ञस्थानके पास अंगुलियोंसे पकड़कर ऋत्विज लोक सोमको लेजाते हैं।

### छलनी

१ अव्यये वारे मधुश्चुतं कोशं अच्छ अस्त्रं [ ६५८ ]- भेडके बालोंकी बनी छलनीसे मीठा रस भरनेके बर्तनमें में छानता हूँ।

भेडके बालोंकी बनी छलनीसे वह रस छाना जाता है।

### सोमरस छानना

१ दिवा पवस्व [ ६५६ ]- दिव्य प्रकाशसे युक्त होकर छनता जा, चमकता हुआ छनता जा।

२ हे सोम ! इन्द्राय पातवे सुतः स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व [ ६८९ ]- हे सोम ! इन्द्रके लिए स्वादिष्ट और आनन्दकारक धारासे छनता जा।

३ अयोहते द्रोणे सधस्थं योनिं अभि आसदत् [ ६९० ]- सोनेके पात्रमें पास ही यज्ञशालामें सोमरस बैठा है।

४ चनोहितः प्रियाणि नामानि अभिपवते, येषु यद्धः अधि वर्धते [ ७०० ]- अन्नरूप हितकारक सोम सबको तृप्त करनेवाले पानीमें मिलकर छनता जाता है, इस कारण वह महान् सोम बढ़ता जाता है।

५ ऋतस्य जिह्वा वक्ता मधु पवते, अस्य धियः पतिः अदाभ्यः [ ७०१ ]- मानों यह यज्ञकी जिह्वा ही है, ऐसा शब्द करता हुआ मीठा, यज्ञका पालन करनेवाला और न दबनेवाला यह सोमरस छनता जाता है।

इस प्रकार सोमरस छाना जाता है, उस समय इसका

३ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

शब्द होता है, वह चमकता है। इस सब वर्णनको आलंकारिक भाषामें वेदमें कहा है।

### सोम छाननेके समय साम-गान

जब सोमरस यज्ञमें छाना जाता है, उस समय उद्गाता सामका गायन करते हैं। एक तरफ सामगान चलता है, दूसरी तरफ सोमरस छाना जाता है।

१ हे नरः ! पवमानाय इन्द्रवे उप गायत [ ६५१ ]- हे याजको ! सोमरस छानते हुए तुम उसके पास बैठकर सामगान करो।

२ ऋतस्य दोहना अभि अनूषत, त्रिपृष्ठः उपसः अधि विराजसि [ ७०२ ]- यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमकी स्तुति गाते हैं। तीनों सवनोंमें उषःकालके बाद हे सोम ! तू अधिक चमकता है।

### सोमरसमें दूध मिलाना

१ देवयु देवाय मधुना पयः अभि अशिश्नयुः [ ६५२ ]- देवको देनेके लिए तैयार किया गया सोमरस मीठे गायके दूधके साथ मिलाया जाता है।

२ रुचाः शुक्राः सोमाः गवाशिरः [ ६५४ ]- तेजस्वी सोमरस गायके दूधमें मिलाया जाता है।

३ विप्रः पुर एता जनानां ऋभुः धीरः ऋषिः गोनां अपीच्यं गुह्यं नाम काव्येन विवेद [ ६७९ ]- ज्ञानी, अग्रणी, मनुष्योंका नेता, धैर्यशाली ऋषि गायोंमें जो गुप्तरूपसे दूध है, उसे अपने ज्ञानसे जानता है।

इस प्रकार गायके दूधमें छाना हुआ सोमरस मिलाया जाता है, और बादमें उसे देवोंको अर्पण किया जाता है, उसके बाद उसे दूसरे लोग पीते हैं।

इस प्रकार इस प्रथम अध्यायमें वर्णन है। उसे पाठकगण ध्यानपूर्वक पढ़ें, और बोध प्राप्त करें।

### सुभाषित

१ हे राजन् ! नः गवे, अर्वते, जनाय ओषधिभ्यः शम् [ ६५३ ]- हे राजन् ! गाय, घोड़े, मनुष्य, और औषधियों हमारे लिए कल्याणकारी होंगे।

२ हितः वाजं अकर्मित्, यथा वनुषः सीदन्तः [ ६५५ ]- हित करनेवाले वीर युद्धभूमिपर जावें, जिस प्रकार योद्धा युद्धमें जाते हैं।

३ स्वस्तये दशो दिवा पवस्व [ ६५६ ]- सबका कल्याण हो, इस दृष्टिसे तेजसे युक्त होनेके लिए शुद्ध हो।



४ श्रवस्यवः सर्गाः असृक्षत [ ६५७ ]- यशस्वी कार्य उत्पन्न करें ।

५ धीतयः अवावशन्त [ ६५८ ]- अंगुलियां कार्य करने की इच्छा करती हैं ।

६ ऋतस्य योनिं आ अग्मन् [ ६५९ ]- सत्यके मूल केन्द्रमें जा । सत्यके अथवा यज्ञके केन्द्रमें जा ।

७ हव्यदातये आयाहि [ ६६० ]- अन्नदान करनेके लिए आ ।

८ बर्हिषि नि सत्सि [ ६६० ]- अपने आसनपर बैठ ।

९ हे यविष्ठ्य ! बृहत् शोच [ ६६१ ]- हे तरुण ! तू विशेष तेजसे युक्त हो । विशेष तेजस्वी हो ।

१० हे देव ! पृथुश्रवाय्यं बृहत् सुवीर्यं नः अच्छ विवाससि [ ६६२ ]- हे देव ! बहुत यशवाले महान् सामर्थ्य हमें प्राप्त हों ऐसा कर ।

११ शुचिव्रता उरुशंसा नमोवृधा दक्षस्य महा राजथः [ ६६४ ]- शुद्ध निर्वोष व्रतका आचरण करके, बहुत प्रशंसित होकर अन्नकी समृद्धि करके सामर्थ्यकी महानतासे विराजमान हो ।

१२ ऋतावृधा ऋतस्य योनौ सीदतं [ ६६५ ]- सत्य, यज्ञ कर्मका संबर्धन करके यज्ञके स्थानपर बैठ ।

१३ नः ब्रह्माणि उपशृणु [ ६६७ ]- हमारे ज्ञान बढ़ानेवाले स्तोत्रोंको पास आकर सुन ।

१४ ब्रह्माणः त्वा युजा हवामहे [ ६६८ ]- हम ज्ञानी तुझे मित्रताके नाते सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१५ यज्ञः चेतनः जिगाति [ ६७० ]- यज्ञ चेतना उत्पन्न करके तुम्हें प्रेरणा देता है ।

१६ यज्ञस्य जूत्या कविच्छदा वृणे [ ६७१ ]- यज्ञकी प्रेरणासे प्रेरित होकर ज्ञानके छन्द धारण करनेवालोंको मैं स्वीकार करता हूँ ।

१७ उग्रं सत् महि श्रवः शर्म [ ६७२ ]- तेरे उग्रता और वीरताको बढ़ानेवाले महान् यश कल्याण करनेवाले हैं ।

१८ मानुषाणां विश्वा द्युम्नानि आ अर्यः सिषा-सन्तः वनामहे [ ६७४ ]- मनुष्योंको इष्ट सब तेजस्वी धनोंको प्राप्त करके हम तेरी सेवा करनेकी इच्छावाले तेरी सेवा करते हैं ।

१९ रत्नधा हिरण्ययः देवः ऋतस्य योनिं आसी-दसि [ ६७५ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला, सोनेके समान तेजस्वी देव यज्ञके स्थानपर बैठता है, यज्ञ करता है ।

२० वाजी विचक्षणः नृभिः धौतः आपृच्छयं धरुणं अर्पसि [ ६७६ ]- बलवान्, ज्ञानी, वीर नेताओं द्वारा निर्दोष किया गया, प्रशंसनीय कर्मोंको करता है ।

२१ स्वायुधः अशस्तिहा वृजनारक्षमाणः देवानां पिता जनिता सु-दक्षः देवः पवते [ ६७८ ]- उत्तम शस्त्रास्त्रोंको धारण करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला, उपद्रवोंको दूर करनेवाला; संरक्षण करनेवाला, उत्तम व्यवहार करनेवालोंका पालक, चतुर ही शुद्ध होता है ।

२२ विप्रः पुर एता, जनानां ऋभुः धीरः ऋषिः काव्येन विवेद [ ६७९ ]- ज्ञानी, नेता, आगे चलनेवाला, धैर्यशाली, द्रष्टा अपने ज्ञानसे सब जानता है ।

२३ अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्दृशं अभि नोनुमः [ ६८० ]- इस सब स्थावर जंगमके स्वामी और आत्मदर्शीको हम प्रणाम करते हैं ।

२४ हे इन्द्र ! त्वावान् अन्यः दिव्यः पार्थिवः न जातः न जनिष्यते [ ६८१ ]- हे इन्द्र ! तेरे समान द्युलोक और पृथ्वीपर कोई भी दूसरा न हुआ न होगा । तेरे समान तू ही है ।

२५ सदावृधः चित्रः सखा कया ऊत्या कया शचिष्ठया वृता नः आ भुवत् [ ६८२ ]- हमेशा बढने-वाला उत्तम मित्र भला कौनसी संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त होकर हमारी सहायताके लिए हमारे पास आएगा ?

२६ मंहिष्ठः सत्यः मदानां कः [ ६८३ ]- महान्, सत्यका आचरण करनेवाला आनन्द देनेवाला है ।

२७ नः शतं ऊतये सु अभि भवासि [ ६८४ ]- हमारा सैकड़ों प्रकारसे संरक्षण करनेके लिए तू उत्तम सहायता करनेवाला है ।

२८ दस्मं ऋतीपहं अन्धसः मद्दानं इन्द्रं गीर्भिः नवामहे [ ६८५ ]- सुन्दर, शत्रुओंका पराभव करनेवाले, अन्नसे आनन्दित होनेवाले इन्द्रकी वाणीसे हम स्तुति करते हैं ।

२९ द्युक्षं सुदानुं तविषीभिः आवृतं पुरुभोजसं श्रुमन्तं शतिनं सहस्रिणं गोमन्तं वाजं मक्षू ईमहे ( ६८६ )- तेजस्वी उत्तम दान करनेवाले, अनेक सामर्थ्योंसे युक्त, बहुत भोजन देनेवाले अन्नसे युक्त, सैकड़ों और हजारों प्रकारके गायोंसे उत्पन्न होनेवाले अन्नकी प्राप्ति शीघ्र हो, ऐसी इच्छा हम करते हैं ।

३० सवाधः ऊतये इन्द्रं बृहत् गाबत [ ६८७ ]- उपद्रव करनेवाले शत्रुओंसे संरक्षण करनेवाले इन्द्रके लिये बृहत् नामके सामका गान करो ।



३१ भरं न कारिणं हुवे [ ६८७ ]- भरण पोषण करनेवालेके समान कार्य करनेवालेको मैं बुलाता हूँ।

३२ सु-शिप्रं दुधाः स्थिराः सुरः न वरन्ते [ ६८८ ]- उत्तम साफा बांधनेवाले इन्द्रका प्रतीकार दुष्ट, स्थिर, और मूर्ख शत्रु नहीं कर सकते।

३३ जरित्रे उक्थ्यं दाता [ ६८८ ]- स्तुति करनेवालेको वह प्रशंसनीय धन देता है।

३४ रक्षोहा विश्व-चर्षणिः [ ६९० ]- राक्षसोंका वध करनेवाला सब मनुष्योंका हित करता है।

३५ वरिवोधातमः वृत्रहन्तमः मघोनां राधः पर्षि [ ६९१ ]- अधिक धन देनेवाला, शत्रुओंको मारनेवाला तू शत्रुओंके धन छीनकर हमें दे।

३६ मधुमत्तमः क्रतु-वित्तमः महिद्युक्षतमः [ ६९२ ]- अत्यन्त मीठा, यज्ञकी विधि उत्तम रीतिसे जाननेवाला महान् तेजस्वी है।

३७ स्वः-विदः सु-प्रकेतः इषः अभ्यक्रमीत् [ ६९३ ]- आत्मज्ञानी विशेष विद्वान् शत्रुके अन्नपर अपना अधिकार स्थापित करता है।

३८ जैत्रस्य चेतति [ ६९५ ]- विजय प्राप्त करनेका उत्साह देता है।

३९ इन्द्रः ग्राभं वृषणं वज्रं च गृभ्णाति [ ६९६ ]- वह वीर इन्द्र धनुष और बलयुक्त वज्रको धारण करता है।

४० पुरोजिती [ ६९७ ]- अपने सामने विजय है, ऐसा समझ।

४१ नरः दुरोषसं तं विश्वाच्या धिया अद्रयः सन्तु [ ६९९ ]- नेतागण, दुष्टोंका नाश करनेवाले उस वीरका सबका संरक्षण करनेवालेकी बुद्धिसे आदर करें।

४२ विष्वंचं अधिरथं विचक्षणः आरुहत् [ ७०० ]- चारों ओर जानेवाले रथपर विशेष ज्ञानी बैठा है।

४३ अस्य धियः पतिः अदाभ्यः [ ७०१ ]- इस कर्मका पालन करनेवाला दबाया नहीं जा सकता।

४४ यज्ञायज्ञा दक्षसे गिरा अमृतं प्रशंसिषम् [ ७०३ ]- प्रत्येक यज्ञमें बल प्राप्तिके लिए अपनी वाणीसे अमर देवकी स्तुति करो।

४५ ऊर्जो न-पातं [ ७०४ ]- बलको कम न करनेवालेकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

४६ वाजेषु अविता [ ७०४ ]- युद्धोंमें वह हमारा रक्षण करनेवाला है।

४७ वृधः भुवत् [ ७०४ ]- वह हमारी शक्ति बढ़ानेवाला है।

४८ तनूनां त्राता भुवत् [ ७०४ ]- वह हमारे शरीरोंकी रक्षा करनेवाला है।

४९ ते मनः यत्र क्व च तत्र उत्तरं दक्षं दधसे [ ७०६ ]- तेरा मन जहां कहीं भी हो, उत्तम बलको धारण करता है।

५० योनिं कृणवसे [ ७०६ ]- तू अपना घर तैय्यार करता है।

५१ ते पूर्तं अक्षिपत् न हि भुवत् [ ७०७ ]- तेरा तेज आखोंको हानि पहुंचानेवाला नहीं है।

५२ हे अपूर्व्य वज्रिन् ! भरन्तः वयं अवस्यवः चित्रं त्वां हवामहे [ ७०८ ]- हे अद्वितीय वज्रधारी इन्द्र ! हम तुझे हवनीय पदार्थ देते हैं, अपने संरक्षणके लिए विलक्षण शक्तिवाले तुझे सहायताके लिए बुलाते हैं।

५३ अवितारं त्वा ववृमहे [ ७०९ ]- रक्षण करनेवाले तुझे हम बुलाते हैं।

५४ कर्मन् ऊतये उप चक्राम [ ७०९ ]- कर्म करते हुए संरक्षणके लिए हम तेरे पास आते हैं।

इस प्रकार इस अध्यायमें सुभाषित हैं। पाठकोंको सरलतासे समझमें आजाए इसलिए इनका अर्थ थोड़ा विस्तारसे किया है।

### उपमा

इस प्रथम अध्यायमें आगे दी हुई उपमायें आई हैं—

१ हितः वाजी वाजं अक्रमीत् यथा वनुषः सीदन्तः [ ६५५ ]- हित करनेवाला सोम यज्ञमें उसी प्रकार जाता है, जिस प्रकार योद्धा वीर युद्धभूमिमें जाते हैं।

२ अर्वन्तः न [ ६५७ ]- घोड़े जैसे घुड़सालके बाहर जाते हैं, उसी प्रकार “पवमानस्य ते सर्गाः असृक्षत” शुद्ध होनेवाले सोमकी धारा नीचेके बर्तनमें पड़ती है।

३ धेनवः अस्तं न [ ६५९ ]- गायें जिस प्रकार अपने बाड़ेमें जाती हैं, उसी प्रकार “इन्द्रवः समुद्रं कलशं न अच्छ आ अगमन्” सोमरस पानीके बर्तनमें सीधे जाते हैं।

४ वाजिनं अश्वं न, त्वा मर्जयन्तः [ ६७७ ]- बलवान् घोड़ेको जिस प्रकार धोते हैं, उसी प्रकार सोमरसको साफ करते हैं।

५ अदुग्धाः धेनवः इव, जगतः तस्थुषः ईशानं स्वर्दशं त्वा अभिनोनुमः [ ६८० ]- बिना बुझी हुई गायें



जिस प्रकार अपने बछड़ेके पास जाती हैं, उसी प्रकार स्थावर जंगमके ईश्वर तेरे पास नम्र होकर हम आते हैं।

६ स्वसरेषु वत्सं धेनवः इव, दस्सं इन्द्रं गीर्भिः नवामहे [ ६८५ ]- गौशालामें गायें जिस प्रकार अपने बछड़ेके पास जाती हैं, उसी प्रकार दर्शनीय इन्द्रके पास अपनी वाणीसे स्तुति करते हुए हम जाते हैं।

७ भरं न, कारिणं हुवे [ ६८७ ]- भरणपोषण करने-वालेको जिस प्रकार आवरसे बुलाते हैं, उसी प्रकार कर्मशील पुरुषको हम बुलाते हैं।

८ एतशः वाजं अभि न, सु प्रकेतः इषः अभ्य-क्रीमि [ ६९३ ]- घोड़ा जिस प्रकार युद्धमें विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार उत्तम ज्ञानी इन्द्र सोमरसरूपी अन्नको प्राप्त करता है और उसपर विजय प्राप्त करता है, और उसे पी लेता है।

९ अश्वः न, इन्दुः धारया परि प्रस्यन्दते [ ६९८ ]

- घोड़ेके समान सोम धार बांधकर छाना जाता है, बर्तनमें जाता है।

१० प्रियं मित्रं न, अमृतं जातवेदसं प्रशंसिषम् [ ७०३ ]- प्रिय मित्रके समान अमर अग्निकी में प्रशंसा करता हूँ।

११ स्थूरं न, चित्रं त्वा हवामहे [ ७०८ ]- जैसे कोई महान् मनुष्यको बुलाता है, उसी प्रकार विलक्षण, श्रेष्ठ तुझे हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

१२ उदा इव गमन्तः उदभिः त्वा उप ससृग्महे [ ७१० ]- पानी लेकर जानेवाले जिस प्रकार पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हम तेरे साथ खेलते हैं।

१३ हे अद्रिचः शूर ! वार्षः यव्याभिः वर्धन्ति, वावृ-ध्वांसं त्वा चित् दिवेदिवे [ ७११ ]- हे वज्रधारी इन्द्र ! जिस प्रकार समुद्रको नदियां बढ़ाती हैं, उसी प्रकार बढ़ने-वाले तुझको हम रोज स्तुतिसे बढ़ाते हैं।

इस प्रकार ये उपमायें इस अध्यायमें आई हैं।

## प्रथमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                   | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|------------------------|-------------|---------|
| ( १ )       |              |                        |             |         |
| ६५१         | ९।१।१।१      | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ६५२         | ९।१।१।२      | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |
| ६५३         | ९।१।१।३      | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |
| ६५४         | ९।६४।२८      | कश्यपो मारीचः          | "           | "       |
| ६५५         | ९।६४।२९      | कश्यपो मारीचः          | "           | "       |
| ६५६         | ९।६४।३०      | कश्यपो मारीचः          | "           | "       |
| ६५७         | ९।६६।१०      | शतं वैखानसः            | "           | "       |
| ६५८         | ९।६६।११      | शतं वैखानसः            | "           | "       |
| ६५९         | ९।६६।१२      | शतं वैखानसः            | "           | "       |
| ( २ )       |              |                        |             |         |
| ६६०         | ६।१६।१०      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | अग्निः      | "       |
| ६६१         | ६।१६।११      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | "           | "       |
| ६६२         | ६।१६।१२      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | "           | "       |
| ६६३         | ३।६२।१६      | विश्वामित्रो गाथिनः    | मित्रावरुणौ | "       |
| ६६४         | ३।६२।१७      | विश्वामित्रो गाथिनः    | "           | "       |



| अंशसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                            | देवता       | छन्दः  |
|-----------|--------------|---------------------------------|-------------|--|
| ६६५       | ३।६१।१८      | विश्वामित्रो गाथिनः जमदग्निर्वा | मित्रावरुणौ | गायत्री  |
| ६६६       | ८।१७।१       | इरिम्बिठिः काण्वः               | इन्द्रः     | "  |
| ६६७       | ८।१७।२       | इरिम्बिठिः काण्वः               | "           | "  |
| ६६८       | ८।१७।३       | इरिम्बिठिः काण्वः               | "           | "  |
| ६६९       | ३।१२।१       | विश्वामित्रो गाथिनः             | इन्द्राग्नी | "  |
| ६७०       | ३।१२।२       | विश्वामित्रो गाथिनः             | "           | "  |
| ६७१       | ३।१२।३       | विश्वामित्रो गाथिनः             | "           | "  |
| ( ३ )     |              |                                 |             |  |
| ६७२       | ९।६१।१०      | अमहीयुरांगिरसः                  | पवमानः सोमः | "  |
| ६७३       | ९।६१।१२      | अमहीयुरांगिरसः                  | "           | "  |
| ६७४       | ९।६१।१२      | अमहीयुरांगिरसः                  | "           | "  |
| ६७५       | ९।१०७।४      | सप्तर्षयः                       |             | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती )         |
| ६७६       | ९।१०७।५      | सप्तर्षयः                       | "           | "  |
| ६७७       | ९।८७।१       | उशना काव्यः                     | "           | त्रिष्टुप्                                     |
| ६७८       | ९।८७।२       | उशना काव्यः                     | "           | "  |
| ६७९       | ९।८७।३       | उशना काव्यः                     | "           | "  |
| ( ४ )     |              |                                 |             |  |
| ६८०       | ७।३२।२२      | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः            | इन्द्रः     | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती )         |
| ६८१       | ७।३२।२३      | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः            | "           | "  |
| ६८२       | ४।३१।१       | वामदेवो गौतमः                   | "           | गायत्री  |
| ६८३       | ४।३१।२       | वामदेवो गौतमः                   | "           | "  |
| ६८४       | ४।३१।३       | वामदेवो गौतमः                   | "           | पावनिचूत्                                      |
| ६८५       | ८।८८।१       | नौधा गौतमः                      | "           | प्रगाथः ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती )         |
| ६८६       | ८।८८।२       | नौधा गौतमः                      | "           | "  |
| ६८७       | ८।६६।१       | कलिः प्रागाथः                   | "           | "  |
| ६८८       | ८।६६।२       | कलिः प्रागाथः                   | "           | "  |
| ( ५ )     |              |                                 |             |  |
| ६८९       | ९।१।१        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः         | पवमानः सोमः | गायत्री  |
| ६९०       | ९।१।२        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः         | "           | "  |
| ६९१       | ९।१।३        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः         | "           | "  |
| ६९२       | ९।१०८।१      | गौरवीति शाक्यः                  | "           | काकुभः प्रागाथः ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| ६९३       | ९।१०८।२      | गौरवीति शाक्यः                  | "           | "  |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                            | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|---------------------------------|-------------|---|
| ६९४         | ९।१०६।१      | अग्निश्चाक्षुषः                 | पवमानः सोमः | उष्णिक्                                       |
| ६९५         | ९।१०६।२      | अग्निश्चाक्षुषः                 | "           | "   |
| ६९६         | ९।१०६।३      | अग्निश्चाक्षुषः                 | "           | "   |
| ६९७         | ९।१०१।१      | अन्धीगुः श्यावाश्विः            | "           | अनुष्टुप्                                     |
| ६९८         | ९।१०१।२      | अन्धीगुः श्यावाश्विः            | "           | गायत्री                                       |
| ६९९         | ९।१०१।३      | अन्धीगुः श्यावाश्विः            | "           | "   |
| ७००         | ९।७५।१       | कविभर्गवः                       | "           | जगती  |
| ७०१         | ९।७५।२       | कविभर्गवः                       | "           | "   |
| ७०२         | ९।७५।३       | कविभर्गवः                       | "           | "   |
| ( ६ )       |              |                                 |             |   |
| ७०३         | ६।४८।१       | शंयुर्बाह्रस्पत्यः ( तूणपाणिः ) | अग्निः      | प्रगाथः ( विषमा बृहती समा सतो बृहती )         |
| ७०४         | ६।४८।२       | शंयुर्बाह्रस्पत्यः ( तूणपाणिः ) | "           | "   |
| ७०५         | ६।१६।१६      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः           | "           | गायत्री                                       |
| ७०६         | ६।१६।१७      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः           | "           | "   |
| ७०७         | ६।१६।१८      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः           | "           | "   |
| ७०८         | ८।११।१       | सोभरिः काण्वः                   | इन्द्रः     | काकुभः प्रगाथः ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| ७०९         | ८।११।२       | सोभरिः काण्वः                   | "           | "   |
| ७१०         | ८।१२।७       | नृमेघ आंगिरसः                   | "           | ककुप्   |
| ७११         | ८।१२।८       | नृमेघ आंगिरसः                   | "           | उष्णिक्                                       |
| ७१२         | ८।१२।९       | नृमेघ आंगिरसः                   | "           | पुरजुष्णिक्                                   |





## अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ १ ॥

[ १ ]

( १-२२ ) १, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; २, ८, १३-१५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ मेधातिथिः काण्वः; प्रियमेध-  
श्चांगिरसः; ५ इरिम्बिठिः काण्वः; ६ कुसीदी काण्वः; ७ त्रिशोकः काण्वः; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० मधुच्छन्दा  
वैश्वामित्रः; ११ शुनःशेष आजोगतिः; १२ नारदः काण्वः; १६ अवत्सारः काश्यपः; १७ ( १ ) शुनःशेष आजो-  
गतिः स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः; १७ ( २-३ ) मेधातिथिः काण्वः; १८ ( १, ३ ) असितः काश्यपो देवलो  
वा; १८ ( २ ) अमहीयुरांगिरसः; १९ त्रित आपत्यः; २० सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो  
मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिभौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भागवः, ७ वसिष्ठो  
मैत्रावरुणिः ); २१ शावाश्व आत्रेयः; २२ ( १-२ ) अग्निश्चाक्षुषः; २२ ( ३ ) प्रजापतिर्वैश्वामित्रो  
वाच्यो वा ॥ १-१२ इन्द्रः; १३ अग्निः; १४ उषाः; १५ अश्विनौ; १६-२२ पवमानः सोमः ॥  
१ ( २-३ )-११; १६-१९, २१; गायत्री, १२, २२ ( १-२ ) उष्णिक्; १३-१५,  
२० प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १ ( १ ), २२ ( ३ ) अनुष्टुप् ।

७१३ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।

विश्वासाहंशतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९२।१ )

७१४ पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्या३ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।२ )

७१५ इन्द्र इन्द्रो महोनां दाता वाजानां नृतुः । महाअभिश्वा यमत्

॥ ३ ॥ १ ( वा ) ॥

( ऋ. ८।९२।३ )

७१६ प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपान्ने

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३१।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ७१३ ] ( वः अन्धसः आपान्तं ) तुम्हारे द्वारा दिए गए सोमरूप अन्नका पान करनेवाले, ( विश्वा-साहं )  
सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले ( शत-क्रतुं ) सैंकड़ों प्रकारके कर्म करनेवाले ( चर्षणीनां-मंहिष्ठं ) मनुष्योंमें बहुत  
महान् ( इन्द्रं अभि प्रगायत ) इन्द्रकी स्तुतिका गान करो ॥ १ ॥

[ ७१४ ] ( पुरु-हूतं ) बहुत लोग सहायताके लिए जिसे बुलाते हैं, ( पुरुष्टुतं ) बहुत लोग जिसकी स्तुति करते हैं,  
( गाथान्यं ) जो स्तुति करनेके योग्य है, ( सन-श्रुतं ) सनातन कालसे जो प्रसिद्ध है, ( इन्द्रं इति ब्रवीतन ) उस इन्द्रकी  
इस प्रकार स्तुति करो ॥ २ ॥

[ ७१५ ] ( नृतुः ) सबको चलानेवाला ( महोनां वाजानां दाता ) महान् धन और अन्नको देनेवाला ( महान्  
इन्द्रः इत् अभि-शुः ) महान् इन्द्र ही हमारे सामने आकर ( नः ) हमें ( आ यमत् ) धन आदि देवे ॥ ३ ॥

१ नृतुः— सबको नचानेवाला, सबको चलानेवाला ।

२ अभिः-शुः— सामनेसे देखनेवाला ।

[ ७१६ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( वः ) तुम ( हर्यश्वाय ) घोड़ोंको पास रखनेवाले ( सोम-पान्ने ) सोम  
पीनेवाले इन्द्रको ( मादनं प्रगायत ) आनन्द देनेवाले स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥

१ हर्यश्वः ( हरि-अश्वः ) लाल घोड़े जिसके पास रहते हैं ।



७१७ शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चक्रुमा सत्यराधसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३।१२ )

७१८ त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥ २ ( गौ ) ॥  
( ऋ. ७।३।१३ )

७१९ वयमु त्वा तदिदथा इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२।१६ )

७२० न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।२।१७ )

७२१ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥ ३ ( पा ) ॥  
( ऋ. ८।२।१८ )

७२२ इन्द्राय मद्रने सुतं परि शोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२।१९ )

७२३ यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।२।२० )

[ ७१७ ] ( उत ) और हे मित्रो ! ( सु-दानवे ) उत्तम वान देनेवाले, ( सत्य-राधसे ) सत्यतासे अपने पास धन रखनेवाले इन्द्रके लिए ( उक्थं ) स्तोत्रोंका गान करो, ( नरः ) स्तुति करनेवाले दूसरे लोग जिस प्रकार स्तुति करते हैं, वसी स्तुति तुम ( द्युक्षं शंस ) तेजस्वी रीतिसे करो, ( इत् चक्रुम ) और हम भी उसकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ ७१८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं नः वाज-युः ) तू हमें अन्न देनेवाला हो, हे ( शत-क्रतो ) अनेक प्रकारसे पराक्रम करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं गव्युः ) तू गाय देनेवाला हो, हे ( वसो ) सबको बसानेवाले इन्द्र ! ( त्वं हिरण्ययुः ) तू सोना देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ ७१९ ] हे इन्द्र ! ( त्वायन्तः ) तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ( सखायः ) हम मित्र ( तदिदथाः ) उसी प्रयोजनके लिए ( त्वा ) तेरी स्तुति करते हैं, ( उ ) और ( कण्वाः ) कण्वगोत्रमें उत्पन्न होनेवाले लोग भी ( उक्थेभिः जरन्ते ) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ ७२० ] हे ( वज्रिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( अपसः ) यज्ञ कर्मोंमेंसे ( तव नविष्टौ ) तेरे नये यज्ञमें ( अन्यत् घेम् ) में तेरे स्तोत्रके सिवाय दूसरेके स्तोत्र ( न आ-पपन ) कहूंगा ही नहीं । ( तव इत् उ ) तेरी ही ( स्तोत्रैः चिकेत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करना मैं जानता हूँ ॥ २ ॥

[ ७२१ ] ( देवाः ) देवगण ( सुन्वन्तं इच्छन्ति ) सोमयज्ञ करनेवालेसे प्रेम करते हैं, ( स्वप्नाय न स्पृह-यन्ति ) आलसीसे प्रेम नहीं करते, ( अतन्द्राः ) परिश्रमी देव ( प्रमादं यन्ति ) परम आनन्द देनेवाले सोमको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[ ७२२ ] ( मद्रने इन्द्राय ) आनन्ददायक सोमरसकी इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए ( सुतं ) सोमरस तैय्यार करनेवाले ( नः गिरः परिशोभन्तु ) हमारी वाणी उसकी स्तुति करती है, ( कारवः ) स्तोतागण ( अर्कं अर्चन्तु ) स्तुतिके योग्य सोमकी स्तुति करें ॥ १ ॥

[ ७२३ ] ( यस्मिन् ) जिस इन्द्रमें ( विश्वाः श्रियः अधि ) सारी शोभायें रहती हैं, और ( सप्त संसदः रणन्ति ) जिसकी स्तुति यज्ञके सात ऋत्विज करते हैं, उस ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( सुते हवामहे ) सोमयज्ञमें हम बुलाते हैं ॥ २ ॥



७२४ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमन्त । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः

॥ ३ ॥ ४ ( ला ) ॥

( ऋ ८।९२।२१ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

७२५ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥ ( ऋ ८।१७।११ )

७२६ शाचिगो शाचिपूजनाय रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ २ ॥ ( ऋ ८।१७।१२ )

७२७ यस्ते शृङ्गवृषो णपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यसि दध आ मनः ॥ ३ ॥ ५ ( दि ) ॥

( ऋ ८।१७।१३ )

७२८ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्रामं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥ ( ऋ ८।८१।१ )

७२९ विद्वा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥ ( ऋ ८।८१।२ )

७३० न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥ ६ ( के ) ॥

( ऋ ८।८१।३ )

[ ७२४ ] ( देवाः ) सब देव ( त्रि-कद्रुकेषु ) यज्ञके तीन दिनमें ( चेतनं ) उत्साह बढ़ानेवाले यज्ञका ( अन्तः ) विस्तार करते हैं । ( तं इत् ) उसीकी ( नः गिरः वर्धन्तु ) हमारी वाणी प्रशंसा करती है ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७२५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( अयं सोमः ) यह सोम ( बर्हिषि अधि ) वेदीपर ( निपूतः ) छाना जाता है, ( ईं अस्य एहि ) इसके पास आ ( द्रवा ) शीघ्र आ, और ( पिब ) उसे पी ॥ १ ॥

[ ७२६ ] ( शाचि-गो ) सामर्थ्यवान् किरणोंसे युक्त और ( शाचि-पूजन ) शक्तिशाली होनेके कारण पूजे जानेवाले, ( आ-खण्डल ) शत्रुओंको तोड़नेवाले हे इन्द्र ! ( ते रणाय ) तुझे सुख हो इसलिए ( अयं सुतः ) यह रस तैय्यार किया है, इसलिए ( प्र हूयसे ) तुझे बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७२७ ] ( शृङ्गः-वृषः-न-पात् ) किरणोंके विस्तारको संकुचित न करनेवाले इन्द्र ! ( ते प्रणपात् ) तेरा सहायक ( यः कुण्डपाय्यः ) कुण्डपाय्य नामका जो सोम-पानका यज्ञ है, ( अस्मिन् मनः आ नि दधे ) उसमें अपना मन लगा ॥ ३ ॥

१ शृङ्गः-वृषः-न-पात् — किरणोंके प्रसारको कम न करनेवाला । प्रकाशको जो फैलाता है ।

२ कुण्ड-पाय्यः — जिसमें बड़े बर्तनसे सोम पिया जाता है ऐसा यज्ञ ।

[ ७२८ ] हे इन्द्र ! ( महा-हस्ती ) बड़े हाथोंवाला तू ( नः ) हमारे लिए ( क्षु-मन्तं चित्रं ग्रामं ) तेजस्वी, विलक्षण और स्वीकार करनेके योग्य धन ( दक्षिणेन सं गृभाय ) दायें हाथसे धारण कर, धन देनेके लिए हाथोंमें धन धारण कर ॥ १ ॥

[ ७२९ ] हे इन्द्र ! ( तुविकूर्मिं ) अनेक पराक्रम करनेवाले ( तुवि-देष्णं ) देने योग्य बहुतसे धनको अपने पासमें रखनेवाले ( तुवि-मघं ) महान् धनवान् ( तुवि-मात्रं ) महान् आकारवाले ( अवोभिः ) संरक्षणके अनेक साधनोंसे युक्त ( त्वा ) तुझे ( विद्वा हि ) हम जानते हैं ॥ २ ॥

[ ७३० ] हे ( शूर ) वीर इन्द्र ! ( दित्सन्तं त्वा ) देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( देवाः ) देव और ( मर्तासः ) मनुष्य भी ( न वारयन्ते ) किसी प्रकार हटा नहीं सकते, जिस प्रकार ( हि भीमं गां न ) भयंकर बैलको कोई हटा नहीं सकता ॥ ३ ॥

४ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



७३१ <sup>३ १ २</sup> अभि त्वा <sup>३ २ ३ १ २</sup> वृषभा सुते सुतः <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> सृजामि पीतये । <sup>३ १ २</sup> तृप्सा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४५।२२ )

७३२ <sup>१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २</sup> मा त्वा मूरा <sup>१ २ ३ १ २</sup> अविष्यवो मोपह्रस्वान आ दभन् । <sup>१ २ ३ १ २</sup> मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।४५।२३ )

७३३ <sup>३ २ ३ १ २</sup> इह त्वा गोपरीणसं <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> महे मन्दन्तु राधसे । <sup>१ २ ३ १ २</sup> सरो गौरो यथा पिव ॥ ३ ॥ ७ ( या ) ॥

( ऋ. ८।४५।२४ )

७३४ <sup>३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इदं वसो सुतमन्धः <sup>१ २ ३ १ २</sup> पिवा सुपूर्णमुदरम् । <sup>१ २ ३ १ २</sup> अनाभयिन्नरिमा ते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२।१ )

७३५ <sup>१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> नृभिर्धौतः सुतो अश्वैरव्या वारैः परिपूतः । <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।२।२ )

७३६ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्र त्वास्मित्सधमादे ॥ ३ ॥ ८ ( थौ ) ॥

( ऋ. ८।२।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

७३७ <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> इदं ह्यन्वोजसा सुतः <sup>१ २ ३ १ २</sup> राधानां पते । <sup>१ २ ३ १ २</sup> पिवा त्वाऽस्य गिर्वणः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।११।१० )

[ ७३१ ] हे ( वृषभ ) बलवान् इन्द्र ! ( सुते त्वा ) सोमयज्ञमें तेरे ( पीतये सुतं अभि सृजामि ) पीनेके लिए सोमरस अच्छी तरह तैय्यार करता हूँ, ( तृप्सा ) तू उससे तृप्त हो, और ( मदं व्यश्नुहि ) उस आनन्ददायक रसको पी ॥ १ ॥

[ ७३२ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( अविष्यवः मूराः ) रक्षणकी इच्छा करनेवाले मूर्ख ( मा दभन् ) न दबावें, तेरा ( उपह्रस्वानः मा ) उपहास करनेवाले भी तुझे न दबावें, ( ब्रह्म-द्विषं ) ज्ञानसे द्वेष करनेवालेकी ( मा कीं वनः ) तू सहायता न कर ॥ २ ॥

[ ७३३ ] हे इन्द्र ! ( इह ) इस यज्ञमें ( गो-परीणसं ) गायके दूधसे मिला हुआ सोमरस अर्पण करके याजक ( महे राधसे ) बहुत सारा धन प्राप्त करनेके लिए ( त्वा मन्दन्तु ) तुझे आनन्दित करते हैं। ( यथा गौरः सरः ) जिस प्रकार मृग तालावपर जाकर पानी पीता है, उसी प्रकार तू ( पिव ) सोमरस पी ॥ ३ ॥

[ ७३४ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( इदं सुतं अन्धः ) यह सोमरसरूपी अन्न तू ( उदरं सु-पूर्णं ) पेट भरकर ( पिब ) पी, हे ( अनाभयिन् ) निर्भय इन्द्र ! ( ते ररिम ) तुझे हम सोमरस देते हैं ॥ १ ॥

[ ७३५ ] ( नृभिः धौतः ) याजकोंसे स्वच्छ किया गया, ( अश्वैः सुतः ) पत्थरोंसे कूटकर निकाला गया यह रस ( अव्या वारैः परिपूतः ) भेड़के बालोंसे बनी छलनीसे छाना गया है। ( नदीषु अश्वः न ) नदीमें जिस प्रकार घोड़ेको धोते हैं, उसी प्रकार पानीमें धोया हुआ और ( निक्तः ) छानकर तैय्यार किया गया यह रस है ॥ २ ॥

[ ७३६ ] हे इन्द्र ! ( तं ते ) वह रस तुझे देनेके लिए ( यवं यथा ) जिस प्रकार जीका पुरोडाश बनाते हैं, उसी प्रकार ( गोभिः श्रीणन्तः ) गायके दूध आदिसे मिलाकर ( स्वादु अकर्म ) मीठा किया गया है। हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वा अस्मिन् सधमादे ) तुझे इस यज्ञमें आनन्द प्राप्तिके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ७३७ ] ( राधानां पते ) हे धनपते ! ( गिर्वणः ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( ओजसा ) बलसे युक्त तू ( इदं सुतं अनु ) इस सोमरसके अनुकूल होकर ( अस्य नु पिव ) इसको पी ॥ १ ॥



७३८ यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सौम्य ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।२।११ )

७३९ प्र ते अश्नोतु कुक्ष्याः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राघवसा ॥ ३ ॥ ९ (पी) ॥  
( ऋ. ३।५।१२ )

७४० आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥९॥ ( ऋ. १।१।१ )

७४१ पुरुतमं पुरुणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रसोमै सुचा सुते ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१।२ )

७४२ स घा नौ योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या । गमद्राजेभिरा स नः ॥ ३ ॥ १० (टी) ॥  
( ऋ. १।१।३ )

७४३ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमृतये ॥ १॥ ( ऋ. १।३।३ )

७४४ अनु प्रत्नस्यौकसो ह्रुवे तुविप्रति नरम् । यं ते पू<sup>१२</sup>र्व<sup>३१</sup> पिता ह्रुवे<sup>२४</sup> ॥ २ ॥ (ऋ १।३०।९)

[ ७३८ ] हे इन्द्र ! ( ते यः ) तेरे लिए यह सोम ( स्वधां अनु असत् ) अन्नके समान है, ( सुते ) इस सोम यज्ञमें तू ( तन्वं नियच्छ ) अपने शरीरको ले जा, और हे ( सोम्य ) सोमके योग्य इन्द्र ! ( सः त्वा ममन्तु ) वह सोम तुझे आनन्दित करे ॥ २ ॥

[ ७३९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सः ते कुक्ष्योः प्राश्नातु ) वह सोम तेरे कुक्षियोंमें भरा रहे। ( ब्रह्मणा शिरः ) स्तोत्र द्वारा वह तेरे सिरतक-सब शरीरमें-पहुंचे, हे ( शूर ) शूर इन्द्र ! ( राधसा बाहू प्र ) धन देनेके लिए तेरे बाहु भी उसे प्राप्त हों ॥ ३ ॥

[ ७४० ] हे ( स्तोम-वाहसः सखायः ) यज्ञ करनेवाले मित्रो ! ( तु आ एत ) शीघ्र आओ, ( निर्षीदत ) बँठो, और ( इन्द्रं अभि प्र गायत ) इन्द्रको लक्ष्य करके साम-गान करो. ॥ १ ॥

[ ७४१ ] ( सचा ) एक जगह बैठकर ( सुते ) सोम यज्ञमें ( पुरुतमं ) बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाले, ( पुरुणां वार्याणां ईशानां ) बहुत श्रेष्ठ धनोंके स्वामी ( इन्द्रं ) इन्द्रकी स्तुति करो ॥ २ ॥

१ पुरु-तमः— बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाला ।

२ तमः— नाश करनेवाला ।

३ वार्ये— ग्रहण करने योग्य धन ।

[ ७४२ ] ( सः घ ) वह निश्चयसे ( नः योगे ) हमारे पुरुषार्थके ( आभुवत् ) कर्षसे सहायक होवे, ( सः राये ) वह धन प्राप्त करनेके कार्यमें ( सः पुरन्ध्यां ) वह बहुत बुद्धि प्राप्त करनेके कार्यमें सहायक होवे, ( सः वाजेभिः नः आगमत् ) वह अन्नके साथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

१ पुरं-धी - बहुत बुद्धि, स्त्री ।

२ योग— अपनी सहायतासे मिले हुए धन, जोड़ना ।

[ ७४३ ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( योगे-योगे ) प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें ( वाजे-वाजे ) और प्रत्येक युद्धमें ( तवस्तरं इन्द्रं ) अत्यन्त बलवान् इन्द्रको ( ऊतये हवामहे ) संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ७४४ ] ( प्रतनस्य ओकसः ) अपने प्राचीन घरसे ( तुवि-प्रति ) बहुतोंके पास जानेवाले ( नरं ) नेता इन्द्रको ( अनु हुवे ) मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ ( यं ते ) जिसको ( पिता पूर्वं हुवे ) मेरे पिताने पहले बुलाया था ॥ २ ॥  
१ प्रतनस्य ओकसः - इन्द्रका प्राचीन घर यह विद्वत् है । यत्नः यत्नः ।

१ प्रतनस्य ओकसः - इन्द्रका प्राचीन घर यह विश्व है। स्वर्गधाम है।

✱



७४५ आ घा गमद्यदि श्रवत्सहासिणीभिरुतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ३ ॥ ११ (ला) ॥  
( ऋ. १।३०।८ )

७४६ इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।  
विदे वृधस्य दक्षस्य महान् हि षः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१३।१ )

७४७ स प्रथमे व्योमनि देवानां सदनं वृधः ।  
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१३।२ )

७४८ तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।  
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥ १२ (वा) ॥ ( ऋ. ८।१३।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

७४९ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।  
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१६।१; वा. य. ३।५ )

[ ७४५ ] ( यदि नः हवं श्रवत् ) यदि वह हमारी प्रार्थना सुन लेगा तो ( सहसिणीभिः ऊतिभिः सह ) हजारों तरहके संरक्षणके साधनोंके साथ और ( वाजेभिः ) अन्नके साथ वह ( उप आगमत् ) हमारे पास आयेगा ( आ घ ) यह निश्चित है ॥ ३ ॥

[ ७४६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सुतेषु सोमेषु ) सोमरस निकालनेके बाद ( वृधस्य दक्षस्य विदे ) महान् बल प्राप्त करनेके लिए ( क्रतुं उक्थ्यं पुनीषे ) कर्म और स्तोत्रोंको तू पवित्र करता है, ( सः महान् हि ) ऐसा वह तू महान् है ॥ १ ॥

[ ७४७ ] ( सः ) वह इन्द्र ( प्रथमे व्योमनि देवानां सदनं ) प्रथम आकाशमें देवोंके घरमें ( वृधः ) यजमानको बढ़ानेवाला ( सुपारः ) उत्तम प्रकारसे दुःखोंसे पार करानेवाला ( सु-श्रवस्तमः ) उत्तम यज्ञस्वी ( सं अप्सुजित् ) राक्षसोंको जीतनेवाला रहता है, उसे हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

१ सं-अप्सु-जित् — पानीको रोकनेवाले राक्षसोंको जीतनेवाला । पानीको रोकनेवाले मेघ अथवा बर्फ होते हैं, उस प्रतिबन्धको दूर करनेवाला ।

२ देवानां सदनं — स्वर्ग ।

[ ७४८ ] ( तं उ ) उस ( शुष्मिणं इन्द्रं ) बलवान् इन्द्रको ( वाज-सातये भराय ) अन्न प्राप्त करानेवाले यज्ञके लिए ( हुवे ) बुलाता हूँ । हे इन्द्र ! ( सु-म्ने अन्तमः भव ) सुखके समय हमारे पास रह, उसी प्रकार ( वृधे सखा ) उन्नतिके समय मित्र होकर हमारे पास रह ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ७४९ ] ( वः ) तुम्हारे लिए ( एना नमसा ) इन स्तोत्रोंसे ( ऊर्जः न-पातं ) बलको कम न करनेवाले, ( प्रियं चेतिष्ठं ) प्रिय और चेतना देनेवाले ( अरतिं ) प्रगतिशील ( सु अध्वरं ) उत्तम यज्ञ करनेवाले ( विश्वस्य दूतं ) सभी याजकोंके दूत ( अमृतं अग्निं ) अमर अन्नको ( आ हुवे ) मैं बुलाता हूँ ॥ १ ॥



- ७५० स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।  
 सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवः राधो जनानाम् ॥ २ ॥ १३ ( तु ) ॥ ( ऋ. ७।१६।२ )
- ७५१ प्रत्यु अदर्श्यायत्यूर्च्छन्ती दुहिता दिवः ।  
 अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिः कृणोति सूनरी ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।८१।१ )
- ७५२ उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्  
 तवेदुषा व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥ १४ ( वा ) ॥ ( ऋ. ७।८१।२ )
- ७५३ इमा उ वां दिविष्टय उस्मा हवन्ते अश्विना ।  
 अयं वामहेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।७४।१ )
- ७५४ युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।  
 अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥ १५ ( चा ) ॥ ( ऋ. ७।७४।२ )
- ॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ७५० ] ( सः ) वह अग्नि ( अरुषा विश्व-भोजसा ) तेजस्वी और सर्वभक्षक अश्वोंको ( योजते ) अपने रथमें जोड़ता है । उसके बाद ( सु-ब्रह्मा ) उत्तम ज्ञानी ( यज्ञः ) पूज्य ( सु-शमी ) उत्तम संयमी ( स्वाहुतः ) उत्तम आहुतियोंसे प्रदीप्त हुआ वह अग्नि देवोंको लानेके लिए ( दुद्रवत् ) जाता है । तब ( देवं ) उस अग्निको ( वसूनां राधः ) धनोंका ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ ७५१ ] ( आयती उच्छन्ती ) आकर चमकनेवाली ( दिवः दुहिता उषाः ) ध्रुलोककी पुत्री उषा ( प्रति अदर्श ) बीखने लगी है, वह ( मही तमः उ ) महान् अन्धकारको ( चक्षुषा उप वृणुते उ ) प्रकाशसे हराती है ( सूनरी ज्योतिः कृणोति ) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा प्रकाश करती है ॥ १ ॥

[ ७५२ ] ( सूर्यः ) सूर्य ( सचा ) एकदम ( उदुस्त्रियाः ) अपनी किरणोंको फैलाता है, ( उद्यत् ) उदय होनेके बाद ( नक्षत्रं ) आकाशमें ग्रह नक्षत्र प्रकाश फैलाते हैं । हे ( उषः ) उषे ! ( तव सूर्यस्य च ) तेरे और सूर्यके ( व्युषि ) प्रकाश होनेके बाद ( भक्तेन संगमेमहि इत् ) अन्नसे हम युक्त हों ॥ २ ॥

[ ७५३ ] हे ( अश्विना ) अश्विनो देवो ! ( इमा दिविष्टयः उ ) इस स्वर्गकी इच्छा करनेवालीं प्रजायें ( उस्मौ वां हवन्ते ) सबको बसानेवाले तुम्हें सहायताके लिए बुलाती हैं, हे ( शची-वसू ) अपनी शक्तिसे निवास करनेवाले देवो ! ( अयं ) यह स्तुति करनेवाला ( अवसे ) संरक्षणके लिए ( वां अहे ) तुम्हें बुलाता है, ( हि ) क्योंकि तुम ही ( विशं विशं गच्छथः ) प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ॥ १ ॥

[ ७५४ ] ( नरा ) हे नेताओ ! अश्विदेवो ! ( युवं ) तुम ( चित्रं भोजनं ददथुः ) विलक्षण भोजन देते हो, ( सूनृतावते चोदेथां ) स्तुति करनेवालेको तुम प्रेरित करते हो, तुम ( स-मनसा ) एक विचारसे ( रथं अर्वाक् नियच्छतं ) रथको इधर रोको और यहां ( सोम्यं मधु पिबतं ) मीठा सोमरस पियो ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ५ ]

७५५ अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुहे अह्यः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१४।१ )

७५६ अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१४।२ )

७५७ अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ १६ ( ते ) ॥  
( ऋ. ९।१४।३ )

७५८ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१५ )

७५९ एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१५।२ )

७६० दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि पिच्यसे । क्रन्दं देवा अजीजनः ॥ ३ ॥ १७ ( हा ) ॥  
( ऋ. ९।१५।३ )

७६१ उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे । पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१६ )

७६२ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१६।१३ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ७५५ ] ( अस्य ) इस सोमरसके ( प्रत्नां द्युतं अनु ) पुराने तेजको याव करके ( शक्रं सहस्रसां ) तेजस्वी और हजारों इच्छा पूर्ण करनेवाले ( ऋषि पयः ) ज्ञानवर्धक रसको ( अह्यः दुदुहे ) ज्ञानी गण तैय्यार करते हैं ॥ १ ॥

[ ७५६ ] ( अयं ) यह सोम ( सूर्यः इव ) सूर्यके समान ( उप-दृक् ) सबको देखनेवाला है, ( अयं सरांसि धावति ) यह [ तीस ] जलके पात्रोंमें छाना जाता है, उसी प्रकार ( आ दिवम् ) छुलोकतक यह ( सप्त प्रवते ) सात धाराओंमें बहता है ॥ २ ॥

१ संरासि— [ तीस ] पानीके वर्तन ।

२ धावति— बौझता है, छाना जाता है ।

[ ७५७ ] ( अयं पुनानः सोमः ) यह पवित्र होनेवाला सोमरस ( विश्वानि भुवना उपरि ) सब भुवनोपरि ( सूर्यः देवः न ) सूर्यदेवके समान ( तिष्ठति ) प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[ ७५८ ] ( हरिः एषः देवः ) हरे रंगका यह सोम ( प्रत्नेन जन्मना ) पहलेसे ही ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंके लिए निचोडकर ( पवित्रे अर्षति ) छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ७५९ ] ( प्रत्नेन मन्मना ) प्राचीन स्तोत्रोंकी सहायतासे ( एषः देवः ) यह प्रकाशमान ( कविः ) ज्ञानी सोम ( देवेभ्यः ) देवोंके लिए ( विप्रेण परिवावृधे ) ब्राह्मणों द्वारा बढ़ाया जाता है ॥ २ ॥

[ ७६० ] ( प्रत्नं इत् पयः ) पहलेसे यह रस वर्तनमें ( दुहानः ) निचोडा जाता है, और बादमें ( पवित्रे परि-पिच्यसे ) छलनीसे छाना जाता है । यह ( क्रन्दन् ) शब्द करता हुआ ( देवान् अजीजनः ) देवोंको मानों यज्ञमें बुलाता है ॥ ३ ॥

[ ७६१ ] है ( पवमान ) सोम ! ( उप-तस्थुषः ) पासमें बैठनेवालोंको ( उप शिक्ष ) समझाकर बता और ( शत्रुके ) शत्रुको ( भियसं आधेहि ) भय हो ऐसा कर तथा ( रयिं विदाः ) धन हमें दे ॥ १ ॥

[ ७६२ ] सोमरस ( जातं ) निकालनेके बाद ( अप्-तुरं ) पानीमें मिलाया जाता है । ( भंगं ) शत्रुके नाश करनेवाले ( गोभिः परिष्कृतं ) गायके बूधसे मिले हुए ( इन्दुं ) सोमरसके पास ( देवाः उप अयासिषुः ) देव जाते हैं ॥ २ ॥



७६३ उपासै गायता नरः पवमानायैन्दवे । अभि देवा इयक्षते ॥ ३ ॥ १८ ( वौ ) ॥

( ऋ. ९।११।१ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

७६४ प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३३।१ )

७६५ अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाज गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३३।२ )

७६६ सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥ १९ ( वि ) ॥

( ऋ. ९।३३।३ )

७६७ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

अंशो पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१२ )

७६८ आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।

तमींहिन्वन्त्यपसा यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ २ ॥ २० ( रु ) ॥ ( ऋ. ९।१०७।१३ )

७६९ प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३२।१ )

[ ७६३ ] हे ( नरः ) याजको ! ( देवान् अभि इयक्षते ) देवोंके लिए यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले यज्ञमानकी अपेक्षा ( पवमानाय असै इन्दवे ) छाने जानेवाले इस सोमके लिए ( उप-गायत ) सामका गान करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाँचवाँ खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ७६४ ] ( विपश्चितः ऊर्मयः सोमासः ) ज्ञान बढ़ानेवाले ये सोमरस ( वनानि महिषाः इव ) जिस प्रकार वनमें भँसे जाते हैं उसी प्रकार ( आपः प्र नयन्ते ) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ १ ॥

[ ७६५ ] ( बभ्रवः शुक्राः ) भूरे रंगके ये सोमरस ( ऋतस्य धारया ) पानीकी धाराके साथ ( द्रोणान् ) पात्रमें ( गोमन्तं वाजं ) गौ दूधरूपी अश्वके साथ ( अभि अक्षरन् ) मिलाये जाते हैं ॥ २ ॥

[ ७६६ ] ( सुताः सोमाः ) सोमरस निचुड़नेके बाद इन्द्र, वायु, मरुत्, विष्णु इन देवोंको ( अर्षन्तु ) प्राप्त हों ॥ ३ ॥

[ ७६७ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( देव-वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( अर्णसा ) पानीमें ( सिन्धुः न ) जिस प्रकार नदियां पानीसे भरी जाती हैं, उसी प्रकार ( प्र पिप्ये ) मिलाया जाता है । ( मदिरः न जागृविः ) आनन्द देनेवाले पदार्थोंके समान तू उत्साह बढ़ानेवाला है, ( अंशोः ) इस सोमरसकी ( पयसा ) दूधमें मिलाओ, बादमें ( मधुश्चुतं कोशं अच्छ ) इस मीठे रसको रखनेके बर्तनमें अच्छी तरह भरो ॥ १ ॥

[ ७६८ ] ( हर्यतः सूनुः न ) प्रिय पुत्रके समान ( मर्ज्यः अर्जुनः ) शुद्ध होनेवाला यह स्वच्छ सोमरस ( अत्के आ अव्यत ) बर्तनमें छाना जाता है । ( तं ईं ) उस इस सोमको ( नदीषु ) जलोंमें ( गभस्त्योः ) हाथोंसे ( अपसाः रथं यथा ) जिस प्रकार वेगवान् रथको संग्राममें लेजाते हैं उसी प्रकार ( आ हिन्वाति ) मिलाने हैं ॥ २ ॥

[ ७६९ ] ( मद-च्युतः सोमासः ) आनन्द बढ़ानेवाले ये सोमरस ( सुताः ) निचोड़े जानेके बाद ( विदथे ) यज्ञमें ( मघोनां नः ) हविष्पान्न देनेवाले हमारे ( श्रवसे ) यज्ञके लिए ( प्र अक्रमुः ) सहायक होते हैं ॥ १ ॥



७७० आदी५ हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।३२।३ )

७७१ आदी५ त्रितस्य योषणो हरि५ हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ३ ॥ २१ ( ली ) ॥  
( ऋ. ९।३२।२ )

७७२ अया पवस्व देवयु रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मभोधारा असृक्षत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०६।१४ )

७७३ पवते हयतो हरिरति ह्वरांसि रंहा । अभ्येष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०६।१३ )

७७४ म सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्टु तद्वचः ।

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ३ ॥ २२ ( लि ) ॥ ( ऋ. ९।१०१।१३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः प्रथमप्रपाठश्च समाप्तः ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

[ ७७० ] ( आत् ई ) और यह सोम ( हंसः यथा गणं ) हंस जिसप्रकार अपने समूहमें जाता है, उसी प्रकार ( विश्वस्य मति ) सबकी बुद्धिको ( अवीवशत् ) वैश्वमें करता है, ( अत्यः न ) घोडा जिस प्रकार पानीमें घुसता है, उसी प्रकार ( गोभिः अज्यते ) यह गायके दूधमें मिलाया जाता है ॥ २

[ ७७१ ] ( आत् ई हरि इन्द्रं ) इस हरे रंगके सोमको ( त्रितस्य योषणः ) त्रित ऋषिकी अंगुलियां ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रके पीनेके लिए ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पत्थरोंसे कूटती हैं ॥ ३ ॥

[ ७७२ ] हे सोम ! ( देवः-युः ) देवोंसे मिलनेकी इच्छा करनेवाला तू ( अया पवस्व ) धारासे छनता जा, ( रेभन् ) शब्द करता हुआ ( पवित्रं विश्वतः पर्येषि ) छलनीसे चारों ओर बाहर गिरता है, और बादमें तेरे ( मभोः धाराः असृक्षत ) सीधे रसकी धारा बाहर गिरने लगती है ॥ १ ॥

[ ७७३ ] ( हर्यतः हरिः ) इच्छा करनेके योग्य यह हरे रंगका सोम ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करनेवालोंको ( वीरवत् यशः ) वीर पुत्रों सहित यशको ( अभ्यर्षन् ) देकर ( रंहा ) रमणीय ( ह्वरांसि अति पवते ) छलनीसे छाना जाता है ॥ २ ॥

[ ७७४ ] ( सुन्वानाय अन्धसः ) निचोडे जानेवाले इस अप्ररूपी सोमके बदलेमें ( तत् वचः ) तेरे हीन वचनको ( मर्तः न प्र वष्टु ) मनुष्य न सुने, हे याजको । ( अ-राधसं श्वानं ) अयोग्य कुत्तेको ( भृगवः मखं न ) जिस प्रकार भृगुने अयोग्य यज्ञको दूर किया था, उसी प्रकार ( अप हत ) दूर करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥



## द्वितीय अध्याय

### इन्द्रदेवता

इस द्वितीय अध्यायमें आये हुए इन्द्रके गुण इस प्रकार हैं—

- १ विश्वा-साहः [ ७१३ ]- सब शत्रुओंको हरानेवाला ।
- २ शत-क्रतुः [ ७१३ ]- सैंकड़ों उत्तम कर्म करनेवाला ।
- ३ चर्षणीनां मंहिष्ठः [ ७१३ ]- मनुष्योंमें अत्यधिक महान् ।
- ४ इन्द्रः ( इन्+द्रः ) [ ७१३ ]- शत्रुओंको फाड़नेवाला ।
- ५ पुरु-हृतः [ ७१४ ]- जिसे बहुत लोग अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।
- ६ पुरु-ष्टुतः [ ७१४ ]- बहुतोंके द्वारा प्रशंसित ।
- ७ गाथान्यः [ ७१४ ]- प्रशंसनीय, स्तुत्य ।
- ८ सन-श्रुतः [ ७१४ ]- सनातन कालसे जिसकी प्रशंसा होती आई है ।
- ९ नृतुः [ ७१५ ]- सबोंको चलानेवाला, सबोंको अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त करनेवाला ।
- १० महोनां वाजानां दाता [ ७१५ ]- बहुत धन और अन्न देनेवाला ।
- ११ हर्यश्वः ( हरि-अश्वः ) [ ७१६ ]- लाल रंगके घोड़े अपने पास रखनेवाला ।
- १२ सुदानुः [ ७१७ ]- उत्तम दान देनेवाला ।
- १३ सत्य-राधाः [ ७१७ ]- श्रेष्ठ धन जिसके पास हैं । हमेशा रहनेवाले धन जिसके पास हैं । हित करनेवाले धनोंको जो अपने पास रखता है ।
- १४ द्यु-क्षः [ ७१७ ]- द्युलोकमें रहनेवाला, द्युलोकमें तेजस्वी ।
- १५ वाज-युः [ ७१८ ]- अन्न और बल देनेवाला, अन्न और बल जिसके पास भरपूर है ।
- १६ गव्युः [ ७१८ ]- जो गायोंका पालन करता है, गायें जिसके पास हैं ।
- १७ वसुः [ ७१८ ]- निवास करानेवाला, धनवान्, आठ वसु जिसके पास हैं । आठ वसु- आपः, ध्रुवः, सोमः, वरः, अनिलः, प्रत्यूषः और प्रभासः । वसुके अर्थ- मिष्ट, मीठा, धन, रत्न, सुवर्ण, उत्तम, जल, घृत, किरण, धनवान् ।
- १८ हिरण्य-युः [ ७१८ ]- सोना पासमें रखनेवाला, सोनेका दान करनेवाला ।

५ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

१९ वज्री [ ७२० ]- वज्रका उपयोग करनेवाला, वज्रधारी ।

२० मद्-वा [ ७२२ ]- आनन्दित, जिसके पास आनन्द है ।

२१ यस्मिन् विश्वाः श्रियः अधि [ ७३२ ]- जिसके पास सब प्रकारकी सम्पत्ति और ऐश्वर्य हैं ।

२२ शाचि-गुः [ ७२६ ]- जो अपनी शक्तिसे सुप्रसिद्ध है, जिसकी इन्द्रिय शक्तिशाली हैं ।

२३ शाचि-पूजनः [ ७२६ ]- शक्तिके कारण पूजा जानेवाला ।

२४ आ-खण्डलः [ ७२६ ]- शत्रुके टुकड़े करनेवाला, शत्रुओंको मारनेमें प्रवीण ।

२५ शृंग-वृषः न-पात् [ ७२७ ]- अपने प्रकाशको कम न करनेवाला । किरणोंको चारों ओर फैलानेवाला । जिसके सींगोंका बल कम नहीं होता ।

२६ महाहस्ती [ ७२८ ]- मजबूत और बड़े हाथोंवाला ।

२७ महाहस्ती नः ध्रुमन्तं चित्रं ग्राभं दक्षिणेन संगृभाय [ ७२८ ]- मजबूत हाथोंवाला वह इन्द्र तेजस्वी, अनेक प्रकारके और ग्रहण करने योग्य धन हमें देनेके लिए बायें हाथमें लेता है ।

२८ तुवि-कूर्मिः [ ७२९ ]- पराक्रमके अनेक कार्य करनेवाला ।

२९ तुवि-देष्णः [ ७२९ ]- देनेके लिए बहुतसा धन अपने पास रखनेवाला ।

३० तुवि-मघः [ ७२९ ]- बहुत धनवान् ।

३१ तुवि-मात्रः [ ७२९ ]- मजबूत शरीरका ।

३२ अवोभिः त्वा विद्महि [ ७२९ ]- संरक्षणके अनेक साधन वह इन्द्र अपने पास रखता है, यह हमें मालूम है ।

३३ शूरः [ ७३० ]- शूरवीर ।

३४ वृषभः [ ७३१ ]- बलवान्, बैलके समान सामर्थ्यवान् ।

३५ दित्सन्तं त्वा देवाः मर्तासि न वारयन्ते [ ७३० ]- धन देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे देव और मनुष्य रोक नहीं सकते ।

३६ अविष्यवः त्वा मा दभन् [ ७३२ ]- अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले मूर्ख लोग तुझे न दबायें ।



३७ ब्रह्मद्विषं मा किं वनः [ ७३२ ]- ज्ञानसे द्वेष करनेवाले की तू सहायता मत कर ।

३८ अनाभयी ( अन्-आभयी ) [ ७३४ ]- निर्भय, न डरनेवाला ।

३९ राधानां पतिः [ ७३७ ]- अनेक धनोंका स्वामी ।

४० गिर्वणः [ ७३७ ]- स्तुत्य ।

४१ हे शूर ! राष्ट्रसा बाहु [ ७३९ ]- हे शूर इन्द्र ! तेरी भुजायें धन रखनेवाली हैं ।

४२ तवस्तरः [ ७४३ ]- अत्यन्त बलवान् ।

४३ तवस्तरं ऊतये हवामहे [ ७४३ ]- बलवान् वीर इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

४४ तुवि-प्रतिः [ ७४४ ]- बहुतोंके पास सहायता करनेके लिए जानेवाला ।

४५ नरः [ ७४४ ]- नेता; आगे चलनेवाला ।

४६ प्रत्नस्य ओकसः तुवि-प्रति नरं हुवे [ ७४४ ]- अपने पुराने घरसे बहुतोंकी सहायताके लिए जानेवाले नेता इन्द्रको मैं अपने संरक्षणके लिए बुलाता हूँ ।

४७ यं ते पिता पूर्वं हुवे [ ७४४ ]- जिस इन्द्रको तेरे पूर्वजोंने सहायताके लिए बुलाया था ।

४८ स महान् हि [ ७४६ ]- वह इन्द्र महान् है ।

४९ वृधः [ ७४६ ]- बढ़ानेवाला, शक्तिका विकास करनेवाला ।

५० सुं-पारः [ ७४६ ]- संकटोंसे पार पहुंचानेवाला ।

५१ सुश्रवस्तमः [ ७४६ ]- कौतिमान्, यशस्वी ।

५२ सं-अप्सुजित् [ ७४६ ]- पानीमें रहनेवाले शत्रुओंको जीतनेवाला ।

५३ शुष्मी [ ७४८ ]- बलवान्, सङ्ग्रह्यवान् ।

५४ सुम्ने अन्तमः [ ७४८ ]- सुखके समय पास रहनेवाला ।

५५ वृधे सखा [ ७४८ ]- उन्नति करनेमें मित्रके समान ।

५६ शुष्मिणं इन्द्रं युजैसातये भराय हुवे [ ७४८ ]- बलवान् इन्द्रको अन्नका दान होनेवाले यज्ञमें बुलाता हूँ ।

५७ सहस्रिणीभिः ऊतिभिः सह उपागमत् [ ७४५ ]- हजारों संरक्षणके साधनोंके साथ वह इन्द्र आता है ।

५८ सः योगे राये पुरन्ध्या वाजोभिः नः आगमत् [ ७४२ ]- वह इन्द्र लाभ होनेके समय, धन मिलनेके समय, और बुद्धिके काम करनेके समय अन्नके साथ हमारी तरफ आता है ।

५९ हे सखायः ! योगे-योगे, वाजे-वाजे तवस्तरं इन्द्रं उतये हवामहे [ ७४३ ]- हे मित्रो ! प्रत्येक लाभके काम करनेके समय, प्रत्येक युद्धके समय अत्यन्त बलशाली इन्द्रको संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं ।

६० सखायः ! आ पत, निषादित, इन्द्रं अभि प्र गायत [ ७४० ]- हे मित्रो ! आओ, बैठो, और इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

६१ सचा सुते पुरुतमं पुरुणां ईशानं वार्याणां इन्द्रं [ ७४१ ]- यज्ञमें बहुत धनोंके स्वामी ऐसे इन्द्रके गुणोंका वर्णन करो ।

इस प्रकार इन्द्रके श्रेष्ठ गुणोंका वर्णन इन मंत्रोंमें आया है । शौर्य, वीर्य, युद्ध कौशल्य, लोगोंकी सहायता करनेकी तैय्यारी, जनताके हित करनेकी तत्परता इत्यादि सद्गुण इन वर्णनोंमें आये हैं ।

पर केवल " इन्द्र-शूर है " इतना पढ़नेका कुछ भी उपयोग नहीं, तब तक कि वह शूरता अपनेमें न लाई जाए । वेदोंने जो धर्म बताया हैं, उनका उपयोग तभी हो सकता है, जब उनके अनुसार आचरण किया जाए । अतः पाठक वृत्त उन धर्मोंका आचरण करें और उन्नत हों ।

### अग्नि देवता

१ अर्जो-न-पात् [ ७४९ ]- बल कम न करनेवाला, उस्ताह कम न करनेवाला ।

शरीरमें गर्मीके रहनेतक ही इस शरीरमें बल रहता है । शरीरके ठंडे होते ही इसकी हलचल बन्द हो जाती है । इससे यह ज्ञात हो जाएगा कि अग्नि किस प्रकार बलको आधार देनेवाला है ।

२ श्वरतिः [ ७४९ ]- प्रगतिशील ।

३ प्रियः चेतिष्ठः [ ७४९ ]- प्रिय और चैतन्य उत्पन्न करनेवाला ।

४ अमृतः [ ७४९ ]- अमर, नष्ट न होनेवाला ।

५ सु-अध्वरः [ ७४९ ]- उत्तम हिंसारहित कार्य करनेवाला ।

६ विश्वस्य दूतः [ ७४९ ]- विश्वका दूत, हवनमें डाले गए पदार्थकों सब जगह पहुंचानेवाला ।

७ सु-ब्रह्मा [ ७५० ]- उत्तम ज्ञानी ।

८ यज्ञः [ ७५० ]- पूज्य ।

९ सु-शमी [ ७५० ]- उत्तम संयमी ।

१० सु-आहुतः [ ७५० ]- उत्तम आहुति जिसमें पड़ती है ।



११ दुद्रवत् [ ७५० ]- देवोंको लूनेके लिए शीघ्र जाता है ।

१२ देवं वसूनां राधः [ ७५० ]- इस अग्निदेवको धनोंसे प्राप्त होनेवाले ऐश्वर्य मिलते हैं ।

१३ स अरुषा विश्वभोजसा योजते [ ७५० ]- वह तेजस्वी, लाल रंगके घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ता है ।

इतने गुण अग्नि देवताके इस अध्यायमें आए हैं ।

### उषा देवता

उषा देवताके गुण भी बड़े महत्त्वके और मननीय हैं—

१ आयती उच्छन्ती [ ७५१ ]- उषा आती है और प्रकाश फैलने लगता है । अन्धकार दूर करनेके लिए प्रकाश फैलाना अत्यन्त आवश्यक है ।

२ दिवः दुहिता उषा प्रत्यदर्शि [ ७५१ ]- ध्रुवकी पुत्री उषा दीखने लग गई है । उसका प्रकाश फैलने लग गया है ।

३ महीतमः चक्षुषा उप वृणुते [ ७५१ ]- वह उषा महान् अन्धकारको अपनी आंखों-किरणोंसे नष्ट करती है । अन्धकारको प्रकाशसे दूर करती है ।

४ सूनरी ज्योतिः कृणोति [ ७५१ ]- उत्तम नेतृत्व करनेवाली प्रकाश करती है । अन्धकार दूर करके प्रकाश फैलाती है ।

५ सूर्यः सचा उस्त्रियाः उत्सृजते [ ७५२ ]- उषाके साथ सूर्य आकर अपनी किरणें फैलाता है ।

६ उद्यत् नक्षत्रं अर्चिवत् [ ७५२ ]- उदय होते ही नक्षत्र चमकने लगते हैं ।

७ हे उषः ! तव सूर्यस्य च द्युषि भक्तेन संगमे-  
माहि [ ७५२ ]- तेरे और सूर्यके प्रकाशके बाद हम अन्नका सेवन करें ।

उषा आती है और प्रकाश फैलाकर अन्धकार दूर करना शुरू करती है । उषाके बाद सूर्य उदय होकर प्रकाशने लगता है । तात्पर्य यह कि उषाके उदय होते ही अन्धकारका नाश प्रारम्भ हो जाता है । उसी प्रकार मनुष्यको अपने समाज व राष्ट्रमें अपने कार्यके द्वारा अज्ञानान्धकारका नाश करना चाहिए और अपने समाज व राष्ट्रको प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करना चाहिए । उषा प्रतिदिन लोगोंको यह ज्ञान देती है । उस ज्ञानको मनुष्योंको अपने जीवनमें उतारना चाहिए ।

### अश्विनौ देवता

१ उस्त्रिया [ ७५२ ]- तेजस्वी, चमकनेवाले, किरण, प्रकाशकी किरण, बेल, ईश्वर, सूर्य, बिजस, अश्विनौकुमार ।

२ उस्त्रा [ ७५३ ]- प्रभात, प्रकाश, चमकनेवाला आकाश, गाय, पृथ्वी, अश्विनौकुमार ।

३ शचीवसू [ ७५३ ]- अपनी शक्तिसे रहनेवाले ।

४ नरा [ ७५४ ]- नेतृत्व करनेवाले ।

५ युवं चित्रं भोजनं ददथुः [ ७५४ ]- तुम विलक्षण गुणकारी भोजन देते हो ।

६ सूनृतावते चोदेथां [ ५५४ ]- सत्यमार्गसे चलने-  
वालेको उत्तम प्रेरणा तुम ही देते हो ।

७ समनसा रथं अर्वाक् निथच्छतं [ ७५४ ]- एक विचारवाले होकर अपने रथको इधर लाओ ।

८ विशं विशं गच्छथः [ ७५४ ]- तुम प्रत्येक प्रजा-  
जनकी ओर जाते हो । उसके रोगकी चिकित्सा करनेके लिए जाते हो ।

९ अवसे वां अहे [ ७५३ ]- अपने संरक्षणके लिए तुमको मैं बुलाता हूँ ।

१० इमाः दिविष्टयः उस्त्रौ वां हवन्ते [ ७५३ ]- ये देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली प्रजायें अश्विनौको अपनी सहायताके लिए बुलाती हैं ।

अश्विनौ वो देव हैं । इनमें एक शस्त्रक्रियामें कुशल है और दूसरा औषधि - चिकित्सामें । ये दोनों ही रोगीके पास जाते हैं और उसके रोग दूर करनेका प्रयत्न करते हैं । ये देव हैं पर उनके रोगी मानव होते हैं, अर्थात् ये देव होते हुए भी मनुष्योंकी चिकित्सा करते हैं ।

रोगीको ये ऐसा उत्तम भोजन तैयार करके देते हैं कि उसको खानेसे ही रोगी भला चंगा हो जाता है । औषधि सेवनकी अपेक्षा औषध मिश्रित भोजनको खानेसे रोगीको अधिक लाभ होता है । क्योंकि औषधि लेते हुए रोगीके मनमें “ मैं रोगी हूँ ” ऐसी भावना रहती है, पर भोजन खानेमें वैसी भावना नहीं रहती । रोगीको ऐसा मालूम होता है कि “ मैं बीमार नहीं हूँ, अपना भोजन मैं खाता हूँ ” । अतः मानसिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे औषधिकी अपेक्षा भोजन रूपसे शरीरमें दवाई पहुंचाना और उसकी सहायतासे रोगीको रोग मुक्त करना अधिक लाभदायक है ।

बैध्योंको अपने रोगियों पर ऐसे प्रयोग करने चाहिए । खानेके द्वारा रोगियोंके शरीरमें औषध पहुंचाना चिकित्साका एक उत्तम उपाय है ।

अश्विनौकुमारोंको “ वस्त्रा ” कहा गया है, क्योंकि वे सबेरे रोगियोंकी तरफ जाते हैं । रोगियोंको निरीक्षण करनेके लिए सबेरेका समय उत्तम होता है ।



## सोम

सोम हिमालयके मौजवान् शिखरपर मिलनेवाली एक बेलका नाम है। इसीलिए वेदोंमें उसे “मौजवान् सोम” कहा है।

## सोमको छानते समय सामगान

यज्ञमें सोमको छानते समय सामगान किया जाता था, उस विषयमें वर्णन इस प्रकार है—

१ पवमानाय इन्द्रवे उप गायत [ ७६३ ]- छाने जानेवाले सोमके लिए सामगान बोले।

इस समय बुरे वचन बोलना ठीक नहीं, ऐसा स्पष्ट कहा है—

२ सुन्वानाय अन्धसः तत् वचः मर्तः न प्रवष्ट [ ७७४ ]- निचोडे जानेवाले इस अन्नरूपी सोमके विषयमें किसीको भी हीन शब्द नहीं बोलने चाहिए। तथा सोमरस निकालते हुए उस स्थानपर कुत्ते न आ पायें ऐसा भी प्रबन्ध करना चाहिए—

३ अराधसं इवान् अपहत [ ७७४ ]- अनुवार कुत्ता यदि यहां आजाए तो उसे मारकर भगा दो।

## सोमको कूटकर रस निकालना

सोमकी बेल लाई जाती थी, उसे पत्थरोंसे कूटते थे, और उसका रस निकालते थे। इस विषयमें मंत्र इस प्रकार हैं—

१ हरि इन्दुं योषणः इन्द्राय पीतये अद्रिभिः हिन्वन्ति [ ७७१ ]- हरे रंगके चमकनेवाले सोमको हाथ पत्थरोंसे कूटते हैं और कूटनेके बाद उंगलियां उसे दबाकर उसका रस निकालती हैं। इन्द्रके पीनेको देनेके लिए यह किया जाता है। लकड़ीके पट्टे पर सोमको रखकर उसे पत्थरोंसे कूटते हैं फिर हाथोंसे उसका रस निकाला जाता है। ऐसे इस रसमें निचोड़नेके बाद पानी मिलाकर इसे छाना जाता है। छाननेका वर्णन इस प्रकार है—

१ नृभिः धौतः, अश्वैः सुतः, अद्याचारैः परिपूतः निक्तः [ ७३५ ]- याजकोंके द्वारा प्रथम धोया गया, पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला गया, भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छाना गया यह सोमरस है।

रस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाते हैं और बादमें छलनीसे उसे छानते हैं।

२ अयं सरांसि धावति [ ७५६ ]- यह सोम सरोवरके पास दौड़ता हुआ जाता है। यहां “सरः” शब्द पानीका

वर्तन है। सोमरस पानीके वर्तनमें जाता है और वहां जाकर पानीसे मिल जाता है।

३ हरिः एषः देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्षति [ ७५८ ]- यह हरे रंगका चमकनेवाला देवोंको देनेके लिए निचोड़ा गया, वह सोमरस छलनीसे होकर नीचेके वर्तनमें गिरता है।

४ एषः देवः देवेभ्यः विप्रेण परि वावृधे [ ७५९ ]- यह चमकनेवाला दिव्य सोमरस ब्राह्मणोंके द्वारा बढ़ाया जाता है, अर्थात् ब्राह्मण उसमें पानी मिलाकर उसे बढ़ाते हैं, और उसे पीने योग्य बनाते हैं।

५ दुहानः पवित्रे परिषिच्यते [ ७६० ]- रस निकालनेके बाद छलनीसे वह छाना जाता है। छानते समय वह नीचेके कलशमें गिरता है और उसके कारण शब्द होता है, उस अपने शब्दसे वह देवोंको बुलाता है। यह आलंकारिक भाषा है।

६ क्रन्दन् देवान् अजीजनः [ ७६० ]- छलनीसे नीचे गिरते हुए जो सोमका शब्द होता है, उससे मानो वह देवोंको बुलाता है।

७ विपदिचतः ऊर्मयः सोमरसः आपः प्रनयन्ते [ ७६४ ]- ज्ञान बढ़ानेवाले ये सोमरस लहरके रूपमें पानीके पास लेजाये जाते हैं अर्थात् सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

८ हे सोम ! देववीतये अर्णसा प्रपिप्ये [ ७६६ ]- हे सोम ! तू देवोंके पीनेके लिए पानीमें मिलाया जाता है।

९ नदीषु गभस्त्योः आ हिन्वन्ति [ ७६८ ]- नदीके पानीमें वह सोमरस हाथोंसे मिलाया जाता है। यहां “नदीषु” “नदियोंमें मिलाया जाता है” ऐसा कहा है। “नदीके पानीमें” कहनेके स्थानपर “नदियोंमें” ही कह दिया है। अंशके लिए पूर्णका प्रयोग वेदोंमें होता है। “जल” के लिए “नदी” का प्रयोग आलंकारिक है।

इस प्रकार इस अध्यायमें सोमरस निकालने, पानीमें मिलाने और छाननेका वर्णन है।

१० गोभिः श्रीणन्तः स्वादु अकर्म [ ७३६ ]- गायके दूधमें सोमरस मिलाकर उसे हमने मीठा कर दिया है।

११ जातं अप्तुरं भङ्गं, गोभिः परिष्कृतं इन्दुं देवाः उप अयासिषुः [ ७६२ ]- सोमरस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाते हैं, उस शत्रुको मारनेवाले सोमको गायके दूधमें मिलाते हैं, तब उसके पास देव जाते हैं। रस निकालना, पानी मिलाना, छानना और उसमें गायका दूध मिलाना बादमें पीना अथवा हवनमें उसकी आहुति देकर फिर पीना। यह क्रम है सोमके तैय्यार करनेका।



१२ बभ्रवः शुक्राः ऋतस्य धारया द्रोणान् गोमन्तं वाजं अभि अक्षरन् [ ७६५ ]- स्वच्छ सोमरस पानीकी धाराके साथ कलसेमें तथा गौदुग्धरूपी अन्नके साथ मिलाये जाते हैं।

१३ अंशोः पयसा मधुश्च्युतं कोशं अच्छ [ ७६७ ]-सोमरस दूधमें मिलानेके बाद उसे मीठे रसवाले बर्तनमें डालते हैं।

१४ गोभिः अज्यते [ ७७० ]- गायके दूधके साथ सोमरस मिलाया जाता है। यही " गो " पद गायके दूधका वाचक है।

१५ मर्ज्यः अर्जुनः अत्के आ अव्यत् [ ७६७ ]- शुद्ध होनेवाला सोम बर्तनमें छलनीसे छाना जाता है।

१६ रेभन् पवित्रं विश्वतः पर्येषि [ ७७२ ]- शब्द करता हुआ तू छलनीसे नीचेके बर्तनमें जाता है।

१७ अया पवस्व [ ७७२ ]- धार बांधकर छनता जा।

१८ मधोः धारा असृक्षत [ ७७२ ]- मीठे रसकी धारा नीचे गिरती है।

१९ हर्यत हरिः, स्तोतृभ्यः वीरवत् यशः अभ्यर्षन् रंक्षा इरांसि अति पवते [ ७७३ ]- हरे रंगका सोमरस स्तोताओंकी वीरपुत्रोंके साथ मिलनेवाला यश देकर छलनीसे छनता है।

२० अयं सूर्यः इव उपवृक् [ ७५६ ]- यह सूर्यके समान तेजस्वी और सबोंको देखनेवाला है।

२१ अयं पुनानः सोमः विश्वा भुवना उपरि, देवो न सूर्यः तिष्ठति [ ७५७ ]- यह स्वच्छ होनेवाला सोमरस सब भुवनोंके ऊपर सूर्यके समान प्रकाशित होता है।

इस सोमरसको हवन करके देवोंको पीनेके लिए दिया जाता है।

२२ हे इन्द्र ! त्वा अस्मिन् सधमादे [ ७३६ ]- हे इन्द्र ! तुझे इस यज्ञमें बुलाया जाता है।

२३ इदं सुतं अनु पिब [ ७३७ ]- इस सोमरसको तू पी।

२४ ते यः स्वधां भुजु असत [ ७३८ ]- तेरे लिए सोमरस अन्नके समान है।

२५ सुते तन्वं नियच्छ [ ७३८ ] सोमयज्ञमें अपनेको लेजा।

२६ सोम्य ! स त्वा ममन्तु [ ७३८ ]- सोम पीनेवाले इन्द्र ! यह सोम तुझे आनन्द देवे।

२७ स ते कुक्ष्योः प्राइनातु [ ७३९ ]- वह तेरे कोखोंमें भर जावे।

२८ सोम्यं मधु पिबतं [ ७५४ ]- सोमके मधुर रसको पियो।

२९ देवयुः [ ७७२ ]- यह सोम देवोंके पास जानेवाला है।

३० विश्वस्य मतिं आ विवशत् [ ७७० ]- सबकी बुद्धियोंको यह अपने अधिकारमें रखता है। सबकी बुद्धिपर अपना प्रभाव डालता है।

३१ उदरं सुपूर्णं सुतं अन्धः पिब [ ७३४ ]- पेट भरकर सोमरसरूपी अन्न पी।

३२ मदच्युतः सोमासः सुताः विदथे मघोनां नः श्रवसे प्राकमुः [ ७६९ ]- आनन्द बढ़ानेवाले सोमरस यज्ञमें यजमानका यश बढ़ाते हैं।

### शत्रुको भयभीत करना

सोमरस पीनेके बाद मनका उत्साह बढ़ता है, शरीरकी शक्ति बढ़ती है। और शत्रुको भय हो ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न होता है—

३३ हे सोम ! उपस्थुषः उपशिक्ष, शत्रवे भियसं आघेहि [ ७६१ ] हे सोम ! पास बैठनेवालोंसे कह कि वे शत्रुको भयभीत करें।

शत्रुको भयभीत करने योग्य बल सोमरसको पीनेसे बढ़ता है। सब देव इसे पीकर सामर्थ्यवान् होते हैं और शत्रुओंको हराते हैं।

### सुभाषित

इस दूसरे अध्यायमें सुभाषित इस प्रकार हैं—

१ विश्वा-साहं, शतक्रतुं, चर्षणीनां मंहिष्ठं इन्द्रं प्र गायत [ ७१३ ]- सब शत्रुओंको हरानेवाले संकड़ों प्रकारके कर्म करनेवाले मनुष्योंमें बहुत महान् इन्द्रकी स्तुति करो।

२ नृतुः नः मद्दोनां वाजानां दाता [ ७१५ ]- वह इन्द्र सबोंको चलानेवाला और हमें बहुतसे धन और अन्नका देनेवाला है।

३ वः हर्यश्वाय सोम-पादने प्रगायत [ ७१६ ]- हे मित्रो ! तुम घोड़ोंके रखनेवाले, सोम पीनेवाले इन्द्रके लिए आनन्द देनेवाले स्तोत्रोंका गान करो।

४ सु-दानवः सत्य-राधसः [ ७१७ ]- यह इन्द्र



उत्तम दान देनेवाला और ईमानदारीसे धन अपने पास रखनेवाला है ।

५ वाज-युः, गव्युः, हिरण्य-युः [ ७१८ ]- वह इन्द्र हयें अश्व, गाय, और सोना देनेवाला है ।

६ इन्द्र ! त्वायन्तः सखायः त्वा [ ७१९ ]- हे इन्द्र ! तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम मित्र तेरी स्तुति करते हैं ।

७ अपसः तव नविष्टौ अन्यत् न घे आ पपन [ ७२० ]- हे इन्द्र ! यज्ञकर्मोंमेंसे तेरे नये यज्ञमें तेरे स्तोत्रके सिवाय मैं दूसरेके स्तोत्र नहीं कहूंगा ।

८ तव इत् उ स्तोमैः चिकेत [ ७२० ]- तेरे ही स्तोत्रोंसे स्तुति करना मैं जानता हूँ ।

९ देवाः सुन्यन्तं इच्छन्ति [ ७२१ ]- देव सोमरस निकालनेवालेकी इच्छा करते हैं, अर्थात् सोमयज्ञ करनेवालेसे प्रेम करते हैं ।

१० स्वप्नाय न स्पृहयन्ति [ ७२१ ]- आलसी मनुष्यको पसन्द नहीं करते ।

११ अ-तन्द्राः प्र-मादं यन्ति [ ७२१ ]- परिश्रमी देवता परम आनन्द देनेवाले सोमको प्राप्त करते हैं, अर्थात् उद्यमी मनुष्य ही सुखको प्राप्त कर सकता है ।

१२ यस्मिन् विश्वाः श्रियः अधि [ ७२३ ]- इस इन्द्रमें सभी शोभायें रहती हैं ।

१३ सप्त संसदः रणन्ति [ ७२३ ]- इन्द्रकी स्तुति यज्ञके सात ऋत्विज करते हैं ।

१४ देवाः त्रि-कद्रुकेषु चेतनं अतनत [ ७२४ ]- सब देवता यज्ञके तीन बिन्दुमें उत्साह बढ़ानेवाले यज्ञका विस्तार करते हैं ।

१५ शाचि-गोः-शाचि-पूजनः [ ७२६ ]- यह इन्द्र सामर्थ्यवान् किरणोंसे युक्त और शक्तिमान् होनेके कारण पूजा जाता है ।

१६ हे आ-खण्डल ! प्र ह्यसे [ ७२६ ]- हे शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! सोमके लिए तुझे बुलाते हैं ।

१७ जुंग-वृषः न पात् [ ७२७ ]- किरणोंके विस्तारको कम न करनेवाला यह इन्द्र है ।

१८ इन्द्र ! महा-हस्ती न क्षुमन्तं चित्रं प्राभं वक्षिणेन सं गृभाय [ ७२८ ]- हे इन्द्र ! महान् हाथों-वाला तू हमारे लिए तेजस्वी विलक्षण और स्वीकार करने योग्य धन देनेके लिए उन्हें बायें हाथमें धारण कर ।

१९ तुषिकूर्मिः, तुवि-देष्णः, तुवि-मघः, तुवि-

मात्रं अवोभिः [ ७२९ ]- अनेक पराक्रम करनेवाला, देने योग्य बहुतसे धनोंको अपने पास रखनेवाला, महान् धनवान्, महान् आकारवाला, संरक्षणके अनेक साधनोंसे युक्त यह इन्द्र है ।

२० हे शूर ! दित्सन्तं त्वा देवाः न, मर्तासः न वारयन्ते [ ७३० ]- हे वीर इन्द्र ! दान देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे देव अथवा मनुष्य, कोई भी रोक नहीं सकता ।

२१ त्वा अविष्यवः मूराः उपहस्वानः मा दभन् [ ७३२ ]- तुझे रक्षणकी इच्छा करनेवाले बूढ़ और उपहास करनेवाले भी कष्ट न देंगे ।

२२ ब्रह्म-द्विषं मा कीं वनः [ ७३२ ]- ज्ञानसे द्वेष करनेवालेकी तू सहायता मत कर ।

२३ राधानां-पते गिर्वणः, ओजसां-पिब [ ७३७ ]- हे धनपते ! स्तुत्य इन्द्र ! बलसे युक्त तू इस सोमरसको पी ।

२४ हे शूर ! राधसा बाहू प्र [ ७३९ ]- धन देनेके लिए तेरे बाहु भी सोमरसको प्राप्त हों ।

२५ पुरु-तमः पुरुणां वार्याणां ईशानः [ ७४१ ]- वह इन्द्र बहुतसे शत्रुओंको हरानेवाला और स्वीकार करने योग्य बहुतसे धनोंका स्वामी है ।

२६ सः घनः योगे, रायै, पुरन्ध्या आ भुवत् [ ७४२ ]- वह इन्द्र निश्चयसे हमारे पुरुषार्थके कामोंमें, धन प्राप्त करनेके कामोंमें, बहुत बुद्धिके प्रयोग करके किए जानेवाले कार्योंमें सहायक होवे ।

२७ योगे-योगे, वाजे-वाजे तवस्तरं इन्द्रं ऊतये हवामहे [ ७४३ ]- प्रत्येक कर्मके प्रारम्भमें और प्रत्येक युद्धमें अत्यन्त बलवान् इन्द्रको संरक्षण करनेके लिए हम बुलाते हैं ।

२८ प्रतनस्य ओकसः, तुवि-प्रति नरं अनु हुवे [ ७४४ ]- अपने पुराने घरसे बहुतोंके पास जानेवाले नेता इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं । “ प्रतनस्य ओकसः ” इन्द्रका सनातन घर यह विश्व ही है ।

२९ सः महान् हि [ ७४५ ]- वह महान् है ।

३० सः देवानां सदनं वृधः सु-पारः सु-श्रव-स्तमः सं अप्सु-जित् [ ७४७ ]- वह इन्द्र देवोंके स्थानसे यजमानको बढ़ानेवाला, अच्छी तरहसे दुःखोंसे पार करानेवाला, उत्तम यशस्वी और राक्षसोंको जीतनेवाला है ।

३१ हे इन्द्र ! सुम्ने अन्तमः भव, वृधे सखा [ ७४८ ]- हे इन्द्र ! सुखके समय भी हमारे पास रह, उसी प्रकार उग्रताके समय भी हमारे पास रह ।



३२ ऊर्जः न-पातं, प्रियं, चेतिष्टं अरतिं सु-अध्वरं विश्वस्य, दूतं अमृतं अग्निं आ हुवे [ ७४९ ]- बलको कम न करनेवाले प्रिय, ज्ञान देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम यज्ञ करनेवाले सभी याजकोंके लिए दूतके समान उस अमर अग्निको हम बुलाते हैं।

३३ नः अरुषा विश्व-भोजसा योजते [ ७५० ]- वह अग्नि तेजस्वी, सबके भक्षक अश्वोंकी अपने रथमें जोड़ता है।

३४ सु-ब्रह्मा, यज्ञः सु-शमी सु-आहुतः [ ७५१ ]- वह भस्म उत्तम ज्ञानी, पूज्य, उत्तम आहुतियोंसे प्रज्वलित हुआ है।

३५ आयती जच्छन्ती दिवः दुहिता उषाः महीतमः चक्षुषा उप-वृणुते उ [ ७५१ ]- आकर चमकनेवाली छलोककी पुत्री उषा महान् अन्धकारका प्रकाशसे निवारण करती है।

३६ सूनरी ज्योतिः कृणुते [ ७५१ ]- उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा प्रकाश करती है।

३७ उषः ! तव सूर्यस्य च व्युषि भक्तेन संगमे-महि [ ७५२ ]- हे उषा ! तेरे और सूर्यके प्रकाश हो जाने पर अग्निसे हम युक्त हों।

३८ अश्विना ! इमाः दिविष्टयः उन्मौ वां हवन्ते [ ७५३ ]- हे अश्विनो देवो ! इस स्वर्गकी इच्छा करनेवाली प्रजायें सबकी बसानेवाले तुम्हें सहायताके लिए बुलाती हैं।

३९ विशं विशं गच्छथः [ ७५३ ]- तुम प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो।

४० नरा ! युवं समनसा चित्रं भोजनं ददथुः [ ७५४ ]- हे नेता अश्विदेवो ! तुम विलक्षण भोजन देते हो।

४१ शुक्रं सहस्रसां पयः [ ७५५ ]- तेजस्वी और अनेकों प्रकारकी इच्छा पूर्ण करनेवाला यह सोमरस है।

४२ अयं सूर्यः इव उपटक् [ ७५६ ]- यह सोम सूर्यके समान सबको देखनेवाला है।

४३ अयं सोमः विश्वानि भुवना उपरि तिष्ठति [ ७५७ ]- यह सोमरस सब लोकों पर प्रकाशित होता है।

४४ पवमान ! शत्रवे भियसं आधेहि [ ७६१ ]- हे सोम ! शत्रुको भय प्राप्त हो ऐसा कर।

४५ ई विश्वस्य मतिं आ विवशत् [ ७६० ]- यह सोम सबकी बुद्धिको बशमें करता है।

४६ हर्यतः हरिः स्तोतृभ्यः वीरवत् यशः अभ्यर्षत्

[ ७७३ ]- चाहनेके योग्य यह हरे रंगका सोम स्तुति करने-वालोंको वीर पुत्रोंसे युक्त यश देता है।

४७ तत् वचः मर्तः न प्र नष्ट [ ७७४ ]- वह हीन वचन मनुष्य न सुने।

४८ अ-राधसं श्वानं अपहत [ ७७४ ]- अयोग्य कुत्तेको सोमसे दूर करो।

## उपमा

इस अध्यायमें निम्नलिखित उपमायें आई हैं—

१ भीमं गां न [ ७३० ]- जिस प्रकार भयंकर बैलका निवारण कोई नहीं कर सकता, उसी प्रकार “ दितस्तं त्वा न देवाः न मर्तासः वारयन्ते ” दान देनेकी इच्छा करनेवाले इन्द्रका निवारण देव अथवा मनुष्य कोई भी नहीं कर सकता।

इस मंत्रमें “ गां ” पद बैलका वाचक है।

२ यथा गौरः सरः [ ७३३ ]- जिस प्रकार गौर मृग सरोवरपर पानी पीता है, उसी प्रकार “ गो-परीणसं पिब ” गायके दूधमें मिले हुए सोमरसको पी। मृग सरोवरके पास जाता है और पेट भरकर पानी पीता है, उसी प्रकार इन्द्र भी यज्ञमें जाकर पेट भरकर सोम पीवे।

३ नदीषु अश्वः न [ ७३५ ]- नदीके पानीमें जैसे घोड़े धोये जाते हैं, उसी प्रकार “ अश्वैः सुतः नृभिः धौतः अन्यावारैः परिपूतः ” पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला गया, याजकोंके द्वारा पानीसे धोकर स्वच्छ किया गया, भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छानकर साफ किया गया सोमरस तैयार किया जाता है।

४ देवो सूर्यः न [ ७५७ ]- सूर्य जिस प्रकार सबसे ऊँचे स्थानपर शोभित होता है, उसी प्रकार “ अयं पुनाजः सोमः विश्वा भुवना उपरि तिष्ठति ” यह छानकर साफ किया गया सोमरस सब लोकोंमें अयं सब पेर्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। जैसे सूर्य तेजस्वी और श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सोम तेजस्वी और श्रेष्ठ है।

५ वनानि महिषा इव [ ७६४ ]- जैसे वन तालाबोंके पास भँसे जाते हैं, उसी प्रकार “ सोमासः शापः प्र नयन्ते ” सोमरस पानीमें मिलाये जाते हैं।

६ सिन्धुः न [ ७६७ ]- जिस प्रकार नदी पानीसे भरी रहती है, उसी प्रकार सोमरस “ अर्णसा प्र पिब्ये ”



पानीसे पूर्ण किया जाता है। सोमरस पानीमें मिलाया जाता है।

७ मदिरः न जागृधिः [ ७६७ ]- आनन्द बढ़ानेवाले पदार्थके समान तू लोगोंको जाग्रत करनेवाला उनका उत्साह बढ़ानेवाला है। सोमरस जो पीते हैं उनमें आनन्द और उत्साह बढ़ता है।

८ हर्यतः सूनुः न [ ७६८ ]- प्रिय पुत्रके समान यह “ मर्ज्यः अर्जनः ” मुख होनेवाला और छाना गया सोम प्रिय है।

९ अपसः रथं यथा [ ७६८ ]- वेगवान् रथको जैसे युद्धमें ले जाते हैं, वैसे ही “ नदीषु गभस्त्योः आ हिन्वन्ति ” सोमरसको नदीके जलोंमें हाथोंसे मिलाते हैं। वेगसे सोम पानीमें ले जाते हैं, जैसे रथ युद्धमें जाता है।

१० हंसः गणं यथा [ ७७० ]- हंस जैसे अपने मुण्डमें जाता है, वैसे ही सोम “ विश्वस्य मर्ति आविचशत् ” सबकी बुद्धियोंमें जाता है, बुद्धियोंको उत्तम प्रेरणा देता है।

११ अत्यः न [ ७७० ]- छोड़को जिस प्रकार नहलाते हैं, उसी प्रकार सोम “ गोभिः अज्यते ” गायके दूधमें मिलाते हैं, उसे दूधसे नहलाते हैं।

१२ भृगवः मखं न [ ७७४ ]- जिस प्रकार भृगुओंने अयोग्य यज्ञको दूर किया, उसी तरह यज्ञसे “ श्वानं अप- हत ” कुत्तेको दूर करो।

इस प्रकार दूसरे अध्यायका निरीक्षण यहां किया है। पाठक वृन्द इस अध्यायके मंत्रोंका सूक्ष्म अध्ययन करके उस पर मनन करें।

## द्वितीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                 | देवता   | छन्दः     |
|-------------|--------------|--------------------------------------|---------|-----------|
| ( १ )       |              |                                      |         |           |
| ७१३         | ८।११।१       | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | इन्द्रः | अनुष्टुप् |
| ७१४         | ८।११।२       | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | ”       | गायत्री   |
| ७१५         | ८।११।३       | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | ”       | ”         |
| ७१६         | ७।३१।१       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                 | ”       | ”         |
| ७१७         | ७।३१।२       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                 | ”       | ”         |
| ७१८         | ७।३१।३       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                 | ”       | ”         |
| ७१९         | ८।११।६       | मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः | ”       | ”         |
| ७२०         | ८।११।७       | मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः | ”       | ”         |
| ७२१         | ८।११।८       | मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः | ”       | ”         |
| ७२२         | ८।११।९       | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | ”       | ”         |
| ७२३         | ८।११।१०      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | ”       | ”         |
| ७२४         | ८।११।११      | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः        | ”       | ”         |
| ( २ )       |              |                                      |         |           |
| ७२५         | ८।१७।११      | इरिम्बिठिः काण्वः                    | ”       | ”         |
| ७२६         | ८।१७।१२      | इरिम्बिठिः काण्वः                    | ”       | ”         |
| ७२७         | ८।१७।१३      | इरिम्बिठिः काण्वः                    | ”       | ”         |
| ७२८         | ८।८१।१       | कुसीदी काण्वः                        | ”       | ”         |
| ७२९         | ८।८१।२       | कुसीदी काण्वः                        | ”       | ”         |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                 | देवता   | छन्दः   |
|-------------|--------------|----------------------|---------|---------|
| ७३०         | ८।८।१३       | कुसीरी काण्वः        | इन्द्रः | गायत्री |
| ७३१         | ८।८।५।२२     | त्रिशोकः काण्वः      | "       | "       |
| ७३२         | ८।८।५।२३     | त्रिशोकः काण्वः      | "       | "       |
| ७३३         | ८।८।५।२४     | त्रिशोकः काण्वः      | "       | "       |
| ७३४         | ८।९।१        | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "       |
| ७३५         | ८।९।२        | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "       |
| ७३६         | ८।९।३        | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "       |

( ३ )

|     |          |                         |   |         |
|-----|----------|-------------------------|---|---------|
| ७३७ | ३।५।१।२० | विश्वामित्रो गाथिनः     | " | "       |
| ७३८ | ३।५।१।२१ | विश्वामित्रो गाथिनः     | " | "       |
| ७३९ | ३।५।१।२२ | विश्वामित्रो गाथिनः     | " | "       |
| ७४० | १।५।१    | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः | " | "       |
| ७४१ | १।५।२    | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः | " | "       |
| ७४२ | १।५।३    | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः | " | "       |
| ७४३ | १।३०।७   | शुनःशेष आजीगतिः         | " | "       |
| ७४४ | १।३०।९   | शुनःशेष आजीगतिः         | " | "       |
| ७४५ | १।३०।८   | शुनःशेष आजीगतिः         | " | "       |
| ७४६ | ८।१३।१   | नारदः काण्वः            | " | उष्णिक् |
| ७४७ | ८।१३।२   | नारदः काण्वः            | " | "       |
| ७४८ | ८।१३।३   | नारदः काण्वः            | " | "       |

( ४ )

|     |         |                      |         |   |
|-----|---------|----------------------|---------|---|
| ७४९ | ७।१६।१  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अग्निः  | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| ७५० | ७।१६।२  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "   |
| ७५१ | ७।८।१।१ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | उषा     | "   |
| ७५२ | ७।८।१।२ | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "   |
| ७५३ | ७।७४।१  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अश्विनौ | "   |
| ७५४ | ७।७४।२  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "   |

( ५ )

|     |        |  |             |         |
|-----|--------|--|-------------|---------|
| ७५५ | ७।१४।१ | अवत्सारः काश्यपः                                   | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ७५६ | ९।५४।२ | अवत्सारः काश्यपः                                   | "           | "       |
| ७५७ | ९।५४।३ | अवत्सारः काश्यपः                                   | "           | "       |
| ७५८ | ९।३।९  | शुनःशेष आजीगतिः स वैवरातः कृत्रिमो<br>वैश्वामित्रः | "           | "       |
| ७५९ | ९।४२।२ | मेध्यातिथिः काण्वः                                 | "           | "       |
| ७६० | ९।४२।३ | मेध्यातिथिः काण्वः                                 | "           | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                             | देवता       | छन्दः                                     |
|-------------|--------------|----------------------------------|-------------|---|
| ७६१         | ९।१९।६       | असितः काश्यपो देवलो वा           | पवमानः सोमः | गायत्री                                   |
| ७६२         | ९।६१।१३      | अमहीयुरागिरसः                    | "           | "   |
| ७६३         | ९।११।१       | असितः काश्यपो देवलो वा           | "           | "   |
| ( ६ )       |              |                                  |             |   |
| ७६४         | ९।३३।१       | त्रित आप्त्यः                    | "           | "   |
| ७६५         | ९।३३।२       | त्रित आप्त्यः                    | "           | "   |
| ७६६         | ९।३३।३       | त्रित आप्त्यः                    | "           | "   |
| ७६७         | ९।१०७।१२     | सप्तर्षयः                        | "           | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| ७६८         | ९।१०७।१३     | सप्तर्षयः                        | "           | "   |
| ७६९         | ९।३२।१       | श्यावाश्व आत्रेयः                | "           | गायत्री                                   |
| ७७०         | ९।३२।३       | श्यावाश्व आत्रेयः                | "           | "   |
| ७७१         | ९।३२।२       | श्यावाश्व आत्रेयः                | "           | "   |
| ७७२         | ९।१०६।१४     | अग्निश्चाक्षुषः                  | "           | उष्णिक्                                   |
| ७७३         | ९।१०६।१३     | अग्निश्चाक्षुषः                  | "           | "   |
| ७७४         | ९।१०१।१३     | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | "           | अनुष्टुप्                                 |



## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ जमदग्निर्भर्गवः; २, ५, १५ अमहीयुरांगिरसः; ३ कश्यपो मारीचः; ४, १० भृगुर्वाह्णिर्जमदग्निर्भर्गवो वा; ६-७ मेधातिथिः काण्वः; ८ मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः; ९ वसिष्ठो मित्रावरुणिः; ११ उपमन्युर्वासिष्ठः; १२ शंयुर्बर्हिस्पत्यः; १३ वालखिल्याः; प्रस्कण्वः काण्वः; १४ द्रुमेष्ट आंगिरसः; १६ नहुषो मानवः; १७ ( १-२ ) सिकता निवावरी; १७ ( ३ ) पृश्निषोऽजाः; १८ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; १९ जेता माधुच्छन्दसः; ॥ १-५, १०-११, १५-७ पत्रमानः सोमः; ६ अग्निः; १७ मित्रावरुणौ; ८, १२-१४, १८-१९ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी ॥ १-१०, १५, १८ गायत्री; ११ त्रिष्टुप्; १२-१४ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ), १६, १९ अनुष्टुप्; १७ जगती ॥

७७५ पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

( ऋ. ९।६२।२५ )

७७६ त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६२।२६ )

७७७ तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥ ( यी ) ॥

( ऋ. ९।६२।२७ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ७७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अग्रियः ) तू आगेके भागमें रहनेवाला अर्थात् मुख्य है, तू ( चित्राभिः ऊतिभिः ) अपनी विलक्षण रक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर ( वाचः पवस्व ) हमारी स्तुतिको सुन, उसी प्रकार तू ( विश्वानि काव्या अभि ) अपने सब स्तुतिके काव्योंको सुन ॥ १ ॥

१ अग्रियः— आगे रहनेवाला ।

२ चित्राः ऊतयः— विशेष संरक्षणकी शक्ति अपने पास हो ।

३ विश्वानि काव्या अभि— सब स्तुतिके काव्य हों, ऐसे कर्म करने चाहिए ।

[ ७७६ ] हे ( विश्व-चर्षणे ) सबका निरीक्षण करनेवाले सोम ! ( अग्रियः ) तू आगे चलनेवाला होकर ( वाचः ईरयन् ) स्तुतियोंको प्रेरित करता हुआ ( समुद्रियाः आपः ) अन्तरिक्षके जलको ( पवस्व ) प्राप्त कर । सोमरसमें जल मिलाया जाता है ॥ २ ॥

१ विश्व-चर्षणिः— सब कर्मोंका अच्छी तरह निरीक्षण करना चाहिए । सार्वजनिक हित करनेवाला ।

२ अग्रियः— ऊँचे स्थान पर रहें, नेता बनें ।

३ वाचः ईरयन्— दूसरोंकी वाणी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो, ऐसे उत्तम कर्म करने चाहिए ।

४ समुद्रियाः आपः पवस्व— सोमरसमें अन्तरिक्षसे वर्षाके रूपमें प्राप्त होनेवाले जलको मिलावें ।

[ ७७७ ] हे ( कवे ) दूरदर्शी सोम ! ( तुभ्यं ) तेरी ( महिम्ने ) महानताके कारण ( इमा भुवना तस्थिरे ) ये भुवन स्थिर हैं, उसी प्रकार ( धेनवः ) ये गायें ( तुभ्यं धावन्ति ) तुझे दूध देनेके लिए तेरे पास दौड़ रही हैं ॥ ३ ॥

\*



७७८ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ! विश्वा अप द्विषो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।२८ )

७७९ यस्य ते सख्ये वयःसासह्याम पृतन्यतः । तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।२९ )

७८० या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३ ॥ २ ( इ ) ॥  
( ऋ. ९।६१।३० )

७८१ वृषा सोम द्युमान् असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।१ )

१ कविः— दूरदर्शी, आगे होनेवाली बातोंको पहलेसे ही जान लेनेवाला ।

२ तुभ्यं महिम्ने इमा भुवना तस्थिरे — तेरी महिमा बढ़ानेके लिए ये भुवन प्रयत्न कर रहे हैं । अपना यश बढे, इसके लिए यत्न करना चाहिए । अपनी महिमा जिससे कम हो ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहिए ।

३ धेनवः तुभ्यं धावन्ति— गायके वृष सोमरसमें मिलाये जायें, इसलिए गायें सोमके पास जाती हैं । सोमयज्ञके पास पहुँचती हैं ।

[ ७७८ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( सुतः वृषा ) निकाला गया यह सोमरस बल बढ़ानेवाला है, तू ( पवस्वः ) छनता जा । ( जने ) मनुष्योंमें ( नः यशसः कृधि ) हमें यशस्वी कर, और ( विश्वाः द्विषः अप जहि ) सब शत्रुओंका नाश कर ॥ १ ॥

१ सुतः वृषा— सोमरस बल बढ़ानेवाला है ।

२ जने नः यशसः कृधि— मनुष्योंके बीचमें हमें यशस्वी बना ।

३ विश्वाः द्विषः अप जहि— सब शत्रुओंको पराजित कर, सब शत्रुओंको नष्ट कर ।

[ ७७९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( यस्य ते सख्ये ) जिस तेरे मित्र होकर हमने ( तव उत्तमे द्युम्ने ) तेरे उत्तम तेजको प्राप्त किया है, इस कारण ( पृतन्यतः सासह्याम ) सेनाओंके साथ आक्रमण करनेवाले शत्रुको हम पराजित कर सकते हैं ॥ २ ॥

१ तव उत्तमे द्युम्ने सख्ये— तेरी उत्तम और तेजस्वी मित्रताको प्राप्त करके हम उत्तम तेजस्वी बनें ।

२ पृतन्यतः सासह्याम— सेनाके साथ चढ़ते चले आनेवाले शत्रुका पराभव हम कर सकें, ऐसा कर ।

[ ७८० ] हे ( सोम ) सोम ! ( ते ) तेरे ( या भीमानि ) जो भयंकर ( तिग्मानि आयुधा ) और तीक्ष्ण शस्त्र ( धूर्वणे ) शत्रुके नाश करनेके लिए हैं, उसकी सहायतासे ( समस्य निदः ) सब शत्रुओंकी निन्वासे ( नः रक्ष ) हमारा संरक्षण कर ॥ ३ ॥

१ भीमानि तिग्मानि आयुधा धूर्वणे— भयंकर तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र शत्रुके नाश करनेके लिए अपने पास रखने चाहिए ।

२ समस्य निदः नः रक्ष— सब शत्रुकी निन्वासे से अपने संरक्षण कर सकते हैं ।

उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे मनुष्य अपना उत्तम संरक्षण कर सकता है । इसलिए उत्तम शस्त्रास्त्रोंको अपने पास तैय्यार रखना चाहिए ।

[ ७८१ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( वृषा द्युमान् असि ) बलवान् और तेजस्वी है, हे ( देव ) सोमदेव ! ( वृषा ) तू कामनाओंको तुप्त करनेवाला है, ( वृषः-व्रतः ) बल बढ़ानेवाले ये तेरे व्रत हैं, तू ( वृषा धर्माणि दधिषे ) अपने बलसे सब करने योग्य धर्मोंको धारण करता है ॥ १ ॥

१ वृषा द्युमान्— मनुष्य बलवान् और तेजस्वी हों ।

२ देव— देवत्व प्राप्त करें ।

३ वृष-व्रतः— बल बढ़ानेवाले व्रतोंका ही धारण करें ।

४ वृषा धर्माणि दधिषे— अपने बलसे सब कर्तव्योंको स्वयं ही करनेका निश्चय कर ।



७८२ वृष्णस्ते वृष्ण्यंशवो वृषा वनं वृषा सुतः । स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।२ )

७८३ अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥ ३ ( लु ) ॥  
( ऋ. ९।६४।३ )

७८४ वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वदृशम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।४ )

७८५ यदाद्भिः परिषिच्यसे मर्मज्यमान आयुभिः । द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।६ )

७८६ आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ३ ॥ ४ ( यौ ) ॥  
( ऋ. ९।६५।६ )

७८७ पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।८ )

[ ७८२ ] हे ( वृष्णन् ) बलवान् सोम ! ( वृष्णः ते शवः ) बलवाले तेरा सामर्थ्य ( वृष्ण्यं ) बहुत प्रभावशाली है, ( वनं वृषा ) तेरी सेवा बलको बढ़ानेवाली है, ( सुतः वृषा ) तेरा रस बल बढ़ानेवाला है, ( सः त्वं वृषा इत् असि ) वह तू स्वयं भी बल बढ़ानेवाला है ॥ २ ॥

१ वृषाः ते शवः वृष्ण्यं — बल बढ़ानेवाले तेरा सामर्थ्य अत्यन्त प्रभावशाली है ।

२ सः त्वं वृषा इत् असि — वह तू निश्चयसे बलवान् है ।

साधक उत्तम बल प्राप्त करके उत्तम सामर्थ्यसे युक्त हों ।

[ ७८३ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( वृषा ) तू बलवान् है, ( अश्वः न ) घोड़ेके समान ( सं चक्रदः ) शब्द करता है और ( गाः अर्वतः ) गाय और घोड़े देता है, इसलिए ( नः राये दुरः विवृधि ) हमारे लिए धनके द्वार खोल दे ॥ ३ ॥

१ नः राये दुरः विवृधि — हमारे लिए धन प्राप्त करनेके दरवाजे खोल दे । धर्म मार्गसे धन मिले, ऐसा कर, सम्मार्गसे धन मिले ।

[ ७८४ ] हे सोम ! तू निश्चयसे ( वृषा हि असि ) बल बढ़ानेवाला है, हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( स्वः-दृशं ) आत्मवर्गी और ( भानुना द्युमन्तं ) अपने तेजसे तेजस्वी ( त्वा हवामहे ) ऐसे तुझे हम अपने पास बुलाते हैं ॥ १ ॥

१ स्वः-दृशं — अपने तेजसे चमकनेवाला ।

२ भानुना द्युमन्तं — अपने तेजसे तेजस्वी ।

३ हवामहे — तेजस्वीको अपने पास बुलावें, और उसके तेजसे तेजस्वी हों ।

[ ७८५ ] हे सोम ! तू ( आयुभिः मर्मज्यमानः ) ऋत्विजों द्वारा शुद्ध किया जाता है, और ( यत् अद्भिः परिषिच्यसे ) जब जलसे मिलाया जाता है, तब ( द्रोणे सधस्थं अश्नुषे ) कलसेमें स्थान प्राप्त करता है ॥ २ ॥  
ऋत्विज सोमरस छानते हैं, उसे पानीमें मिलाते हैं, और कलशमें भरकर रखते हैं ।

[ ७८६ ] ( सु-आयुध ) उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त सोम ! ( मन्दमानः ) तू आनन्द देनेवाला होकर ( सु-वीर्यं आ पवस्व ) उत्तम वीर्य हमें दे और हे ( इन्दो ) सोम ! ( इह उ सु आगहि ) यहाँ इस यज्ञमें उत्तम रीतिसे आ ॥ ३ ॥

१ मन्दमानः सु-वीर्यं आ पवस्व — आनन्द देनेवाला होकर उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य हमें दे ।

२ सु-आयुध — उत्तम शस्त्रास्त्रोंको पासमें रखना चाहिए । यहाँ लुचा, स्पय आदि यज्ञके साधन आयुध शब्दसे अभीष्ट हैं । हर कार्यके अपने पृथक् पृथक् आयुध होते हैं ।

[ ७८७ ] हे सोम ! ( पवित्रं अभ्युन्दतः ) छाननी द्वारा छाने जानेवाले ( पवमानस्य ते ) और पवित्र होनेवाले तुमसे हम ( सखित्वं आ वृणीमहे ) मित्रताकी इच्छा करते हैं ॥ १ ॥



७८८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।९ )

७८९ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥ ५ ( ला ) ॥  
( ऋ. ९।६।६ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

७९० <sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२।१ )

७९१ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्वपतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।२ )

७९२ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अग्ने देवाः इहा वह जज्ञानो वृक्तवर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥ ६ ( यौ ) ॥  
( ऋ. १।१२।३ )

७९३ <sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२३।४ )

[ ७८८ ] हे सोम ! ( ते ये ऊर्मयः ) तेरी जो लहरें हैं, वे ( धारया पवित्रं अभिक्षरन्ति ) एक धारासे छनतीसे नीचे गिर रही हैं, ( तेभिः नः मृडय ) उनके द्वारा हमें सुख मिले ऐसा कर ॥ २ ॥

[ ७८९ ] हे सोम ! ( विश्वतः ईशानः ) तू सबका स्वामी है, ( सः पुनानः ) वह तू रस निकाल कर छाना जानेके बाद ( नः ) हमें ( रयिं वीरवतीं इषं आ भर ) धन और पुत्रपौत्रयुक्त अन्न भरपूर दे ॥ ३ ॥

१ विश्वतः ईशानः— सब प्रकार सबका स्वामी ।

२ पुनानः— पवित्र होकर ।

३ रयिं वीरवतीं इषं आ भर— धन और पुत्र देनेवाले अन्न हमें भरपूर दे ।

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ७९० ] ( होतारं ) देवोंको बुलाकर लानेवाले ( विश्व-वेदसं ) सब धन पासमें रखनेवाले ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम ढंगसे सिद्ध करनेवाले ( दूतं अग्निं वृणीमहे ) देवोंको हवि पहुंचानेवाले अग्निकी हम आराधना करते हैं ॥ १ ॥

१ होता— श्रेष्ठ देवोंको बुलाकर लानेवाला ।

२ विश्व-वेदः— सब प्रकारके धनोंको अपने पास रखनेवाला ।

३ यज्ञस्य सुक्रतुः— यज्ञको उत्तम ढंगसे करनेवाला ।

४ दूतः— हवि देवोंको पहुंचानेवाला ।

५ अग्निः— “ अग्निः कस्मादग्रणीर्भवति ” ( निरुक्त )— अग्रणी, आगे ले जानेवाला, मंजिल तक पहुंचानेवाला ।

[ ७९१ ] ( विश्वपतिं ) प्रजाओंके पालन करनेवाले ( हव्य-वाहं ) हविकी देवोंके पास पहुंचानेवाले ( पुरु-प्रियं ) बहुतोंको प्रिय लगनेवाले ( अग्निं अग्निं ) आगे ले जानेवाले नेता अग्निकी ( हवीमभिः सदा हवन्ते ) हवनके मंत्रोंसे हम सदा बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ७९२ ] हे ( अग्ने ) अग्नि देव ! ( जज्ञानः ) अरणियोंसे उत्पन्न होनेवाला तू ( वृक्त-वर्हिषे ) आसन फेंलाने-वाले यजमानके लिए ( इहा देवान् आ वह ) इस यज्ञमें देवोंको बुला ला, तू ( नः होता ईड्यः असि ) देवोंको बुलाने-वाला, स्तुत्य और हमारा सहायक है ॥ ३ ॥

[ ७९३ ] ( वयं ) हम ( सोम-पीतये ) जो यज्ञमें आनेवाले और पवित्र बलयुक्त हैं, उन ( मित्रं वरुणं ) मित्र और वरुणको ( हवामहे ) बुलाते हैं ॥ १ ॥



- ७९४ ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२३।२ )
- ७९५ वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥ ३ ॥ ७ ( वा ) ॥  
( ऋ. १।२३।६ )
- ७९६ इन्द्रमिद्राथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७।१ )
- ७९७ इन्द्र इद्वर्योः सचा सम्मिश्र आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७।२ )
- ७९८ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।७।४ )
- ७९९ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यश्रोहयदिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥ ८ ( खा ) ॥  
( ऋ. १।७।३ )
- ८०० इन्द्रे अग्रा नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।९४।४ )
- ८०१ ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्राय ऊतये । सन्नाधो वाजसातये ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।९४।२ )

[ ७९४ ] ( यौ ऋतेन ) जो सत्यवचनसे ( ऋतावृधौ ) सत्यका संवर्धन करते हैं, जो ( ज्योतिषः-पती ) तेजके स्वामी हैं, ( ता मित्रावरुणा ) उन मित्र और वरुणको मैं ( हुवे ) बुलाता हूँ ॥ २ ॥

१ ऋतेन ऋतावृधौ — सत्य नियमका पालन करके सत्यके मार्गकी उन्नति करते हैं ।

२ ज्योतिषः-पती — प्रकाशके स्वामी, प्रकाश फैलाते हैं ।

[ ७९५ ] ( वरुणः मित्रः ) वरुण और मित्र ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) अपने सब संरक्षणके साधनोंसे ( प्राविता भुवत् ) हमारे संरक्षण करनेवाले हों, ( नः सुराधसः करतां ) और हमें उत्तम धनसे युक्त करें ॥ ३ ॥

[ ७९६ ] ( गाथिनः ) सामगान करनेवालोंने ( इन्द्रं इत् ) इन्द्रकी ही ( बृहत् अनूषत ) बृहत् नामक सामगानसे स्तुति की । ( अर्किणः ) अर्चना करनेवालोंने ( अर्केभिः इन्द्रं ) मंत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति की, उसी प्रकार ( वाणीः इन्द्रं ) स्तोत्रोंसे भी इन्द्रकी ही स्तुति की ॥ १ ॥

[ ७९७ ] ( वज्री हिरण्ययः इन्द्र इत् ) वज्रधारी, सोनेके आभूषण धारण करनेवाला इन्द्र ( वचो-युजा हर्योः ) कहनेसे [ रथमें ] जुड़ जानेवाले घोड़ोंको ( सचा ) एक साथ ( आ सम्मिश्रः ) अपने रथमें जोड़नेवाला है ॥ २ ॥

[ ७९८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( उग्रः ) वीर तू ( उग्राभिः ऊतिभिः ) संरक्षणके प्रबल साधनोंसे ( सहस्र-प्रधनेषु वाजेषु ) हजारों प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले युद्धोंमें ( नः अव ) हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

१ उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः नः अव — तू उग्रवीर होकर उग्र संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ।

२ सहस्र-प्रधनेषु वाजेषु नो अव — हजारों प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले युद्धोंमें हमारा संरक्षण कर ।

[ ७९९ ] ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( दीर्घाय चक्षसे ) महान् प्रकाशके लिए ( दिवि सूर्य आरोहयत् ) धुलोकमें सूर्यको चढाया, उसी प्रकार ( गोभिः अद्रं व्यैरयत् ) किरणोंसे मेघोंको प्रेरित किया ॥ ४ ॥

[ ८०० ] ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम ( इन्द्रे ) इन्द्रके पास और ( अग्नौ ) अग्निके पास ( बृहत् नमः सुवृक्ति ) बहुत अन्न और उत्तम स्तुति ( ऐरयामहे ) पहुंचाते हैं, उसी प्रकार ( धिया धेनाः ) बद्धिपूर्वक उनकी प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[ ८०१ ] ( ता हि ) उस इन्द्र और अग्निकी ( शश्वन्तः विप्रासः ) बहुतसे जानी मिलकर ( ऊतये ) अपने संरक्षणके लिए ( इत्थं ईडते ) ऐसी स्तुति करते हैं, जिस प्रकार ( स-बाधः ) आपसमें झगडा करनेवाले ( वाज-सातये ) अन्न प्राप्तिके लिए स्तुति करते हैं ॥ २ ॥



८०२ ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥ ९ (हु) ॥  
( ऋ. ७।९।६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

८०३ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१० )

८०४ तं त्वा धर्तारिभ्योऽऽः पवमान स्वदेशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।११ )

८०५ अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युवं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥ १० (ट) ॥  
( ऋ. ९।६५।१२ )

८०६ वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्वा नदयन्नेपि पृथिवीमुत द्याम् ।  
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।१३ )

८०७ रसाट्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेपि मधुमन्तमंशुम् ।  
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।१४ )

[ ८०२ ] ( विपन्यवः ) स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले ( प्रयस्वन्तः ) हविष्यान्तको पासमें रखनेवाले ( सनिष्यवः ) धन पानेकी इच्छा करनेवाले और ( मेध-साता ) यज्ञ करनेवाले हम ( ता वां ) उन तुम दोनों इन्द्र और अग्निको ( गीर्भिः हवामहे ) स्तुतिसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ८०३ ] हे सोम ! तू ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला होकर ( धारया पवस्व ) एक धारासे छनता जा, और तू ( विश्वा ओजसा दधानः ) सब धनोंको अपने बलसे धारण करके ( मरुत्वते मत्सरः ) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको आनन्द देनेवाला हो ॥ १ ॥

[ ८०४ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( ओण्योः धर्तारि ) द्यावापृथिवीको धारण करनेवाले ( स्वः-दृशं वाजिनं ) आत्माको साक्षात् करनेवाले, बलवान् ( तं त्वा ) ऐसे उस तुझे मैं ( वाजेषु हिन्वे ) संग्राममें जानेके लिए प्रेरित करता हूँ ॥ २ ॥

[ ८०५ ] हे सोम ! ( अया विपा ) इस अंगुलीसे ( चित्तः हरिः ) निचोड़ा गया हरे रंगवाला तू ( धारया पवस्व ) एक धारासे कलशमें छनता जा, और ( वाजेषु युवं चोदय ) युद्धमें जानेके लिए अपने मित्र इन्द्रको प्रेरित कर ॥ ३ ॥

[ ८०६ ] ( शोणः वृषा ) लाल रंगवाला बेल ( गाः अभि कनिक्रदत् ) गायको देखकर जिस प्रकार शब्द करता है, उस प्रकार ( नदयन् ) शब्द करनेवाला यह सोम है, हे सोम ! तू ( पृथिवीं उत द्यां एपि ) पृथ्वी और बुलोकको प्राप्त होता है, ( आजौ ) युद्धमें ( इन्द्रस्य वग्नुरा इव ) इन्द्रके शब्दके समान तेरे शब्दको ( आशृण्वे ) मैं सुनता हूँ, ( प्रचेतयन् ) अपने स्वरूपका ज्ञान देता हुआ ( इमां वाचं आ अर्षसि ) इस स्तुतिरूप वाणीको तू प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ ८०७ ] ( रसाट्यः ) प्रथम स्वर्यं मधुर और ऊपरसे ( पयसा पिन्वमानः ) गायके दूध मिलानेसे और अधिक ( मधुमन्तं ) मधुर हुए ( अंशुं ) सोमको ( ईरयन् एषि ) प्रेरणा करते हुए तू जाता है । हे ( सोम ) सोम ! ( परिषिच्यमानः पवमानः ) पानीमें मिलाकर छाना जानेवाला तू ( सन्तनिं कृण्वन् ) अपनी धारा बनाते हुए ( इन्द्राय एषि ) इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ २ ॥



८०८ एवा पवस्व मदिरा मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।

परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गन्धुर्नो अर्षे परि सोम सिक्तः ॥ ३ ॥ ११ ( रि ) ॥

( ऋ. २।९७।१९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

८०९ त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४६।१ )

८१० स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।

गामश्च रथमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥ १२ ( फु ) ॥

[ धा. १०।उ. २।ख. ९ ] ( ऋ. ६।४६।२ )

८११ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्चं यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४९।१ )

[ ८०८ ] हे सोम ! ( मदिरा ) उत्साह बढानेवाला तू ( वध-स्नुं ) वृत्रवध होनेके बाद ( उदग्राभस्य नमयन् ) पानी बढानेवाले मेघको झुकाते हुए ( मदाय पवस्व ) आनन्द देनेके लिए छनता जा । ( रुशन्तं वर्णं परि भरमाणः ) तेजस्वी रंगको धारण करते हुए ( सिक्तः ) पानीमें छनते हुए ( गन्धुः ) गायके दूधकी इच्छा करते हुए ( नः परि अर्षे ) तू हमारे चारों ओर बह ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ८०९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( कारवः ) स्तुति करनेवाले हम ( वाजस्य सातौ ) भग्नकी प्राप्तिके लिए ( त्वां इत् हि हवामहे ) तुझे ही बुलाते हैं, हे इन्द्र ! ( सत्पतिं ) श्रेष्ठ पुरुषोंका पालन करनेवाले तुझे ( नरः ) लोग ( वृत्रेषु [ हवन्ते ] ) शत्रुके उत्पन्न होनेपर बुलाते हैं, उसी प्रकार ( अर्वतः काष्ठासु ) घोड़ोंके युद्धोंमें भी ( त्वां ) तुझे ही सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ ८१० ] ( चित्र वज्रहस्त अद्रिवः ) हे विलक्षण पराक्रमी, वज्रधारी तथा पर्वतपर रहनेवाले इन्द्र ! ( धृष्णुया ) अपनी शत्रुनाशक शक्तिसे ( महः ) महान् हुआ तू ( स्तवानः ) स्तुति किए जानेके बाद ( गां अर्धं रथं संकिर ) गाय, घोड़े और रथ उत्तम प्रकारसे हमें दे, ( जिग्युषे ) विजयी पुरुषको ( सत्रा वाजं न ) जैसे एक साथ घोड़े आदि पदार्थ तू देता है, उसी प्रकार हमें दे ॥ २ ॥

१ धृष्णुया महः— शत्रुके पराभव करनेकी शक्तिसे महानता प्राप्त होती है ।

२ जिग्युषे सत्रा वाजं— विजयी वीरको सहजमें ही भग्न और बल प्राप्त होता है ।

[ ८११ ] ( पुरु-वसुः मघवा ) बहुत सारा धन पासमें रखनेवाला धनवान् ऐसा ( यः ) जो इन्द्र ( जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति ) स्तुति करनेवालोंको हजारों प्रकारसे धन देता है, ऐसे ( सु-राधसं इन्द्रं ) उत्तम धन देनेवाले उस इन्द्रकी ( वः ) तुम ( यथा-विदे ) जिस प्रकार जानते हो, उस प्रकार ( अभि प्र अर्चं ) स्तुति करो ॥ १ ॥

७ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



८१२ शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥ १३ ( हि ) ॥

[ धा. १६ । उ. ना. । ख. ३ ] ( ऋ. ८।४९।२ )

८१३ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्जिन् भूर्णयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युष स्वसरमा गहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९९।१ )

८१४ मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।

तव श्रवाऽस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥ १४ ( ल ) ॥

[ धा. १९ । उ. ना. । ख. १ ] ( ऋ. ८।९९।२ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

८१५ यस्तं मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशऽसहा

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१९ )

[ ८१२ ] ( धृष्णुया शतानीक इव ) शूरवीर जिस प्रकार शत्रुसेनापर ( प्र जिगाति ) चढाई करता है, उस प्रकार इन्द्र ( दाशुषे वृत्राणि हन्ति ) दान देनेवालेके लिए शत्रुओंको मारता है, ( पुरु-भोजसः ) बहुत साधन अपने पास रखनेवाले ( अस्य ) इस इन्द्रके ( दत्राणि ) दान लोगोंको, ( गिरेः रसाः इव ) जिस प्रकार पर्वतके जल लोगोंको तृप्त करते हैं, उसी प्रकार ( प्र पिन्विरे ) तृप्त करते हैं ॥ २ ॥

१ धृष्णुया शतानीक इव प्र जिगाति— शूर पुरुष अपने शौर्यसे शत्रुसेनापर आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता है ।

२ दाशुषे वृत्राणि हन्ति— वह इन्द्र उपकार करनेवालोंकी उन्नतिके लिए शत्रुओंको मारता है, और बाताओंकी रक्षा करता है ।

३ गिरेः रसाः इव अस्य दत्राणि प्र पिन्विरे— पर्वतके जल जिस प्रकार सबको मिलते हैं, उस प्रकार इसके दान सबके लिए लाभकारी होते हैं ।

[ ८१३ ] हे ( वज्जिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( भूर्णयः नरः ) हवि देनेवाले यजमान ( इदा त्वां अपीप्यन् ) आज पहले ही दिनसे तुझे सोम देते हैं । ( सः ) वह तू ( स्तोम-वाहसः ) स्तोत्र गानेवालोंकी स्तुतियोंको ( इह श्रुधि ) इस यज्ञमें सुन और ( स्वसरं उपागहि ) यज्ञस्थानमें विराजमान हो ॥ १ ॥

[ ८१४ ] हे ( सु-शिप्रिन् हरिवः गिर्वणः ) सुन्दर शिरस्त्राण धारण करनेवाले, घोड़ोंका पालन करनेवाले, स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( वेधसः ) तेरी सेवा करनेवाले, ( त्वया आभूषन्ति ) तुझे उत्तम प्रकारसे सुशोभित करते हैं, ( मत्स्व ) तू सोम पीकर तृप्त हो, हे ( उक्थ्य ) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! ( सुतेषु ) सोमरस तैय्यार होनेके बाद तुझे ( तव उपमानि श्रवांसि ) तेरी उपमा देने योग्य अन्न भी दिए जाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ८१५ ] हे सोम ! ( देववीः ) देवताको देने योग्य ( अघ-शंस-हा ) पापी राक्षसोंकी मारनेवाला और ( वरेण्यः मदः यः ते ) श्रेष्ठ आनन्द देनेवाला जो तेरा रस है, ( तेन अन्धसा पवस्व ) उस सेवन करने योग्य रसके साथ तू पात्रमें छनता जा ॥ १ ॥



८१६ जग्निवृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषातिरश्वसा असि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१० )

८१७ सम्मिश्रो अरुषो भुवः सपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदं च्छयेनो न योनिमा ॥ ३ ॥ १५ ( चौ ) ॥  
[ धा. १२ । उ. १ । स्व. नास्ति ] ( ऋ. ९।६।११ )

८१८ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।  
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१७ )

८१९ समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।  
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१८ )

८२० य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।  
यः पञ्च चर्षणीरभि रयि येन वनामहे ॥ ३ ॥ १६ ( फु ) ॥  
[ धा. १९ । उ. २ । स्व. ९ ] ( ऋ. ९।१०।१९ )

८२१ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।  
प्राणा सिन्धूनां कलशा अचिक्रददिन्द्रस्य हाद्याविश्वन्मनीषिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।१९ )

[ ८१६ ] हे सोम ! तू ( अ-मित्रियं वृत्रं जग्निः ) शत्रुरूपी कुष्टोंका नाश करनेवाला है, तू ( दिवे दिवे ) प्रति-  
दिन ( वाजं सस्निः ) युद्धमें जाता है, और ( गो-षातिः ) गायका दान और ( अश्व-सा असि ) घोड़ोंका दान तू करता है ॥ २ ॥

१ अ-मित्रियं वृत्रं जग्निः — शत्रुका वध करना चाहिए ।

२ दिवे दिवे वाजं सस्निः — प्रतिदिन तू युद्ध करता है ।

[ ८१७ ] हे सोम ! तू ( सु-उपस्थाभिः धेनुभिः सम्मिश्रः ) सुन्दर गायके दूधमें मिलनेपर ( श्येनः न ) जिस  
प्रकार बाज ( योनिं आसीदं ) अपने घोंसलेमें बैठकर ( न अरुषः भुवः ) तेजस्वी होता है, उसी प्रकार तू  
चमकता है ॥ ३ ॥

[ ८१८ ] ( पूषा ) पोषण करनेवाला ( भगः ) भजनीय ( रयिः ) धनके समान ( अयं पुनानः अर्षति ) यह  
सोम छाने जाते हुए कलशमें जाता है, ( विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः ) सब प्राणियोंका पालन करनेवाला यह सोम  
( उभे रोदसी व्यख्यत् ) दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक पर अपने तेजसे चमकता है ॥ १ ॥

[ ८१९ ] ( प्रियाः घृष्वयः गावः ) प्रेम और स्पर्धा करनेवाली गायें ( मदाय समनूषत ) आनन्द प्राप्त करनेके  
लिए स्तुति करती हैं, ( उ ) यह सत्य है कि ( पवमानासः इन्दवः ) शुद्ध होनेवाले तथा ऐश्वर्यवाले ( सोमासः ) सोमरस  
( पथः कृण्वते ) अपने बहनेके मार्गको बनाते हैं ॥ २ ॥

[ ८२० ] हे ( पवमान ) सोम ! ( यः ओजिष्ठः ) जो सोमरस शक्ति बढ़ानेवाला है, ( यः ) जो ( पञ्च  
चर्षणीः ) पांचजनोंकी ( अभि ) प्राप्त होता है, और ( येन रयिं वनामहे ) जिसकी सहायतासे हम धन प्राप्त करते  
हैं उस ( श्रवाय्यं आ भर ) प्रशंसनीय रसको हमें भरपूर दे ॥ ३ ॥

[ ८२१ ] ( मतीनां वृषा ) बुद्धिका बल बढ़ानेवाला ( विचक्षणः ) विशेष ज्ञानी, ( अह्नां उषसां दिवः प्रत-  
रीता ) दिन, उषा और द्युलोकका तेज बढ़ानेवाला ( सिन्धूनां प्राणाः ) नदियोंका प्राण ( मनीषिभिः ) विद्वानों द्वारा  
स्तुति किए जाने योग्य ऐसा यह सोम ( इन्द्रस्य हार्दि आविशन् ) इन्द्रके हृदयमें प्रवेश करनेकी इच्छा करते हुए  
( कलशान् अचिक्रदत् ) तथा शब्द करते हुए कलशमें जाता है, छाना जाता है ॥ १ ॥



८२२ मनीषिभिः पवते पूर्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाः असिष्यदत् ।

त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरभिन्द्रस्य वायुः सख्याय वर्धयन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।२० )

८२३ अयं पुनान उपसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।

अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ३ ॥ १७ ( गी ) ॥

[ धा. ३६। उ. ३। स्व. ४ ] ( ऋ. ९।८६।२१ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

८२४ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९२।२८९ )

८२५ एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातुभिः । अघा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥

( ऋ. ८।९२।२९ )

८२६ मां पु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भवा वाजानां पते । मत्स्वो सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥ १८ ( ति ) ॥

[ धा. १४। उ. १। स्व. ३ ] ( ऋ. ८।९२।३० )

८२७ इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्समुद्रव्यचसं गिरः ।

रथीतमः रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्

॥ १ ॥

( ऋ. १।११।१ )

[ ८२२ ] ( पूर्यः कविः ) पहलेसे ही ज्ञानी यह सोम ( मनीषिभिः पवते ) याजकों द्वारा छाना जाता है ( नृभिः यतः ) यज्ञकर्ताओं द्वारा नियन्त्रित यह सोम ( कोशान् पर्यसिष्यदत् ) कलशमें जाता है, ( त्रितस्य इन्द्रस्य नाम जनयन् ) तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होनेवाले इन्द्रके नामको और अधिक प्रसिद्ध करता हुआ ( मधु ) यह मधुर रस ( इन्द्रस्य सख्याय ) इन्द्रकी मित्रताके लिए ( वायुं वर्धयन् ) वायुका सेवन करता हुआ ( क्षरन् ) बर्तनमें गिरता है ॥ २ ॥

[ ८२३ ] ( लोक-कृत् ) लोगोंका हित करनेवाला ( अयं पुनानः ) यह सोम पवित्र होता हुआ ( उपसः अरोचयत् ) उषाको प्रकाशित करता है, ( सिन्धुभ्यः अभवत् ) नदियोंको बढ़ानेवाला यह है, ( अयं हृदे ) यह सोम पेटमें जानेके लिए ( त्रिः-सप्त दुदुहानः ) इक्कीस गायोंका दूध निकालकर ( मत्सरः चारु पवते ) आनन्दवायक होकर उत्तम रीतिसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ८२४ ] हे इन्द्र ! तू ( वीरयुः एव असि हि ) युद्धमें वीरोंका उपयोग करनेवाला है, क्योंकि तू ( शूरः एव ) शूर है, ( उत स्थिरः ) और युद्धमें स्थिर रहनेवाला है, इसलिए ( ते मनः ) तेरा मन ( राध्यं एव ) अराधना करनेके योग्य है ॥ १ ॥

[ ८२५ ] हे ( तुवी-मघ ) बहुत धनवान् ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( विश्वेभिः धातुभिः ) धारण करनेवाले सब देवताओंको हवि देनेवाले यजमानोंके पास तेरे द्वारा बिए गए ( रातिः ) दान ( धायि चित् ) स्थावरूपसे रहते हैं, ( अथ ) इसलिए, हे इन्द्र ! ( नः सचा ) हमें धन देकर हमारी सहायता कर ॥ २ ॥

[ ८२६ ] हे ( वाजानां पते ) अश्वोंके व बलोंके स्वामी इन्द्र ! ( तन्द्र-युः ब्रह्मा इव ) आलसी ब्राह्मणके समान ( मा उ सु भुवः ) तू आलसी मत हो, अपितु ( गोतमः सुतस्य मत्स्व ) गोकुल मिश्रित सोमरससे आनन्दित हो ॥ ३ ॥

[ ८२७ ] ( विश्वाः गिरः ) सब स्तुतियां ( समुद्र-व्यचसं ) समुद्रके समान विस्तृत ( रथीनां रथीतमं ) रथी वीरोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ ( वाजानां पतिं ) बलोंके स्वामी ( सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् ) सत्पुरुषोंके संरक्षण करनेवाले इन्द्रका वर्णन करती हैं, और उसके यशको बढ़ाती हैं ॥ १ ॥



८२८ सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम श्वसस्पते ।

त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम्

॥ २ ॥

( ऋ. १।१।१२ )

८२९ पूर्वोरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यंत्युतयः ।

यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्

॥ ३ ॥ १९ ( ली ) ॥

[ धा. १८। उ. नास्ति । स्व. ४ ] ( ऋ. १।१।१३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

[ ८२८ ] हे ( श्वसः पते ) बलोंकी रक्षा करनेवाले ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते सख्ये वाजिनः ) तेरी मित्रतामें बलवान् होकर हम ( मा भेम ) न डरें, निर्भय हों, ( जेतारं ) विजयी ( अपराजितं ) पराजित न होनेवाले ऐसे ( त्वां अभि प्रणोनुमः ) तुझे हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

[ ८२९ ] ( इन्द्रस्य रातयः पूर्वीः ) इन्द्रके वान प्राचीनकालसे मिलते आ रहे हैं, ( स्तोतृभ्यः ) स्तुति करने-वालोंको ( गोमतः वाजस्य मघं ) गायसे उत्पन्न हुए अन्नरूपी धन ( यदा मंहते ) जब वह देता है, तब उसके ( रातयः ) वान ( न वि दस्यन्ति ) कम नहीं होते ॥ ३ ॥

॥ यहां छठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

## तृतीय अध्याय

### इन्द्र-देवता

इस अध्यायमें इन्द्र देवताके गुणोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ उग्रः [ ७९८ ]— इन्द्र उग्रवीर है, वह शूर है ।

२ वज्रीः—[ ७९७ ]— वह वज्रको धारण करता है ।

३ इन्द्रः ( इन् द्रः ) [ ७९७ ]— शत्रुओंको फाड़ता है ।

४ हिरण्ययः [ ७९७ ]— सोनेके आभूषण धारण करता है ।

५ वचो युजा हर्योः सचा आ संमिदलः [ ७९७ ]— शब्दोंको सुनते ही रथमें जुड़जानेवाले ऐसे होशियार घोड़े इन्द्रके हैं ।

इन्द्रके घोड़े इतनी अच्छी तरह शिक्षित हैं कि शब्द बोलते ही अपनी जगह जाकर खड़े हो जाते हैं ।

६ उक्थयः [ ८१४ ]— स्तुत्य, प्रशंसनीय ।

७ वाजानां पतिः [ ८२६ ]— अन्न और बलोंका स्वामी ।

८ हे इन्द्र ! सहस्र प्रधनेषु वाजेषु नः अव [ ७९८ ]— हे इन्द्र ! हजारों धन जिसमें प्राप्त होते हैं ऐसे युद्धमें हमारी रक्षा कर ।

युद्धमें हजारों प्रकारके धन मिलते हैं । शत्रुओंकी हरानेके बाद उसको जो लूटा जाता है, उस लूटमें धन प्राप्त होता है, अर्थात् युद्धमें विजय मिलनेके बाद शत्रुको लूटनेका अधिकार विजयी वीरोंको है । यह प्रथा वेदोंको मान्य थी, ऐसा दीखता है ।

९ हे इन्द्र ! वीरयुः शूरः असि, स्थिरः असि [ ८२४ ]— हे इन्द्र ! तू वीरोंके साथ रहकर शूरता बिलाने-वाला है, और युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर रहनेवाला है । क्योंकि उसकी हार कभी भी नहीं होती, इसलिए यह इन्द्र युद्धमें अपनी जगह पर स्थिर रहता है ।



१० सत्पति नरः वृत्रेषु हवन्ते [ ८०९ ]- उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले इन्द्रको लोग युद्धमें सहायताके लिए बुलाते हैं।

११ सुशिप्रिन् हरिवः गर्विणः [ ८१४ ]- उत्तम साफा बांधनेवाला और उत्तम घोड़े पालनेवाला प्रशंसनीय इन्द्र है।

१२ धुष्णया शतानीक इव प्र जिगाति [ ८१२ ]- धैर्यसे सैंकड़ों सैनिक पासमें रखनेवाले वीरके समान शत्रु पर इन्द्र आक्रमण करता है।

१३ दाशुषे वृत्राणि हन्ति [ ८१२ ]- दान देनेवालोंके कल्याण करनेके लिए उनके शत्रुओंको मारता है।

१४ हे इन्द्र ! कारवः वाजसातौ त्वां हवन्ते [ ८०९ ]- हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले अन्नके यज्ञमें तुझे बुलाते हैं।

१५ गाथिनः इन्द्रं बृहत् अनूषत, अर्किणः अर्कभिः वाणीः इन्द्रं [ ७९६ ]- स्तोत्र कहनेवाले इन्द्रकी बृहत् साम गाकर स्तुति करते हैं, अर्चना करनेवाले मंत्रोंसे प्रशंसा करते हैं, सभीकी वाणी इन्द्रका वर्णन करती है।

१६ अवस्यवः इन्द्रे अग्नौ बृहत् नमः सुवृत्तिं पेरयामहे [ ८०० ]- अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले इन्द्र और अग्निकी हम महान् स्तुति करते हैं, ऐसा कहते हैं।

१७ विश्वाः गिरः समुद्रव्यचसं रथानां रथीतमं वाजानां पतिं सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् [ ८२७ ]- सब स्तुतियां समुद्रके समान विशाल, श्रेष्ठ रथी, धनोंके स्वामी, उत्तम अधिपति ऐसे इन्द्रके यशको बढ़ाती हैं।

१८ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत् [ ७९९ ]- इन्द्रने महान् प्रकाशके लिए सूर्यको छलोक पर चढ़ाया।

१९ गोभिः अद्रिं वयैरयत् [ ७९९ ]- किरणोंसे मेघोंको फोड़ा और पानी बरसाया।

इन्द्रके ये गुण इन मंत्रोंमें आए हैं। इनमेंसे जो गुण अपनेमें लाये जा सकें उन्हें पाठक लानेका प्रयत्न करें, और जो गुण न आ सकते हों उनका आशय ही पाठक अपने मनमें धारण करें। जैसे “सबके प्रकाशके लिए इन्द्रने सूर्यको आकाश पर चढ़ाया” इस प्रकार सूर्यको चढ़ाना मनुष्योंके यशकी बात नहीं है, फिर भी अज्ञानान्धकारमें पड़े हुए मनुष्योंको ज्ञानका प्रकाश देकर उन्हें ज्ञानयुक्त करनेका काम साधकोंसे आसानीसे हो सकता है। अतः साधकोंको ऐसे काम अवश्य करने चाहिए।

“वज्रधारी” इन्द्र है। हम “वज्रधारी” नहीं हो सकते, क्योंकि हमारे पास वज्र नहीं है, पर हम “शस्त्रधारी” तो हो ही सकते हैं। इस रीतिसे इन्द्रके गुणोंका ज्ञान इन मंत्रोंमें दिया गया है। उन्हें जानें और उनके आशयको अपने अन्दर लानेका प्रयत्न करें। अब दूसरे देवोंके गुण देखिए—

### अग्नि-देवता

अग्नि देवताके निम्न गुण इस अध्यायमें आए हैं—

१ अग्निः [ ८९० ]- अग्र - णी - आगे ले जानेवाला, अन्ततक पहुंचानेवाला।

२ विश्व-वेदाः [ ७९० ]- सर्वज्ञ, सब धनोंको अपने पास रखनेवाला।

३ यज्ञस्य सुकृतुः [ ७९० ]- यज्ञका सम्पादन उत्तम रीतिसे करनेवाला, सज्जनोंका सत्कार करनेवाला, सब लोगोंका संगठन करके और दान देकर सबका उद्धार करनेवाला।

४ विश्वपतिः [ ७९१ ]- प्रजाओंका पालन करनेवाला।

५ पुरु-प्रियः [ ७९१ ]- बहुतोंकी प्रिय।

६ हव्यवाह [ ७९१ ]- हवि देवोंको पहुंचानेवाला।

७ दूतः [ ७९० ]- हविको देवों तक पहुंचानेवाला दूत।

८ होता [ ७९० ]- देवोंको बुलाकर लानेवाला।

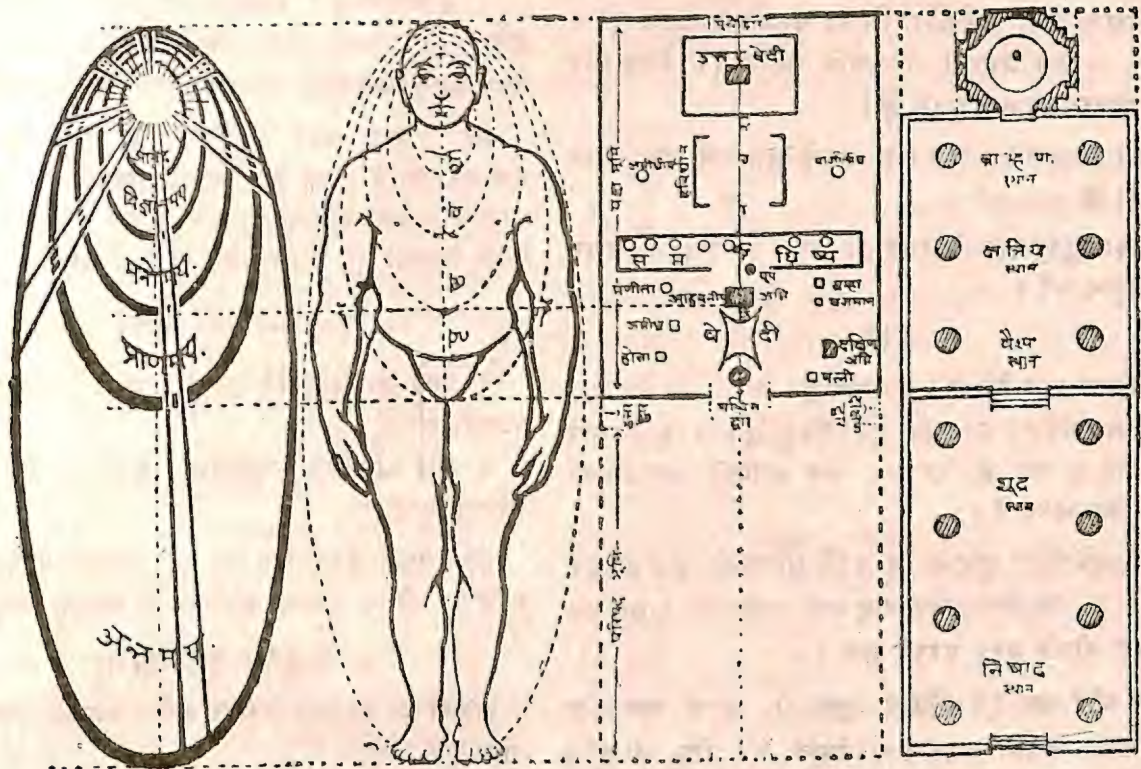
९ जज्ञानः वृक्त-बर्हिषे इह देवान् आवह [ ७९२ ]- उत्पन्न होते ही यजमानोंके लिए देवोंको बुलाकर ला।

१० नः होता ईडयः असि [ ७९० ]- तू हमारा होता और स्तुत्य है।

यहां पर अग्निको देवोंको बुलाकर लानेवाला और यज्ञ-शालामें उन्हें अपने अपने स्थान पर बैठानेवाला कहा गया है। यहां यज्ञशाला हमारा शरीर है। इस शरीररूपी यज्ञ-शालामें नेत्र स्थानमें सूर्य, हृदयके स्थान पर चन्द्रमा, फुफ्फुसमें वायु, छातीमें इन्द्र, मुखमें अग्नि, कानमें दिशा ऐसे अनेक अवयवोंमें अनेक देव आकर बसे हुए हैं और इस देहमें अपना-अपना काम वे करते हैं। ये देव शरीरमें उष्णता रूपी अग्निके रहनेतक ही रहते हैं। शरीरके ठंडे होनेके पहले ही सब निकल जाते हैं। इसलिए कहा है कि अग्नि शरीररूपी यज्ञशालामें सब देवोंको बुलाकर लाता है और उन्हें अपने-अपने स्थान पर बैठाता है, और उनके द्वारा यहांके सब कार्य करता है। शरीरमें यह अनुभव सभी साधकोंको लेना चाहिए। और अपने शरीर रूपी यज्ञशालामें सब देव कैसे और कहाँ रहते हैं, यह जानना चाहिए।



यज्ञशालाका चित्र



यज्ञशाला शरीरका चित्र है। इस प्रकार अग्निके जो गुण मंत्रमें कहे हैं उन्हें पाठक अपने अन्दर धारण करें।

देवोंको बुलाकर लानेका अर्थ राष्ट्रमें विद्वानोंको बुलाकर लाना है। “विद्वांसो हि देवाः” (श. ब्रा.) विद्वान् ही राष्ट्रमें देव हैं। इस प्रकार देवोंके गुण अपने राष्ट्रीय और वैयक्तिक कर्तव्यकी जानकारी दे रहे हैं। उसे जानकर अपनी उन्नति करनी चाहिए।

## इन्द्र-अग्नि की स्तुति

इन्द्र और अग्निकी स्तुति एक ही जगह है, इस विषयमें इस प्रकार कहा है ।

१. ऊतये ता इत्था ईडते [ ८०१ ]- अपने संरक्षणके लिए उन दोनोंकी इस प्रकार स्तुति की जाती है ।

२ सबाधः वाजसातये ईडते [ ८०१ ]- शत्रुके बाधा डालनेके लिए आनेपर अन्न प्राप्तिके लिए इनकी स्तुति की जाती है ।

३ विपन्यतः प्रयस्वन्तः सनिष्यवः मेधसाता  
ता वां गीर्भिः हवामहे [ ८०२ ]- स्तुति करनेवाले,

हविष्यका हवन करनेवाले, धनकी इच्छा करनेवाले, यज्ञ करनेवाले हम तुम दोनों—इन्द्र और अग्नि की स्तुति बरके बलाते हैं।

४ यथाविदे सुराधसं हन्द्रं अभि प्र अर्च [ ८११ ]  
- जैसी जानकारी है वैसी ही उत्तम धन देनेवाले इन्द्रकी आराधना करो ।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निको स्तुति इस अध्यायमें है।

## मित्र और वरुणकी स्तुति

मित्र और वरुण इन दोनों देवताओंकी स्तुति भी इस अध्याय में है।

१ ऋतेन ऋतावृधौ ज्योतिषस्पती मित्रावरुणा  
हुवे [ ७९४ ] - सत्य पालनसे, सत्यके मार्गका संवर्धन  
करनेवाले, तेजोंसे तेजस्वी, मित्र और वरुण हैं, उन्हें मैं  
सहायताके लिए दलाता हूँ ।

इतने मित्र और वरुणको सत्यका पालन करनेवाला और सत्यमार्गका संवर्धन करनेवाला कहा गया है। सत्यपालन और सत्यमार्ग का संवर्धन ये दोनों गुण जिसने महाब के हैं,



यह जानकर उन्हें अपनावें । वे तेजस्वी हैं अतः हम भी तेजस्वी बनें ।

२ विश्वाभिः ऊतिभिः मित्रः वरुणः प्राविता भुवत् [ ७९५ ]- सब प्रकारके संरक्षणोंके स्मरणोंसे ये मित्र और वरुण हमारा संरक्षण करते हैं ।

अपने संरक्षणके साधन लोग अपने पास रखें और उससे दूसरोंकी भी रक्षा करें ।

३ नः सुराधसः करताम् [ ७९५ ]- हमें वे उत्तम धनसे युक्त करें ।

### दान

ये देवता दान देते हैं । वे उदार हैं—

१ गाः अर्धतः नः राये दुरः विवृधि [ ७८३ ]- गाय और घोड़े तू देता है, इसलिए धन प्राप्तिके दरवाजोंको हमारे लिए खोल दे ।

२ अभिषुतः पुनानः नः रयिं वीरवर्ती इषं आभर [ ७८९ ]- रस निकालनेके बाद छाने जानेवाला तू हमें धन और पुत्र पौत्रसे युक्त भरपूर अन्न दे ।

धन और अन्न पुत्र पौत्रोंसे युक्त हो, घरमें अन्न और धनके साथ उनका उपभोग करनेवाले पुत्र पौत्र भी हों ।

३ चित्रवज्रहस्त अद्रिवः ! धृष्णुया महः स्तवानः गां रथ्यां संकिर [ ८१० ] हे विलक्षण पराक्रमी वज्र धारण करनेवाले और किलेमें रहनेवाले इन्द्र ! अपनी शत्रु-नाशक शक्तिसे बड़ी स्तुति होनेके बाद गाय और घोड़े हमें उत्तम रीतिसे दे ।

४ पुरुवसुः मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति [ ८११ ] बहुत धनवान् इन्द्र अपने स्तोताओंको हजारों प्रकारके धन देता है ।

५ पुरुभोजसः अस्य दत्राणि प्रविन्विरे [ ८१२ ]- बहुत अन्नवाले इस इन्द्रके दान भी बहुतसे हैं ।

६ गोषातिः अश्वसा [ ८१६ ]- गाय और घोड़ोंका दान इन्द्र करता है ।

७ इन्द्रस्यः रातयः पूर्वीः [ ८२९ ]- इन्द्रके दान पहले-से चलते आ रहे हैं ।

८ स्तोतृभ्यः गोमतः वाजस्य मघं यदा मंहते, ऊतयः न विदस्यन्ति [ ८२९ ]- स्तुति करनेवालोंके लिए जब गायोंसे उत्पन्न हुए अन्नरूपी धन वह देता है, तब भी उसके दान कम नहीं होते ।

इस प्रकार इस अध्यायमें दानके वर्णन हैं ।

### तेजस्वी

१ हे पवमान ! स्वर्दशं भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे [ ७८४ ]- हे शुद्ध होनेवाले सोम ! तू आत्मवर्षा और अपने तेजसे तेजस्वी है, ऐसे तुझे सहायताके लिए हम बुलाते हैं ।

यहां “स्वः-दशं” और “भानुना द्युमन्तं” ये गुण महत्वके हैं । सब कुछ अपनी शक्तिसे ही देखें, दूसरेकी शक्तिसे न देखें, दूसरेकी दृष्टिसे न देखें । उसी प्रकार अपने तेजसे तेजस्वी हों, अपने तेजसे विश्वमें चमकें ।

### यशस्वी होना

१ जने नः यशसः कृधि [ ७७८ ]- मनुष्योंमें हमें यशस्वी कर ।

२ तव श्रवांसि उपमानि [ ८१४ ]- तेरे यश उपमा देनेके योग्य हैं ।

इस लोकमें अपना यश बढे ऐसी कोशिश प्रत्येकको करनी चाहिए । जीवन यशस्वी करना यहां अत्यन्त आवश्यक है ।

### शत्रुको दूर करना

शत्रुको दूर करनेका उपदेश अनेक प्रकारसे इस अध्यायमें आया है ।

१ विश्वाः द्विषः अप जहि [ ७७८ ]- सब शत्रुओंको दूर कर ।

२ ते देववीः अघशंस-हा वरेण्यः मदः [ ८१५ ] - तेरा आनन्द देवोंसे सम्बन्ध जोड़नेवाला और पापियोंको मारनेवाला है । पापी दुष्टोंको मार कर दूर करना चाहिए ।

३ अमित्रियं वृत्रं जघ्निः [ ८१६ ]- शत्रुओंको तू मारनेवाला है ।

४ ते सख्ये, तव उत्तमे सुम्ने, पृतन्यतः सास-ह्यामः [ ७७९ ]- तेरी मित्रता और तेरी तेजस्वितासे युक्त हुए हम, सेना लेकर अपने ऊपर चढ़ते हुए चले आनेवाले शत्रुओंको हरा सकें ।

५ ते या भीमानि तिग्मानि आयुधा धूर्वणे, समस्य निदः नः रक्ष [ ७८० ]- तेरे पास जो भयंकर और तीक्ष्ण शस्त्र शत्रुओंके नाश करनेके लिए हैं । उनके द्वारा हमारे निन्दकोंसे हमारी रक्षा कर ।

६ हे शवसरूपते इन्द्र ! ते सख्ये वाजिनः मा भेम [ ८२८ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरे साथ मित्रता होने पर हम बलवान् बनकर शत्रुओंसे न डरें ।

७ जेतारं अपराजितं त्वा अभि प्रनोनुमः [ ८२८ ]-



विजयी और कभी भी पराजित न होनेवाले तुझे हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

शत्रु दूर करनेके विषयमें तथा शत्रुको हराकर उसके नाश करनेके विषयमें इस तरहके वर्णन इस अध्यायमें हैं।

### सोमके गुण

सोम हिमालयकी चोटी पर उगनेवाली एक बेल है। उसका रस देव और यज्ञ करनेवाले पीते हैं, और उसके कारण उनका उत्साह बढ़ता है, शौर्य बढ़ता है, और वे प्रत्येक काममें यशस्वी होते हैं। इस सोमके उत्तम गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं—

- १ देवः [ ७८१ ]- तेजस्वी, प्रकाश करनेवाला।
- २ द्युमान् [ ७८१ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला।
- ३ इन्द्रुः [ ७८६ ]- चमकनेवाला।
- ४ वृषा [ ७७८ ]- बलवान्, शक्तिमान्, सामर्थ्यसम्पन्न।
- ५ वृषव्रतः [ ७८१ ]- बल बढ़ानेका जिसका व्रत है।
- ६ कविः [ ७७७ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी।
- ७ अग्रियः [ ७७५ ]- आगे रहनेवाला।
- ८ सु-आयुधः [ ७८१ ]- उत्तमशस्त्र धारण करनेवाला।
- ९ विश्व-वर्षणिः [ ७७६ ]- सब मनुष्योंका हित करनेवाला।
- १० विश्वतः ईशानः [ ७८९ ]- सबका स्वामी, सबका ईश्वर।

सोमके ये गुण इस अध्यायमें दिए गए हैं। उनमें कुछ गुण आलंकारिक हैं, जैसे “ कवि ” दूरदर्शी। विद्वान् सोमरस पीते हैं, और उसके कारण उनकी ज्ञानशक्ति उत्तेजित होती है। इसलिए यह सोमरस कवि है।

शूरपुरुष सोमरस पीते हैं और उनका उत्साह बढ़ता है और उसके कारण वे शूरवीरताके काम कर सकते हैं, इसलिए यह शौर्य और बल बढ़ानेवाला है। यह उत्तमशस्त्रोंका प्रयोग करता है, क्योंकि शूरवीर सोमरस पीकर और उत्साहित होकर युद्धमें जाते हैं और वहां अपने तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करते हैं। इस प्रकार आलंकारिक रीतिसे इन पदोंको समझें और जिस प्रकार सोम बलवान्, शूर और विजयी है, उसी प्रकार साधक भी बनें।

### सोमकी रक्षणशक्ति

१ चित्राभिः उतिभिः वचः पवस्व [ ७७५ ]- अपनी विलक्षण संरक्षणकी शक्तिसे स्तुतिके बचनोंको पवित्र कर।

८ [ साम. द्विगी भा. १ ]

२ विश्वानि काव्या अभि पवस्व [ ७७५ ]- हमारे स्तुतिके काव्य सुन।

३ हे वृषन् ! वृष्णः ते शवः वृष्ण्यं [ ७८२ ]- हे बलवान् देव ! तेरे समान बलवान् वीरका सामर्थ्य विशेष प्रभावशाली है।

४ वनं वृषा [ ७८२ ]- तेरा सेवन बल बढ़ानेवाला है।

५ सुतः वृषा [ ७८२ ]- सोमरस बल बढ़ानेवाला है।

६ त्वं वृषा असि [ ७८२ ]- तू बल बढ़ानेवाला है।

सोमरसके ये वर्णन उसके बल बढ़ानेवाले गुणके कारण हैं। सोमरस पीनेसे वीरोंका बल बढ़ता है, इसलिए ये गुण सोमरसके ही हैं ऐसा कह दिया।

### सोमके वीर्य और तेज

सोम वीर्यवान् और तेजस्वी है।

१ विश्वस्य भूमनः पतिः सोमः उभे रोदसी व्यथ्यत् [ ८१८ ]- सब प्राणिमात्रका पालन करनेवाला सोम पृथ्वी और द्युलोकमें अपने तेजसे चमकता है।

२ हे सु-आयुध ! मन्दमानः सुवीर्य आ पवस्व [ ७८६ ]- हे उत्तम आयुध धारण करनेवाले सोम ! तू आनन्द देनेवाला होकर हमें उत्तम वीर्य प्रदान कर। इस स्थानपर सोमको उत्तम शस्त्र धारण करनेवाला बताया है, उसका तात्पर्य यह है कि वीर लोग सोमरस पीते हैं, उससे उनका उत्साह बढ़ता है, और वे उत्तम शस्त्र लेकर लड़ते हैं। यह सब सोम पानसे होता है, इसलिए सोमको ही उत्तम शस्त्रास्त्र लेकर लड़नेवाला बता दिया।

३ हे पवमान ! ओजिष्ठः श्रवाय्यं आभर, यः पंचवर्षणिः अभि तिष्ठति, येन रयिं वनामहे [ ८२० ]- हे सोम ! तू सामर्थ्य बढ़ानेवाला है, इसलिए यश बढ़ानेवाले सामर्थ्य हमें भरपूर दे। पांच प्रकारके लोगोंका कल्याण करनेके लिए तैय्यार रह और हमें धन मिलें ऐसा कर।

सोम पीनेसे ऐसा सामर्थ्य बढ़ता है।

### सोमकी महिमा

१ तुभ्यं महिम्ने इमा भुवना तस्थिरे [ ७७७ ]- तेरी महिमाके लिए ही ये सारे भुवन स्थिर हैं, अर्थात् सब जगह तेरी महिमा ही सबका उत्साह बढ़ाती है।

२ वृषा धर्माणि दधिषे [ ७८१ ]- तू अपने बलसे सब कर्तव्योंको धारण करता है।

इस प्रकार सोमकी महिमा सबका उत्साह बढ़ाती है।



सोममें उत्साह बढ़ानेका सामर्थ्य है, इतना ही इस वर्णनका तात्पर्य है। इसलिए हम सोमके साथ मित्रता करें और उसके उत्साहसे उत्साहित होकर अपने-अपने कार्य करते रहें।

### सोमके साथ मित्रता

१ पवमानस्य ते सखित्वं आवृणीमहे [ ७८७ ]- सोमके साथ मित्रता करनेकी हम इच्छा करते हैं।

२ ते ऊर्मयः धारया पवित्रं अभि क्षरन्ति, तेभिः नः मृड [ ७८८ ]- तेरी लहरें एक धारासे छलनीमें गिरती हैं, उससे हमें सुखी कर।

सोमसे उत्साह बढ़ता है और महान् कार्य करनेकी शक्ति अपने अन्दर बढ़ती है। इसलिए उसके साथ मित्रता करनेकी इच्छा लोग करते हैं। यह मित्रता सोमरस पीनेकी इच्छा ही है। सभीकी इच्छा ऐसी रहती है, क्योंकि उत्साह बड़े और हम महान् कार्य करनेमें समर्थ हों ऐसी इच्छा सबके लिए स्वाभाविक है।

### सोमपान

१ वयं सोम-पीतये पूतदक्षसा मित्रं वरुणं हवामहे [ ७९३ ]- हम सोमपान करनेके लिए पवित्र बलसे युक्त मित्र और वरुणको बुलाते हैं।

मित्र और वरुणके बल पवित्र कामोंमें बड़े उपयोगी हैं। अतः उनको सोमपानके लिए बुलाया जाता है। इन्द्र आदि दूसरे देवोंको भी ऐसे ही सोमपानके लिए बुलाया जाता है। सब देव यज्ञमें आते हैं, सोम पीते हैं और महान् सार्वजनिक हितके काम करते हैं। उसी प्रकार दूसरे भी यज्ञमें जाकर सोमरसका पान करते हैं और उत्साहसे अपना कर्तव्य करते हैं।

### सोमरस तैयार करना

सोम हिमालयसे लाया जाता है, उसे ऋत्विज लकड़ीके पटले पर रखकर पत्थरोंसे कूटते हैं और अच्छी तरह कूटनेके बाद अंगुलियोंसे दबाकर रस निकालते हैं। कूटनेसे पहले उसे धोया जाता है। इस रसमें रेशे इत्यादि होते हैं इसलिए उसमें पानी मिलाकर भेडके बालोंकी बनी छलनीसे वह रस छाना जाता है। वह रस गाढ़ा होता है अतः पानी मिलाकर उसे पतला किए बिना उसे पिया नहीं जा सकता। इसलिए सोमरस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाते हैं फिर उसे छानकर उसमें गायका दूध, गायका बही, घी, शहद,

जीका आटा इनमेंसे जिसकी इच्छा हो उसे मिलाते हैं, फिर उसका हवन होता है और अन्तमें उसे लोग पीते हैं।

### सोममें पानी मिलाना

१ समुद्रियाः आपः पवस्व [ ७८५ ]- अन्तरिक्षरूपी समुद्रका पानी मिलाओ। पृथ्वीके समुद्र खारे पानीके होते हैं। और वह खारा पानी पीनेके लायक नहीं होता। अन्तरिक्षमें मेघ होते हैं, और वह मोठे पानीका समुद्र है। उसका, कुंएका अथवा नदी और नहरोंका पानी सोमरसमें मिलाया जाता है।

२ आयुभिः मर्त्य्यमानः यत् अद्भिः परिपिच्यसे द्रोणे सधस्थं अश्नुपे [ ७८९ ]- जब ऋत्विज सोमको छानते हैं, तब वह पानीमें मिलाया जाता है और द्रोण-कलश-में उसे स्थान मिलता है, अर्थात् छना हुआ सोमरस कलसेमें भरा जाता है।

३ रुशन्तं वर्णं परि भरमाणः सिक्तः गन्धुः पर्येपि [ ८०८ ]- तेजस्वी रंग धारण करके पानीके साथ मिलकर गायके दूधकी इच्छा करते हुए सोमरस आगे जाता है।

छाननेके बाद उसमें गायका दूध मिलाया जाता है। सोमको छलनीसे छाननेका वर्णन इस प्रकार है।

१ अया विपानया हरिः धारया पवस्व [ ८०५ ]- हे सोम ! इन अंगुलियोंसे निकाला गया हरे रंगका तू एक धारसे छनता जा।

२ अयं पुनानः अर्पति [ ८१८ ]- यह सोम पवित्र होता-छनता-हुआ नीचेके बर्तनमें गिरता है।

३ नृभिः यतः कोशान् पर्यसिष्यदत् [ ८२२ ]- याजकोंके द्वारा निकाला गया यह सोमरस कलसेमें गिरता है।

४ कलशान् अचिक्रदत् [ ८२१ ]- छनता हुआ कलसेमें शब्द करता हुआ जाता है।

### सोमका शब्द करते हुए छनना

१ नदयन् वृषा गाः अभि कनिक्रदत् [ ८०६ ]- शब्द करता हुआ बलवान् सोम गायकी इच्छा करते हुए तथा शब्द करते हुए कलशमें आता है।

ऊपरके बर्तनमें सोमरस रहता है, वह भेडके बालोंकी छननी पर डाला जाता है, और छलनीसे छनता हुआ वह नीचेके बर्तनमें पड़ता है तब उसका शब्द होता है। यह शब्द बिल्कुल स्वाभाविक है। नीचेके बर्तनमें पानी डालने पर जो आवाज होती है, वंसी ही आवाज यहां होती है।



### सोमरसमें दूध मिलाना

छाननेके बाद सोमरसमें इच्छानुसार दूध, वही इत्यादि मिलाया जाता है। इस विषयमें इस प्रकार वर्णन है—

१ धेनवः तुभ्यं धावन्ति [ ७७७ ]- गायें तुझे सोमके पास दौडती आती हैं। गायका दूध सोमरसके पास लाया जाता है।

२ रसाव्यः पयसा पिन्वमानः मधुमन्तं अंशुं ईरयन् एषि [ ८०७ ]- पहलेसे मीठे फिर गायके दूधसे और अधिक मीठे हुए हुए सोमको प्रेरित करते हुए तू जाता है।

३ प्रिया घृण्वयः गावः मदाय समनूषत पवमानासः इन्दवः सोमासः पयः कृण्वते [ ८१९ ]- प्रेम और स्पर्धा करनेवाली गायें सोमके साथ मिलनेके आनन्दको प्राप्त करनेकी इच्छा करती हैं। शुद्ध सोम दूध प्राप्त करते हैं।

४ लोककृत् अयं पुनानः सिन्धुभ्यः अभवत्। अयं हृदे त्रिः सप्त दुहानः मत्सरः चारु पवते [ ८२३ ] लोगोंका हित करनेवाला यह छाना जानेवाला सोम नदियोंकी बढानेवाला है। इसके लिए इक्कीस गायें दुही जाती हैं, बादमें वह आनन्द देनेवाला होता है।

अर्थात् इसमें पहले नदीका पानी मिलाया जाता है, बादमें गायका दूध।

५ गोमनः सुतस्य मत्स्व [ ८२६ ]- गोदुग्ध मिश्रित सोमरससे आनन्दित हो।

इस प्रकार सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है और फिर वह पिया जाता है।

### सुभाषित

१ अग्रियः चित्राभिः ऊतिभिः वचः पवस्व [ ७७५ ]- नेता होकर अपने विलक्षण संरक्षणोंसे अपने वचन पवित्र कर।

तू अप्रणी हो, अपने पास संरक्षणके साधनोंका संग्रह करके रख और अपनी वाणीको पवित्र विचारोंसे युक्त कर

२ विश्वानि काव्या अभि [ ७७५ ]- सब श्रेष्ठ काव्योंको देख, सुन।

३ हे विश्व-चर्पणे! अग्रियः वाचः ईरयन् पवस्व [ ७७६ ]- हे सबके निरीक्षण करनेवाले! नेता होकर अपनी वाणीकी प्रेरणासे सबको पवित्र कर।

४ हे कवे! तुभ्य महिम्ने इमा भुवना तस्थिरे [ ७७७ ]- हे दूरदर्शी ज्ञानी पुरुष! तेरी महानताके लिए ही ये लोक स्थिर हैं।

५ धेनवः तुभ्यं धावन्ति [ ७७७ ]- गायें तुझे देखकर दौडती हुई आती हैं। ( इतना प्रेम गाय पर है )।

६ वृषा पवस्व [ ७७८ ]- बलवान् होकर शुद्ध हो।

७ जने नः यशसः कृधि [ ७७८ ]- लोगोंमें हमें यशस्वी कर।

८ विश्वाः द्विपः अप जहि [ ७७८ ]- सब शत्रुओंका पराभव कर।

९ यस्य ते सख्ये, तव उत्तमे शुम्ने, पृतन्यतः सासह्याम [ ७७९ ]- तेरे साथ मित्रता होनेके बाद तेरे उत्तम तेजसे तेजस्वी होकर, सैन्यके साथ हम पर चल कर आनेवाले शत्रुको हम हरायें।

१० ते या भूमिनि तिग्मानि आयुधा धूर्वणे, समस्य निदः नः रक्ष [ ७८० ]- तेरे जो भयंकर तीक्ष्ण अस्त्र शत्रुके नाश करनेके लिए हैं, उनकी सहायतासे हमारे सब निन्दक शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

११ वृषा शुमान् असि [ ७८१ ]- तू बलवान् और तेजस्वी है।

१२ हे देव! वृषा वृषव्रतः वृषा धर्माणि दधिरे [ ७८१ ]- हे देव! तू बलवान् है बल बढानेका तेरा व्रत है, ऐसा तू बलवान् होकर अपने कर्तव्य स्वयं करता है।

१३ वृणु! वृणुः ते शवः वृण्यं [ ७८२ ]- बल बढानेवाले तेरे सामर्थ्य अत्यन्त प्रभावशाली हैं।

१४ त्वं वृषा असि [ ७८२ ]- तू निश्चयसे बलवान् है।

१५ नः राये दुरः विवृधि [ ७८६ ]- हमारे लिए सम्पत्ति प्राप्त होनेके दरवाजे खोल दे।

१६ स्वः-दशं भानुना शुमन्तं त्वा हवामहे [ ७८४ ]- स्वयं देखनेकी शक्तिसे युक्त तथा स्वयंके तेजसे तेजस्वी हुए तेरी हम प्रशंसा करते हैं।

१७ आयुभिः मर्मज्यमान [ ७८५ ]- मनुष्योंके द्वारा शुद्ध होनेवाला।

१८ सु-आयुध! मन्दमानः सुवीर्य आ पवस्व [ ७८६ ]- हे उत्तम शस्त्रोंको पासमें रखनेवाले वीर! तू आनन्द बढानेवाला होकर उत्तम वीरता प्रकट कर।

१९ पवमानस्य ते सखित्वं आवृणीमहे [ ७८७ ]- पवित्रता करनेवाले तेरी दोस्तीकी हम इच्छा करते हैं।

२० नः मृडय [ ७८८ ]- हमें सुखी कर।



२१ विश्वतः ईशानः नः रयिं वीरवतीं इषं आ भर [ ७८९ ]- तू सबका स्वामी होकर हमें वीर पुत्रोंसे युक्त धन और अन्न भरपूर दे।

२२ होतारं विश्व-वेदसं यज्ञस्य सुक्रतुं दूतं अग्निं वृष्णिमहे [ ७९० ]- देवताओंको बुलाकर लानेवाले, सर्वज्ञ, यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले दूत अग्निका हम वरण करते हैं।

२३ विश्वपतिं पुरुप्रियं अग्निं सदा हवन्ते [ ७९१ ] - प्रजाओंके पालक बहुतांको प्रिय ऐसे अग्नीको हम हमेशा अपने पास बुलाते हैं।

२४ इह देवान् आ वह [ ७९२ ]- यहां देवोंको बुला ला।

२५ नः ईड्यः असि [ ७९२ ]- प्रशंसाके योग्य तू हमारा सहायक है।

२६ पूत-दक्षसा वयं हवामहे [ ७९३ ]- जिनके पवित्र सामर्थ्य हैं, उन्हें हम बुलाते हैं।

२७ ऋतेन ऋतावृधौ ज्योतिषस्पती हुवे [ ७९४ ] - सत्यसे सत्यधर्म बढ़ानेवाले तेजस्वी वीरोंको मैं बुलाता हूँ।

२८ विश्वाभिः ऊतिभिः प्राविता भुवत् [ ७९५ ]- सब संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करनेवाला हो।

२९ नः सुराधसः करतां [ ७९५ ]- हमें उत्तम धनसे युक्त कर।

३० गाथिनः इन्द्रं बृहत् अनुषत [ ७९६ ]- हे साम-गायको ! तुम इन्द्रकी बृहत् सामके द्वारा स्तुति करो।

३१ उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः सहस्रप्रथनेषु नः अव [ ७९८ ]- उग्रवीर, ! प्रबल संरक्षणके साधनोंसे हजारों प्रकारके धन प्राप्त होनेवाले यज्ञमें हमारी रक्षा कर।

३२ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत् [ ७९९ ]- इन्द्रने विशेष प्रकाशके लिए ध्रुवोत्तम सूर्यको बढ़ाया।

३३ विश्वा ओजसा दधानः [ ८०३ ]- सब सामर्थ्योंको धारण कर।

३४ स्व-ईशं वाजिनं त्वा वाजेषु हिन्वे [ ८०४ ]- आत्मदर्शी बलवान् ऐसे तुझे संग्राममें जानेकी प्रेरणा करता हूँ।

३५ वाजेषु युजं चोदय [ ८०५ ]- युद्धमें जानेके लिए निम्नकी प्रेरणा दे।

३६ आजौ इन्द्रस्य वग्नु आ शृण्वे [ ८०६ ] युद्धमें इन्द्रके शब्द सुनाई देते हैं।

३७ वधस्नुं नमयन्, मदाय पवस्व [ ८०८ ]- वध करनेवाले शत्रुको झुकाकर आनन्द बढ़ानेके लिए खुश हो।

३८ सत्पतिं नरः वृत्रेषु हवन्ते [ ८०९ ]- सज्जनोंके पालन करनेवालेको लोग युद्धोंमें सहायताके लिए बुलाते हैं।

३९ हे वज्रहस्त अद्रिघ्न ! धृष्ण्या मदः गां रथ्यं संकिर [ ८१० ]- हे वज्रधारी इन्द्र ! अपनी शत्रु-नाशक शक्तिसे आनन्दित हुआ तू गाय और घोड़े हमें दे।

४० जिग्युषे सत्रा वाजं [ ८१० ]- विजयी वीरको एक साथ अन्न और बल मिलते हैं।

४१ पुरुवसुः मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण शिक्षति [ ८११ ]- बहुत धनवान् इन्द्र स्तोताओंको अनेक प्रकारके धन देता है।

४२ यथा विदे सुराधसं इन्द्रं अभि प्र अर्च [ ८११ ] - जैसे तुम जानते हो वैसे ही इन्द्रकी आराधना करो।

४३ धृष्ण्या शतानीकः हव प्र जिगाति [ ८१२ ]- शूरवीर इन्द्र शत्रुकी सेना पर आक्रमण करता है।

४४ दाशुषे वृत्राणि हन्ति [ ८१२ ]- बाताके हितके लिए शत्रुओंको मारता है।

४५ पुरुभोजसः अश्य दन्नाणि प्र पिन्गरे [ ८१२ ]- बहुत अन्नसे युक्त इस इन्द्रके दान सभीके लिए लाभकारी हैं।

४६ तव उपमानि श्रंवासि [ ८१४ ]- तेरे यश उपमा देनेके योग्य हैं। तेरे अन्न उपमाके योग्य हैं।

४७ ते मदः देववीः अघशंस-हा वरेण्यः [ ८१५ ]- तेरे आनन्द देवोंके पास पहुंचनेवाले और पापियोंका नाश करनेवाले तथा श्रेष्ठ हैं।

४८ अमित्रियं वृत्रं जघिनः [ ८१६ ]- तू शत्रुरूपी वृष्टोंका नाश करनेवाला है।

४९ दिवे दिवे वाजं सस्निः [ ८१६ ]- प्रतिबदन तू युद्ध करता है।

५० गोषातिः अश्वसा [ ८१६ ]- तू गायों और घोड़ोंका दान करता है।

५१ अरुषः भुवः [ ८१७ ]- तू तेजस्वी हो।

५२ पूषा भगः रयिः [ ८१८ ]- यह घोषण करनेवाला, भाग्य बढ़ानेवाला और धन देनेवाला है।

५३ विश्वस्य भूमनः पतिः [ ८१८ ]- सब प्राणियोंका पालन करनेवाला।

५४ ओजिष्ठः श्रवाय्यं आ भर [ ८२० ]- बल बढ़ाने-वाला तू प्रशंसनीय धन भरपूर दे।

५५ येन रयिं वनामहे [ ८२० ]- जिससे हमें धन मिले ऐसा कर।



५६ मतीनां वृषा [ ८२१ ]- तू बुद्धिका बल बढ़ाने-  
वाला हो ।

५७ पूर्यः कविः [ ८२२ ]- पहलेसे ही तू जानी  
प्रसिद्ध है ।

५८ लोककृत् पुनानः उपसः अरोचयत् [ ८२३ ]-  
लोगोंका हितकारी, यह पवित्र करनेवाला उषःकालमें  
प्रकाशित होता है ।

५९ हे इन्द्र ! वीर्युः असि [ ८२४ ]- हे इन्द्र ! तू  
वीरोंका उपयोग करनेवाला है ।

६० शूरः एव असि [ ८२४ ]- तू शूर है ।

६१ स्थिरः असि [ ८२४ ]- तू युद्धमें अपनी जगह  
पर स्थिर रहनेवाला है ।

६२ ते मनः राध्यं [ ८२४ ]- तेरा मन आराधना  
करनेके योग्य है ।

६३ रातिः धायि चित् [ ८२५ ]- तेरे दान स्थिर,  
टिकनेवाले हैं ।

६४ नः सचा [ ८२५ ]- हमारा मित्र हो ।

६५ तन्द्रयुः मा सु भव [ ८२६ ]- तू आलसी मत हो ।

६६ विश्वाः गिरः समुद्र-व्यचसं, रथानां रथी-  
तमं, सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधत् [ ८२७ ]- सब स्तुतियां  
समुद्रके समान विस्तृत, रथीवीरोंमें श्रेष्ठ, बलोंके स्वामी,  
सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्रकी महिमा बढ़ाती हैं ।

६७ हे शवसः-पते इन्द्र ! ते सख्ये वाजिनः मा  
भेम [ ८२८ ]- हे बलवान्-इन्द्र ! तेरी मित्रताके कारण  
हम बलवान् होकर निर्भय होवें ।

६८ जेतारं अ-पराजितं अभि प्रणोनुमः [ ८२८ ]-  
विजयी और अपराजित वीरको हम प्रणाम करते हैं ।

६९ इन्द्रस्य रातयः पूर्वाः [ ८२९ ]- इन्द्रके दान  
प्राचीनकालसे चलते आ रहे हैं ।

७० मघं यदा मंहते, रातयः न विदस्यन्ति [ ८२९ ]  
- जब वह धन देता है, तब उसके दान कम नहीं होते ।

## उपमा

इस अध्यायमें निम्न उपमायें आयी हैं ।

१ अश्वः न [ ७८३ ]- घोड़ेके समान ( संचक्रदः )  
सोमरस छनते समय शब्द करता है ।

२ शोणः वृषा गाः अभि कनिकदत् [ ८०६ ]- लाल  
रंगका बेल जिस प्रकार गायकी तरफ देखकर शब्द करता है,  
उसी प्रकार सोम गायके दूधके साथ मिलते हुए शब्द करता है ।

३ जिग्मुषे सत्रा वाजं न [ ८१० ]- विजयी पुरुषको  
एक साथ तू घोड़े इत्यादि देता है, उसी प्रकार हमें दे ।

४ गिरेः रसाः इव [ ८१२ ]- पर्वतोंसे जैसे जलप्रवाह  
बहते हैं, उसी प्रकार इनके दान लोगोंकी ओर बहते हैं ।

५ श्येनः न योनिं आसीदन् [ ८१७ ]- बाज पक्षी  
जिस प्रकार अपने स्थान पर बैठ कर सुशोभित होता है,  
और ( न अरुषाः भुवः ) जिस प्रकार वह चमकता है, उसी  
प्रकार सोम चमकता है ।

इस प्रकार इस अध्यायमें उपमायें आई हैं ।

## तृतीयाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः           | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|----------------|-------------|---------|
|             |              |                | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ७७५         | ९।६१।२५      | जगदग्निर्भागवः |             |         |
| ७७६         | ९।६१।२६      | जमदग्निर्भागवः | "           | "       |
| ७७७         | ९।६१।२७      | जमदग्निर्भागवः | "           | "       |
| ७७८         | ९।६१।२८      | अमहीयुरांगिरसः | "           | "       |
| ७७९         | ९।६१।२९      | अमहीयुरांगिरसः | "           | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                              | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|-----------------------------------|-------------|---------|
| ७८०         | ९।३१।०       | अमहीयुरांगिरसः                    | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ७८१         | ९।३१।१       | कश्यपो मारीचः                     | "           | "       |
| ७८२         | ९।३१।२       | कश्यपो मारीचः                     | "           | "       |
| ७८३         | ९।३१।३       | कश्यपो मारीचः                     | "           | "       |
| ७८४         | ९।३५।४       | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिर्वा वा | "           | "       |
| ७८५         | ९।३५।५       | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिर्वा वा | "           | "       |
| ७८६         | ९।३५।५       | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिर्वा वा | "           | "       |
| ७८७         | ९।३१।४       | अमहीयुरांगिरसः                    | "           | "       |
| ७८८         | ९।३१।५       | अमहीयुरांगिरसः                    | "           | "       |
| ७८९         | ९।३१।६       | अमहीयुरांगिरसः                    | "           | "       |

( २ )

|     |        |                         |             |   |
|-----|--------|-------------------------|-------------|---|
| ७९० | १।१२।१ | मेधातिथिः काण्वः        | अग्निः      | " |
| ७९१ | १।१२।२ | मेधातिथिः काण्वः        | "           | " |
| ७९२ | १।१२।३ | मेधातिथिः काण्वः        | "           | " |
| ७९३ | १।१२।४ | मेधातिथिः काण्वः        | मित्रावरुणौ | " |
| ७९४ | १।१२।५ | मेधातिथिः काण्वः        | "           | " |
| ७९५ | १।१२।६ | मेधातिथिः काण्वः        | "           | " |
| ७९६ | १।७।१  | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः     | " |
| ७९७ | १।७।२  | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | "           | " |
| ७९८ | १।७।३  | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | "           | " |
| ७९९ | १।७।४  | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | "           | " |
| ८०० | ७।१२।४ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः    | इन्द्राग्नी | " |
| ८०१ | ७।१२।५ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः    | "           | " |
| ८०२ | ७।१२।६ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः    | "           | " |

( ३ )

|     |         |                                   |            |            |
|-----|---------|-----------------------------------|------------|------------|
| ८०३ | ९।३५।१० | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिर्वा वा | पवमानः सोम | "          |
| ८०४ | ९।३५।११ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिर्वा वा | "          | "          |
| ८०५ | ९।३५।१२ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिर्वा वा | "          | "          |
| ८०६ | ९।१७।१३ | उपमन्युर्वसिष्ठः                  | "          | त्रिष्टुप् |
| ८०७ | ९।१७।१४ | उपमन्युर्वसिष्ठः                  | "          | "          |
| ८०८ | ९।१७।१५ | उपमन्युर्वसिष्ठः                  | "          | "          |

( ४ )

|     |        |                    |         |  |
|-----|--------|--------------------|---------|--|
| ८०९ | ६।४३।१ | शंयुर्वर्हिस्पत्यः | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सती बृहती ) |
|-----|--------|--------------------|---------|--|



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                         | देवता   | छन्दः                                      |
|-------------|--------------|------------------------------|---------|--|
| ८१०         | ६।३६।२       | शंयुर्बाह्विस्पत्यः          | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| ८११         | ८।३९।१       | वालखिल्याः प्रस्कण्वः काण्वः | "       | "  |
| ८१२         | ८।३९।२       | वालखिल्याः प्रस्कण्वः काण्वः | "       | "  |
| ८१३         | ८।३९।३       | नृमेध आंगिरसः                | "       | "  |
| ८१४         | ८।३९।४       | नृमेध आंगिरसः                | "       | "  |

( ५ )

|     |         |                |             |           |
|-----|---------|----------------|-------------|-----------|
| ८१५ | ९।६।१९  | अमहीयुरांगिरसः | पवमानः सोमः | गायत्री   |
| ८१६ | ९।६।२०  | अमहीयुरांगिरसः | "           | "         |
| ८१७ | ९।६।२१  | अमहीयुरांगिरसः | "           | "         |
| ८१८ | ९।१०।१७ | नहुषो मानवः    | "           | अनुष्टुप् |
| ८१९ | ९।१०।१८ | नहुषो मानवः    | "           | "         |
| ८२० | ९।१०।१९ | नहुषो मानवः    | "           | "         |
| ८२१ | ९।८६।१९ | सिकता निवावरी  | "           | "         |
| ८२२ | ९।८६।२० | सिकता निवावरी  | "           | "         |
| ८२३ | ९।८६।२१ | पृश्नि योज्जाः | "           | "         |

( ६ )

|     |         |                               |   |         |
|-----|---------|-------------------------------|---|---------|
| ८२४ | ८।३९।२८ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | गायत्री |
| ८२५ | ८।३९।२९ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | "       |
| ८२६ | ८।३९।३० | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः | " | "       |
| ८२७ | १।१।११  | जेता मधुच्छान्वसः             | " | "       |
| ८२८ | १।१।१२  | जेता मधुच्छान्वसः             | " | "       |
| ८२९ | १।१।१३  | जेता मधुच्छान्वसः             | " | "       |



## अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ जमदग्निर्भागवः; २ भृगुर्वर्णजंमदग्निर्भागवो वा; ३ कविर्भागवः; ४ कश्यपो मारीचः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६-७ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिभौमः; ५ विश्वामित्रो गायिनः; ६ जमदग्निर्भागवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ); १० पराशरः शाकल्यः; ११ पुरुहन्मा आंगिरसः; १२ मेधातिथि काण्वः; १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ त्रित आप्त्यः; १५ ययातिर्नहुषः; १६ पवित्र आंगिरसः; १७ सोमरिः काण्वः; १८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो काण्वायनौ; १९ तिरश्चीरांगिरसौ ॥ १-४, ९, १०, १४-१६ पवमानः सोमः; ५, १७ अग्निः; ६ मित्रावरुणौ; ७ मरुतः, ७ ( १, ३ ) इन्द्रश्च; ८ इन्द्राग्नी; ११-१३, १८-१९ इन्द्रः ॥ १-८, १४ गायत्री; ९ ( ३ ) द्विपदा विराट्; १० त्रिष्टुप्; ९ ( १-२ ) ११, १३ प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १२ बृहती; १५, १९ अनुष्टुप्; १६ जगती; १७ प्रगाथः = ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); १८ उष्णिक् ॥

८३० एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशयः । विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६९।१ )

८३१ विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६९।२ )

८३२ कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्पन्ति सुष्टुतिम् । इडामसभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥ १ ( या ) ॥

[ धा. ७ । उ. नास्ति । स्व. २ ] ( ऋ. ९।६९।३ )

८३३ राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६९।६ )

८३४ आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६९।८ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ८३० ] ( तिरः पवित्रं ) छाननीमसे ( एते आशयः इन्द्रचः ) ये शीघ्र दौडनेवाले सोमरस ( विश्वानि सौभगा अभि ) सब उत्तम धनकी प्राप्तिके लिए ( असृग्रं ) छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ८३१ ] ( वाजिनः ) बल बढ़ानेवाले और ( पुरुः दुरिता विघ्नन्तः ) बहुतसे पापोंका नाश करनेवाले ये सोमरस हमारे लिए और ( तोकाय सु-गा ) पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गायें मिलें और ( अर्वतः ) घोड़े मिलें, इसलिए ( त्मना कृण्वन्तः ) स्वयं अपना मार्ग बनाते हैं ॥ २ ॥

[ ८३२ ] ये सोमरस ( गवेऽभ्यर्पन्ति ) गायोंके लिए और हमारे लिए ( सं-यतं ) बल बढ़ानेवाले ( वरिवः इडां कृण्वन्तः ) धन और अन्न तैय्यार करते हैं, और स्वयं ( सुष्टुतिं अभि-अर्पन्ति ) उत्तम स्तुतियोंको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[ ८३३ ] ( मनौ अधि ) मनुष्यके यज्ञ करने पर ( पवमानः राजाः ) शुद्ध होनेवाला यह सोम राजा ( मेधाभिः ) बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियोंके साथ ( अन्तरिक्षेण ) अन्तरिक्षके मार्गसे ( यातवे ईयते ) कलशमें जानेके लिए आगे जाता है ॥ ४ ॥

[ ८३४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( देव-वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( सुष्वाणः ) छाना जाता हुआ तू ( सहः जुवः ) बल प्राप्त करके ( रूपं न ) सुन्दर रूपके समान ( वर्चसे नः आ भर ) हमारा तेज फैले इसलिए हमें बल और तेज भरपूर दे ॥ २ ॥

१ सहः जुवः, रूपं न, वर्चसे नः आ भर— बल तथा सुन्दर रूप प्राप्त होनेके लिए हमारी तेजस्विता अच्छी तरह बढ़े ।



- ८३५ आ न इन्द्रो शातग्विनं गवां पोषं स्वध्वम् । वहा भगत्तिमूतये ॥ ३ ॥ २ ( ला ) ॥  
 [ धा. १४। उ. नास्ति । स्व २ ] ( ऋ. ९।६५।१७ )
- ८३६ तं त्वा नृम्णानि विभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।४८।१ )
- ८३७ संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहित्रतं मदम् । शतं पुरं रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४८।२ )
- ८३८ अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।४८।३ )
- ८३९ अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।४८।५ )
- ८४० विश्वस्मा इ स्वदृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विभरत् ॥ ५ ॥ ३ ( हू ) ॥  
 [ धा० २६ उ० नास्ति स्व० ६ ] ( ऋ. ९।४८।४ )
- ८४१ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्द्रो रुचाभि गा इहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।१३ )
- ८४२ पुनानो वरिवस्कृध्युजं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।१४ )

[ ८३५ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( शातग्विनं ) सौ गायोंसे युक्त और ( गवां पोषं ) गायका पोषण करनेवाले तथा ( सु-अध्वं ) सुन्दर घोड़ोंसे युक्त, ( भगत्ति ) भाग्यके दान ( नः आ वह ) हमें दे ॥ ३ ॥

हमें गाय, घोड़े और भाग्य बहुत तादात्म्य दे ।

[ ८३६ ] ( महो दिवः ) महान् द्यूलोकके ( सधस्थेषु ) अनेक स्थानोंमें रहनेवाले ( नृम्णानि विभ्रतं ) अनेक प्रकारके धनोंको धारण करनेवाले ( चारुं तं त्वा ) सुन्दर ऐसे उस तुझे ( सुकृत्यया ईमहे ) उत्तम यज्ञके द्वारा प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं ॥ १ ॥

[ ८३७ ] ( संवृक्त-धृष्णुं ) जिसने अपने प्रभावशाली शत्रु नष्ट कर दिए हैं, ( उक्थ्यं ) ऐसे प्रशंसनीय और ( महामहि-व्रतं ) अनेक महत्त्वके कार्य करनेवाले ( मदं ) आनन्द देनेवाले ( शतं पुरः रुरुक्षणिं ) शत्रुओंकी संकड़ों नगरियोंकी तोड़नेवाले [ सोम ] से हम धन मांगते हैं ॥ १ ॥

[ ८३८ ] हे ( सु-क्रतो ) उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! ( रयिः अभि अयत् ) धनके पास पहुँचनेवाले ( राजाजानं त्वा ) तेजस्वी तुझे ( अतः दिवः ) इस द्यूलोकसे ( अव्यथी सुपर्णः ) कष्ट या पीडाको न समझनेवाला गहड ( आ भरत् ) ले आया ॥ ३ ॥

१ अ-व्यथी सुपर्णः— कार्य करते हुए दुःख न माननेवाला गहड स्वर्गसे - हिमालयके ऊँचे शिखर परसे सोमवल्लीको नीचे ले आया ।

[ ८३९ ] ( अधा ) बादमें ( विचर्षणिः ) विशेष ज्ञानी और ( अभिष्टिकृत् ) इष्ट फल देनेवाला सोम ( इन्द्रियं हिन्वानः ) अपनी शक्तिको उत्तम रीतिसे प्रेरित करके ( ज्यायः महित्वं आनशे ) विशेष श्रेष्ठता प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[ ८४० ] ( रजस्तुरं ) पानीको प्रेरित करनेवाले ( ऋतस्य गोपां ) यज्ञके संरक्षक ( विश्वस्मै स्वदृशे साधारणं इत् ) सब स्वप्रकाशमान् देवोंको प्राप्त होनेवाले सोमको ( विः ) गहड पक्षी ( भरत् ) ले आया ॥ ५ ॥

[ ८४१ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मनीषिभिः मृज्यमानः ) बुद्धिमान् याजकोंके द्वारा शुद्ध किया गया तू ( इषे धारया पवस्व ) हमारे अन्नके लिए धारसे छनता जा, ( रुचा गाः अभीहि ) तेजसे गायोंको प्राप्त हो ॥ १ ॥

१ रुचा गाः अभीहि— तेजसे गायोंको प्राप्त हो । चमकनेवाला सोम गायके दूधके साथ मिलाया जाता है ।

[ ८४२ ] हे ( गिर्वणः हरे ) स्तुतिके योग्य हरे रंगके सोम ! ( आ शिरं सृजानः पुनानः ) दूधके साथ मिलाकर छाना जानेवाला तू ( जनाय ऊर्जे वरिवः कृधि ) यजमानके लिए अन्नरूपी धन दे ॥ २ ॥

१ [ साम. हिन्वी भा. २ ]



८४३ पुनानो<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> देववीतय इन्द्रस्य<sup>३ २</sup> याहि निष्कृतम् । द्युतानो<sup>३ २ ३ १ २ ३ २</sup> वाजिभिर्हितः ॥ ३ ॥ ४ ( या ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६४।१९ )  
॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

८४४ अग्निनाग्निः<sup>३ २ ३ १</sup> समिध्यते<sup>२२</sup> कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२।६ )  
८४५ यस्त्वामग्ने<sup>१</sup> हविष्पतिर्दूतं<sup>२२ ३ १ २ ३ १ २</sup> देव सपर्यति । तस्य स प्राविता भव<sup>३ १ २</sup> ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।८ )  
८४६ यो अग्निं<sup>२ ३ २ ३ १ २</sup> देववीतये<sup>३ १ २</sup> हविष्मा<sup>३ १ २</sup> आविवासति । तस्मै<sup>१ २</sup> पावक मृडय ॥ ३ ॥ ५ ( रि ) ॥  
[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।१२।९ )  
८४७ मित्रं<sup>३ १ २</sup> हुवे<sup>३ १ २ ३ १ २</sup> पूतदक्षं<sup>३ १ २</sup> वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं<sup>१ २ ३ २ ३ १ २</sup> साधन्ता ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२।७ )  
८४८ ऋतेन<sup>३ १ २</sup> मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । ऋतुं<sup>१ २ ३ १ २</sup> बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।८ )  
८४९ कवी<sup>३ १</sup> नो मित्रावरुणा<sup>२ ३ १ २ २</sup> तुविजाता उरुक्षया । दक्षं<sup>३ १ २ ३ १ २</sup> दधाते अपसम्<sup>१ २</sup> ॥ ३ ॥ ६ ( व ) ॥  
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।१२।९ )

[ ८४३ ] हे सोम ! ( वाजिभिः ) अनेक शक्तियोंसे ( द्युतानः ) तेजस्वी दीखनेवाला ( देव-वीतये पुनानः ) देवोंको देनेके लिए पवित्र किया जानेवाला ( हितः ) हितकारी तू सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं याहि ) इन्द्रके स्थानके पास जा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ८४४ ] ( कविः ) दूरदर्शी ( गृह-पतिः ) यज्ञगृहका रक्षण करनेवाली ( युवा ) तरुण ( हव्य-वाड् ) हविको देवोंतक पहुंचानेवाली ( जुह्वास्यः अग्निः ) जुहूनामक मुखवाली अग्नि ( अग्निना समिध्यते ) मंथनसे उत्पन्न की जानेवाली अग्निकी सहायतासे प्रदीप्त की जाती है ॥ १ ॥

[ ८४५ ] हे ( अग्ने देव ) अग्ने ! ( यः हविष्पतिः ) जो हविष्यान्नको देवोंतक पहुंचानेवाला यजमान ( दूतं त्वां सपर्यत ) तुझ दूतकी उत्तम प्रकारसे पूजा करता है, तू ( तस्य प्राविता भव ) उसकी पूरी तरह रक्षा कर ॥ २ ॥

[ ८४६ ] हे ( पावक ) शुद्ध करनेवाले अग्नि ! ( यः हविष्मान् ) जो हवि अर्पण करनेवाला यजमान ( देव-वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( अग्निं आ विवासति ) तुझ अग्निकी आराधना करता है, तू ( तस्मै मृडय ) उसे सुखी कर ॥ ३ ॥

[ ८४७ ] मैं ( पूत-दक्षं मित्रं ) पवित्र बलवाले मित्रको और ( रिश-अदसं वरुणं च ) हिंसक शत्रुके नाशक वरुणको ( हुवे ) बुलाता हूँ । ये मित्र और वरुण ( घृताचीं धियं साधन्ता ) जल उत्पन्न करनेके कार्य सिद्ध करते हैं ॥ १ ॥

[ ८४८ ] ( मित्रा-वरुणौ ) मित्र और वरुण ये देव ( ऋता-वृधौ ) सत्य यज्ञको बढ़ानेवाले हैं, ( ऋत-स्पृशौ ) सत्यको सार्यक करनेवाले हैं, हे देवो ! तुम दोनों ( बृहन्तं ऋतुं ) इस महान् यज्ञको ( ऋतेन आशाथे ) सत्यसे पूर्ण करते हो ॥ २ ॥

[ ८४९ ] ( कवी ) दूरदर्शी ( तुवि-जाता ) अनेक कर्मोंके लिए उपयोगी ( उरु-क्षया ) अनेक स्थानोंमें रहनेवाले ( मित्रा-वरुणा ) मित्र और वरुण ( नः दक्षं अपसं दधाते ) हमारे बलको और कार्यको पुष्ट करते हैं ॥ ३ ॥



८५० <sup>१ २ ३ १</sup> इन्द्रेण <sup>२४</sup> संहि <sup>३१</sup> दक्षसे <sup>२४</sup> संजग्मानो <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> अविभ्युषा । मन्दू <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> समानवर्चसा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।७ )

८५१ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आदह <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स्वधामनु <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> नाम यज्ञियम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।८ )

८५२ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वीडु <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> चिदारुजत्नुभिर्गुहा <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> चिदिन्द्र <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वह्निभिः । अविन्द <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उस्त्रिया <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अनु ॥ ३ ॥ ७ ( ति ) ॥  
[ धा० १४। उ० १। स्व० ३ ] ( ऋ. १।६।९ )

८५३ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ता <sup>२४ ३१ ३२</sup> हुवे <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ययोरिदं <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> पप्ने <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> विश्वं <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> पुरा <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> कृतम् । इन्द्राग्नी <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> न <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मर्धतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।६०।४ )

८५४ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उग्रा <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> विघनिना <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मध <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्राग्नी <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> हवामहे । ता <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> नो <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मृडात <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ईदृशे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।५ )

८५५ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> हथो <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वृत्राण्याया <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> हथो <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> दासानि <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सत्पती । हथो <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> विश्वा <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अप <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> द्विषः ॥ ३ ॥ ८ ( पी ) ॥  
[ धा० १०। उ० १। ख० ४ ] ( ऋ. ६।६०।६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

८५६ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अभि <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सोमास <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आयवः <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> पवन्ते <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मधं <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मदम् ।  
<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> समुद्रस्याधि <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> विष्टपे <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मनीषिणो <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मत्सरासो <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मदच्युतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१४ )

[ ८५० ] ( मन्दू ) आनन्दित और ( समान वर्चसा ) समान तेजस्वी ऐसे मरुद्गण ( अविभ्युषा इन्द्रेण सं जग्मानः ) निर्भय इन्द्रके साथ रहकर ( संहि दक्षसे हि ) उत्तम दीखते हैं ॥ १ ॥

[ ८५१ ] ( आत् अह ) शीघ्र ही ( स्वधां अनु ) अन्नको लक्ष्य करके ( यज्ञियं नाम दधानाः ) पूज्य नामको धारण करनेवाले मरुत् ( पुनः गर्भत्वं ईरिरे ) फिर गर्भको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

[ ८५२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( वीडु चित् ) सुदृढ किलोंको भी ( आ रुजत्नुभिः ) तोड़नेवाले ( वह्निभिः मरुद्भिः ) तेजस्वी मरुतोंने ( गुहा चित् ) गुहामें रहनेवाली ( उस्त्रियाः ) गायोंको ( अनु-अविन्दः ) प्राप्त किया ॥ २ ॥

[ ८५३ ] ( ता इन्द्राग्नी हुवे ) उस इन्द्र और अन्निको में सहायताके लिए बुलाता हूं, ( ययोः ) जिन दोनोंके द्वारा ( पुराकृतं विश्वं इत् ) पहले किए गए सभी पराक्रमोंकी ( पप्ने ) स्तुति की जाती है, वे इन्द्र और अग्नि ( न मर्धतः ) स्तुति करनेवालोंको दुःख नहीं देते ॥ १ ॥

[ ८५४ ] वे ( उग्रा ) उग्रवीर ( मृधः विघनिना ) शत्रुका नाश करनेवाले हैं, उन ( इन्द्र-अग्नी ) इन्द्र अन्निको हम सहायताके लिए ( हवामहे ) बुलाते हैं, ( तौ ) वे ( ईदृशे ) इसप्रकार इस संग्राममें ( नः मृडातः ) हमें सुखी करें ॥ २ ॥

[ ८५५ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( आर्या ) श्रेष्ठ तुम ( वृत्राणि हथः ) शत्रुओंको मारो, ( सत्पती ) सज्जनोंके पालन करनेवाले तुम ( दासानि हथः ) नीचोंको दूर करो, उसी प्रकार ( विश्वाः द्विषः अप हथः ) सब द्वेष करनेवालोंका नाश करो ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ८५६ ] ( मनीषिणः आयवः ) बुद्धिमान् ऋत्विज ( मत्सरासः मदच्युतः सोमासः ) आनन्द बढ़ानेवाले, उत्साही सोमरसोंको ( समुद्रस्य अधि विष्टपे ) जलपात्रके ऊपर रखी हुई छलनीमेंसे ( मधं मदं अभि पवन्ते ) आनन्द और उत्साह बढ़ानेके लिए छानते हैं ॥ १ ॥



८५७ <sup>१२ ३१ २२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत्

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०।१५ )

८५८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> नृभिर्मेमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रयः

॥ ३ ॥ ९ ( बु ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ५ ] ( ऋ. ८।१०।१६ )

८५९ <sup>३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> तिस्रो वाच ईरयति प्र वहिऋतस्य धीर्ति ब्रह्मणो मनीषाम् ।

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।३४ )

८६० <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोम अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।३५ )

८६१ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।

<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम ॥ ३ ॥ १० ( पी ) ॥

[ धा० ३० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९।३६ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ८५७ ] ( पवमानः देवः ) शुद्ध किया जानेवाला ( राजा ) तेजस्वी सोम ( बृहत् ऋतं समुद्रं ) महान् जलसे युक्त कलशमें ( ऊर्मिणा तरत् ) लहरोंसे युक्त होकर बहता है, ( हिन्वानः ऋतं बृहत् ) प्रेरणा देनेवाला यह सत्य सोमरस ( मित्रस्य वरुणस्य ) मित्र और वरुण द्वारा ( धर्मणा प्र अर्षा ) धारण किए जानेके लिए छाना जाता है, कलशमें गिरता है ॥ २ ॥

[ ८५८ ] ( नृभिः येमाणः ) ऋत्विजोंके द्वारा तैय्यार होनेवाला ( हर्यतः विचक्षणः ) वर्णनीय, विशेषज्ञान बढ़ानेवाला ( देवः राजा ) दिव्य सोम राजा ( समुद्रयः ) जलोंमें इन्द्रके लिए छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ८५९ ] ( वहिः तिस्रः वाचः प्रेरयति ) यज्ञकर्ता ऋक्, यजु और साम इन तीन वाणियोंका उच्चारण करता है, ( ऋतस्य धीर्ति ) यज्ञकी रीति और ( ब्रह्मणः मनीषां ) ज्ञानसे पवित्र हुए विचारका इसमें उच्चारण किया जाता है, ( गावः गो-पतिं यन्ति ) जिस प्रकार गायें गोपालके पास जाती हैं, उसी प्रकार ( पृच्छमानाः सोमं यन्ति ) गायें शब्द करती हुई सोमके पास जाती हैं, तब ( वावशानाः मतयः ) इच्छा करनेवाली बुद्धियां उसकी स्तुति करती हैं ॥ १ ॥

[ ८६० ] ( धेनवः गावः ) दुधार गायें ( सोमं वावशानाः ) सोमकी इच्छा-करती हैं, ( विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः ) ज्ञानी लोग अपनी बुद्धियोंसे सोमका वर्णन करते हैं, ( सुतः सोमः ) सोमरस निकालनेके बाद ( पूयमानः ऋच्यते ) छाना जाता हुआ सोम रखे हुए बर्तनोंमें गिरता है, ( त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते ) त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र सोमका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

[ ८६१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( परिषिच्यमानः ) बर्तनमें पानीसे मिलाया हुआ तथा ( पूयमानः ) पवित्र होता हुआ तू ( नः एव स्वस्ति पवस्व ) हमारे कल्याणके लिए छनता जा, ( बृहता मदेन इन्द्रं आविज ) बड़े आनन्दसे तू इन्द्रके पेटमें जा, ( वाचं वर्धय ) स्तुतिका संवर्धन कर, ( पुरंधि जनय ) बहुत काम करनेवाली बुद्धिको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ४ ]

८६२ यत् द्याव इन्द्र ते शतंशतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।९ )

८६३ आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्माँअव मघवन् गोमति व्रजे वज्रि चित्राभिरूतिभिः

॥ २ ॥ ११ ( ली ) ॥

[ धा० १९। उ० नास्ति । ख० ४ ] ( ऋ. ८।७०।६ )

८६४ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तवर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३३।१ )

८६५ स्वरन्ति त्वा सुते नरा वसो निरेक उक्थिनः ।

कदा सुते तृपाण ओक आ गमादिन्द्र स्वब्दीव वंसगः

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।३३।२ )

८६६ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्पि सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणं मक्षू गोमन्तमीमहे

॥ ३ ॥ १२ ( छा ) ॥

[ धा० २७। उ० २। ख० २ ] ( ऋ. ८।३३।३ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ८६२ ] हे इन्द्र ! ( ते ) तेरी बराबरी करनेके लिए ( यत् द्यावः शतं स्युः ) यदि द्युलोक सौ हो जावें, ( उत भूमिः शतं स्युः ) और भूमियां भी सौ होजावें और हे ( वज्रिन् ) वज्रधारी इन्द्र ! ( सहस्रं सूर्याः ) हजारों सूर्य हों जावें, तो ये सब भी ( त्वा न अनु न अष्ट ) तेरी बराबरी नहीं कर सकते, ( जातं न अनु अष्ट ) कोई भी पैदा हुआ जगत् तेरी बराबरी नहीं कर सकता, ( रोदसी ) ये दोनों द्यावापृथिवी भी तेरी समता नहीं कर सकते ॥ १ ॥

[ ८६३ ] हे ( वृषन् ) बलवान् इन्द्र ! तू अपने ( वृष्ण्या महिना ) सामर्थ्यके महत्त्वसे युक्त ( शवसा ) बलसे ( विश्वा आ पप्राथ ) सभीको पूर्ण करता है। हे ( शविष्ठ ) बलवान् ( मघवन् वज्रिन् ) धनवान्, वज्रधारी इन्द्र ! ( गोमति व्रजे ) गायोंसे भरे हुए गौशालामें ( चित्राभिः ऊतिभिः ) अनेक प्रकारके संरक्षणके साधनोंसे ( नः अव ) हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

[ ८६४ ] हे ( वृत्रहन् ) शत्रुका वध करनेवाले इन्द्र ! ( त्वां वयं घ ) तेरे पास हम ( सुतावन्तः ) सोमरस निकाल कर ( आपः न ) जलप्रवाहके समान आते हैं, ( पवित्रस्य प्रस्रवणेषु ) पवित्र सोमकी शुद्धि करते हुए ( वृक्तवर्हिषः स्तोतारः ) आसनको फैलाकर स्तुति करनेवाले ( परि उप आसते ) तेरी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ ८६५ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( सुते निरेके ) सोमरस निकालनेके बाद ( उक्थिनः नराः ) स्तुति करनेवाले ऋत्विज ( त्वा स्वरन्ति ) तेरी स्तुति करते हैं, ( सुते तृपाणः ) सोमरस पीनेकी इच्छा करनेवाला इन्द्र ( वंसगः ) बेल जैसा ( स्वब्दीव ) शब्द करता हुआ ( कदा ओकः आगमत् ) कब हमारे घर आएगा ? ॥ २ ॥

[ ८६६ ] ( धृष्णो ) हे शूरवीर इन्द्र ! ( कण्वेभिः ) कण्वोंके द्वारा स्तुति किए जानेके बाद उन्हें तू ( सहस्रिणं वाजं आदर्पि ) हजारों प्रकारके बल अथवा धन देता है। हे ( मघवन् विचर्षणे ) धनवान् और ज्ञानी इन्द्र ! तेरे पाससे ( धृषत् ) शत्रुका नाश करनेवाले ( पिशङ्ग-रूपं ) सोनेके समान चमकनेवाले ( गोमन्तं वाजं ) गायसे साथ रहनेवाले धन ( मक्षु ईमहे ) शीघ्र पाना चाहते हैं ॥ ३ ॥



८६७ <sup>३ २ ३ १ २</sup> तरणिरित्सिषासति <sup>३ २ ३ १ २</sup> वाजं <sup>३ २</sup> पुरंध्या <sup>२ ३ १ २</sup> युजा । आ व इन्द्रं <sup>३ १ २</sup> पुरुहूतं <sup>३ २ ३ १</sup> नमे <sup>२ २ ३ १ २</sup> गिरा नेमिं <sup>२ २ ३ १ २</sup> तष्टेव सुद्रुवम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ७।३।२० )

८६८ <sup>१ २ ३ १ २</sup> न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु <sup>३ १ २</sup> शस्यते <sup>३</sup> न स्नेधन्त <sup>२ २</sup> रयिर्नशत् ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> सुशक्तिरिन्मघवं <sup>३ १</sup> तुभ्यं <sup>२ २</sup> मावते <sup>३ १</sup> देष्णं <sup>३ १</sup> यत्पार्ये दिवि ॥ २ ॥ १३ ( यि ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ७।३।२१ )  
॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

८६९ <sup>३ २ ३</sup> तिस्रो वाच उदीरते <sup>३ १ २</sup> गावो <sup>३ १ २</sup> मिमन्ति <sup>३ १ २</sup> धेनवः । हरिरेति <sup>१ २ ३ १ २</sup> कनिक्रदत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।१४ )  
८७० <sup>३ १</sup> अभि <sup>२ २</sup> ब्रह्मीरनूषत <sup>३ २ ३ १ २</sup> यद्हीकृतस्य <sup>३ १ २</sup> मातरः । मर्जयन्तीर्दिवः <sup>३ १ २</sup> शिशुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३।१५ )  
८७१ <sup>३ १ २ ३ २</sup> रायः <sup>३ २ ३</sup> समुद्राश्चतुरा <sup>१ २</sup> ऽस्मभ्य <sup>३ १ २</sup> ऽसोम विश्वतः । आ पवस्व <sup>१ २</sup> सहस्रिणः ॥ ३ ॥ १४ ( टा ) ॥  
[ धा० १८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।३।१६ )

८७२ <sup>३ २ ३ १ २</sup> सुतासो <sup>३ २ ३ १ २</sup> मधुमत्तमाः <sup>३ १ २</sup> सोमा इन्द्राय <sup>३ १ २</sup> मन्दिनः ।  
<sup>३ १ २</sup> पवित्रवन्तो <sup>३ १ २</sup> अक्षरं <sup>३ १ २</sup> देवान्गच्छन्तु वा मदाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१४ )

[ ८६७ ] ( तरणिः इत् ) दुःखको पार कर जानेवाला वीर ही ( युजा पुरंध्या ) योग्य और विशाल बुद्धिकी सहायतासे ( वाजं सिषासति ) बल प्राप्त करना चाहता है । हे यज्ञ करनेवालो ! ( वः ) तुम्हारे लिए ( गिरा ) स्तुतिके द्वारा ( पुरु-हूतं इन्द्रं ) बहुतोंके द्वारा स्तुति किये गये इन्द्रको जिस प्रकार ( तष्टा सुद्रुवं नेमिं इव ) बढई लकड़ीकी धुरि बनाता है, उसी प्रकार ( आ नमे ) नमन करता हूँ ॥ १ ॥

[ ८६८ ] ( द्रविणोदेषु ) धनके दान करनेवाले पुरुषोंकी ( दु-स्तुतिः न शस्यते ) निन्दाकी कोई भी प्रशंसा नहीं करता है, ( स्नेधन्तं ) दान दाताओंकी स्तुति न करनेवालोंको ( रयिः न नशत् ) धन प्राप्त नहीं होता, हे ( मघवन ) धनवान् इन्द्र ! ( पार्ये दिवि ) सोमयज्ञके दिन ( मावते ) मुझ जैसेंकी, ( देष्णं यत् ) देने योग्य जो धन हैं, ( तुभ्यं सुशक्तिः इत् ) उन्हें तुझसे उत्तम शक्तिशाली ही प्राप्त करता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ८६९ ] ( तिस्रः वाचः उदीरते ) ऋक्, यजु, साम इन तीन वाणियोंका यज्ञकर्ता उच्चारण करते हैं, ( धेनवः गावः मिमन्ति ) दुधार गायें रंभाती हैं, ( हरिः कनिक्रदत् एति ) हरे रंगका सोमरस शब्द करता हुआ कलशमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ८७० ] ( दिवः शिशुं मर्जयन्तीः ) बुलोकके पुत्ररूपी सोमको शुद्ध करती हुई ( ब्रह्मीः ) वेदोंमेंसे ( ऋतस्य यद्हीः मातरः ) यज्ञके बडे महत्वका वर्णन करनेवाली स्तुतियां ( अभि अनूषत ) गाई जाती हैं ॥ २ ॥

[ ८७१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( रायः चतुरः समुद्रान् ) धनके चार समुद्रोंकी ( अस्मभ्यं ) हमारे लिए ( विश्वतः आ पवस्व ) चारों ही ओरसे लाकर दे, और ( सहस्रिणः ) हमारी हजारों इच्छाओंको तृप्त कर ॥ ३ ॥

[ ८७२ ] ( मधुमत्तमाः ) अत्यन्त मीठे ( मन्दिनः सुतासः ) आनन्द बढानेवाले सोमरस ( पवित्रवन्तः ) शुद्ध होकर ( इन्द्राय अक्षरन् ) इन्द्रके लिए कलशमें पड़ते हैं, हे ( सोमाः ) सोमरसो ! ( वः मदाः देवान् गच्छन्तु ) तुम्हारे आनन्ददायक रस देवोंको प्राप्त हों ॥ १ ॥



८७३ इन्द्रुरिन्द्राय पवते इति देवासो अग्रवन् । वाचस्पतिमखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०।१३ )

८७४ सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीह्वयः ।  
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ३ ॥ १५ ( लि. ) ॥

[ धा० २९। उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०।१६ )

८७५ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।  
अतप्ततनूनं तदामो अश्नुते श्रुतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८३।१ )

८७६ तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवा व्यस्थिरन् ।  
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८३।२ )

८७७ अरुरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।  
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥ १६ ( डु. ) ॥  
[ धा० ३८। उ० १। स्व० ५ ] ( ऋ. ९।८३।३ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ८७३ ] ( इन्द्रुः ) सोमरस ( इन्द्राय पवते ) इन्द्रके लिए छाना जाता है, ( इति देवासः अग्रवन् ) इस प्रकार स्तुति करनेवाले कहते हैं, ( वाचः-पतिः ) स्तुतियोंके रक्षक और ( विश्वस्य ओजसः ईशानः ) सब बलोंके स्वामी इस सोमका ( मखस्यते ) यज्ञमें उपयोग किया जाता है ॥ २ ॥

[ ८७४ ] ( समुद्रः ) पानीमें मिलाया हुआ ( वाचं ईह्वयः ) वाणीको प्रेरणा देनेवाला ( रयीणां पतिः ) धनोंका स्वामी ( इन्द्रस्य सखा ) इन्द्रका मित्र ( सोमः ) यह सोम ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( सहस्र-धारः पवते ) हजारों धाराओंसे कलशमें छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ८७५ ] हे ( ब्रह्मणः पते ) मंत्रोंके स्वामी सोम ! ( ते पवित्रं विततं ) तेरा पवित्र हुआ भाग सब जगह फैला हुआ है, तू ( प्रभुः ) सामर्थ्यवान् ( गात्राणि पर्येषि ) पीनेवालोंके अवयवोंमें व्याप्त होता है, ( विश्वतः अ-तप्त-तनूः ) सब तरफसे शरीरको तपसे बिना तपाये ( आमः तत् न अश्नुते ) अपक्व शरीरसे उस सुखको कोई प्राप्त नहीं कर सकता । ( श्रुतासः इत् ) जो परिपक्व हैं, वे ही ( वहन्तः तत् सं आशते ) यज्ञ करते हुए सुख प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

[ ८७६ ] ( तपोः पवित्रं ) शत्रुको तपानेवाले सोमके पवित्र अंग ( दिवः पदे विततं ) धूलोकके स्थानमें फैले हुए हैं, ( अस्य तन्तवः ) इसकी किरणें ( अर्चन्तः व्यस्थिरन् ) चमकती हुई विशेष रीतिसे स्थिर हो गई हैं, ( अस्य आशवः ) इस सोमके जल्दी ही फैलनेवाले रस ( पवितारं अवन्ति ) शुद्ध करनेवालोंकी रक्षा करते हैं, वे ( दिवः पृष्ठं ) धूलोकके पृष्ठ भाग पर ( तेजसा अधिरोहन्ति ) अपने तेजसे चढ़कर बैठते हैं ॥ २ ॥

[ ८७७ ] ( उपसः पृश्निः ) उपःकालमें सूर्य ( अग्रियः अरुरुचत् ) पहले प्रकाशित होता है । ( उक्षा ) वर्षा करनेवाला वह ( भुवनेषु मिमेति ) सब भुवनोंमें जल सींचता है और प्रजाको ( वाज-युः ) अन्नसे युक्त करता है, ( माया विनः ) शक्तिमान् देवता ( अस्य मायया ) इसकी शक्तिसे ( ममिरे ) जगत्का निर्माण करते हैं, ( अस्य ) इस सोमकी शक्तिसे ( नृचक्षसः पितरः ) मानवोंका निरीक्षण करनेवाले पालक ( गर्भं आदधुः ) ओषधिमें गर्भ स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

८७८ प्र मंहिष्ठाय गायत क्रतान्न बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१०३।८ )

८७९ आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युमन्याहुतः ।

कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ २ ॥ १७ ( या ) ॥

[ धा० १७।३० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०३।९ )

८८० तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१५।४ )

८८१ येन ज्योतीः स्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानां अस्य वहिषा वि राजसि ॥ २ ॥

( ऋ. ८।१५।५ )

८८२ तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥ १८ ( ह ) ॥

[ धा० २१।३० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१५।६ )

८८३ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति । सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूधिं महाऽसि ॥ १ ॥

( ऋ. ८।१५।४ )

[ ६ ] पष्ठः खण्डः ।

[ ८७८ ] ( उप-स्तुतासः ) हे स्तुति करनेवालो ! तुम ( मंहिष्ठाय ) श्रेष्ठ ( क्रतान्ने ) यज्ञ करनेवाले ( बृहते शुक्र-शोचिषे ) महान् तेजस्वी ( अग्नये प्र गायत ) अग्निके लिए स्तुतिका गान करो ॥ १ ॥

[ ८७९ ] ( मघवा द्युमनी ) धनवान् तेजस्वी ( समिद्धः आहुतः ) प्रदीप्त और हवन किया गया अग्नि ( वीरवत् यशः ) पुत्रोंसे होनेवाला यश ( आ वंसते ) देता है, ( अस्य ) इस अग्निकी ( भवीयसी नुमतिः ) हमारे अनुकूल रहनेवाली बुद्धि ( नः अच्छ ) हमारे पास ( वाजेभिः ) अश्वोंके साथ ( कुविन् आगमत् ) अनेक बार आवे ॥ २ ॥

[ ८८० ] हे ( अद्रिवः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते वृषणं ) तेरे मनोरथकी पूति करनेवाले ( पृक्षु सासहिं ) युद्धमें शत्रुको हरानेवाले ( लोककृत्नं उ ) लोकोंका हित करनेवाले ( हरि श्रियं ) अश्वोंकी शोभा जिसके पास है, ऐसे ( तं मदं ) उस सोम पीनेसे उत्पन्न हुए हुए उत्साहकी ( गृणीमसि ) हम प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

[ ८८१ ] हे इन्द्र ! ( येन ) जिस उत्साहसे ( आयवे मनवे ) दीर्घायुवाले मनुष्यके हितके लिए ( ज्योतीषि विवेदिथ ) सूर्यादि अनेक तेजस्वी पदार्थ प्रकाशित किए, उसी उत्साहसे युक्त होकर ( अस्य वहिषः मन्दानः ) इस यज्ञ-कतके आसन पर आनन्दित होकर ( विराजसि ) तू विराजमान होता है ॥ २ ॥

[ ८८२ ] हे इन्द्र ! ( ते तत् ) तेरे उस बलकी ( अद्या चित् ) आज भी ( पूर्वथा ) पूर्वके समान ( उक्थिनः अनुस्तुवन्ति ) स्तुतिकर्ता स्तुति करते हैं, इस प्रकार तू ( वृषपत्नीः अपः ) बलके पालन करनेवालोंकी ( दिवे दिवे जय ) प्रतिदिन जीत करके प्राप्त कर ॥ ३ ॥

[ ९८३ ] ( यः त्वा सपर्यति ) जो तेरी आराधना करता है, हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( तिरश्च्याः हवं श्रुधि ) उस तिरश्चि ऋषिकी प्रार्थना सुन और ( सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूधिं ) उत्तम श्रेष्ठ पुत्रसे युक्त और गायोंसे युक्त धनसे हमें पूर्ण कर । ( महान् असि ) तू महान् है ॥ १ ॥



८८४ यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।

चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९३।९ )

८८५ तमु एवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।

पुरुषस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे

॥ ३ ॥ १९ ( फा ) ॥

॥ ६ [ धा० १५ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९५।६ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः । द्वितीयप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

[ ८८४ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यः ) जो ( नवीयसीं ) नवी और ( मन्द्रां गिरं ) आनन्ददायक स्तुति ( ते अजीजनत् ) तेरे लिए करता है, उस स्तोताको ( प्रत्नां ऋतस्य पिप्युषीं ) पुरातन यज्ञको बढ़ानेवाली ( चिकित्विन्मनसं ) मनको शुद्ध करनेवाली ( धियं ) बुद्धि दे ॥ २ ॥

[ ८८५ ] हम ( तं उ इन्द्रं स्तवाम ) उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं, ( यं गिरः उक्थानि वावृधुः ) जिसकी महिमा मंत्र और स्तोत्र बढ़ाते हैं, इसलिए ( अस्य ) इस इन्द्रके ( पुरुषि पौंस्या ) महान् पराक्रमोंका हम ( सिषासन्तः वनामहे ) भक्तिसे वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

## चतुर्थ अध्याय

इस चौथे अध्यायमें इन्द्रका जो गुण वर्णन किया है, वह इस प्रकार है ।

### इन्द्रके गुण

१ अविभ्युषः [ ८५० ]- निर्भय, किसीसे न डरनेवाला ।

२ धृष्णुः [ ८६६ ]- शत्रुओंको दूर करनेवाला, शूरवीर ।

३ तरणिः [ ८६७ ]- दुःखसे पार होनेवाला ।

४ वृषा [ ८६३ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान् ।

५ वज्रिन् [ ८६३ ]- वज्रधारी, शस्त्रास्त्रधारी ।

६ शविष्ठः [ ८६३ ]- सामर्थ्यवान् ।

७ मघवान् [ ८६३ ]- धनवान् ।

८ वसुः [ ८६५ ]- धनवान्, निवास करानेवाला ।

९ विचरषणिः [ ८६६ ]- विशेष ज्ञानी

१० [ साम. हिन्दी भा. २ ]

१० पुरु-हूतः [ ८६७ ]- जिसे बहुत लोग अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

११ अस्य पुरुषि पौंस्या सिषासन्तः वनामहे [ ८८५ ]- इस इन्द्रके बहुतसे पराक्रमके कार्योंका वर्णन हम-भक्तिसे करते हैं ।

१२ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्य [ ८८३ ]- उत्तम वीर्यवान् पुत्र और गायोंसे युक्त धन हमें भरपूर दे ।

१३ हे वृषन् ! वृष्ण्या महिना शवसा विश्वा आ पप्राथ [ ८६३ ]- हे बलवान् इन्द्र ! सामर्थ्य और महान् बलसे तू सब कार्योंको पूर्ण करता है ।

१४ हे इन्द्र ! यः नवीयसीं मन्द्रां गिरं ते अजीजनत्, प्रत्नां ऋतस्य पिप्युषीं चिकित्विन् मनसं धियं



[ ८८४ ]- हे इन्द्र ! जो तेरी नई और आनन्द बढ़ानेवाली स्तुति करता है, उसे प्राचीनकालसे ही यज्ञको बढ़ानेवाली और मनको पवित्र करनेवाली बुद्धि तू देता है ।

१५ हे इन्द्र ! यत् द्यावः शतं स्युः, यत् भूमिः शतं स्युः, सहस्रं सूर्याः त्वा न अनु अष्ट, जातं न अनु अष्ट, रोदसी न अनु अष्ट [ ८६२ ]- हे इन्द्र ! यदि सौ द्युलोक होजायें, सैंकड़ों भूमियां हो जायें, हजारों सूर्य हो जायें, तो भी वे तेरी बराबरी नहीं कर सकते, उत्पन्न हुआ जगत् तेरी बराबरी नहीं कर सकता, द्यावापृथिवी भी तेरी बराबरी नहीं कर सकते ।

इन्द्रके ये गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं, उन्हें उपासक अपने अन्दर लानेका प्रयास करें । जो अपने अन्दर लानेके योग्य न हों तो उनका भावार्थ मनमें लाकर उनको जितना धारण किया जा सकता है, उतना करें ।

### इन्द्रका रक्षण

इन्द्र सभीका संरक्षण करता है, इसलिए कहा है —

१ हे मघवन् ! वज्रिन् ! गोमति व्रजे चित्राभिः उतिभिः नः अव [ ८६३ ]- हे धनवान् वज्रधारी इन्द्र ! गायोंसे भरी हुई गौशालामें अनेक संरक्षणके साधनोंसे हमारा संरक्षण कर, अर्थात् हमें गायोंसे भरी हुई गौशाला भी दे और साथ ही हमारा संरक्षण भी कर ।

२ हे अद्विवः ! ते वृषणं पृथु सासहिं लोककृतुं मदं गृणीमसि [ ८८० ]- हे वज्रधारी इन्द्र ! बलशाली, युद्धमें शत्रुको हरानेवाले लोगोंका हित करनेवाले ऐसे तेरे उत्साहकी हम प्रशंसा करते हैं । इन्द्रका उत्साह लोगोंका हित करनेवाला है ।

३ ते तत् अद्याचित् पूर्वथा उक्थिनः अनुस्तुवन्ति [ ८८२ ]- तेरे उस शूरवीरताकी पहलेके समान आज भी स्तोता स्तुति करते हैं ।

### इन्द्र धन देता है

इन्द्र स्तुति करनेवालोंको धन देता है, इस विषयमें आगेके मंत्र भाग देखने योग्य हैं —

१ हे धृष्णो ! सहस्रिणं वाजं आदधि [ ८६६ ]- हे शूरवीर इन्द्र ! तू हमें हजारों प्रकारके बल अथवा धन देता है ।

२ हे मघवन् विचर्षणे ! धृषत् पिशंगरूपं गोमन्तं वाजं मध्व ईमहे [ ८६६ ]- हे धनवान् जानी इन्द्र ! शत्रुको

हरानेवाले, सोनेके समान चमकनेवाले, गायोंके साथ रहनेवाले धन हमें शीघ्र प्राप्त हों, ऐसी हम इच्छा करते हैं ।

३ तरणिः युजा पुरन्ध्या वाजं सिवासति [ ८६७ ]- दुःखोंसे पार होनेवाला वीर तेरी उत्तम और विशाल बुद्धिसे बल अथवा धन पानेकी इच्छा करता है ।

४ पुरु-द्वतं इन्द्रं आनमे [ ८६७ ]- बहुतोंके द्वारा स्तुति किए गए इन्द्रको मैं अपनी सहायताके लिए बुलाता हूँ ।

५ द्रविणोदेषु दु-स्तुतिः न शस्यते [ ८६८ ]- धन देनेवाले इन्द्रादिकी निन्दा करना अच्छा नहीं है, क्योंकि उनकी उत्तम स्तुति ही करनी चाहिए ।

६ हे मघवन् ! पार्ये दिवि मावते देष्णं तुभ्यं सुशक्तिः इत् [ ८६८ ]- हे इन्द्र ! दुःखोंसे पार करनेवाले दिव्य यज्ञमें मुझ जैसेको देने योग्य जो धन हैं, वे तेरे पाससे उत्तम शक्तिमान् ही प्राप्त कर सकता है, शक्तिमान् यज्ञ करता है और धन पाता है ।

इन्द्र उपासकोंको धन देता है, इस विषयमें ऊपरके मंत्र भाग मनन करने योग्य हैं । यज्ञमें इन्द्रादि देवोंको सोमरस दिया जाता है, इस विषयमें मंत्र भागोंको अब देखिये —

### इन्द्रको सोम देना

यज्ञमें सोमका रस निकाला जाता है, और वह इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है । इस विषयमें निम्न मंत्र हैं —

१ इन्दुः इन्द्राय पवते इति देवासः अब्रुवन् [ ८७३ ]- सोम इन्द्रको दिया जाता है ऐसा देवोंने कहा है ।

२ रयीणां पतिः दिवेदिवे इन्द्रस्य सखा सोमः सहस्रधारः पवते [ ८७४ ]- ऐश्वर्योंका पालक, प्रतिबिम्ब इन्द्रका मित्र सोम हजारों धाराओंसे छाना जाता है ।

३ वाचस्पतिः विश्वस्य ओजसः ईशानः मखस्यते [ ८७३ ]- वाणीका पति, सब सामर्थ्योंका ईश्वर ऐसा यह सोम यज्ञमें सन्मानके योग्य है । यज्ञमें इन्द्रको पीनेके लिए दिया जाता है यह सोमका सम्मान है ।

४ बृहता मदेन इन्द्रं आविश [ ८६१ ]- हे सोम ! तू महान् आनन्दसे इन्द्रमें प्रवेश कर ।

५ वाचं वर्धय पुरन्धि जनय [ ८६१ ]- वस्तुत्वशक्ति बढ़ा और उत्तम बुद्धि निर्माण कर । सोमरस पीनेके बाद जो उत्साह बढ़ता है उससे अच्छी तरह बोलनेकी शक्ति आती है और बुद्धि भी तीव्र होती है ।

इस तरह इन्द्रादि देवता सोमरस पीते हैं, और महान् शूर-वीरताके काम करते हैं । देखिए —



६ संवृक्त-भृष्णं महामहिमं तं मदं शतं पुरः रुरु-  
क्षिणं [ ८३७ ]- जिसने अपने शत्रु हरा दिए, जो महान्  
महान् कार्य करता है, जो शत्रुके सौ किले तोड़ता है, उस  
सोमरसके आनन्दकी हम प्रशंसा करते हैं। सोमरस पीनेसे  
पराक्रम करनेकी शक्ति अपने अन्दर आती है।

इस प्रकार इन्द्रके वर्णन इस अध्यायमें हैं। अब अग्निके  
वर्णन देखिए—

### अग्निका वर्णन

इस अध्यायमें अग्निका इसप्रकार गुणवर्णन किया है—

- १ कविः [ ८४४ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी।
- २ युवा [ ८४४ ]- तरुण।
- ३ गृहपतिः [ ८४४ ]- घरकी रक्षा करनेवाला।
- ४ पाचकः [ ८४६ ]- पवित्र करनेवाला।
- ५ प्राचेता [ ८४९ ]- उत्तम रीतिसे रक्षा करनेवाला।
- ६ मघवा [ ८७९ ]- धनवान्।
- ७ द्युम्नी [ ८७९ ]- तेजस्वी।
- ८ मंहिष्ठः [ ८७८ ]- महान्।
- ९ ऋतावन् [ ८७८ ]- सत्यपालक, यज्ञ करनेवाला,  
उत्तम कर्म करनेवाला।
- १० बृहत् [ ८७८ ]- बड़ा, महान्।
- ११ शुक्रशोचिः [ ८७८ ]- शुद्ध प्रकाशवाला।
- १२ हव्यवाद् [ ८४४ ]- हवन किए गए पदार्थ देवताओंके  
पास पहुंचानेवाला।

- १३ दूतः [ ८४५ ]- देवोंको हवि पहुंचानेवाला।
- १४ वीरवत् यशः आ वंसते [ ८७९ ]- पुत्रपौत्रोंके  
साथ मिलनेवाला यश प्राप्त कराता है।
- १५ अस्य भवीयसी सुमतिः नः अद्य वाजेभिः  
कुचित् आगमत् [ ८७९ ]- इसके अनुकूल होनेवाली उत्तम  
बुद्धि हमारे पास आज अन्नके साथ आवे।

इस तरह अग्निके गुण इस अध्यायमें वर्णन किये हैं, ये  
गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर धारण करले तो उसकी योग्यता  
कितनी ऊंची हो जाए ?

### सूर्य

सूर्यका वर्णन इस अध्यायके एक ही मंत्रमें किया है, उसे  
देखिए—

- १ उपसः पृथिनः अग्रियः अरुरुचत् [ ८७७ ]- उपः-  
कालके बाद सूर्य प्रथम चमकने लगता है।

२ उक्षा भुवनेषु मिमेति [ ८७७ ]- वृष्टि करनेवाला  
वह सूर्य सब भुवनोंमें जलका सिंचन करता है।

३ मायाविनः अस्य मायया ममिरे [ ८७७ ]- कुशल  
देवता इस सोमके सामर्थ्यसे जगत्में पदार्थोंका निर्माण  
करते हैं।

उषःकाल होते ही उठना और दूसरोंको प्रकाशके द्वारा  
मार्ग दिखाना, दूसरोंको जल अर्थात् जीवन देकर अनेक  
प्रकारके कुशलताके काम करनेके लिए प्रेरणा देना ये बोध  
इन वचनोंसे मिल सकते हैं।

### मरुत्

मरुत् देवताका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार किया है—

१ मन्दू समानवर्चसा अभिभ्युषा इन्द्रेण संज-  
ग्मानः संदृक्षसे [ ८५० ]- स्वभावसे आनन्दयुक्त और  
समान तेजस्वी मरुत् गण निर्भय इन्द्रके साथ रहनेके कारण  
उत्तम तेजस्वी दीखते हैं।

२ वीलु चित् आरुजन्तुभिः वह्निभिः मरुद्भिः  
गुहाचित् उस्त्रियाः अन्वविन्दः [ ८५२ ]- मजबूत किले  
तोड़नेवाले तेजस्वी मरुत्तोंने गुफामें छिपायी गई गायोंको  
प्राप्त किया।

मरुत् गण ऐसे तेजस्वी और लडाकू वीर हैं, वे शत्रुके किले  
तोड़ते हैं और उन पर अपना अधिकार करते हैं। ऐसी  
वीरता लोग अपने अन्दर बढ़ावें।

### इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्नि इन देवताओंका वर्णन भी इस अध्यायमें  
आया है। वह अब देखिए—

१ ता इन्द्राग्नी, ययोः पुराकृतं विश्वं पप्ने [ ८५३ ]  
- वे सुप्रसिद्ध इन्द्र और अग्नि हैं, जिनके द्वारा पहले किए  
गए सब उत्तम कर्मोंका बखान किया जाता है।

२ न मर्धतः [ ८५३ ]- वे कभी भी दुःख नहीं देते।

३ ता उग्रा मृधः विघनिना इन्द्राग्नी हवामहे  
[ ८५४ ]- वे उग्रवीर शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र और अग्नि  
हैं, उन्हें हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

४ ईदृशे नः मृडातः [ ८५४ ]- ये हमें सुख देते हैं।

५ हे इन्द्राग्नी ! आर्या वृत्राणि हथः [ ८५५ ]- हे  
इन्द्र और अग्नि ! तुम आर्योंके कल्याण करनेके लिए शत्रुओंके  
संहार करते हो।

६ हे सत्पती ! दासानि विश्वा द्विषः अप हथः



[ ८५५ ]- हे सत्यपालको ! तुम नीचोंको और उसी प्रकार सब शत्रुओंको मारो और दूर करो ।

इस प्रकार उपासक उत्तम वीर बनें और जो शत्रु हों उन्हें दूर करें ।

### पानीकी उत्पत्ति

मित्र और वरुण ये दोनों वायु हैं, वे पानी उत्पन्न करते हैं, ऐसा मंत्रमें कहा है—

१ मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता [ ८४७ ]- ( पूत-दक्षं मित्रं ) पवित्र बलवाले मित्रको और ( रिशादसं वरुणं ) हिंसक शत्रुओंके नाश करनेवाले वरुणको ( हुवे ) में बुलाता हूँ, ये दोनों ( घृताचीं धियं साधन्ता ) पानी उत्पन्न करनेके काम करते हैं ।

२ रिश-अदस् वरुणः [ ८४७ ]- जंग लगानेवाला, ( ऑक्सीजन वायु ) जो जंग पैदा करता है ।

३ पूतदक्षः मित्रः [ ८४७ ]- पवित्र बलवान् वायु ( हाइड्रोजन ) ।

इसमें “ रिश, रिष्ट ( रस्ट Rust ) ये दोनों धातु किसी धातु ( लोहे आदि ) में जंग लगनेके भावको दिखाते हैं । इंग्लिशका “ रस्ट ” ( Rust ) भी संस्कृतके “ रिश ” से निकट सम्बन्ध रखता है ।

४ मित्रावरुणौ ऋतावृधौ [ ८४८ ]- मित्र और वरुण ये पानी बढ़ानेवाले हैं ।

५ कवी तुविजाता उरुक्षया मित्रावरुणा नः अपसं बलं दधाते [ ८४९ ]- ( क-वी ) “ क ” का अर्थ है जल और “ वी ” का अर्थ है उत्पन्न करनेवाले, ( तुविजाता ) अनेक कार्यमें उपयोगी, ( उरु-क्षया ) अनेक स्थानों पर रहनेवाले मित्र और वरुण ये वायु हमारे कार्य और बलको पुष्ट करें ।

इस मंत्रमें ये दोनों वायु ( घृत-अर्ची धियं साधन्ता ) पानी उत्पन्न करनेके कार्य करते हैं ऐसा स्पष्ट कहा है ।

### सोमके गुण

इस अध्यायमें सोमका भी वर्णन है । उसमें सोमके गुण वर्णित हैं । उन्हें अब देखिए—

१ बाजी [ ८३० ]- बलवान्, असवान् ।

२ राजा [ ८३३ ]- राज्य चलानेवाला, तेजस्वी, असकनेवाला ।

३ सहः जुवः [ ८३४ ]- बल बढ़ानेवाला ।

४ संवृक्त-धृष्णुः [ ८३७ ]- जिसने अपने सभी सामर्थ्यवान् शत्रुओंको हरा करके नष्ट कर दिया है ।

५ महा-महि-व्रतः [ ८३७ ]- अनेक महान् महान् कार्य करनेवाला ।

६ सुक्रतुः [ ८३८ ]- उत्तम कर्म करनेवाला ।

७ विश्वस्य ओजसः ईशानः [ ८३७ ]- सब सामर्थ्योंका स्वामी ।

८ शतं पुरः रुक्षी [ ८३७ ]- शत्रुके संकड़ों नगर तोड़नेवाला ।

९ पुरु दुरिता विघ्नन् [ ८३१ ]- बहुतसे घातक शत्रुओंका-पाप कर्म करनेवालोंका नाश करनेवाला ।

१० तपोः पवित्रं [ ८७६ ]- शत्रुको दुःख देनेवालेका पवित्र भाग ।

११ विचर्याणिः [ ८३९ ]- विशेष ज्ञानी ।

१२ अभिष्टिकृत् [ ८३९ ]- इच्छित कार्योंको करनेवाला ।

१३ ऋतस्य गोपा [ ८४० ]- सत्यका रक्षक, यज्ञका रक्षक ।

१४ हितः [ ८४३ ]- कल्याण करनेवाला ।

१५ देवः [ ८५७ ]- प्रकाशमान्, दिव्य ।

१६ वाचः-पतिः [ ८७४ ]- भाषण देनेवाला, वाणीका स्वामी ।

१७ ब्रह्मणः-पतिः [ ८७५ ]- ज्ञानका स्वामी, ज्ञानी ।

१८ विचक्षणः [ ८५८ ]- विशेष ज्ञानी, चतुर ।

१९ हर्यतः [ ८५८ ]- पूज्य, बन्धनीय ।

२० पुरन्धि जनय [ ८६१ ]- विशाल बुद्धि प्रकट करनेवाला ।

२१ इन्द्रियं हिन्वानः [ ८३९ ]- अपनी इन्द्रिय शक्तिको उत्साहित करनेवाला ।

२२ मनीषिभिः मृज्यमानः [ ८४१ ]- ज्ञानी जिसकी शुद्धता करते हैं, ज्ञानियोंके द्वारा शुद्ध होनेवाला ।

२३ विश्वस्मै स्वर्दृशे साधारणः [ ८४० ]- सब आत्म-वर्गी ज्ञानियोंमें साधारणतया रहनेवाला ।

२४ वाजिभिः द्युतानः [ ८४३ ]- बलवानोंके द्वारा प्रदीप्त किया गया, बलवान् जिसे आगे स्थापित करते हैं ।

२५ मत्सरः मदच्युतः [ ८५६ ]- आनन्द बढ़ानेवाला ।

२६ पवमानः [ ८५७ ]- शुद्ध होनेवाला ।

२७ वृद्धत् ऋतं हिन्वानः [ ८५७ ]- महान् सत्य प्रकट करनेवाला, महान् यज्ञ करनेवाला ।



२८ दिवः पदे विततः [ ८७६ ]- विष्य स्थानमें रहनेवाला ।

२९ मधुमत्तमः [ ८७७ ]- अत्यन्त मीठा ।

३० रयीणां पतिः [ ८७८ ]- धनोंका स्वामी ।

३१ रयिः अभि अयत् [ ८७९ ]- धनके पास जानेवाला ।

ये सोमके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं । सोमरस पीनेसे जो उत्साह और सामर्थ्य बढ़ता है, उससे वीर पुरुष वीरताके काम करते हैं, इसलिए ये गुण सोमके ही हैं, यह बात आलंकारिक भाषामें कही है । यह बात ध्यानमें रखनेसे ऊपरके गुण सोमके किस प्रकार हैं, यह स्पष्ट हो जाएगा ।

### सोमका स्वर्गसे लाया जाना

सोम स्वर्गसे पृथ्वी पर लाया गया, इस प्रकार सोमका वर्णन वेदोंमें अनेक जगह पर आया है । मौजवान् हिमालयके एक ऊँचे शिखरका नाम है । उस ऊँची चोटी पर सोम उगता है और वहाँसे लाया जाता है । हिमालयके ऊपरका भाग स्वर्ग है, वहाँसे सोम लाया जाता है, इसलिए वह स्वर्गसे लाया गया ऐसा कहते हैं । यह वर्णन अब देखिए—

१ रयिः अभि अयत् राजानं त्वा दिवः अव्यथी सुपर्णः आभरत् [ ८३८ ]- धनके पास पहुँचनेवाले तेजस्वी राजाके समान तुझे स्वर्गसे दुःख न माननेवाला गरुड ले आया ।

२ ऋतस्य गोपां, विश्वस्मै स्वर्दशे साधारणं विः भरत् [ ८४० ]- यज्ञके संरक्षण करनेवाले, सब स्वर्गको देखनेवाले, देवोंको साधारण रीतिसे प्राप्त होनेवाले सोमको पक्षी ले आया ।

३ तपोः पवित्रं दिवः पदे विततं [ ८७६ ]- शत्रुको ताप देनेवाले सोमके वे पवित्र अंग स्वर्गलोकमें फँले हुए हैं ।

४ दिवः पृष्ठं तेजसा अधिरोहन्ति [ ८७६ ]- स्वर्गकी पीठ पर सोम अपने तेजसे बढ़ता है । सोमकी बेल चमकती है । इस प्रकार सोम स्वर्गसे लाया जाता है, और यज्ञमें उसका रस निकाल कर उसका हवन किया जाता है ।

### सोम धन देता है

सोमके धन देनेके विषयमें आगेके मंत्र देखने योग्य हैं—

१ इन्द्रवः विश्वानि सौभगा अभि [ ८३० ]- सोम सब सौभाग्य देता है ।

२ महो दिवः राधस्थेषु, नृमृणानि विभ्रतं, चारुं तं त्वा सुकृत्यथा ईमहे [ ८३६ ]- महान् दुलोकके अनेक स्थानोंमें रहनेवाले अनेक प्रकारके धनोंको धारण करनेवाले, सुन्दर ऐसे तुझ सोमको उत्तम यज्ञके द्वारा प्राप्त करते हैं ।

### सोम गाय और घोड़े देता है

१ वाजिनः, पुरु दुरिता विघ्नन्तः, तोकाय सु-गाः अर्वतः त्मना कृण्वन्तः [ ८३१ ]- बल बढ़ानेवाले, बहुतसे पापोंका नाश करनेवाले ये सोमरस हमारे पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गाय और घोड़े मिलें, इसलिए स्वयं ही मार्ग बनाते हैं ।

२ हे इन्द्रो ! शातग्विनं गवां पोषं, स्वदः यं भगतिं नः आवह [ ८३५ ]- हे सोम ! सौ गायोंसे युक्त, गायोंका पोषण करनेवाले सुन्दर घोड़ोंसे युक्त ऐसे भाग्यके दान हमें दे ।

इस प्रकार सोम गाय और घोड़े देता है । सोमका यज्ञमें उपयोग होता है और यज्ञमें गाय और घोड़े आते हैं । वह मानों सोम ही लाता है इसप्रकार आलंकारिक भाषामें वर्णन है ।

### सोमका पानीमें मिलाना

सोम कूटकर उसका रस निकालते हैं, और उसमें पानी मिलाकर उसे छानते हैं, इस विषयके वर्णन आगेके मंत्रोंमें हैं—

१ हे सोम ! परिषिच्यमानः, नः स्वस्ति पवस्व [ ८६१ ]- हे सोम । बर्तनमें रखे हुए पानीमें मिलकर हमारे कल्याणके लिए छनता जा ।

२ हे सोम ! रायः चतुरः समुद्रान् असभ्यं विश्वतः आ पवस्व [ ८७१ ]- हे सोम ! धनके चारों समुद्रोंको हमारे लिए चारों ओरसे लाकर छनता जा । पानीमें मिलाकर तथा छानकर सोम शुद्ध किया जाता है ।

### सोमरस छाना जाता है

सोमको पानीमें मिलानेके बाद उसे छाना जाता है—

१ एते आशवः इन्द्रवः तिरः पवित्रं असृग्रम् [ ८३० ]- ये शीघ्र गति करनेवाले सोमरस छलनीसे छाने जाते हैं ।

२ हे इन्द्रो ! मनीषिभिः मृज्यमानः इषे धारया पवस्व [ ८४१ ]- हे सोम ! बुद्धिमान् याजकोंके द्वारा शुद्ध किया जानेवाला तू हमारे अन्नके लिए छनता जा ।

३ वाजिभिः द्युतानः देववीतये पुनानः हितः इन्द्रस्य निष्कृतं याहि [ ८४३ ]- अनेक शक्तियोंसे तेजस्वी दीखनेवाला, देवोंको देनेके लिए छनता हुआ, हितका करनेवाला सोम इन्द्रके पास जावे ।

४ मनीषिणः आयवः, मत्सरासः मदच्युतः सोमासः समुद्रस्य अधि विष्टपे, मद्यं मदं अभि पवन्ते [ ८५६ ]- बुद्धिमान् याजक आनन्द बढ़ानेवाले उत्साही



सोमरसोंको, जलके वर्तनके ऊपर रखी हुई छलनीसे आनन्द और उत्साह बढ़ानेके लिए छानते हैं ।

५ एवमानः देवः राजा बृहद् ऋतं समुद्रं ऊर्मिणा तरद्, हिन्वानः ऋतं बृहत् मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र अर्प [ ८५७ ] - शृद्ध किया जानेवाला तेजस्वी सोम राजा, बड़े जल युक्त कलशमें धारासे, मित्र और वरुणके लिए छाना जाता है ।

६ नृभिः येमाणः हर्यतः विचक्षणः देवः राजा समुद्रयः [ ८५८ ] - ऋत्विजों द्वारा तैयार किया जानेवाला, वर्णनके योग्य और ज्ञान बढ़ानेवाला वह दिव्य सोमरस जलोंमें मिलाकर छाना जाता है ।

७ सुतः सोमः पूयमानः ऋच्यते, त्रिष्टुभः अर्काः सोमं संनवन्ते [ ८६० ] - सोमरस छनकर पानीमें गिरता है, उस समय त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र सोमका वर्णन करते हैं ।

इस प्रकार सोमरस पानीमें मिलाकर छाना जाता है । छाननेके बाद उसमें दूध मिलाया जाता है और पिया जाता है ।

### सोमरसको गायके दूधमें मिलाना

इस विषयमें आगेके मंत्र देखें—

१ रुचा गाः अभीहि [ ८४१ ] - तेजस्वी सोमरस गायके दूधमें मिलाये जाते हैं ।

२ धेनवः गावः सोमं वावशानाः [ ८६० ] - दुधार गायें सोमकी इच्छा करती हैं । अपना दूध सोमरसमें मिलाया जाये ऐसी इच्छा करती हैं ।

३ आशिरं सृजानः पुनानः [ ८४२ ] - दूधमें मिलाकर सोम छाना जाता है ।

४ धेनवः गावः भिमन्ति, हरिः कनिक्रदत् पति [ ८६९ ] - दुधार गायें रंभाती हैं और हरे रंगका सोम शब्द करते हुए कलशमें जाता है ।

इस प्रकार सोमका वर्णन इस अध्यायमें है । इस वर्णनमें देवताओंका जो गुण वर्णन है, उन्हें साधक अपने अन्दर लावें और बढ़ावें और देवत्व प्राप्त करके यशस्वी बनें ।

### सुभाषित

१ विश्वानि सांभगा अभि असृग्रं [ ८३० ] - सब सौभाग्य - धन - प्राप्त करनेके लिए वे आगे जाते हैं ।

२ वाजिनः, पुरु दुरिता विघ्नन्तः, तोकाय सु-गाः

अर्घतः त्मना कृण्वन्तः [ ८३१ ] - बल बढ़ानेवाले और बहुतसे पापोंका नाश करनेवाले पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम गाय व घोड़े मिलें इसलिए अपने आप यत्न करते हैं ।

३ गवे अस्मभ्यं वरिवः इडां कृण्वन्तः [ ८३२ ] - गायोंके लिए और हमारे लिए श्रेष्ठ धन और अन्न प्राप्त करनेके लिए यत्न करते हैं ।

४ मनौ अधि पवमानः राजा मेधाभिः अन्तरिक्षेण यातवे ईयते [ ८३३ ] - सन्तुष्टोंमें शृद्ध होनेवाला राजा अपनी बुद्धिसे उच्च मार्गसे जानेकी कोशिश करता है ।

५ देववीतये सहः वर्चसे नः आ भर [ ८३४ ] - देवत्व प्राप्त करनेके लिए शत्रुको हरानेकी शक्ति हमारे तेज बढ़ानेके लिए हमें भरपूर दे ।

६ शातग्विनं गवां पोषं, स्वद्वयं भगस्ति नः आ वह [ ८३५ ] - सौ गायोंसे युक्त, गायका पोषण करनेवाले तथा उत्तम घोड़ोंवाले भाग्य हमें दे ।

७ नृम्णानि विध्रतं चारुं त्वा सुकृत्यया ईमहे [ ८३६ ] - अनेक धनोंके धारण करनेवाले सुन्दर ऐसे तुझे उत्तम कर्म करके प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं ।

८ संवृक्त-धृष्णं उक्थ्यं महामाद्वितं मदं शतं पुरः मरुक्षिणं [ ८३७ ] - जिसने अपने प्रभावी शत्रु नष्ट किए हैं ऐसे प्रशंसनीय और अनेक महत्वके कार्य करनेवाले, आनन्द देनेवाले, शत्रुके सैकड़ों नगरोंको तोड़नेवाले वीरसे हम धन मांगते हैं ।

९ हे सुकृतो ! रयिः अभि अयत् त्वा राजानं अद्यथी आभरत् [ ८३८ ] - हे उत्तम कर्म करनेवाले ! धनके पास जानेवाले तेरे समान राजाको कर्म करनेमें दुःख न माननेवाले मनुष्य लाये हैं ।

१० विचर्षणिः, अभिष्टिकृत्, इन्द्रियं हिन्वानः, ज्यायः महित्वं आनशे [ ८३९ ] - विशेष ज्ञानी और इष्टकी सिद्धि करनेवाला अपनी शक्तिको प्रयोगमें लाकर श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है ।

११ ऋतस्य गोपां, विश्वस्मै स्वर्दशे साधारणं भरत् [ ८४० ] - सत्यके संरक्षण करनेवाले, अपनी दृष्टिसे देखनेवाले, सबोंके बीचमें साधारण तौरसे रहनेवाले तेज हमें प्राप्त हों ।

१२ जनाय वरिवः ऊर्जं कृधि [ ८४२ ] - लोगोंमें श्रेष्ठ बल पैदा कर ।

१३ वाजिभिः युतानः पुनानः हितः [ ८४३ ] -



अनेक शक्तियोंसे तेजस्वी, स्वच्छ तथा निर्दोष रहनेवाला ही हितकारक होता है ।

१४ काविः गृहपतिः युवा अग्निः समिध्यते [८४४] - बूरवर्षी, घरका स्वामी, तरुण, आगे रहनेवाला प्रज्वलित किया जाता है, अधिक तेजस्वी किया आता है ।

१५ यः सपर्याति तस्य प्राविता भव [८४५] - जो तेरी पूजा करता है, उसका तू रक्षक हो ।

१६ यः अग्निं आ विवासाति तस्मै मृडय [८४६] - जो अग्निकी आराधना करता है उसे सुखी कर ।

१७ पूत-दक्षं मित्रं रिशादसं वरुणं हुवे, घृताचीं धियं साधन्ता [८४७] - पवित्र बलसे युक्त मित्र और शत्रुओं दूर करनेवाले वरुणको मैं सहायताके लिए बुलाता हूँ । वे घृत अर्थात् पौष्टिक पदार्थ प्राप्त करनेवाली बुद्धिको बढ़ाते हैं । पवित्र कार्य करनेवाले बल और शत्रुको दूर करनेके सामर्थ्य जहाँ होते हैं, वहाँ पोषण करनेवाले पदार्थ भी रहते हैं ।

१८ ऋतावृधौ ऋतस्पृशौ ऋतेन बृहन्तं ऋतुं आशाथे [८४८] - सत्य बढ़ानेवाले, सत्यको स्पर्श करनेवाले सत्यसे ही महान् कार्य करते हैं ।

१९ कवी तुविजाता उरुक्षया अपसं बलं दधाते [८४९] - अनेक कार्य करनेवाले, अनेक स्थानोंमें रहनेवाले, उत्तम कार्य करनेके बलको धारण करते हैं ।

२० मन्द्रू समान वर्चसा अबिभ्युषा संजग्मानः [८५०] - आनन्दित और तेजस्वी वीर न डरनेवाले वीरके साथ मिल गया है ।

२१ वीडु आ रुजतनुभिः वह्निभिः गुहा उस्त्रियाः अन्वविन्दः [८५१] - शत्रुके मजबूत किलोंको तोड़नेवाले तेजस्वी वीरोंने शत्रुओं द्वारा चुराकर ले जाई गई और गुहामें छिपाकर रखी गई गायोंको प्राप्त किया ।

२२ ता पुराकृतं विश्वं इत् पप्ने, न मर्धतः [८५२] - उनके द्वारा पहले किए गए सब पराक्रमोंकी स्तुति होती है, वे दुःख नहीं देते ।

२३ ता उग्रा विघनिना हवामहे [८५३] - वे बलवान् वीर शत्रुके नाश करनेवाले हैं, उनको हम अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२४ ईदृशे नः मृडातः [८५४] - इस प्रकारके इस संग्राममें हमें वे सुखी करते हैं ।

२५ आर्या वृत्राणि हथः [८५५] - आर्योंके कल्याणके लिए तुम शत्रुओंको मारो ।

२६ सत्पती दासानि हथः [८५५] - तुम सज्जनोंके पालन करनेवाले हो, इसलिए नीचोंको मारकर दूर करो ।

२७ विश्वाः द्विपः अप हथः [८५५] - सब द्वेष करनेवाले शत्रुओंका नाश करो ।

२८ वाचं वर्धय [८६१] - वाङ्मयका संवर्धन कर ।

२९ पुरन्धि जनय [८६१] - बहुतसे उत्तम कर्म करनेमें समर्थ बुद्धिको उत्पन्न कर ।

३० हे वृषन् ! वृषण्या महिना श्वसा विश्वा आ पप्राथ [८६३] - हे बलवान् वीर ! सामर्थ्ययुक्त माहात्म्यसे और बलसे तू सब कार्य पूर्ण करता है ।

३१ हे शविष्ठ मघवन् वज्रिन् ! गोमति व्रजे चित्राभिः ऊतिभिः नः अव [८६३] - हे बलवान् धनवान् वज्रधारी वीर ! गायोंसे भरी हुई गौशालामें विलक्षण प्रकारके संरक्षणके साधनोंसे हमारा रक्षण कर ।

३२ हे विचर्षणे मघवन् ! धृषत् पिशंगरूपं गोमन्तं वाजं मधु ईमहे [८६६] - हे ज्ञानी और धनवान् इन्द्र ! तेरे पाससे शत्रुके नाश करनेवाले, सोनेके समान चमकनेवाले, गायोंके साथ रहनेवाले धन शीघ्र प्राप्त हों, ऐसी हम इच्छा करते हैं ।

३३ तरणिः युजा पुरन्ध्या वाजं सिषासति [८६७] - दुःखसे पार हो जानेवाला वीर, विशाल और उत्तम बुद्धिसे बल प्राप्त करनेकी इच्छा करता है ।

३४ द्रविणोदेषु दु-स्तुतिः नः शस्यते [८६८] - धनोंके दान करनेवालोंकी निन्दा करना अच्छा नहीं ।

३५ रयिः न नशत् [८६८] - उस निन्दकको धन नहीं मिलता ।

३६ मावते देष्णं तुभ्यं सुशक्तिः [८६८] - मुझ जँसोंको देने योग्य धनको तुझसे शक्तिशाली ही प्राप्त कर सकते हैं ।

३७ धेनवः गावः मिमान्ति [८६९] - दुधार गायें बूध बुहनेके समय रंभाती हैं ।

३८ ब्रह्मीः ऋतस्य यद्वीः मातरः दिवः शिशुं मर्जयन्ति [८७०] - ज्ञानी सत्यकी बड़ी मातायें एक दिनके बच्चेको नहलाती हैं ।

३९ रायः अस्मभ्यं विश्वतः आ पत्रस्व [८७१] - धन हमें चारों ओरसे लाकर दे ।

४० वाचः-पतिः विश्वस्य ओजसः ईशानः मखस्यते [८७३] - वाणीका स्वामी-विद्वान्-सब सामर्थ्योंका स्वामी हो तो पूज्य होता है ।



४१ हे ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं विततं [ ८७५ ]- हे ज्ञानके पति - हे ज्ञानी ! तेरे पवित्र कार्य सब जगह फैले हुए हैं ।

४२ अतस्तनूः आमः तत् न अश्नुते [ ८७५ ]- जिसने तप नहीं किया ऐसे अपक्व शरीरवालेको सुख नहीं मिल सकता ।

४३ श्रुतासः इत् तत् समाशते [ ८७५ ]- जो परिपक्व होते हैं उन्हें ही वह सुख मिल सकता है ।

४४ तपो पवित्रं दिवः पदे विततं [ ८७६ ]- शत्रुको ताप देनेवाले वीरोंका वह पवित्र स्थान छलोकमें फैला हुआ है ।

४५ दिवः पृष्ठं तेजसा अधिरोहन्ति [ ८७६ ]- वे [ शत्रुको कष्ट देनेवाले ] छलोककी पीठ पर अपने तेजसे चढ़कर बैठते हैं ।

४६ उपसः पृश्निः अग्रियः अरुरुचत् [ ८७७ ]- उषःकालके बाद सूर्य आगे होकर चमकने लगता है ।

४७ उक्षा भुवनेषु मिमेति वाजयुः [ ८७७ ]- मेघ पृथ्वी पर बरसात गिराता है और अन्न उत्पन्न करता है ।

४८ मंहिष्ठाय ऋतावने बृहते शुक्रशोचिषे प्रगायत

[ ८७८ ]- जो श्रेष्ठ, सत्यनिष्ठ और महान् तेजस्वी है उसका वर्णन कर ।

४९ मघवा धीरवत् यशः आ वंसते [ ८७९ ]- धनवान् इन्द्र पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाला यश देता है ।

५० ते वृषणं पृथु सासहिं लोककृत्तुं मदं गृणीमसि [ ८८० ]- बलवर्धक युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाले, लोगोंका हित करनेवाले तेरे उत्साहकी हम प्रशंसा करते हैं ।

५१ ते तत् पूर्वथा अद्य उक्थिनः अनुस्तुवन्ति [ ८८२ ]- तेरे उस बलकी पहलेके समान आज भी स्तोता स्तुति करते हैं ।

५२ सुवीर्यस्य गोमतः रायः पूर्धि [ ८८३ ]- उत्तम श्रेष्ठ पुत्रोंसे युक्त और गायोंसे युक्त धनसे हमें पूर्ण कर ।

५३ ऋतस्य पिध्युषीं चिकित्विन् मनसं धियं [ ८८४ ]- सत्यका पोषण करनेवाली, मनको शुद्ध करनेवाली शुभ बुद्धि दे ।

५४ अस्य पुरुणि पौंस्या सिषासन्तः वनामहे [ ८८५ ]- इसके बहुतसे पराक्रमके कार्योंका वर्णन हम भक्तिसे करते हैं ।

## चतुर्थाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                            | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|---------------------------------|-------------|---------|
|             |              | ( १ )                           |             |         |
| ८३०         | ९।३।२।१      | जमदग्निभर्गिवः                  | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ८३१         | ९।३।२।२      | जमदग्निभर्गिवः                  | "           | "       |
| ८३२         | ९।३।२।३      | जमदग्निभर्गिवः                  | "           | "       |
| ८३३         | ९।३।५।२।६    | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिवो वा | "           | "       |
| ८३४         | ९।३।५।३।८    | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिवो वा | "           | "       |
| ८३५         | ९।३।५।३।७    | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभर्गिवो वा | "           | "       |
| ८३६         | ९।४।८।१      | कविभर्गिवः                      | "           | "       |
| ८३७         | ९।४।८।२      | कविभर्गिवः                      | "           | "       |
| ८३८         | ९।४।८।३      | कविभर्गिवः                      | "           | "       |
| ८३९         | ९।४।८।५      | कविभर्गिवः                      | "           | "       |
| ८४०         | ९।४।८।४      | कविभर्गिवः                      | "           | "       |
| ८४१         | ९।६।४।२।३    | कश्यपो मारीचः                   | "           | "       |
| ८४२         | ९।६।४।२।४    | कश्यपो मारीचः                   | "           | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                    | देवता       | छन्दः                                     |
|-------------|--------------|-------------------------|-------------|---|
| ८४३         | ९।६५।१५      | कश्यपो मारीचः           | पवमानः सोमः | गायत्री                                   |
| ( २ )       |              |                         |             |   |
| ८४४         | १।१२।६       | मेघातिथिः काण्वः        | अग्निः      | "   |
| ८४५         | १।१२।८       | मेघातिथिः काण्वः        | "           | "   |
| ८४६         | १।१२।९       | मेघातिथिः काण्वः        | "           | "   |
| ८४७         | १।१।७        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | मित्रावरुणौ | "   |
| ८४८         | १।१।८        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | "           | "   |
| ८४९         | १।१।९        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | "           | "   |
| ८५०         | १।६।७        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः     | "   |
| ८५१         | १।६।४        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | मरुतः       | "   |
| ८५२         | १।६।५        | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः | इन्द्रः     | "   |
| ८५३         | ६।६०।४       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः   | इन्द्राग्नी | "   |
| ८५४         | ६।६०।५       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः   | "           | "   |
| ८५५         | ६।६०।६       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः   | "           | "   |
| ( ३ )       |              |                         |             |   |
| ८५६         | ९।१०७।१४     | सप्तर्षयः               | पवमानः सोमः | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| ८५७         | ९।१०७।१५     | सप्तर्षयः               | "           | "   |
| ८५८         | ९।१०७।१६     | सप्तर्षयः               | "           | द्विपदा विराट्                            |
| ८५९         | ९।१०७।१७     | पराशरः शाक्यः           | "           | त्रिष्टुप्                                |
| ८६०         | ९।१०७।१८     | पराशरः शाक्यः           | "           | "   |
| ८६१         | ९।१०७।१९     | पराशरः शाक्यः           | "           | "   |
| ( ४ )       |              |                         |             |   |
| ८६२         | ८।७०।५       | पुरुहन्मा आंगिरसः       | इन्द्रः     | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| ८६३         | ८।७०।६       | पुरुहन्मा आंगिरसः       | "           | "   |
| ८६४         | ८।३३।१       | मेघातिथिः काण्वः        | "           | बृहती                                     |
| ८६५         | ८।३३।२       | मेघातिथिः काण्वः        | "           | "   |
| ८६६         | ८।३३।३       | मेघातिथिः काण्वः        | "           | "   |
| ८६७         | ७।३२।२०      | वसिष्ठो मित्रावरुणिः    | "           | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| ८६८         | ७।३२।२१      | वसिष्ठो मित्रावरुणिः    | "           | "   |
| ( ५ )       |              |                         |             |   |
| ८६९         | ९।३३।४       | त्रित आप्त्यः           | पवमानः सोमः | गायत्री                                   |
| ८७०         | ९।३३।५       | त्रित आप्त्यः           | "           | "   |
| ८७१         | ९।३३।६       | त्रित आप्त्यः           | "           | "   |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः           | देवता       | छन्दः     |
|-------------|--------------|----------------|-------------|-----------|
| ८७२         | ९।१०१।४      | ययातिर्नाहुषः  | पवमानः सोमः | अनुष्टुप् |
| ८७३         | ९।१०१।५      | ययातिर्नाहुषः  | "           | "         |
| ८७४         | ९।१०१।६      | ययातिर्नाहुषः  | "           | "         |
| ८७५         | ९।८३।१       | पवित्र आंगिरसः | "           | जगती      |
| ८७६         | ९।८३।२       | पवित्र आंगिरसः | "           | "         |
| ८७७         | ९।८३।३       | पवित्र आंगिरसः | "           | "         |

( ६ )

|     |          |                                |         |   |
|-----|----------|--------------------------------|---------|---|
| ८७८ | ८।१०३।८  | सोमरिः काण्वः                  | अग्निः  | प्रगाथः ( विषमा<br>ककुप्, सभा सतो बृहती ) |
| ८७९ | ८।१०३।९  | सोमरिः काण्वः                  | "       | "   |
| ८८० | ८।१०३।१० | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | इन्द्रः | उष्णिक्                                   |
| ८८१ | ८।१५।५   | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | "       | "   |
| ८८२ | ८।१५।६   | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ | "       | "   |
| ८८३ | ८।१५।७   | तिरश्चोरांगिरसौ                | "       | अनुष्टुप्                                 |
| ८८४ | ८।१५।८   | तिरश्चोरांगिरसौ                | "       | "   |
| ८८५ | ८।१५।९   | तिरश्चोरांगिरसौ                | "       | "   |



अथ पंचमोऽध्यायः ।

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥

[ १ ]

( १-२२ ) १ अकृष्ठा माषाः; २ अमहीषुरांगिरसः; ३ मेघपातिथिः काण्वः; ४, १२ बृहन्मतिरांगिरसः, ५ भृगुर्वा-  
हणिर्जम्बदग्निर्भागवो वा; ६ सुतंभर आत्रेयः; ७ गुत्समदः शौनकः; ८, २१ गोतमो राहूगणः; ९, १३ वसिष्ठो मैत्रा  
वरुणिः; १० बृद्धच्युत आगस्त्यः; ११ सप्तर्षयः ( भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः;  
४ अत्रिभौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जम्बदग्निर्भागवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ) १४ रेभः काश्यपः;  
१५ पुरुहन्मा आंगिरसः; १६ असितः काश्यपो देवलो वा; १७ ( १ ) शक्तिर्वासिष्ठः, १७ ( २ )  
उरुरांगिरसः; १८ अग्निश्चाक्षुषः; १९ प्रतर्दतो दैवोदासिः; २० प्रयोगो भार्गवः; २१ पावकोऽग्निर्बाह्-  
स्पत्यो वा, गृहपतिर्वसिष्ठो सहसः पुत्रावन्यतरो वा; २२ ॥ १-५; १०-१२, १६-१९ पवमानः  
सोमः; ६, २० अग्निः; ७ मित्रावरुणौ; ८, १३-१५, २१ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी; २२ ॥ १, ६  
जगती; २-५, ७-१०, १२; १६, २० गायत्री; ११, १५ प्रगाथः= ( विषमा बृहती,  
समा सतोबृहती ); १३ विराट्; १४ ( १ ) अति जगती, १४ ( २-३ ) उपरिष्ठाद्  
बृहती; १७ काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप समा सतोबृहती ); १८ उष्णिक्  
१९ त्रिष्टुप्; २१-अनष्टप ॥

८८६ प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।  
 प्रान्तरिक्षात्स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८६।४ )

८८७ उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।  
 यद्दी पवित्र अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८६।६ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ८८६ ] हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! (ते) तेरी (आश्विनीः धेनवः) देगवान् बुधार् गायें (दिव्याः) विष्णु हैं, (पयसा) अपने बूधसे (धरीमणि) कलशमें (प्र अस्वधन्) पहुँचती हैं। ऋषिपाण) हे ऋषिके द्वारा निकाले गए सोमरस ! (ये वेधसः त्वा मृजन्ति) जो जानी ऋत्विज तुझे छानते हैं (ते) वे ऋत्विज (अन्तरिक्षात्) ऊपरके बर्तनसे (ऋगाविरीः अस्वधत्) स्थिर धाराओंसे नीचेके कलशमें तुझे पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

[ ८८७ ] ( पवमानस्य ध्रुवस्य सतः ) छाने जानेवाले स्थिर सोमकी ( रश्मयः केतवः उभयतः परियन्ति ) किरणें दोनों ही तरफसे फैलती हैं, ( यदि ) जब ( पवित्रे हरिः अधिमृज्यते ) छलनीसे हरे रंगका सोम छाना जाता है, उस समय ( सत्ता ) स्थिर रहनेकी इच्छा करनेवाला सोम ( योनौ कलशेषु निषीदति ) कलशरूपी बर्तनमें जाकर रहता है ॥ २ ॥

✻



८८८ विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।

व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥ १ (वी) ॥

[ धा० ३५ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।८६।५ )

८८९ पवमानो अजीजनदिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१६ )

८९० पवमान रसस्तव मदो राजन्नुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।१८ )

८९१ पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वस्वदृशे ॥ ३ ॥ २ (पा) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६१।१७ )

८९२ प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।४१।१ )

८९३ सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४१।२ )

८९४ शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।४१।३ )

८९५ आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।४१।४ )

[ ८८८ ] ( विश्वचक्षः ) सब जगह देखनेवाले सोम ! ( प्रभोः सतः ते ) प्रभुत्वका इच्छा करनेवाले तेरी ( ऋभ्वसः केतवः ) बड़ी बड़ी किरणें ( विश्वा धामानि परियन्ति ) सब जगह पहुंचती हैं, तब हे ( सोम ) सोम ! ( व्यानशी ) व्यापक स्वभावका तू ( धर्मणा पवसे ) अपने स्वभाव धर्मसे शुद्ध होता है, और ( विश्वस्य भुवनस्य पतिः ) सब भुवनोंका स्वामी तू ( राजसि ) चमकता है ॥ ३ ॥

[ ८८९ ] ( पवमानः ) पवित्र किया जानेवाला सोम ( बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) महान् वैश्वानर नामके तेजको ( दिवः चित्रं तन्यतुं न ) धूलोकमें विलक्षण तेजस्वी बिजलीके समान ( अजीजनत् ) उत्पन्न करता है, वह चमकता है ॥ १ ॥

[ ८९० ] हे ( राजन् पवमान ) तेजस्वी शुद्ध होनेवाले सोम ! ( तव मदः ) तेरा उत्साह बढ़ानेवाला तथा ( अ-दुच्छुनः रसः ) राक्षसोंको न मिलनेवाला रस ( अव्यं वारं वि अर्षति ) बकरीके बालोंकी छलनीसे नीचे बर्तनमें पड़ता है ॥ २ ॥

[ ८९१ ] हे सोम ! ( पवमानस्य ते ) शुद्ध किए जानेवाले ऐसे तेरा ( दक्षः द्युमान् रसः ) बलवान् और तेजस्वी रस ( विराजति ) चमकता है ( विश्वं स्वः ज्योतिः दृशे ) सर्व व्यापक तेरी ज्योति यहां दीखती है ॥ ३ ॥

[ ८९२ ] ( गावः न ) गायोंके समान ( भूर्णयः ) शीघ्र जानेवाला ( त्वेषाः अयासः ) तेजस्वी गतिमान् ( यत् ) जो सोम ( कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः ) काली चमड़ी [ छाल ] को बुर करके ( प्र अक्रमुः ) बर्तनमें गिरता है, उसकी प्रशंसा होती है ॥ १ ॥

[ ८९३ ] ( सु-वितस्य ) सुखदाई सोमकी ( दुराय्यं अति सेतुं ) दुष्प्राप्य बन्धनको बुर करनेके लिए हम ( वनामहे ) प्रार्थना करते हैं, ( अ-व्रतं दस्युं साह्याम ) सत्कर्म न करनेवाले शत्रुको हम हरायें ॥ २ ॥

[ ८९४ ] ( वृष्टेः स्वनः इव ) वृष्टिके शब्दके समान ( पवमानस्य ) शुद्ध किए जानेवाले सोमका शब्द ( श्रूयते ) सुना जाता है । उस समय ( शुष्मिणः विद्युतः ) बलशाली सोमकी किरणें ( दिवि चरन्ति ) आकाशमें संचार करती हैं ॥ ३ ॥

[ ८९५ ] हे ( इन्दो सोम ) रसरूप सोम ! तू ( महीं इषं ) बहुतसा अन्न ( गोमत् ) गायोंके साथ ( हिरण्यवत् ) सोनेके साथ ( अश्ववत् ) घोड़ोंके साथ और ( वीरवत् ) पुत्रपौत्रोंके साथ हमें ( आ पवस्व ) दे ॥ ४ ॥



८९६ पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पूण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।४।१५ )

८९७ परिणः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ ३ ( भी ) ॥  
[ धा० ३५ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।४।१६ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

८९८ आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३९।१ )

८९९ परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३९।२ )

९०० अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।३९।४ )

९०१ सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३९।३ )

९०२ आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३९।५ )

९०३ समीचीना अनूषत हरिंहिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्द्रमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥ ४ ( जी ) ॥  
[ धा० ३२ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।३९।६ )

[ ८९६ ] हे ( विश्व-चर्षणे ) सबको देखनेवाले सोम ! ( पवस्व ) शुद्ध हो, और अपने इस रससे ( मही रोदसी ) इन महान् ब्रूलोक और पृथ्वीलोकको ( सूर्यः रश्मिभिः उषाः न ) जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे उपःकालके बाव सब विश्वको भर देता है उसी प्रकार ( आ पूण ) भर दे ॥ ५ ॥

[ ८९७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( विष्टपं रसा इव ) इस भूलोकको जैसे पानी घेरे हुए है, उसी प्रकार अपनी ( शर्मयन्त्या धारया ) सुखदायक धारासे ( नः विश्वतः परि सर ) हमें चारों ओरसे घेर ले ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ८९८ ] हे ( बृहन्मते ) बुद्धिमान् सोम ! ( प्रियेण धाम्ना ) अपने प्रिय शरीरसे-धारासे ( आशु परि अर्ष ) शीघ्र आ, ( यत्र देवाः ) जहां देव रहते हैं ( इति ब्रुवन् ) ऐसा कहते हैं, उस यज्ञमें आ ॥ १ ॥

[ ८९९ ] ( अनिष्कृतं परिष्कृण्वन् ) संस्काररहित स्थातको संस्कारयुक्त करते हुए ( जनाय इषः यातयन् ) लोगोंको अन्न देनेके लिए ( दिवः वृष्टिं परि स्रव ) ब्रूलोकसे वर्षा कर ॥ २ ॥

[ ९०० ] ( यः दिवः परि रघुयामा ) जो ब्रूलोकके ऊपर धीरे धीरे चलता है, ( सः अयं ) वह यह सोम ( पवित्रे आ ) छलनीसे छाना जाता है, और ( सिन्धोः ऊर्मा वि अक्षरन् ) पानीके लहरमें टपकता है ॥ ३ ॥

[ ९०१ ] ( सुतः त्विषिं दधानः ) सोमरस तेजस्विता धारण करके ( विचक्षाणः विरोचयन् ) सबका निरीक्षण करके सबको प्रकाशमान् करते हुए ( ओजसा ) वेगसे ( पवित्रे आ एति ) छलनीसे शीघ्र छाना जाता है ॥ ४ ॥

[ ९०२ ] ( सुतः ) रस निकालनेके बाद ( परावतः अथो अर्वावतः ) दूरसे और पाससे ( आ विवासन् ) शुद्ध करके ( इन्द्राय ) इन्द्रको ( मधु ) यह मधुर रस ( सिच्यते ) दिया जाता है ॥ ५ ॥

[ ९०३ ] ( समीचीनाः ) स्तुति करनेवाले एक जगह संगठित होकर ( अनूषत ) स्तुति करते हैं, ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रको पीनेको देनेके लिए ( हरिं इन्द्रं ) हरे रंगके सोमको ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पत्थरोंसे कूटते हैं ॥ ६ ॥



९०४ <sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१ )

९०५ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः । विश्वा वसून्या विशा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६५।२ )

९०६ <sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥ ५ ( ह ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६५।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

९०७ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।

<sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।१ )

९०८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दं चिह्नश्रियाणं वनेवने ।

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स जायसे मध्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।६ )

[ ९०४ ] ( उस्रयः जामयः स्वसारः ) सब जगह जानेवाली, आपसमें प्रेमसे रहनेवाली बहिनें - अंगुलियां ( मही-युवः ) महान् कार्य - सोमरस निकालनेका कार्य करती हैं, और ( सूरं पतिं ) श्रेष्ठ स्वामी ऐसे ( महान् इन्दुं ) महान् सोमरसको ( हिन्वन्ति ) निकालती हैं, सोमरसको निचोडती हैं ॥ १ ॥

[ ९०५ ] हे ( रुचा रुचा ) तेजसे ( देव पवमान ) चमकनेवाले तथा शुद्ध होनेवाले सोम ! ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंको देनेके लिए निचोडा गया तू ( विश्वा वसूनि आ विशा ) सब धन हमें दे, सब धनोंमें तू प्रविष्ट होकर रह ॥ २ ॥

[ ९०६ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( सुष्टुतिं वृष्टिं ) उत्तम स्तुतिके योग्य वर्षाको ( देवेभ्यः दुवः ) देवताओंसे प्राप्त होनेवाले आशीर्वादके समान ( आ पवस्व ) हमारे पास पहुंचा, ( इषे संयतं ) अन्न प्राप्त हो इसके लिए वर्षा कर ॥ ५ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ९०७ ] ( जनस्य गोपा ) लोगोंका रक्षक ( जागृविः सुदक्षः ) जागृत और उत्तम कर्ममें कुशल ( अग्निः ) अग्नि ( नव्यसे सुविताय अजनिष्ट ) नये प्रकारसे लोगोंका कल्याण हो इसलिए प्रकट हुआ है, उसके बाद ( घृत-प्रतीकः ) घृतसे प्रज्वलित किया गया ( बृहता दिविस्पृशा ) महान् झुकोकको स्पर्श करनेवाले तेजसे युक्त ( शुचिः ) शुद्धता करनेवाला अग्नि ( भरतेभ्यः ) यज्ञ करनेवाले लोगोंके लिए ( द्युमत् विभाति ) प्रकाशमान होकर चमकता है ॥ १ ॥

[ ९०८ ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( अंगिरसः ) अंगिरस ऋषियोंने ( गुहा-हितं ) गुहामें रखे हुए ( वनेवने शिश्रियाणं ) प्रत्येक वृक्षके आश्रयमें रहनेवाले ( त्वां अन्वविन्दन् ) तुझे अग्निको प्राप्त किया । ( महत् सहः सः ) महान् बलसे युक्त तू अग्नि ( मध्यमानः जायसे ) मंथन करके पैदा किया जाता है । हे ( अंगिरः ) अंगोंमें रहनेवाले अग्ने ! ( त्वां सहसः पुत्रं आहुः ) तुझे सामर्थ्यका पुत्र कहते हैं ॥ २ ॥



- ९०९ यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।  
इन्द्रेण देवैः सरथस्य बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ६ ( वे ) ॥  
[ धा० ३० । उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. १।११२ )
- ९१० अयं वा मित्रावरुणा सुतः सोम क्रतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. २।४१४ )
- ९११ राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आशाते ॥ २ ॥ ( ऋ. २।४१५ )
- ९१२ ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥ ७ ( पि ) ॥  
[ धा० १५ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. २।४१६ )
- ९१३ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कृतः । जघान नवतीनव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८४१३ )
- ९१४ इच्छन्नश्च यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८४१४ )
- ९१५ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ८ ( ठी ) ॥  
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।८४१५ )

[ ९०९ ] ( नरः ) ऋत्विज लोग ( यज्ञस्य केतुं ) यज्ञके ध्वज, ( पुरोहितं ) आगे रखे गए ( देवैः सरथं ) देवोंके साथ एक रथपर बैठनेवाले ( प्रथमं अग्निं ) मुख्य अग्निको ( त्रि-सधस्थे ) तीन जगह ( सं इन्धते ) अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं, उसके बाव ( सुक्रतुः होता सः ) उत्तम कर्म करनेवाला तथा देवोंके लिए हवन करनेवाला वह अग्नि ( बर्हिषि ) अपने स्थानमें ( यजथाय ) यज्ञ करनेके लिए ( निषीदत् ) बैठता है ॥ ३ ॥

[ ९१० ] हे ( क्रतावृधा मित्रावरुणा ) यज्ञको बढ़ानेवाले मित्र और वरुण ! ( वां ) तुम्हारे लिए ( अयं सोमः सुतः ) यह सोम निकालकर और छानकर रखा गया है, इसलिए ( इह ) यहां इस यज्ञमें ( मम इत् हवं श्रुतं ) मेरी ही प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥

[ ९११ ] हे ( राजानौ अनभिद्रुहा ) तेजस्वी और द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण ! ( ध्रुवे उत्तमे सहस्र-स्थूणे सदसि ) स्थिर, श्रेष्ठ और हजार खम्भोंवाले इस यज्ञ मण्डपमें ( आशाते ) आकर बैठो ॥ २ ॥

[ ९१२ ] ( सम्राजा ) सम्राट् ( घृतासुती ) घृतरूपी अन्न खानेवाले ( आदित्या ) अवितिके पुत्र ( दानुनः पतिः ) धनके स्वामी ऐसे ( ता ) वे मित्र और वरुण ( अनवह्वरं ) कुटिलतासे रहित यजमानकी ( सचेते ) सहायता करते हैं ॥ ३ ॥

[ ९१३ ] ( अ-प्रति-ष्कृतः ) जिसका कोई विरोधी नहीं ऐसे ( इन्द्रः ) इन्द्रने ( दधीचः अस्थभिः ) दधीचिको हड्डियोंसे ( नवतीनव ) नित्यानव ( वृत्राणि जघान ) घेरनेवाले शत्रुओंको मारा ॥ १ ॥

[ ९१४ ] ( पर्वतेषु अपश्रितं ) पर्वतोंमें रखा हुआ ( अश्वस्य यत् शिरः ) घोड़ेका जो सिर है, उसे ( इच्छन् ) प्राप्त करनेकी इन्द्रने इच्छा की, उस इन्द्रने ( शर्यणावति तत् विदत् ) शर्यणावती सरोवरके पास उसे प्राप्त किया और उससे असुरोंका संहार किया ॥ २ ॥

[ ९१५ ] ( अत्राह ) यहां ( गोः चन्द्रमसः गृहे ) गमन करनेवाले चन्द्रमाके मण्डलमें ( त्वष्टुः अपीच्यं नाम ) सूर्यकी गुप्त किरणें रात्रीके समय प्रकाशित होती हैं ( इत्था अमन्वत ) ऐसा माना जाता है ॥ ३ ॥



९१६ इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिर्वाजनि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।९।१ )

९१७ शृणुतं जरितुर्देवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।९।२ )

९१८ मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिश्स्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥ ९ ( चा ) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।९।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

९१९ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२५।१ )

९२० सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२५।३ )

९२१ पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिकदत् । धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥ १० ( ख ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।२५।२ )

९२२ तवाहंसोम शरणं सख्य इन्दो दिवेदिवे ।

पुरुणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीरति तां इहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१९ )

[ ९१६ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( इयं वां पूर्व्य-स्तुतिः ) यह तुम दोनोंकी अपूर्व स्तुति ( अस्य वामस्य मन्मनः ) इस सुन्दर और मननीय विद्वान्से ( अभ्रात् वृष्टिः इव ) जिस प्रकार मेघसे वर्षा होती है, उसी प्रकार ( अजनि ) उत्पन्न हुई है ॥ १ ॥

[ ९१७ ] हे इन्द्राग्नी ! ( जरितुः हवं शृणुतं ) स्तोताकी प्रार्थना तुम सुनो, ( गिरः वनतं ) उसकी स्तुति सुनो ( ईशाना ) शासन करनेवाले तुम दोनों ( धियः पिप्यतं ) उसके कर्मोंका फल दो ॥ २ ॥

[ ९१८ ] ( नरा इन्द्राग्नी ) हे नेता स्वरूप इन्द्र और अग्ने ! ( नः ) हमें ( पापत्वाय मा रीरधतं ) पापके कामोंमें न लगाओ, ( अभिश्स्तये मा ) हिताके कामोंमें हमें युक्त मत करो, ( निदे नः मा ) और निदाके लिए भी हमें मत लगाओ ॥ १ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ९१९ ] हे ( हरे ) हरे रंगके सोम ! ( दक्ष-साधनः मदः ) बल व उत्साह बढ़ानेवाला तू ( देवेभ्यः मरुद्भ्यः ) देवों और मरुतोंके तथा ( वायवे ) वायुके ( पीतये पवस्व ) पीनेके लिए पवित्र हो ॥ १ ॥

[ ९२० ] ( वृषा कविः ) बलवर्धक ज्ञानी ( योनौ अधि ) अपने स्थान पर ( पवमानः प्रियः ) शुद्ध होनेके कारण प्रिय और ( अदाभ्यः ) न बचाया जानेवाला सोम ( देवैः संशोभते ) देवोंके साथ उत्तम प्रकारसे शोभित होता है ॥ २ ॥

[ ९२१ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( धिया हितः ) विचार कर अच्छी तरह रखा गया तू ( कनिकदत् ) शब्द करते हुए ( योनिं अभि आरुहः ) कलशमें गिरता है, ( धर्मणा वायुं आरुहः ) अपने गुणोंसे वायुको प्राप्त कर ॥ ३ ॥

[ ९२२ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रताके लिए ( अहं दिवे दिवे शरणं ) मैं प्रतिदिन यत्न करता हूँ, हे ( बभ्रो ) कान्तिमान् सोम ! ( पुरुणि मां ) बहुतसे राक्षस मुझे ( नि अव चरन्ति ) कष्ट देते हैं ( तान् परिधान् अति इहि ) उन शत्रुओंको नष्ट कर ॥ १ ॥



१२३ तवाहं नक्तमृत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।

घृणा तपन्तमति सूर्य परः शकुना इव पक्षिम

॥ २ ॥ ११ ( ति ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०।२० )

१२४ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

( ऋ. ९।४०।१ )

१२५ आ योनिमरुणो रुहद्मदिन्द्रो वृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४०।२ )

१२६ नू नो रयिं महामिन्द्रोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ १२ ( चा ) ॥

[ धा० १२ । उ० १९ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।४०।३ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१२७ पिवा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वी ॥ १ ॥

( ऋ. ७।२२।१ )

१२८ यस्ते मदा युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्च हंसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममन्तु ॥ २ ॥

( ऋ. ७।२२।२ )

[ १२३ ] हे ( बभ्रो ) भूरे रंगके सोम ! ( उत नक्तं उत दिवा ) रात अथवा दिन ( तव ऊधनि अहं ) तेरे पास मैं रहूँ, ( ते घृणा ) अपने तेजसे ( तपन्तं ) चमकनेवाले तुझे तथा ( परं सूर्य ) दूर चमकनेवाले सूर्यको ( शकुनाः इव अति पक्षिम ) पक्षीके समान हम देखते हैं ॥ २ ॥

[ १२४ ] ( पुनानः विचर्षणिः ) पवित्र होनेवाला निरीक्षक सोम ( विश्वा मृधः अक्रमीत् ) सब शत्रुओंको हराता है, उस ( विप्रं ) जानी सोमको ऋत्विज ( धीतिभिः शुम्भन्ति ) स्तुतियोंसे सुशोभित करते हैं ॥ १ ॥

[ १२५ ] ( अरुणः ) अरुण रंगका सोम ( योनिं आरुहत् ) कलशमें घुसता है, बादमें ( वृषा इन्द्रः ) बलवान् इन्द्र ( सुतं गमत् ) उस सोमरसके पास जाता है, और ( ध्रुवे सदसि ) स्थिर स्थानमें ( सीदतु ) रहता है ॥ २ ॥

[ १२६ ] ( इन्द्रो सोम ) हे सोमरस ! ( अस्मभ्यं ) हमें ( नु ) शीघ्र ही ( मह्यं सहस्रिणं रयिं ) महान् और अनेकों प्रकारके धन ( विश्वतः आ पवस्व ) चारों ओरसे लाकर दे ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १२७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( सोमं पिवा ) सोमरस पी, ( त्वा मदन्तु ) तुझे ये रस आनन्द देवें, हे ( हर्यश्च ) घोड़े पालनेवाले इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए ( सोतुः बाहुभ्यां ) सोमरस निकालनेवाली भुजाओं द्वारा ( सु-यतः आद्रिः ) पकड़ा हुआ पत्थर ( यं सुषाव ) जिस रसको निकालता है, वह रस ( अर्वा न ) घोड़ेके समान तुझे आनन्द देवे ॥ १ ॥

[ १२८ ] हे ( हर्यश्च इन्द्र ) हरि नामक घोड़े पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( ते युज्यः ) तेरे योग्य ( चारुः मदः ) उत्तम आनन्द देनेवाला ( यः अस्ति ) जो सोम है ( येन वृत्राणि ) जिसके उत्साहसे तू वृत्रोंको ( हंसि ) मारता है, हे ( प्रभूवसो ) बहुत धनवान् ! ( सः त्वा ममन्तु ) वह सोम तुझे आनन्द देवे ॥ २ ॥

१२ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



९२९ बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व

॥ ३ ॥ १३ (चा) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।२१।३ )

९३० विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

क्रत्व वर स्थेमन्यामुरीमुताग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९७।१० )

९३१ नेमिं नमन्ति चक्षसा मेघं विप्रा अभिस्वरे ।

सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्कभिः

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९७।१२ )

९३२ समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।

स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः

॥ ३ ॥ १४ (ची) ॥

[ धा० २२ । उ० १ स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९७।११ )

९३३ यो राजा चर्षणीनां याता रथेमिराभिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।१ )

[ ९२९ ] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (यां प्रशस्तिं वाचं) जिस स्तुतिरूप वाणीसे (वसिष्ठः ते अर्चति) वसिष्ठ तेरी अर्चना करता है, (इमां सु आ बोध) उस स्तुतिको तू उत्तम रीतिसे समझकर स्वीकार कर और (इमा ब्रह्म) इस ज्ञानको अथवा इस अन्नको (सधमादे जुषस्व) यज्ञशालामें सेवन कर ॥ ३ ॥

[ ९३० ] (विश्वाः पृतनाः) सब संग्राममें शत्रुको (अभिभूतरं इन्द्रं) पराजित करनेवाले इन्द्रकी (नरः सजूः ततक्षुः) सब लोग मिलकर स्तुति करते हैं । (राजसे जजनुः) इन्द्रका तेज बढ़ानेके लिए स्तोतागण उसका सामर्थ्य बढ़ाते हैं (क्रत्वे वरे स्थेमनि) अपने कर्तृत्वसे श्रेष्ठ स्थानोंमें रहनेवाले (आमुरिं) शत्रुको मारनेवाले (उग्रं ओजिष्ठं) वीर व महा बलिष्ठ (तरसं तरस्विनं) श्रेष्ठ और शीघ्रतासे सब काम करनेवाले इन्द्रकी सब स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ ९३१ ] (विप्राः अभि स्वरे) ऋत्विज महान् स्वरसे स्तोत्र कहते हुए (मेघं नेमिं चक्षसा नमन्ति) शक्तिमान् व्यापक इन्द्रको आंखसे देखकर ही पहले नमस्कार करते हैं । हे स्तुति करनेवालो ! (सु-दीतय अ-द्रुहः) उत्तम तेजस्वी और द्रोह न करनेवाले (वः) तुम (अपि) भी (तरस्विनः) शीघ्रतासे (कर्णे) इन्द्रके कानोंतक पहुंचे ऐसे स्वरसे (ऋक्कभिः सं) ऋक्षाओंके द्वारा उसकी स्तुति करो ॥ २ ॥

[ ९३२ ] (रेभासः) स्तुति करनेवाले ऋत्विज (सोमस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिए (इन्द्रं उ सम-स्वरन्) इन्द्रकी ही उत्तम रीतिसे मिलकर स्तुति करते हैं (यत्) जब (स्वः पतिः) स्वर्गका पालक इन्द्र (वृधे) यजमानको महान् करनेकी इच्छा करता है, उस समय (धृत-व्रतः) व्रतोंका आचरण करनेवाला इन्द्र (ओजसा अतिभिः सं) अपने सामर्थ्यसे व अपने संरक्षणके साधनोंसे (सं) युक्त होता है ॥ ३ ॥

[ ९३३ ] (यः चर्षणीनां राजा) जो मनुष्योंका राजा है, (रथेमिः याता) जो रथसे जानेवाला है, (आभि-गुः) जो आगे जानेवाला है, (विश्वासां पृतनानां तरुता) जो सब शत्रुओंसे भक्तको पार करानेवाला है, (यः वृत्रहा) जो शत्रुका नाश करनेवाला है, उस (ज्येष्ठं गृणे) श्रेष्ठ इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥



९३४ इन्द्रं तं शुम्भं पुरुहन्मन्त्रसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्तेन वज्रः प्रति धायि दशतो महां देवो न सूर्यः

॥ २ ॥ १५ ( चि ) ॥

[ धा० १७ । उ० १ । ख० ३ ] ( ऋ. ८।७०।२ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

९३५ परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योहितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।१ )

९३६ स सनुमातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।३ )

९३७ प्रप्र क्षयाय पन्थसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्षं पनिष्टये ॥ ३ ॥ १६ ( रि ) ॥

[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।९।२ )

९३८ त्वं ह्यारुह्य दैव्यं पवमानं जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०।१३ )

९३९ येना नवग्वा दध्यङ्गुपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत

॥ २ ॥ १७ ( पौ. ) ॥

[ धा० ११ । उ० ९ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।१०।१४ )

[ ९३४ ] ( पुरुहन्मन् ) हे अनेक शत्रुको मारनेवाले इन्द्रके उपासक ! ( अवसेतं इन्द्रं शुम्भं ) अपने संरक्षणके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ( यस्य विधर्तरि ) जिसकी संरक्षण शक्तिमें ( द्विता ) दोनों प्रकारकी शक्तियां हैं, विनाश और कृपा करनेकी दोनों प्रकारकी शक्तियां हैं, वह इन्द्र ( दर्शतः महान् वज्रः ) वर्षनीय और महान् वज्रको ( देवः सूर्यः न ) तेजस्वी सूर्यके समान ( हस्तेन प्रति धायि ) हाथमें धारण करता है ॥ २ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ९३५ ] ( कविः ) ज्ञानी ( कविक्रतुः ) बुद्धिसे कर्म करनेवाला ( नप्त्योः हितः ) पटले पर रखा गया, ( दिवः परिप्रिया वयांसि ) झूलोकेसे अति प्रिय पक्षीरूप पत्थरोंसे निकाला गया सोमरस ( स्वानैः ) रस निकालनेवाले अध्वर्युओंसे ( परि याति ) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

[ ९३६ ] ( शुचिः जातः ) शुद्ध हुआ हुआ ( महान् सः ) महान् वह सोम नामक ( सूनुः ) पुत्र ( मही ऋता-वृधा जाते मातरा ) महान् यज्ञको प्रकाशित करने-बढानेवाले-प्रसिद्ध माता धु और पृथ्वीको ( अरोचयत् ) प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[ ९३७ ] हे सोम ! ( प्र प्र क्षयाय ) तेरे निवासके लिए यत्न करनेवाले ( अद्रुहः ) द्रोह न करनेवाले और ( पन्थसे जनाय ) स्तुति करनेवाले मनुष्यके लिए ( वीति ) भक्षणके ( जुष्टः ) उपयोगमें लाया गया तू ( पनिष्टये अर्षं ) स्तुतिको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

[ ९३८ ] ( दैव्यं पवमानं ) दिव्य सोम ! ( द्युमत्तमः त्वं हि ) अत्यन्त तेजस्वी ऐसा तू ( अङ्ग ) शीघ्र ( घोषयन् ) घोषणा करके ( जनिमानि ) अपने दिव्य जन्मको लक्ष्यमें रखकर ( अमृतत्वाय ) अमरपनको प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ ९३९ ] ( नव-ग्वा दध्यङ्गु ) नौ गायोंका पोषण करनेवाला दध्यङ्ग ऋषि ( येन अपोर्णुते ) जिस सोमके द्वारा यज्ञका द्वार खोलता है, ( विप्रासः येन आपिरे ) यज्ञ करनेवाले विप्रोंने जिस सोमकी सहायतासे गायें प्राप्त कीं, ( देवानां सुम्ने ) देवोंके यज्ञसे सुख प्राप्त होनेपर ( चारुणः अमृतस्य श्रवांसि ) ओष्ठ अन्नकी सहायतासे मिलनेवाले अन्नको ( येन आशत ) जिस सोमकी सहायतासे यज्ञमात्र प्राप्त करते हैं, वह तू सोम देवोंको प्राप्त हो ॥ २ ॥



- ९४० सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥  
 ( ऋ. ९।१०६।१० )
- ९४१ धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने कीडन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥  
 ( ऋ. ९।१०६।११ )
- ९४२ असजि कलशाः अभि मीद्वान्ससिर्न वाजयुः ।  
 पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ ३ ॥ १८ ( फा ) ॥  
 [ धा० १०।३०२ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०६।१२ )
- ९४३ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।  
 जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०६।१३ )
- ९४४ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।  
 इयेनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०६।१४ )

[ ९४० ] ( पुनानः सोमः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( उर्मिणा ) अपनी धारासे ( अव्यं वारं विधावति ) भेड़के बगलोंकी छलनीसे नीचे पड़ता है । ( पवमानः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( वाचः अग्रे कनिक्रदत् ) स्तोत्र पाठके बाद शब्द करते हुए नीचेके बर्तनमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ९४१ ] ( वाजिनं ) बलवान् ( वने कीडन्तं ) जलमें मिलाया जानेवाला, ( अति अग्निं ) छलनीसे छाना जानेवाला सोम ( धीभिः मृजन्ति ) स्तोत्रोंकी सहायतासे ऋत्विजों द्वारा शुद्ध किया जाता है ( त्रिपृष्ठं ) तीन बर्तनोंमें रहनेवाले सोमरसकी ( मतयः अभि समस्वरन् ) स्तोत्र प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[ ९४२ ] ( वाजयुः ) अन्नसे युक्त होनेवाला ( मीद्वान् ) और जलमें मिलनेवाला सोम ( कलशान् अभि असजि ) कलशमें गिरता है । ( ससिः न ) घोड़ा जैसे संग्राममें जाता है, उसी प्रकार ( पुनानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( वाचं जनयन् ) शब्द करते हुए ( असिष्यदत् ) बर्तनमें छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ ९४३ ] ( मतीनां जनिता ) स्तुतियोंको उत्पन्न करनेवाला ( दिवः जनिता ) द्युलोकको प्रकट करनेवाला ( पृथिव्याः जनिता ) पृथिवीका जनक ( अग्नेः जनिता ) अग्निका जनक ( सूर्यस्य जनिता ) सूर्यका जनक ( इन्द्रस्य जनिता ) इन्द्र और विष्णुका जनक ( सोमः पवते ) सोम शुद्ध किया जाता है ॥ १ ॥

इन देवोंको सोम यज्ञशालामें लाता है, इसलिए वह इनको उत्पन्न करता है ऐसा आलंकारिक वर्णन इस मंत्रमें किया है । सोमके होने पर ही ये देव यज्ञशालामें आते हैं ।

[ ९४४ ] ( देवानां ब्रह्मा ) देवोंमें ब्रह्मा ( कवीनां पदवीः ) कवियोंमें शब्दोंकी योजना करनेवाला ( विप्राणां ऋषिः ) विप्रोंमें ऋषि ( मृगाणां महिषः ) पशुओंमें भैंस ( गृध्राणां इयेनः ) पक्षियोंमें बाज ( वनानां स्वधितिः ) हिसकोंमें शस्त्ररूप यह सोमरस ( रेभन् ) शब्द करता हुआ ( पवित्रं अति एति ) छलनीसे कलशमें छाना जाता है ॥ २ ॥



१४५ <sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिर स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।

अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥ १९ ( फू ) ॥

[ धा० ३० । उ० २ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।९७।७ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१४६ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरुतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते

॥ १ ॥

( ऋ. ८।१०२।७ )

१४७ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः

॥ २ ॥

( ऋ. ८।१०२।८ )

१४८ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निदेवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत्

॥ ३ ॥ २० ( डा ) ॥

[ धा० ८ । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०२।९ )

१४९ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् । शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने

॥ १ ॥

( ऋ. १।८४।४ )

[ १४५ ] ( सिन्धुः वाचः ऊर्मि न ) जिस प्रकार बहनेवाली नदीकी लहरें सन्त करती हुई चलती हैं, उसी प्रकार ( पवमानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( मनीषाः गिरः स्तोमान् ) मनको अच्छे लगनेवाले शब्दोंको ( प्रावीविपद्वाच ) प्रेरणा देता है, ( वृषभः ) बलवान् ऐसा यह सोम ( अन्तः पश्यन् ) अपने अन्दर देखकर ( गोषु जानन् ) गायोंमें बूध है यह जानकर ( अवराणि ) कम न होनेवाले ( इमा वृजना ) इन बलोंको ( आतिष्ठति ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १४६ ] हे ऋत्विजो ! ( वः ) तुम ( अध्वराणां नप्त्रे ) बलवान्के नाती ( सहस्वते वृधानां ) बलवान्को बढानेवाले ( पुरुतमं अग्निं ) श्रेष्ठ अग्निके ( अच्छा ) पास जाओ ॥ १ ॥

१ अध्वरः ( अ-ध्वरः ) - जिसका नाश नहीं किया जा सकता ऐसा बलवान् ।

[ १४७ ] ( त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव ) जिस तरह बढई लकड़ीको ठीक करता है, उसी प्रकार ( अयं ) यह अग्नि ( नः आभुवत् ) हमें ठीक करता है, ( अस्य क्रत्वा यशस्वतः ) इसके कर्मसे हम यशस्वी होते हैं ॥ २ ॥

[ १४८ ] ( देवेषु ) देवोंमें ( अयं अग्निः ) यह अग्नि ( विश्वाः श्रियः ) सब ऐश्वर्योंको ( अभिपत्यते ) प्राप्त होता है, ऐसा यह अग्नि ( नः ) हमारे पास ( वाजैः उपागमत् ) अन्नके साथ आवे ॥ ३ ॥

[ १४९ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( ज्येष्ठं मदं ) श्रेष्ठ आनन्द देनेवाले ( अमर्त्यं ) विष्य ऐसे ( सुतं इमं पिब ) इस सोमरसको पी । ( ऋतस्य सादने ) यज्ञकी शालामें ( शुक्रस्य धाराः ) ये तेजस्वी सोमकी धारायें ( त्वां अक्षरन् ) तुझे प्राप्त होनेके लिए नीचे गिरती हैं ॥ १ ॥



१५० न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे । न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥२॥  
( ऋ. १।८४।६ )

१५१ इन्द्राय नूनमर्चतौकथानि च ब्रवीतन ।

सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठ नमस्यता सहः

॥ ३ ॥ २१ ( २ ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।८४।९ )

१५२ इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह । पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुमदाय ॥ १ ॥

१५३ इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।

अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः

॥ २ ॥

१५४ इन्द्रस्तुराषाणिमित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।

बिभेद वलं भृगुन ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य

॥ ३ ॥ २२ ( ३ ) ॥

[ धा० ११ । उ० ९ । स्व० १ ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

॥ इति तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १५० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ( यत् ) जिसके कारण तू ( हरी यच्छसे ) अपने घोड़ोंकी रथमें जोड़ता है, उस कारण ( त्वत् ) तेरेसे बढकर ( रथीतरः न किः ) अष्ट वीर दूसरा कोई नहीं है, ( मज्मना ) बलमें ही ( त्वा अनु नकिः ) तेरे समान दूसरा कोई नहीं है । ( सु-अश्वः ) उत्तम घोड़े पालनेवाला भी ( न किः आनशे ) दूसरा कोई नहीं है ॥ २ ॥

[ १५१ ] हे ऋत्विजो ! ( नूनं इन्द्राय अर्चत ) निश्चयसे तुम इन्द्रकी ही पूजा करो, ( उक्थानि च ब्रवीतन ) [ इन्द्रके लिए ही ] स्तोत्र बोलो । ( सुताः इन्दवः अमत्सुः ) छाना हुआ सोमरस इन्द्रको आनन्द देवे । ( ज्येष्ठं सहः ) अष्ट बलवान् इन्द्रको ( नमस्यत ) नमस्कार करो ॥ ३ ॥

[ १५२ ] हे ( हरिह शूर इन्द्र ) घोड़े पासमें रखनेवाले शूरवीर इन्द्र ! ( आयाहि ) आ, ( प्र वहा ) हविष्यान्को स्वीकार कर, ( चारुः मदाय ) उत्तम आनन्द प्राप्त हो इसलिए ( न चकानः ) इस समय इच्छा करते हुए ( सुतस्य मधोः ) मधुर सोमरस ( मतिः ) अपनी इच्छानुसार ( पिबा ) पी ॥ १ ॥

[ १५३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( दिवः न ) जैसे छुलोकसे ( सुवाचः मदः ) उत्तम स्तुतिका आनन्द ( त्वा उप अस्थुः ) तुम्हें प्राप्त होता है, और जैसे ( स्वः न ) उस स्वर्गीय आनन्दको तू भोगता है, उसी प्रकार ( सुतस्य अस्य मधोः ) इस मधुर सोमरससे ( जठरं नव्यं न ) अपने पेटको ( आ पृणस्व ) भर ले ॥ २ ॥

[ १५४ ] ( तुराषाद् इन्द्रः ) जल्दी ही शत्रुको हरा देनेवाला इन्द्र ( मित्रः न ) मित्रके समान ( वृत्रं जघान ) शत्रुको मारता है, ( यतिः न वलं बिभेद ) जिस प्रकार संयमी वीर बल राक्षसको मारता है, तथा ( सोमस्य मदे ) सोमके आनन्दमें ( भृगुं न शत्रून् सासहे ) भृगु जैसे शत्रुओंको हराता है, उस प्रकार तू शत्रुओंको हरा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥



## पञ्चम अध्याय

### इन्द्रके गुण

इस अध्यायमें इन्द्रके गुण इस प्रकार वर्णित हैं—

१ अ-प्रतिष्कृतः [ ९१३ ]- जिसका कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता ।

२ चर्षणीनां राजा [ ९३३ ]- सब मनुष्योंका राजा, सबका शासक ।

३ रथेभिः याता [ ९३३ ]- रथसे जानेवाला, जिसके साथ बहुतसे रथ होते हैं। जिसके साथ सरवारोंके रथ रहते हैं ।

४ अधि-गुः [ ९३३ ]- आगे जानेवाला ।

५ ज्येष्ठः [ ९३३ ]- श्रेष्ठ, सबसे बड़ा ।

६ तुराषाद् [ ९५४ ]- शीघ्रतासे शत्रुको हरानेवाला ।

७ हरिः [ ९५२ ]- घोड़ोंको पासमें रखनेवाला, दुःखोंका हरण करनेवाला ।

८ शूरः [ ९५२ ] शूरवीर ।

९ तरस्वी [ ९३१ ]- शीघ्रतासे सब कार्य करनेवाला ।

१० स्वः-पति [ ९३२ ]- स्वर्गका स्वामी, आत्मविजयी ।

११ धृत-व्रतः [ ९३२ ]- नियमोंका पालन करनेवाला ।

१२ पुरुहन्मा [ ९३४ ]- अनेक शत्रुओंको मारनेवाला ।

१३ ज्येष्ठं सहः [ ९५१ ]- जिसके पास श्रेष्ठ सामर्थ्य है ।

१४ इन्द्रः दधीचः अस्थभिः नवती नव वृत्राणि जघान [ ९१३ ]- इन्द्रने दधीचीकी हड्डियोंके अस्थोंसे ९९ राक्षस मारे ।

१५ विश्वासां पृतनानां तरुता वृत्रहा [ ९३३ ]- सब शत्रुकी सेनाओंको हरानेवाला इन्द्र है ।

१६ इन्द्रः वृत्रं जघान [ ९५४ ]- इन्द्रने वृत्रको मारा ।

१७ इन्द्रः वलं बिभेद [ ९५४ ]- इन्द्रने बलको मारा ।

१८ सोमस्य मदे शत्रून् सासहे [ ९५४ ]- सोमके आनन्दमें सब शत्रुओंको इन्द्रने पराजित किया ।

१९ मज्जमना त्वा अनु न किः [ ९५० ]- बलमें तेरे समान कोई नहीं है ।

२० सु-अश्वः न किः [ ९५० ]- उत्तम घोड़े पालनेवाला भी तेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है ।

२१ हे इन्द्र ! यत् हरी इच्छसे, त्वत् रथीतरः न किः [ ९५० ]- हे इन्द्र ! तू घोड़े अपने रथमें जोड़ता है,

इसलिए तेरी अपेक्षा महान् रथमें बैठनेवाला वीर दूसरा कोई नहीं है ।

२२ ज्येष्ठं सहः नमस्यत [ ९५१ ]- इन्द्रके श्रेष्ठ साहसपूर्ण कार्यको नमस्कार करो ।

२३ यस्य विधर्तरि द्विता [ ९३४ ]- जिसकी धारक-शक्तिमें दो शक्तियां हैं । एक कृपा करनेकी शक्ति और दूसरी विनाश करनेकी शक्ति ।

२४ दर्शतः महान् वज्रः हस्तेन प्रतिधायि [ ९३४ ]- देखने योग्य महान् वज्रको वह हाथोंमें शत्रुको मारनेके लिए धारण करता है ।

२५ पुरु-हन्-मन् ! अश्वसे तं इन्द्रं शुम्भ [ ५३४ ]- हे बहुतसे शत्रुओंको मारनेवाले भवत ! अपने संरक्षणके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर ।

२६ नूनं इन्द्राय अर्चत, उक्थानि च ब्रवीतन [ ९५१ ]- निश्चयसे इन्द्रकी अर्चना करो, उसके स्तोत्र कहो ।

२७ रेभासः इन्द्रं समस्वरन् [ ९३२ ]- स्तोता इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

२८ यत् स्वः-पति वृधे, धृतव्रतः ओजसा ऊतिभिः सं [ ९३२ ]- जब स्वर्गका स्वामी संवर्धन करनेकी इच्छा करता है, तब वह नियमानुसार चलनेवाला अपने सामर्थ्य और संरक्षणके साधनोंसे सहायता करता है ।

२९ विप्राः अभिस्वरे मेघं नेर्मि नमन्ति [ ९३१ ]- ज्ञानी एक आवाजसे उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

इस प्रकार इन्द्रके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं ।

### अधिके गुण

अब इस अध्यायमें आए हुए अग्निके गुणोंको देखें—

१ जागृविः [ ९०७ ]- जागृत रहनेवाला ।

२ सु-दक्षः [ ९०७ ]- चतुर ।

३ जनस्य गोपा [ ९०७ ]- मनुष्योंका रक्षक ।

४ शुचिः [ ९०८ ]- शुद्ध, पवित्र, निर्मल ।

५ अंगिरसः [ ९०८ ]- अंग-प्रत्यंगमें जो प्रकाशता है ।

६ यज्ञस्य केतुः [ ९०९ ]- यज्ञकी पताका, चिन्ह ।

७ सुक्रतुः [ ९०९ ]- उत्तम कर्म करनेवाला ।

८ सहस्वान् [ ९४६ ]- सामर्थ्यसे युक्त ।

९ सुविताय अजनिष्ट [ ९०७ ]- लोगोंका कल्याण करनेके लिए उत्पन्न हुआ ।



१० द्युमत् भाति [१०७]- तेजस्वी प्रकाशित होता है।

११ महतः सहः सः मथ्यमानः जायसे [१०८]- महान् बलसे मथने पर वह प्रकट होता है।

१२ अस्य कृत्वा यशस्वन्तः [१४७]- इसके कार्यसे हम यशस्वी होते हैं।

१३ देवेषु अयं अग्निः विश्वाः श्रियः अभि पत्यते [१४४]- देवोंमें यह अग्नि सब शोभाओंको स्थापित करता है।

१४ नः वाजैः उपागमत् [१४४]- हमारे पास वह अग्नि अन्न और बलके साथ आवे।

१५ त्वा सहसः पुत्रं आहुः [१४४]- तू बलसे उत्पन्न होता है ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार इस अग्निका वर्णन इस अध्यायमें हुआ है।

### मित्र और वरुण

अब मित्र और वरुण इनका वर्णन देखिए—

१ ऋतावृधा मित्रावरुणा [७१०]- सत्य अथवा यज्ञको बढ़ानेवाले मित्र और वरुण हैं।

२ राजानौ अनभिद्रुहे ध्रुवे उत्तमे सदस्त्रस्थूणे सदसि आशाते [१११]- ये दो राजा हैं, वे परस्पर लड़ते नहीं और स्थिर तथा हजार खम्भोंवाली उत्तम-सभामें वे बैठते हैं।

३ सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनः-पती अनवह्वरं सचेते [११२]- वे दोनों सम्राट् हैं, घी मिला हुआ अन्न खाते हैं, आदित्यके पुत्र और घनके स्वामी हैं, वे कुटिल व्यवहार न करनेवालेकी सहायता करते हैं।

इस प्रकार मित्र और वरुणका वर्णन यहां किया है।

### इन्द्र और अग्नि

अब इन्द्र और अग्निके वर्णन देखिए—

१ हे इन्द्राग्नी ! इयं वां पूर्यस्तुतिः, अस्य मन्मनः अजनि [११६]- हे इन्द्र और अग्ने ! यह तुम दोनोंकी अपूर्व स्तुति इन मनन करनेवाले [विद्वानोंसे उत्पन्न हुई है।

२ हे इन्द्राग्नी ! जरितुः हवं शृणुतं, गिरः वनतं, ईशाना धियः पिप्यतं [११७]- हे इन्द्र और अग्ने ! स्तोता प्रार्थना करता है, उसे तुम सुनो, उसकी स्तुति सुनो, तुम दोनों ही अधिकारी हो, इसलिए उसके योग्य कर्मोंका उत्तम फल दो, अथवा उसकी बुद्धिको परिपक्व करो।

३ हे नरा इन्द्राग्नी ! नः पापत्वाय रीरधम् [११८]- हे इन्द्र और अग्ने ! हमें पापमें प्रवृत्त मत करो।

४ अभिशस्तये मा, निदे नः मा [११८]- हिंसा करनेके कार्यमें प्रवृत्त मत करो, निन्दनीय कर्मोंमें भी मत लगाओ।

अर्थात् तुम हमारी प्रवृत्ति अच्छे कामोंकी ओर ही लगाओ, इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना की गई है, कि हमारी प्रवृत्ति उत्तम कामोंकी ओर ही हो, खराब कामोंकी ओर न हो। देवताओंके गुण इसीलिए वर्णित हैं। देवोंके गुणोंको हम धारण करें, यही उत्तम प्रवृत्ति है, इसके विरुद्ध जो है, वह असत् या बुरी प्रवृत्ति है। मनुष्य सत्प्रवृत्तिको धारण करें और असत्प्रवृत्तिको अपनेसे दूर रखें।

यज्ञमें सोमरस तैय्यार करते हैं, और उसे इन्द्रको अर्पित करते हैं। इस विषयमें वर्णन अब देखिए—

### इन्द्रको सोम

१ सुतः आ विवासन् इन्द्राय मधु सिच्यते [१०२]- सोमरस निकालनेके बाद उसे छानकर शुद्ध करके इन्द्रको वह मोठा रस दिया जाता है। इसको मोठा करनेके लिए उसमें गायका दूध मिलाया जाता है।

२ इन्द्राय पातवे हरिं इन्दुं अद्रिभिः हिन्वान्ति [१०३]- इन्द्रको सोमरस पीनेको देनेके लिए हरे रंगका सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है।

३ वृषा इन्द्रः सुतं गमत्, ध्रुवे सदसि सीदतु [१२५]- बलवान् इन्द्र सोमयागके स्थान पर जाता है और स्थिर यज्ञशालामें जाकर बैठता है।

४ हे इन्द्र ! सोमं पिब, त्वा मदन्तु [१२७]- हे इन्द्र ! तू सोमरस पी, ये सोमरस तुझे आनन्द देवें।

५ हे हर्यश्व ! ते सोतुः वाहुभ्यां सुयतः अद्रिः यत् सुषाव [१२७]- हे उत्तम घोड़े रखनेवाले इन्द्र ! रस निकालनेवालेके हाथोंके द्वारा पकड़े गए पत्थरोंसे यह रस निकाला गया है।

६ हे इन्द्र ! ज्येष्ठं मदं अमर्त्यं इमं सुतं पिब [१४९]- हे इन्द्र ! श्रेष्ठ अमर और दिव्य आनन्द देनेवाले इस सोमरसको पी।

७ ऋतस्य सादने शुक्रस्य धाराः त्वां अक्षरन् [१४९]- यज्ञके स्थान पर इस वीर्यवान् सोमरसकी धारा तेरे लिए निकली है, तेरी तरफ बह रही है।



८ चारुः मदाय सुतस्य मधो मतिः पिव [ १५२ ]- उत्तम आनन्द प्राप्त होनेके लिए यह मधुर सोमरस इच्छानुसार पी ।

९ हे इन्द्र ! सुतस्य मधोः मदः त्वा उप अस्थुः जठरं पृणस्व [ १५३ ]- हे इन्द्र ! इस मीठे सोमरसका आनन्द तुझे मिले, अतः पेट भर कर पी ।

इस प्रकार सोमरस इन्द्रको और अन्य देवताओंको दिया जाता था, वे सब यज्ञशालामें बैठकर पीते और उत्साहित होकर अपने कार्य उत्तम रीतिसे करते थे ।

### स्वर्गसे सोम

१ यः दिवस्परि रघुयामा [ १०० ]- जो छुलोक पर रहता है, वह यह सोम है, हिमालयके शिखरपर ऊंचे ठिकाने सोम उगता है । वहांसे यज्ञ करनेवाले यज्ञमान उसको लाकर यज्ञमें उसका उपयोग करते हैं ।

### सोमके गुण

- १ पचमानः [ ८८६ ]- शुद्ध, पवित्र, छाना जानेवाला ।
- २ ऋषि-षाणः [ ८८६ ]- ऋषि यज्ञमें जिसका उपयोग करते हैं ।
- ३ ध्रुवः [ ८८७ ]- स्थैर्य देनेवाला ।
- ४ हरिः [ ८८७ ]- दुःखोंका हरण करनेवाला, हरे रंगका ।
- ५ विश्वचक्षः [ ८८८ ]- सब देखनेवाला, सर्व द्रष्टा ।
- ६ प्रभुः [ ८८८ ]- स्वामी ।
- ७ विश्वस्य भुवनस्य पतिः [ ८८८ ]- सम्पूर्ण भुवनोंका स्वामी ।

८ व्यानशी [ ८८८ ]- व्यापक, सब पर प्रभाव डालनेवाला ।

९ दक्षः द्युमान् रसः [ ८९१ ]- बलवान् और तेजस्वी रस ।

१० अ-दुच्छुनः [ ८९० ]- दुष्टोंको प्राप्त न होनेवाला ।

११ विश्वं स्वः ज्योतिः [ ८९१ ]- सब प्रकारसे तेजस्वी ज्योति ।

१२ विश्व-चर्षणिः [ ८९६ ]- सब देखनेवाला ।

१३ बृहन्मतिः [ ८९८ ]- महान् बुद्धिवाला ।

१४ कविः [ ९२० ]- ज्ञानी, वृद्धशी ।

१५ वृषा [ ९२० ]- बलवान् ।

१६ प्रियः [ ९२० ]- प्रिय ।

१७ अ-दाभ्यः [ ९२० ]- न दबनेवाला, कोई भी जिसे दबा नहीं सकता, ऐसा सामर्थ्यवान् ।

१३ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

१८ देवैः सं शोभते [ ९२० ]- देवोंके साथ सुशोभित होता है ।

१९ कविक्रतुः [ ९३५ ]- उत्तम कर्म करनेवाला ।

२० गतीनां, दिवः, पृथिव्याः, अग्नेः, सूर्यस्य, इन्द्रस्य, विष्णोः जनिता सोमः [ ९४३ ]- बुद्धि, छुलोक, पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, विष्णु इनमें उत्साह पैदा करनेवाला ।

ये सोमके गुण हैं, सोमरस पीनेसे ये गुण उत्साहके कारण बढ़ते हैं, इसलिए ये सोमके गुण हैं ऐसा कहा है ।

### शत्रुको हरानेवाला सोम

१ हे इन्द्रो ! तव सख्ये अहं दिवे दिवे रारण । हे बभ्रो ! पुरुणि मां अवचरन्ति, तान् परिधीन् अति इहि [ ९२२ ]- हे सोम ! तेरी मित्रतामें मैं रहूँ, ऐसी इच्छा मैं प्रतिदिन करता हूँ, क्योंकि हे 'सोम ! बहुतसे शत्रु मुझे बारबार कष्ट देते हैं, उन्हें तू दूर कर ।

२ पुनानः विचर्षणिः विश्वाः मृधः अक्रमीत् [ ९२४ ]- छाना जानेवाला, विशेषज्ञानी, सोम सब शत्रुपर आक्रमण करके उन्हें दूर करता है ।

३ हे हर्यश्व इन्द्र ! ते युज्यः चारुः मदः यः अस्ति, येन वृत्राणि हंसि [ ९२८ ]- हे लाल रंगके घोड़े पासमें रखनेवाले इन्द्र ! तेरे योग्य यह उत्तम आनन्द है, जिससे तू शत्रुओंको मारता है ।

इस प्रकार वीरोंमें ऐसा उत्साह उत्पन्न करता है कि वे उसके कारण शत्रुके विनाशके कामोंको करनेके लिए योग्य होते हैं । ऐसा इस सोमरसका प्रभाव है ।

### अंगुलियोंका रस निकालना

सोमकी बेलको पत्थरके पाट पर रखकर पत्थरोंसे कूटा जाता है, और अंगुलियोंसे दबाकर उसका रस निकाला जाता है । उसका वर्णन इस प्रकार है—

१ उस्त्रियाः, जामयः, स्वसारः, मदीयुवः, सूरं पतिं महान् इन्दुं हिन्वन्ति [ ९०४ ]- सब जगह जानेवाली, बहिनके समान एक मतसे काम करनेवाली ऐसी अंगुलियां, महान् कार्य करनेकी इच्छा करके, भेष्ट स्वामी महान् सोमको दबाकर उसका रस निकालती हैं ।

सोमका रस निकालना एक दडा काम है, क्योंकि उससे सोमयज्ञ सिद्ध होता है और उससे सब देव सन्तुष्ट होते हैं ।



### सोम धन देता है

१ देवेभ्यः सुतः विश्वा वसूनि आविश [१०५]- देवोंके लिए निकाला गया सोमरस हमारे लिए सब धनोंमें प्रविष्ट होवे, अर्थात् सब धन हमें देवे।

२ हे इन्द्रो सोम ! अस्मभ्यं मह्यं सहस्रिणं रयिं विश्वतः आ पवस्व [१२६]- हे तेजस्वी सोम ! तू हमें महान् और हजारों प्रकारके धन चारों ओरसे दे।

सोमयागमें सब लोग धन देते हैं, तब वह धन सोम ही देता है, ऐसा कहा जाता है।

### सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोम कूटकर उसका रस निकालते हैं, बादमें उसमें पानी मिलते हैं, तत्पश्चात् उसे छाना जाता है, और छाने हुए सोमरसको कलशमें भरकर रखते हैं। इस सम्बन्धमें वर्णन इस प्रकार है—

१ यः दिवः परि रघुयामा, सः अयं पवित्रे आ सिन्धोः ऊर्मा वि अक्षरत् [१००]- जो सोम छलोक पर होता है वह सोम छलनीसे छाना जाता है। वह नदीके लहरमें टपकता है। नदीका पानी मिलाकर वह छाना जाता है।

२ वाजिनं वने क्रीडन्तं अति अर्वि धीभिः मृजन्ति [१४१]- बलवान् सोमको पानीमें मिलाकर भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे स्तोत्र बोलकरके याजक छानते हैं।

३ वाजयुः मीढ्वान् कलशान् अभि असर्जि [१४२]- अन्न देनेवाला पानीमें मिलाया हुआ सोम कलशमें छाना जाता है।

इस प्रकार सोमरसको पानीमें मिलानेका वर्णन है। इसके बाद वह छाना जाता है, उसका वर्णन निम्न प्रकार है—

### सोमरसका छाना जाना

१ हे ऋषिषाण ! ये वेधसः त्वा मृजन्ति, ते अन्तरिक्षात् स्थाविरीः असृक्षत् [८८६]- हे ऋषियोंके द्वारा निकाले गए सोम ! जो जाली तुझे निकालते हैं, वे ऊपरके बर्तनसे एक धारसे नीचेके बर्तनमें तुझे पहुंचाते हैं, छानते हैं।

२ यदि पवित्रे हरिः अधिमृज्यते सत्ता योनौ निषीदति [८८७]- जब छलनीसे हरे रंगका सोम छाना जाता है, उस समय स्थिर रहनेकी इच्छा करनेवाला यह सोम कलशमें जाकर बैठता है।

३ हे राजन् पवमान ! तव मदः अदुच्छुनः रसः अव्यं वारं वि अर्षति [८९०]- हे सोम ! तेरा आनन्द देनेवाला तथा बुरे और दुष्ट लोगोंको न मिलनेवाला रस भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छनकर नीचे जाता है।

४ ओजसा पवित्रे शीघ्रं आ णति [१०१]- वेगसे छलनीके द्वारा शीघ्र छाना जाता है।

५ हे हरे ! दक्षसाधनः मदः देवेभ्यः पीतये पवस्व [११९]- हे हरे रंगके सोम ! बल बढ़ानेके साधन तेरे आनन्द देनेवाले रस देवोंके पीनेके लिए छानकर तैय्यार किये जाते हैं।

६ पुनानः सोमः ऊर्मिणा अव्यं वारं वि धावति [१४०]- छाना जानेवाला सोम धारसे भेड़के बालोंकी छलनीसे दौड़ता हुआ नीचेके बर्तनमें पड़ता है।

इस प्रकार सोम छाना जाता है और वह छलनी भेड़के बालोंकी बनी होती है।

### सोममें गायका दूध मिलाना

१ हे पवमान ! ते आश्विनीः धेनवः दिव्या, पयसा धरीमणि प्र असृग्रन् [८८६]- हे सोम ! तेरी वे वेगवान् गायें दिव्य हैं, वे अपने दूधसे कलशमें पहुंचती हैं। कलशमें छने हुए सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है।

२ वृषभः अन्तः पश्यन्, गोषु जानन्, अवराणि इमा वृजना आ तिष्ठति [१४१]- बलवान् सोमरस अपने अन्दर देखता है, और गायमें दूध है यह जनता है, कम न होनेवाले बलोंको वह गायके दूधसे प्राप्त करता है।

इस प्रकार आलंकारिक भाषासे सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है इसका वर्णन इन संश्रोंमें किया है।

### सोमका अन्न देना

१ हे इन्द्रो सोम ! महीं इषं गोमत् आ पवस्व [८९५]- हे तेजस्वी सोम ! तू बड़े अन्न तथा गायोंसे युक्त धन हमें दे।

२ प्र प्र क्षयाय अद्रुहः पन्थसे जनाय वीति जुष्टः पनिष्ठये अर्ष [१३७]- हे सोम ! तेरे निवास करनेके लिए यत्न करनेवाले, द्रोह न करनेवाले और स्तुति करनेवाले मनुष्योंके खानेके लिए प्रयुक्त हुआ तू स्तुतिको प्राप्त हो।

### सोमका शब्द

सोमरसको छाने जाते समय उसका शब्द होता है। उसका वर्णन इस प्रकार है—



१ वृष्टेः स्वनः इव पवमानस्य श्रूयते [८९४]-  
बर्षाकी जैसी आवाज होती है उसी प्रकार छाने जानेवाले  
सोमकी आवाज सुनी जाती है।

२ धिया हितः कनिक्कदत् योनिं अभि आरुहः  
[ ९२१ ]- बुद्धिसे यज्ञमें रखा गया सोम शब्द करता हुआ  
कलसेमें जाता है।

३ पवमानः वाचः अग्रं कनिक्कदत् [ ९४० ]- छाना  
जाता हुआ सोम शब्द करता है।

४ त्रिपृष्ठं मतयः अभि समस्वरत् [ ९४१ ]- तीन  
बर्तनोंमें स्तुतिके साथ-साथ सोम शब्द करते हुए जाता है।

५ पुनानः वाचं जनयन् असिष्यदत् [ ९४२ ]-  
छाना जाता हुआ सोम शब्द करते हुए बर्तनमें पड़ता है।

६ सोमः रेभन् पवित्रं अति पति [ ९४४ ] सोम  
शब्द करते हुए छलनीमेंसे छनता जाता है।

७ पवमानः मनीषाः गिरः स्तोमान् प्रावीविषत्  
[ ९४५ ]- शुद्ध होता हुआ सोम मनको प्रिय लगनेवाले  
शब्दोंको प्रेरणा देता है।

इस तरह सोमरस छाना जाता हुआ शब्द करते हुए  
छलनीमेंसे नीचेके बर्तनमें पड़ता है, उसका आलंकारिक  
वर्णन ऊपरके मंत्रोंमें किया है। किसी बर्तनमें पहले ही द्रव  
पदार्थ रखा हो और उस पर ऊपरसे द्रव पदार्थ गिराया जाए  
तो शब्द तो होना ही हुआ। उसी प्रकारका यह शब्द है।  
नीचेके बर्तनमें दूध है और उसीमें ऊपरसे सोमरस छलनीसे  
गिरने लग जाये, तो उसका शब्द तो होगा ही। वह ही  
सोमका शब्द है।

### सोमका तेज

सोमलता तेजस्वी है। उसका रस भी तेजस्वी है। इस  
तेजस्विताका वर्णन इस प्रकार है—

१ पवमानस्य ध्रुवस्य सतः केतवः उभयतः परि-  
यन्ति [ ८८७ ]- छाने जानेवाले स्थिर सोमकी किरणें दोनों  
ही ओर फैलती हैं।

२ पवमानः बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः अजीजनत्  
[ ८८९ ]- छाना जानेवाला सोम महान् व्यापक तेज उत्पन्न  
करता है।

३ पवमानस्य ते दक्षः द्युमान् रसः विराजति  
[ ८९१ ]- छाने जानेवाले सोमके बलवर्धक तेजस्वी रस  
सुशोभित होते हैं।

\*

४ विश्वं स्वः ज्योतिः दृशे [ ८९१ ]- सोमका अपना  
तेज दीखता है।

५ शुष्मिणः विद्युतः दिवि चरन्ति [ ८९४ ]-  
बलवान् सोमकी किरणें झुलोकमें फैलती हैं।

६ मही रोदसी आ पृण [ ८९६ ]- विशाल छावा-  
पृथ्वीको अपने तेजसे भर दे।

७ सुतः त्विषिं दधानः विचक्षणः विरोचयन्  
[ ९०१ ]- सोमरस तेज धारण करते हुए तेजस्वी होकर  
चमकने लगता है।

८ रुचा देवः पवमानः [ ९०५ ]- तेजसे सोमदेव  
सुशोभित होता है।

९ शुचिः जातः महान् सः सूनुः मही क्रतावृधा  
जाते मातरा अरोचयत् [ ९३६ ]- शुद्ध हुआ हुआ सोम  
नामक पुत्र महान् यज्ञको बढ़ानेवाली प्रसिद्ध माता छावा-  
पृथ्वीको प्रकाशित करता है।

१० दैव्य पवमान ! द्युमत्तमः त्वं [ ९३८ ]- हे  
प्रकाशमान् सोम ! तू तेजस्वी है।

इस प्रकार सोम तेजस्वी है।

### सुभाषित

१ ध्रुवस्य सतः केतवः उभयतः परियन्ति [ ८८७ ]  
-स्थिर और उत्तम कार्य करनेवालोंका तेज दोनों ओर  
फैलता है।

२ हे विश्वचक्षुः ! प्रभोः सतः ते क्रभ्वस्य केतवः  
विश्वा धामानि परियन्ति [ ८८८ ]- हे सबके निरीक्षण  
करनेवाले निरीक्षक ! शासन करनेकी इच्छावाले तेरा महान्  
प्रकाश सब स्थानमें पहुंचता है।

३ धर्मणा पवसे [ ८८८ ]- अपने धर्मसे शुद्ध होता है।

४ विश्वस्य भुवनस्य पतिः राजसि [ ८८८ ]- तू सब  
भुवनोंका स्वामी होकर चमकता है।

५ पवमानः बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः दिवः चित्रं  
तन्यतुं न अजीजनत् [ ८८९ ]- पवित्र हुआ सोम महान्  
तथा सब मनुष्योंके हित करनेवाले तेजको, झुलोकमें चमकने  
वाली बिजलीके समान, उत्पन्न करता है।

६ हे राजन् ! तव मदः अ-दुच्छुनः [ ८९० ]- हे  
राजन् ! तेरा आनन्द दुष्ट नहीं पा सकते।



७ ते दक्षः द्युमान् विराजति [ ८९१ ]- तेरा तेजस्वी बल प्रकाशित होता है ।

८ विश्वं स्वः ज्योतिः दृशे [ ८९१ ]- सब विश्वमें आत्माकी ज्योति दीखती है ।

९ त्वेषाः अयासः प्र अक्रमुः [ ८९२ ]- तेजस्वी और क्रियाशील ही प्रगति करते हैं ।

१० अ-व्रतं दस्युं साह्याम [ ८९३ ]- सत्कर्म न करनेवाले शत्रुको हम पराजित करें ।

११ शुष्मिणः विद्युतः दिवि चरन्ति [ ८९४ ]- बलशाली बिजलीका प्रकाश द्युलोकमें फैलता है ।

१२ वृष्टेः स्वनः श्रूयते [ ८९४ ]- वृष्टिका शब्द सुनाई दे रहा है ।

१३ गोमत्, अश्ववत्, हिरण्यवत्, वीरवत् महीं इषं आ पवस्व [ ८९५ ]- गाय, घोड़े, सोना और वीर-पुत्रोंसे युक्त महान् अन्न हमें दे ।

१४ हे विश्व-चर्षणे ! मही रोदसी आपृण [ ८९६ ]- हे सब लोगोंके हित करनेवाले वीर ! तू अपने तेजसे इस महान् द्युलोक और पृथ्वीलोकको भर दे ।

१५ सूर्यः रश्मिभिः उषाः न [ ८९६ ]- सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे उषःकालके बाद जगत्को भर देता है, उसी प्रकार तू भी अपने तेजसे जगत्को भर दे ।

१६ नः शर्मयन्त्या धारया विश्वतः परिसर [ ८९७ ]- हमें सुख देनेवाले अन्नरसकी धारासे चारों ओरसे घेर ले ।

१७ हे बृहन्मते ! प्रियेण धाम्ना आशुः परि अर्थ [ ८९८ ]- हे बुद्धिमान् ! अपने प्रिय जीवनसे युक्त होकर शीघ्र इधर आ ।

१८ अनिष्कृतं परिष्कृण्वन् जनाय इषः यातयन्, परिस्त्रव [ ८९९ ]- असंस्कृतको सुसंस्कृत करते हुए, ( लोगोंको अन्न देते हुए चारों ओर भ्रमण कर ।

१९ त्विषिं दधानः, विचक्षणः विरोचयन्, ओजसा शीघ्रं आ पति [ ९०१ ]- तेज धारण करके, सबको देखनेवाला, स्वयं प्रकाशमान होनेवाला अपने सामर्थ्यसे शीघ्र प्रगति करता है ।

२० उस्त्रयः जामयः स्वसारः महीयुवः सूरं पतिं हिन्वन्ति [ ९०४ ]- तेजस्वी तथा एक जगह रहनेवाली बहिनें महान् कार्यमें स्वयंको लगाकर अपने तेजस्वी पतिको भी उत्तम कार्यमें प्रेरित करती हैं ।

२१ रुचा विश्वा वसुनि आ विश [ ९०५ ]- अपने तेजसे सब धनोंमें तू प्रविष्ट होकर रह ।

२२ जनस्य गोपा, जागृविः सुदक्षः अग्निः, नव्यसे सुविताय अजनिष्ट [ ९०७ ]- मनुष्योंका संरक्षण करनेवाला, जाग्रत और चतुर, आगे ले चलनेवाला, नये मार्गसे सबका कल्याण करनेके लिए प्रकट हुआ है ।

२३ बृहता दिविस्पृशा शुचिः भरतेभ्यः द्युमत् भाति [ ९०७ ]- महान् आकाशको स्पर्श करनेवाले तेजसे पवित्र हुआ हुआ वह वीर भारतदेशमें लोगोंके हितके लिए तेजस्वी होकर चमकता है ।

२४ सः महत् सहः [ ९०८ ]- वह शत्रुका पराभव करनेवाले महान् बलसे युक्त है ।

२५ त्वां सहसः पुत्रं आहुः [ ९०८ ]- तुझे सामर्थ्य या बलका पुत्र कहते हैं ।

२६ राजानौ अनभिद्रुहौ ध्रुवे उत्तमे सहस्रस्थूणे सदसि आशाते [ ९११ ]- जो राजा आपसमें भिडते नहीं, वे स्थिर, उत्तम और हजार खम्भोंवाली सभामें बैठते हैं ।

२७ सम्राजा दानुनः पती अनवह्वरं सचेते [ ९१२ ]- वे सम्राट् धनके स्वामी होकर कुटिलता रहित सत्कर्मकी सहायता करते हैं ।

२८ अ-प्रतिष्कुतः इन्द्रः दधीचः अस्थभिः नवती नव वृत्राणि जघान [ ९१३ ]- जिसको कोई भी हरा नहीं सकता ऐसे इन्द्रने ऋषिकी हड्डियोंसे ९९ वृत्रोंको मारा, शत्रुको मारनेके लिए ऋषिने अपनी हड्डी राष्ट्रहितके लिए समर्पित की ।

२९ गोः चन्द्रमसः गृहे त्वष्टुः अपीच्यं नाम इत्था अमन्वत [ ९१५ ]- गमन करनेवाले चन्द्रमाके मण्डल पर सूर्यकी गुप्त किरणें इस प्रकार प्रकाशित होती हैं । सूर्यकी किरणें चन्द्र पर जाकर पड़ती हैं, वहांसे उनका परावर्तन होकर रात्रिके समय पृथ्वीपर उस चन्द्रमाका प्रकाश पड़ता है ।

३० ईशानाः धियः पिप्यतं [ ९१७ ]- तुम दोनों ही स्वामी हो, इसलिए हमारी बुद्धिको पूरी तरह विकसित करो ।

३१ हे नरा इन्द्राग्नी ! नः पापत्वाय मा, अभि-शस्तये मा, निदे मा, रीरधतं [ ९१८ ]- हे नेता, इन्द्र और अग्निओ ! हमें पापके कार्योंमें मत लगाओ, हिंसा करनेमें प्रवृत्त न करो, तथा निन्दाके कार्योंमें भी मत युक्त करो ।

३२ वृषा कविः प्रियः अदाभ्यः संशोभते [ ९२० ]- बलवान् कवि, प्रिय, तथा न दबाया जानेवाला होता है, वह सुशोभित होता है ।



३३ धिया हितः धर्मणा आरुहः [ १२१ ]- बुद्धिसे जो हितकारक है, वह अपने गुण धर्मसे उन्नत होता है।

३४ पुरुणि मां नि अवचरन्ति तान् परिधीन् अति इहि [ १२२ ]- बहुतसे दुष्ट शत्रु मुझे कण्ट देते हैं, उन्हें दूर कर।

३५ ते घृणा तपन्तं अति पतिम [ १२३ ]- तू अपने तेजसे चमकता है, ऐसा हम देखते हैं।

३६ विचर्षणिः विश्वाः मृधः अक्रमीत् [ १२४ ]- विशेष निरीक्षण करनेवाला अपने सब शत्रुओंको हराता है।

३७ विप्रं धीतिभिः शुम्भन्ति [ १२४ ]- उस ज्ञानीको सब विद्वान् स्तुतियोंसे सुशोभित करते हैं।

३८ वृषा इन्द्रः ध्रुवे सदसि सीदति [ १२५ ]- बलवान् इन्द्र स्थिर सभामें बैठता है।

३९ अस्मभ्यं मह्यं सहस्रिणं रयिं विश्वतः आपवस्व [ १२६ ]- हमें महान्, हजारों प्रकारके धन चारों ओरसे लाकर दे।

४० ते युज्यः चारुः मदः यः अस्ति, येन वृत्राणि हंसि [ १२८ ]- तेरा योग्य और उत्तम उत्साह जो है, उससे तू शत्रुको मारता है।

४१ विश्वाः पृतनाः अभिभूतरं इन्द्रं नरः सजुः ततश्चुः [ १३० ]- सब शत्रुके सैनिकोंको हरानेवाले इन्द्रकी सब लोग मिल करके स्तुति करते हैं।

४२ राजसे जजनुः [ १३० ]- उसका तेज बढ़ाते हैं।

४३ क्रत्वे वरे स्थेमनि, आमुर्णि उग्रं ओजस्विनं, तरसं तरस्विनं [ १३० ]- अपने कार्यसे श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, उग्र और महा बलवान्, श्रेष्ठ और शीघ्रतासे कार्य करनेवालेकी स्तुति की जाती है।

४४ विप्राः अभिस्वरे मेघं नेमिं नमन्ति [ १३१ ]- ज्ञानी महान् स्वरसे शक्तिमान् और व्यापक इन्द्रको नमस्कार करते हैं।

४५ सु-दीतयः अ-द्रुहः वः तरस्विनः कर्णे क्रक्वभिः सं [ १३१ ]- उत्तम तेजस्वी और द्रोह न करनेवाले तुम शीघ्रतासे इन्द्रके कानोंतक पहुँचनेवाले स्वरके द्वारा मन्त्रोंसे उसकी स्तुति करो।

४६ यत् स्वः पतिः वृधे, धृतव्रतः ओजसां ऊतिभिः सं [ १३२ ]- जब स्वर्गका स्वामी इन्द्र भक्तका संवर्धन करना चाहता है, तब नियमोंका पालन करनेवाला इन्द्र अपने सामर्थ्यसे और संरक्षणके साधनोंसे युक्त होता है।

४७ चर्षणीनां राजा अधिगुः, विश्वासां पृतनानां तरुता वृत्रहा ज्येष्ठं गृणे [ १३३ ]- मनुष्योंका शासक, प्रगति करनेवाला, सब शत्रुकी सेनाओंसे पार करानेवाला इन्द्र है, उस श्रेष्ठ इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ।

४८ पुरुहन्-मन ! अवसे तं इन्द्रं शुम्भ [ १३४ ]- हे शत्रुके मारनेवाले इन्द्रके उपासक ! अपने संरक्षणके लिए उस इन्द्रकी उपासना कर।

४९ यस्य विधर्तरि द्विता [ १३४ ]- जिसकी संरक्षण शक्तिमें दोनों प्रकारकी शक्तियाँ हैं। एक शत्रुके विनाश करनेकी शक्ति और दूसरी भक्त पर कृपा करनेकी शक्ति।

५० महान् दर्शतः वज्रः हस्तेन प्रतिधायि [ १३४ ]- महान् दर्शनीय वज्रको वह हाथसे धारण करता है।

५१ शुचिः जातः मही क्रतावृधा मात्रा अरोचयत् [ १३६ ]- शुद्ध हुआ हुआ अपनी बडी, सत्य बढ़ानेवाली माताओंको प्रकाशित करता है।

५२ द्युमत्तमः त्वं जनिमानि अमृतत्वाय [ १३८ ]- अत्यंत तेजस्वी तू अपने जन्ममें अमृतत्वकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न कर।

५३ अस्य क्रत्वा यशस्वन्तः [ १४७ ]- इसके पुरुषार्थ प्रयत्न से हम यशस्वी होते हैं।

५४ अयं विश्वाः श्रियः अभि पत्यते, नः वाजै उपागमत् [ १४८ ]- यह सब ऐश्वर्योंसे युक्त है, वह हमारे पास अन्नके साथ आवे।

५५ यत् हरी यच्छसे त्वत् रथीतरः न किः [ १५० ]- जिस कारण तू अपने दोनों ही घोड़े रथमें जोड़ता है, उस कारण तेरी अपेक्षा उत्तम रथी और वीर दूसरा कोई नहीं है।

५६ मज्मना त्वा अनु न किः [ १५० ]- बलमें तेरे समान कोई दूसरा नहीं है।

५७ सु अश्वः न किः आनशे [ १५० ]- उत्तम घोड़े पालनेवाला भी कोई दूसरा नहीं है।

५८ ज्येष्ठं सहः नमस्यत [ १५१ ]- शत्रुको हरानेवाले बलको धारण करनेवाले इन्द्रको नमस्कार करो।

५९ तुराषाट् इन्द्रः वृत्रं जघान [ १५४ ]- शीघ्रतासे शत्रुको हरानेवाला इन्द्र शत्रुको मारता है।

६० यतिः न वलं विभेद [ १५४ ]- संयमी पुरुषके समान बल नामक राक्षसको मारता है।

६१ भृगुः न शत्रून् सासहे [ १५४ ]- भृगुके समान शत्रुको हराता है।



## उपमा

अब इस अध्यायमें जितनी उपमायें हैं, उनको देखें—

१ दिवः चित्रं तन्यतुं न [ ८८९ ]— आकाशमें जिस प्रकार बिजली चमकती है, उसी प्रकार ( पवमानः बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः ) सोमका महान् और विश्वका नेतृत्व करनेवाला तेज फैलता है।

२ गावः न [ ८८२ ]— गायके समान - गायके दूधके समान ( भूर्णथः त्वेषाः अयासः कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः प्र अक्रमुः ) शीघ्रगामी तथा तेजस्वी सोमरस काली छालको दूर करते हुए नीचेके बर्तनमें गिरता है। गायका दूध सोमरस में जब मिलाया जाता है, तब सोमका काला रंग दूर होता है और वह सोम नीचे रखे बर्तनमें पड़ता है।

३ वृष्टेः स्वनः इव [ ८९४ ]— वृष्टिका जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार ( पवमानस्य श्रूयते ) सोमका शब्द सुनाई देता है।

४ सूर्यः रश्मिभिः उषाः न [ ८९६ ]— सूर्य अपनी किरणोंसे उषःकालके बाद विश्वको जैसे व्याप्त करता है वैसे ही ( विचर्षणे ! मही रोदसी आ पृण ) हे सबको देखनेवाले सोम ! तू इस महान् द्यावापृथिवीको [ अपने तेजसे ] भर दे।

५ विष्टपं रसा इव [ ८९७ ]— इस भूलोकको जिस प्रकार पानी व्याप्त करता है, उसी प्रकार ( हे सोम ! धारया विश्वतः परि सर ) हे सोम ! तू अपनी रसकी धारासे चारों ओर व्याप्त हो।

६ अभ्रात् वृष्टिः इव [ ९१६ ]— मेघसे जैसे वृष्टि होती है, उसी तरह ( इयं पूर्व्यस्तुतिः अस्य मन्मनः अजानि ) यह अपूर्व स्तुति इस विद्वान्से हुई है।

७ ते घृणा तपन्तं परं सूर्यं शकुना इव अति पक्षिम [ ९२३ ]— अपने तेजसे चमकनेवाले बूरके सूर्यको जैसे पक्षी देखते हैं, उसी प्रकार मैं चमकनेवाले सोमको देखता हूँ।

८ अर्वा न [ ९२७ ]— घोड़ा जैसे आनन्द देता है, उसी प्रकार ( अद्रिः यत् सुषाव ) पत्थर जो सोमका रस निकालते हैं, वह तुझे आनन्द देता है।

९ देवः सूर्यः न [ ९३४ ]— सूर्य देव जैसा तेजस्वी है, उसी प्रकार ( दर्शतः महान् वज्रः ) दर्शनीय महान् वज्र तेजस्वी है।

१० सप्तिः न [ ९४२ ]— जैसे घोड़ा युद्धमें जाता है, उसी प्रकार ( पुनानः वाचं जनयन् असिष्यत् ) छाना जानेवाला सोम शब्द करता हुआ कलसेमें जाता है।

११ सिन्धुः वाचः ऊर्मि न [ ९४५ ]— जिस प्रकार नदी शब्द करती हुई बहती है, उसी प्रकार ( पवमानः स्तोमान् प्रावीविपत् ) छाना जानेवाला सोम स्तुतिर्योंको प्रेरित करता है।

१२ त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव [ ९४७ ]— जिस प्रकार बढई साधनोंसे लकड़ीको सुन्दर बनाता है, उसी प्रकार ( अयं नः आ भुवत् ) यह अग्नि हमें सुन्दर बनाती है।

१३ दिवः न [ ९५३ ]— द्युलोकसे जैसे प्रकाश आता है उसी प्रकार ( सुतस्य मदः ) सोमरससे आनन्द मिलता है।

१४ स्वः न [ ९५३ ]— स्वर्गीय आनन्दके समान सोमका आनन्द है।

१५ नन्यं न [ ९५३ ]— नवीन होनेके समान ( जठरं पृणस्व ) अपना पेट भरकर सोमरस पी।

१६ मित्रः न [ ९५४ ]— मित्र जैसे सहायता करता है, उसी प्रकार ( इन्द्रः वृत्रं जघान ) इन्द्रने वृत्रको मारकर सहायता की।

१७ यतिः न [ ९५४ ]— संयमी वीर जैसे शत्रुको मारता है, उसी प्रकार इन्द्रने ( तलं विभेद ) बल राक्षसको मारा।

१८ भृगुः न [ ९५४ ]— भृगु जैसे शत्रुका नाश करता है, उसी तरह इन्द्र ( शत्रून् खासहे ) शत्रुका पराभव करता है।

इस प्रकार इस अध्यायमें उपमायें आई हैं।



## पञ्चमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                             | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|----------------------------------|-------------|---------|
| ( १ )       |              |                                  |             |         |
| ८८६         | ९।८६।४       | अकृष्टा माषाः                    | पवमानः सोमः | जगती    |
| ८८७         | ९।८६।६       | अकृष्टा माषाः                    | "           | "       |
| ८८८         | ९।८६।५       | अकृष्टा माषाः                    | "           | "       |
| ८८९         | ९।६१।१६      | अमहीयुरांगिरसः                   | "           | गायत्री |
| ८९०         | ९।६१।१८      | अमहीयुरांगिरसः                   | "           | "       |
| ८९१         | ९।६१।१७      | अमहीयुरांगिरसः                   | "           | "       |
| ८९२         | ९।४१।१       | मेध्यातिथिः काण्वः               | "           | "       |
| ८९३         | ९।४१।२       | मेध्यातिथिः काण्वः               | "           | "       |
| ८९४         | ९।४१।३       | मेध्यातिथिः काण्वः               | "           | "       |
| ८९५         | ९।४१।४       | मेध्यातिथिः काण्वः               | "           | "       |
| ८९६         | ९।४१।५       | मेध्यातिथिः काण्वः               | "           | "       |
| ८९७         | ९।४१।६       | मेध्यातिथिः काण्वः               | "           | "       |
| ( २ )       |              |                                  |             |         |
| ८९८         | ९।३९।१       | बृहन्मतिरांगिरसः                 | "           | "       |
| ८९९         | ९।३९।२       | बृहन्मतिरांगिरसः                 | "           | "       |
| ९००         | ९।३९।३       | बृहन्मतिरांगिरसः                 | "           | "       |
| ९०१         | ९।३९।४       | बृहन्मतिरांगिरसः                 | "           | "       |
| ९०२         | ९।३९।५       | बृहन्मतिरांगिरसः                 | "           | "       |
| ९०३         | ९।३९।६       | बृहन्मतिरांगिरसः                 | "           | "       |
| ९०४         | ९।६५।१       | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भर्गवो वा | "           | "       |
| ९०५         | ९।६५।२       | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भर्गवो वा | "           | "       |
| ९०६         | ९।६५।३       | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भर्गवो वा | "           | "       |
| ( ३ )       |              |                                  |             |         |
| ९०७         | ५।११।१       | सुतंभर आश्रेयः                   | अग्निः      | जगती    |
| ९०८         | ५।११।६       | सुतंभर आश्रेयः                   | "           | "       |
| ९०९         | ५।११।२       | सुतंभर आश्रेयः                   | "           | "       |
| ९१०         | २।४१।४       | गृत्समदः शौनकः                   | मित्रावरुणौ | गायत्री |
| ९११         | २।४१।५       | गृत्समदः शौनकः                   | "           | "       |
| ९१२         | २।४१।६       | गृत्समदः शौनकः                   | "           | "       |
| ९१३         | १।८४।१३      | गोतमो राहूगणः                    | इन्द्रः     | "       |
| ९१४         | १।८४।१४      | गोतमो राहूगणः                    | "           | "       |
| ९१५         | १।८४।१५      | गोतमो राहूगणः                    | "           | "       |
| ९१६         | ७।९४।१       | वसिष्ठो मित्रावरुणिः             | इन्द्राग्नी | "       |
| ९१७         | ७।९४।२       | वसिष्ठो मित्रावरुणिः             | "           | "       |
| ९१८         | ७।९४।३       | वसिष्ठो मित्रावरुणिः             | "           | "       |
| ( ४ )       |              |                                  |             |         |
| ९१९         | ९।१५।१       | बृहच्च्युत आगस्त्यः              | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ९२०         | ९।१५।२       | बृहच्च्युत आगस्त्यः              | "           | "       |
| ९२१         | ९।१५।३       | बृहच्च्युत आगस्त्यः              | "           | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः   | देवता       | छन्दः  |
|-------------|--------------|--|-------------|--|
| ९२२         | ९।१०७।१९     | सप्तर्षयः  | पवमानः सोमः | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती )        |
| ९२३         | ९।१०७।२०     | सप्तर्षयः  | "           | "  |
| ९२४         | ९।४०।१       | बृहन्मतिरांगिरसः   | "           | गायत्री  |
| ९२५         | ९।४०।२       | बृहन्मतिरांगिरसः   | "           | "  |
| ९२६         | ९।४०।३       | बृहन्मतिरांगिरसः   | "           | "  |
| ( ५ )       |              |  |             |  |
| ९२७         | ७।२२।१       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः   | इन्द्रः     | विराट्   |
| ९२८         | ७।२२।२       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः   | "           | "  |
| ९२९         | ७।२२।३       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः   | "           | "  |
| ९३०         | ८।९०।१०      | रेभः काश्यपः   | "           | अतिजगती  |
| ९३१         | ८।९७।१२      | रेभः काश्यपः   | "           | उपरिष्ठाद्बृहती                                  |
| ९३२         | ८।९७।११      | रेभः काश्यपः   | "           | "  |
| ९३३         | ८।७०।१       | पुरुहन्मा आंगिरसः  | "           | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती )        |
| ९३४         | ८।७०।२       | पुरुहन्मा आंगिरसः  | "           | "  |
| ( ६ )       |              |  |             |  |
| ९३५         | ९।९।१        | असितः काश्यपो देवलो वा   | पवमानः सोमः | गायत्री  |
| ९३६         | ९।९।३        | असितः काश्यपो देवलो वा   | "           | "  |
| ९३७         | ९।९।२        | असितः काश्यपो देवलो वा   | "           | "  |
| ९३८         | ९।१०८।३      | शक्तिर्वासिष्ठः  | "           | काकुभः प्रगाथः ( विषमा<br>ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| ९३९         | ९।१०८।४      | ऊहरांगिरसः   | "           | "  |
| ९४०         | ९।१०६।१०     | अग्निश्चाक्षुषः  | "           | उष्णिक्  |
| ९४१         | ९।१०६।११     | अग्निश्चाक्षुषः  | "           | "  |
| ९४२         | ९।१०६।१२     | अग्निश्चाक्षुषः  | "           | "  |
| ९४३         | ९।९६।५       | प्रतर्दनो देवोदासिः  | "           | त्रिष्टुप्                                       |
| ९४४         | ९।९६।६       | प्रतर्दनो देवोदासिः  | "           | "  |
| ९४५         | ९।९६।७       | प्रतर्दनो देवोदासिः  | "           | "  |
| ( ७ )       |              |  |             |  |
| ९४६         | ८।१०२।७      | प्रयोगो भार्गवः  | अग्निः      | गायत्री  |
| ९४७         | ८।१०२।८      | प्रयोगो भार्गवः  | "           | "  |
| ९४८         | ८।१०२।९      | प्रयोगो भार्गवः  | "           | "  |
| ९४९         | १।८४।४       | गोतमो राहूगणः  | इन्द्रः     | अनुष्टुप्  |
| ९५०         | १।८४।६       | गोतमो राहूगणः  | "           | "  |
| ९५१         | १।८४।५       | गोतमो राहूगणः  | "           | "  |
| ९५२         | —            | पावकोऽग्निर्बर्हिस्पत्यो वा, गृहपति-<br>यविष्ठौ सहसः पुत्रान्यतरो वा | "           | तृचात्मकं सुष्ठम्                                |
| ९५३         | —            | पावकोऽग्निर्बर्हिस्पत्यो वा, गृहपति-<br>यविष्ठौ सहसः पुत्रान्यतरो वा | "           | "  |
| ९५४         | —            | पावकोऽग्निर्बर्हिस्पत्यो वा, गृहपति-<br>यविष्ठौ सहसः पुत्रान्यतरो वा | "           | "  |



## अथ षष्ठोऽध्यायः ।



अथ तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ ३ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ ( अकृष्टा मावावयः ) त्रयः ऋषयः; २ कश्यपो सारीचः; ३, ४, १३ असितः काश्यपो देवलो वा;  
 ५ अवत्सारः काश्यपः; ६, १६ जमदग्निर्भागवः; ७ अरणो बँतहृष्यः; ८ उरुचक्रिरात्रेयः; ९ कुक्षुतिः काण्वः;  
 १० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ११ भृगुर्वाहणिर्जमदग्निर्भागवो वा; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो  
 सारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिभौमः, ५ विश्वामित्रो गायिनः, ६ जमदग्निर्भागवः, ७ वसिष्ठो मंत्रा-  
 वरुणिः ); १४, १५, २३ गोतमो राहूगणः; १७ ( १ ) उर्ध्वसप्ता आंगिरसः, १७ ( २ ) कृतयशा आंगिरसः,  
 १८ त्रित आप्यः; १९ रेभसूनु काश्यपौ; २० मन्युर्वसिष्ठः; २१ वसुधुत आत्रेयः; २२ नृमेघ आंगि-  
 रसः ॥ १-६, ११-१३; १६-२० पवमानः सोमः; ७, २१ अग्निः; ८ मित्रावरुणौ; ९, १४-१५,  
 २२-२३ इन्द्रः, १० इंद्राग्नी ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३, १६ गायत्री; १२ बृहती,  
 १४, १५, २१ पंक्तिः; १७ काकुभः प्रगाथः- ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती );  
 १८, २२ उष्णिक्; १९, २३ अनुष्टुप्; २० त्रिष्टुप् ॥

९५५ गोवित्पवस्व वसुविद्विरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।

त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।३९ )

९५६ त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।

स नः पवस्व वसुमद्विरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८६।३८ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ९५५ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( गो-वित् ) गायोंको पासमें रखनेवाला, ( वसु-वित् ) धनको पासमें रखनेवाला,  
 ( हिरण्य-वित् ) सोनेको पासमें रखनेवाला ( रेतो-धाः ) वीर्य धारण करनेवाला ( भुवनेषु अर्पितः ) भुवनोंमें रहने-  
 वाला ऐसा तू ( पवस्व ) छनता जा । हे ( सोम ) सोम ! तू ( सुवीरः ) उत्तमवीर और ( विश्व-वित् ) सर्व ज्ञानी  
 ( असि ) है, हे ( नरः ) नेता सोम ! ( तं त्वा ) उस तेरी ( इमे गिरा उपासते ) ये ऋत्विज स्तोत्रसे उपासना  
 करते हैं ॥ १ ॥

[ ९५६ ] हे ( पवमान वृषभ सोम ) शुद्ध होनेवाले बलवधंक सोम ! ( त्वं विश्वतः नृचक्षाः असि ) तू सब  
 प्रकारसे मनुष्योंका साक्षी है । ( ताः विधावसि ) उनके पास तू जाता है ( सः नः ) वह तू हमारे लिए ( पवस्व )  
 छनता जा, उसकी सहायतासे ( वयं ) हम ( वसुमत् द्विरण्यवत् ) धन और सुवर्णसे युक्त होकर ( भुवनेषु जीवसे  
 स्याम ) लोकोंमें जीवनवाले हों ॥ २ ॥

१४ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



९५७ ईशान इमा भुवनानि इयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्णः ।

तास्ते क्षरन्तु मधुमदघृतं पयस्तव व्रतं सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३ ॥ १ (खी) ॥

[ धा० ४१ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।८६।३७ )

९५८ पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।७ )

९५९ केतुं कृण्वे दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे । ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।८ )

९६० जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । ऋन्दं देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ २ (पा) ॥

[ धा० १५ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६४।९ )

९६१ प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्द्रवः । श्रीणाना अप्सु वृज्जते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२४।१ )

९६२ अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाश्रत ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२४।२ )

९६३ प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२४।३ )

९६४ इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२४।५ )

[ ९५७ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( ईशानः ) सबका स्वामी तू ( हरितः सुपर्णः युजानः ) हरे रंगके शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंको रथमें जोड़कर ( इमा भुवनानि ) इन सब भुवनोंमें ( इयसे ) जाता है । ( ताः ) वे ( ते ) तेरे रस ( मधुमत् घृतं पयः ) मीठे और चमकनेवाले जलोंमें ( क्षरन्तु ) छाने जायें । हे ( सोम ) सोम ! ( कृष्टयः ) यज्ञ करनेवाले मनुष्य ( तव व्रते तिष्ठन्तु ) तेरे यज्ञकर्ममें संलग्न रहें ॥ ३ ॥

[ ९५८ ] हे ( विश्ववित् ) सर्वज्ञ सोम ! ( पवमानस्य ते सर्गाः ) छनकर शुद्ध होनेवाली तेरी धारायें ( सूर्यस्य रश्मयः इव ) सूर्यकी किरणोंके समान ( न प्रासृक्षत ) इस वक्त नीचे गिर रही हैं ॥ १ ॥

[ ९५९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( समुद्रः ) पानीमें मिलाया गया तू ( केतुं कृण्वन् ) ज्ञानका प्रसार करते हुए ( विश्वा रूपा ) सब रूपोंसे युक्त होकर ( दिवः परि अभ्यर्षसि ) अन्तरिक्षके मार्गसे जाता है और हमें ( पिन्वसे ) अनेक प्रकारके धन देता है ॥ २ ॥

[ ९६० ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( देवः सूर्यः न ) तेजस्वी सूर्यके समान ( जज्ञानः ) प्रकट होने-वाला तू ( विधर्मणि ) छलनीसे ( ऋन्दन् ) शब्द करते हुए ( वाचं इष्यसि ) स्तुतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ ९६१ ] ( पवमानासः इन्द्रवः सोमासः ) छाने जानेवाले सोमरस ( प्राधन्विषुः ) नीचेके बर्तनमें गिरते हैं, ( श्रीणानाः ) वे सोमरस दूधमें मिलाकर ( अप्सु वृज्जते ) पानीमें मिलाये जाते हैं ॥ १ ॥

[ ९६२ ] ( गावः [ इन्द्रवः ] ) छाने जानेवाले सोमरस ( प्रवता यतीः ) नीचेके बर्तनमें जाते हुए ( आपः न ) पानीके समान ( अभि अधन्विषुः ) छलनीसे नीचे छाने जाते हैं । ( पुनानाः ) छाने हुए ये सोमरस ( इन्द्रं आश्रत ) इन्द्रको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

[ ९६३ ] हे ( पवमान सोम ) छाने जानेवाले सोम ! ( इन्द्राय मादनः ) इन्द्रको उत्साह देनेवाला तू ( प्र धन्वसि ) छलनीसे नीचे गिरता है, बादमें ( नृभिः यतः ) ऋत्विजोंके द्वारा ( विनीयसे ) तू यज्ञ स्थानके पास ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

[ ९६४ ] हे ( इन्दो ) सोम ! तू ( यत् अद्रिभिः सुतः ) जब पत्थरों द्वारा कूटकर रस निकालनेके बाद ( पवित्रं परिदीयसे ) छलनीके पास ले जाया जाता है, तब ( इन्द्रस्य धाम्ने अरं ) इन्द्रके पेटमें जाने योग्य होता है ॥ ४ ॥



९६५ त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२४।४ )

९६६ पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२४।६ )

९६७ शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ ३ ( है ) ॥

[ धा० ४१ । उ० नास्ति । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।२४।७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

९६८ प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२०।१ )

९६९ स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२०।२ )

९७० परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२०।३ )

९७१ अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवश्चरयिम् । इषंस्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।२०।४ )

९७२ त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ । पुनानो वहे अद्भुत ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२०।५ )

९७३ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।२०।६ )

[ ९६५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नृमादनः ) मनुष्योंको आनन्द देनेवाला ( चर्षणी-धृतिः ) ऋत्विजोंके द्वारा धारण किया गया ( त्वं पवस्व ) तू छनता जा, ( यः सस्निः ) जो सोम शुद्ध और ( अनुमाद्यः ) प्रशंसनीय है ॥ ५ ॥

[ ९६६ ] हे सोम ! ( उक्थेभिः अनुमाद्यः ) स्तोत्रोंसे स्तुति करने योग्य ( अद्भुतः शुचिः पावकः ) अद्भुत, शुद्ध और पवित्र तू ( वृत्रहन्तमः पवस्व ) शत्रुका नाश करनेवाला होकर पवित्र हो ॥ ६ ॥

[ ९६७ ] ( सुतः मधुमान् ) निचोड़ा गया, मीठा ( शुचिः पावकः ) पवित्र, शुद्ध ( देवावीः ) देवोंको तृप्त करनेवाला और ( अघ-शंस-हा सः ) पापी असुरोंका नाशक ऐसा वह सोम ( उच्यते ) वर्णित होता है ॥ ७ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ९६८ ] ( कविः ) ज्ञानी सोम ( देव-वीतये ) देवोंके देनेके लिए ( अव्या वारेभिः ) भेड़के बालोंकी छलनीसे ( अव्यत ) छाना जाता है । ( साह्वान् ) शत्रुको हरानेवाला सोम ( विश्वाः स्पृधः अभि ) सब दुष्टोंको हराता है ॥ १ ॥

[ ९६९ ] ( पवमानः ) पवित्र होनेवाला ( स हि स्म ) वह सोम ही ( जरितृभ्यः ) स्तुति करनेवालोंको ( गोमन्तं सहस्रिणं वाजं ) गायोंसे युक्त हजारों प्रकारके अन्न ( आ इन्वति ) देता है ॥ २ ॥

[ ९७० ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( मती ) हमारी स्तुतिके लिए ( मृज्यसे ) छाना जाता है, ( सः ) वह तू ( नः ) हमें ( चेतसा ) बुद्धिपूर्वक ( विश्वानि श्रवः विदः ) अनेक प्रकारके अन्न दे ॥ ३ ॥

[ ९७१ ] हे सोम ! ( मघवद्भ्यः स्तोतृभ्यः ) धनवान् स्तोताओंके लिए ( बृहत् यशः ) महान् यश ( ध्रुवं रयिं ) स्थायी धन ( अभ्यर्ष ) दे और ( इषं आ भर ) अन्नभी भरपूर दे ॥ ४ ॥

[ ९७२ ] हे ( वहे ) यज्ञ करनेवाले ( अद्भुत सोम ) अद्भुत सोम ! ( सुव्रतः पुनानः राजा इव ) उत्तम कर्म करनेवाले पवित्र हृदयवाले राजाके समान ( गिरः आ विवेशिथ ) हमारी स्तुतिको तू स्वीकार करता है ॥ ५ ॥

[ ९७३ ] ( वह्निः ) यज्ञ करनेवाला ( अप्सु दुष्टरः ) जलमें मिलाया जानेवाला ( गभस्त्योः मृज्यमानः ) हाथोंसे साफ किया जानेवाला ( सः सोमः ) वह सोम ( चमूषु सीदति ) बर्तनमें जाकर रहता है ॥ ६ ॥



- ९७४ <sup>३ २ ३ १</sup> क्रीडमखौ न म<sup>२२ ३२</sup>ह्युः पवित्रं<sup>३ १ २</sup> सोम गच्छसि । <sup>१ २ ३ २ ३ १ २</sup> दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ ४ (को) ॥  
[ धा० २१ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. १।२०।७ )
- ९७५ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यवयवं नो अन्धसा पुष्टं पुष्टं परि स्रव । <sup>१ २ ३ १ २</sup> विश्वा च सोम सौमगा ॥ १ ॥ ( ऋ. १।५५।१ )
- ९७६ <sup>२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २</sup> इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । <sup>२ ३ १ २ ३ १ २</sup> नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।५५।२ )
- ९७७ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।५५।३ )
- ९७८ <sup>२ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २</sup> यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । <sup>१ २</sup> स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ ५ (हि) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।५५।४ )
- ९७९ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २</sup> यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । <sup>१ २ ३ २ ३ १ २</sup> ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६२।७ )
- ९८० <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २</sup> सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । <sup>१ २ ३ २ ३ १ २</sup> सीदन्नतस्य योनिमा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६२।८ )
- ९८१ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ २</sup> त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्टो अङ्गिरोभ्यः । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> वरिवोविद्वृतं पयः ॥ ३ ॥ ६ (हि) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।६२।९ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ९७४ ] हे ( सोम ) सोम ! ( क्रीडुः ) खेल करनेवाला ( मखः न ) यज्ञके समान ( मंह-युः ) बान देनेकी इच्छा करनेवाला तू ( स्तोत्रे ) स्तुति करनेवालेको ( सुवीर्यं दधत् ) उत्तम वीरता देकर ( पवित्रं गच्छसि ) छलनी पर जाता है ॥ ७ ॥

[ ९७५ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नः ) हमारे लिए ( पुष्टं पुष्टं यवं यवं ) अत्यधिक पोष्टिक रसको ( अन्धसा परिस्त्रव ) अन्नकी धारासे बहाता रह ( च ) और ( विश्वा सौमगा ) सब ऐश्वर्य दे ॥ १ ॥

[ ९७६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( ते अन्धसः स्तव ) तेरे अन्नके स्तोत्र ( तव यथा जातं ) तेरे लिए जैसे बनाये गए हैं, उसी प्रेमके साथ तू ( प्रिये बर्हिषि निषदः ) प्रिय आसन पर बैठ ॥ २ ॥

[ ९७७ ] ( उत सोम ) और हे सोम ! ( नः ) हमें तू ( मक्षूतमेभिः अहभिः ) बहुत जल्दी ही ( गो-वित् ) गाय देनेवाला ( अश्ववित् ) घोड़े देनेवाला, ( अन्धसा पवस्व ) और अन्न देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ ९७८ ] हे ( सहस्रजित् ) हजारों शत्रुओंको जीतनेवाले सोम ! ( यः जिनाति ) जो तू शत्रुओंको जीतता है और ( शत्रुं अभीत्य हन्ति ) शत्रुपर आक्रमण करके उन्हें मारता है, पर ( न जीयते ) स्वयं शत्रुसे कभी जीता नहीं जाता ( सः पवस्व ) ऐसा वह तू धारसे छनता जा ॥ ४ ॥

[ ९७९ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( ते ) तेरी ( मधुश्चुतः याः धाराः ) मीठी रसकी जो धारायें हैं, वे ( ऊतये असृग्रम् ) संरक्षणके लिए हैं, ( ताभिः पवित्रं आसदः ) उन धाराओंके साथ तू छलनी पर चढ़ ॥ १ ॥

[ ९८० ] हे सोम ! ( सः ) वह तू ( अव्यया वाराणि ) भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे ( तिरः ) छनता है, ( ऋतस्य योनिं आसीदन् ) यज्ञके स्थानपर बैठकर ( इन्द्राय पीतये अर्प ) इन्द्रके पीनेके लिए तू तैय्यार हो, छन ॥ २ ॥

[ ९८१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( स्वादिष्टः ) तू स्वादिष्ट है, और ( वरिवो-वित् ) धन देनेवाला है, इसलिए तू ( अङ्गिरोभ्यः ) अङ्गिराऋषियों के लिए ( घृतं पयः परिस्त्रव ) तेजस्वी दूध दे ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ३ ]

- ९८२ तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवोतयः ।  
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।९।१५ )
- ९८३ वातोपजृत् इषितो वशाः अनु तृषु यदन्ना वेविषदितिष्ठसे  
आ ते यतन्ते रथयोऽथथा पृथक् शर्धाःस्यमे अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।९।१७ )
- ९८४ मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निहोतारं परिभूतरं मतिम् ।  
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्रां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥ ३ ॥ ७ ( बु ) ॥  
[ धा० ३९ । उ० ३ । स्व० ९ ] ( ऋ. १०।९।१८ )
- ९८५ पुरूरुणा चिद्व्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वःसि वाःसुमतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।७०।१ )
- ९८६ ता वाः सम्यग्द्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।७०।२ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ९८२ ] हे अग्ने ! ( यत् ) जब तू ( ओषधीः वनानि च ) ओषधी और वन ( अभिसृष्टः ) जलानेके लिए लेता है, ( स्वयं आसनि ) तब स्वयं अपने मुंहमें ( अन्नं परिचिनुषे ) स्थावर और जंगमरूपी जगत्के अन्नको डालता है, उस समय ( तव श्रियः ) तेरी किरणें ( वर्ष्यस्य विद्युतः इव ) वर्षाकालमें बिजलीके समान ( उषसां ऊतयः इव ) अथवा उषःकालके प्रकाशके समान ( चिकित्रे ) बीखने लगती ह ॥ १ ॥

[ ९८३ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( यत् वातोपजृत् ) जब तू वायुके द्वारा कंपाया जाता है, तब ( वशान् अनु ) प्रिय वनस्पतियोंमें ( तृषु इषितः ) शीघ्र प्रेरित होकर ( अन्ना वेविषत् ) अपने अन्नको घेरता है, और ( वितिष्ठसे ) वहीं पर रहता है, तब ( अजरस्य धक्षतः ते ) बुढ़ापारहित तरुणके समान भस्म करनेकी इच्छावाले तेरे ( शर्धासि ) तेज ( रथयः यथा ) रथपर चढ़े हुए वीरके समान ( पृथक् आयतन्ते ) पृथक् पृथक् बढते हुए बिछाई देते हैं ॥ २ ॥

[ ९८४ ] ( मेधाकारं ) बुद्धिको बढानेवाले ( विदथस्य प्रसाधनं ) यज्ञके साधन ( होतारं ) देवोंको बुलाकर लानेवाले ( परि-भू-तरं ) शत्रुके पराभव करनेवाले ( मतिं ) बुद्धिके प्रेरक ( अग्निः ) अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं । हे अग्ने ! ( त्वां इत् ) तुझे ही ( अर्भस्य हविषः ) थोड़ेसे हविष्यान्नको खानेके लिए ( त्वां इत् महः ) और तुझे ही बहुतसी हवि खानेके लिए ( समानं वृणते ) एकत्र होकर प्रार्थना करते हैं, बुलाते हैं, ( त्वत् अन्यं न ) तेरे सिवाय और किसी देवता को नहीं बुलाते ॥ ३ ॥

[ ९८५ ] हे मित्र और वरुण ! ( वां ) तुम दोनोंके ( पुरूरुणा अवः ) बहुतसे संरक्षणके साधन ( नूनं अस्ति ) निश्चयसे हैं, यह ( हि ) प्रसिद्ध ही है, ( चित् ) और ( वरुण मित्र ) हे मित्र और वरुण ! हमें ( वां सुमतिं वंसि ) तुम्हारी अनुकूल और उत्तम बुद्धि प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ ९८६ ] हम स्तोता ( अ-द्रुह्वाणा ) द्रोह न करनेवाले ( ता वां ) तुम दोनोंकी ( सम्यक् ) अच्छी तरह स्तुति करते हैं । ( वयं ) हम ( वां मित्रा स्याम ) तुम्हारे मित्र हों और ( इषं ) अन्नको ( च धाम ) और स्थानको ( अश्याम ) प्राप्त करें ॥ २ ॥



९८७ पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथाऽसुत्रात्रा । साह्याम दस्युं तनूभिः ॥ ३ ॥ ८ ( य ) ॥  
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ५।७०।३ )

९८८ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७६।१० )

९८९ अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमान मदेताम् । इन्द्र यदस्युहाभवः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७६।११ )

९९० वाचमष्टापदीमहं नवसक्तिमृतावृधम् । इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥ ३ ॥ ९ ( ही ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।७६।१२ )

९९१ इन्द्राग्नी युवामिमेऽभि स्तोमा अनूषत । पिवतंश्शम्भुवा सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।६०।७ )

९९२ या वाऽसन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी तामिरा गतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।८ )

९९३ तामिरा गच्छतं नरोपेदऽसवनऽसुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ( हा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति० । स्व० २ ] ( ऋ. ६।६०।९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

९९४ अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्धोनौ वनेष्वा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६५।१९ )

[ ९८७ ] हे ( मित्रा ) मित्र और बरुणो ! तुम ( नः ) हमारी ( पायुभिः पातं ) संरक्षणके साधनोंसे रक्षा करो, ( उत ) और ( सुत्रात्रा त्रायेथां ) उत्तम संरक्षण करनेवाले तुम हमारा पालन करो, हम भी ( तनूभिः ) अपने शारीरिक सामर्थ्योंसे ( दस्युन् साह्याम ) शत्रुका पराभव करें ॥ ३ ॥

[ ९८८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( चमू सुतं सोमं पीत्वा ) वर्तनमें रखे हुए सोमरसको पीकर ( ओजस सह उत्तिष्ठन् ) बल लगाकर उठकर ( शिप्रे अवेपयः ) अपनी ठुड्डीको हिला ॥ १ ॥

[ ९८९ ] हे ( स्पर्धमान इन्द्र ) स्पर्धा करनेवाले इन्द्र ! ( त्वा अनु ) तेरे अनुकूल ( उभे रोदसी ) दोनों ही ध्रुलोक और पृथ्वीलोक ( मदेतां ) आनन्दित होते हैं ( यत् ) जब तू ( दस्युहा भवः ) शत्रुका नाश करनेवाला होता है ॥ २ ॥

[ ९९० ] ( अष्टापदीं ) आठ चरणकी ( नव-सक्तिं ) नई कल्पनासे युक्त ( ऋता-वृधं ) सत्यको बढ़ानेवाली ( तन्वं वाचं ) छोटी ही स्तुति ( अहं परिममे ) में करता हूँ ॥ ३ ॥

[ ९९१ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( युवां ) तुम दोनोंकी ( इमे स्तोमाः अभ्यनूषत ) ये स्तुति करनेवाले स्तुति करते हैं, हे ( शं-भुवा ) सुख देनेवाले इन्द्र और अग्नि ! ( सुतं पिवतं ) सोमरसको पीओ ॥ १ ॥

[ ९९२ ] ( नरा इन्द्राग्नी ) हे नेता इन्द्र और अग्ने ! ( वां ) तुम दोनोंके ( पुरु-स्पृहः ) बहुतों द्वारा प्रवर्षा करनेके योग्य ( दाशुषे ) दान देनेवालेकी सहायताके लिए ( याः नियुतः सन्ति ) जो घोड़ियां हैं ( तामिः आगतं ) उनकी सहायतासे यहां आओ ॥ २ ॥

[ ९९३ ] हे ( नरा इन्द्राग्नी ) नेता इन्द्र और अग्ने ! ( इदं सुतं सवनं उप ) इस शुद्ध किए गए सोमरसके पास ( सोम-पीतये ) सोम पीनेके लिए ( तामिः आगच्छतं ) उन घोड़ियोंके साथ आओ ॥ ३ ॥

॥ यद्वां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ९९४ ] ( सोम ) हे सोम ! ( द्युमत्तमः ) तेजस्वी तू ( वनेषु योनौ आसीदन् ) लकड़ीके पात्रमें रहकर ( द्रोणानि अभि ) द्रोण कलसेमें ( रोरुवत् अर्षा ) शब्द करते हुए जा ॥ १ ॥



९९५ <sup>३ १ २२ ३ २ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २</sup> अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६९।२० )

९९६ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यः सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ ११ ( ला ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६९।२१ )

९९७ <sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> सोम उ स्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।  
<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अश्वयेव हरिता याति भारया मन्द्रया याति धारया ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।८ )

९९८ <sup>३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।  
<sup>३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २</sup> समुद्रे न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ २ ॥ १२ ( फ ) ॥

[ धा० १५ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।१०७।९ )  
९९९ <sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१९।१ )

१००० <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> वृषा पुनान आयूँषि स्तनयन्निधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१९।२ )

१००१ <sup>३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> युवँहि स्थः स्वः पती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ३ ॥ १३ ( पु ) ॥  
[ धा० १५ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ९।१९।२ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ९९५ ] ( अप्सा ) पानीके साथ मिले हुए ( सोमाः ) सोमरस ( इन्द्राय वायवे ) इन्द्र, वायु ( वरुणाय मरुद्भ्यः ) वरुण, मरुत् ( विष्णवे अर्षन्तु ) और विष्णुके लिए कलसेमें आवें ॥ २ ॥

[ ९९६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( तोकाय ) हमारे पुत्रोंके लिए ( इषं दधत् ) अन्न दे; ( सहस्रिणं ) हजार प्रकारके धन ( विश्वतः अस्मभ्यं आ पवस्व ) चारों ओरसे हमारे लिए लाकर दे ॥ ३ ॥

[ ९९७ ] ( सोतृभिः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा ( स्वाणः सोमः ) निचोड़ा गया सोमरस ( अवीनां स्नुभिः ) भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे ( अधि याति ) वेगसे छाना जाता है, यह रस ( उ ) निश्चयसे ( अश्वया इव ) घोड़ीके समान ( हरिता धारया ) हरे रंगकी धारासे ( मन्द्रया धारया ) आनन्दकारक धारासे ( याति ) कलसेमें गिरता है ॥ १ ॥

[ ९९८ ] ( गोमान् सोमः ) गायोंसे युक्त सोम ( अनूपे गोभिः अक्षाः ) कलसेमें गायके दूधके साथ टपकता है, ( सोमः दुग्धाभिः अक्षाः ) सोम दूधके साथ टपकता है, ( समुद्रे न ) जिस प्रकार समुद्रमें नदियां गिरती हैं उसी प्रकार ( सं वरणानि अगमन् ) सोमरसरूपी अन्न कलसेमें गिरता है, ( मन्दी मदाय तोशते ) आनन्ददायक सोम आनन्द प्राप्तिके लिए फूटा जाता है ॥ २ ॥

[ ९९९ ] ( सोम ) सोम ! ( यत् ) जो ( चित्रं उक्थ्यं दिव्यं ) विलक्षण, प्रशंसनीय और दिव्य ( पार्थिवं वसु ) ऐसा पृथ्वीके ऊपर धन है ( तत् ) वह धन ( पुनानः नः आभर ) शुद्ध होनेवाला तू हमें भरपूर दे ॥ १ ॥

[ १००० ] ( आयूँषि पुनानः ) याजकोंके आयुओंको पवित्र करनेवाला ( वृषा स्तनयन् ) बलसे शब्द करता हुआ हे सोम ! ( अधि बर्हिषि ) आसन पर ( हरिः सन् ) हरे रंगका होता हुआ तू ( योनिं आसदः ) अपने स्थान पर बैठ ॥ २ ॥

[ १००१ ] ( सोम च इन्द्र ) हे सोम और इन्द्र ! ( युवँहि स्वः पती स्थः ) तुम दोनों निश्चयसे सबके स्वामी हो, ( गोपती ईशाना ) गोपालक और ऐश्वर्योंके स्वामी ऐसे तुम ( धियं पिप्यतं ) हमारी बुद्धियोंको पुष्ट करो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ५ ]

- १००२ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।  
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्मे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।११ )
- १००३ असि हि वीर सैन्योऽसि भूरि पराददिः ।  
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।१२ )
- १००४ यदुदीरत आजयोः धृष्णवे धीयते धनम् ।  
युद्ध्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्मां इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥ १४ (खु) ॥  
[ धा० २६ । उ० २ । स्व० ९ ] ( ऋ १।८।१३ )
- १००५ स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।  
या इन्द्रेण सयावरीवृष्णा मदन्ति शोभया वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१० )
- १००६ ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।  
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८।११ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १००२ ] ( वृत्र-हा इन्द्रः ) शत्रुनाशक इन्द्र ( मदाय शवसे ) आनन्द तथा बलकी प्राप्तिके लिए ( नृभिः वावृधे ) याजकों द्वारा ही और अधिक महान् किया गया है, ( तं इत् ) उसके पाससेही ( महत्सु आजिषु ) महान् संग्रामोंमें और ( अर्भे ) छोटे युद्धोंमें ( ऊति हवामहे ) हम संरक्षण मांगते हैं, ( सः वाजेषु ) वह युद्धमें ( नः प्राविषत् ) हमारा संरक्षण करे ॥ १ ॥

[ १००३ ] हे ( वीर ) वीर इन्द्र ! ( सैन्यः असिः ) तू सैनिक है, इसलिए ( भूरिः पराददिः असि ) शत्रुका बहुतसा धन हरण करनेवाला है, ( दभ्रस्य चित् वृधः ) छोटोंकी तू महान् करनेवाला है । ( सुन्वते यजमानाय शिक्षसि ) सोमयाग करनेवाले यजमानोंको तू धन देता है, क्योंकि ( ते भूरि वसु ) तेरे पास बहुतसा धन है ॥ २ ॥

[ १००४ ] ( यत् आजयः उदीरते ) जब युद्ध उत्पन्न होते हैं तब ( धृष्णवे धना धीयते ) विजयी वीरको धन मिलता है, हे इन्द्र ! युद्धके समय ( मदच्युता हरी युद्ध्व ) मर चुकानेवाले घोड़े रथमें जोड़ । ( कं हनः ) किसको मारना है और ( कं वसौ दधः ) किसको धनमें स्थापित करना है यह निश्चित कर । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अस्मान् वसौ दधः ) हमें धनमें स्थापित कर ॥ ३ ॥

[ १००५ ] ( स्वादोः ) मीठे ( इत्था विषूवतः मधोः ) और इस प्रकार सब यज्ञमें व्यापनेवाले मीठे सोमरसको ( गौर्यः पिबन्ति ) सफेद रंगकी गायें पीती हैं ( याः इन्द्रेण शोभयाः ) जो इन्द्रके साथ रहकर सुशोभित होती हैं । ( वृष्णाः सयावरीः मदन्ति ) बलशाली इन्द्रके साथ जानेवाली गायें आनन्दित दीखती हैं ऐसी ( वस्वीः स्वराज्यं अनु ) बूध लेकर निवास करनेवाली गायें अपने राज्यमें रहती हैं ॥ १ ॥

[ १००६ ] ( ताः अस्य ) वे इस इन्द्रके ( पृशनायुवः पृश्नयः ) स्पर्शकी इच्छा करनेवाली गायें ( सोमं श्रीणन्ति ) अपना बूध सोमरसमें मिलाती हैं । ( इन्द्रस्य प्रियाः धेनवः ) इन्द्रकी प्रिय गायें ( सायकं वज्रं हिन्वन्ति ) शत्रुनाशक वज्रको घेरना देती हैं । ( वस्वीः स्वराज्यं अनु ) अपना बूध लेकर अपने राज्यमें रहती हैं ॥ २ ॥



१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१००७ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
व्रतान्यस्य सश्विरे पुरुणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥ १५ ( व ) ॥

[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व १ ] ( ऋ. १।८४।१२ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१००८ असाव्यः शुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६२।४ )

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१००९ शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥

( ऋ. ९।६२।९ )

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१०१० आदीमश्वं न हेतारमशुशुभ्रममृताय । मधो रसः सधमादे ॥ ३ ॥ १६ ( जु ) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । ख० ९ ] ( ऋ. ९।६२।६ )

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१०११ अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥

( ऋ. २।१०८।९ )

[ १००७ ] ( प्रचेतसः ताः ) विशेष बुद्धिवालीं वे गावें ( अस्य सहः ) इस इन्द्रके साहसकी ( नमसा सपर्यन्ति ) अपने वृधरूपी अंशसे पूजती हैं, ( पूर्व-चित्तये ) पूर्वके कामोंकी समझानेके लिए ( अस्य पुरुणि व्रतानि ) इस इन्द्रके पहलेके बहुतसे कामोंका ( सश्विरे ) ध्यान बिलाती हैं, ( वस्वीः स्वराज्यं अनु ) वृध लेकर अपने राज्यमें इस इन्द्रके अनुकूल होकर रहती हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १००८ ] ( गिरिष्ठाः अंशुः ) पर्वत पर उगनेवाले सोमका ( मदाय असावि ) आनन्दके लिए रस निकाला है । ( अप्सु दक्षः ) बावमें पानीमें भी मिलाया है, उसके बाद ( श्येनः न ) बाज पक्षीके समान ( योनिं आसदत् ) यह अपने स्थान पर बैठता है ॥ १ ॥

[ १००९ ] ( देव-वातं शुभ्रं अन्धः ) देवोंको देनेके लिए स्वच्छ और सुन्दर अन्न अर्थात् ( नृभिः सुतं ) ऋत्विजोंके द्वारा तैय्यार किए गए ( अप्सु धौतं ) पानीमें मिलाये गए सोमरसको ( गावः ) गावें ( पयोभिः स्वदन्ति ) अपना वृध मिलाकर स्वादिष्ट बनाती हैं ॥ २ ॥

[ १०१० ] ( आत् ) बावमें ( हेतारं ईं मधोः रसं ) स्फूर्ति देनेवाले इस सोमरसको ( सधमादे अमृताय अशुशुभ्रं ) यज्ञमें अमरत्व प्राप्त करनेके लिए ऋत्विज ( अश्वं न ) घोड़ेके समान सुशोभित करते हैं ॥ ३ ॥

[ १०११ ] ( इषस्पते देव ) हे अन्नके स्वामी सोमदेव ! ( देवयुं द्युम्नं बृहत् यशः ) देव जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसे तेजस्वी और महान् अन्न ( अभि दिदीहि ) हमें दे, ( मध्यमं कोशं वियुव ) शहबके बर्तनमें जाकर रह ॥ १ ॥



१०१२ आ वच्यस्व सुदक्ष चम्बोः सुतो विशां वह्निर्न विशपतिः ।

वृष्टि दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥ २ ॥ १७ ( डां ) ॥

[ धा० १८ । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०८।१० )

१०१३ प्राणा शिशुमर्हीनाः हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०२।१ )

१०१४ उप त्रितस्य पाथ्योऽरभक्त यदुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरधं प्रियम् ॥ २ ॥

( ऋ. ९।१०२।२ )

१०१५ त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रश्मिम् ।

मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः

॥ ३ ॥ १८ ( री ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।१०२।३ )

१०१६ पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः । इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१००।६ )

१०१७ त्वां सिंहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः । वृत्सं जातं न मातरः पवमानं विधर्मणि ॥ २ ॥

( ऋ. ९।१००।७ )

[ १०१२ ] हे ( सु-दक्ष ) उत्तम बलशाली सोम ! ( चम्बोः सुतोः ) कलसेमें रखा हुआ तू ( वह्निः न ) सब प्रजाओंका चालक या नेता जैसे राजा होता है, उसी प्रकार ( विशां विशपतिः ) तू प्रजाओंका पालक होकर ( आ वच्यस्व ) कलसेमें आ, ( गविष्टये ) गाय पानेकी इच्छावाले यजमानकी ( धियः जिन्वन् ) बुद्धियोंको प्रेरित करते हुए ( दिवः अपः वृष्टिं रीतिं ) छुलीकसे जैसे पानी गिरता है, उसी प्रकार ( पवस्व ) नीचेके वर्तनमें तू छनता जा ॥ २ ॥

[ १०१३ ] ( प्राणाः ) यज्ञका प्राण ( मर्हीनां शिशुः ) जलोंका पुत्र सोम ( ऋतस्य दीधितिं हिन्वन् ) यज्ञके प्रकाशक अपने रसको प्रेरित करते हुए ( विश्वा प्रिया परिभुवत् ) सर्व प्रिय हविकी अपेक्षा भी अधिक महत्वका होता है, और ( अध द्विता ) बादमें छलोक और पृथ्वीलोक दोनोंके बीचमें रहता है ॥ १ ॥

[ १०१४ ] ( त्रितस्य गुहा ) त्रित नामके ऋषिकी गुहामें ( पाथ्योः पदं ) दो पटलोंके बीचके स्थानमें ( यत् उप अभक्त ) जब उन सोमोंको प्राप्त किया, ( अध ) तब ( यज्ञस्य सप्त धामभिः ) यज्ञके सात छन्दोंसे ( प्रियं अभि ) प्रिय सोमकी ऋत्विज स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

[ १०१५ ] हे सोम ! ( धारया ) अपने रसकी धारासे ( त्रितस्य त्रीणि ) त्रितके तीनों सबनोंमें ( पृष्ठेषु रश्मिं पेरयत् ) सामगानके शुरु होनेपर धन देनेवाले इन्द्रको प्रेरित कर, क्योंकि ( सु-क्रतुः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला स्तोता ( अस्य योजना ) इस इन्द्रके स्तोत्रोंका ही ( वि मिमीते ) उच्चारण करता है ॥ ३ ॥

[ १०१६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( सुतः ) रस तैयार करनेके बाद तू ( इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः ) इन्द्र विष्णु और सब देवोंके लिए ( मधुमत्तरः ) अत्यन्त मीठा होकर ( वाज-सातये ) अन्नकी प्राप्तिके लिए ( पवित्रे धारया पवस्व ) छलनीमेंसे धारासे टपक ॥ १ ॥

[ १०१७ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( विधर्मणि ) यज्ञमें ( अ-द्रुहः धीतयः ) द्रोह न करनेवाली अंगुलियां ( हरिं ) हरे रंगवाले ( त्वां पवित्रे रिहन्ति ) तुझे छलनीमें उसी प्रकार दबाती हैं जिस प्रकार ( जातं वृत्सं मातरः न ) नये उत्पन्न हुए बछड़ेकी गायें चाटती हैं ॥ २ ॥



१०१८ त्वं द्यां च महिष्रत् पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।

प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना

॥ ३ ॥ १९ ( ता ) ॥

[ धा० २४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१००।९ )

१०१९ इन्दुर्वाजी पवते गोन्योवा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।

हन्ति रक्षो बाधते पर्यराति वरिषस्कृण्वन्वृजनस्य राजा

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।१० )

१०२० अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।

इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।११ )

१०२१ अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।

इन्दुर्धर्मण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये

॥ ३ ॥ २० ( पी ) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९७।१२ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१०२२ आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

यद्ग स्या ते पनीयसी समिदीदयति द्यवीषः स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।४ )

[ १०१८ ] ( महीव्रत ) यज्ञरूप महान् व्रत करनेवाले सोम ! ( त्वं ) तू ( द्यां च पृथिवीं च ) ध्रुलोक और पृथ्वीको ( अति जभ्रिषे ) उत्तम रीतिसे धारण करता है, हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( महित्वना द्रापि ) तू अपने महत्वके योग्य कवचको ( प्रति अमुञ्चथाः ) धारण करता है ॥ ३ ॥

[ १०१९ ] ( वाजी ) बलवान् ( गोन्योवा ) रस जिससे बहता है, ऐसा ( इन्दुः सोमः ) सोम ( इन्द्रे सहः इन्वन् ) इन्द्रमें साहस उत्पन्न करके ( मदाय पवते ) आनन्द बढ़ानेके लिए छाना जाता है, ( वृजनस्य राजा ) बलका राजा ( वरिषः कृण्वन् ) स्तोताओंको धन देता है, ( रक्षः हन्ति ) राक्षसोंका नाश करता है, और ( अ-राति परि बाधते ) शत्रुओंको कष्ट देता है ॥ १ ॥

[ १०२० ] ( अध ) उसके बाद ( अद्रिदुग्धः ) पत्थरोंसे रस निकाला गया सोम ( मध्वा धारया पृचानः ) मीठी धारासे देवोंको तृप्त करता हुआ ( रोम तिरः पवते ) भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है । ( इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः ) इन्द्रके साथ मित्रताकी इच्छा करते हुए ( देवः मत्सरः इन्दुः ) चमकनेवाला आनन्दवर्धक सोम ( देवस्य मदाय पवते ) इन्द्रके उत्साहको बढ़ानेके लिए छाना जाता है ॥ २ ॥

[ १०२१ ] ( धर्माणि व्रतानि ) धार्मिक व्रतोंको ( ऋतुथा वसानः ) ऋतुओंके अनुकूल करते हुए ( पुनानः इन्दुः ) छाना जानेवाला सोम ( अभि पवते ) कलशमें छाना जाता है, ( देवः ) तेजस्वी सोम ( स्वेन रसेन देवान् पृञ्चन् ) अपने रससे देवोंको सन्तोष देता हुआ, ( दश क्षिपः ) दस अंगुलियोंके द्वारा ( सानो अव्ये अव्यत ) ऊंचे स्थानमें रखे गए बालोंकी छलनीमें पहुँचाया जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १०२२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( द्युमन्तं अजरं ) तेजस्वी और जरारहित ऐसे ( ते ) तुझे हम ( आ इधीमहि ) अधिक प्रदीप्त करते हैं, ( यद्ग ह ते स्या पनीयसी समित् ) जब तेरी यह प्रशंसनीय समिधा ( द्यवि दीदयति ) ध्रुलोकमें प्रकाशने लगती है, तब हे अग्ने ! तू ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको अन्न भरपूर दे ॥ १ ॥



- १०२३ आ ते अग्र ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।  
 सुश्चन्द्र दस्म विस्पते हव्यवाट् तुभ्यः हूयत इषः स्तोतृभ्य आ भर ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।९ )
- १०२४ ओमे सुश्चन्द्र विस्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।  
 उतो न उत्पूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषः स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥ २१ ( रा ) ॥  
 [ धा० २८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।६।९ )
- १०२५ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥  
 ( ऋ. ८।९।१ )
- १०२६ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महान् असि ॥ २ ॥  
 ( ऋ. ८।९।२ )
- १०२७ विभ्राजं ज्योतिषा स्वर्शरगच्छो रोचनं दिवः ।  
 देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे । ॥ ३ ॥ २२ ( व ) ॥  
 [ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९।३ )
- १०२८ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।  
 आ त्वा पृणकित्वन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१ )

[ १०२३ ] ( सुश्चन्द्र ) हे श्रेष्ठ आनन्द देनेवाले ! ( दस्म ) शत्रुनाशक ( विस्पते ) प्रजापालक और ( हव्यवाट् ) हवि पहुंचानेवाले ( ज्योतिषस्पते अग्ने ) प्रकाशमान् अग्ने ! ( शुक्रस्य ते ) प्रदीप्त हुए तेरे अन्दर ( ऋचा हविः आ हूयते ) मंत्र बोलकर हवि दी जाती है, ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर अन्न दे ॥ २ ॥

[ १०२४ ] हे ( शवसस्पते, विस्पते सुश्चन्द्र ) बलके स्वामी, प्रजापालक और अति तेजस्वी अग्ने ! ( ओमे दर्वी ) दोनों ही बर्तन ( आसनि श्रीणीषे ) तेरे मुखके पास पहुंचाये जाते हैं, ( उत उ ) और ( उक्थेषु नः उत्पूर्याः ) स्तुति करनेके बाद हमें तू पूर्ण करता है, ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको अन्न भरपूर दे ॥ ३ ॥

[ १०२५ ] हे उद्गाताओ ! ( विप्राय बृहते ) ज्ञानी महान् ( ब्रह्मकृते विपश्चिते ) ज्ञान फैलानेवाले विद्वान् ( पनस्यवे इन्द्राय ) और प्रशंसाके योग्य इन्द्रके लिए ( बृहत् साम गायत ) बृहत् नामके सामका गान करो ॥ १ ॥

[ १०२६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं अभिभूः असि ) तू शत्रुओंको हरानेवाला है, ( त्वं सूर्यं अरोचयः ) तूने सूर्यको प्रकाशित किया, तू ( विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि ) सब कार्य करनेवाला, सब देवोंके समान महान् है ॥ २ ॥

[ १०२७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ज्योतिषा दिवः रोचनं ) अपने तेजसे सूर्यका प्रकाशक तथा ( स्वः विभ्राजन् ) अपना प्रकाश फैलानेवाला तू ( आगच्छ ) आ, ( देवाः ते सख्याय येमिरे ) सब देव तेरे साथ मित्रता करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥

[ १०२८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते सोमः असावि ) तेरे लिए सोम तैय्यार किया है, ( शविष्ठ धृष्णो ) हे बलवान् और शत्रुको हरानेवाले इन्द्र ! ( आ गहि ) आ, ( सूर्यः रश्मिभिः रजः न ) सूर्य किरणोंसे जैसे अन्तरिक्षको भर देता है, उसी प्रकार ( त्वा इन्द्रियं आ पृणक्तु ) तुझे सोमपानसे महान् शक्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥



१०२९ आ तिष्ठ वृत्रहन्त्रं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।  
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वगुना

॥ २ ॥ ( ऋ. १।८४।३ )

१०३० इन्द्रमिद्वरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।  
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्

॥ ३ ॥ २३ ( पा ) ॥

[ धा० १०। उ० १। स्व० २ ] ( ऋ. १।८४।२ )

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

॥ इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ३ ॥

॥ इति तृतीयः प्रपाठश्च समाप्तः ॥ ३ ॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[ १०२९ ] हे ( वृत्रहन् ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( रथं आ तिष्ठ ) रथपर चढ़ ( ते हरी ब्रह्मणा युक्ता ) तेरे दोनों ही घोड़े हमने मंत्रोंसे जोड़ दिये हैं, ( ग्रावा ) सोमको कूटनेवाला पत्थर ( वगुना ) मनको आकर्षित करनेवाले शब्दोंसे ( ते मनः ) तेरा मन ( अर्वाचीनं सुकृणोतु ) हमारी ओर आकर्षित करे ॥ २ ॥

[ १०३० ] ( अ-प्रति-धृष्ट-शवसं इन्द्रं इत् ) न हराये जाने योग्य बलसे युक्त इन्द्रको ( ऋषीणां मानुषाणां ) ऋषि और ऋत्विजोंके द्वारा ( सुष्टुतीः ) की गई स्तुतियोंके पास ( यज्ञं च ) और यज्ञके पास ( हरी ) घोड़े ( उप वहतः ) पड़वाते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

## षष्ठः अध्यायः

इस छठे अध्यायमें इन्द्र देवताके वर्णन इस प्रकार हैं—

इन्द्र

१ हे स्पर्धमान इन्द्र ! यत् त्वं दस्युहा भवः, उभे रोदसी अनु मदेताम् [ ९८९ ]— हे स्पर्धा करनेवाले इन्द्र ! जब तू शत्रुका नाश करनेवाला होता है, तब दोनों ही द्युलोक और भूलोक आनन्दसे तेरे अनुकूल होते हैं ।

२ यत् आजयः उदीरते, धृष्णावे धनं धीयते [ १००४ ]— जब युद्ध शुरु होते हैं, तब विजयी वीरको धन मिलते हैं ।

३ वृत्रहा इन्द्रः मदाय शवसे नृभिः वावृधे [ १००२ ]— वृत्रके नाश करनेवाले इन्द्रके आनन्द व बलको बढ़ानेके लिए लोग उसका यश बढ़ाते हैं ।

४ तं महत्सु आजिषु अर्भेऽर्तिं हवामहे [ १००२ ]— उस इन्द्रको बड़े तथा छोटे युद्धोंमें अपनी रक्षाके लिए हम बुलाते हैं ।

५ सः वाजेषु नः प्राविषत् [ १००२ ]— वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करता है ।

६ हे इन्द्र ! त्वं अभिभूः असि [ १००१ ]— हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको जीतनेवाला है ।

७ हे शविष्ठ धृष्णो ! आगहि [ १०२८ ]— हे बलवान् और विजयी इन्द्र ! हमारी सहायताके लिए आ ।

८ अ-प्रति-धृष्टशवसं इन्द्रं ऋषीणां मानुषाणां सुष्टुतिः यज्ञं च हरी उपवहतः [ १०३० ]— जिसके धर्म और साहस कभी कम नहीं होते, उस इन्द्रको ऋषि और



मनुष्योंकी स्तुतियोंके पास अर्थात् यज्ञके पास उसके घोडे ले जाते हैं।

९ हे इन्द्र ! सोम पीत्वा ओजसा सह उत्तिष्ठन् शिमे अवेपथः [ १८८ ]- हे इन्द्र ! सोम पीकर अपने सामर्थ्यसे उठ और अपनी ठोड़ीको कंपा, अपनी शूरवीरता बिखा।

१० हे वीर ! सेन्यः असि, दध्नस्य चित् वृधः [ १००३ ] हे वीर इन्द्र ! तू सेनाके साथ रहता है, छोटीको तू बड़ा बनाता है।

११ प्रचेतसः ताः गावः अस्य महः नमसा वर्धयन्ति [ १००७ ]- बुद्धियुक्त वे गायें इस इन्द्रके सामर्थ्यको अपने दूधसे बढ़ाती हैं।

१२ पूर्वचित्तये अस्य पुरुणि व्रतानि सश्विरे [ १००७ ]- पहलेके पराक्रमोंकी याद दिलानेके लिए इसके बहुतसे साहसिक कार्योंका वर्णन किया जाता है।

१३ वृत्रहन् रथं आतिष्ठ [ १०२९ ]- हे वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! अपने रथपर बैठ।

१४ मदच्युता हरी युंक्ष्व, कं हनः, कं वसौ दधः, अस्मान् वसौ दधः [ १००४ ]- मदीनमत्त घोड़ोंको रथमें जोड़, और किसको मारना है और किसको धन देना है। इसका विचार कर। हमें धन दे।

१५ सुन्वते यजमानाय शिक्षसि, ते भूरिवसु [ १००३ ]- सोमयज्ञ करनेवाले यजमानको तू धन देता है, तेरे पास बहुतसा धन है।

१६ अस्य ताः पृशनायुवः पृशनयः सोमं श्रीणन्ति [ १००६ ]- उस इन्द्रकी उत्तम गायें अपना दूध सोमरसमें मिलाती हैं।

१७ वाजी सोमः इन्द्रे सहः इन्धन् मदाय पवते [ १०१९ ]- बलवान् सोम इन्द्रका सामर्थ्य बढ़ाकर उसका आनन्द बढ़ाता है।

१८ हे इन्द्र ! त्वं सूर्यः अरोचयः, त्वं विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि [ १०२६ ]- हे इन्द्र ! तूने सूर्यको प्रकाशित किया, तू सब कर्म करनेवाला है, तू सबोंका देव है और तू महान् है।

१९ विप्रः बृहत् ब्रह्मकृत् विषदिचत् [ १०२५ ]- इन्द्र जानी, महान्, ज्ञानका प्रसार करनेवाला और विद्वान् है।

२० इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः देवः इन्दुः [ १०२० ]- इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाला यह तेजस्वी सोमरस है।

इस प्रकार इन्द्रके गुणोंका वर्णन इस अध्यायमें आया है। अब अग्निके गुण देखें—

### अग्नि

इस अध्यायमें अग्निके गुणोंका वर्णन इस प्रकार है—

१ अजरः [ १८३ ]- जरारहित, सदा तरुण, बूढ़ावस्था जिसके पास आती नहीं।

२ मेधाकारः [ १८४ ]- बुद्धिके कार्य करनेवाला, बुद्धि बढ़ानेवाला।

३ विदथस्य प्रसाधनः [ १८४ ]- युद्धका और यज्ञका साधन।

४ होता [ १८४ ]- देवोंको बुलाकर, लानेवाला, हवन करनेवाला।

५ परिभूतरः [ १८४ ]- शत्रुओंको हरानेवाला।

६ मतिः [ १८४ ]- बुद्धिमान्।

७ युमान् [ १०२२ ]- तेजस्वी।

८ सुदचन्द्रः [ १०२३ ]- उत्तम तेजस्वी।

९ दस्मः [ १०२३ ]- दर्शनीय, सुन्दर।

१० विश्वपतिः [ १०२३ ]- प्रजापालक।

११ ज्योतिषस्पतिः [ १०२३ ]- तेजस्वियोंका पालक।

१२ हव्यवाद् [ १०२३ ]- हवन किए गए पदार्थोंको ठीक स्थानपर पहुंचानेवाला।

१३ शुक्रः [ १०२३ ]- शुद्ध, बोर्यवान्।

१४ शवसस्पतिः [ १०२४ ]- बलवान्, सामर्थ्यवान्।

१५ धक्षन् [ १८३ ]- जलानेवाला, शत्रुओंको जलानेवाला।

१६ हविः आहूयते [ १०२३ ]- अग्निमें हविर्द्रव्योंका हवन होता है।

१७ उभे दर्वी आसनि श्रीणीषे [ १०२४ ]- दोनों ही जूह आदि वर्तनोंको अपने मुखके पास ले जाते हो, आहुतिका हवन करनेके लिए पात्रको अग्निके पास पहुंचाते हैं।

१८ स्तोतृभ्यः इषं आभर [ १०२२ ]- स्तुति करनेवालोंको अन्न भरपूर दे।

१९ त्वां इत् अर्भस्य हविषः, त्वां इत् महः, समानं वृणुते त्वत् अन्यं न [ १८४ ]- तुझे ही थोड़ीसी और बहुतसी हवि देनेके लिए बुलाया जाता है, तेरे सिवाय और किसी दूसरेको नहीं बुलाया जाता।

२० हे अग्ने ! यत् ओषधिः वनानि च अभिसृष्टः, स्वयं आसन्, अन्नं परिचिनुषे, तव श्रियः, वर्षस्य



विद्युतः इव, चिक्कित्रे [ ९८२ ]- जबतू ओषधी, वनस्पति और वनोंकी जलानेकी इच्छा करता है, तब तेरे मुखमें अन्न पड़ता है और उस समय तेरी किरणें वर्षामें बिजलीके समान चमकने लगती हैं।

इस प्रकार इस अध्यायमें अग्निका वर्णन है।

### इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्निकी मिलीजुली स्तुति भी इस अध्यायमें है—

१ इन्द्राग्नी-शंभुवा [ ९९१ ]- इन्द्र और अग्नि ये कल्याण करनेवाले हैं।

२ सोमपीतये आगच्छतं [ ९९३ ]- सोमपान करनेके लिए आओ।

३ नरा इन्द्राग्नी! वां पृरुस्पृहा दाशुषे याः नियुतः सन्ति, ताभिः आगतं [ ९९२ ]- हे नेतृत्व करनेवाले इन्द्र और अग्निदेवो! तुम्हारे बहूतों द्वारा प्रशंसाके योग्य, तथा दानशीलोंकी सहायता करनेवाले जो घोड़े हैं, उन्हें जोड़कर तुम आओ।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निके मिलेजुले वर्णन हैं। ये देव सबका कल्याण करते रहते हैं। सबका हित करना ही इनका स्वभाव है, इस कारण ये हमेशा नेतृत्व करते हैं। ये उदार चित्तवाले मनुष्योंकी सहायता करते हैं। इसलिए सब यज्ञ करनेवाले इनको यज्ञमें बुलाते हैं।

### मित्र और वरुण

मित्र और वरुणकी भी संयुक्त स्तुति इस अध्यायमें आई है। उनके वर्णन यहां इस प्रकार हैं—

१ हे मित्रा! नः पायुभिः पातं [ ९८७ ]- हे मित्र और वरुणो! तुम हमारे मित्र हो, इसलिए संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करो।

२ सुत्रात्रा त्रायेथां [ ९८७ ]- उत्तम संरक्षण करनेवाले तुम हमारी अच्छी तरह रक्षा करो।

३ तनूभिः दस्यून् साह्याम [ ९८७ ]- अपने शारीरिक सामर्थ्यसे हम शत्रुओंको हरावें।

४ अद्रुहाणा वां सम्यक् मित्रा स्याम [ ९८६ ]- तुम दोनों आपसमें द्रोह न करनेवाले हो, अतः हम तुम्हारे मित्र होकर रहें।

५ इष्टं च धाम अश्यामः [ ९८६ ]- अन्न और घर तुम्हारे द्वारा हमें प्राप्त हों।

६ वां पुरुरुणा अत्र नूनं अस्ति [ ९८५ ]- तुम दोनोंके बहुतसे संरक्षण हमें प्राप्त हों।

७ वां सुमतिं वंसि [ ९८५ ]- तुम्हारी उत्तम और अतृकूल बुद्धि हमें प्राप्त हो।

इस प्रकार मित्र और वरुण इन दोनोंकी सहायताका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

### सोमके गुण

अब इस अध्यायमें आये हुए सोमके गुणोंको देखिए—

१ इन्दुः [ ९५५ ]- तेजस्वी, चन्द्रके समान प्रकाशमान।

२ गोवित् [ ९५५ ]- गायोंसे युक्त, गायका दूध जिसमें मिलाया जाता है।

३ वसुवित् [ ९५५ ]- धनसे युक्त, निवासक शक्तिसे युक्त।

४ हिरण्यवित् [ ९५५ ]- सोनेसे युक्त।

५ रेतोघ्नाः [ ९५५ ]- वीर्य बढ़ानेवाला, वीर्यको धारण करनेवाला।

६ सु-वीरः [ ९५५ ]- उत्तम वीर।

७ विश्व-वित् [ ९५५ ]- सब जाननेवाला।

८ वृषभः [ ९५६ ]- बलवान्।

९ पवमानः [ ९५६ ]- शुद्ध होनेवाला।

१० विश्वतः नृचक्षाः [ ९५६ ]- सब तरफसे मनुष्योंको देखनेवाला।

११ ईशानः [ ९५७ ]- स्वामी, शासक।

१२ नृमादनः [ ९६५ ]- मनुष्योंका आनन्द बढ़ानेवाला।

१३ चर्षणी-धृतिः [ ९६५ ]- मनुष्योंको धारण करनेवाला।

१४ सस्निः [ ९६५ ]- शुद्ध, जीतनेवाला।

१५ अनुमाद्यः [ ९६५ ]- प्रशंसनीय।

१६ अद्भुतः [ ९६६ ]- अद्भुत, विलक्षण।

१७ पावकः [ ९६६ ]- शुद्ध होनेवाला।

१८ वृत्रहन्तमः [ ९६६ ]- शत्रुको मारनेवाला।

१९ शुचिः [ ९६६ ]- शुद्ध।

२० मधुमान् [ ९६७ ]- मीठा, मधुर।

२१ देवावीः [ ९६७ ]- देवोंकी मिलने योग्य।

२२ अघः-शंस-हा [ ९६७ ]- पापियोंका नाश करनेवाला।

२३ कविः [ ९६७ ]- ज्ञानी, क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी।



२४ साह्वान् [ ९६७ ]- शत्रुको हरानेवाला ।

२५ क्रीडुः [ ९७४ ]- खेलनेमें कुशल ।

२६ मंहयुः [ ९७४ ]- महत्त्व युक्त, दान देनेवाला ।

२७ सुवीर्यं दधत् [ ९७४ ]- उत्तम वीर्यसे युक्त, उत्तम शूर ।

२८ स्वादिष्ठः [ ९८१ ]- स्वादयुक्त, रुचिकर ।

२९ वरिवोवित् [ ९८१ ]- धनयुक्त, दान देनेवाला ।

३० द्युमत्तमः [ ९९४ ]- अति तेजस्वी ।

ये सोमके गुण इस अध्यायमें आए हैं । सोमरस पीनेके बाद उत्साह बढ़ता है । इसलिए ये गुण मानों सोमके ही हैं ऐसा कहा है ।

### स्वर्गमें सोम

सोमकी बेल स्वर्गमें उगती है । स्वर्ग हिमालयकी ऊंची चोटी पर है । वहां पर यह बेल उगती है । इसलिए सोम स्वर्गसे लाया जाता है, ऐसा वर्णन वेदोंमें है ।

१ हे सोम ! दिवस्परि विश्वा रूपा अभ्यर्षसि [ ९५९ ]- हे सोम ! तू स्वर्ग पर अनेक रूप धारण करके रहता है ।

२ गिरिष्ठाः अंशुः मदाय असावि [ १००८ ]- पर्वत पर उगनेवाले सोमके रसको आनन्दके लिए निकालते हैं ।

३ द्येनः न योनिं आसदत् [ १००८ ]- बाज पक्षीके समान ( पर्वतसे आकर ) यज्ञमें बैठता है ।

### सोमका पत्थरोंसे कूटा जाना

सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है—

१ अद्रिभिः सुतः पवित्रं परि दीयसे, इन्द्रस्य धास्ते अरं [ ९६४ ]- पत्थरोंसे कूटकर निकाले गए रसको छलनीसे छानते हैं, और तब बादमें इन्द्रको देने योग्य होता है ।

२ सोमः इन्द्रः च । यूयं स्वपती स्थ । गोपती ईशाना धियं पिप्यसं [ १००१ ]- सोम और इन्द्र ! तुम निवचयसे सबके स्वामी हो, तुम दोनों गायके पालन करनेवाले हो, तुम सब पर अधिकार करते हो, अतः तुम हमारी बुद्धि पुष्ट करो ।

सोमरस पीनेके बाद बुद्धिमें महान् उत्साह उत्पन्न होता है, और महान् महान् कार्य करनेका सामर्थ्य अन्दर पैदा होता है ।

### सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोमका रस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाया जाता है—

१ अप्सु दुष्टरः गभस्त्योः मृज्यमानः चमूषु सीदति [ ९७३ ]- पानीमें मिलाया गया सोम हाथोंसे साफ किये जानेके बाद बर्तनमें गिरता है ।

२ अप्सा सोमाः इन्द्राय वायवे अर्षन्तु [ ९९५ ]- पानीमें मिलाये जानेके बाद सोमरस इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है ।

३ ताः ते मधुमत् घृतं पयः क्षरन्तु [ ९५७ ]- तेरे वे रस मीठे जल और दूधमें मिलाये जाते हैं ।

४ मधोः रसं सधमादे अमृताय अशूशुभन् [ १०१० ]- मीठे सोमके रस यज्ञमें पानीके साथ मिलकर शोभा पाते हैं ।

इस प्रकार पानीमें सोमरस मिलाये जानेके बाद वे छाने जाते हैं ।

### सोमरसका छाना जाना

१ देववीतये अव्या वारेभिः अव्यत [ ९६८ ]- देवोंको देनेके लिए भेडके वालोंकी बनी हुई छलनीसे सोमरस छाना जाता है ।

२ हे सोम ! सु-वीर्यं दधत् पवित्रं गच्छसि [ ९७४ ]- हे सोम ! उत्तम सामर्थ्य धारण करके तू छननेके लिए छलनीके पास जाता है ।

३ ते मधुश्चुतः धाराः असृग्रन्, ताभिः पवित्रं आसदः [ ९७९ ]- तेरी मीठी धारा निकलने लगी, उन धाराओंसे युक्त होकर तू छलनी पर जाकर बैठ गया है ।

४ सः अव्यथा वाराणि तिरः इन्द्राय पातवे अर्ष [ ९८० ]- वह तू भेडके वालोंकी बनी हुई छलनीसे इन्द्रके पीनेके लिए छानता जा ।

५ सुतः देवेभ्यः मधुमत्तरः पवित्रे धारया पवस्व [ १०१६ ]- रस निकाले जानेके बाद देवोंको देनेके लिए अधिक मीठा होकर धार बनाकर छलनीसे छनता जा ।

६ अ-द्रुहः धीतयः हरिं त्वां पवित्रे रिहन्ति [ १०१७ ]- द्रोह न करनेवाली अंगुलियां हरे रंगके तुझ सोमको छलनी पर रखकर दबाती हैं ।

७ अद्रिदुग्धः रोम तिरः पवते [ १०२० ]- पत्थरोंसे रस निकालनेके बाद वे सोमरस बालोंकी छलनीसे छाने जाते हैं ।



८ देवः स्वेन रसेन देवान् पृश्नन् सा नो अज्ये अव्यत [१०२१]- निष्प सोम अपने रससे देवोंको सन्तोष देते हुए ऊँचे स्थान पर रखे हुए भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ।

इसप्रकार सोमरसको निकालकर उसे पानीमें मिलाकर भेड़की बालोंकी छलनीसे वह छाना जाता है, बावमें वह गायके दूधमें मिलाया जाता है ।

### सोमरसको गायके दूधमें मिलाना

१ देववातं शुभ्रं अन्धः नृभिः सुतं, अप्सु धौतं, गावः पयोभिः स्वदयन्ति [१००९]- देवोंको देनेके लिए स्वच्छ सुन्दर अन्न ऋत्विजों द्वारा तैयार किए गए हैं, इस प्रकार तैयार किए गए तथा पानीमें मिलाये गए उन सोमरसोंको गायें अपने दूधसे स्वादिष्ट बनाती हैं ।

२ श्रीणानः अप्सु वृज्यते [ १६१ ]- सोमरस गायके दूधमें और पानीमें मिलाया जाता है ।

३ सोमः अनूपे गोभिः अक्षाः [ १९८ ]- सोमरस कलशमें गायके दूधके साथ टपकता है ।

४ सोमः दुग्धाभिः अक्षाः [ १९८ ]- सोमरस दूधके मिलाये जाने पर टपकता है ।

इसप्रकार सोमरसमें गायका दूध मिलानेसे वह स्वादिष्ट बनता है, ऐसे वर्णन अनेक मंत्रोंमें आए हैं ।

### सोमका धन देना

१ हे सोम ! नः विश्वा सौभगा, पुष्टं यवं परिस्वव [ १७५ ]- हे सोम ! हमें सब सौभाग्य और पुष्टिकारक अन्न दे ।

२ हे सोम ! चित्रं उक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसुः नः आ भर [ १९९ ]- हे सोम ! बिलक्षण, प्रशंसनीय, दिव्य और पार्थिव धन हमें भरपूर दे ।

### दीर्घजीवन प्राप्त होना

१ हे सोम ! भुवनेषु जीवसे स्याम [ १५६ ]- हे सोम ! इस भुवनमें हम दीर्घजीवन प्राप्त कर सकें, ऐसा कर ।

### सोमका अन्न देना

१ स्वः गोमन्तं सहस्रिणं वाजं आ इन्वति [ १६९ ]- वह सोम हमें गायोंसे युक्त अनेक प्रकारके अन्न देता है ।

२ नः विश्वानि श्रवः विदः [ १७० ]- हमें सब प्रकारके अन्न दे ।

१६ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

३ हे सोम ! स्तोतृभ्यः बृहद् यशः ध्रुवं रयिं इषं आ भर [ १७१ ]- हे सोम स्तुति करनेवालोंको महान् यश, स्थिर धन और अन्न भरपूर दे ।

४ अस्माकं तोकाय इषं दधत् [ १९६ ]- हमारे पुत्र-पौत्रोंको अन्न दे ।

५ हे दधरूपते देव ! द्युस्त्रं बृहद् यशः देवयुं अभि दिदीहि [ १०११ ]- हे धनपते सोमदेव ! तेजसे युक्त विपुल अन्न, जो देवोंको दिया जाता है, हमें भी दे ।

इसप्रकार सोम भरपूर अन्न देता है ।

### सोमका शत्रुओंको दूर करना

१ साह्वान् विश्वाः स्पृधः [ १६८ ]- सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको हरानेवाला सोम है ।

२ सहस्रजित्, यः जिनाति, न जीयते, शत्रुं अभीत्य हन्ति [ १७८ ]- हजारों शत्रुओंको सोम जीतता है, पर कभी स्वयं पराजित नहीं होता । शत्रु पर आक्रमण करके उन्हें जानसे मारता है ।

३ वृजनस्य राजा वरिवः कृण्वन्, रक्षः हन्ति, अरार्तिं परि बाधते [ १०१९ ]- यह सोम बलका राजा है, वह उपासकोंको धन देता है, राक्षसोंको मारता है, और शत्रुओंको दूर करता है ।

इसप्रकार इस अध्यायमें इन देवोंके गुणोंका वर्णन है । प्रत्येक व्यक्ति इन गुणोंसे युक्त हो, यह आवश्यक है ।

### सुभाषित

१ गोवित् वसुवित् हिरण्यवित् रेतोधाः भुवनेषु अर्पितः [ १५५ ]- गाय, धन, सोना और पराक्रमको अपने पास रखनेवाला तू भुवनोंका कल्याण करनेके लिए समर्पित हुआ है ।

२ हे सोम ! सुवीरः विश्ववित् असि [ १५५ ]- हे सोम ! तू उत्तम वीर और सर्वज्ञ है ।

३ हे वृषभ ! विश्वतः नृचक्षाः असि [ १५६ ]- हे बलवर्धक सोम ! तू सब प्रकारसे मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला है ।

४ ताः विधावसि [ १५६ ]- उन प्रजाओंके पास तू जाता है ।



५ वसुमत् हिरण्यवत् भुवनेषु जीवसे स्याम [ ९५६ ]- धन और सोनेसे युक्त होकर भुवनोंमें दीर्घजीवन प्राप्त करनेवाले हम होंगे ।

६ ईशानः हरितः सुपर्ण्यः युजानः इमा भुवनानि ईयसे [ ९५७ ]- तू स्वामी अपने रथमें उत्तम चलनेवाले घोड़े जोड़कर इन भुवनोंमें फिरता है ।

७ ते मधुमत् घृतं पयः क्षरन्तु [ ९५७ ]- वे तेरे लिए घी और दूध देंगे ।

८ कृष्यः ते व्रते तिष्ठन्तु [ ९५७ ]- मनुष्य तेरे नियममें रहें ।

९ केतुं कृण्वन् दिवः परि अभ्यर्षसि [ ९५९ ]- प्रकाश करते हुए तू धूलोक पर जाता है ।

१० देवः सूर्यः न जज्ञानः क्रन्दन् वाचं इष्यसि [ ९६० ]- सूर्यदेवके समान प्रकट होकर शब्द करते हुए स्तुतिको प्राप्त होता है ।

११ नृमादनः चर्षणी-धृतिः अनुमाद्यः [ ९६५ ]- मनुष्योंको आनन्द देनेवाला और मनुष्योंको धारण करनेवाला प्रशंसाके योग्य है ।

१२ अद्भुतः शुचिः पावकः वृत्रहन्तमः अनुमाद्यः [ ९६६ ]- अद्भुत, शुद्ध और पवित्र करनेवाला तथा शत्रुका नाश करनेवाला वीर प्रशंसाके योग्य होता है ।

१३ शुचिः पावकः देवावीः अघशंसहा [ ९६७ ]- निर्दोष, पवित्र और देवोंको प्राप्त करनेवाला वीर पापी दुष्टोंका नाश करता है ।

१४ कविः देववीतये विश्वाः स्पृधः साह्वान् [ ९६८ ]- ज्ञानी देवत्व प्राप्त करनेके लिए सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको हराता है ।

१५ सः पवमानः जरितृभ्यः गोमन्तं सहस्रिणं वाजं आ इन्वति [ ९६९ ]- वह सोम स्तोताओंको गायोंसे उत्पन्न होनेवाले हजारों प्रकारके घन देता है ।

१६ सः नः चेतसा विश्वानि श्रवः विदः [ ९७० ]- वह तू हमें बुद्धिपूर्वक अनेक प्रकारके घन व अन्न दे ।

१७ स्तोतृभ्यः बृहद् यशः ध्रुवं ररिं अभ्यर्ष, इषं आभर [ ९७१ ]- स्तुति करनेवालोंको महान् यश, स्थिर धन और भरपूर अन्न दे ।

१८ सुवतः पुरातनः राजा इव गिरः आविवेशिथ [ ९७२ ]- उत्तम नियमोंके चलानेवाले राजाके समान हमारी स्तुति सुन ।

१९ मंहयुः स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् [ ९७४ ]- वान देनेवाला तू स्तुति करनेवालेको उत्तम बल दे ।

२० नः पुष्टं यवं अन्धसा विश्वा सौभगा च परि-स्त्रव [ ९७५ ]- हमें पोषण करनेवाला अन्न और सब उत्तम भाग्य दे ।

२१ नः गोवित् अश्ववित् अन्धसा पवस्व [ ९७७ ]- हमें गाय घोड़े और अन्न दे ।

२२ हे सहस्रजित् ! यः जिनाति, न जीयते, शत्रुं अभीत्य हन्ति [ ९७८ ]- हे हजारों शत्रुओंको जीतनेवाले वीर ! जो जीतता है, पर स्वयं जीता नहीं जाता तथा जो शत्रुओंको घेरकर मारता है, वह वीर है ।

२३ वरिवोवित् घृतं पयः परिस्त्रव [ ९८१ ]- तू धन देनेवाला घी और दूध हमें दे ।

२४ अजरस्य धक्षतः ते शर्धांसि, रथ्यः यशा, पृथक् आयतन्ते [ ९८३ ]- जरारहित अर्थात् तरुण और शत्रुओंको जलानेवाले तेरे सामर्थ्य रथीवीरके समान पृथक् पृथक् बढ़ते हुए दिखाई देते हैं ।

२५ मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनं परिभूतरं मर्ति अग्निं [ ९८४ ]- बुद्धिको बढ़ानेवाला, यज्ञका साधन, शत्रुको हरानेवाला, बुद्धिमान्, अग्निके समान तेजस्वी ऐसा जो होता है उसकी प्रशंसा की जाती है ।

२६ वां पुरुषणा अवः नूनं अस्ति [ ९८५ ]- तुमसे अनेक प्रकारके संरक्षण प्राप्त होते हैं ।

२७ वां सुमर्ति वंसि [ ९८५ ]- तुम्हारी उत्तम बुद्धि हमारे अनुकूल हो ।

२८ अ-द्रुह्याणा सम्यक् मित्रा वयं स्याम, इषं धाम च अश्याम [ ९८६ ]- द्रोह न करनेवाले तुम्हारे हम उत्तम मित्र हों तथा अन्न और घरको प्राप्त करें ।

२९ हे मित्रा ! पायुभिः नः पातं, सुत्रामा त्रायेथां, तनूभिः दस्यून् साह्याम [ ९८७ ]- हे मित्रो ! तुम संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करो, उत्तम रक्षण करनेवाले तुम हमारा पालन करो, उसीप्रकार अपने शारीरिक सामर्थ्योंसे शत्रुका पराभव हम कर सकें, ऐसा करो ।

३० हे इन्द्र ! सोमं पीत्वा, ओजसा सह उत्तिष्ठन् [ ९८८ ]- हे इन्द्र ! सोम पीकर अपने सामर्थ्यसे उठ खड़ा हो ।

३१ हे स्पर्धमान इन्द्र ! यत् दस्युहा भवः, त्वा



उभे रोदसी अनुमदेताम् [ १८९ ]- हे स्पर्धा करनेवाले इन्द्र ! जब तू बुष्टोंको मारनेवाला होता है, तब दोनों छुलोक और पृथ्वीलोक आनन्दसे तेरे अनुकूल होते हैं ।

३२ अष्टापदी नव-स्त्रिंशत् क्रतावृधं तन्वं वाचं अहं परिममे [ १९० ]- आठ पद युक्त, नयी कल्पनाओंसे युक्त तथा सत्यको बढ़ानेवाली छोटी छोटी वाणियोंको मैं बोलता हूँ ।

३३ इन्द्राग्नी शं भुवा [ १९१ ]- इन्द्र और अग्नि कल्याण करनेवाले हैं ।

३४ अस्माकं तोकाय इषं दधत्, सहस्रिणं अस्मभ्यं विश्वतः आ पवस्व [ १९६ ]- हमारे लड़कोंके लिए अन्न दे और हजारों प्रकारके धन चारों ओरसे हमें दे ।

३५ यत् चित्रं उक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसुः पुनानः आ भर [ १९९ ]- जो विलक्षण, प्रशंसनीय, दिव्य और पार्थिव धन हैं, उन धनोंको शुद्ध होकर हमें दे ।

३६ आयूंषि पुनानः स्तनयन्, हरिः सन् अधि बर्हिषि, योनिं आ सदः [ १००० ]- अपना जीवन पवित्र करते हुए, बलवान् होकर भाषण करते हुए, लोगोंके दुःख दूर करते हुए अपने स्थान पर आकर आसन पर बैठ ।

३७ युवं सत्पती ईशाना गोपती धियं पिप्यतं [ १००१ ]- उत्तम स्वामी, ऐश्वर्यके अधिकारी, गायके पालन करनेवाले तुम बुद्धियोंको पुष्ट करो ।

३८ तं महत्सु आजिषु, अर्भे ऊर्तिं हवामहे, सः वाजेषु नः प्राविशत् [ १००२ ]- उसे महान् संग्रामोंमें उसी प्रकार छोटे युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं । वह युद्धमें हमारा संरक्षण करे ।

३९ हे वीर ! सेन्यः असि, भूरिः पराददिः असि [ १००३ ]- हे वीर ! तू सेनासे युक्त है, शत्रुके बहुतसे धनको हरण करनेवाला है ।

४० दध्रस्य चित् वृधः [ १००३ ]- छोटोंको तू बड़ा करनेवाला है ।

४१ सुन्वते यजमानाय शिक्षसि [ १००३ ]- सोम यज्ञ करनेवालेको तू धन देता है ।

४२ ते भूरि वसु [ १००३ ]- तेरे पास बहुत धन है ।

४३ यत् आजयः उदीरते, धृष्णवे धना धीयते [ १००४ ]- जब युद्ध होते हैं तब विजयी वीरोंको धन मिलता है ।

४४ मदच्युता हरी युंक्व [ १००४ ]- मद चुआनेवाले घोड़े रथमें जोड़ ।

४५ कं हनः, कं वसौ दधः [ १००४ ]- किसको मारना है और किसको धनोंमें स्थापित करना है, इसका विचार कर ।

४६ अस्मान् वसौ दधः [ १००४ ]- हमें धनमें स्थापित कर ।

४७ अस्य पुरुणि व्रतानि सञ्चिरे [ १००७ ]- इसके बहुतसे काम स्मरणमें आते हैं ।

४८ हे इषस्पते देव ! द्युमं बृहद् यशः देवयुं अभि दिदीहि [ १०११ ]- हे अन्नपते देव ! तेजस्वी महान् यश अथवा अन्न, जिसकी देवगण इच्छा करते हैं, हमें दे ।

४९ वृजनस्य राजा वरिवः कृण्वन्, रक्षः हन्ति, अरार्तिं परि बाधते [ १०१८ ]- बलका राजा धन देता है, राक्षसोंको मारता है और शत्रुओंको कष्ट देता है ।

५० द्युमन्तं अजरं आ इधीमहि [ १०२२ ]- तेजस्वी और जरारहित ऐसे तुझे हम अधिक प्रदीप्त करते हैं ।

५१ स्तोतृभ्यः इषं आ भर [ १०२२ ]- स्तुति करने-वालोंको भरपूर अन्न दे ।

५२ सुश्चन्द्र, दस्स, विश्पते, ज्योतिषस्पते, हव्य-वाद् अग्ने ! इषं आ भर [ १०२३ ]- उत्तम आनन्द देनेवाले, शत्रुको मारनेवाले, प्रजापालक, तेजस्वी, हविको यथास्थान पहुँचानेवाले अग्ने ! हमें भरपूर अन्न दे ।

५३ त्वं विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि [ १०२३ ]- तू सब कर्मोंको करनेवाला, सबका देव और महान् है ।

५४ ज्योतिषः रोचनं स्वः विश्राजन् आगच्छ [ ११२७ ]- तू तेजस्वी सूर्यका प्रकाशक और छुलोकको प्रकाशित करनेवाला है, ऐसा तू यहां आ ।

५५ शविष्ठ धृष्णोः ! आ गाहे [ १०२८ ]- हे बलवान् और शत्रुको हरानेवाले वीर ! तू यहां आ ।

५६ त्वं अभिभूः असि [ १०२६ ]- तू शत्रुको हराने-वाला है ।

५७ अप्रतिधृष्ट-शवसं इन्द्रं ऋषीणां मानुषाणां यज्ञं हरी उप वहतः [ १०३० ]- अपराजित वीर इन्द्रको ऋषि और मनुष्योंके यज्ञमें घोड़े रथमें बैठाकर लाते हैं ।

## उपमा

इस अध्यायमें जो उपमायें हैं, उन्हें अब देखिए—

१ सूर्यस्य रश्मयः इव [ १५८ ]- सूर्यकी किरणोंके समान ( ते सर्गाः प्रासृक्षत ) सोमकी धारायें फैलती हैं ।



२ देवः सूर्यः न [ १६० ]- विष्व सूर्यके समान तू सोम.  
( विधर्मणि जज्ञानः ) यज्ञमें प्रकट होता है।

३ आपः न [ १६२ ]- पानीके प्रवाहके समान ( इन्द्रवः  
अभि अधन्विषुः ) सोमरस छलनीसे छनते हैं।

४ सुव्रतः पुरातनः राजा इव [ १६२ ]- उत्तम  
नियमोंके पालन करनेवाले पुराने राजाके समान ( सोम !  
गिरः आविवेशिथ ) हे सोम ! तू स्तुतिको स्वीकार कर।

५ मखः न [ १७४ ]- यज्ञके समान ( मंहयुः ) दान  
 देनेकी इच्छा करता है।

६ वर्षस्य विद्युतः इव [ १८२ ]- वर्षाकालमें बिजलीके  
समान ( तव श्रियः चिकित्रे ) तेरी किरणें चमकती हैं।

७ उषसां ऊतयः इव [ १८२ ]- उषःकालकी किरणोंके  
समान तेरी किरणें चमकती हैं।

८ रथ्यः यथा [ १८३ ]- रथी बीरके समान ( ते  
शर्धांसि पृथक् अयतन्ते ) तेरे सामर्थ्य बढ़ते हैं।

९ अश्वया इव [ १९७ ]- घोड़ोंके समान ( हरिता  
धारया याति ) हरे रंगकी धारासे सोम जाता है।

१० समुद्रं न [ १९८ ]- समुद्रमें जैसे जलप्रवाह जाकर  
मिल जाते हैं, उसीप्रकार ( संवरणानि अगमन् ) सोमरस-  
रूपी अक्षप्रवाह कलशमें जाते हैं।

११ इयेनः न [ १००८ ]- बाज जिसप्रकार अपने  
घोंसलेमें आता है, उसीप्रकार यह सोम ( योनिं आसदत् )  
अपने कलशमें आता है।

१२ अश्वं न [ १०१० ]- जैसे संग्राममें जानेवाले  
घोड़ेको सजाते हैं, उसी प्रकार ( मधोः रसं खधमादे  
अशुशुभन् ) मीठे सोमरसको यज्ञमें सुशोभित करते हैं, दूध  
आदि मिलाकर अच्छा बनाते हैं।

१३ वह्निः न [ १०१२ ]- सब प्रजाओंका पालक जैसे  
तेजस्वी राजा होता है, उसीप्रकार हे सोम तू ! ( विदपतिः  
आ वच्यस्व ) प्रजाका पालक बनकर कलशमें जाता है।

१४ गावः जातं वत्सं न [ १०१७ ]- गाय जिसप्रकार-  
नये उत्पन्न हुए बछड़ेको चाटती है, उसीप्रकार ( धीतयः  
हरिं रिहन्ति ) अंगुलियां हरे रंगके सोमको बचाती हैं,  
बचाकर रस निकालती हैं।

१५ सूर्यः रश्मिभिः रजः न [ १०२८ ]- सूर्य जिस-  
प्रकार किरणोंसे अन्तरिक्षको भर देता है, उसी प्रकार ( त्वां  
इन्द्रियं आ पृणस्व ) तुझे सोमपानसे महती इन्द्रियशक्ति  
भर देती है।

इसप्रकार इस अध्यायमें उपमायें हैं।

## षष्ठाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                           | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|--------------------------------|-------------|---------|
|             |              | ( १ )                          |             |         |
| ९५५         | ९।८६।३९      | [ अकृष्टा साषावयः ] त्रयः ऋषयः | पवमानः सोमः | जगती    |
| ९५६         | ९।८६।३८      | [ अकृष्टा साषावयः ] त्रयः ऋषयः | "           | "       |
| ९५७         | ९।८६।३७      | [ अकृष्टा साषावयः ] त्रयः ऋषयः | "           | "       |
| ९५८         | ९।६४।७       | काश्यपो भारीचः                 | "           | गायत्री |
| ९५९         | ९।६४।८       | काश्यपो भारीचः                 | "           | "       |
| ९६०         | ९।६४।९       | काश्यपो भारीचः                 | "           | "       |
| ९६१         | ९।२४।१       | असितः काश्यपो देवलो वा         | "           | "       |
| ९६२         | ९।२४।२       | असितः काश्यपो देवलो वा         | "           | "       |
| ९६३         | ९।२४।३       | असितः काश्यपो देवलो वा         | "           | "       |
| ९६४         | ९।२४।५       | असितः काश्यपो देवलो वा         | "           | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                   | देवताः      | छन्दः   |
|-------------|--------------|------------------------|-------------|---------|
| ९६५         | ९।१४।४       | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ९६६         | ९।१४।६       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |
| ९६७         | ९।१४।७       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |

( २ )

|     |        |                        |   |   |
|-----|--------|------------------------|---|---|
| ९६८ | ९।१०।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ९६९ | ९।१०।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ९७० | ९।१०।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ९७१ | ९।१०।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ९७२ | ९।१०।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ९७३ | ९।१०।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ९७४ | ९।१०।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| ९७५ | ९।५५।१ | अवत्सारः काश्यपः       | " | " |
| ९७६ | ९।५५।२ | अवत्सारः काश्यपः       | " | " |
| ९७७ | ९।५५।३ | अवत्सारः काश्यपः       | " | " |
| ९७८ | ९।५५।४ | अवत्सारः काश्यपः       | " | " |
| ९७९ | ९।६२।७ | जमदग्निर्भागवः         | " | " |
| ९८० | ९।६२।८ | जमदग्निर्भागवः         | " | " |
| ९८१ | ९।६२।९ | जमदग्निर्भागवः         | " | " |

( ३ )

|     |         |                       |             |         |
|-----|---------|-----------------------|-------------|---------|
| ९८२ | १०।२१।५ | अरुणो वेंतहव्यः       | अग्निः      | जगन्ती  |
| ९८३ | १०।२१।७ | अरुणो वेंतहव्यः       | "           | "       |
| ९८४ | १०।२१।८ | अरुणो वेंतहव्यः       | "           | "       |
| ९८५ | ५।७०।१  | उरुचक्रिरात्रेयः      | मित्रावरुणौ | गायत्री |
| ९८६ | ५।७०।२  | उरुचक्रिरात्रेयः      | "           | "       |
| ९८७ | ५।७०।३  | उरुचक्रिरात्रेयः      | "           | "       |
| ९८८ | ८।७६।१० | कुरुमुतिः काण्वः      | इन्द्र      | "       |
| ९८९ | ८।७६।११ | कुरुमुतिः काण्वः      | "           | "       |
| ९९० | ८।७६।१२ | कुरुमुतिः काण्वः      | "           | "       |
| ९९१ | ६।६०।७  | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | इन्द्राग्नी | "       |
| ९९२ | ६।६०।८  | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "           | "       |
| ९९३ | ६।६०।९  | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "           | "       |

( ४ )

|     |         |                                 |            |       |
|-----|---------|---------------------------------|------------|-------|
| ९९४ | ९।६५।१९ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भागवो वा | पवमानः सोम | "     |
| ९९५ | ९।६५।२० | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भागवो वा | "          | "     |
| ९९६ | ९।६५।२१ | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भागवो वा | "          | "     |
| ९९७ | ९।१०७।८ | सप्तर्षयः                       | "          | बृहती |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                   | देवता       | छन्दः  |
|-------------|--------------|------------------------|-------------|--|
| ९९८         | ९।१०७।९      | सप्तर्षयः              | पवमानः सोमः | बृहती  |
| ९९९         | ९।१९।१       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | गायत्री  |
| १०००        | ९।१९।३       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "  |
| १००१        | ९।१९।२       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "  |
| ( ५ )       |              |                        |             |  |
| १००२        | १।८१।१       | गोतमो राहूगणः          | इन्द्रः     | पंक्तिः  |
| १००३        | १।८१।२       | गोतमो राहूगणः          | "           | "  |
| १००४        | १।८१।३       | गोतमो राहूगणः          | "           | "  |
| १००५        | १।८४।१०      | गोतमो राहूगणः          | "           | "  |
| १००६        | १।८४।११      | गोतमो राहूगणः          | "           | "  |
| १००७        | १।८४।१२      | गोतमो राहूगणः          | "           | "  |
| ( ६ )       |              |                        |             |  |
| १००८        | ९।६२।४       | जमदग्निर्भागवः         | पवमानः सोमः | गायत्री  |
| १००९        | ९।६२।५       | जमदग्निर्भागवः         | "           | "  |
| १०१०        | ९।६२।६       | जमदग्निर्भागवः         | "           | "  |
| १०११        | ९।१०८।९      | उध्वसद्वा आंगिरसः      | "           | काकुभः प्रागायः ( विषमा ककुप्, समा सतो बृहती ) |
| १०१२        | ९।१०८।१०     | कृतयशा आंगिरसः         | "           | "  |
| १०१३        | ९।१०९।१      | त्रित आप्त्यः          | "           | उष्णिक्  |
| १०१४        | ९।१०९।२      | त्रित आप्त्यः          | "           | "  |
| १०१५        | ९।१०९।३      | त्रित आप्त्यः          | "           | "  |
| १०१६        | ९।१००।६      | रेभसून् काश्यपो        | "           | अनुष्टुप्                                      |
| १०१७        | ९।१००।७      | रेभसून् काश्यपो        | "           | "  |
| १०१८        | ९।१००।९      | रेभसून् काश्यपो        | "           | "  |
| १०१९        | ९।९७।१०      | मन्युर्वसिष्ठः         | "           | त्रिष्टुप्                                     |
| १०२०        | ९।९७।११      | मन्युर्वसिष्ठः         | "           | "  |
| १०२१        | ९।९७।१२      | मन्युर्वसिष्ठः         | "           | "  |
| ( ७ )       |              |                        |             |  |
| १०२२        | ५।६।४        | वसुश्रुत आत्रेयः       | अग्निः      | पंक्तिः  |
| १०२३        | ५।६।५        | वसुश्रुत आत्रेयः       | "           | "  |
| १०२४        | ५।६।९        | वसुश्रुत आत्रेयः       | "           | "  |
| १०२५        | ८।९८।१       | नृमेध आंगिरसः          | इन्द्रः     | उष्णिक्  |
| १०२६        | ८।९८।२       | नृमेध आंगिरसः          | "           | "  |
| १०२७        | ८।९८।३       | नृमेध आंगिरसः          | "           | "  |
| १०२८        | १।८४।१       | गोतमो राहूगणः          | "           | "  |
| १०२९        | १।८४।३       | गोतमो राहूगणः          | "           | "  |
| १०३०        | १।८४।२       | गोतमो राहूगणः          | "           | "  |





## अथ सप्तमोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ४ ॥

[ १ ]

( १-२४ ) १ ( अकृष्टमाषादयः ) त्रयः; २, ११ कश्यपो मारीचः; ३ मेधातिथिः काण्वः; ४ हिरण्यस्तूप आंगिरसः;  
 ५ अवन्सारः काश्यपः; ६ जमदग्निर्भागवः; ७, २१ कुत्स आंगिरसः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ९ त्रिशोकः काण्वः;  
 १० श्यावाश्व आत्रेयः; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः,  
 ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गार्थिनः, ६ जमदग्निर्भागवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ), १३ अमहीयुरांगिरसः;  
 १४ शुनःशेष आजीगर्तिः; १५ मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः; १६ ( १, ३, २-पूर्वार्धः ) मान्धाता यौचनाश्वः,  
 १६ ( २ उत्तरार्धः ) गोधा ऋषिका; १७ असितः काश्यपो देवलो वा; १८ ( १ ) ऋणंचयो राजर्षिः,  
 १८ ( २ ) शक्तिर्वासिष्ठः; १९ पर्वतनारदौ काण्वौ; २० मनुः सांबरणः, २२ बन्धुः सुबन्धुः  
 श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा; २३ भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः ॥  
 १-६, ११-१३, १७-२१ पवमानः सोमः; ७, २२ अग्निः, ८ आदित्यः, ९, १४-१६  
 इन्द्रः; १० इन्द्राग्नी; २३ विश्वे देवाः, २४ ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३-१५,  
 १७ गायत्री; १२ प्रगाथः = विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); १६ महापंक्तिः;  
 १८ ( १ ) यवमध्या गायत्री, १८ ( २ ) सतो बृहती; १९ उष्णिक्; २०  
 अनुष्टुप्; २१ त्रिष्टुप्; २२ द्विपदा विराट्; २३ द्विपदा त्रिष्टुप्; २४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २  
 १०३१ ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।  
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।८६।१० )  
 ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 १०३२ अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।  
 १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
 हरिर्मित्रस्य सद्नेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८६।११ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १०३१ ] ( यज्ञस्य ज्योतिः ) यज्ञका प्रकाश करनेवाला सोम ( देवानां प्रियं मधु पवते ) देवोंको प्रिय लगने-  
 वाले मीठे रसको देता है । वह ( पिता ) पालन करनेवाला ( जनिता ) उत्पादक ( विभू-वसुः ) बहुत सारा धन अपने  
 पास रखनेवाला ( मदिन्तमः ) अत्यन्त आनन्द बढ़ानेवाला ( मत्सरः ) उत्साह बढ़ानेवाला ( इन्द्रियो ) इन्द्रको प्रिय  
 लगनेवाला ( रसः ) सोमरस ( स्वधयोः ) द्यावापृथिवीमें ( अपीच्यं रत्नं दधाति ) छिपे हुए धन यजमानको  
 देता है ॥ १ ॥

[ १०३२ ] ( दिवः पतिः ) ब्रूलोकका स्वामी ( शतधारः ) सैंकड़ों धाराओंसे छाना जानेवाला ( विचक्षणः )  
 वाजी बुद्धिमान् और बलवान् ( हरिः ) हरे रंगका सोमरस ( अभिक्रन्दन् कलशं अर्षति ) शब्द करता हुआ कलशमें  
 जाता है । ( सिन्धुभिः ) जलोंसे मिश्रित होकर ( अविभिः मर्मृजानः ) बालोंकी बनी छलनीसे शुद्ध होता हुआ यह  
 ( वृषा ) बलवान् सोम ( मित्रस्य सद्नेषु सीदति ) मित्रके यज्ञके पात्रमें जाकर रहता है ॥ २ ॥



१०३३ अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।

अग्रे वाजस्य भजसे महद्भनः स्वायुधः सोतृभिः सोम स्यसे ॥ ३ ॥ १ ( लु ) ॥

[ धा० २९ । उ० नास्ति । स्व० ५ ] ( ऋ. ९।८६।१२ )

१०३४ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासा वीरयाश्वः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।४ )

१०३५ शुम्भमानां क्रतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६४।५ )

१०३६ ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्षया ॥ ३ ॥ २ ( वी ) ॥

[ धा० २० । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।६४।६ )

१०३७ पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंक्षा । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।१ )

१०३८ आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो युञ्जवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२।२ )

१०३९ अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ठ सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२।३ )

[ १०३३ ] हे सोम ! तू ( सिन्धूनां अग्रे ) जल मिलानेके पहले ( पवमानः अर्षसि ) शुद्ध होनेके लिए जाता है । ( वाचः अग्रे गच्छसि ) स्तुतिके लिए पूज्य होकर जाता है । ( गोषु अग्रियोः गच्छसि ) गायोंके आगे आगे चलता है । ( वाजस्य स्वायुधः ) बलके लिए उत्तम शस्त्रोंसे युक्त होकर ( महत् धनं भजसे ) बड़े-बड़े धन प्राप्त करता है । ( सोम सोतृभिः स्यसे ) हे सोम ! तू ऋत्विजों द्वारा निचोड़ा जाता है ॥ ३ ॥

[ १०३४ ] ( वाजिनः ) बलवान्, ( शुक्रासः आश्वः सोमासः ) तेजस्वी और गतिमान् सोम ( गव्या, अश्वया, वीरया ) गाय, घोड़े और पुत्र यजमानको प्राप्त हों इसलिए ( प्र असृक्षत ) अपना रस छोड़ते हैं ॥ २ ॥

[ १०३५ ] ( क्रतायुभिः ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजों द्वारा ( शुम्भमानाः ) सुशोभित हुए और ( गभस्त्योः मृज्यमानाः ) हाथोंसे शुद्ध किए जानेवाले सोमरस ( अव्यये वारे ) भेड़के बालोंकी छलनीसे ( पवन्ते ) शुद्ध किये जाते हैं ॥ २ ॥

[ १०३६ ] ( ते सोमाः ) वे सोमरस ( दाशुषे ) वान देनेवाले यजमानको ( दिव्यानि आन्तरिक्षया पार्थिवा ) ध्रुवोक्त, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपरके ( विश्वा वसु ) सब धन ( आ पवन्तां ) देवें ॥ ३ ॥

[ १०३७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( देववीः ) देवोंको प्राप्त होनेकी इच्छा करनेवाला तू ( रंक्षा पवित्रं अति पवस्व ) वेगपूर्वक छलनीसे छनता जा । हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला तू ( इन्द्रं विश ) इन्द्रमें प्रविष्ट हो ॥ १ ॥

[ १०३८ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( वृषा युञ्जवत्तमः धर्णसिः ) बलवान् तेजस्वी और सबका धारण करनेवाला तू ( महि प्सरः ) बहुत अन्न और जल ( आ वच्यस्व ) हमें दे और ( योनिं आ सदः ) अपने स्थान पर बैठ ॥ २ ॥

[ १०३९ ] ( सुतस्य वेधसः धारा ) रस निचोड़े गए सोमकी धारा ( प्रियं मधु अधुक्षत ) अच्छे लगनेवाले मोठे रसको बर्तनमें इकट्ठा करती है । ( सु-क्रतुः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला सोम ( अपः वसिष्ठ ) जलमें मिलाया जाता है ॥ ३ ॥



- १०४० महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१।४ )
- १०४१ समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१।५ )
- १०४२ अचिक्रदवृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सःसूर्येण दिद्युते ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१।६ )
- १०४३ गिरस्त इन्द्र ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१।७ )
- १०४४ तं त्वा मदाय धृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१।८ )
- १०४५ गोषा इन्द्रो नृषा अस्यशसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्यः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१।९ )
- १०४६ अस्मभ्यमिन्द्रविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमा इव ॥ १० ॥ ३ ( कै ) ॥  
[ धा० ५१ । उ० १ । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।१।९ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

- १०४७ सना च सोम जेषि च पवमान माहि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥ ऋ. ९।४।१ )

[ १०४० ] हे सोम ! ( यत् गोभिः वासयिष्यसे ) जब तू गायके बुधमें मिलाया जाता है, तब ( महान्तं त्वा ) महत्त्वसे युक्त तुझमें ( सिन्धवः महीः अपः ) तवीका बहुतसा पानी भी ( अनु अर्षन्ति ) मिलाया जाता है ॥ ४ ॥

[ १०४१ ] ( समुद्रः ) जलमय ( दिवः विष्टम्भः ) शूलोकाका धारण करनेवाला और ( धरुणः ) आघार देने-वाला और ( अस्मयुः सोमः ) हमें चाहनेवाला सोम ( पवित्रे अप्सु मामृजे ) बर्तनके पानीमें बारबार धोया जाता है ॥ ५ ॥

[ १०४२ ] ( वृषा महान् हरिः ) बलवर्धक, महान् और हरे रंगका तथा ( मित्रः न दर्शतः ) मित्रके समान बर्तनीय सोम ( अचिक्रदत् ) शब्द करता है और ( सूर्येण सं दिद्युते ) सूर्यके समान चमकता है ॥ ६ ॥

[ १०४३ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( ते ओजसा ) तेरे सामर्थ्यसे ( अपस्युवः गिरः ) कर्मकी इच्छा करनेवाले स्तोता, स्तुतिके, मंत्र ( मर्मृज्यन्ते ) कहते हैं और ( याभिः मदाय शुम्भसे ) इन स्तुतियोंसे आनन्द बढ़ानेके लिए तू अलंकृत किया जाता है ॥ ७ ॥

[ १०४४ ] हे सोम !, ( तव महे प्रशस्तये ) तेरी महान् स्तुतिके लिए ( लोककृत्नुं तं त्वा ) लोगोंका हित करनेकी इच्छावाले तुझे ( धृष्वये मदाय ) शत्रुका नाश करनेके लिए और आनन्द बढ़ानेके लिए ( ईमहे ) हम प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

[ १०४५ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( यज्ञस्य पूर्यः आत्मा ) यज्ञकी मुख्य आत्मा तू ( गोषा नृषा ) गाय देने-वाला, पुत्र देनेवाला तथा ( अश्वसा उत वाजसा ) घोड़े और अश्व देनेवाला ( असि ) है ॥ ९ ॥

[ १०४६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( वृष्टिमान् पर्जन्य इव ) वर्षा करनेवाले मेघके समान ( अस्मभ्यं ) हमको ( इन्द्रियं ) बलवर्धक सामर्थ्य ( मधोः धारया पवस्व ) मधूर रसकी धारासे दे ॥ १० ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १०४७ ] ( माहिश्रवः पवमान सोम ) हे बहुत प्रशंसनीय शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( सना ) देवोंको प्राप्त हो तथा ( जेषि ) तू शत्रुओंको जीत ( अथा ) बावमें ( नः वस्यसः कृधि ) हमें यशस्वी कर ॥ ४ ॥

१७ [ साम. हिन्वी भा. २ ]



- १०४८ सना ज्योतिः सना स्वरेर्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४।२ )
- १०४९ सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।४।३ )
- १०५० पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।४।४ )
- १०५१ त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।४।५ )
- १०५२ तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योत्पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।४।६ )
- १०५३ अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रायिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।४।७ )
- १०५४ अभ्यर्षानपच्युतो वाजिन्समतसु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।४।८ )
- १०५५ त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।४।९ )
- १०५६ रायिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥ ४ ( चा ) ॥  
[ धा० २२ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।४।१० )

[ १०४८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( ज्योतिः सन ) हमें तेज दे, ( स्वः च विश्वा सौभगा सन ) सुख और सब सौभाग्य दे, ( अथ ) बादमें ( नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याणयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १०४९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( दक्षं क्रतुं सन ) बल और यज्ञ करनेका सामर्थ्य दे, ( मृधः अपजहि ) कन्तुओंको हरा, ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याणयुक्त कर ॥ ३ ॥

[ १०५० ] हे ( पवीतारः ) सोमरस तैय्यार करनेवाले ऋत्विजो ! ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रके पीनेके लिए ( सोमं पुनीतन ) सोमरसको पवित्र करो । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याणसे युक्त करो ॥ ४ ॥

[ १०५१ ] हे सोम ! ( त्वं ) तू ( तव क्रत्वा ) अपने कार्यसे और ( तव उतिभिः ) अपने संरक्षणोंसे ( नः सूर्ये आ भज ) हमें सूर्यकी उपासनामें स्थापित कर । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ५ ॥

[ १०५२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( तव क्रत्वा ) तेरे द्वारा दिए गए ज्ञानसे ( तव उतिभिः ) तेरी रक्षामें रहकर हम ( ज्योक् सूर्ये पश्येम ) बहुत समयतक सूर्यको देखें, ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ६ ॥

[ १०५३ ] हे ( स्वायुध सोम ) उत्तम शस्त्रोंको धारण करनेवाले सोम ! ( द्वि-बर्हसं रायिं अभ्यर्ष ) दोनों स्थानोंके धन हमें दे । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें सुखी कर ॥ ७ ॥

[ १०५४ ] हे ( वाजिन् ) बलवान् सोम ! ( समतसु अनपच्युतः ) युद्धमें न हारनेवाला और ( सासहिः ) शत्रुको हरानेवाला तू ( अभि अर्ष ) कलसेमें छनता जा ( अथ ) और ( नः वस्यसः कृधि ) हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ८ ॥

[ १०५५ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! लोग ( विधर्मणि ) विविध फल देनेवाले यज्ञमें ( यज्ञैः त्वा अवीवृधन् ) पूजनीय स्तोत्रोंसे तेरे महत्त्वको बढ़ाते हैं । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) अतः हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ ९ ॥

[ १०५६ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( नः ) हमें ( चित्रं अश्विनं ) विलक्षण, घोड़ोंसे युक्त और ( विश्वायुं ) सब लो.गोंका हित करनेवाले ( रायिं ) धनको ( आभर ) भरपूर दे । ( अथ नः वस्यसः कृधि ) और हमें कल्याण प्राप्त करा ॥ १० ॥



- १०५७ <sup>२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २</sup> तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । <sup>३ २ २ ३ १ २</sup> तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।१ )
- १०५८ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उस्त्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । <sup>२ ३ २ ३ १ २</sup> तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।१ )
- १०५९ <sup>३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २</sup> ध्वस्त्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि ददद्महे । <sup>२ ३ २ ३ १ २</sup> तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९।२ )
- १०६० <sup>१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आ ययौस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च ददद्महे । <sup>३ १ २ २ ३ २ ३ १ २</sup> तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ५ ( हा ) ॥
- [ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१८।४ )
- १०६१ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे । <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> मदिन्तमस्य धारया ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६२।२२ )
- १०६२ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> सनद्वाजः परि स्त्रव ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६२।२३ )
- १०६३ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । <sup>३ १ २ ३ १ २</sup> गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥ ६ ( वि ) ॥
- [ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६२।२४ )
- १०६४ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
- <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९४।१ )

[ १०५७ ] ( मन्दी सः ) आनन्व देनेवाला वह सोम ( तरत् धावति ) शीघ्र ही छलनीसे नीचे गिरता है, ( सुतस्य अन्धसः धारा ) इस सोमरसरूपी अन्नकी धारा ( धावति ) दौड़ती है । ( मन्दी सः तरत् धावति ) आनन्व देनेवाला वह सोम छनता हुआ दौड़ता है ॥ १ ॥

[ १०५८ ] ( वसूनां उस्त्रा ) धन देनेवाली ( देवी ) चमकती हुई धारा ( मर्तस्य अवसः वेद ) यजमानकी रक्षाके प्रकारको जानती है, ( सः मन्दी तरत् धावति ) वह आनन्व देनेवाली धारा शीघ्रतासे बहती है ॥ २ ॥

[ १०५९ ] ( ध्वस्त्रयोः पुरुषन्त्योः ) ध्वस्त्र और पुरुषन्तिके ( सहस्राणि आदद्महे ) हजारों प्रकारके धनोंको हम ग्रहण करते हैं । ( मन्दी सः ) आनन्व देनेवाला वह सोम ( तरत् धावति ) शीघ्रतासे दौड़ता है ॥ ३ ॥

[ १०६० ] ( ययोः ) जिस कारण ध्वस्त्र और पुरुषन्तिके ( त्रिंशतं सहस्राणि ) तीन सौ और हजार ( तना आदद्महे ) बलोंको हम स्वीकार करते हैं, ( मन्दी सः तरत् धावति ) आनन्व देनेवाला वह सोम शीघ्र ही नीचेके बर्तनमें गिरता है ॥ ४ ॥

[ १०६१ ] ( मदिन्तमस्य एते सोमाः ) परम आनन्व देनेवाले सोमके ये रस ( गृणानाः ) स्तुतिके बाद ( महे शवसे ) हमें उत्तम बल प्रदान करनेके लिए ( धारया असृक्षत ) एक धारसे कलसेमें गिरते हैं ॥ १ ॥

[ १०६२ ] हे सोम ! तू ( वीतये ) देवोंके पीनेको देनेके लिए ( नृम्णा गव्यानि ) मनुष्योंको आनन्व देनेवाले दूध आबियोंसे ( पुनानः अर्षसि ) पवित्र हुआ हुआ कलशमें जाता है । ( वाजः सनत् परिस्त्रव ) अन्न बेता हुआ तू कलशमें उतरता है ॥ २ ॥

[ १०६३ ] ( उत ) और हे सोम ! ( जमदग्निना गृणानः ) जमदग्निके द्वारा प्रशंसित हुआ हुआ तू ( नः ) हमें ( गोमतीः ) गायोंसे युक्त ( परिष्टुभः ) प्रशंसनीय ( विश्वाः इषः ) सब अन्न ( अर्ष ) दे ॥ ३ ॥

[ १०६४ ] ( अर्हते जातवेदसे ) पूज्यनीय अग्निके लिए ( मनीषया ) बुद्धिपूर्वक किए गए ( इमं स्तोमं ) इस स्तोत्रको ( रथं इव ) रथके समान ( सं महेम ) हम पूज्यनीय करते हैं । ( अस्य संसादि ) इसकी आराधनामें ( नः प्रमतिः ) हमारी बुद्धि ( भद्रा हि ) उत्तम चलती है । ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रतामें ( वयं मा रिषाम ) हम दुःखी या पीड़ित न हों ॥ १ ॥



- १०६५ भरामेधं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।  
जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९४।४ )
- १०६६ शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविः दन्त्याहुतम् ।  
त्वमादित्यां आ वह तान् ह्यश्मस्यग्नें सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥ ७ ( छौ ) ॥  
[ धा० ३७ । उ० २ । स्व० १० ] ( ऋ. १।९४।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

- १०६७ प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६६।७ )
- १०६८ राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेघसातये ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।६६।८ )
- १०६९ ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥ ३ ॥ ८ ( हा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति० । स्व० २ ] ( ऋ. ७।६६।९ )
- १०७० मिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्वाहं तदा भर ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१९।४० )

[ १०६५ ] हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( इधमं भराम ) हम तेरे लिए समिधा एकत्रित करते हैं ( वयं ) हम ( पर्वणाः पर्वणा ) प्रत्येक पर्वमें ( चितयन्तः ) तुझे प्रदीप्त करते हुए ( ते हवींषि कृणवामः ) तेरे लिए हवि तैय्यार करते हैं। वह तू ( जीवातवे ) हमारे दीर्घजीवनके लिए ( धियः प्रतरां साधय ) हमारे यज्ञकर्मको पूर्ण कर। हे ( अग्ने ) अग्निदेव ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रतामें रहकर ( वयं मा रिषाम ) हम कभी दुःखी न हों ॥ २ ॥

[ १०६६ ] हे अग्ने ! ( त्वा समिधं शकेम ) तुझे हम उत्तम रीतिसे जलाते हैं। ( धियः साधय ) हमारे यज्ञादि कर्म उत्तम रीतिसे सिद्ध कर। ( त्वे आहुतं हविः ) तुझमें आहुतिके द्वारा दी गई हविको ( देवाः अदन्ति ) देवगण खाते हैं। ( त्वं आदित्यान् आ वह ) तू अदितिके पुत्रोंको बुलाकर ला ( तान् हि उश्मसि ) यहां हम उनकी इच्छा करते हैं ( अग्ने ) हे अग्ने ! ( तव सख्ये वयं मा रिषाम ) तेरी मित्रतामें हम नष्ट न हों ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १०६७ ] हे मित्र और वरुण देवो ! ( सूर उदिते ) सूर्यके उदय होने पर ( वां मित्रं वरुणं ) तुम दोनों मित्र और वरुणकी तथा ( रिशादसं अर्यमणं ) शत्रुनाशक अर्यमाकी तथा ( प्रति ) प्रत्येक देवताओंकी ( गृणीषे ) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १०६८ ] हे ( विप्राः ) जानियो ! ( इयं मतिः ) यह स्तुति ( हिरण्यया राया ) हितकारक और रमणीय धनके साथ ( अवृकाय शवसे ) क्रूरतारहित बलकी प्राप्तिके लिए और ( मेघ-सातये ) यज्ञकी सिद्धिके लिए तुम्हें स्वीकार हो ॥ २ ॥

[ १०६९ ] हे ( देव वरुण ) वरुणदेव ! ( सूरिभिः सह ) विद्वानोंके साथ ( ते ) तेरी भी स्तुति करनेवाले हम धनवान् ( स्याम ) होंगे। हे ( मित्र ) मित्र ! तेरी भी स्तुति करनेवाले हम धनवान् हों तथा ( इषं च स्वः धीमहि ) अन्न और स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करनेवाले हों ॥ ३ ॥

[ १०६० ] हे इन्द्र ! तू ( विश्वाः द्विषः अप मिन्धि ) सब शत्रुओंका नाश कर ( बाधः मृधः परि जहि ) बाधा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर। ( स्वाहं तत् वसु आभर ) और चाहने योग्य धन हमें दे ॥ १ ॥



१०७१ यस्य ते विश्वमानुषभूरेदत्तस्य वेदति । वसु-स्पाहं तदाभर ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४९।४२ )

१०७२ यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शानि पराभृतम् । वसु-स्पाहं तदा भर ॥ ३ ॥ ९ ( चू ) ॥  
[ धा० १२ । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ८।४९।४१ )

१०७३ यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधताम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।३८।१ )

१०७४ तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधताम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।३८।२ )

१०७५ इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥ १० ( टा ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।३८।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१०७६ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६४।२२ )

१०७७ तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णासिम् । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।६४।२३ )

[ १०७१ ] हे इन्द्र ! ( ते दत्तस्य ) तेरे द्वारा दिए गए ( भूरेः यस्य ) बहुतसे जिस धनको ( विश्वं आनुष्क वेदति ) सब मनुष्य क्रमसे जानते हैं ( तत्-स्पाहं वसु नः आभर ) उस चाहने योग्य धनको हमें भरपूर दे ॥ २ ॥

[ १०७२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् वीडौ ) जो धन मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, ( यत् स्थिरे ) और जो जमीनमें स्थिर स्थानपर रखा हुआ है ( यत् पर्शानि ) जो छूनेके योग्य जगहमें रखा हुआ है, तथा जो ( पराभृतं ) शत्रुसे छीनकर लाया गया धन है ( तत्-स्पाहं वसु नः आभर ) वह चाहने योग्य धन हमें दे ॥ ३ ॥

[ १०७३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! तुम ही ( ह्री ) निश्चयसे ( यज्ञस्य ऋत्विजा स्थ ) यज्ञके ऋत्विज हो । ( वाजेषु कर्मसु ) युद्धके समान कर्मोंमें भी तुम ( सस्नी ) शुद्ध रहते हो इसलिए ( तस्य बोधतं ) इस स्तुतिको तुम जानकर स्वीकार करो ॥ १ ॥

[ १०७४ ] हे ( तोशासा ) शत्रुको मारनेवाले ( रथ-यावाना ) रथसे जानेवाले ( वृत्र-हणा ) धरनेवाले शत्रुओंके नाश करनेवाले ( अ-पराजिता ) पराजित न होनेवाले ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( तस्य बोधतं ) उस मेरी स्तुतिको सुनकरके स्वीकार करो ॥ २ ॥

[ १०७५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( वां ) तुम्हारे लिए ( नरः ) ऋत्विजोंने ( अद्रिभिः ) पथरोंसे ( मदिरं मधु अधुक्षन् ) आनन्द देनेवाला मीठा सोमरस निकालकर तैयार किया गया है ( तस्य बोधतं ) उस सम्बन्धी मेरी स्तुति तुम जानो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १०७६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मधुमत्तमः ) अत्यन्त मीठा ऐसा तू ( अर्कस्य योनिमासदं ) पूज्य यज्ञके स्थानमें बैठनेके लिए तथा ( मरुत्वते इन्द्राय पवस्व ) मरुतोंके साथ आनेवाले इन्द्रके लिए तू शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १०७७ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( तं धर्णासि त्वां ) उस धारणशक्तिसे युक्त तुझे ( वचोविदः विप्राः ) वाक्यका अर्थ जाननेवाले ज्ञानी ( परिष्कृण्वन्ति ) सुशोभित करते हैं । ( आयवः ) ऋत्विजलोग ( त्वा सं मृजन्ति ) तुझे उत्तम प्रकारसे शुद्ध करते हैं ॥ २ ॥



१०७८ रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥ ११ ( ल ) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६४।२४ )

१०७९ मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वासि ।  
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।२१ )

१०८० पुनानो वारं पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रददने ।  
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥ २ ॥ १२ ( ति ) ॥

[ धा० २४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०७।२२ )

१०८१ एतमु त्वं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।७ )

१०८२ समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सः सूर्यस्य रदिमभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६१।८ )

१०८३ स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुमित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥ १३ ( टि ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६१।९ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१०८४ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३०।१३ )

[ १०७८ ] हे ( कवे ) क्रान्तवर्षी सोम ! ( पवमानस्य ते रसं ) पवित्र होनेवाले तेरे रसको ( मित्रः वरुणः अर्यमा मरुतः पिबन्तु ) मित्र, वरुण, अर्यमा और मरुत पीवें ॥ ३ ॥

[ १०७९ ] ( सु-हस्त्या ) सुन्दर अंगुलियोंसे ( मृज्यमानः ) शुद्ध किया जानेवाला सोम ( समुद्रे वाचं इन्वासि ) कलशमें शब्द करता हुआ गिरता है । हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( पिशङ्गं पुरुस्पृहं ) सोनेके रंगके तथा अनेकों द्वारा चाहने योग्य ( बहुलं रयिं अभ्यर्षसि ) बहुत धन तू देता है ॥ १ ॥

[ १०८० ] ( वृषः पुनानः ) बल बढ़ानेवाला, शुद्ध होनेवाला ( अव्यये वारं पवमानः ) भेड़के बालोंकी छलनीसे छननेवाला ( वने अचिक्रदत् ) पानीमें शब्द करते हुए गिरता है । हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( देवानां ) देवताओंके लिए ( गोभिः अञ्जानः ) गायके दूधके साथ मिलाया जाता है और ( निष्कृतं अर्षसि ) शुद्ध किए हुए स्थानपर तू जाता है ॥ २ ॥

[ १०८१ ] ( सिन्धु-मातरं त्वं एतं ) सिन्धु जिसकी माता है ऐसे इस [सोमको ( दशक्षिपः ) दस अंगुलियों ( मृजन्ति ) शुद्ध करती हैं । वह सोम ( आदित्येभिः समख्यत ) आदित्योंको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

[ १०८२ ] ( सुतः ) सोमरस ( पवित्रे ) कलशमें ( इन्द्रेण सं एति ) इन्द्रको प्राप्त होता है । ( उत वायुना आ ) और वायुको भी प्राप्त होता है । तथा ( सूर्यस्य रदिमभिः सं ) सूर्यकी किरणोंके साथ मिलता है ॥ २ ॥

[ १०८३ ] हे सोम ! ( मधुमान् चारुः सः ) मीठा और सुन्दर वह तू ( नः ) हमारे यज्ञमें ( भगाय, वायवे, पूष्णे, मित्रे, वरुणे च पवस्व ) भग, वायु, पूषा, मित्र और वरुणके लिए पवित्र हो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १०८४ ] ( क्षुमन्तः ) अन्नके पास रहनेवाले हम ( याभिः ) जिन गायोंके साथ रहकर ( मदेम ) आनन्दका उपभोग करते हैं, ( इन्द्रे सधमादे ) उस इन्द्रके साथ एक स्थानपर रहकर ( नः ) हमारी वे गायें ( रेवतीः ) दूध और घी देनेवाली और ( तुविवाजाः सन्तु ) बलसे युक्त हों ॥ १ ॥



१०८५ आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः । ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥ २ ॥  
( ऋ. १।३०।१४ )

१०८६ आ यद् दुधः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ १४ ( ठी ) ॥  
[ धा० १८ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।३०।१५ )

१०८७ सुरूपकुत्नुमृतये सुदुधामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥ ( ऋ. १।४।१ )

१०८८ उप नः सवना गहिं सोमस्य सोमपाः पिव । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।४।२ )

१०८९ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥ १५ ( कौ ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १।४।३ )

१०९० उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनाः सम्राजं चर्षणीनाम् ।  
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१३।१ )

१०९१ दीर्घं अंकुशं यथा शक्तिं विभर्षि मन्तुमः । पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यमः ।  
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३।६ )

[ १०८५ ] हे ( धृष्णो ) धैर्यवान् इन्द्र ! ( त्वावान् ) तेरे समान ( त्मना युक्तः ) बुद्धिसे युक्त होकर ( ईयानः ) प्रार्थना करनेके बाद ( स्तोतृभ्यः ) स्तोताओंके लिए इष्ट पदार्थ ( घ आ ऋणोः ) अवश्य दे, ( चक्रयोः अक्षं न ) जिस प्रकार दोनों चक्रोंकी रथकी धुरा मिलाती है या संयुक्त करती है उसीप्रकार स्तोताओंको धनसे संयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १०८६ ] हे ( शत-क्रतो ) सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( यद् दुधः कामं ) उपासकोंका जो इच्छित धन है वह ( जरितृणां आ ऋणोः ) स्तुति करनेवालोंको दिला ( शचीभिः अक्षं न ) जिस प्रकार रथकी उत्तम अवस्थासे उसके हालकी भी गति मिलती है, उसीप्रकार स्तुति करनेवालोंको धन मिले ॥ ३ ॥

[ १०८७ ] ( सुरूपकुत्नुं ) सुन्दर रूप करनेवाले इन्द्रको ( उतये ) अपने संरक्षणके लिए ( द्यवि द्यवि जुहूमसि ) प्रतिदिन हम बुलाते हैं । ( गोदुहे सुदुधामिव ) दूध दुहनेके समय ग्वाले जिस प्रकार दुधारू गायोंको बुलाते हैं, उसी प्रकार हम इन्द्रको बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ १०८८ ] हे ( सोमपाः ) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! सोमरस पीनेके लिए ( नः सवना उप आगहि ) हमारे यज्ञोंके सवनोंमें आ । ( सोमस्य पिव ) सोम पी, और तू ( रेवतः मदः गोदाः इत् ) धनवानोंको आनन्द और गायें देनेवाला हो ॥ २ ॥

[ १०८९ ] ( अथ ) सोम पीनेके बाद ( ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम ) तेरे पास रहनेवाली उत्तम बुद्धियोंको हम जानें, तू भी हमारे पास ( आ गहि ) आ । ( नः मा अति ख्यः ) हमें छोड़कर दूसरोंको उस ज्ञानकी मत बता ॥ ३ ॥

[ १०९० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( उभे रोदसी ) दोनों ही, छुलोक और पृथ्वीलोकको ( उषाः इव ) उषा जिस प्रकार अपने प्रकाशसे सब जगत्को भर देती है, उसीप्रकार तू भी ( यद् आपप्राथ ) जब भर देता है तब ( महीनां महान्तं ) महान्से महान् ( चर्षणीनां सम्राजं त्वा ) मनुष्योंके सम्राट् तुझे ( देवी जनित्री ) देवमाला अदिति ( अजीजनत् ) उत्पन्न करती है, ( भद्रा जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली माता उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

[ १०९१ ] हे ( मन्तुमः ) ज्ञानवान् इन्द्र ! ( दीर्घं अंकुशं यथा ) महान् शस्त्रको धारण करनेके समान ( शक्तिं विभर्षि ) तू शक्तिको धारण करता है, हे ( मघवन् ) इन्द्र ! ( यथा अजः पूर्वेण पदा ) जैसे बकरा आगेके पांशसे ( वयां यमः ) डालीको नियंत्रित करता है उसीप्रकार तू शस्त्रको नियंत्रित करता है, तुझे ( देवी जनित्री अजीजनत् ) अदितिदेवीने जन्म दिया है, ( भद्रा जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली माताने तुझे प्रकट किया है ॥ २ ॥



१०९२ अव स दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् । अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्मा॑ अभिदासति ।

देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्

॥ ३ ॥ १६ ( यौ ) ॥

[ धा० ४२ । उ० नास्ति । स्व० १० ] ( ऋ १०।१३४।२ )

॥ इति पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१०९३ परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१८।१ )

१०९४ त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमध्वसः । मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१८।२ )

१०९५ त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिभाशत । मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥ १७ ( खा ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१८।३ )

१०९६ स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०८।१३ )

१०९७ यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।

आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे

॥ २ ॥ १८ ( ली ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।१०८।१४ )

[ १०९२ ] ( दुर्हणायतः मर्त्तस्य ) दुष्ट शत्रुके ( स्थिरं अव तनुहि ) स्थायी बलको क्षीण कर, ( यः अस्मान् अभिदासति ) जो हमें वास बनाना चाहता है ( तं ई अधस्पदं कृधि ) उसे नीचे दबा दें। ( देवी जनित्री अजी-जनत् ) अविता माताने तुझे उत्पन्न किया है, ( भद्रा, जनित्री अजीजनत् ) कल्याण करनेवाली माताने तुझे प्रकट किया है ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १०९३ ] ( गिरिष्ठाः स्वानः सोमः ) पर्वतपर रहनेवाला, रस निकाला गया सोम ( पवित्रे परि अक्षरत् ) छलनीसे टपकता है ! हे सोम ! ( मदेषु सर्वधा असि ) आनन्ददायक पदार्थोंमें तू सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

[ १०९४ ] हे सोम ! ( त्वं विप्रः ) तू ज्ञानी है, ( त्वं कविः ) तू दूरदर्शी है, तू ( अध्वसः जातं मधु प्र ) अन्नसे उत्पन्न मधुर रसको देता है । ( मदेषु सर्वधा असि ) आनन्द देनेवाले रसोंमें तू सबसे उत्तम है ॥ २ ॥

[ १०९५ ] हे सोम ! ( सजोषसः विश्वेदेवासः ) एक कार्यको जुटकर करनेवाले सब देव ( त्वे पीतिं भाशत ) तेरा रस पीनेकी इच्छा करते हैं । ( मदेषु सर्वधा असि ) आनन्द देनेवालोंमें सबकी अपेक्षा तू ही अधिक श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

[ १०९६ ] ( यः सोमः ) जो सोम ( वसूनां आ नेता ) धनोंको लानेवाला ( यः रायां ) जो गायोंको लानेवाला ( यः इडां ) जो अन्न लानेवाला, ( यः सुक्षितीनां ) जो उत्तम पुत्रोंको और नौकरोंको देनेवाला है, ( सः सुन्वे ) उस सोमके रसको निकाला जाता है ॥ १ ॥

[ १०९७ ] हे सोम ! ( यस्य ते इन्द्रः पिबात् ) जिस तेरे रसको इन्द्र पीता है, ( यस्य मरुतः ) जिसका रस मरुत् पीते हैं ( वा ) अथवा ( यस्य अर्यमणा भगः ) जिसके रसको अर्यमाके साथ भग देव पीते हैं, ( येन महे अवसे ) जिस सोमके द्वारा महान् संरक्षणके लिए ( मित्रावरुणा आ ) मित्र और वरुणको बुलाया जाता है, उसीप्रकार ( इन्द्रः आ ) इन्द्रको बुलाया है ॥ २ ॥



१०९८ तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।१०५।१ )

१०९९ सं वत्स इव मातृभिरिन्दुहिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०५।२ )

११०० अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।  
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥ १९ ( यि ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०५।३ )

११०१ सोमाः पवन्त इन्दवाऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।  
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वविदः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१० )

११०२ ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।  
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०१।१२ )

११०३ सुष्वाणासो व्यद्विभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।  
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ३ ॥ २० ( वा ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०१।११ )

[ १०९८ ] हे ( सखायः ) ऋत्विजरूपी मित्रो ! ( वः मदाय ) तुम देवताओंको आनन्द देनेके लिए ( पुनानं तं अभि गायत ) छाने जानेवाले उस सोमके स्तोत्रोंका गायन करो। ( शिशुं न ) जिसप्रकार मातायें बालकको सुशोभित करती हैं, उसीप्रकार सोमको ( हव्यैः गूर्तिभिः स्वदयन्त ) हवि और स्तुतियोंके द्वारा और स्वादिष्ट बनाओ ॥ १ ॥

[ १०९९ ] ( देवावीः मदः ) देवोंका रक्षक और आनन्ददायक, ( मतिभिः परिष्कृतः ) स्तुतियोंसे शुद्ध किया गया और ( हिन्वानः इन्दुः ) याजकोंको प्रेरणा देनेवाला सोम ( सं अज्यते ) पानीसे मिलाया जाता है। ( मातृभिः वत्सः इव ) माताके द्वारा बच्चा जिसप्रकार नहलाया, धुलाया जाता है, उसीप्रकार सोम पानीके द्वारा साफ किया जाता है ॥ २ ॥

[ ११०० ] ( अयं दक्षाय साधनः ) यह सोम बल बढ़ानेका साधन है, ( अयं शर्धाय ) यह सोम बल बढ़ानेके लिए और ( वीतये ) पीनेके लिए है, ( अयं सुतः ) इसका रस निकालनेके बाद ( देवेभ्यः मधुमत्तरः ) वह देवोंके लिए अधिक मीठा होता है ॥ ३ ॥

[ ११०१ ] ( मित्राः स्वानाः ) मित्रके समान हितकारक, निचोड़े गए ( अरेपसः स्वाध्यः ) निष्पाप और उत्तम लक्ष्य देने योग्य ( स्वः विदः ) आत्मदर्शी ( गातु वित्तमाः इन्दवः सोमाः ) प्रशंसनीय, चमकनेवाले सोमरस ( अस्मभ्यं पवन्ते ) हमारे लिए कलशमें छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११०२ ] ( पूतासः विपश्चितः ) पवित्र और ज्ञानी ( दध्याशिरः ) बहीके साथ मिले हुए ( घृते जिगत्नवः ) जलमें मिलाये जानेवाले ( ध्रुवाः ते सोमासः ) कलशमें रहनेवाले वे सोमरस ( सूरासः न ) सूर्यके समान ( दर्शतासः ) दर्शनीय हैं ॥ २ ॥

[ ११०३ ] ( गोः अधि त्वचि ) बेलके चमड़ेपर ( चितानाः ) रहनेवाले ( वि अद्विभिः सुष्वाणासः ) अनेक पत्थरोंसे कूटे जानेवाले ( वसुविदः ) धन देनेवाले ये सोम ( अस्मभ्यं अभितः इषं समस्वरन् ) हमें चारों ओरसे धन देते हैं ॥ ३ ॥



११०४ अया पवा पवस्वेना वसूनि माश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।

३ २ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
ब्रह्मश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धातु

॥ १ ॥ ( ऋ. २।२७।५२ )

११०५ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।

षष्टिः सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्कं धूनवद्रणाय

॥ २ ॥ ( ऋ. २।२।७।५३ )

११०६ महीमे अस्य वृष नाम शुषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे

अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राः अपाचितो अर्चतः

॥ ३ ॥ २१ (कि) ॥

[ धा० १६ । उ० १ । सू० ३ ] ( ऋ. १।१७।५४ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ୭ ]

११०७ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः

॥ १ ॥ ( ऋ. ५।२४।१ )

११०८ वसुरभिर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयि दाः

॥ २ ॥ ( ऋ. ५।२४।२ )

[ ११०४ ] हे सोम ! ( अया पवा ) इस पवित्र धारासे ( एना वसूनि ) इन धनोंको हमें ( पवस्व ) दे । हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मांश्चत्वे सरसि प्रधन्य ) इस पूजाके योग्य पानोंमें तू जाकर मिल जा, ( यस्य ) जिसके रसको पीकर ( ब्रध्नः चित् ) सूर्य भी ( वातः न ) वायुके समान ( जूर्ति ) वेगको प्राप्त होता है, और ( पुरुमेधाः चित् ) अत्यधिक बुद्धिमान् इन्द्र ( तकवे मह्यं ) सोम प्राप्त करनेवाले मुझे ( नरं धात् ) नेता होनेके योग्य पुत्रको देता है ॥ १ ॥

[ ११०५ ] हे सोम ! ( उत श्रवाय्यस्य तीर्थे ) और स्तुतिके योग्य ऐसे तेरे स्थानपर ( नः श्रुते ) हमारे यज्ञमें ( एना पवया ) इस पवित्र धारसे ( पवश्च ) तू छनता जा । ( नैगृतः ) शत्रुओंका नाश करनेवाला सोम ( षष्टिं सद्ब्रह्मा वसूनि ) साठ हजार धन ( रणाय ) शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए ( धून्वत् ) हमें देबे, ( पक्वं वृक्षं न ) जैसे वृक्ष पके हुए फल देते हैं, उसीप्रकार हमें धन दे ॥ २ ॥

[ ११०६ ] ( मही वृष, नाम ) बहुत सारे बाणोंको मारना और शत्रुको मुकाना ( हमे अस्य शृषे ) ये दोनों ही सोमके कार्य सुखकारी हैं । ये काम ( मांश्चत्वे ) घोड़ोंके साथ होनेवाले युद्धमें किए जाते हैं ( वा पृशने ) अथवा बाहुओंके युद्धमें ( वा वधत्रे ) अथवा हाथोंसे शत्रुओंके कत्ल करनेके समय किए जाते हैं, ( निगुतः अस्वापयन् ) जो शत्रुओंके सोते हुए अथवा ( स्नेहयत् ) शत्रुके भागते समय किए जाते हैं, हे सोम ! ( अभिजान् ) तब शत्रुओंको दूर कर ( इतः अपाचितः ) यहांसे शत्रुओंको तू दूर कर, ( अप अच ) उन्हें बहुत दूर कर ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ ११०७ ] हे अग्ने ! ( धरुध्यः त्वं ) सेवा करनेके योग्य तू ( नः अन्तमः ) हमारे पास रह, ( उत ) और ( ज्ञाता ) हमारा रक्षक हो, तथा हमारा ( शिवः भव ) कल्याण करनेवाला हो ॥ १ ॥

[ ११०८ ] ( वसुः वसुश्रवाः आग्निः ) निवासक और धनोंके लिए प्रसिद्ध अग्रणी तू ( अच्छ नक्षि ) सीधे हमारे पास आ, और ( द्युमत्तमः रयिं दाः ) तेजस्वी होकर हमें धन दे ॥ २ ॥



- ११०९ तं त्वा शोचिष्ट दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ३ ॥ २२ ( वा ) ॥  
 [ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १२४३३ )
- १११० इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०१९७१ )
- ११११ यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०१९७२ )
- १११२ आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥ ३ ॥ २३ ( छा ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० २ । ख० २ ] ( ऋ. १०१९७३ )
- १११३ प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायता य जुजोषते ॥ १ ॥
- १११४ अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्पर्का आ स्तोमति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ २ ॥
- १११५ उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्रः ॥ ३ ॥  
 [ धा० २ । उ० नास्ति । स्व १ ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[ ११०९ ] हे ( शोचिष्ट दीदिवः ) तेजस्वी और प्रकाशनेवाले अग्निदेव ! ( सुम्नाय सखिभ्यः ) सुखके लिए और मित्र तथा पुत्रादिकी प्राप्तिके लिए ( नूनं ईमहे ) निश्चयसे हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

[ १११० ] ( इमा भुवना ) ये भुवन ( नु कं सीषधेम ) हमारे सुखके साधन बनें । ( इन्द्रः च विश्वेदेवाः च ) इन्द्र और सब देव हमें सुख देवें ॥ १ ॥

[ ११११ ] ( आदित्यैः सह इन्द्रः ) आदित्योंके साथ इन्द्र ( नः यज्ञं ) हमारे यज्ञको ( तन्वं च ) और हमारे शरीरको ( प्रजां च ) और पुत्रपौत्रोंको ( सीषधातु ) उत्तम सफल करे ॥ २ ॥

[ १११२ ] ( आदित्यैः मरुद्भिः ) आदित्य और मरुतोंके तथा ( सगणः इन्द्रः ) गणोंके साथ रहनेवाला इन्द्र ( अस्मभ्यं ) हमारे लिए ( भेषजा करत् ) औषधें तैय्यार करे, रोग दूर करे ॥ ३ ॥

[ १११३ ] हे मनुष्यो ! ( विप्राय वृत्रहन्तमाय ) ज्ञानी और वृत्रको मारनेवाले ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( वः ) तुम ( गाथं प्रगायत ) स्तोत्रोंका गान करो, ( यः जुजोषते ) जिन्हें वह सुनता है ॥ १ ॥

[ १११४ ] ( सु-अर्काः मरुतः ) उत्तम तेजस्वी महत ( अर्कं अर्चन्ति ) पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं । ( श्रुतः युवा आ स्तोमति ) ज्ञानी युवा प्रशंसित होता है, ( सः इन्द्रः ) वही इन्द्र है ॥ २ ॥

[ १११५ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ते मधुमति प्रक्षे ) तेरे उत्तम निरीक्षणमें ( उपक्षियन्तः ) रहनेवाले हथ ( पुष्येम ) पुष्ट हों और ( रयिं धीमहे ) धनोंकी धारण करें ॥ ३ ॥

॥ यहां सातवा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥



## सप्तम अध्याय

इस सातवें अध्यायमें अन्य देवताओंका वर्णन करनेवाले कुछ ही मंत्र हैं। जब कि सोमके वर्णन करनेवाले बहुत ज्यादा हैं। पहले हम अन्य देवोंका वर्णन देखेंगे, क्योंकि देवोंके लिए ही सोम है। प्रथम इन्द्रके वर्णन देखिए—

### इन्द्र

१ सुरुपकृतुं ऊतये द्यविद्यवि जुहुमसि [ १०८७ ]  
—सुन्दर रूप बनानेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम प्रतिदिन बुलाते हैं। जगत्में जो सौन्दर्य है, वह इन्द्रका ही बनाया हुआ है। ऐसे उस इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम बुलाते हैं।

२ आगहि, नः मा अतिख्यः [ १०८९ ]—हमारे पास आ, हमें छोड़कर हमारी बात किसी दूसरेको न बता।

३ हे मन्तुमः ! दीर्घं अंकुशं शक्तिं विभर्षि [ १०९१ ]  
—महान् शस्त्रके समान बलशाली शक्तिको तू धारण करता है। इन शस्त्रोंसे तू शत्रुके साथ लड़कर उसको हरा।

४ हे सोमपाः ! नः सवना आगहि, सोमस्य पिव, रवतः मदः गोदाः [ १०८८ ]—हे सोम पीनेवाले इन्द्र ! तू हमारे यज्ञमें आ, सोम पी। धनवानोंकी प्रसन्नता गाय देनेवाली होती है।

### इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है

१ दुर्हणायतः मर्त्तस्य स्थिरं अवतनुहि [ १०९२ ]  
—दुष्ट शत्रुके स्थिर बलको क्षीण कर।

२ यः अस्मान् अभिदासति तं अधस्पदं कृधि [ १०९२ ]—जो हमें दास बनाना चाहता है, उसे दबा दे।

इन्द्रके ही ये कार्य हैं, इसलिए चारों ओरसे इन्द्रकी प्रशंसा होती है।

### इन्द्रको सोम दिया जाना

१ इन्द्राय पातवे सोमं पुनीतन [ १०५० ]—इन्द्रके पीनेके लिए तुम सोम छानकर तैयार करो।

२ हे इन्द्र ! विश्वा द्विवः अप भिन्धि [ १०७० ]—हे इन्द्र ! हमारे सब प्रकारके शत्रुओंको मार दे। इन्द्र सोमरस पीता है और उससे उत्साहित होकर ऐसे शूरवीरताके काम करता है।

३ वाधः परिजहि, स्पार्हं तद् आभर [ १०७० ]  
—बाधा डालनेवाले शत्रुओंको जीत और चाहने योग्य धनोंको हमें भरपूर दे। सोमपानके बाद इन्द्र यह सब करता है।

### इन्द्रका धन देना

१ हे इन्द्र ! ते दत्तस्य भूरेः यस्य विश्व-मानुषः आनुषक् वेदति [ १०७१ ]—हे इन्द्र ! तेरे द्वारा दिए गए धनको सब मनुष्य एक साथ जानते हैं।

२ हे इन्द्र ! यत् वीडौ, यत् स्थिरे, यत् विपर्शने, यत् पराभृतं तत् स्पार्हं वसु नः आभर [ १०७२ ]—हे इन्द्र ! जो धन मजबूत खंजानेमें है, जो स्थिर जगहमें रखा हुआ है, न छुने योग्य जगहमें रखा हुआ है अथवा जो शत्रुओंको पराजित करके लाया गया है, उस चाहने योग्य धनको हमें भरपूर दे।

इस प्रकार इन्द्र धन देता है।

### अग्नि

अग्नि देवताके सम्बंधमें क्या कहा है, अब उसपर विचार करते हैं—

१ हे अग्ने ! ते सख्ये वयं मा रिषाम [ १०६४ ]—हे अग्ने ! तेरे साथ मित्रता होनेके बाद हमारा नाश होनेवाला नहीं है। तू हमारा मित्र हो गया है इसका मतलब ही यह है कि हमारी हर प्रकारसे रक्षा निस्सन्देह होगी।

२ हे अग्ने ! इध्मं भराम, ते हवींषि कृणवाम, जीवातवे धियः प्रतरां साधय [ १०६५ ]—हे अग्ने ! हव्य तेरे लिए समिधा एकत्रित करते हैं, तेरे लिए हवन सामग्री एकत्रित करते हैं, हमें दीर्घायु प्राप्त हो इसलिए हमारी बुद्धि श्रेष्ठ कर, हमारे कर्मोंको यज्ञके साथ पूर्ण कर।

३ त्वं आदित्यान् आ वह [ १०६६ ]—तू आदित्योंको यहां ले आ।

४ हे अग्ने ! त्वं नः अन्तमः, त्राता शिवः भव [ ११०७ ]—हे अग्ने ! तू हमारे पासका मित्र है, अतः तू हमारा रक्षण करनेवाला और कल्याण करनेवाला हो।

५ वसुः वसुश्रवाः अग्निः दुमन्तमः रयिः वाः [ ११०८ ]—हे अग्ने ! तू प्रत्यक्ष धन है, धनके लिए प्रसिद्ध है, तू अत्यन्त तेजस्वी है, ऐसा तू हमें धन दे।



६ हे शोचिष्ठ दीदिवः ! त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे [ ११०९ ]- हे तेजस्वी और प्रकाशित होनेवाले अग्निदेव ! हमें सुख और पुत्रपौत्र मिलें इसलिए हम तेरी प्रार्थना करते हैं ।

इस प्रकार अग्निके सम्बन्धमें इस अध्यायमें मंत्र हैं । अब इन्द्र और अग्निके मंत्र देखिए—

### इन्द्र और अग्नि

१ तोशासा रथयाना वृत्रहणा अपराजिता इन्द्राग्नी ! तस्य बोधत [ १०७४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम शत्रुको मारनेवाले वीर हो, तुम रथसे जाते हो, वृत्रादि असुरोंको मारते हो, तुम्हारी कभी भी पराजय नहीं होती । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन्हें तुम जानो ।

२ वां अद्रिभिः मदिरं मधु अधुक्षन् [ १०७५ ]- तुम्हारे लिए पथरोंसे कूटकर यह आनन्ददायक रस निकाला गया है- इस रसको स्वीकार करो ।

### मित्र, वरुण और अन्य देव

१ हे विप्राः ! इयं मतिः हिरण्यया राया, अवृकाय शवसे मेधसातये [ १०६८ ]- हे ज्ञानी मित्र और वरुणो ! हितकारक और रमणीय धनकी प्राप्ति के लिए, क्रूरतारहित बलकी प्राप्ति के लिए और बुद्धिकी प्राप्ति के लिए हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन्हें तुम स्वीकार करो ।

२ इषं च स्वः धीमहि [ १०६९ ]- हम अन्न और आनन्द प्राप्त करनेवाले होवें ।

३ आदित्यैः सह इन्द्रः नः यज्ञं, तन्वं प्रजां च सीषधातु [ ११११ ]- बारह आदित्योंके साथ इन्द्र हमारे यज्ञमें आवे तथा हमारे शरीरको और हमारे पुत्रपौत्रोंको उत्तम सहायता देवे ।

इस प्रकार मित्र, वरुण और अन्य देवोंका वर्णन आया है । अब हम सोमका वर्णन, जिसका कि इस अध्यायमें विशेष महत्त्व है, देखते हैं ।

### देवोंके लिए सोम

१ [ सुतः ] आदित्येभिः समख्यत [ १०८१ ]- सोम आदित्योंको प्राप्त होता है ।

२ इन्द्रे वायुना सूर्यस्य रश्मिभिः सं [ १०८२ ]- इन्द्र, वायु और सूर्य किरणोंको भी प्राप्त होता है ।

३ हे सोम ! यस्य ते इन्द्रः पिबात्, मरुतः, अर्य-मणा, भगः, मित्रावरुणा [ १०९७ ]- हे सोम ! तेरा रस इन्द्र पीता है, और मरुत्, अर्यमा, भग, मित्र और वरुण भी पीते हैं ।

इस प्रकार यज्ञमें सब देव सोमरस पीते हैं ।

### पर्वत पर सोम होता है

१ गिरिष्ठाः स्वानः सोमः पवित्रे परि अक्षरत्, मधेषु सर्वधा अस्ति [ १०९३ ]- पर्वतपर होनेवाला सोम, रस निकालनेके बाद छलनीसे छाना जाता है । वह आनन्द बढ़ानेवाले पदार्थोंमें सबसे अधिक आनन्द बढ़ानेवाला है ।

### सोम यज्ञकी आत्मा है

१ हे इन्द्रो ! यज्ञस्य पूर्वं आत्मा [ १०४५ ]- हे सोम ! तू यज्ञकी पहलेसे ही आत्मा है ।

सोम न हो तो यज्ञ भी नहीं हो सकता । इसलिए इसको यज्ञकी आत्मा कहा है ।

### सोमके गुण

- १ यज्ञस्य ज्योतिः [ १०३१ ]- यज्ञका तेज ।
- २ प्रियं मधु [ १०३१ ]- प्रिय और मीठा ।
- ३ पिता [ १०३१ ]- पिता, पालक ।
- ४ जनिता [ १०३१ ]- उत्पन्नकर्ता, नाना प्रकारकी शान्ति उत्पन्न करनेवाला ।
- ५ विभुः वसुः [ १०३१ ]- बहुतसा वैभव जिसके पास है ।
- ६ मदिन्तमः [ १०३१ ]- अत्यन्त आनन्द देनेवाला ।
- ७ मत्सरः [ १०३१ ]- आनन्द देनेवाला ।
- ८ इन्द्रियः [ १०३१ ]- इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ानेवाला, इन्द्रकी शक्ति बढ़ानेवाला ।
- ९ दिवः पतिः [ १०३२ ]- छलोकका स्वामी, छलोक पर रहनेवाला ।
- १० विचक्षणः [ १०३२ ]- विवेक ज्ञानी ।
- ११ वाजी [ १०३२ ]- बलवान्, अन्नवान् ।
- १२ हरितः [ १०३२ ]- हरे रंगका ।
- १३ शुक्रः [ १०३४ ]- स्वच्छ, वीर्यवान्, बल बढ़ाने-वाला, बलवान् ।
- १४ आशुः [ १०३४ ]- शीघ्रतासे कार्य करनेवाला ।
- १५ सोमः [ १०३४ ]- सोम लता, सोमरस ।
- १६ इन्द्रुः [ १०३८ ]- तेजस्वी, चमकनेवाला ।



१७ वृषा [१०३८]— बलशाली, कामनाओंकी तृप्ति करनेवाला ।

१८ युष्मन्वत्तमः [१०३८]— बहुत चमकनेवाला ।

१९ धर्षसिः [१०३८]— धारकशक्ति बढ़ानेवाला ।

२० स्वायुधः [१०५३]— उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त ।

२१ मित्रः [११०१]— मित्रके समान हित करनेवाला ।

२२ अरेपाः [११०१] निर्दोष, निष्कलंक ।

२३ स्वाध्यः [११०१]— उत्तम निरीक्षण करनेवाला ।

२४ स्वर्विदः [११०१]—स्वर्गको जानेवाला, आत्मज्ञानी ।

२५ गानुवित्तमः [११०१]— उत्तममार्ग जाननेवाला ।

२६ पूतः [११०२]— पवित्र, छना हुआ ।

२७ विपश्चितः [११०२]— ज्ञानी ।

२८ दध्याशिरः [११०२]— बही जिसमें मिलाया जाता है ।

२९ घृते जिगत्सुः [११०२]— पानीमें मिलनेकी इच्छा करनेवाला ।

३० ध्रुवः [११०२]— जिसका परिणाम स्थिर रहता है ।

३१ दर्शतः [११०२]— दर्शनीय, सुन्दर, देखने योग्य ।

३२ वसुविदः अस्मभ्यं इषं समस्वरन् [११०३]— धनको पासमें रखनेवाला हमें उत्तम धन देवे ।

३३ रसः स्वधयोः अपीच्यं रत्नं दधाति [१०३१] सोमरस इस छलोक और पृथ्वीलोकके उत्तम धनोंको देता है ।

इस प्रकार इस सोमका वर्णन इस अध्यायमें है । सोमरस पीनेके बाद जो गुण वीरोंमें अथवा पीनेवालोंमें दिखाई देते हैं, वे सोमके ही हैं ऐसा समझना चाहिए । उपासक अपनेमें जो गुण बढ़ाने योग्य हों उन्हें बढ़ावें ।

बैलके चमड़े पर कूटते हैं

१ गोः अधि त्वचि चितानाः वि अद्रिभिः सुष्वाणासः [११०३]— गाय अर्थात् बैलके चमड़ेपर अर्थात् चमड़ेको फेंलाकर उस पर सोमको पत्थरोंसे कूटते हैं । चमड़ेपर लकड़ीके पटले रखकर उसपर सोम कूटकर रस निकालते हैं ।

सोमका पानीमें मिलाया जाना

सोमका रस निकालनेके बाद वह छाननेके पहले पानीमें मिलाया जाता है—

१ सिन्धुभिः अनिभिः मर्मृजानः [१०३२]— नदीका पानी मिलाकर छलनीसे वह रस छाना जाता है ।

२ सिन्धूनां अग्रे पवमानः अर्षसि [१०३३]— नदियोंके पानीके पास वह शुद्ध होनेके लिए जाता है ।

३ सुहस्त्या मृज्यमानः समुद्रे वाचं हन्वति [१०७९]— उत्तम हाथोंकी अंगुलियोंसे शुद्ध किया जानेवाला सोमरस पानीके बर्तनमें शब्द करता हुआ जाता है ।

४ मांदचत्वे सरसि प्रधन्व [११०४] इस उत्तम पानीमें मिल ।

५ वृषा मित्रस्य सदनेषु सीदति [१०३२]— यह बल बढ़ानेवाला सोम मित्ररूपी यज्ञमें जाकर बैठता है, अर्थात् पानीके बर्तनमें रखा जाता है ।

इस प्रकार सोमरसको पानीमें मिलाया जाता है ।

सोमका छाना जाना

सोमरस पानीमें मिलाकर उसे भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छानते हैं ।

१ गभस्त्योः मृज्यमानः अव्ये वारे पवते [१०३५]— हाथोंसे शुद्ध किया जानेवाला सोमरस भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छाना जाता है ।

२ देववीः रंक्षा पवित्रं अति पवस्व [१०३७]— देवोंके पास जानेवाला सोम वेगसे छलनीसे छाना जाता है ।

३ समुद्रः दिवः विष्टम्भः धरुणः सोमः पवित्रे अप्सु मामृजे [१०४१]— जलमय छलोकको धारण करनेवाला सोम छलनीसे छानकर पानीमें शुद्ध किया जाता है ।

४ आयवः त्वा सं मृजन्ति [१०७७]— ऋत्विज तुझे उत्तम प्रकारसे शुद्ध करते हैं ।

५ वृषा पुनानः अव्ये वारे पवमानः वने अचि-क्रदत् [१०८०]— बल बढ़ानेवाला सोम भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता हुआ पानीमें शब्द करता हुआ गिरता है ।

सोमका शब्द करते हुए छाना जाना

१ अभिक्लन्दन् कलशं अर्षति [१०३२]— शब्द करता हुआ कलशमें जाता है ।

२ वृषा महान्, हरिः मित्रः न दर्शतः अचिक्लदत् [१०४२]— बल बढ़ानेवाला, महान्, बुख बूर करनेवाला, मित्रके समान दर्शनीय, सोम शब्द करता हुआ बर्तनमें गिरता है ।

नीचेके बर्तनमें पानी रहता है, उसमें ऊपरकी छलनीसे रस गिरनेसे शब्द होता है ।



## सोमरस चमकता है

१ सोमः सूर्येण सं दिद्युते [ १०४२ ]- सोम सूर्यके समान चमकता है ।

## सोमका गायके दूधमें मिलाया जाना

सोमको पानीमें मिलानेके बाद उसे दूधमें मिलाने हैं ।

१ गोषु अग्रं गच्छति [ १०३३ ]- गायके आगेके भागमें गिरता है । गायके दूधमें सोमरस मिलाया जाता है ।

२ यत् गोभिः वासयिष्यसे, महान्तं त्वा सिन्धवः महीः अपः अनु अर्षन्ति [ १०४० ]- जिस समय तुममें गायका दूध मिलाया जाता है, उससे पहले नदीका पानी अथवा दूसरा पानी लेकर मिलाया जाता है ।

३ वीतये नृम्णा गव्यानि पुनानः अर्षसि [ १०६२ ]- सोमरसको पीनेके पहले उत्तम गायका दूध स्वच्छ सोममें मिलाया जाता है ।

## सोमरस पीना

१ सजोषसः विश्वेदेवासः त्वे पीति आशत [ १०९५ ]- एक साथ कार्य करनेवाले सब देव सोमको पीनेकी इच्छा करते हैं ।

## सोम अन्न देता है

१ महि पसरः आ च्यवस्व [ १०३८ ]- बहुत सारा अन्न हमें दे ।

२ नः गोमती विश्वा इषः अर्ष [ १०६३ ]- हमें गायोंसे उत्पन्न होनेवाले सब प्रकारके धन दे । सोमरसमें गायके दूध, बही आदि पदार्थ मिलाये जाते हैं, इसलिए सोमरस पीनेसे गायोंसे मिलनेवाले धन प्राप्त होते हैं, ऐसा होता है । इस प्रकार सोम अन्न देता है । वह बल भी बढ़ता है—

## सोम बल बढ़ाता है

१ हे इन्द्रो ! [ अस्माकं ] इन्द्रियं मधोः धारया पवस्व [ १०४६ ]- हे सोम ! हमारी इन्द्रियशक्ति अपनी सीढ़ी धारासे बढ़ा ।

२ दक्षं क्रतुं सन [ १०४९ ]- बल और कर्मशक्ति बढ़ा ।

३ अयं दक्षाय, शर्धाय, वीतये साधनः [ ११०० ]- यह सोम बल, सामर्थ्य और अन्नोका साधन है, अर्थात् वह बल और सामर्थ्य बढ़ानेवाला है ।

## सोम दीर्घायु देता है

१ तव क्रत्वा, तव ऊतिभिः ज्योक् सूर्यं पश्येम [ १०५२ ]- हे सोम ! तेरी कर्तृत्वशक्ति और तेरे संरक्षणोंसे हम चिरकालतक सूर्यको देखते रहें । अर्थात् हम दीर्घ आयु-वाले हों । सोम यदि ठीक रीतिसे पिया जाए तो आयु दीर्घ होती है ।

## सोम संरक्षण करता है

१ वसूनां उस्त्रा देवी मर्तस्य अवसः वेद [ १०५८ ]- धन देनेवाली, चमकनेवाली सोमकी धारा संरक्षण करनेके हर प्रकारको जानती है ।

२ सोमाः महे अवसे धारया अस्तुक्षत [ १०६१ ]- सोमरस महान् संरक्षणके लिए धार बांधकर कलशमें गिरता है । इस प्रकार सोमरस अपने संरक्षणकी शक्ति बढ़ाता है और वीरोंको अपनी रक्षा करनेमें समर्थ बनाता है ।

## सोम लोकसेवा करता है

१ लोककृतुं त्वा धृष्णवे मदाय ईमहे [ १०४४ ]- लोगोंका हित करनेवाले तुझ सोमको शत्रुके नाश करनेके लिए तथा आनन्द बढ़ानेके लिए हम स्वीकार करते हैं । सोम पीनेसे वीरोंके शरीरोंमें उत्साह बढ़ाता है, उसके कारण लोक-सेवाके महान् महान् कार्य किये जा सकते हैं ।

## सोम शत्रुओंको दूर करता है

१ हे सोम ! दक्षं क्रतुं सन । मृधः अपजहि । नः वस्यसः कृधि [ १०४९ ]- हे सोम ! हमें बल और कर्म करनेके सामर्थ्य दे । शत्रुओंको दूर कर और हमारा कल्याण कर ।

२ हे वाजिन् ! समत्सु अनपच्युतः सासहिः अभि अर्ष [ १०५४ ]- हे बलवान् सोम ! तू युद्धमें न हारनेवाला तथा शत्रुओंका हरानेवाला होकर आगे जा ।

३ मही वृष-नाम इमे अस्य शूषे [ ११०६ ]- बहुतसे बाणोंकी शत्रुपर वर्षा करना और शत्रुको झुकाना ये सोमके दो सामर्थ्य हैं ।

४ मांश्चत्वे, पृशने, वधत्रे, निगुतः अस्वापयन्, स्नेहयन्, अमित्रान्, अपचितः, इतः अपचितः [ ११०६ ]- घोड़ोंके युद्धोंमें, बाहुओंके युद्धोंमें, हाथोंके युद्धोंमें शत्रुको मारनेके समय अथवा शत्रुओंको भगानेके समय तू शत्रुओंको दूर कर और यहाँसे भी शत्रुओंको दूर कर ।



इस प्रकार सोम शत्रुओंको डूर करता है। सोमरस पीनेसे बीरोंमें इस प्रकारसे युद्ध करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है।

### सोम धन देता है

१ सोमाः दाशुषे दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिवाः विश्वा वसु आ पवतां [ १०३६ ]- सोमरस दाताको स्वर्गीय, अन्तरिक्षीय और पार्थिव अर्थात् सभी प्रकारके धन देवे।

२ हे सोम ! गोषा, नृषा, अश्वसा उत वाजसा अस्मि [ १०४५ ]- हे सोम ! तू गाय देनेवाला, पुत्र देनेवाला, घोडे देनेवाला, और अश्व देनेवाला है।

३ महिभ्रवः सोम ! जेधि, नः वस्यसः कृधि [ १०४७ ]- हे प्रशंसित सोम ! तू विजय प्राप्त करता है। हमें यशस्वी कर।

४ ज्योतिः सन ! स्वः च विश्वा सौभगा सन [ १०४८ ]- हमें तेज दे। सुख तथा सब सौभाग्य दे।

५ द्विर्बर्हसं रयिं अभ्यर्ष [ १०५३ ]- दोनों ही स्थानों पर उपयोगी होनेवाले धन दे।

६ नः चित्रं, अश्विनं, त्रिश्वायुं रयिं आ भर [ १०५६ ]- हमें विलक्षण, घोडोंसे युक्त, सब लोगोंका हित करनेवाले धन भरपूर दे।

७ सहस्राणि आदग्नाहे [ १०५९ ]- सहस्र प्रकारके धन हम प्राप्त करते हैं।

८ त्रिंशत् सहस्राणि तना आदग्नाहे [ १०६० ]- तीससौ और हजारों वस्त्रोंको हम लेते हैं।

९ पिशंगं पुरुषपृहं बहुलं रयिं अभ्यर्षसि [ १०७९ ]- सुनहरे रंगके बहुतसे धन हमें दे।

१० सोमः वसूनां आनेता, रायां, इडां, सुक्षितीनां [ १०९६ ]- सोम हमें धन, ऐश्वर्य, अन्न, तथा उत्तम पुत्रोंका देनेवाला है।

११ अया पवा एना वसूनि पवस्व [ ११०४ ]- इन धाराओंसे ही तू हमें धन दे।

१२ नैयुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि रणाय धूनवत् [ ११०५ ]- शत्रुओंका नाश करनेवाला सोम साठहजार धन शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए देवे।

१३ वाजस्य स्वायुधः महत् धनं भजसे [ १०२३ ]- बल बढ़ानेके लिए उत्तम शस्त्रोंसे युक्त तू सोम ! महान् धन प्राप्त करता है।

इस प्रकार यह सोम अनेक प्रकारके धन और ऐश्वर्यका देनेवाला है। सोम यदि शरीरमें बीरता लाता है, तो वह शत्रुको हराकर बहुतसा धन दे सकता है, इसमें कोई शंका नहीं। इस प्रकार विचार करनेसे यह आसानीसे समझमें आ सकता है कि सोमसे किस प्रकार धन प्राप्त होता है।

### सुभाषित

१ यज्ञस्य ज्योतिः प्रियं मधु पवते [ १०३१ ]- यज्ञकी ज्योतिः प्रिय और मधुर भाव उत्पन्न करती है।

२ विभूवसुः मदिन्तमः मत्सरः अपीच्यं रत्नं दधाति [ १०३१ ]- बहुतसा धन पासमें रखनेवाला और आनन्द बढ़ानेवाला गुप्त स्थानमें रत्न धारण करता है, गुप्त स्थानमें धन रखता है।

३ वाजस्य स्वायुधः महत् धनं भजसे [ १०३३ ]- युद्धके लिए उत्तम शस्त्रोंसे तैयार हुआ हुआ बीर ही धन प्राप्त करता है।

४ ते दाशुषे दिव्यानि आन्तरिक्ष्या पार्थिवा विश्वा वसु आ पवन्तां [ १०३६ ]- वह दाताको दिव्य, अन्तरिक्षीय और पार्थिव धन देता है।

५ वृषा द्युन्नवत्तमः धर्णसिः महि पसरः आ वच्यस्व [ १०३८ ]- तू बलवान् तेजस्वी और सबोंका धारण करनेवाला होकर बहुत अन्न हमें दे।

६ वृषा महान् हरिः, मित्रः नः दर्शतः [ १०४२ ]- बलवान्, महान्, दुःखोंका हरण करनेवाला और मित्रके समान दर्शनीय है।

७ लोककृत्नुं त्वा धृष्णवे मदाय ईमहे [ १०४४ ]- लोगोंका कल्याण करनेवाले, तुझे शत्रुओंका नाश करनेके लिए और आनन्द प्राप्त करनेके लिए हम प्राप्त करते हैं।

८ जेधि, अथ नः वस्यसः कृधि [ १०४७ ]- तू विजय प्राप्त करता है, इसलिए हमें यशस्वी कर।

९ ज्योतिः सन, विश्वा सौभगा सन [ १०४८ ]- हमें तेजस्विता दे और सब सौभाग्य-ऐश्वर्य-दे।

१० दक्षं क्रतुं सन [ १०४९ ]- बल और कर्मशक्ति दे।

११ मृधः अप जहि [ १०४९ ]- शत्रुओंको हरा।

१२ तव क्रत्वा तव ऊतिभिः नः आ भज [ १०५१ ]



— अपने पुत्रवार्धसे और अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारी सहायता कर ।

१३ ज्योक् सूर्य पश्येम [ १०५२ ]- बहुत वर्षोंतक हम सूर्यको देखें । हमें दीर्घायु दे ।

१४ हे स्वायुधः द्विवर्हसं रयिं अभ्यर्ष [ १०५३ ]- हे उत्तम शस्त्रास्त्र चलानेवाले वीर ! हमें दोनों ही जगहके धन दे ।

१५ हे वाजिन् ! समत्सु अनपच्युतः सासहिः अभि अर्ष [ १०५४ ]- हे बलवान् वीर ! युद्धोंमें अपनी जगह पर स्थिर रहनेवाला तथा शत्रुओंको हरानेवाला होकर आगे जा ।

१६ नः चित्रं विश्वायुं रयिं आ भर [ १०५६ ]- हमें विलक्षण, और पूर्ण आयु देनेवाले धन भरपूर दे ।

१७ वसूनां उस्मा देवी मर्तस्य अवसः वेद [ १०५८ ]- धन देनेवाली देवी मनुष्यके संरक्षणके सारे कार्य जानती है ।

१८ नः गोमतीः विश्वाः इषः अर्ष [ १०६३ ]- हमें गायोंसे उत्पन्न होनेवाले सब प्रकारके अन्न दे ।

१९ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा [ १०६४ ]- इस सभामें हमारी बुद्धि उत्तम कल्याण करनेवाली हो ।

२० हे अग्ने ! तव सख्ये वयं मा रिषाम [ १०६४ ]- हे अग्ने ! तेरी मित्रतामें रहकर हम निश्चयसे नष्ट होनेवाले नहीं ।

२१ जीवातवे धियः प्रतरां साधय [ १०६५ ]- दीर्घ-जीवन प्राप्त करनेके लिए हमारी बुद्धिकी पूर्णता कर ।

२२ इयं मतिः हिरण्यया राया, अवृकाय शवसे मेधसातये [ १०६८ ]- यह बुद्धि हितकारक और रमणीय धन, क्रूरतारहित बल, बुद्धि और वैभवकी प्राप्ति करनेवाली हो ।

२३ इषं च स्वः धीमहि [ १०६९ ]- अन्न और स्वर्गोप आनन्द हमें प्राप्त हो ।

२४ विश्वाः द्विषः अपभिन्धि [ १०७० ]- सब शत्रुओंका नाश कर ।

२५ बाधः मृधः परिजहि [ १०७० ]- बाधा करनेवाले और हिंसा करनेवाले शत्रुओंको दूर कर ।

२६ स्पार्हं तत् वसु आभर [ १०७० ]- चाहने योग्य धनको हमें दे ।

२७ ते वसस्य भूरेः विश्वमानुषः आनुषक् वेदति तत् स्पार्हं वसु नः आभर [ १०७१ ]- तेरे द्वारा दिए गए

१९ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

धनको सब मनुष्य एकदम जानेंगे । अतः चाहने योग्य धन हमें दे ।

२८ यत् वीडौ, यत् स्थिरे, यत् विपर्शाने पराभृतं तत् स्पार्हं वसु नः आभर [ १०७२ ]- जो धन मजबूत खजानेमें रखा हुआ है, जो स्थिर स्थानपर है तथा जो किसीसे न छुये जाने योग्य स्थानमें रखा हुआ है तथा जो शत्रुओंसे छीनकर लाया गया है, वे चाहने योग्य धन हमें भरपूर दे ।

२९ तोशासा, रथयावाना, वृत्रहणा, अपराजिता [ १०७३ ]- शत्रुओंको मारनेवाले, रथोंसे जानेवाले, शत्रुओंका नाश करनेवाले और पराजित न होनेवाले वीर हैं ।

३० पिशंगं पुरुस्पृहं बहुलं रयिं अभ्यर्षसि [ १०७९ ]- सुनहरा, बहुतों द्वारा चाहने योग्य बहुत सारा धन हमें दे ।

३१ ऊतये सुरूपकृत्तुं धविद्यवि जुह्मसि [ १०८७ ]- हमारे संरक्षणके लिए उत्तम रूप बनानेवाले इन्द्रको हम प्रतिबिम्ब बुलाते हैं ।

३२ मा नः अति ख्यः [ १०८९ ]- हमें दूर मत कर ।

३३ हे मन्तुम ! दीर्घं अंकुशं शक्तिं विभर्षि [ १०९१ ]- हे ज्ञानवान् वीर ! तू महान् शक्तिवाले शस्त्रोंको धारण करता है ।

३४ मदेषु सर्वधा असि [ १०९४ ]- आनन्द देनेवालोंमें तू सबसे श्रेष्ठ है ।

३५ वसूनां, रायां, इडां सुक्षितीनां आ नेता [ १०९६ ]- वह धन, ऐश्वर्य, अन्न और उत्तम पुत्रोंका देनेवाला है ।

३६ नैगुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि रणाय धूनवत् [ ११०५ ]- शत्रुका नाश करनेवाला वीर साठहजार धन हमारे आनन्दके लिए देवे ।

३७ मही वृष नाम इमे अस्य शूषे [ ११०६ ]- बहुत सारे बाण मारकर शत्रुको मृकानेवाला ही वीर है ।

३८ मांश्चत्वे, पृशने, वधन्ने, निगुतः अस्वापयन्, स्नेहयत् [ ११०६ ]- यह कार्य घोड़ोंके युद्धमें, बाहुओंके युद्धमें, हाथोंके युद्धमें, शत्रुओंको सुलानेके समय अथवा शत्रुओंको भगानेके समय ही किया जाता है ।

३९ अभिघ्नान् अपचितः इतः अपाचितः [ ११०६ ]- शत्रुओंको दूर कर, शत्रुओंको यहांसे भगा ।

४० अग्ने ! नः अन्तमः त्राता शिवः भव [ ११०७ ]- हे अग्नी ! तू हमारे पास रह और हमारा रक्षण और कल्याण कर ।



४१ द्युमत्तमः रयिं दाः [ ११०८ ]- तू तेजस्वी है, इसलिए हमें वन दे।

४२ शोचिष्ठः दीदिवः ! त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे [ ११०९ ]- हे तेजस्वी और प्रकाशमान देव ! सुखके लिए और मित्र प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करते हैं।

४३ इमा भुवना कं सीषधेम [ १११० ]- ये भुवन सुखके साधन बनें।

४४ इन्द्रः तन्यं प्रजां च सीषधातु [ ११११ ]- इन्द्र हमारे शरीर और पुत्रोंको सुखी करे।

४५ इन्द्र अस्मभ्यं भेषजा करत् [ १११२ ]- इन्द्र हमें औषधि प्रदान करे।

४६ वः उप प्र अर्च [ १११३ ]- तुम इन्द्रकी पाससे उपासना करो।

## उपमा

इस सातवें अध्यायमें उपमायें निम्न प्रकार हैं—

१ मित्रः न [ १०४२ ]- मित्रके समान ( हरिः दर्शतः ) सोम देखने योग्य है।

२ वृष्टिमान् पर्जन्यः इव [ १०४६ ]- वर्षा करनेवाले मेघके समान ( अस्माकं इन्द्रियं मधोः धारया पवस्व ) हमारा इन्द्रियसामर्थ्य भीठे रसकी धारासे पवित्र हो। मेघकी धारा और सोमरसकी धाराकी समानता यहां बिलाई है।

३ रथं इव [ १०६४ ]- रथ जिस प्रकार बनाते हैं, उसीप्रकार ( इमं स्तोमं सं महेम ) इन स्तोत्रोंको हम कहते हैं, इन स्तोत्रोंकी महिमाका वर्णन करते हैं।

४ चक्रयोः अक्षं न [ १०८५ ]- रथके दोनों ही पहियोंको जिसप्रकार हाल मिलाता है या संयुक्त करता है, हे इन्द्र ! उसीप्रकार हमसे धनोंको संयुक्त कर।

५ शचीभिः अक्षं न [ १०८६ ]- जिसप्रकार गाड़ीकी

गतिसे उसकी घुराकी गति मिलती है, उसीप्रकार ( जरि-तृणां आ ऋणोः ) स्तोताओंकी प्रार्थनाके द्वारा तू उन्हें प्राप्त हो।

६ गो दुहे सुदुधां इव [ १०८७ ]- गाय ब्रूहनेके समय जिसप्रकार सरलतासे दूध देनेवाली गायोंको बुलाया जाता है, उसीप्रकार ( सुरुप कृत्नुं ऊतये घवि घवि जुहूमसि ) उत्तम रूपवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम प्रतिदिन बुलाते हैं।

७ उषा इव [ १०९० ]- उषा जिसप्रकार अपने प्रकाशसे सब जगत्को भर देती है, उसीप्रकार ( हे इन्द्र ! उभे रोदसी आ पप्राथ ) हे इन्द्र ! तू अपने प्रकाशसे ध्रु और पृथ्वी दोनों लोकोंको भर दे।

८ यथा दीर्घं अंकुशं [ १०९१ ]- जिसप्रकार बोर हाथोंमें प्रखर शस्त्रोंको धारण करते हैं, उसीप्रकार तू ( शक्तिं बिभर्षि ) शक्तिको धारण करता है।

९ यथा अजः पूर्वेण पद्मा वया यम [ १०९१ ]- जिस प्रकार वकरा अपने अगले पैरसे डालीको झुकाता है, उसीप्रकार तू शत्रुओंका नाश करता है अथवा ( देवी जनित्री अजीजनत् ) अदितिदेवीने तुझे पहले उत्पन्न किया।

१० शिशुं न [ १०९८ ]- जिसप्रकार छोटे बालकको सजाते हैं, उसीप्रकार ( इव्यैः गूर्तिभिः इधदयन्त ) हवि और स्तुतियोंसे इस सोमको और स्वादिष्ट बनाते हैं।

११ मातृभिः वत्सः इव [ १०९९ ]- जिसप्रकार मां अपने बच्चेको पानीसे साफ करती है, उसीप्रकार ( इन्दुः सं अज्यते ) सोम पानीमें धोया जाता है।

१२ सूर्यासः न [ ११०२ ]- सूर्यके समान ( सोमासः दर्शतासः ) सोमरस दर्शनीय है।

१३ वातः न [ ११०४ ]- वायुके समान ( ब्रध्नः जूर्ति ) सूर्य वेगका आश्रय लेता है।

१४ वृक्षं पक्वं न [ ११०५ ]- वृक्ष जिसप्रकार पके हुए फलोंको देता है, उसीप्रकार ( नैगुतः वसूनि धून-वत् ) सोम वन देता है।



## सप्तमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                          | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|-------------------------------|-------------|---------|
|             |              | ( १ )                         |             |         |
| १०३१        | ९।८६।१०      | [ अकृष्ट माषादयः ] त्रयः ऋषयः | पवमानः सोमः | जगती    |
| १०३२        | ९।८६।११      | [ अकृष्ट माषादयः ] त्रयः ऋषयः | "           | "       |
| १०३३        | ९।८६।१२      | [ अकृष्ट माषादयः ] त्रयः ऋषयः | "           | "       |
| १०३४        | ९।६४।४       | कश्यपो मारीचः                 | "           | गायत्री |
| १०३५        | ९।६४।५       | कश्यपो मारीचः                 | "           | "       |
| १०३६        | ९।६४।६       | कश्यपो मारीचः                 | "           | "       |
| १०३७        | ९।१।१        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०३८        | ९।१।२        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०३९        | ९।१।३        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०४०        | ९।१।४        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०४१        | ९।१।५        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०४२        | ९।१।६        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०४३        | ९।१।७        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०४४        | ९।१।८        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०४५        | ९।१।१०       | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
| १०४६        | ९।१।९        | मेधातिथिः काण्वः              | "           | "       |
|             |              | ( २ )                         |             |         |
| १०४७        | ९।४।१        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०४८        | ९।४।२        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०४९        | ९।४।३        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०५०        | ९।४।४        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०५१        | ९।४।५        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०५२        | ९।४।६        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०५३        | ९।४।७        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०५४        | ९।४।८        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०५५        | ९।४।९        | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०५६        | ९।४।१०       | हिरण्यस्तूप आंगिरसः           | "           | "       |
| १०५७        | ९।५।८।१      | अवत्सारः काश्यपः              | "           | "       |
| १०५८        | ९।५।८।२      | अवत्सारः काश्यपः              | "           | "       |
| १०५९        | ९।५।८।३      | अवत्सारः काश्यपः              | "           | "       |
| १०६०        | ९।५।८।४      | अवत्सारः काश्यपः              | "           | "       |
| १०६१        | ९।६२।१२      | जमदग्निभर्गवः                 | "           | "       |
| १०६२        | ९।६२।१२      | जमदग्निभर्गवः                 | "           | "       |
| १०६३        | ९।६२।१४      | जमदग्निभर्गवः                 | "           | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः          | देवता  | छन्दः |
|-------------|--------------|---------------|--------|-------|
| १०६४        | १।९४।१       | कुत्स आगिरसः  | अग्निः | जगती  |
| १०६५        | १।९४।२       | कुत्स आगिरसः  | "      | "     |
| १०६६        | १।९४।३       | कुत्सः आगिरसः | "      | "     |

( ३ )

|      |         |                      |             |         |
|------|---------|----------------------|-------------|---------|
| १०६७ | ७।६६।७  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | आदित्यः     | गायत्री |
| १०६८ | ७।६६।८  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "           | "       |
| १०६९ | ७।६६।९  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "           | "       |
| १०७० | ८।४५।४० | त्रिशोकः काण्वः      | इन्द्र      | "       |
| १०७१ | ८।४५।४१ | त्रिशोकः काण्वः      | "           | "       |
| १०७२ | ८।४५।४२ | त्रिशोकः काण्वः      | "           | "       |
| १०७३ | ८।३८।१  | श्यावाश्व आत्रेयः    | इन्द्राग्नी | "       |
| १०७४ | ८।३८।२  | श्यावाश्व आत्रेयः    | "           | "       |
| १०७५ | ८।३८।३  | श्यावाश्व आत्रेयः    | "           | "       |

( ४ )

|      |          |               |             |   |
|------|----------|---------------|-------------|---|
| १०७६ | ९।६४।२२  | कश्यपो मारीचः | पवमानः सोमः | "   |
| १०७७ | ९।६४।२३  | कश्यपो मारीचः | "           | "   |
| १०७८ | ९।६४।२४  | कश्यपो मारीचः | "           | "   |
| १०७९ | ९।१०७।२१ | सप्तर्षयः     | "           | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| १०८० | ९।१०७।२२ | सप्तर्षयः     | "           | "   |
| १०८१ | ९।६१।७   | अमहीयुरागिरसः | "           | गायत्री                                   |
| १०८२ | ९।६१।८   | अमहीयुरागिरसः | "           | "   |
| १०८३ | ९।६१।९   | अमहीयुरागिरसः | "           | "   |

( ५ )

|      |          |                                     |         |            |
|------|----------|-------------------------------------|---------|------------|
| १०८४ | १।३०।१३  | शुनःशेष आजीगतिः                     | इन्द्रः | "          |
| १०८५ | १।३०।१४  | शुनःशेष आजीगतिः                     | "       | "          |
| १०८६ | १।३०।१५  | शुनःशेष आजीगतिः                     | "       | "          |
| १०८७ | १।४।१    | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः             | "       | "          |
| १०८८ | १।४।२    | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः             | "       | "          |
| १०८९ | १।४।३    | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः             | "       | "          |
| १०९० | १०।१३४।१ | मान्धाता यौवनाश्वः                  | "       | महापक्षितः |
| १०९१ | १०।१३४।६ | मान्धाता यौवनाश्वः ( पूर्वार्धस्य ) | "       | "          |
| १०९२ | १०।१३४।९ | गोधा ऋषिका ( उत्तरार्धस्य )         | "       | "          |
| १०९३ | १०।१३४।९ | मान्धाता यौवनाश्वः                  | "       | "          |

( ६ )

|      |        |                       |             |         |
|------|--------|-----------------------|-------------|---------|
| १०९३ | ९।१८।१ | असितः कश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
|------|--------|-----------------------|-------------|---------|



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                   | देवता       | छन्दः           |
|-------------|--------------|------------------------|-------------|-----------------|
| १०९४        | ९।१८।१       | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री         |
| १०९५        | ९।१८।३       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "               |
| १०९६        | ९।१०८।१३     | ऋणंचयो राजर्षिः        | "           | यवमध्या गायत्री |
| १०९७        | ९।१०८।१४     | शक्तिर्वासिष्ठः        | "           | सतो बृहती       |
| १०९८        | ९।१०५।१      | पर्वतनारदो काण्वो      | "           | उष्णिक्         |
| १०९९        | ९।१०५।२      | पर्वतनारदो काण्वो      | "           | "               |
| ११००        | ९।१०५।३      | पर्वतनारदो काण्वो      | "           | "               |
| ११०१        | ९।१०१।१०     | मनुः सांवरणः           | "           | अनुष्टुप्       |
| ११०२        | ९।१०१।१२     | मनुः सांवरणः           | "           | "               |
| ११०३        | ९।१०१।११     | मनुः सांवरणः           | "           | "               |
| ११०४        | ९।९७।५२      | कुत्स आंगिरसः          | "           | त्रिष्टुप्      |
| ११०५        | ९।९७।५३      | कुत्स आंगिरसः          | "           | "               |
| ११०६        | ९।९७।५४      | कुत्स आंगिरसः          | "           | "               |

( ७ )

|      |          |   |             |                    |
|------|----------|---|-------------|--------------------|
| ११०७ | ५।१४।१   | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुः | अग्निः      | द्विपदा विराट्     |
|      |          | क्रमेण गोपायना लौपायना वा               | "           | "                  |
| ११०८ | ५।१४।२   | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुः | "           | "                  |
|      |          | क्रमेण गोपायना लौपायना वा               | "           | "                  |
| ११०९ | ५।१४।३   | बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुः | "           | "                  |
|      |          | क्रमेण गोपायना लौपायना वा               | "           | "                  |
| १११० | १०।१५७।१ | भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः             | विश्वेदेवाः | द्विपदा त्रिष्टुप् |
| ११११ | १०।१५७।२ | भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः             | "           | "                  |
| १११२ | १०।१५७।३ | भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः             | "           | "                  |
| १११३ | —        | —                                       | —           | —                  |
| १११४ | —        | —                                       | —           | —                  |
| १११५ | —        | —                                       | —           | —                  |





## अथ अष्टमोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ ४ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १ ( २-३ ) वृषगणो वासिष्ठः; १ ( ४-१२ ), २ ( १-९ ) असितः काश्यपो वेवलो वा; २ ( १०-१२ ), ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भागवो वा; ३, ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४ यजत आत्रेयः, ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ सिकता निवावरी; ८ पुरुहन्मा आंगिरसः; ९ पर्वतनारदौ काण्वौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा; १० अग्नये धिष्ण्यो ऐश्वराः १२ वत्सः काण्वः; १३ नृमेध आंगिरसः; १४ अत्रिर्भौमः ॥ १-२, ७, ९-११ पवमानः सोमः ३, १२ अग्निः; ४ मित्रावरुणौ; ५, ८, १३-१४ इन्द्रः; ६ इन्द्राग्नी ॥ ( १-३, ) ३ त्रिष्टुप्; १ ( ४-१२ ), २, ४-६, ११-१२ गायत्री; ७ जगती; ८ प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ); ९ उष्णिक्; १० द्विपदा विराट्; १३ ( १-२ ) ककुप् १३ ( ३ ) पुर उष्णिक्; १४ अनुष्टुप् ॥

१११६ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

महिब्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।७ )

१११७ प्र हंसासस्तृपला वग्नूमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।

अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम्

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।८ )

१११८ स योजत उरुगायस्य जूर्तिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।

परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्दृष्टो नक्तमृजः

॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।९।९ )

[ ६ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १११६ ] ( उशना इव ) उशना ऋषिके समान ( काव्यं ब्रुवाणः ) काव्य बोलनेवाला ( देवः ) स्तुति करनेवाला ( देवानां जनिमा विवक्ति ) देवोंकी जीवन-कथाओंको उत्तम प्रकारसे कहता है । ( महि-ब्रतः ) महान् कार्य करनेवाला ( शुचिः-बन्धुः पावकः वराहः ) शुद्ध बन्धुके समान पवित्र होनेवाला और उत्तम विनोंमें तैय्यार किया गया सोम ( रेभन् पदा अभि-एति ) शब्द करते हुए पात्रमें जाता है ॥ १ ॥

[ १११७ ] ( हंसासः वृषगणाः ) ज्ञानी वृषगण नामक ऋषि ( अमात् ) शत्रुके सामर्थ्यसे डरकर ( तृपला वग्नूं अच्छ अस्तं अयासुः ) सोम कटनेका शब्द जहां हो रहा था, उस स्थानपर उसी समय गए । ( सखायः ) वे मित्र-रूप ऋषि ( अङ्गोषिणं ) स्तुतिके योग्य, ( दुर्मर्षं ) शत्रुओंके द्वारा न सहने योग्य तथा ( पवमानं ) शुद्ध होते हुए सोमके लिए ( वाणं साकं प्रवदन्ति ) वाण नामक बाजेको बजाने लगे ॥ २ ॥

[ १११८ ] ( उरुगायस्य जूर्तिं ) अनेकोंके द्वारा की गई स्तुतिसे प्राप्त होनेवाली गतिको ( सः योजते ) वह सोम प्राप्त करता है । ( वृथा क्रीडन्तं गावः न मिमते ) सहज ही क्रीडा करनेवालेकी गतिको दूसरे गति करनेवाले माप नहीं सकते । ( तिग्मशृङ्गः ) तीक्ष्ण तेजसे युक्त सोम ( परीणसं कृणुते ) प्रकाश फैलाता है ( दिवा हरिः दृष्टो ) दिनमें हरा दीखता है और ( नक्तमृजः ) रातमें प्रकाशयुक्त दीखता है ॥ ३ ॥



- १११९ <sup>२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )
- ११२० <sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१०।२ )
- ११२१ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१०।३ )
- ११२२ <sup>१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> परि स्वानास इन्द्रो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१०।४ )
- ११२३ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् । सूर्य अण्वं वि तन्वते ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१०।५ )
- ११२४ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।१०।६ )
- ११२५ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥ ( ऋ. ९।१०।७ )
- ११२६ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> नाभा नाभि न आ ददे चक्षुषा सूर्य दृशे । कवेरपत्यमा दुहे ॥ ११ ॥ ( ऋ. ९।१०।८ )

[ १११९ ] ( रथाः इव ) रथ और ( अर्वन्तः न ) घोड़े जिसप्रकार ( श्रवस्यवः ) यज्ञकी इच्छा करते हुए ( राये प्राक्रमुः ) धन प्राप्तिके लिए पराक्रम करते हैं, उसीप्रकार ( स्वानासः सोमासः ) छाने जाते हुए सोम शब्द अथवा पराक्रम करते हैं ॥ ४ ॥

[ ११२० ] युद्धमें जानेवाले ( रथाः इव ) रथके समान ( हिन्वानासः ) गतिमान् सोमको ( भरासः कारिणां इव ) भार ढोकर जानेवाले मजदूरके हाथोंपर जिसप्रकार बोझ रखते हैं, उसीप्रकार लोग ( गभस्त्योः दधन्विरे ) हाथोंमें धारण करते हैं ॥ ५ ॥

[ ११२१ ] ( सोमासः ) ये सोम ( प्रशस्तिभिः राजानः न ) स्तुतियोंद्वारा राजा तथा ( सप्तधातृभिः यज्ञः न ) सात ऋत्विजोंके द्वारा यज्ञ जिसप्रकार सुशोभित होता है, उसीप्रकार ( गोभिः अञ्जते ) गायके घी आबियोंसे सुशोभित किये जाते हैं ॥ ६ ॥

[ ११२२ ] ( स्वानासः इन्द्रवः ) निचोड़े गए सोम ( बर्हणा गिरा ) महान् स्तोत्रोंसे प्रशंसित होनेके बाद ( मधोः धारया ) मीठे रसकी धारासे ( मदाय ) आनन्द बढ़ानेके लिए ( परि अर्षन्ति ) कलशमें गिरते हैं ॥ ७ ॥

[ ११२३ ] ( विवस्वतः अपानासः ) इन्द्रके पीनेके लिए ( उषसः भगं जिन्वन्तः ) उषाका तेज बढ़ाते हुए ( सूर्यः ) सोमरस ( अण्वं वितन्वते ) शब्द करते हैं ॥ ८ ॥

[ ११२४ ] ( मतीनां कारवः ) स्तुति करनेवाले ( प्रत्नाः ) प्राचीन ( वृष्णः हरसः ) बलवान् सोमको लाभेवाले ( आयवः ) अनुष्य ऋत्विज ( द्वारा अप ऋण्वन्ति ) यज्ञके दरवाजे खोलते हैं ॥ ९ ॥

[ ११२५ ] ( समीचीनासः ) श्रेष्ठ ( जातयः ) जातिके ( एकस्य पदं पिप्रतः ) अकेले सोमके स्थानको पूर्ण करते हुए ( सप्त आशत ) सात होतागण यज्ञ करनेके लिए बैठते हैं ॥ १० ॥

[ ११२६ ] ( चक्षुषा सूर्य दृशे ) आँखोंसे सूर्यको देखनेके लिए ( नाभिः ) यज्ञकी नाभिरूप सोमको ( नः नाभा आददे ) अपनी नाभिके पास अर्थात् पेटके समीप रखता हैं ( कवेः अपत्यं ) इसप्रकार करनेसे सोमके पुत्ररूपी तेजको मैं ( आ दुहे ) पूर्ण तेजस्वी करता हूँ ॥ ११ ॥



११२७ अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥ १२ ॥ १ ( ऋ. ११.०१९ )  
[ धा० ५७। उ० ४। स्व० ८ ] ( ऋ. ११.०१९ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ २ ]

११२८ असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्तस्य सुभ्रियः । विदाना अस्य योजना ॥ १ ॥ ( ऋ. ११.०१९ )  
११२९ प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविःषु वन्द्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. ११.०२२ )  
११३० प्र युजा वाचा अग्रियो वृषो अचिक्रददने । सन्नाभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ११.०२३ )  
११३१ परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥ ( ऋ. ११.०२४ )  
११३२ पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ११.०२५ )  
११३३ अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥ ( ऋ. ११.०२६ )

[ १२७ ] ) सूरः ) इन्द्र ( चक्षसा ) नेत्रोंसे ( दिवः प्रियं पदं ) द्युलोकमें प्रिय और ( गुहाहितं ) हृदयमें रखे हुए सोमको ( अभि पश्यति ) देखता है ॥ १२ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११२८ ] ( अस्य योजना विदानाः ) इस यजमानके द्वारा बनाये गए देवता सम्बन्धी योजनाओंको जानकर ( सुभ्रियः इन्दवः ) उत्तम सुशोभित हुए हुए सोम ( धर्मन् ) धर्मके समान ( ऋतस्य पथा ) यज्ञके मार्गसे ( असृग्रं ) तैय्यार किए जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११२९ ] ( हविःषु वन्द्यः हविः ) हवियोंमें प्रशंसनीय सोम ( महीः अपः विगाहते ) बहुत सारे जलोंमें स्नान करता है । ( मधोः अग्रियः धाराः प्र ) भीठे रसकी मुख्य धार कलशमें गिरती है ॥ २ ॥

[ ११३० ] ( अग्रियः युजा वाचः प्र ) हवियोंमें मुख्य यह सोम स्त्रोत्रोंको प्रकट करता है । ( वृषः सत्यः अध्वरः ) बलवान्, सत्यस्वरूप और हिंसा न करनेवाला सोम ( सन्नाभि ) यज्ञशालामें ( वने अचिक्रदत् ) जलमें शब्द करता हुआ आता है ॥ ३ ॥

[ ११३१ ] ( कवि नृम्णा पुनानः ) यह दूरदर्शी सोम अपने बलोंसे मनुष्योंको शुद्ध करते हुए ( काव्या यत् परि अर्षति ) जब स्तुतिको प्राप्त होता है तब ( स्वः वाजी सिषासति ) स्वर्गसे बलवान् इन्द्र यज्ञमें आनेकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

[ ११३२ ] ( यत् ईं ) जब इस सोमको ( वेधसः ऋण्वन्ति ) ऋत्विज प्रेरणा देते हैं तब ( पवमानः ) शुद्ध होनेवाला सोम ( स्पृधः अभि सीदति ) शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए तैय्यार होता है ( विशः राजा इव ) प्रजाओंके शत्रुओंको दूर करनेके लिए जिसप्रकार राजा जाता है, उसीप्रकार यह सोम भी जाता है ॥ ५ ॥

[ ११३३ ] ( हरिः प्रियः ) हरे रंगका प्रिय सोम ( वनेषु ) पानीमें मिलाया जाकर जब ( अव्याः वारे परि सीदति ) बालोंकी बनी छलनीसे छाना जाता है, तब ( रेभः मती वनुष्यते ) शब्द करते हुए स्तुतिको वह स्वीकार करता है ॥ ६ ॥



- ११३४ स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥७॥ ( ऋ. ९।७।७ )
- ११३५ आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त उर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥८॥ ( ऋ. ९।७।८ )
- ११३६ अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि संजितम् ॥९॥ ( ऋ. ९।७।९ )
- ११३७ आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥ ( ऋ. ९।७।१० )
- ११३८ आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥ ( ऋ. ९।७।११ )
- ११३९ आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनुष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२॥ २ ( ञ ) ॥
- [ धा० ३८ । उ० ५ । ख० ११ ] ( ऋ. ९।७।३० )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ११३४ ] ( यः अस्य धर्मणा रणा ) जो यजमान इस सोमके निबोडने आदि कार्योंमें व्यस्त रहता है, ( सः वायुं इन्द्रं अश्विना ) वह वायु, इन्द्र और अश्विनौ देवोंके पास ( मदेन साकं गच्छति ) आनन्द देनेवाले सोमके साथ पहुँचता है ॥ ७ ॥

[ ११३५ ] जिन यजमानोंके ( मधोः ऊर्मयः ) मोठे सोमकी लहरें ( मित्रे वरुणे भगे पवन्ते ) मित्र, वरुण और भगके लिए बहती हैं, वे यजमान ( अस्य [ सोमस्य ] विदानाः ) इस सोमके महत्वको जानकर ( शक्मभिः ) सुल्ले युक्त होते हैं ॥ ८ ॥

[ ११३६ ] हे ( रोदसी ) ध्रुलोक और पृथिवी देवो ! तुम ( मध्वः वाजस्य सातये ) इस मधुर सोमरसरूपी अन्नकी प्राप्तिके लिए ( अस्माकं ) हमें ( रयिं श्रवः वसूनि ) धन, अन्न और सम्पत्ति ( संजितं ) तथा जय प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

[ ११३७ ] हे सोम ! यज्ञ करनेवाले हम ( मयो भुवं ) सुख देनेवाले ( वह्निं ) धन देनेवाले ( पान्तं ) संरक्षण करनेवाले ( पुरु-स्पृहं ) अनेकों द्वारा चाहने योग्य ( ते दक्षं अद्य आ वृणीमहे ) तेरे बलको आज अपने पास चाहते हैं ॥ १० ॥

[ ११३८ ] हे सोम ! ( मन्द्रं आ ) आनन्द देनेवाले तेरी हम आराधना करते हैं । ( वरेण्यं आ ) श्रेष्ठ या चाहने योग्य तेरी हम सेवा करते हैं । ( विप्रं आ ) ज्ञानयुक्त तेरी हम उपासना करते हैं । ( मनीषिणं आ ) बुद्धिसे युक्त तेरी हम स्तुति करते हैं ( पान्तं पुरुस्पृहं आ ) रक्षण करनेवाले और अनेकों द्वारा स्तुति करने योग्य तेरी हम भक्ति करते हैं ॥ ११ ॥

[ ११३९ ] हे ( सुक्रतो ) उत्तम यज्ञ करनेवाले सोम ! ( रयिं आ ) धनके लिए हम प्रार्थना करते हैं, ( सुचेतुनं आ ) उत्तम ज्ञानके लिए हम प्रार्थना करते हैं, ( तनुषु आ ) पुत्रपौत्रोंके लिए हम प्रार्थना करते हैं । ( पान्तं पुरुस्पृहं आ ) रक्षण करनेवाले और बहूतों द्वारा प्रशंसनीय तेरी हम आराधना करते हैं ॥ १२ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ३ ]

- ११४० मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमत आ जातमग्निम् ।  
कविं सस्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।७।१ )
- ११४१ त्वां विश्वे अमृतं जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।  
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।७।४ )
- ११४२ नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।  
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ ३ ॥ ३ ( ऋ. ) ॥
- [ धा० २६। उ० १। स्व० ५ ] ( ऋ. ६।७।२ )
- ११४३ प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१ )
- ११४४ सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्रीभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।२ )
- ११४५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥ ४ ( १ ) ॥
- [ धा० १३। उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६।३ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ११४० ] ( दिवः मूर्धानं ) ध्रुलोकके मस्तक, ( पृथिव्याः अरतिं ) भूमिमें जानेवाले, ( वैश्वानरं ) सब मनुष्योंके हितकारक, ( ऋते आ जातं ) यज्ञके लिए उत्पन्न हुए हुए, ( कविं सस्राजं ) ज्ञानी और सम्राट्, ( जनानां अतिथिं ) लोगों द्वारा पूजनीय, और ( आसन् ) देवताओंके मुखरूपी ( नः पात्रं अग्निं ) हमारे संरक्षक अग्निकी ( देवाः आ जनयन्त ) ऋत्विज यज्ञमें अरणियोंसे उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

[ ११४१ ] हे ( अमृत ) अमर अग्ने ! ( विश्वे देवाः ) सब देव सब ऋत्विज ( जायमानं त्वां ) प्रकट होते ही तुझे ( शिशुं न अभि सं नवन्ते ) बालकके समान सम्मानित करते हैं। हे ( वैश्वानर ) विश्वके नेता अग्ने ! ( यत् पित्रोः अदीदेः ) जब पालन करनेवाले ध्रुलोक और पृथ्वीलोकके बीचमें तू प्रदीप्त हुआ, तब यजमान ( तव क्रतुभिः ) तेरे यज्ञके कारण ( अमृतत्वं आयन् ) देवत्वको प्राप्त हुए ॥ २ ॥

[ ११४२ ] ( यज्ञानां नाभिं ) यज्ञकी नाभि ( रयीणां सदनं ) धनके भण्डार ( मह्यं आहावं ) जिसमें बड़ी बड़ी आहुतियाँ दी जाती हैं ऐसी अग्निकी ( अभि सं नवन्ते ) ऋत्विजलोग स्तुति करते हैं। ( वैश्वानरं ) सब विश्वके नेता ( अध्वराणां रथ्यं ) हिसारहित यज्ञके चालक ( यज्ञस्य केतुं ) यज्ञके ध्वज ऐसे अग्निकी ( देवाः जनयन्त ) ऋत्विजोंने सथ करके उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

[ ११४३ ] हे ऋत्विजो ! ( वः मित्राय वरुणाय ) तुम मित्र और वरुणके लिए ( विपा गिरा गायत ) मोटी आवाजसे गायन करो। ( महि-क्षत्रौ ) महान् क्षात्रतेजसे युक्त मित्र और वरुणो ! ( ऋतं बृहत् ) यज्ञके स्थानपर बड़ी स्तुति सुननेके लिए आओ ॥ २ ॥

[ ११४४ ] ( या मित्रः वरुणः च ) जो मित्र और वरुण ( उभा सम्राजा ) दोनों ही सम्राट् हैं, ( घृत-योनी देवा ) जल उत्पन्न करनेवाले तथा प्रकाशमान ( देवेषु प्रशस्ता ) देवोंमें प्रशंसनीय हैं ॥ २ ॥

[ ११४५ ] ( ता ) वे मित्र और वरुण ( नः ) हमें ( दिव्यस्य पार्थिवस्य ) ध्रुलोकपरके और पृथ्वीपरके ( महः रायः शक्तं ) महान् धन देनेमें समर्थ हैं। हे देवो ! ( वां ) तुम दोनोंके ( महि क्षत्रं ) महान् क्षात्रबल ( देवेषु ) देवोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥



११४६ इन्द्रा याहि चित्रमानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥ ( ऋ. १।३।४ )

११४७ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥ ( ऋ. १।३।५ )

११४८ इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥ ५ ( ही ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।३।६ )

११४९ तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १ ॥

( ऋ. ६।६०।१० )

११५० य इद्ध आविवासाति सुम्रमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।६०।११ )

११५१ ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥ ६ ( य ) ॥

[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ६।६०।१२ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

११५२ प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सरुपुर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।

मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।१६ )

[ ११४६ ] हे ( चित्रमानो इन्द्र ) विशेष प्रकाशमान इन्द्र ! ( आयाहि ) आ । ( अण्वीभिः सुताः ) अंगुलियोंसे निचोडे गए ( तना पूतासः ) उत्तम शुद्ध करके रखे गए ( इमे ) ये सोमरस ( त्वायवः ) तेरे लिए हैं ॥ ५ ॥

[ ११४७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( धिया इषितः ) बुद्धिसे प्रेरित होकर ( विप्रजूतः ) ऋत्विजों द्वारा बुलाया गया तू ( सुतावतः वाघतः ) सोमरस तैयार करके स्तुति करनेवालोंके द्वारा बोले जानेवाले ( ब्रह्माणि ) स्तोत्रोंको सुननेके लिए ( उप आयाहि ) यज्ञके पास आ ॥ २ ॥

[ ११४८ ] हे ( हरिवः ) घोडे पालनेवाले इन्द्र ! तू ( तूतुजानः ) गौत्र ही ( ब्रह्माणि उप ) स्तोत्र सुननेके लिए पास आ और ( सुते नः चनः दधिष्व ) इस यज्ञमें हमारी हवियोंको ग्रहण कर ॥ २ ॥

[ ११४९ ] ( यः अर्चिषा ) जो अपने तेजसे ( विश्वा वना ) सब वनोंको ( परिष्वजत् ) घेर लेता है, और ( जिह्वया कृष्णा कृणोति ) ज्वालासे सबको काला कर देता है । ( तं ईडिष्व ) उस अग्निकी स्तुति कर ॥ २ ॥

[ ११५० ] ( यः मर्त्यः ) जो ऋत्विज ( इद्धे ) प्रदीप्त हुई अग्निमें ( इन्द्रस्य सुम्रं ) इन्द्रको सुखदायक हवि ( आ विवासाति ) अर्पण करता है, उसके ( द्युम्नाय ) तेजके लिए ( सुतराः अपः ) उत्तम और सरलतासे पार करने योग्य पानी इन्द्र देता है ॥ २ ॥

[ ११५१ ] हे इन्द्र और अग्नि ! ( ता ) वे तुम ( इन्द्रं च अग्निं आ वोढवे ) इन्द्र और अग्निकी देवताओंकी ओर पहुँचानेके लिए ( नः ) हमें ( वाजवतीः इषः ) बल बढ़ानेवाले अन्न और ( आशून् अर्वतः ) गौत्र चलनेवाले घोडे ( पिपृतं ) दो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ ११५२ ] ( इन्द्रः ) सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके पेटमें ( प्रो अयासीत् ) गया । ( सखा ) मित्ररूपी यह सोम ( सरुपुर्न ) अपने मित्ररूपी इन्द्रके ( सं गिरं न प्रमिनाति ) पेटमें कोई कण्ट नहीं देता, ( मर्यः युवतिभिः इव ) पुरुष जैसे तरुण स्त्रियोंसे मिलता है, उसीप्रकार ( सोमः समर्षति ) सोम पानीके साथ मिलाया जाता है, वादने वह सोम ( शतयामना पथा ) संकड़ों तरहसे जाने योग्य मार्गसे ( कलशे ) कलशमें जाता है ॥ १ ॥



११५३ प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।

हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदश्विभ्रयुः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८६।१७ )

११५४ आ नः सोम संयुतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।

या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ७ ( ठि ) ॥

[ धा० २८। उ० २। स्व० ३। ( ऋ. १।८६।१८ ) ]

११५५ न किष्टं कर्मणा नश्वश्चकार सदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७०।३ )

११५६ अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुजयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥ २ ॥ ८ ( ही ) ॥

[ धा० १६। उ० नास्ति। स्व० ४ ] ऋ. ८।७०।४ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ११५३ ] हे सोम ! ( वः धियः ) तुम्हारी बुद्धि का ध्यान करनेवाले ( मन्द्रयुवः ) आनन्दवर्धक ( पनस्युवः ) स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले ( विपन्युवः ) स्तोताजन ( संवरणेषु प्राक्रमुः ) यज्ञमण्डपमें यज्ञकर्म करने लगते हैं, तब ( स्तुभः ) स्तुति करनेवाले ( हरिं क्रीडन्तं ) हरे रंगके तथा खेलनेवाले तुझ सोमकी ( अभ्यनूषत ) स्तुति करते हैं, उस समय ( धेनवः ) गायें ( पयसा इत् अभिशिभ्रयुः ) अपने दूधसे इस सोमकी सेवा करती हैं ॥ २ ॥

[ ११५४ ] ( पवमान इन्दो सोम ) हे शुद्ध होनेवाले तेजस्वी सोम ! ( या [ इद् ] ) जो अन्न ( नः अहन् त्रिः अन्नश्चुषी ) हमारे एकदिनके तीनों सबनोंमें बाधा न डालते हुए ( क्षुमत् वाजवत् ) प्रसिद्ध बलवर्धक ( मधुमत् सुवीर्यं दोहते ) उत्तमतासे युक्त उत्तम बोरपुत्र देता है । उस ( नः संयुतं पिप्युषी इषं ) हमारे द्वारा लाये गए पोषक अन्नकी ( ऊर्मिणा पवस्व ) अपनी लहरोंसे शुद्ध कर ॥ ३ ॥

[ ११५५ ] ( यः ) जो यज्ञकर्ता ( सदावृधं विश्वगूर्तं ) सदा बढ़ानेवाले, सबोंके द्वारा स्तुति करनेके योग्य, ( ऋभ्वसं ) महान् ( ओजसा अधृष्टं ) अपनी शक्तिसे अपराभूत अर्थात् शत्रुसे न हारनेवाले ( धृष्णुं ) पर शत्रुओंको हरानेवाले ( न इन्द्रं ) प्रशंसित इन्द्रका ( यज्ञैः चकार ) यज्ञोंसे सत्कार करता है, ( तं ) उसकी ( कर्मणा न किः नशत् ) अपने कर्मोंसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ १ ॥

[ ११५६ ] ( यस्मिन् जायमाने ) जिस इन्द्रके प्रकट होते ही ( महीः उरुजयः धेनवः ) महान् वेगवान् गायें ( समनोनवुः ) उसे प्रणाम करती हैं, उसीप्रकार ( द्यावाः क्षामीः समनोनवुः ) द्युलोक और पृथ्वीलोक भी जिसके आगे झुकते हैं उस ( अषाढं उग्रं ) शत्रुको हरानेवाले, भयंकर और ( पृतनासु सासहिं ) युद्धमें साहस दिखानेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ५ ]

११५७ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत । शिशुं नः यज्ञैः परिभूषत श्रिये ॥ १ ॥  
( ऋ. ९।१०४।१ )

११५८ समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् । देवाव्यं समदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥  
( ऋ. ९।१०४।२ )

११५९ पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥ ३ ॥ ९ (पि) ॥  
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०४।३ )

११६० प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०५।१६ )

११६१ स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०५।१७ )

११६२ प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥ १० (पु) ॥  
[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।१०५।१८ )

११६३ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०५।२२ )

११६४ ये आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०५।२३ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ ११५७ ] हे ( सखायः ) ऋत्विजो ! ( आ निषीदत ) बंठो, ( पुनानाय प्रगायत ) श्रद्धा होनेवाले सोमके लिए गान करो, ( शिशुं न ) बालकको जिसप्रकार पिता आभूषणोंसे सजाता है, उसीप्रकार ( यज्ञैः श्रिये परिभूषत ) यज्ञोंसे इसकी शोभा बढ़ाओ ॥ १ ॥

[ ११५८ ] हे ऋत्विजो ! ( गय-साधनं ) घरके साधनरूप ( देवाव्यं मदं ) देवोंके रक्षक और आनन्द बढ़ाने-वाले ( द्वि-शवसं ई ) दोनों प्रकारके बल बढ़ानेवाले इस सोमको ( मातृभिः वत्सं न ) माताओंके साथ जिसप्रकार बच्चे मिलकर रहते हैं, उसीप्रकार ( अभि संसृजत ) जलोंके साथ मिलाओ ॥ २ ॥

[ ११५९ ] ( शर्धाय ) वेगके लिए ( वीतये ) देवोंको देनेके लिए ( मित्राय, वरुणाय ) मित्र और वरुणके लिए ( यथा शन्तमं ) जिसप्रकार अधिक सुख हो उसप्रकार ( दक्ष-साधनं पुनाता ) बल बढ़ानेवाले सोमको श्रद्धा करो ॥ ३ ॥

[ ११६० ] ( वाजी सहस्रधारः ) बलवान् और अनेक धाराओंसे छाना जानेवाला सोम ( अव्यं वारं पवित्रं तिरः प्राक्षाः ) वालोंकी बनी छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ११६१ ] हे ( सहस्र-रेताः ) अनेक जलोंसे युक्त ( अद्भिः मृजानः ) जलसे धोया जानेवाला ( गोभिः श्रीणानः सः वाजी ) गायके दूधसे मिलाया जानेवाला वह बलवान् सोम ( अक्षाः ) छाना जाता है ॥ २ ॥

[ ११६२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( नृभिः येमानः ) ऋत्विजोंके द्वारा नियममें रखा गया ( अद्रिभिः सुतः ) पत्थरोंसे कूटकर निचोड़ा गया तू ( इन्द्रस्य कुक्षा ) इन्द्रके पेटमें ( प्र याहि ) भर जा ॥ ३ ॥

[ ११६३ ] ( ये सोमासः ) जो सोम ( परावति ) दूरके देशमें तथा ( ये अर्वावति सुन्विरे ) जो पासके देशमें छाने जाते हैं, ( वा ये अदः शर्यणावति ) अथवा जो इस शर्यणावत् नामक सरोवरके पास छाने जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११६४ ] ( ये आर्जीकेषु ) जो सोम ऋजीक देशमें ( ये कृत्वसु ) जो कर्म करनेवालोंके देशमें ( पस्त्यानां मध्ये ) जो नदीके किनारे ( वा ये पञ्चसु जनेषु ) अथवा जो पञ्चजनोंके बीचमें छाना जाता है, वह हमें सुख देवे ॥ २ ॥



११६५ ते नो वृष्टिं दिवस्पारि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्दवः ॥ ३ ॥ ११ (चि) ॥  
[ धा० ७ । उ० १ । स्व० ३ ] (ऋ. ९।६५।२४)

॥ इति पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

११६६ आ ते वत्सो मनो यमत्परमाचित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १ ॥ (ऋ. ८।११।७)

११६७ पुरुत्रा हि सदङ्कुसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ २ ॥ (ऋ. ८।११।८)

११६८ समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ३ ॥ १२ (ठा) ॥  
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० २ ] (ऋ. ८।११।९)

११६९ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णः शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥  
(ऋ. ८।९८।१०)

११७० त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अथा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥  
(ऋ. ८।९८।११)

११७१ त्वां शुग्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ १३ (ल) ॥  
[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १ ] (ऋ. ८।९८।१२)

[ ११६५ ] ( स्वानाः देवासः इन्दवः ) निचोडे गए वे चमकनेवाले सोमरस ( नः दिवस्पारि ) हमें धूलोकसे ( वृष्टिं सुवीर्यं आ पवन्ताम् ) वृष्टि और उत्तम पराक्रम युक्त अन्न देवें ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ ११६६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( वत्सः ) वत्स ऋषि ( गिरा त्वां कामये ) तेरी स्तुति करके मांगता है, कि ( ते मनः ) तेरा मन ( परमात् चित् सधस्थात् ) बहुत ऊंचे स्थानसे भी ( आ यमत् ) यहां आवे ॥ १ ॥

[ ११६७ ] हे अग्ने ! ( तू ( पुरुत्रा हि सदङ्कुसि ) सब जगह एक जैसी वृष्टि रखनेवाला है, इस कारण तू ( विश्वाः दिशः अनु प्रभुः ) सब दिशाओंके अनुकूल प्रभू है, इसलिए ( समत्सु त्वा हवामहे ) संग्राममें तुझे सहायताके लिए हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ ११६८ ] ( समत्सु वाजयन्तः ) संग्राममें बलका उपयोग करनेवाले हम ( अवसे ) संरक्षणके लिए ( वाजेषु ) संग्राममें ( चित्र-राधसं ) विलक्षण पराक्रम करनेवाले ( अग्निं हवामहे ) अग्निको सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ ११६९ ] ( शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र ) हे सैंकड़ों कर्म करनेवाले विशेष ज्ञानी इन्द्र ! तू ( नः नृम्णं ओजः आ भर ) हमें पौरुषयुक्त बल भरपूर दे, उसीप्रकार ( पृतना-सहं वीरं आ ) युद्धमें शत्रुको हरानेवाले वीरपुत्र दे ॥ १ ॥

[ ११७० ] हे ( वसो शतक्रतो ) निवासक और सैंकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं नः पिता बभूविथ ) तू हमारा पिता है । ( त्वं माता ) तू माता है । ( अथा ते सुम्नं ईमहे ) इसलिए तेरे पास हम सुख मांगते हुए आते हैं ॥ २ ॥

[ ११७१ ] हे ( सहस्कृत ) बलके लिए प्रसिद्ध ( शुग्मिन् ) सामर्थ्यवान् और ( पुरुहूत ) बलवान् के द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! ( वाजयन्तं त्वा उपब्रुवे ) बलवान् तेरी हम स्तुति करते हैं ( सः नः सुवीर्यं रास्व ) वह तू हमें उत्तम वीर्य दे ॥ ३ ॥



११७२ यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।

राधस्तन्नो विददस उभयाहस्त्या भर

॥ १ ॥

( ऋ ५।३९।१ )

११७३ यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर । विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥ २ ॥

( ऋ ५।३९।२ )

११७४ यत्ते दिक्षु प्रराध्य मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।

तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये

॥ ३ ॥ १४ ( पी ) ॥

[ धा० २९। उ० १। स्व० ४ ] ( ऋ. ५।३९।३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति चतुर्थप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥ चतुर्थप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

[ ११७२ ] हे ( अद्रिवः चित्र इन्द्र ) वज्रधारी विलक्षण बलवान् इन्द्र ! ( त्वादातं यत् मे इह नास्ति ) तेरे द्वारा बिए गए जो धन मेरे पास यहां नहीं हैं। हे ( विददसो ) धनयुक्त इन्द्र ! उन धनोंको ( तत् उभयाहस्ती ) दोनों ही हाथोंसे ( नः आभर ) हमें भरपूर दे ॥ १ ॥

[ ११७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् द्युक्षं वरेण्यं मन्यसे ) जिसे तू तेजस्वी और श्रेष्ठ मानता है ( तत् आभर ) वह धन हमें भरपूर दे। ( ते वयं ) वे हम ( तस्य अकूपारस्य ) उस उत्तम धनके ( दावनः ) दाग लेनेवाले होंगे ॥ २ ॥

[ ११७४ ] हे ( अद्रिवः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( ते दिक्षु प्रराध्यं ) तेरा नाना दिशाओंमें प्रशंसनीय ( श्रुतं बृहत् यत् मनः अस्ति ) तथा सुप्रसिद्ध महान् जो मन है, ( तेन दृढा चित् ) इस मनसे दृढ़से दृढ़ धनको भी ( वाजं सातये आदर्षि ) बल बढ़ानेके लिए हमें दे ॥ ३ ॥

॥ यहां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

## अष्टम अध्याय

देवोंका राजा इन्द्र है। उसके गुण इस आठवें अध्यायमें इसप्रकार हैं—

१ चित्र-भानुः [ ११४६ ]- विलक्षण प्रकाश करनेवाला।

२ सदा-वृधः [ ११५५ ]- हमेशा बढ़ते रहनेवाला।

३ विश्व-गूर्तः [ ११५५ ]- सबके द्वारा स्तुति करने योग्य, प्रशंसनीय।

४ ऋभ्वसः [ ११५५ ]- महान्, बड़ा।

५ ओजसा अ-धृष्टः [ ११५५ ]- अपनी विजय शक्तिके कारण कभी भी हारनेवाला नहीं है, हमेशा विजयी।

६ अषाढः [ ११५६ ]- शत्रुको हरानेवाला, स्वयं कभी न हारनेवाला।

७ उग्रः [ ११५६ ]- उग्रवीर, दूर।

८ पृतनासु सासहिः [ ११५६ ]- युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला, संग्राममें विजयी।



९ शतक्रतुः [ ११६९ ]- सैंकड़ों महान् कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाला ।

१० विचर्षणिः [ ११६९ ]- विशेष जानी ।

११ वसुः [ ११६९ ]- धनवान्, निवास करनेवाला ।

१२ सहस्रकृतः [ ११७१ ]- बलके लिए प्रसिद्ध ।

१३ पुरुहूतः [ ११७१ ]- बहुत लोग जिसे सहायताके लिए बुलाते हैं ।

१४ वाजयन् [ ११७१ ]- बलशाली, सामर्थ्यवान् ।

१५ अद्रिवः [ ११७२ ]- वज्र हाथोंमें धारण करनेवाला । पहाड़पर किलेमें रहनेवाला ।

१६ चित्रः [ ११७२ ]- विलक्षण, बलशाली ।

१७ विद्वसुः [ ११७२ ]- धनयुक्त, धनका दान करनेवाला ।

१८ विचस्वान् [ ११७३ ]- विशेष तेजस्वी ।

ये गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं । ये गुण यदि उपासक अपने अन्दर बढालें तो उनकी चारों ओर प्रशंसा होगी । मनुष्य इस रीतिसे उन्नत हों, इसीलिए ये देवोंके गुण यहां कहे हैं । अब इन्द्रके दूसरे वर्णन देखें—

१ धिया इषितः विप्रजूतः सुतावतः वायतः ब्रह्माणि उप आयाहि [ ११७७ ]- हे इन्द्र ! बुद्धिपूर्वक प्रार्थना करके बुलाया गया, ब्राह्मणोंके द्वारा निमंत्रित, सोमरस जिसके लिए तैयार किया गया है, जिसकी स्तुति चलती है ऐसा तू स्तोत्रोंको सुननेके लिए यज्ञके पास आ ।

२ यः मर्त्यः इद्रे इन्द्रस्य सुमनं हविः आ विवासति, युम्नाय सुतराः अपः [ ११५० ]- जो मनुष्य प्रदीप्त अग्निमें इन्द्रको प्रिय लगनेवाले हवि द्रव्योंका अर्पण करता है, उसके तेजके लिए इन्द्र वृष्टि करके उत्तम तैरने योग्य पानी देता है ।

इन्द्र देवताके प्रेमके लिए कुछ विशेष हवनीय द्रव्य हैं । अग्नि जलाकर उन द्रव्योंका हवन करनेसे अच्छी वर्षा होती है, और उससे बहुत पानी होता है । ये हवन द्रव्य कौनसे हैं उनकी खोज आवश्यक है ।

३ ओजसा अ-प्रथृष्टं इन्द्रं यज्ञैः चकार, तं न किः कर्मणा नशत् [ ११५५ ]- अपने सामर्थ्यसे नित्य विजयी इन्द्रका यज्ञोंसे जो सत्कार करता है, उसे अपने कर्मोंसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । इतना उस यज्ञकर्त्ताका सामर्थ्य बढता है । यज्ञ करनेका अर्थ केवल सत्कार करना ही नहीं है, अपितु ( १ ) सत्कारके योग्य सज्जनोंका राष्ट्रमें सत्कार

हो, ( २ ) राष्ट्रमें संधटन हो, ( ३ ) सत्पात्रको दान देकर लोक कल्याण करें, ऐसे तीन प्रकारके कार्य यज्ञमें करने होते हैं । ये कार्य राष्ट्रहितकी दृष्टिसे जो करता है उसका सामर्थ्य उसकी इस लोकसेवाके कारण बढता है, इसलिए उसका कोई नाश नहीं कर सकता ।

४ हे इन्द्र ! नृमणं ओजः पृतनासहं वीरं नः आभर [ ११६९ ]- हे इन्द्र ! हमें पौरुषयुक्त बल दे, और युद्धमें शत्रुका नाश करनेवाला पुत्र भी दे ।

५ हे शुष्मिन् ! त्वां उपयुवे, नः सुवीर्यं रास्व [ ११७१ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरी मैं प्रार्थना करता हूँ । तू हमें सामर्थ्य दे ।

६ हे इन्द्र ! यत् युक्षं वरेण्यं मन्यसे तत् आ भर तस्य अकूपारस्य दावनः विद्याम [ ११७३ ]- तेरे विचारमें जो धन तेजस्वी और श्रेष्ठ है, वे धन हमें भरपूर दे । उस उत्तम और श्रेष्ठ धनके लेनेवाले हम हों ।

७ हे इन्द्र ! त्वा दातं यत् मे इदं नास्ति, तत् उभयाहस्ती नः आ भर [ ११७२ ]- तेरे द्वारा दिए गए जो धन मेरे पास नहीं है, उन्हें तू हमें दोनों हाथोंसे भरपूर दे ।

८ हे वसो शतक्रतो ! त्वं नः पिता, त्वं माता बभूविथ ! अथ ते सुस्रं ईमहे [ ११७० ]- हे निवासक और सैंकड़ों कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाले इन्द्र ! तू हमारा पिता और तू ही हमारी माता है, इसलिए तुझसे हम सुख मांगते हैं ।

९ हे अद्रिवः ! ते दिक्षु प्रसाध्यं श्रुतं बृहत् यत् मनः अस्ति, तेन दृढा चित् वाजं सातये आदर्षि [ ११७४ ]- हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरा सब दिशाओंमें प्रशंसनीय जो विशाल मन है । उस अपने मनसे जो धन दृढ़ हो गए हैं उनको भी हमारे बल बढानेके लिए हमें दे ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें आया है ।

### अग्नि

१ तव क्रतुभिः अमृतत्वं आयन् [ ११४१ ]- यज्ञमान यज्ञोंके द्वारा अमृतत्वको प्राप्त होगया ।

२ वैश्वानरं अध्वराणां रथं यज्ञस्य केतुं देवाः जनयन्त [ ११४२ ]- विश्वका नेता, हिसारहित यज्ञकर्मका संचालक, यज्ञके ध्वज ऐसे तुझ अग्निको देवोंने उत्पन्न किया ।

३ यः आर्चिषा विश्वा वना परिप्वजत्, जिह्वया



कृष्णा करोति तं ईडिष्व [११४९]— जो अपनी ज्वालासे सब जंगलोंको जला डालता है, और अपनी ज्वालासे सब काला करता है, उस अग्निकी स्तुति कर।

अग्नि अपनी ज्वालासे जंगलको भस्म कर देता है, और जिस मार्गसे वह वनको जला देता है, वहां वहां काला कर देता है। ऐसा यह अग्निदेव स्तुति करनेके योग्य है।

४ अवसे चित्र-राघसं अग्निं हवामहे [११६८]— अपने संरक्षणके लिए विलक्षण पराक्रम करनेवाले अग्निकी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं।

५ दिवः मूर्धानं पृथिव्याः अरतिं वैश्वानरं ऋते आजातं, कविं सम्राजं जनानां अतिथिं आसन्नं, नः पात्रं देवाः आ जनयन्त [११४०]— छुलोकके मस्तकके स्थानपर रहनेवाले, पृथ्वीपर फिरनेवाले, विश्वके नेता, यज्ञके लिए उत्पन्न हुए, ज्ञानी और सम्राट्, लोगोंकी ओर अतिथिके रूपमें जानेवाले, देवोंके मुख और हमारे संरक्षक ऐसे अग्निकी देवोंने उत्पन्न किया।

इस प्रकार अग्निका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

### इन्द्र और अग्नि

१ इन्द्रं अग्निं च आ वोढेव नः वाजवतीः इषः, आशून् अर्वतः पिपृतं [११५१]— इन्द्र और अग्निकी देवोंकी ओर पहुंचानेके लिए हमें बल बढ़ानेवाले अस्त्र और चंचल घोड़े दो।

ऐसे वंसे अस्त्र हमें नहीं चाहिए, अपितु बल बढ़ानेवाले चाहिए। घोड़े भी ऐसे वंसे नहीं, अपितु तेज बौड़नेवाले और अत्यन्त चपल चाहिए। यह शब्द योजना यहां देखने योग्य है।

### मित्र और वरुण

इस अध्यायमें मित्र और वरुणकी भी थोड़ीसी स्तुति आई है, जो इसप्रकार है—

१ मित्राय वरुणाय विषा गिरा गायत । महि क्षत्रौ ! ऋतं बृहत् [११४३]— मित्र और वरुणके लिए स्तोत्रोंकी बड़ी आवाजसे गाओ। महान् बलोंको धारण करनेवाले मित्रावरुणो ! यज्ञमें तुम्हारी बड़ी स्तुति हो रही है, उसे सुननेके लिए आओ।

२ उभा सम्राजा घृतयोनी देवा देवेषु प्रशस्ता [११४४]— मित्र और वरुण ये दोनों ही महान् सम्राट् हैं।

२१ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

वे जल उत्पन्न करनेवाले देव हैं इसलिए वे सब देवोंमें अत्यधिक प्रशंसित हैं।

३ तानः दिव्यभ्य पार्थिवस्य महः रायः शक्तं, वां देवेषु महि क्षत्रम् [११४५]— वे मित्र और वरुण छुलोक और पृथिवीपरके सब महान् धन देनेमें समर्थ हैं। तुम दोनोंके महान् क्षात्रबल देवोंमें भी प्रसिद्ध हैं।

४ शर्घाय वीतये मित्राय वरुणाय यथाशतंमं दक्षसाधनं पुनाता [११५९]— बल बढ़ानेके लिए और देवोंको देनेके लिए तथा मित्र और वरुणको जिमप्रकार आनन्द हो, उसप्रकार बल बढ़ानेके साधनरूप सोमको शुद्ध करो।

### देवोंके लिए सोमरस

सोमरस यज्ञमें निचोड़ते हैं, वह देवोंको दिया जाता है, बावमें यज्ञ करनेवाले पीते हैं। इस विषयमें थोड़ासा वर्णन इस प्रकार है—

१ स वायुं, इन्द्रं, अश्विना मदेन साकं गच्छति [११३४]— वह सोमरस वायु, इन्द्र, अश्विनो आदि देवोंके पास अपने स्वाभाविक आनन्दके साथ पहुंचता है।

२ मधोः ऊर्मयः मित्रे वरुणे भगे पवन्ते [११३५]— इस सोमरसकी लहरें मित्र, वरुण और भग आदि देवोंके पास पहुंचती हैं।

३ हे सोम ! नृभिः येमानः अद्रिभिः सुतः इन्द्रस्य कुक्षा प्र याहि [११६२]— हे सोम ! ऋत्विजों द्वारा पत्थरोंसे कूटकर निचोड़ा गया तू इन्द्रके पेटमें जाता है।

### सोम स्वर्गमें रहता है

१ इन्द्रवः नः दिवस्पारि वृष्टिं सुवीर्यं आ पवतां [११६५]— सोमरस हमारे लिए स्वर्गलोकसे वृष्टि और उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति लाता है।

### सोमके गुण

१ देवः [१११६]— चमकनेवाला, स्वर्गमें रहनेवाला।

२ महिध्रतः [१११६]— महान् कार्य करनेवाला।

३ शुचि-बन्धुः [१११६]— शुद्ध बन्धुके समान।

४ पावकः [१११६]— शुद्ध, पवित्र करनेवाला।

५ वराहः [१११६]— बलवान्, जिसपर संस्कार अच्छे दिनोंके पड़े हैं।

६ इन्द्रुः [११५२]— तेजस्वी।



७ सखा [११५२]- मित्र, मित्रके समान हित करनेवाला।  
८ गयसाधनः [११५८]- यज्ञस्थानका मुख्य साधन, घरका मुख्य साधन।

९ देवाव्यः [११५८]- देवोंके देवत्वकी रक्षा करनेवाला।

१० द्विशवस् [११५८]- वो प्रकारके बल जिसके पास हैं। दिव्य और पार्थिव बल जिसके पास हैं।

इसप्रकार इस सोमके गुण इस अध्यायमें वर्णित हैं।

### सोमका चमकना

१ तिमशृंगः परीणसं कृणुते, दिवा हरिः ददृशे, नक्तं ऋजः [१११८]- वह सोम तीक्ष्ण किरणोंसे प्रकाश करता है, दिनमें हरा दीखता है और रातमें चमकता है।

### सोमके बल

सोमरसमें सामर्थ्य बढ़ानेका गुण है। इसीलिए उस रसको देव पीते हैं, और राक्षसोंका संहार करते हैं। सोमके ये बल वेदमंत्रोंमें अनेक प्रकारसे वर्णित हैं। उनमेंसे कुछ स प्रकार हैं—

१ ते मयोभुवं वह्निं पान्तं पुरुस्पृहं दक्षं अद्य आवृणीमहे [११३७]- हे सोम ! तेरे सुखवायी, इष्ट-स्थानपर पहुंचानेवाले, संरक्षण करनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित ऐसे बलोंको आज हम प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं।

२ मन्द्रं वरेण्यं विप्रं मनीषिणं पान्तं पुरुस्पृहं आवृणीमहे [११३८]- आनन्द बढ़ानेवाले, श्रेष्ठ ज्ञानपूर्ण, बुद्धियुक्त, संरक्षण करनेवाले, बहुतों द्वारा चाहने योग्य ऐसे जो तेरे बल हैं उन्हें हम पानेकी इच्छा करते हैं।

३ हे सुक्रतो ! रयिं सुचेतुनं तनूषु पान्तं पुरुस्पृहं आवृणीमहे [११३९]- हे उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! धन, उत्तम ज्ञान, उत्तम पुत्रपौत्र, उत्तम संरक्षण और प्रशंसनीय बल हम तुझसे प्राप्त करें ऐसी इच्छा करते हैं।

सोमरसमें ये गुण हैं। ये गुण हमारे अन्तर आधे और हम उन गुणोंसे युक्त हों ऐसी हमारी इच्छा है। हर एक उन्नति करनेवालेको ऐसी ही इच्छा करनी चाहिए।

सोमको पत्थरोंसे कूटकर उसका रस निकालते हैं। उस रसमें पानी मिलाकर छानते हैं। इस सम्बन्धी वर्णन इस प्रकार है—

### सोमका पानीमें मिलाया जाना

१ चन्द्र्यः हविः मन्हीः अपः विगाहते [११२९]-

अत्यन्त बन्दनीय सोम बहुत सारे पानीमें स्नान करता है। अर्थात् बहुतसे पानीमें वह मिलाया जाता है।

२ वृषः सत्यः अध्वरः सध्र अभि वने अचिक्रदत् [११३०]- बलवान् सत्यस्वरूप, हिंसारहित सोम यज्ञ-शालामें पानीमें शब्द करता हुआ मिलाया जाता है।

३ हरिः प्रियः वनेषु अव्या वारे परिसीदति [११३३]- हरे रंगका प्रिय सोमरस पानीमें मिलाये जानेके बाद भेडके बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

ऐसा यह सोम पानीमें मिलाकर छाना जाता हुआ नीचेके बर्तनमें गिरता है, तब उसका शब्द होता है।

### छानते समय सोमका शब्द

१ रेभन् पदा अभ्येति [१११६]- सोम शब्द करते हुए पात्रमें गिरता है।

२ सूरः अण्वं वितन्वते [११२३]- सोमरस शब्द करते हैं।

३ वाजी सहस्रधारः अव्यं चारं तिरः प्राक्षाः [११६०]- बलवान् सोम हजारों धाराओंसे भेडके बालोंकी छलनीसे नीचे गिरता है।

एक कलशमें जलमिश्रित सोमरस भरा जाता है। दूसरे कलशमें शुद्ध पानी रहता है। उस दूसरे कलशके मुंहपर भेडके बालोंकी छलनी रखी जाती है और उस पर जल मिश्रित सोमरस डाला जाता है। इस पर वह सोमरस छन-छनकर नीचेके बर्तनमें गिरता है। गिरते समय उसकी आवाज होती है, यह आलंकारिक वर्णन है।

### गायके दूधमें सोमरस मिलाना

छाने हुए सोमको गायके दूधमें मिलाया जाता है—

१ धेनवः पयसा इत् अभि शिश्रयुः हरिं क्रीडन्तं अभ्यनूषत [११५३]- गायें अपने दूधका मिश्रण इस-सोमरसके साथ करती हैं। खेलनेवाले हरे रंगके सोमको वे सुशोभित करती हैं।

२ सहस्ररेताः अद्भिः मृजानः गोभिः श्रीणानः अक्षाः [११६१]- हजारों प्रकारके बलसे युक्त सोमरसमें पहले पानी मिलाया जाता है, फिर गायका दूध मिलाया जाता है। फिर यह रस बर्तनमें छाना जाता है।

३ सोमासः गोभिः अंजते [११२१]- सोमरस गायके दूधसे सुशोभित होते हैं।

इन स्थलोंमें “गायका दूध” न कहकर केवल “गाय”



कहा है, यह वेदकी आलंकारिक भाषा है। सोम गायके साथ मिलाया जाता है इसका अर्थ है कि सोमरस गायके वृधके साथ मिलाया जाता है।

### सोमके लिए बाजे

सोमरस निकालनेके समय जैसे मंत्र बोले जाते हैं, जैसे सामका गान किया जाता है, उसीप्रकार बाजे भी बजाये जाते हैं—

१ सखायः दुर्मर्षं पवमानं वाणं साकं प्रवदन्ति [ १११७ ]-वे ऋषि मित्र शत्रुओंके लिए असह्य ऐसे शुद्ध होनेवाले सोमके लिए “ वाण ” नामक बाजे बजाते हैं। सामगानके समय ये बाजे बजाये जाते हैं। “ वाण ” सम्भवतः एक चर्मवाद्य था। और अनेक ऋषि उस वाद्यको सोमरस तैय्यार करनेके समय बजाते थे, ऐसा प्रतीत होता है।

### जयके द्वारा सम्पत्तिकी प्राप्ति

१ हे रोदसी ! मध्वः वाजस्य सातये अस्माकं रथिं श्रवः वसूनि संजितं [ ११३६ ]- हे छावापृथिवी ! सोम-रूपी अन्नकी प्राप्तिके लिए हमें धन, अन्न और ऐश्वर्य, विजयकी प्राप्तिके वाद मिले। अर्थात् पहले हमारी विजय हो उसके बाद हमें ऐश्वर्य भी प्राप्त हो।

### सोम अन्न देता है

१ नः संयतं पिप्युषीं इषं ऊर्मिणा पवस्व, या [ इद् ] भुमत्, वाजवत्, मधुमत् सुवीर्यं दाहते [ ११५४ ]- हमारे द्वारा लाये गए पोषक अन्नको हे सोम ! तू अपनी लहरोंसे शुद्ध कर, जो अन्न प्रसिद्ध बलवर्धक और मधुरतायुक्त उत्तम बल देता है। जिससे वीर पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा यह सोम शत्रु दूर करता है।

### सोम शत्रु दूर करता है

१ पवमानः स्पृधः अभिसीदति विशः राजा इव [ ११३२ ]- यह सोम प्रजाओंके पालन करनेवाले राजाके समान शत्रुको हरता है।

२ विश्वाः दिशः अनु प्रभुः समत्सु त्वा हवामहे [ ११६७ ]- हे सोम ! तू सब विश्वाओंके अनुकूल रहनेवाला प्रभु है। इसलिए युद्धमें सहायताके लिए हम तुझे बुलाते हैं।

इस प्रकार सोमका वर्णन इस अध्यायमें है।

## सुभाषित

१ काव्यं ब्रुवाणः देवः देवानां जनिमा विवक्ति [ १११६ ]- काव्योंका कहनेवाला सोमदेव अन्य देवोंके जन्मके वृत्तान्त कहता है।

२ सखायः दुर्मर्षं पवमानं वाणं साकं प्रवदन्ति [ १११७ ]- वे मित्र शत्रुओंको असह्य तथा शुद्ध होनेवाले सोमके लिए वाण नामक बाजा बजाते हैं। अनेक लोग मिलकर बाजे बजाते हैं।

३ दिवा हरिः ददृशे, नक्तं ऋजः [ १११८ ]- सोम दिनमें हरे रंगका दीखता है और रातमें चमकता है।

४ रथाः इव, अर्वन्तः न श्रवस्यन्तः राये प्राक्रमुः [ १११९ ]- रथ और घोड़े यशकी इच्छा करते हुए धन प्राप्तिके लिए पराक्रम करते हैं।

५ प्रशस्तिभिः राजानः न गोभिः अजते [ ११२१ ]- स्तुतियोंसे जिसप्रकार राजागण शोभित होते हैं, उसीप्रकार गायके दूधसे सोमरस सुशोभित होते हैं।

६ धर्मन् ऋतस्य पथा अस्त्यग्रम् [ ११२८ ]- धर्मके समान सत्यके मार्गसे वे जाते हैं।

७ पवमानः स्पृधः विशः राजा इव अभिसीदति [ ११३२ ]- सोमरस स्पर्धा करनेवाली प्रजाओंके राजाके समान शत्रुओंको नष्ट करता है।

८ रोदसी अस्मभ्यं रथिं श्रवः वसूनि संजितं [ ११३६ ]- द्युलोक और पृथ्वीलोक हमारे लिए धन, यश, ऐश्वर्य तथा जय प्राप्त करावें।

९ हे सोम ! ते मयोभुवं पान्तं पुरुस्पृहं दक्षं अद्य आवृणीमहे [ ११३७ ]- हे सोम ! तेरे सुखवायी, संरक्षण करनेमें समर्थ तथा बहुतों द्वारा प्रशंसाके योग्य, बलकी हम इच्छा करते हैं।

१० हे सोम ! मन्द्रं वरेण्यं, विप्रं मनीषिणं पान्तं पुरुस्पृहं आ [ ११३८ ]- हे सोम ! आनन्द देनेवाले, श्रेष्ठ, ज्ञानी, मननशील, संरक्षक और बहुतों द्वारा चाहने योग्य ऐसे तेरी हम भक्ति करते हैं।

११ हे सुक्रतो ! रथिं सुचेतनं तनुषु पान्तं पुरुस्पृहं आ [ ११३९ ]- हे उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! धन, उत्तम ज्ञान, पुत्रपौत्र तथा संरक्षणकी प्राप्तिके लिए बहुतों द्वारा जिसकी स्तुति होती है ऐसे इस सोमकी प्रार्थना हम करते हैं।



१२ वां देवेषु महि क्षत्रं [ ११४५ ]- तुम्हारी देवोंमें महान् शूरवीरता है।

१३ नः वाजवतीः इषः आशून् अर्धतः पिपृतं [ ११४६ ]- हमें बल बढ़ानेवाले अन्न और चंचल घोड़े दो।

१४ सखा सख्युः संगिरं न प्रमिनाति [ ११४७ ]- मित्र मित्रको कष्ट नहीं देता।

१५ मर्यः युवतिभिः [ ११४८ ]- पुरुष स्त्रियोंके साथ आनन्दसे रहता है।

१६ नः संयतं पिप्युपी इपं ऊर्मिणा पवस्व [ ११४९ ]- हमें पोषक अन्न अपनी लहरोंसे दे। भरपूर दे।

१७ शुभम् वाजवत् मधुम् सुवीर्यं दोहते [ ११५० ]- सोम प्रसिद्ध, बलवर्धक तथा मधुरतायुक्त धन देता है।

१८ सदावृधे विश्वगूर्ते ऋभ्वसं ओजसा अधृष्टं धृष्टं इन्द्रं कर्मणा नकिः नशत् [ ११५१ ]- सदा बढ़ानेवाले, प्रशंसनीय, महान्, अपनी शक्तिसे न हारनेवाले पर शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्रको अपने प्रयत्नसे कोई भी नहीं हरा सकता।

१९ अषाल्लहं उग्रं पृतनासु सासाहिं इन्द्रं [ ११५२ ]- शत्रुको हरानेवाले, उग्रवीर और युद्धमें विजयी इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ।

२० सखायः आ निरीदित, पुनानाय प्रगायत [ ११५३ ]- हे मित्रो। आओ, बेठो और शुद्ध होनेवालेकी प्रशंसा करो।

२१ विश्वाः दिशः अनु प्रभुः, समत्सु त्वा हवामहे [ ११५४ ]- सब दिशाओंमें तू योग्यशासक है, इसलिए तुझे युद्धमें सहायताके लिए हम बुलाते हैं।

२२ समत्सु वाजयन्तः अवसे वाजेषु चित्रराधसं अग्निं हवामहे [ ११५५ ]- युद्धमें बलका उपयोग करनेवाले हम संग्राममें अपने संरक्षणके लिए विलक्षण पराक्रम करनेवाले अग्रणीको सहायताके लिए बुलाते हैं।

२३ हे शतक्रतो विचर्यणे इन्द्र ! नः नृम्णं ओजः आभर, पृतनासहं वीरं आ [ ११५६ ]- हे सैकड़ों कर्म करनेवाले ज्ञानी इन्द्र ! हमें पीछेपुछे बल भरपूर दे और युद्धमें शत्रुको हरानेवाला पुत्र दे।

२४ हे वसो शतक्रतो ! त्वं नः पिता, त्वं माता यभूथिथि । अथ ते सुम्नं ईमहे [ ११५७ ]- हे निवासक इन्द्र ! तू हमारा पिता और तू ही हमारी माता है, इसलिए तेरे पास सुख मांगते हैं।

२५ सहस्रकृत गुप्तिन् पुरुहन् ! वाजयन्तं त्वां उपब्रुवे । नः सुवीर्यं रास्व [ ११५८ ]- हे बलके लिए प्रसिद्ध और सामर्थ्यवान् तथा सभीके द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! बलसे युक्त तेरी हम स्तुति करते हैं, तू हमें उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य दे।

२६ हे विददस्वो ! हे अद्रिवः चित्र इन्द्र ! तत् उभया हस्ती नः आभर [ ११५९ ]- हे धनवान्, वज्रधारी, विलक्षण और बलवान् इन्द्र ! वे धन दोनों ही हाथोंसे हमें भरपूर दे।

२७ हे इन्द्र ! यत् युशं वरेण्यं मन्यसे तत् आभर [ ११६० ]- हे इन्द्र ! जिसे तू तेजस्वी और चाहने योग्य मानता है, उसे हमें भरपूर दे।

२८ ते वयं तस्य अकूपारस्य दाचनः विद्याम [ ११६१ ]- वे हम उस उत्तम धनके दानको लेनेकी इच्छा करते हैं।

२९ हे अद्रिवः ! ते दिक्षु प्रगाध्यं श्रुतं ब्रुहत् मनः अस्ति, तेन दृढा चित् वाजं सातये आदर्षि [ ११६२ ]- हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरा नाना दिशाओंमें जानेवाला प्रसिद्ध और विशाल मन है। उस मनसे कठिनतासे मिलनेवाले धनोंकी भी बल बढ़ानेके लिए हमें दे।

## उपमा

अब इस अध्यायमें आयी हुई उपमाओंको देखिए—

१ उशना इव [ ११६३ ]- उशना ऋषिके समान ( काव्यं ब्रुवाणाः ) कवि काव्योंको बोलता है।

२ रथाः इव अर्धन्तः न [ ११६४ ]- रथ और घोड़ोंके समान ( श्रवस्यवः सोमासः गये प्राक्रमुः ) यशकी इच्छा करनेवाले सोमरस धन पानेके लिए प्रयत्न करते हैं।

३ रथाः इव [ ११६५ ]- युद्धमें जानेवाले रथके समान ( हिन्वानासः गभस्व्योः दधिरे ) प्रेरित हुए हुए सोमरस हाथोंमें धारण किए जाते हैं। पीनेके लिए सोमपात्र हाथसे पकड़े जाते हैं।

४ भराम्नः कारिणां इव [ ११६६ ]- भार उठाकर ले जानेवाले मजदूरोंके हाथोंपर जिसप्रकार बोझ उठाकर रखा जाता है, उसीप्रकार सोमपात्र सोम पीनेके लिए हाथोंसे उठाये जाते हैं।



५ प्रशस्तिभिः राजानः न [ ११२१ ]- स्तुतियोंसे जैसे राजा खुश होते हैं, उसीप्रकार सोमरस ( गोभिः अंजते ) गायके वृषसे सुशोभित होते हैं ।

६ सप्त-धातुभिः यज्ञः न [ ११२१ ]- सात ऋत्विजों द्वारा जैसे यज्ञ सिद्ध होता है, उसीप्रकार सोम गायके वृषसे सिद्ध होता है ।

७ शिशुं न [ ११४१ ]- लडकेकी जैसे उसकी माता देखभाल करती है, उसीप्रकार ( जायमानं त्वां अग्निं ) नये जलाये गए उस अग्निकी ऋत्विज देखभाल करते हैं ।

८ शिशुं न [ ११५७ ]- बालकको जैसे पिता आभूषणोंसे सजाता है, उसीप्रकार ऋत्विज ( यज्ञैः श्रिये परिभूषत ) यज्ञोंसे अग्निकी शोभा बढ़ाते हैं ।

९ मर्यः युवतिभिः इव [ ११५२ ]- पुरुष जैसे स्त्रियोंके साथ आनन्दसे रहता है, उसीप्रकार ( सोमः समर्पति ) सोम पानीके साथ रहता है ।

१० इन्द्रं न [ ११५५ ]- इन्द्रका जैसे लोग ( यज्ञैः चकार ) यज्ञोंसे सत्कार करते हैं, उसीप्रकार सोमका भी सत्कार यज्ञोंसे करते हैं ।

११ मातृभिः वत्सं न [ ११५८ ]- माताओंके साथ जिसप्रकार लडका रहता है, उसीप्रकार ( ईं अभि सं-सृजत ) इस सोमको जलोंके साथ मिलाओ ।

१२ विशः राजा इव [ ११३२ ]- प्रजाओंका राजा जैसे शत्रुओंको दूर करता है, उसीप्रकार ( पवमानः स्पृधः अभि सीदति ) सोम शत्रुओंको दूर करता है ।



## अष्टमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| संज्ञासंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                   | देवता       | छन्दः      |
|--------------|--------------|------------------------|-------------|------------|
|              |              | ( १ )                  |             |            |
| १११६         | ९।९।७        | वृषगणो वासिष्ठः        | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १११७         | ९।९।८        | वृषगणो वासिष्ठः        | "           | "          |
| १११८         | ९।९।९        | वृषगणो वासिष्ठः        | "           | "          |
| १११९         | ९।१०।१       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | गायत्री    |
| ११२०         | ९।१०।२       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११२१         | ९।१०।३       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११२२         | ९।१०।४       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११२३         | ९।१०।५       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११२४         | ९।१०।६       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११२५         | ९।१०।७       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११२६         | ९।१०।८       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११२७         | ९।१०।९       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
|              |              | ( २ )                  |             |            |
| ११२८         | ९।१।१        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११२९         | ९।१।२        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११३०         | ९।१।३        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११३१         | ९।१।४        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११३२         | ९।१।५        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                            | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|---------------------------------|-------------|---------|
| ११३३        | ९।७।६        | असितः काश्यपो देवलो वा          | पवमानः सोमः | गायत्री |
| ११३४        | ९।७।७        | असितः काश्यपो देवलो वा          | "           | "       |
| ११३५        | ९।७।८        | असितः काश्यपो देवलो वा          | "           | "       |
| ११३६        | ९।७।९        | असितः काश्यपो देवलो वा          | "           | "       |
| ११३७        | ९।६५।१८      | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भागवो वा | "           | "       |
| ११३८        | ९।६५।१९      | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भागवो वा | "           | "       |
| ११३९        | ९।६५।२०      | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भागवो वा | "           | "       |

( ३ )

|      |         |                        |             |            |
|------|---------|------------------------|-------------|------------|
| ११४० | ६।७।१   | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | अग्निः      | त्रिष्टुप् |
| ११४१ | ६।७।४   | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | "           | "          |
| ११४२ | ६।७।२   | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | "           | "          |
| ११४३ | ५।६८।१  | यजत आश्वेयः            | मित्रावरुणी | गायत्री    |
| ११४४ | ५।६८।२  | यजत आश्वेयः            | "           | "          |
| ११४५ | ५।६८।३  | यजत आश्वेयः            | "           | "          |
| ११४६ | १।३।४   | मधुच्छन्दा वेदवामित्रः | इन्द्रः     | "          |
| ११४७ | १।३।५   | मधुच्छन्दा वेदवामित्रः | "           | "          |
| ११४८ | १।३।६   | मधुच्छन्दा वेदवामित्रः | "           | "          |
| ११४९ | ६।३०।१० | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | "           | "          |
| ११५० | ६।६०।११ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | "           | "          |
| ११५१ | ६।६०।१२ | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः  | "           | "          |

( ४ )

|      |         |                   |             |   |
|------|---------|-------------------|-------------|---|
| ११५२ | ९।८६।१६ | सिकता निवावरी     | पवमानः सोमः | जगती  |
| ११५३ | ९।८६।१७ | सिकता निवावरी     | "           | "   |
| ११५४ | ९।८६।१८ | सिकता निवावरी     | "           | "   |
| ११५५ | ८।७०।३  | पुरुहन्मा आंगिरसः | इन्द्रः     | प्रगाथः = ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| ११५६ | ८।७०।४  | पुरुहन्मा आंगिरसः | "           | "   |

( ५ )

|      |          |  |             |                |
|------|----------|--|-------------|----------------|
| ११५७ | ९।१०४।१  | पर्वतनारदो काण्वी, शिल्पिण्डिन्याव-<br>प्सरसौ काश्यपो वा । | पवमानः सोमः | उष्णिक्        |
| ११५८ | ९।१०४।२  | पर्वतनारदो काण्वी, शिल्पिण्डिन्याव-<br>प्सरसौ काश्यपो वा   | "           | "              |
| ११५९ | ९।१०४।३  | पर्वतनारदो काण्वी, शिल्पिण्डिन्याव-<br>प्सरसौ काश्यपो वा   | "           | "              |
| ११६० | ९।१०९।१६ | अग्नये धिष्ण्यो ऐश्वराः                                    | "           | द्विषदा विराट् |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                             | वेधता       | छन्दः          |
|-------------|--------------|----------------------------------|-------------|----------------|
| ११६१        | ९।१०९।१७     | अग्नये विष्ण्यो ऐश्वराः          | पवमानः सोमः | द्विपदा विराट् |
| ११६२        | ९।१०९।१८     | अग्नये विष्ण्यो ऐश्वराः          | "           | "              |
| ११६३        | ९।६५।१९      | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भर्गवो वा | "           | गायत्री        |
| ११६४        | ९।६५।२३      | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भर्गवो वा | "           | "              |
| ११६५        | ९।६५।२४      | भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भर्गवो वा | "           | "              |

( ६ )

|      |         |               |         |             |
|------|---------|---------------|---------|-------------|
| ११६६ | ८।११।७  | वत्सः काण्वः  | अग्निः  | "           |
| ११६७ | ८।११।८  | वत्सः काण्वः  | "       | "           |
| ११६८ | ८।११।९  | वत्सः काण्वः  | "       | "           |
| ११६९ | ८।९८।१० | नृमेध आंगिरसः | इन्द्रः | ककुप्       |
| ११७० | ८।९८।११ | नृमेध आंगिरसः | "       | "           |
| ११७१ | ८।९८।१२ | नृमेध आंगिरसः | "       | पुर उष्णिक् |
| ११७२ | ५।३९।१  | अग्निर्भौमः   | "       | अनुष्टुप्   |
| ११७३ | ५।३९।२  | अग्निर्भौमः   | "       | "           |
| ११७४ | ५।३९।३  | अग्निर्भौमः   | "       | "           |





## अथ नवमोऽध्यायः १

अथ पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ प्रतर्बनो वेधोवासिः; २, ३, ४ असितः काश्यपो देवलो वा; ५, ११ उच्यय आंगिरसः; ६, ७ अमही-  
युरांगिरसः; ८, १५ निध्रुविः काश्यपः; ९ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः; १० सुकक्ष आंगिरसः; १२ कविर्भागवः; १३ वेधातिभिः  
काण्वः; १४ अर्गः प्रागायः; १६ अम्बरीषो बार्हागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १७ अग्नयो धिष्या ऐश्वराः; १८ उशना  
काण्वः; १९ नृमेष आंगिरसः; २० जेता माधुच्छन्वसः ॥ १-८, ११-१२, १५-१७ पक्मानः सोमः; ९, १८  
अग्निः; १०, १३, १४, १९-२० इन्द्रः ॥ १-९ त्रिष्टुप्; २-८, १०-११, १५, १८ गायत्री; जगती १३,  
१४ प्रगायः = ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ); १६-२० अनुष्टुप्; १७ द्विपदा विराट्; १९ उष्णिक् ॥

११७५ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> शिशुं जज्ञानं हृतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९६।१७ )  
११७६ <sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९६।१८ )  
११७७ <sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> चमूषच्छयेनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि विभ्रत् ।  
<sup>३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अपामूर्मिः सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥ १ ( लु ) ॥  
[ धा० २४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।९६।१९ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ ११७५ ] ( जज्ञानं शिशुं ) अभी अभी उत्पन्न होनेके कारण बालकके समान रहनेवाले ( हृतं ) सबोंके द्वारा पूज्य इस सोमको ( मरुतः मृजन्ति ) मरुत शब्द करते हैं । ( गणेन विप्रं शुम्भन्ति ) सात संख्याके इस ज्ञानवर्धक सोमको सुशोभित करते हैं, उसके बाद ( कविः सोमः काव्येन ) यह ज्ञानी सोम स्तोत्रके काव्योंसे ( कविः गीर्भिः ) जो स्तुति प्रारम्भ हुई है, उसे सुनते हुए ( रेभन् पवित्रं अत्येति ) शब्द करते हुए छलनीसे छाना जाता है ॥ १ ॥

[ ११७६ ] ( ऋषिः-मना ) ऋषिके समान मनवाला ( ऋषि-कृत् ) ऋषियोंको बनानेवाला ( स्वर्षाः सहस्र-नीथः ) सबका सेवन करनेवाला, हजारों स्तुतियोंसे प्रशंसित ( कवीनां पदवीः ) कविकी योग्यताको प्राप्त हुआ हुआ ( यः सोमः ) जो सोम है वह ( महिषः ) अत्यन्त पूज्य ( तृतीयं धाम सिषासन् ) तीसरे धाममें रहनेवाले और ( ष्टुप् ) स्तुत्य होकर ( विराजं अनु विराजति ) विशेष तेजस्वी बने हुए इन्द्रको और अधिक प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

[ ११७७ ] ( चमूषद् द्येनः ) कलशमें रहनेवाला प्रशंसनीय ( शकुनः ) शक्तिमान् ( विभृत्वा ) गति करनेवाला ( गो-विन्दुः ) गाय प्राप्त करनेवाला, गायके दूधमें मिलाया जानेवाला ( द्रप्सः ) बहनेवाला ( अपां ऊर्मिं समुद्रं सचमानः ) जलके लहरोंके समुद्रमें मिलाया जानेवाला ( आयुधानि विभ्रत् ) शस्त्रोंको धारण करनेवाला ( महिषः ) प्रह बलवान् सोम ( तुरीयं धाम विवक्ति ) चतुर्थ धाममें रहता है, ऊँचे स्थानमें विराजता है ॥ ३ ॥



- ११७८ एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८।१ )
- ११७९ पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८।२ )
- ११८० इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । देवानां योनिमासदम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।८।३ )
- ११८१ मजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।८।४ )
- ११८२ देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेघ्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।८।५ )
- ११८३ पुनानः कलशेषा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।८।६ )
- ११८४ मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्द्रो सखायमा विश ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।८।७ )
- ११८५ नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्षिदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।८।८ )
- ११८६ वृष्टिं दिवः परि स्रव युष्मं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृतसु धाः ॥ ९ ॥ २ ( ति ) ॥
- [ धा० ३९ । उ० १ । ख० १३ ] ( ऋ. ९।८।८ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ ११७८ ] ( एते सोमाः ) ये सोमरस ( अस्य वीर्यं वर्धन्तः ) इस इन्द्रका सामर्थ्य बढ़ाते हुए ( इन्द्रस्य कामं प्रियं ) इन्द्रको प्रिय लगनेवाले रसकी ( सं अभि अभ्ररन् ) वृष्टि करते हैं, रस नीचेके बर्तनमें छनकर गिरता है ॥ १ ॥

[ ११७९ ] हे ( पुनानासः चमूषदः ) छने हुए और बर्तनमें रखे हुए सोमरसो ! ( वायुं अश्विना गच्छन्तः ) वायु और अश्विनोको प्राप्त होकर ( ते ) वे तुम ( नः सुवीर्यं धत्त ) हमें उत्तम वीरता दो ॥ २ ॥

[ ११८० ] हे ( सोम ) सोम ! ( पुनानः ) छाना जाता हुआ तू ( इन्द्रस्य राधसे ) इन्द्रकी आराधनाके लिए ( हार्दि चोदय ) हृदयोंको प्रेरित कर । मैं ( देवानां योनिं आ सदं ) देवोंके यज्ञस्थानमें आकर बैठ गया हूँ ॥ ३ ॥

[ ११८१ ] हे सोम ! ( त्वा दशक्षिपः मृजन्ति ) तुझे दस अंगुलियां शूढ़ करती हैं । ( सप्तधीतयः हिन्वन्ति ) सात होतागण तुझे सन्तुष्ट करते हैं, ( विप्राः अनु अमादिषुः ) जानी तेरा अनुसरण करके तुझे प्रसन्न करते हैं ॥ ४ ॥

[ ११८२ ] हे सोम ! ( मेघ्यः अति सृजानं ) बालोंकी छलनीसे छाना जानेवाले ( कं त्वा ) सुख बढ़ानेवाले तुझे ( देवेभ्यः मदाय ) देवोंको आनन्द देनेके लिए ( गोभिः संवासयामसि ) गायके दूधमें मिलाते हैं ॥ ५ ॥

[ ११८३ ] ( पुनानः ) शूढ़ होकर ( कलशेषा आ ) कलशोंमें आकर रहनेवाला ( अरुषः हरिः ) चमकनेवाला हरे रंगका सोम ( गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत ) गायके वस्त्रोंको पहनता है । अर्थात् गायके दूधमें मिलाया जाता है ॥ ६ ॥

[ ११८४ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( मघोनः नः ) धनसे युक्त हमारे लिए ( आ पवस्व ) छनता जा । ( विश्वाः द्विषः अप जहि ) सब शत्रुओंकी नष्ट कर ( सखायं आ विश ) और अपने मित्र इन्द्रके पेटमें प्रविष्ट हो जा ॥ ७ ॥

[ ११८५ ] हे सोम ! ( नृचक्षसं ) मनुष्यका निरीक्षण करनेवाले ( इन्द्र-पीतं ) इन्द्रके द्वारा पिये जाने योग्य तथा ( स्वर्षिदं त्वां ) सबको जाननेवाले तुझे प्राप्त करके ( वयं प्रजां इषं भक्षीमहि ) सन्तान और अन्न प्राप्त करें ॥ ८ ॥

[ ११८६ ] हे ( सोम ) सोम ! तू ( दिवः वृष्टिं परिस्रव ) ध्रुवसे वृष्टि कर । ( पृथिव्याः अधि युष्मं ) पृथिवी पर अन्न उत्पन्न कर । ( पृतसु नः सहः धाः ) संप्राममें उपयोगी होनेवाले सामर्थ्य हमें दे ॥ ९ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

- ११८७ सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१३।१ )
- ११८८ पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१३।२ )
- ११८९ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१३।३ )
- ११९० उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१३।४ )
- ११९१ अत्या हियाना न हेतुभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१३।५ )
- ११९२ ते नः सहस्रिण रयि पवन्तामा सुवीर्यम् । स्वाना देवास इन्द्रवः ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१३।६ )
- ११९३ वाश्ना अर्षन्तीन्द्रवोऽभि वत्सं न मातरः । दधन्विरे गभस्तयोः ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१३।७ )
- ११९४ जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्कदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।१३।८ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ ११८७ ] ( सहस्रधारः ) हजारों धाराओंसे ( अति अविः ) बालोंकी छलनीसे ( पुनानः सोमः ) छाना जानेवाला सोम ( वायोः इन्द्रस्य ) वायु और इन्द्रके पीनेके लिए ( निष्कृतं अर्षति ) बर्तनमें जाता है ॥ १ ॥

[ ११८८ ] हे ( अवस्यवः ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले उद्गाता आदि याजकों ! तुम ( पवमानं विप्रं ) श्रुद्ध होनेवाले, ज्ञानी ( देववीतये सुष्वाणं ) देवोंके पीनेके लिए छाने जानेवाले सोमके लिए ( अभि प्र गायत ) मंत्रोंका गान करो ॥ २ ॥

[ ११८९ ] ( वाजसातये ) अन्नदान करनेके लिए ( गृणानाः ) प्रशंसित होनेवाले ( सहस्र-पाजसः सोमाः ) हजारों प्रकारके बल बढ़ानेवाले ये सोमरस ( पवन्ते ) श्रुद्ध किए जाते हैं ॥ ३ ॥

[ ११९० ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( द्युमत् सुवीर्यं पवस्व ) तजस्वी और उत्तम सामर्थ्य हमें दे । ( उत ) और ( वाजसातये ) अन्नदान करनेके लिए ( बृहतीः इषः ) बहुतसा अन्न हमें दे ॥ ४ ॥

[ ११९१ ] ( वाजसातये हियानाः ) संग्रामके लिए प्रेरित हुए हुए सोमरस ( आशवः न ) शीघ्रगामी घोड़ेके समान ( हेतुभिः ) ऋत्विजोंके द्वारा ( अव्यं वारं वि अति असृग्रं ) बालोंकी बनी छलनीसे छाने जाते हैं ॥ ५ ॥

[ ११९२ ] ( ते स्वानाः देवासः इन्द्रवः ) वे निचोड़े गए दिव्य सोमरस ( नः सहस्रिण रयि सुवीर्यं आ पवन्तां ) हमें हजारों प्रकारके धन और उत्तम सामर्थ्य देवें ॥ ६ ॥

[ ११९३ ] ( वाश्नाः इन्द्रवः ) शब्द करनेवाले सोम ( मातरः वत्सं न ) गायें जैसी बछड़ेके पास जाती है, उसी प्रकार ( अभि अर्षन्ति ) कलशमें जाते हैं और ( गभस्तयोः दधन्विरे ) हाथोंसे धारण किए जाते हैं ॥ ७ ॥

[ ११९४ ] सोम ( इन्द्राय जुष्टः ) इन्द्रको दिया जाता है, हे सोम ! वह तू ( मत्सरः पवमानः ) आनन्द देने-वाला और छाना जानेवाला ( कनिक्कदत् ) शब्द करते हुए ( विश्वाः द्विषः अप जहि ) सब शत्रुओंको नष्ट कर ॥ ८ ॥



११९५ अपघ्नन्तो अरावणः पवमानाः स्वर्दशः । योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ ३ (दृ) ॥  
[ धा० ३९। उ० ३। स्व० ६ ] ( ऋ. ९।१३।९ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

११९६ सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१२।१ )

११९७ अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१२।२ )

११९८ मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥

( ऋ. ९।१२।३ )

११९९ दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१२।४ )

१२०० यः सोमः कलशेष्य अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि पस्वजे ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१२।५ )

१२०१ प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥ ( ऋ. ९।१२।६ )

१२०२ नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सवर्दुधाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥ ( ऋ. ९।१२।७ )

[ ११९५ ] हे ( पवमानाः ) सोमो ! ( अ-रावणः अपघ्नन्तः ) वान न देनेवाले शत्रुओंका नाश करते हुए तथा ( स्वः-दशः ) अपने तेजसे चमकते हुए तुम ( ऋतस्य योनौ सीदत ) यज्ञके स्थानपर बैठो ॥ ९ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ ११९६ ] ( ऋतस्य सुताः ) यज्ञके लिए तैय्यार किये गए ( मधुमत्तमाः इन्द्रवः ) बहुत मीठे और तेजस्वी ( सोमाः ) सोमरस ( इन्द्राय धारया असृग्रं ) इन्द्रके लिए धारासे छनते जाते हैं ॥ १ ॥

[ ११९७ ] हे ( विप्राः ) ऋत्विजो ! ( सोमस्य पीतये ) सोम पीनेके लिए ( इन्द्रं अभि अनूषत ) इन्द्रकी सेवा करो । ( धेनवः गावः वत्सं न ) दुधार गायें जिसप्रकार अपने बछड़ेकी सेवा करती हैं, उसीप्रकार तुम इन्द्रकी सेवा करो ॥ २ ॥

[ ११९८ ] ( मदच्युत् सोमः ) आनन्द बढ़ानेवाला सोम ( सादने क्षेति ) यज्ञशालामें निवास करता है, ( सिन्धोः ऊर्मा विपश्चित् ) जैसे नदीके तरंगोंमें यह ज्ञानी सोम रहता है, उसीप्रकार यह ( गौरी अधिश्रितः ) गांधर्वोंमें भी रहता है । छलनीमें शुद्ध होता है ॥ ३ ॥

[ ११९९ ] ( यः ) जो ( सुक्रतुः कविः विचक्षणः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला, महान् ज्ञानी यह ( सोमः ) सोम है, वह ( दिवः नाभा ) अन्तरिक्षकी नाभिके समान ( अव्या वारे महीयते ) बालोंकी छलनीके ऊपर महत्त्वशाली होता है ॥ ४ ॥

[ १२०० ] ( यः सोमः ) जो सोम ( कलशेष्य आ ) कलशोंमें ( पवित्रे अन्तः आहितः ) छलनीके बीचमें रखा हुआ है, ( तं इन्दुः परिपस्वजे ) उस सोमकी जल स्पर्श करे ॥ ५ ॥

[ १२०१ ] ( इन्दुः ) सोम ( मधुश्चुतं कोशं जिन्वन् ) मीठारस जिसमें टपकता है उस बर्तनकी पूरा भर देता है । वह ( समुद्रस्य अधि विष्टपि ) जलके आश्रय स्थान पर ( वाचं प्र इष्यति ) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ १२०२ ] ( नित्यः स्तोत्रः वनस्पतिः ) नित्य जिसकी स्तुति की जाती है ऐसा वनका स्वामी सोम ( मानुषा युजा हिन्वानः ) मनुष्योंको संगठन करनेके लिए प्रेरित करता हुआ ( सवर्दुधाम् ) सबसे मीठे वचन बोलनेवालेके ( अन्तः धेनां ) अन्तःकरणमें रहनेवाली स्तुतिकी स्वीकार करे ॥ ७ ॥



१२०३ आ पवमान धारया रयिः सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥८॥ ( ऋ. ९।१२।९ )

१२०४ अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥ ९ ॥ ४ ( मे ) ॥

[ धा० ४० । उ० ४ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।१२।८ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१२०५ उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरुर्मैरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥१॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

१२०६ प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।२ )

१२०७ अव्या वारैः परि प्रियः हरिः हिन्वन्त्याद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१०।३ )

१२०८ आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१०।४ )

१२०९ स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अकतुभिः । एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥ ५ ( का ) ॥

[ धा० ३१ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०।५ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ १२०३ ] हे ( पवमान इन्दो ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( सहस्रवर्चसं स्वाभुवं ) सहस्र तेजोंसे युक्त अपना घर तथा ( रयिं ) धन ( अस्मे धारय ) हमें दे ॥ ८ ॥

[ १२०४ ] ( कविः सुतः ) ज्ञानी सोमरस ( परावति विप्रः सः ) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले ज्ञानीके समान ( धारया ) अपनी धारसे ( दिवः प्रिया ) छलोकसे प्रिय स्थानकी ओर ( अभि हिन्वे ) प्रेरणा करता है ॥ ९ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १२०५ ] हे सोम ! ( सिन्धोः ऊर्मैः स्वनः इव ) समुद्रकी लहरोंके शब्दके समान ( ते शुष्मासः उत् ईरते ) तेरे वेगसे बहनेकी आवाज निकलती है । ऐसा तू ( वाणस्य पविं चोदय ) वाण नामक बाजेके समान शब्द कर ॥ १ ॥

[ १२०६ ] ( ते प्रसवे ) तेरी उत्पत्ति होनेके बाद ( मखस्युवः तिस्रः वाचः उत् ईरते ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विज ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मंत्र बोलने लगते हैं । ( यत् सानवि अव्ये एषि ) तब तू ऊँचे स्थानपर रखे हुए बालोंकी बनी छलनीमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२०७ ] ( प्रियं हरिं ) प्रिय और हरे रंगके ( आद्रिभिः ) पत्थरों द्वारा कूटे गए ( मधुश्चुतं-पवमानं ) सीढ़े सोमरसकी छाननेवाले ऋत्विज ( अव्याः वारैः परि हिन्वन्ति ) भेड़के बालोंकी बनी छलनीसे छानते हैं ॥ ३ ॥

[ १२०८ ] ( मदिन्तम कवे ) हे परम हर्ष बढ़ानेवाले सोम ! ( अर्कस्य योनिं आसदं ) इन्द्रके पेटमें जानेके लिए ( पवित्रं धारया आ पवस्व ) छलनीसे धार बांधकर छनता जा ॥ ४ ॥

[ १२०९ ] हे ( मदिन्तम ) आनन्द देनेवाले सोम ! ( अकतुभिः गोभिः अञ्जानः ) तेजस्वी, गायके दूध आदि पदार्थोंके साथ मिलकर ( पवस्व ) छनता जा और ( इन्द्रस्य जठरं आ विश ) इन्द्रके पेटमें जा ॥ ५ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ५ ]

- १२१० अया वीती परि सव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नक् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१।१ )
- १२११ पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् । अध त्वं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१।२ )
- १२१२ परि णो अश्वमश्वविद्रोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥ ६ ( हि ) ॥
- [ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।६।१।३ )
- १२१३ अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अरावणः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१।४ )
- १२१४ महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१।५ )
- १२१५ न त्वा शतं च न हुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥ ७ ( खा ) ॥
- [ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६।१।६ )
- १२१६ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१।७ )
- १२१७ अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१।८ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १२१० ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( अया वीति परिस्त्रव ) इस रीतिसे इन्द्रके पीनेके लिए तू छनता जा । ( ते यः मदेष्वा ) तेरा यह रस संग्राहमें ( नव-नवतीः अवाहन् ) निग्यानवे शत्रुओंको नष्ट करता है ॥ १ ॥

[ १२११ ] ( सद्यः पुरः ) उसी समय शत्रुके नगरोंका नाश यह सोम करता है । ( इत्था ) इस प्रकार ( धिये दिवोदासाय ) यज्ञ करनेवाले दिवोदासके लिए ( शंबरं ) शम्बरासुरको ( अध त्वं तुर्वशं ) और उससे तुर्वशको ( यदुम् ) और यदुको ( अवाहन् ) इन्द्रने मारा ॥ २ ॥

[ १२१२ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( अश्ववित् ) घोड़े प्राप्त करनेवाला तू ( नः ) हमें ( गोमत् हिरण्यवत् अश्वं ) गाय और सोनेसे युक्त घोड़ेको और ( सहस्रिणीः इषः ) अनेक प्रकारके अन्नको ( परि क्षरा ) दे ॥ ३ ॥

[ १२१३ ] ( सोमः मृधः अपघ्नन् ) सोम शत्रुको मारकर ( अरावणः अप ) दान न देनेवाले दुष्टोंको दूर करके ( इन्द्रस्यः निष्कृतं गच्छन् ) इन्द्रके स्थानके पास जानेके लिए ( पवते ) छाना जाता है ॥ १ ॥

[ १२१४ ] हे ( पवमान इन्दो ) छाने जानेवाले सोम ! ( नः महः रायः आ भर ) हमें बहुतसा धन भरपूर दे । ( मृधः जहि ) शत्रुओंको मार और ( वीरवत् यशः रास्त्र ) पुत्रोंसे युक्त यश दे ॥ २ ॥

[ १२१५ ] हे सोम ! ( यत् पुनानः ) जब छाना जानेवाला तू ( मखस्यसे ) यज्ञ करनेवालोंको धन देनेकी इच्छा करता है, तब ( राधः दित्सन्तं त्वा ) धन देनेकी इच्छा करनेवाले तुझे ( शतं चन-हुतः ) सैंकड़ों शत्रु भी ( न आमिनन् ) रोक नहीं सकते ॥ ३ ॥

[ १२१६ ] हे सोम ! ( मानुषीः अपः हिन्वानः ) मनुष्योंको हितकारक जल देनेवाले तूने ( यया धारया सूर्यं अरोचयः ) जिस चमकनेवाली धारासे सूर्यको प्रकाशित किया, ( अया पवस्व ) उसी धारासे छनता जा ॥ १ ॥

[ १२१७ ] ( पवमानः ) शुद्ध होतवाला सोम ( मनावधि ) मनुष्यको इष्ट ( अन्तरिक्षेण यातवे ) अन्तरिक्षके मार्गसे जानेके लिए ( सूरः एतशं अयुक्त ) सूर्यके एतश नामक घोड़ेको उसके रथमें जोड़ता है ॥ २ ॥



१२१८ उत त्या हरितो रथे सरो अयुक्त यातवे । इन्द्रुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥ ८ ( का ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।६।९ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१२१९ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।  
यो मर्त्येषु निधुविर्ऋतावां तपुर्मूर्धा घृताक्षः पावकः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३।१ )

१२२० प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।  
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स ते अजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥ ( ऋ. १।३।२ )

१२२१ उद्यस्य ते नवजात वृष्णोऽग्रे चरन्त्यजरा इधानाः ।  
अच्छ द्यामरुषो भूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥ ९ ( टी ) ॥  
[ धा० १८ । उ० ३१ । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।३।३ )

१२२२ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९।७ )

[ १२१८ ] ( उत इन्द्रः ) और सोम ( इन्द्रः इति ब्रुवत् ) इन्द्र इन्द्र कहता हुआ ( त्या हरितः ) तेरे घोड़ोंको ( मरः रथे ) सूर्यके रथमें ( यातवे अयुक्त ) जानेके लिए जोड़ता है ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १२१९ ] हे देवो ! ( यः ) तुम ( यः भर्त्येषु निधुविः ) जो मानवोंमें रहता है, जो ( ऋतावा ) यज्ञकरनेवाला ( तपुर्मूर्धा ) तथा शत्रुओंको कष्ट देनेवाला तेज है ( घृताक्षः ) घी ही जिसका अन्न है तथा ( पावकः ) जो पवित्रता करनेवाला है, ऐसे ( अग्निभिः सजोषाः ) अनेक अग्निधियोंके साथ ( यजिष्ठं अग्निं देवं ) परम पूज्य अग्निको ( अध्वरे दूतं कृणुध्वं ) हिसारहित यज्ञमें दूत करो ॥ १ ॥

[ १२२० ] ( यवसे अविष्यन् ) घास खाते हुए ( प्रोथत् अश्वः न ) हिनहिनानेवाले घोड़ेके समान ( महः संवरणात् ) महान् वेगसे फलनेवाला दावानल ( यदा व्यस्थात् ) जब वृक्षके बीचमें पहुंचता है, तब ( आत् अस्य शोचिः ) इसकी ज्वालायें ( अनुवातः वाति ) वायुके अनुकूल होकर चलती हैं, ( अध ) और हे अग्ने ! ( ते वजनं कृष्णं अस्ति ) तेरा मार्ग काला है ॥ २ ॥

[ १२२१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नव-जातस्य वृष्णः ) नये उत्पन्न हुए हुए और वृष्टि करनेवाले ( यस्य ते ) जिस तेरी ( अजराः इधानाः उद्यरन्ति ) न नष्ट होनेवाली जलती हुई ज्वालायें ऊपर आती हैं, तब हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अरुषः भूमः दूतः ) प्रकाश करनेवाला धुआंरूपी दूतवाला तू ( द्यां अच्छ समेपि ) धूलोकमें जाता है, और वहां ( देवान् हि ईयसे ) देवोंको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ १२२२ ] ( महे वृत्राय हन्तवे ) महान् वृत्रको मारनेके लिए ( तं इन्द्रं वाजयामसि ) उस इन्द्रको हम बलवान् बनाते हैं । ( वृषा सः वृषभः भुवत् ) वह पहलेसे बलवान् होता हुआ भी और अधिक बलवान् होता है ॥ १ ॥



१२२३ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स हितः । द्यून्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।९।८ )

१२२४ गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ३ ॥ १० ( छे ) ॥

[ धा० १७ । उ० २ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।९।९ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

१२२५ अध्वर्यो अद्रिभिः सुतः सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।५।१ )

१२२६ तव त्ये इन्द्रो अन्धसो देवा मधोऽर्वाशत । पवमानस्य मरुतः ॥ ॥ ( ऋ. ९।५।२ )

१२२७ दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥ ११ ( खा ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।५।३ )

१२२८ धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।

हरिः सृजानो अत्यो न सत्त्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्व ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७।१ )

[ १२२३ ] ( सः इन्द्रः दामने कृतः ) वह इन्द्र दान देनेके लिए ही पैदा हुआ है ( स ओजिष्ठः बले हितः ) वह प्रभावशाली इन्द्र बल बढ़ानेके लिए और सोमको पीनेके लिए हुआ है ( द्यून्नीः श्लोकी स सोम्यः ) तेजस्वी प्रशंसित ऐसा वह इन्द्र सोम पीनेके योग्य है ॥ २ ॥

[ १२२४ ] ( गिरा सम्भृतः ) स्तुतिधों द्वारा प्रशंसित ( वज्रः न ) वज्रके समान ( सबलः अनपच्युतः ) बलवान् इसीलिए दूसरोंसे न दबाये जानेवाला ( उग्रः अ-स्तृतः ) उग्रवीर और अपराजित इन्द्र ( ववक्षे ) धन देनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १२२५ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यु ! ( अद्रिभिः सुतः सोमं ) पत्थरों द्वारा कूटकर निकाले गए सोमरसको ( पवित्रे आनय ) छलनीमें लाकर रख और ( इन्द्राय पातवे पुनाहि ) इन्द्रके पीनेके लिए छान ॥ १ ॥

[ १२२६ ] ( त्ये देवाः मरुतः ) वे देव और मरुत, हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( तव मधोः पवमानस्य अन्धसः ) तेरे मधुर और पवित्र अन्नरूपी रसको ( वि आशत ) खाते हैं ॥ २ ॥

[ १२२७ ] हे ऋत्विजो ( मधुमत्तमं दिवः पीयूषं ) बहुत मीठे दुलोकके अमृत ( उत्तमं सोमं ) इस उत्तम सोमको ( वज्रिणे इन्द्राय सुनोता ) वज्रधारी इन्द्रके लिए तैय्यार करो ॥ ३ ॥

[ १२२८ ] ( कृत्व्यः रसः ) कर्तव्य करनेवाला यह रस ( देवानां दक्षः ) देवोंका बल बढ़ानेवाला ( नृभिः अनु माद्यः ) ऋत्विजोंके द्वारा प्रशंसनीय ( धर्ता ) सबोंको धारण करनेवाला ( दिवः पवते ) अन्तरिक्षमें रखे छलनीसे छाना जाता है । ( हरिः ) यह हरे रंगवाला और ( सत्त्वभिः सृजानः ) बलवान् ऋत्विजोंके द्वारा छाना जानेवाला यह रस ( अत्यः न ) घोटके समान ( नदीषु ) पानीमें ( वृथा ) सरलतासे ही ( पाजांसि कृणुते ) अपने बलोंको प्रकट करता है ॥ १ ॥



- १२२९ शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्व३ः सिपासत्रथिरो गविष्टिषु ।  
 इन्द्रस्य शुष्ममौरयन्नपस्युभिरिन्दुहिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७६।२ )
- १२३० इन्द्रस्य सोम पवमान उर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्व विश ।  
 प्र नः पिन्व विद्युदभ्रव रोदसी धिया नो वाजा उप माहि शश्वतः ॥ ३ ॥ १२ ( चा ) ॥  
 [ धा० २७ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।७६।३ )
- १२३१ इन्द्रिन्द्र प्रागपागुदङ्गयन्वा ह्यसे नृभिः ।  
 सिमा पुरु नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४।१ )
- १२३२ यद्वा रुमे रुशमे इयावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।  
 कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥ १३ ( कि ) ॥  
 [ धा० ११ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।४।२ )
- १२३३ उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।  
 सञ्ज्ञाच्या मघवान्तसोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१ )

[ १२२९ ] यह सोम ! ( शूरः न ) शूरके समान ( गभस्त्योः आयुधा धत्ते ) हाथोंमें शस्त्र धारण करता है। ( स्वः सिपासन् ) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला ( रथिरो गविष्टिषु ) रथमें बैठनेवाले वीरकी गायोंकी इच्छा करनेवाला ( इन्द्रस्य शुष्मं मौरयन् ) इन्द्रका बल बढ़ाते हुए यह ( इन्दुः ) सोम ( अपस्युभिः मनीषिभिः ) यज्ञ करनेवाले विद्वान् ऋत्विजोंके द्वारा ( हिन्वानः अज्यते ) प्रेरित हुआ हुआ गायके दूधमें मिलाया जाता है ॥ २ ॥

[ १२३० ] हे ( सोम पवमान ) शूद्र होनेवाले सोम ! ( तविष्यमाणः ) बढ़ाया जानेवाला तू ( इन्द्रस्य जठरेषु ) इन्द्रके पेटमें ( उर्मिणा आ विश ) धार बंधकर जा । ( विद्युत् अभ्रा इव ) बिजली जिसप्रकार मेघोंकी बरसाती है, उसीप्रकार ( नः रोदसी प्र पिन्व ) हमारे लिए बल्लोक और भूलोकको फलयुक्त कर । ( धिया नः ) कर्मके द्वारा हमारे लिए ( शश्वतः वाजान् उप माहि ) शाश्वत अर्थात् कभी क्षीण न होनेवाले अन्न दे ॥ ३ ॥

[ १२३१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् ) यद्यपि तू ( प्राक्, अपाक्, उदक् वा न्यक् ) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचेकी विशामें ( नृभिः ह्यसे ) ऋत्विजोंके द्वारा सहायतार्थ बुलाया जाता है, तो भी ( सिमा ) हे श्रेष्ठ इन्द्र ! ( अनवे ) अनुराजाके लिए ( पुरु नृषूतोः असि ) तेरी बहुत स्तुति की गई है । हे ( प्रशर्ध ) शत्रुको हरानेवाले इन्द्र ! ( तुर्वशे ) तुर्वशके लिए भी उसीप्रकार तेरी स्तुति की गई है ॥ १ ॥

[ १२३२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यद् वा ) अथवा ( रुमे, रुशमे, इयावके, कृपे ) रुम, रुशम, इयावक और कृपके लिए ( सचा मादयसे ) एक साथ प्रसन्न किया जाता है । उसीप्रकार ( ब्रह्म-वाहसः ) स्तुति करनेवाले ( कण्वासः ) कण्व ( स्तोमेभिः ) स्तोत्रोंसे तुझे वशमें करनेकी इच्छा करते हैं । इसलिए ( इन्द्र ) हे इन्द्र ! ( आगहि ) आ ॥ २ ॥

[ १२३३ ] ( उभयं इदं वचः ) दोनों ही प्रकारके स्तुतिके वचन ( नः अर्वाक् ) हमारे सामने ( इन्द्रः शृणवत् ) इन्द्र सुने । ( मघवान् शविष्ठः ) वह धनवान् और बलवान् इन्द्र ( सञ्ज्ञाच्या धिया ) हमारी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर ( सोमपीतये आगमत् ) सोमपान करनेके लिए हमारे पास आवे ॥ १ ॥



१२३४ तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः

॥ २ ॥ १४ ( ची ) ॥

[ धा० १७। उ० १। स्व० ४ ] ( ऋ. ८।६।१२ )

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

[ ८ ]

१२३५ पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोहं धर्मेणां ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६३।२२ )

१२३६ पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । इन्द्रो समुद्रमा विश ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६३।२३ )

१२३७ अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनय ॥ ३ ॥ १५ ( लि ) ॥

[ धा० १४। उ० नागि। स्व० ३ ] ( ऋ. १।६३।२४ )

१२३८ अभी नो वाजसातमं रयिमर्षं शतस्पृहम् ।

इन्द्रो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम्

॥ १ ॥ ( ऋ. १।९८।१ )

१२३९ वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।

नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अधिगो

॥ २ ॥ ( ऋ. १।९८।२ )

[ १२३४ ] ( धिषणे ) ब्रूलोक और भूलोक ( स्वराजं वृषभं तं हि ) स्वयं प्रकाशवान् और बलवान् उस इन्द्रको ( ओजसा निष्टतक्षतुः ) अपने बलसे प्रकट करते हैं। ( उत ) और हे इन्द्र ! ( उपमानां प्रथमः ) उपमा देनेके योग्योंमें प्रथम तू ( निषीदसि ) अपने ज्ञानपर बैठता है। ( हि ते मनः सोमकामं ) क्योंकि तेरा मन सोमकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १२३५ ] हे सोम ! ( देवः पवस्व ) चमकनेवाला तू छनता जा। ( ते मदः आयुषक इन्द्रं गच्छतु ) तेरा आनन्दवायक रस इन्द्रके पास जावे। ( धर्मेणा वायुं आरोह ) अपनी शक्तिसे तू वायुको प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १२३६ ] हे ( पवमान इन्द्रो ) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू ( श्रवाय्यं रयिं नि तोशसे ) प्रशंसनीय धनके लिए शत्रुओंको पीडा देता है, ऐसा तू ( समुद्रं आविश ) कलशके पानीमें प्रवेश कर ॥ २ ॥

[ १२३७ ] हे सोम ! ( मत्सरः ) आनन्द देनेवाला तथा ( क्रतुवित् ) यज्ञ कर्मको जाननेवाला तू ( पवसे ) शुद्ध होता है। शुद्ध हुआ तू ( मृधः अपघ्नन् ) शत्रुओंको दूर करके ( अदेवयुं जनं नुदस्व ) नास्तिक मनुष्योंको दूर कर ॥ ३ ॥

[ १२३८ ] हे ( इन्द्रो ) तेजस्वी सोम ! ( नः ) हमें ( वाजसातमं ) बल बढानेवाले ( शतस्पृहं ) संकडों लोगोंके द्वारा प्रशंसित ( सहस्रभर्णसं ) हजारों मनुष्योंका भरण पोषण करनेवाले ( तुविद्युम्नं ) अति तेजस्वी ( विभासहं ) विशेष प्रकाशमान् ऐसे ( रयिं अभि अर्ष ) धन दे ॥ १ ॥

[ १२३९ ] हे ( वसो ) निवासक सोम ! ( पुरुस्पृहः वसोः ) अनेकों द्वारा प्रशंसित और सबको बसानेवाले ( अस्य ते राधसः ) ऐसे इस तेरे धनके पास ( नेदिष्ठतमाः स्याम ) हम रहनेवाले हों। ( अधि-गो ) गायके पाल रहनेवाले सोम ! ( ते इषः सुम्ने ) तेरे द्वारा दिए गए अन्नके आनन्दसे हम सुखी हों ॥ २ ॥

२३ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



१२४० परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।

धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः

॥ ३ ॥ १६ (ली) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९८।३ )

१२४१ पवस्व सोम महान्तसमुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।४ )

१२४२ शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।५ )

१२४३ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व

॥ ३ ॥ १७ (हि) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ९।१०९।६ )

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

[ ९ ]

१२४४ प्रेष्टं वा अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८४।१ )

१२४५ कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता । नि मर्त्येष्वग्नादधुः

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८४।२ )

१२४६ त्वं यविष्ठ दाशुषो नृः पाहि शृणुही गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥ १८ (यी) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।८४।३ )

[ १२४० ] ( गव्ययुः ) गायके-दूधकी इच्छा करनेवाला ( ऊर्ध्वः यः ) श्रेष्ठ यह सोम ( भ्राजा न ) तेजसे जिसप्रकार चमकना चाहिए उसप्रकार चमकता है और ( अध्वरे धारा याति ) अहिंसक यज्ञमें धारासे पहुँचता है । ( स्वानः स्यः इन्दुः ) छाना जातवाला वह सोम ( मदच्युतः अव्ये परि अक्षरत् ) आनन्द बढ़ानेके लिए बालोंकी छलनीमेंसे टपकता है ॥ ३ ॥

[ १२४१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( महान् समुद्रः ) महान् रससे युक्त ( पिता ) पालन करनेवाला तू ( देवानां विश्वा धाम ) देवोंके सब स्थान अपने रससे ( अभि पवस्व ) भर दे ॥ १ ॥

[ १२४२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( शुक्रः ) चमकनेवाला तू ( देवेभ्यः पवस्व ) देवोंके लिए छनता जा । ( दिवे पृथिव्यै ) छुलोकको, पृथ्वीलोकको तथा ( प्रजाभ्यः शं ) प्रजाओंको सुख मिले ॥ २ ॥

[ १२४३ ] हे सोम ! तू ( शुक्रः पीयूषः ) तेजस्वी और पीनेके योग्य ( दिवः धर्ता असि ) छुलोकका धारण करनेवाला है । ( वाजी ) बलवान् तू ( सत्ये ) यज्ञमें ( विधर्मन् पवस्व ) विविध कर्म करनेके समय छनता जा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १२४४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( प्रेष्टं अतिथिं ) प्रिय अतिथिरूप ( मित्रं इव प्रियं ) मित्रके समान प्रिय ( रथं न वेद्यं ) रथके समान धन प्राप्तिका हेतु ( वः स्तुषे ) तेरी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १२४५ ] ( देवासः ) सब देवोंने ( कविं इव प्रशंस्यं ) कविके समान प्रशंसनीय ( यं ) जिस अग्निको ( मर्त्येषु इति ) मनुष्योंमें ( द्विता ) गा-यत्य और आवहनीय इन दोनोंके रूपमें ( न्यादधुः ) स्थापित किया ॥ २ ॥

[ १२४६ ] हे ( यविष्ठ ) सदा तक्षण रहनेवाले इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( दाशुषः नृन् पाहि ) दान करनेवाले मनुष्योंका रक्षण कर ( गिरः शृणुहि ) स्तुति सुन । ( उत त्मना तोकं रक्षा ) और अपने प्रयत्नसे पुत्रका रक्षण कर ॥ ३ ॥



१२४७ एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥२॥ ( ऋ. ८।९८।४ )

१२४८ अभि हि सत्य सोमपा उभे वभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९८।५ )

१२४९ त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोवृधः पतिर्दिवः ॥३॥ १९ ( फे ) ॥  
[ धा० २० । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।९८।६ )

१२५० पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।  
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।११।४ )

१२५१ त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्विवो विलम् । त्वां देवा अविभ्युषस्तुज्यमानासः आविषुः ॥२॥  
( ऋ. १।११।५ )

१२५२ इन्द्रमीशानमोजसामि स्तोमैरनूषत ।  
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥ २० ( ही ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।११।८ )

॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

॥ इति पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ५-१ ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

[ १२४७ ] हे ( प्रिय ) हित करनेवाले, ( सत्राजित् ) सब शत्रुओंको जीतनेवाले तथा ( अ-गोह्य ) किसीके द्वारा न बचाये जानेवाले ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( गिरिः न ) पर्वतके समान ( विश्वतः पृथुः ) सब तरहसे बड़ा तू ( दिवः पतिः ) द्युलोकका स्वामी ( नः आगधि ) हमारे पास आ ॥ १ ॥

[ १२४८ ] ( सत्य सोमपाः इन्द्र ) हे सत्यके पालक और सोम पीनेवाले इन्द्र ! तू ( उभे रोदसी ) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको ( अभि वभूथ ) अपने प्रभावसे ढक देता है । ऐसा तू ( सुन्वतः वृधः ) सोमयाग करनेवालेको बढ़ानेवाला और ( दिवः पतिः असि ) द्युलोकका स्वामी है ॥ २ ॥

[ १२४९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं हि ) तू ( शश्वतीनां पुरां धर्ता ) शत्रुओंके बहुतसे नगरोंको तोड़नेवाला, ( दस्योः हन्ता ) शत्रुका नाश करनेवाला ( मनोवृधः ) यज्ञ करनेवाला, मनुष्योंके मनोंको बढ़ानेवाला और ( दिवः पतिः असि ) द्युलोकका स्वामी है ॥ ३ ॥

[ १२५० ] ( पुरां भिन्दुः ) शत्रुके नगरोंका नाश करनेवाला, ( युवा ) सदा तरुण, ( कविः अमितौजाः ) ज्ञानी और अपरिमित पराक्रमवाला, ( विश्वस्य कर्मणः धर्ता ) सब यज्ञ कर्मोंका पोषण करनेवाला, ( वज्री पुरुष्टुतः ) वज्रधारी और बहुतों द्वारा प्रशंसित ऐसा ( इन्द्रः अजायत ) इन्द्र प्रकट हुआ है ॥ १ ॥

[ १२५१ ] हे ( अद्विवः ) वज्रधारी इन्द्र ! ( त्वं ) तूने ( गोमतः वलस्य ) गायको चुराकर ले जानेवाले असुरकी ( विलं अपावः ) गुफाको फोडा, तब ( तुज्यमानासः देवाः ) हारे हुए देव ( अ-विभ्युषः ) न घबराते हुए ( त्वां आविषुः ) तुझसे आकर मिले ॥ २ ॥

[ १२५२ ] स्तुति करनेवाले ( ओजसा ईशानं इन्द्रं ) सामर्थ्यसे सबके स्वामी होनेवाले इन्द्रकी ( स्तोमैः अभ्यनूषत ) स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे । ( यस्य रातयः सहस्रं ) जिसके बान हजारों हैं ( उत वा ) अथवा ( भूयसीः सन्ति ) बहुत ज्यादा हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां नववां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥



## नवम अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्रके गौण इसप्रकार हैं—

- १ वृषाः [ १२२२ ]- बलवान् ।
- २ वृषभः [ १२२२ ]- सामर्थ्यवान् ।
- ३ ओजिष्ठः [ १२२३ ]- सामर्थ्यवान् ।
- ४ बले-हितः [ १२२३ ]- बलसे युक्त, बलोंसे हित करनेवाला ।
- ५ सवलः [ १२२४ ]- बलवान् सामर्थ्ययुक्त ।
- ६ उग्रः [ १२२४ ]- उग्रवीर ।
- ७ अस्तृतः [ १२२४ ]- पराजित न होनेवाला, न हारनेवाला ।
- ८ अनपच्युतः [ १२२४ ]- अन्य किसीसे न दबनेवाला ।
- ९ वज्रः न [ १२२४ ]- वज्रके समान कठिन, बलशाली ।
- १० वज्री [ १२५० ]- वज्रका उपयोग करनेवाला ।
- ११ प्रशर्य [ १२३१ ]- शत्रुको हरानेवाला ।
- १२ शविष्ठः [ १२३३ ]- सामर्थ्यवान् ।
- १३ स्वराद् [ १२३४ ]- तेजस्वी, स्वयं राज्य करनेवाला ।
- १४ सोम्यः [ १२२३ ]- उत्तम मनवाला ।
- १५ इलोकी [ १२२३ ]- जिसकी प्रशंसा होती है, प्रशंसनीय ।
- १६ उपमानां प्रथमः [ १२३४ ]- उपमा देनेके योग्योंमें सर्व प्रथम ।
- १७ प्रेयः [ १२४७ ]- सबको प्रिय ।
- १८ सत्राजित् [ १२४७ ]- अनेक शत्रुओंको एकदम जीतनेवाला ।
- १९ अगोष्ठ्यः [ १२४७ ]- जो छिपा नहीं रह सकता, अपने सामर्थ्यसे प्रसिद्ध होनेवाला ।
- २० विश्वतः पृथुः [ १२४८ ]- सब प्रकारसे महान् ।
- २१ दिवः पतिः [ १२४८ ]- दुलोकका स्वामी ।
- २२ दामने कृतः [ १२२३ ]- दान देनेके लिए प्रसिद्ध ।
- २३ पुराभिन्दुः [ १२५० ]- शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला ।
- २४ युवा [ १२५० ]- तरुण, चाहे कितनी भी उम्र लम्बी हो जाए फिर भी हमेशा तरुण रहनेवाला ।
- २५ कविः [ १२५० ]- जानी, दूरदर्शी ।
- २६ अमितौजाः [ १२५० ]- अपरिमित शक्तिसे युक्त ।
- २७ विश्वस्य कर्मणः धर्ता [ १२५० ]- सब श्रेष्ठ कर्मोंका करनेवाला ।

२८ पुरुषुतः [ १२५० ]- अनेक जिसकी स्तुति करते हैं ।

२९ ओजसा ईशानः [ १२५२ ]- अपने सामर्थ्यसे शासक बननेवाला ।

३० महै वृत्राय हन्तवे इन्द्रं वाजयामसि [ १२२२ ]- महान् वृत्रको मारनेके लिए उस इन्द्रके बलका हम वर्णन करते हैं ।

३१ हे इन्द्र ! प्राक्, अपाक्, उदक्, न्यक् वा नृभिः ह्यसे [ १२३१ ]- हे इन्द्र ! तुझे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणसे वीर नेता सहायताके लिए बुलाते हैं ।

३२ त्वं दाशुषः नृन् पाहि [ १२४६ ]- तू दानशील नेताको व उसके पुत्रपौत्रोंकी रक्षा कर ।

३३ त्मना तोकं रक्ष [ १२४६ ]- अपने पुत्रपौत्रोंकी रक्षा कर ।

३४ हे अद्रिवः ! त्वं गोमतः वलस्य बिलं अपावः [ १२५१ ]- हे इन्द्र ! तूने गायोंको चुराकर ले जानेवाले राक्षसकी गुफाको तोड़ा ।

३५ तुज्यमानासः देवाः अविभ्युषः त्वां आविशुः [ १२५१ ]- हारे हुए सब देव न डरते हुए तेरे आश्रयमें आ गए ।

३६ यस्य रातयः सहस्रं, उत वा भूयसीः सन्ति [ १२५२ ]- इन्द्रके दान हजारों अथवा उनसे भी अधिक हैं ।

३७ इन्द्रः उभे रोदसी अभि बभूथ [ १२४८ ]- इन्द्रने दोनों ही लोक अपने तेजसे भर दिए ।

### इन्द्रको सोम देना

यज्ञ करनेवाले इस इन्द्रको सोमरस निचोड़कर दिया करते थे । इस विषयक वर्णन इस अध्यायमें इसप्रकार है—

१ अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्रे आनय, इन्द्राय पातवे पुनाहि [ १२२५ ]- पत्थरोंसे कूटकर निचोड़े गए सोमरस छलनीके पास ला और इन्द्रके पीनेके लिए छानकर तैयार कर ।

२ मधुमत्तमं दिवः पीयूषं सोमं इन्द्राय सुनोत [ १२२७ ]- अत्यन्त मीठे दुलोकके ये अमृत अर्थात् सोमरस इन्द्रके लिए तैयार करो ।

३ तविथ्यमाणः इन्द्रस्य जठरेषु ऊर्मिणा आविश [ १२३० ]- बढ़ाया जानेवाला यह सोमरस इन्द्रके पेटमें लहरोंसे जावे । इन्द्रका पेट उस रससे अच्छी तरह भर जावे ।



४ ते मनः सोमकामं [ १२३४ ]- हे इन्द्र ! तेरा मन सोमरस पीनेकी इच्छा करता है।

५ ते मदः आयुषक् इन्द्रं गच्छतु [ १२३५ ]- हे सोम ! तेरा आनन्द बढ़ानेवाला रस इन्द्रके पास जावे।

६ सखायं आ विश [ ११८४ ]- हे सोम ! मित्ररूपी इन्द्रमें तू प्रविष्ट हो।

७ इन्द्राय जुष्टः मत्सरः पवमानः [ ११९४ ]- इन्द्रको दिया जानेवाला आनन्दवर्धक सोमरस शुद्ध किया जाता है।

८ सुताः सोमाः इन्द्राय धारया असृग्रं [ ११९६ ]- सोमरस इन्द्रको देनेके लिए धार बांधकर छाने जाते हैं।

९ इन्द्रस्य जठरं आ विश [ १२०९ ]- हे सोम ! इन्द्रके पेटमें भर जा।

१० इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन् पवते [ १२१३ ]- इन्द्रके स्थानपर पहुँचनेके लिए सोमरस शुद्ध किया जाता है।

इसप्रकार इन्द्रको सोमरस दिए जानेका वर्णन है।

### देवोंके लिए सोमरस

जिसप्रकार इन्द्रको सोमरस दिया जाता है, उसीप्रकार दूसरे देवोंको भी दिया जाता है।

१ महान् समुद्रः पिता देवानां विश्वा धाम अभि पवस्व [ १२४१ ]- महान् समुद्रके समान रससे भरा हुआ सोम, सभीके पालक देवोंके सब स्थानोंतक जाता है। सब देवोंको वह प्राप्त होता है।

२ शुक्रः देवेभ्यः पवस्व [ १२४२ ]- चमकनेवाला सोमरस देवोंके लिए छाना जाता है।

३ दिवे पृथिव्यै प्रजाभ्यः शं [ १२४२ ]- धूलोक, पृथ्वीलोक और प्रजाओंको सुख मिले, इसलिए हे सोम ! तू शुद्ध हो।

### धूलोकमें सोम

सोम स्वर्गमें अर्थात् हिमालयके ऊँचे शिखर पर पड़ा होता है—

१ शुक्रः पीयूषः दिवः धर्त्ता असि [ १२४३ ]- हे सोम ! तू तेजस्वी और अमृतके समान तथा धूलोकमें रहनेवाला है।

### सोमके गुण

१ विप्रः [ ११७५ ]- ज्ञानी।

२ कविः [ ११७५ ]- दूरदर्शी।

३ हर्यतः [ ११७५ ]- पूज्य।

४ ऋषिमनाः [ ११७६ ]- ऋषिके समान शुद्ध मनसे युक्त।

५ ऋषिकृत् [ ११७६ ]- ऋषि बनानेहारा।

६ स्वर्षाः [ ११७६ ]- सबका तत्व जाननेवाला।

७ सहस्रनीथः [ ११७६ ]- हजारों रास्तोंको जाननेवाला।

८ महिषः [ ११७६ ]- बल बढ़ानेवाला।

९ कवीनां पदवीः [ ११७६ ]- ज्ञानीकी पदवी जिसे प्राप्त हो गई है।

१० स्तुप् [ ११७६ ]- स्तुत्य।

११ विराट् [ ११७६ ]- विशेष तेजस्वी।

१२ द्येनः [ ११७६ ]- प्रशंसनीय गरुडके समान धूलोकमें रहनेहारा।

१३ शकुनः [ ११७६ ]- शक्ति बढ़ानेवाला।

१४ गोविन्दुः [ ११७६ ]- गाय प्राप्त करनेवाला।

१५ द्रप्सः [ ११७६ ]- रसरूप।

१६ नृचक्षाः [ ११८५ ]- मानवोंका निरीक्षण करनेवाला।

१७ स्वर्विद् [ ११८५ ]- स्वर्गमें रहनेवाला, स्वर्गको जाननेवाला।

१८ सोमाः इन्द्रस्य वीर्यं वर्धन्तः [ ११७८ ]- सोमरस इन्द्रका बल बढ़ाता है।

सोमरसके ये गुण हैं। इनमेंसे कुछ गुण इन्द्रके गुणके समान ही हैं। देव सोमरस पीते हैं, उससे उनका उत्साह बढ़ता है और इससे अनेक महत्त्वके कार्य वे करते हैं। यह देवोंका सामर्थ्य सोमरसके पीनेसे बढ़ता है, इसलिए ये गुण सोमके ही हैं, ऐसा वर्णन किया है।

### सोम यज्ञ स्थानमें बैठता है

यज्ञ करनेवाले हिमालयके शिखरपरसे सोम लाते हैं और सोमयाग करते हैं। उस समय सोमवल्लीको भी यज्ञमण्डपमें रखते हैं, इसलिए कहा है—

१ स्वर्दशः ऋतस्य योनौ सीदत [ ११९५ ]- स्वर्गमें रहनेवाले सोम यज्ञ स्थानमें आते हैं।

२ मदच्युतः सोमः सादने क्षेति, गौरी अधिष्ठितः [ ११९८ ]- आनन्द और उत्साह बढ़ानेवाला सोम, यज्ञ-शालामें रहता है। गान-सामगानोंके द्वारा वह शुद्ध होता है। उसे शुद्ध करते हुए सामका गायन शुरु होता है।

३ वाजी सत्ये विधर्मन् पवस्व [ १२४३ ]- बल बढ़ानेवाला सोम यज्ञशालामें शुद्ध होता है।

इसप्रकार सोमका यज्ञशालाके साथ सम्बन्ध है।



### सोम संगठन करनेवाला है

१ नित्य-स्तोत्रः वनस्पतिः मानुषा युजा हिन्वानः [ १२०१ ]- नित्य प्रशंसित होनेवाली सोमवल्ली मनुष्योंको संगठित करती है। मानवोंको यज्ञके कारण एकत्रित करती है।

### सोमरसका पानीमें मिलाना

सोमका रस निचोड़नेके बाद पानीमें मिलाया जाता है।

१ अत्यः न नदीषु वृथा पाजांसि कृणुते [ १२२८ ]-घोड़ेके समान यह सोम नदीमें अनायास ही अपने बलोंको प्रकट करता है। घोड़ा जिसप्रकार पानीमें अपना बल दिखाता है, उसीप्रकार सोम जलमें मिलकर उत्साह बढ़ानेकी अपनी शक्ति दिखाता है।

२ हे सोम ! समुद्रं आ विश [ १२३६ ]- हे सोम ! कलशमें रखे हुए पानीमें प्रवेश कर। पानीमें मिल।

इसप्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है।

### सोमके लिए सामगान

सोमरस छाननेके समय सामगान किया जाता है। इस विषयमें वर्णन इसप्रकार है—

१ हे अवस्यवः ! पवमानं विप्रं देववीतये सुष्वाणं अभि प्रगायत [ ११८८ ]- हे अपनी रक्षाकी इच्छा करनेवाले, याजको। शुद्ध होनेवाले, ज्ञानी, देवोंके पीनेके लिए जिसका रस निकाला गया है, ऐसे सोमको लक्ष्य करके वेदमंत्रों-सामों-का गान करो।

सोमरसके निकालने और छाने जाने तक सामवेदका गान यज्ञमण्डपमें होता रहता था। एक तरफ उद्गाता साम गान करते थे और दूसरी तरफ सोमरस छाना जाता था।

### सोमका छाना जाना

सोमका रस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाकर वह छलनीसे छाना जाता था। इस विषयमें वर्णन इसप्रकार है—

१ कविः पवित्रं अत्येति [ ११७५ ]- ज्ञानी सोम छलनीसे छाना जाता है।

२ त्वा दशक्षिपः सृजन्ति [ ११८१ ]- हे सोम ! तुझे दस अंगुलियां शुद्ध करती हैं।

३ सहस्रधारः अत्यविः पुनानः सोमः [ ११८७ ]- हजारों धाराओंसे भेड़के बालोंकी छलनीसे सोम छाना जाता है।

४ होतृभिः अव्यं चारं वि अति असुप्रं [ ११९१ ]- ऋत्विजोंके द्वारा सोमरस भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

५ सुकतुः कविः सोमः दिवः नाभा अव्या चारे महीयते [ ११९९ ]- उत्तम यज्ञ करनेवाला ज्ञानी सोम स्वर्गके नाभिस्थान अर्थात् ऊपरके कलशसे बालोंकी छलनी पर शोभित होता है अर्थात् छाना जाता है।

६ सोमः पवित्रे अन्तः आहितः [ १२०० ]- सोमरस छलनी पर रखा जाता है।

७ इन्दुः मधुश्च्युतं कोशं जिन्वन् समुद्रस्य अधि विष्टपि वाचं प्रेष्यति [ १२०१ ]- सोमरस रखनेके वर्तनमें गिरता है, तब जलके कलशमें वह शब्द करता हुआ गिरता है।

८ अद्रिभिः प्रियं हरिं मधुश्च्युतं पवमानं अव्याः चारैः परि हिन्वति [ १२०७ ]- पत्थरोंसे कूटकर निचोड़े गए प्रिय और हरे रंगके मीठे सोम रसको भेड़के बालोंकी छलनीसे छानते हैं।

९ पवित्रं धारया आ पवस्व [ १२०८ ]- छलनीसे धार बांधकर छनता जा।

१० स्वानः इन्दुः अव्ये परि अक्षरत् [ १२४० ]- निकाला गया सोमरस भेड़के बालोंकी छलनीसे छनता जाता है।

### सोमरसको गायके दूधमें मिलाना

सोमरस निकालनेके बाद उसे पानीमें मिलाकर छानते हैं। बादमें उसमें गायका दूध मिलाते हैं—

१ मदिन्तमः अकतुभिः गोभिः अजानः पवस्व [ १२०९ ]- हे आनन्दवर्धक सोम ! तेजस्वी गायके दूधके साथ मिलकर शुद्ध हो।

२ गव्ययुः ऊर्ध्वः यः भ्राजा न अध्वरे धारा याति [ १२४० ]- गायके दूधसे मिलाया जानेवाला, श्रेष्ठ यह सोम तेजसे चमकता है और यज्ञमें धारासे छनता है।

३ मेष्ट्यः अति सृजानं त्वा देवेभ्यः मदाय गोभिः सं वासयामसि [ ११८२ ]- हे सोम ! भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जानेके बाद देवोंको आनन्द देनेके लिए तुझे गायके दूधमें हम मिलाते हैं। प्रथम वह छाना जाता है, उसके बाद वह देवोंको अच्छा लगे इसलिए उसमें गायका दूध मिलाते हैं।

४ पुनानः कलशेषु आ, अरुषः हरिः गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत [ ११८३ ]- सोमरसको छानकर



कलशमें भरनेके बाद वह हरे रंगका चमकनेवाला सोम गायके दूधके वस्त्रोंको पहनता है। गायके दूधमें मिलाया जाता है।

इसप्रकार सोमरसको गायके दूधमें मिलानेका वर्णन है। गायके वस्त्रोंको सोम पहनता है यह आलंकारिक वर्णन है। सोममें गायके दूधको मिलानेका मतलब ही गायका वस्त्र पहनता है। “गायके साथ मिलता है” यह भाव भी कई मंत्रोंमें आया है, उसका भी अर्थ गायके दूधमें मिलाना है। “अंशके लिए पूर्णका उपयोग “वैदिक अलंकारमें कई जगह दिखाई पड़ता है। “दूध” अंश है और “गाय” पूर्ण है इसलिए दूधके लिए गायका योग किया है। यह धेवकी शैली है।

### सोमका शब्द

सोमरस छानकर कलशमें भरा जाता है, तब उस कलशमें भरनेका उसका शब्द होता है।

१ सिन्धोः स्वनः इव ते शुष्मासः उदीरते [१२०५] - जिसप्रकार नदी अथवा समुद्रकी लहरोंका शब्द होता है उसीप्रकार सोमका शब्द सुना जाता है। सोमको कलशमें डालते समय उसका शब्द होता है।

२ वाणस्य पविं चोदय [१२०५] - वाण नामक बाजेका जैसा शब्द होता है वैसा शब्द कर।

यह शब्द कलशमें डालते समय द्रव पदार्थोंका जैसा होता है, वैसा होता है।

### सोम अन्न देता है

सोमरस एक प्रकारका पौष्टिक और बल बढ़ानेवाला अन्न है।

१ सोम ! स्वर्विदं त्वां, वयं प्रजां इषं भक्षीमहि [११८५] - हे सोम ! स्वर्गको जाननेवाले तुझे प्राप्त करके तथा सन्तति व अन्न प्राप्त करके हम आनन्दसे रहें।

२ हे इन्द्रो ! वाजसातये बृहतीः इषः पवस्व [११९०] - हे सोम ! हम अन्न दान करें इसलिए बहुत सारा अन्न हमें दे।

३ नः गोमत् हिरण्यवत् अश्ववित् सहस्रिणीः इषः परिक्षर [१२१२] - हे सोम ! हमें गाय, सोना, घोड़ा और हजारों प्रकारका अन्न दे।

४ धिया नः शश्वतः वाजान् उपमाहि [१२३०] - कर्म करके हमें हमेशा रहनेवाले बलवर्धक अन्न दे।

५ हे अध्रिगो ! ते इषः सुप्ते [१२३१] - हे गायको आगे करनेवाले सोम ! तेरे अन्न मुख बढ़ानेवाले हैं। गायको आगे करनेवाला सोम अर्थात् गायका दूध जिसमें मिलाया जाता है वह सोम।

सोमका रस दूधमें मिलनेसे वह एक उत्तम प्रकारका अन्न होता है।

### सोम बल बढ़ाता है

सोमरसको छानकर उसमें दूध मिलानेसे वह पुष्टिकारक अन्न होता है—

१ सहस्र-पाजसः सोमाः पवन्ते [११८९] - हजारों प्रकारकी शक्ति बढ़ानेवाले सोमरस छाने जाते हैं।

२ द्युमत् सुवीर्यं पवस्व [११९०] - तेजस्वी उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य हमें दे।

सोमरसरूपी जो अन्न है उसमें ऐसा बिलक्षण सामर्थ्य है इसमें शंका नहीं।

### सोम धन और उत्तम वीर्य देता है

१ ते स्वानाः देवासः इन्द्रवः नः सहस्रिणं रयिं सुवीर्यं आ पवन्ताम् [११९२] - वे निचोड़े गए दिव्य सोम हमें हजारों प्रकारके उत्तम वीर्य और धन दें।

२ हे पवमान ! सहस्रवर्चसं स्वाभुवं रयिं अस्मे धारय [१२०३] - हे शुद्ध होनेवाले सोम ! हजारों तेजोंसे युक्त ऐसे अपने स्वयंके घर हमें दे।

३ हे इन्द्रो ! नः महः रायः आभर, वीरवत् यशः रास्व [१२१४] - हे सोम ! हमें बड़े बड़े धन दे और पुत्र-पौत्रोंसे युक्त यश दे।

४ मखस्यसे राधः दित्सन्तं त्वां शतं च न हुतः नः आमिनन् [१२१५] - यज्ञ करनेवालोंको तू जब धन देनेकी इच्छा करता है, तब सैकड़ों कुटिल शत्रु भी तेरा प्रति-बन्ध नहीं कर सकते।

५ हे इन्द्रो ! नः वाजसातमं शतस्पृहं, सहस्र-भर्णसं तुविद्युसं विभासहं रयिं अभि अर्ष [१२३८] - हे सोम ! हमें बल देनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित, हजारोंका भरणपोषण करनेवाले तेजस्वी, विशेष दीप्तिवाले धन दे।

६ पुरुस्पृहः वसोः ते राधसः नेदिष्ठतमाः स्याम [१२३९] - बहुत सारे लोग तेरे धनकी प्रशंसा करते हैं अतः उस धनके पास हम पहुँचें।



## शत्रुको दूर कर

१ विश्वाः द्विषः अप जहि [ ११८४-११९४ ]- सब शत्रुओंको हरा ।

२ पृत्सु नः सहः धाः [ ११८६ ]- युद्धमें अपने शत्रुओंको जीतनेका सामर्थ्य हममें बढ़ा ।

३ पवमान ! अरावणः अपघ्नन्तः [ ११९४ ]- हे सोमरस ! तू दान न देनेवाले कजूसोंको दूर करनेवाला है ।

४ ते यः मदेषु नवनवतीः अवाहन् [ १२१० ]- तेरा यह रस संग्राममें ९९ शत्रुओंको हराता है ।

५ सद्यः पुरः [ १२११ ]- उसी समय शत्रुके नगरोंका यह नाश करता है ।

६ दिवोदासाय शम्बरं तुर्वशं यदुं अवाहन् [ १२११ ]- दिवोदासके कल्याण करनेके लिए शम्बर, तुर्वश और यदु-ओंको इन्द्रने मारा ।

७ सोमः मृधः अपघ्नन्, अरावणः अप [ १२१३ ]- सोम शत्रुओंको मारता है और दान न देनेवालोंको भी दूर करता है ।

८ मृधः जाहि [ १२१४ ]- शत्रुओंको हरा ।

९ शूरः न गभस्त्योः आयुधा धत्ते [ १२२९ ]- शूरके समान यह सोम हाथोंमें शस्त्रोंको धारण करता है ।

१० मत्सरः क्रतुवित् मृधः अपघ्नन् [ १२३७ ]- यह आनन्द देनेवाला सोम कर्म करनेके सब ज्ञानको जानता है और शत्रुओंको मारता है ।

११ हे इन्द्र ! त्वं शाश्वतीनां पुरां धर्त्ता, दस्योः हन्ता असि [ १२४९ ]- हे इन्द्र ! तू शत्रुओंकी शाश्वत नगरियोंका और दुष्टोंका नाश करनेवाला है ।

## सुभाषित

१ जज्ञानं हर्यतं शिशुं मृजन्ति [ ११७५ ]- अभी अभी जन्मे हुए उस पूज्य बालकको शुद्ध करते हैं, साफ करते हैं ।

२ गणेन विप्रं शुम्भन्ति [ ११७५ ]- सब समूहमें मिलकर ज्ञानकी पूजा करते हैं । सत्कार करते हैं ।

३ कविः गोभिः पवित्रं अत्येति [ ११७५ ]- कवि भाषणके द्वारा पवित्रताके पास पहुँच गया है ।

४ ऋषिमना ऋषिकृत्, सहस्रनीथः, कवीनां पदवीः महिषः तृतीयं धाम सिषासन् विराजं अनु विराजति [ ११७६ ]- ऋषिके समान जिसका पवित्र मन है, जो ऋषियोंका निर्माण करता है, जो अनेक मार्गोंसे उत्तम कार्य करता है, जो ज्ञानीकी पदवीको प्राप्त हुआ है, ऐसा जो महान् और शक्तिमान् होनेके कारण सर्वोच्च तृतीय स्थानमें रहता है वह विशेष तेजस्वी होनेके समान विराजमान् होता है ।

५ चमूपद् शकुनः गोविन्दुः महिषः तुरीयं धाम विवर्जित [ ११७७ ]- समूहमें सम्मानपूर्वक रहनेवाला, गाय पालनेवाला, चतुर्थ स्थानमें अर्थात् सर्वोत्तम स्थानमें विराजता है ।

६ एते अस्य वीर्यं वर्धन्तः [ ११७८ ]- ये वीर इसका पराक्रम बढ़ाते हैं ।

७ पुनानासः चमूपदः ते नः सुवीर्यं धत्त [ ११७९ ]- वे पवित्र होनेवाले समूहमें सम्मानसे रहनेवाले तुम हमें उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य दो ।

८ पुनानः राधसे हार्दि चोदय, देवानां योनि आसदं [ ११८० ]- शुद्ध होकर सिद्धि प्राप्त करनेके लिए लोगोंके हृदयमें शुद्ध प्रेरणा कर । देवोंके स्थानमें मैं बैठा हुआ हूँ ।

९ विप्राः त्वा अनु अमादिषुः [ ११८१ ]- ज्ञानी तुम्हें आनन्द देते हैं ।

१० विश्वाः द्विषः अप जहि [ ११८४ ]- सब द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पराजित कर ।

११ सखायं आ विश [ ११८४ ]- मित्रके पास बैठ ।

१२ नृचक्षसं स्वर्विदं त्वां वयं प्रजां इषं भक्षीमहि [ ११८५ ]- मनुष्योंके निरीक्षण करनेवाले तुझ आत्मज्ञानीको प्राप्त करके सुसन्तान और अन्न प्राप्त करके आनन्दसे रहें ।

१३ पृथिव्याः अधि शुसं [ ११८६ ]- पृथिवी पर तेजस्वी अन्न उत्पन्न कर ।

१४ पृत्सु नः सहः धाः [ ११८६ ]- संग्राममें उपयोगी हों ऐसे शत्रुको हरानेवाले सामर्थ्य हमें दे ।

१५ अवस्यवः ! पवमानं विप्रं देववीतये सुष्वाणं अभि प्रगायत [ ११९९ ]- अपनी रक्षाकी इच्छा करनेवालो ! शुद्ध, ज्ञानी, देवोंके पीनेके लिए निचोड़े गए सोम-रसको लक्ष्य करके स्तोत्रोंका गान करो ।

१६ द्युमत् सुवीर्यं पवस्व [ ११९० ]- तेजस्वी उत्तम सामर्थ्य हमें दे ।



१७ नः सहस्रिणं रथि सुधीर्यं पवन्ताम् [११९२]  
- हमें हजारों प्रकारके धन और उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य हो ।

१८ पवमानः कनिकदत् विश्वाः द्विषः अप जहि [११९४]- तू शुद्ध होते हुए तथा शब्द करते हुए सब शत्रुओंको बुर कर ।

१९ अरावणः अपघ्नन्तः स्वर्द्धशः ऋतस्य योनौ सीदत [११९५]- अनुवार शत्रुओंको मार कर, अपने तेजसे युक्त होकर यज्ञके स्थान पर बैठो ।

२० सहस्रवर्चसं स्वाभुवं रथि अस्मे रास्व [१२०३]- हजारों प्रकारके तेजसे युक्त घर और धन हमें दे ।

२१ कविः विप्रः दिवः प्रिया अभि हिन्वे [१२०४]  
- ज्ञानी, बुद्धिमान् छुलोकसे प्रिय स्थानकी ओर प्रेरणा करता है ।

२२ ते मर्देषु नव-नवतीः अवाहन् [१२१०]- तेरा उत्साह युद्धमें निग्यानवे शत्रुओंको मारता है ।

२३ सद्यः पुरः [ अवाहन् ] [१२११]- उसी समय शत्रुओंके नगरोंको इसने तोड़ा ।

२४ नः गोमत् हिरण्यवत् अश्ववित् सहस्रिणीः हृषः परिक्षर [१२१२]- हमें गाय, सोना और घोड़ोंसे युक्त हजारों प्रकारके अश्व दे ।

२५ सोमः मृधः अपघ्नन् अरावणः अप [१२१३]  
हे सोम ! हिंसक और दान न देनेवाले शत्रुओंका नाश कर ।

२६ नः महः रायः आ भर, मृधः जहि, वीरवत् यशः रास्व [१२१४]- हमें बहुत सारा धन भरपूर दे । शत्रुओंको मार और पुत्रोंके साथ मिलनेवाले यश और अश्व दे ।

२७ राधः दित्सन्तं त्वा शतं च न हुतः न आमि-  
नन् [१२१५]- धन देनेकी इच्छावाले तुझे सैकड़ों शत्रु भी धन देनेसे नहीं रोक सकते ।

२८ सः वृषा वृषभः भुवत् [१२२२]- वह बलवान् और अधिक बलवान् हो गया है ।

२९ स दामने कृतः [१२२३]- वह देनेके लिए ही उत्पन्न हुआ है ।

३० स ओजिष्ठः बले हितः [१२२३]- वह बल-  
शाली वीर बलके कार्योंमें ही स्थापित किया गया है ।

३१ गिरा सम्भृतः सबलः अनपच्युतः उग्रः  
अस्तुतः ववक्षे [१२२४]- वाणीसे प्रशंसित, बलवान्

२४ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

होनेके कारण अपने कर्तव्यसे विमुख न होनेवाला, उग्रवीर और कभी न हारनेवाला ऐसा वह इन्द्र धन देनेकी इच्छा करता है ।

३२ शूरः नः गभस्त्योः आयुधं धत्ते [१२२९]  
शूरके समान वह हाथोंमें शस्त्र धारण करता है ।

३३ प्राक्, अपाक्, उदक् वा न्यक् नृभिः हूयसे [१२३१]- पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशामें लोग तुझे सहायताके लिए बुलाते हैं ।

३४ उपमानां प्रथमः निषीदसि [१२३४]- उपमा देने योग्य मनुष्योंमें सबसे मुख्य होकर तू बैठता है ।

३५ श्रवाय्यं रथि नितोशसे [१२३६]- प्रशंसनीय धनके लिए तू शत्रुओंको पीडा देता है ।

३६ पुरुस्पृहस्य वसोः राधसः नेदिष्ठतमाः स्याम [१२३९]- बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य, सिद्धि देनेवाले धनके बहुत ही पास रहनेवाले हम होंगे ।

३७ प्रजाभ्यः शं [१२४२]- प्रजाओंका कल्याण हो ।

३८ शुक्रः वाजी सत्ये विधर्मन् [१२४३]- तेजस्वी, बलवान् और सत्यभागसे अनेक काम करनेवाला तू है ।

३९ त्वं दाशुषे नृन् पाहि [१२४६]- तू दान देने-  
वाले मनुष्यकी रक्षा कर ।

४० त्मना लोकं रक्ष [१२४६]- अपने प्रयत्नसे अपनी सन्तानोंकी रक्षा कर ।

४१ सत्राजित् अगोह्यः विश्वतः पृथुः [१२४७]-  
सब शत्रुओंको जीतनेवाला, किसीके आगे न बबनेवाला, सबसे बड़ा वीर तू है ।

४२ शश्वतीनां पुरां धर्ता, दस्योः हन्ता, मनोः  
वृधः असि [१२४९]- तू शत्रुओंकी शाश्वत नगरियोंको तोड़नेवाला, शत्रुकी मारनेवाला और मनको बलवान् करने-  
वाला है ।

४३ पुरां भिन्दुः युवा कविः अमितौजाः विश्वस्य  
कर्मणः धर्ता वज्री पुरुषदुतः अजायत [१२५०]-  
शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला तरुण, ज्ञानी, अपरिमित शक्ति-  
शाली, सब कर्मोंको धारण करनेवाला, वज्रधारी और  
बहुतोंके द्वारा स्तुति करनेके योग्य तू उत्पन्न हुआ है ।

४४ त्वं गोमतः बलस्य विलं अपावः [१२५१]-  
तूने गायोंको चुरानेवाले बल राक्षसकी गुफाको फोड़ा ।

४५ तुज्यमानासः देवाः अविभ्युषः त्वां आविषुः



[ १२५१ ]- हारे हुए देवोंने फिर न घबराते हुए तेरा ही आसरा लिया ।

४६ यस्य रातयः सहस्रं, उत वा भूयसीः सन्ति, तं ओजसा ईशानं इन्द्रं स्तोमैः अभ्यनूषत [ १२५२ ]- जिसके दान हजारों अथवा उससे भी अधिक हैं, उस सामर्थ्यसे युक्त इन्द्रकी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ।

## उपमा

१ जज्ञानं शिशुं न [ ११७५ ]- नये-नये जन्मे हुए बच्चेको जिसप्रकार साफ रखते हैं, उसीप्रकार ( हर्यतं मरुतः मृजन्ति ) पूज्य सोमको मरुत् साफ करते हैं ।

२ वाजसातये हियाणाः आशवः न [ ११९१ ]- युद्धके लिए तैय्यार हुए हुए बंचल घोड़ेके समान ( हेतुभिः अव्यं वारं अति असृग्रं ) ऋत्विजोंके द्वारा सोमरस छलनीसे छाना जाता है ।

३ मातरः वत्सं न [ ११९३ ]- गायें जिसप्रकार अपने बछड़ेके पास जाती हैं, उसीप्रकार ( इन्द्रवः अभि अर्षन्ति ) सोमरस कलशमें जाते हैं ।

४ धेनवः गावः वत्सं न [ ११९७ ]- बुधारे गायें अपने बछड़ेके पास जिसप्रकार जाती हैं, उसीप्रकार ( विप्राः इन्द्रं अभि अनूषत ) ऋत्विज इन्द्रके पास जाते हैं ।

५ मदच्युत् सोमः सादने क्षेति [ ११९८ ]- आनंद देनेवाला सोम जिसप्रकार यज्ञशालामें रहता है, उसीप्रकार ( सिन्धोः ऊर्मा विपश्चित् ) नदीके पानीमें सोम रहता है, और उसीप्रकार ( गौरी अधिश्रितः ) गानोंके बीचमें सोम शुद्ध होता है ।

६ सुक्रतुः कविः विचक्षणः [ ११९९ ]- उत्तम यज्ञ करनेवाला जिसप्रकार ज्ञानी और महान् विद्वान् होता है, उसीप्रकार ( सोमः दिवः नाभा ) सोम धुलोकमें ऊंचे स्थानपर रहता है ।

७ परावति कविः विप्रः [ १२०४ ]- जैसे श्रेष्ठ स्थानमें कवि और ज्ञानी रहता है, उसीप्रकार ( धारया दिवः प्रिया अभि हिन्वे ) धारसे युक्त होकर धुलोकमें प्रिय स्थानके पास सोम रहता है ।

८ सिन्धोः ऊर्मैः स्वनः इव [ १२०५ ]- समुद्रकी लहरोंके शब्दके समान ( ते शुष्मासः उदीरते ) तेरी-सोमरसकी-तीव्रताके शब्द सुनाई देते हैं ।

९ प्रोथत् अश्वः न [ १२२० ]- हिनहिनानेवाले घोड़ेके समान ( महः संवरणात् यदा व्यस्थात् ) महान् वेगसे जंगलकी अग्नि फैलती है ।

१० वज्रः न [ १२२४ ]- वज्रके समान ( सबलः अनपच्युतः ) बलवान् और न बबनेवाला इन्द्र है ।

११ अत्यः न [ १२२८ ]- घोड़ेके समान ( नदीषु वृथा पाजांसि कृणुते ) नदीके पानीमें सोम अनायास ही अपने बल दिखाता है । सोम पानीमें मिलाया जाता है ।

१२ शूरः न [ १२२९ ]- शूरके समान ( गभस्तयोः आयुधा घत्ते ) सोम हाथोंमें शस्त्र धारण करता है ।

१३ विद्युत् अग्रा इव [ १२३० ]- बिजली जैसे बादलोंसे पानी बरसती है, उसीप्रकार ( रोदसी प्रपिन्वे ) धुलोक और भूलोक फल देते हैं ।

१४ भ्राजा न [ १२४० ]- तेजसे जैसे कोई चमकता है, वैसे ही सोम ( अध्वरे धारा याति ) यज्ञमें अपनी धारासे जाता है । वहां जाकर चमकता है ।

१५ प्रियं मित्रं इव [ १२४४ ]- प्रिय मित्रके समान ( प्रेष्टं अतिथिं स्तुषे ) सर्व प्रिय अग्निकी स्तुति करता हूँ ।

१६ रथं न वेद्यं [ १२४४ ]- रथके समान धन प्राप्त करानेवाले अथितिकी मैं स्तुति करता हूँ ।

१७ कवि इव प्रशस्यं [ १२४५ ]- कविके समान प्रशंसनीय ।

१८ गिरिः न [ १२४७ ]- पर्वतके समान ( विश्वतः पृथुः ) चारों ओरसे महान् ऐसा ( दिवः पातिः ) धुलोकका शासक इन्द्र है ।





## नवमाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                   | देवता       | छन्दः      |
|-------------|--------------|------------------------|-------------|------------|
| ( १ )       |              |                        |             |            |
| ११७५        | ९।९६।१७      | प्रतर्दनो देवोदासिः    | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| ११७६        | ९।९६।१८      | प्रतर्दनो देवोदासिः    | "           | "          |
| ११७७        | ९।९६।१९      | प्रतर्दनो देवोदासिः    | "           | "          |
| ११७८        | ९।८।१        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | गायत्री    |
| ११७९        | ९।८।२        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११८०        | ९।८।३        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११८१        | ९।८।४        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११८२        | ९।८।५        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११८३        | ९।८।६        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११८४        | ९।८।७        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११८५        | ९।८।८        | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ( २ )       |              |                        |             |            |
| ११८७        | ९।१३।१       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११८८        | ९।१३।२       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११८९        | ९।१३।३       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९०        | ९।१३।४       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९१        | ९।१३।५       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९२        | ९।१३।५       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९३        | ९।१३।७       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९४        | ९।१३।८       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९५        | ९।१३।९       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ( ३ )       |              |                        |             |            |
| ११९६        | ९।१२।१       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९७        | ९।१२।२       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९८        | ९।१२।३       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| ११९९        | ९।१२।४       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| १२००        | ९।१२।५       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| १२०१        | ९।१२।६       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| १२०२        | ९।१२।७       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| १२०३        | ९।१२।८       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |
| १२०४        | ९।१२।८       | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "          |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः            | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|-----------------|-------------|---------|
|             |              | ( ४ )           |             |         |
| १९०५        | ९।५०।१       | उच्चथ्य आंगिरसः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १९०६        | ९।५०।२       | उच्चथ्य आंगिरसः | "           | "       |
| १९०७        | ९।५०।३       | उच्चथ्य आंगिरसः | "           | "       |
| १९०८        | ९।५०।४       | उच्चथ्य आंगिरसः | "           | "       |
| १९०९        | ९।५०।५       | उच्चथ्य आंगिरसः | "           | "       |

|      |        |                   |   |   |
|------|--------|-------------------|---|---|
|      |        | ( ५ )             |   |   |
| १९१० | ९।६१।१ | अमहीयुरांगिरसः    | " | " |
| १९११ | ९।६१।२ | अमहीयुरांगिरसः    | " | " |
| १९१२ | ९।६१।३ | अमहीयुरांगिरसः    | " | " |
| १९१३ | ९।६१।४ | अमहीयुरांगिरसः    | " | " |
| १९१४ | ९।६१।५ | अमहीयुरांगिरसः    | " | " |
| १९१५ | ९।६१।६ | अमहीयुरांगिरसः    | " | " |
| १९१६ | ९।६१।७ | अमहीयुरांगिरसः    | " | " |
| १९१७ | ९।६३।७ | निध्रुविः काश्यपः | " | " |
| १९१८ | ९।६३।८ | निध्रुविः काश्यपः | " | " |
| १९१९ | ९।६३।९ | निध्रुविः काश्यपः | " | " |

|      |        |                      |         |            |
|------|--------|----------------------|---------|------------|
|      |        | ( ६ )                |         |            |
| १९२० | ७।३।१  | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | अग्निः  | श्रिष्टुप् |
| १९२१ | ७।३।२  | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | "          |
| १९२२ | ७।३।३  | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | "          |
| १९२३ | ८।९३।७ | सुकक्ष आंगिरसः       | इन्द्रः | गायत्री    |
| १९२४ | ८।९३।८ | सुकक्ष आंगिरसः       | "       | "          |
| १९२५ | ८।९३।९ | सुकक्ष आंगिरसः       | "       | "          |

|      |        |                  |             |   |
|------|--------|------------------|-------------|---|
|      |        | ( ७ )            |             |   |
| १९२६ | ९।५१।१ | उच्चथ्य आंगिरसः  | पवमानः सोमः | "   |
| १९२७ | ९।५१।२ | उच्चथ्य आंगिरसः  | "           | "   |
| १९२८ | ९।५१।३ | उच्चथ्य आंगिरसः  | "           | "   |
| १९२९ | ९।७६।१ | कविभर्गवः        | "           | जगती  |
| १९३० | ९।७६।२ | कविभर्गवः        | "           | "   |
| १९३१ | ९।७६।३ | कविभर्गवः        | "           | "   |
| १९३२ | ८।४।१  | देवातिथिः काण्वः | इन्द्रः     | प्रगाथः = ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| १९३३ | ८।४।२  | देवातिथिः काण्वः | "           | "   |
| १९३४ | ८।६१।१ | भर्गः प्रागाथः   | "           | "   |
| १९३५ | ८।६१।२ | भर्गः प्रागाथः   | "           | "   |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                    | देवता       | छन्दः          |
|-------------|--------------|---|-------------|----------------|
| ( ८ )       |              |   |             |                |
| १२३५        | ९।६३।२२      | निधुविः काश्यपः                         | पवमानः सोमः | गायत्री        |
| १२३६        | ९।६३।२३      | निधुविः काश्यपः                         | "           | "              |
| १२३७        | ९।६३।२४      | निधुविः काश्यपः                         | "           | "              |
| १२३८        | ९।९८।१       | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | "           | अनुष्टुप्      |
| १२३९        | ९।९८।५       | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | "           | "              |
| १२४०        | ९।९८।३       | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | "           | "              |
| १२४१        | ९।१०९।४      | अग्नये धिष्ण्या ऐश्वराः                 | "           | द्विपदा विराट् |
| १२४२        | ९।१०९।५      | अग्नये धिष्ण्या ऐश्वराः                 | "           | "              |
| १२४३        | ९।१०९।६      | अग्नये धिष्ण्या ऐश्वराः                 | "           | "              |

( ९ )

|      |        |                   |         |           |
|------|--------|-------------------|---------|-----------|
| १२४४ | ८।८४।१ | उशना काव्यः       | अग्निः  | गायत्री   |
| १२५५ | ८।८४।२ | उशना काव्यः       | "       | "         |
| १२४६ | ८।८४।३ | उशना काव्यः       | "       | "         |
| १२४७ | ८।९८।४ | तृमेध आंगिरसः     | इन्द्रः | उष्णिक्   |
| १२४८ | ८।९८।५ | तृमेध आंगिरसः     | "       | "         |
| १२४९ | ८।९८।६ | तृमेध आंगिरसः     | "       | "         |
| १२५० | १।११।४ | जेता माधुच्छन्वसः | "       | अनुष्टुप् |
| १२५१ | १।११।५ | जेता माधुच्छन्वसः | "       | "         |
| १२५२ | १।११।८ | जेता माधुच्छन्वसः | "       | "         |





## अथ दशमोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽध्यायः ॥ ५ ॥

[ १ ]

( १-२३ ) १ पराशरः शाक्यः; २ शुनःशेष आजीर्गतिः स वेवरातः कुत्रिमो वैश्वामित्रः; ३ असितः काश्यपो देवली वा;  
 ४, ७, राहूगण आंगिरसः; ५ ( १-४ ), ५ ( प्रथम पादः ) प्रियमेध आंगिरसः; ५ ( शेषास्त्रयः पादाः ) ६ ( प्रथमः पादः )  
 १४ नृमेध आंगिरसः; ६ ( शेषास्त्रयः पादाः ) इध्वावाहो दार्ढ्ययुतः; ८ पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा;  
 ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० वत्सः काण्वः; ११ शतं वैश्वानसः; १२ सप्तर्षयः ( १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो  
 मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिभौमः; ५ विश्वामित्रो गायत्रिः, ६ जम्बवन्निर्भर्गवः; ७ वसिष्ठो  
 मैत्रावरुणिः ); १३ वसुभरद्वाजः; १५ भर्गः प्रागाथः; १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १७ मनुराप्सवः;  
 १८ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १९ अग्नीध्रो धिष्ण्या ऐश्वराः; २० असहोयुरांगिरसः;  
 २१ त्रिशोकः काण्वः; २२ गोतमो राहूगणः; २३ मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः ॥ १-७, ११-१३,  
 १६-२० पवमानः सोमः, ८ पवमानाध्येता, १०, १४-१५, २१ ( २-३ ), २२-२३ इन्द्रः;  
 ९ अग्निः, २१ ( १ ) अग्नीध्रौ ॥ १, ९ त्रिष्टुप्; २-७, १०-११, १६, २०-२१ गायत्री;  
 ८, १८, २३ अनुष्टुप्; १२ ( १-२ ), १४, १५ प्रगाथः- ( बृहती, सतो बृहती );  
 १३ ( ३ ), १९ द्विषा विरहू, १३ जगती, १७, २२ उष्णिक् ॥

१२५३ अक्रान्तसमुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः ।  
 वृषा पवित्रे अधि सानौ अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९.९७।४० )  
 १२५४ मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।  
 मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।४२ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १२५३ ] ( समुद्रः गो-पाः ) पानी बरसानेवाला, रक्षक सोम ( प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् ) सबसे पहले भुवनोंको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( प्रजाः जनयन् अक्रान् ) प्रजाओंको उत्पन्न करके सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ हुआ । ( वृषा स्वानः ) बलवर्धक सोमके रसको निकालनेके बाद ( अद्रिः सोमः ) आवरणीय वह सोम ( अधिसानौ अव्ये पवित्रे ) अधिक ऊँचे रखे गए बालोंकी छलनीमें ( बृहत् वावृधे ) अधिक बढ़ता है ॥ १ ॥

[ १२५४ ] हे ( देव सोम ) विष्णु सोम ! ( नः इष्टये राधसे ) हमें अन्न और धन प्राप्त हो इसलिए ( वायुं मत्सि ) वायुको प्रसन्न कर । ( पूयमानः ) छाना जानेवाला तू ( मित्रावरुणा मत्सि ) मित्र और वरुणको सन्तुष्ट कर । ( मारुतं शर्धः मत्सि ) मरुतोंके बलको आनन्दित कर । ( देवान् मत्सि ) देवोंको सन्तुष्ट कर ( द्यावापृथिवी [ मत्सि ] ) द्युलोक और पृथिवीको प्रसन्न कर ॥ २ ॥



१२५५ महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्भर्भोऽवृणीत देवान् ।

अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्यं ज्योतिरिन्दुः ॥ ३ ॥ १ (टै). ॥

[ धा० २८ । उ० १ । स्व० ८ ] ( ऋ १।९७।१ )

१२५६ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥ ( ऋ १।३।१ )

१२५७ एष विप्रैरभिष्टुतोऽपौ देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २ ॥ ( ऋ १।३।६ )

१२५८ एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्त्वभिः । पवमानः सिषासति ॥ ३ ॥ ( ऋ १।३।४ )

१२५९ एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ४ ॥ ( ऋ १।३।९ )

१२६० एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥ ( ऋ १।३।२ )

१२६१ एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ( ऋ १।३।२ )

१२६२ एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥ ( ऋ १।३।७ )

[ १२५५ ] ( महिषः सोमः ) महान् पूज्य सोम ( महत् तत् चकार ) उस महान् कार्यको करता है । ( यत् ) जो कार्य ( अपां गर्भः ) पानीके गर्भवाला यह सोम ( देवान् आवृणीत ) देवोंकी सेवा करनेके लिए करता है । ( पवमानः ) छनकर इस सोमने ( इन्द्रे ओजः अदधात् ) इन्द्रमें बल बढाया, उसीप्रकार इस ( इन्दुः ) सोमने ( सूर्यं ज्योतिः अदधात् ) सूर्यमें तेज स्थापित किया ॥ ३ ॥

[ १२५६ ] ( एषः अमर्त्यः देवः ) यह अमर देव सोम ( द्रोणानि अभि आसदम् ) कलशमें बँठनेके लिए ( पर्णवीः इव ) पक्षीके समान ( दीयते ) बेगसे जाता है ॥ १ ॥

[ १२५७ ] ( विप्रैः अभिष्टुतः ) ज्ञानियोंके द्वारा प्रशंसित ( एषः देवः ) यह देव सोम ( दाशुषे रत्नानि दधत् ) वाताको रत्न देता हुआ ( अपः विगाहते ) जलोंमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२५८ ] ( पवमानः एषः शूरः ) छाना जानेवाला यह शूर वीर सोम ( विश्वानि वार्या ) सब धन ( सत्त्वभिः यन्निव ) अपने बलकी सहायतासे प्राप्त करते हुए ( सिषासति ) हमें देनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥

[ १२५९ ] ( एषः पवमानः देवः ) यह छाना जानेवाला दिव्य सोम ( रथर्यति ) यज्ञमें जानेके लिए रथकी इच्छा करता है । ( दिशस्यति ) और हमें इष्ट पदार्थ देनेकी इच्छा करता है और ( वग्वनुं आविष्कृणोति ) शब्द करता है ॥ ४ ॥

[ १२६० ] ( एषः पवमानः देवः ) यह छाना जानेवाला दिव्य सोम ( ऋतायुभिः विपन्युभिः ) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा, लोग ( हरिः ) घोड़ेको जिसप्रकार ( वाजाय मृज्यते ) संग्राममें जानेके लिए सजाते हैं, उसीप्रकार सजाया जाता है ॥ ५ ॥

[ १२६१ ] ( विपा कृतः ) अंगुलियों द्वारा निचोडा गया, ( अ-दाभ्यः ) तथा न बढाया जानेवाला ( एष पवमानः देवः ) यह शुद्ध होनेवाला दिव्य सोम ( ह्वरांसि अति धावति ) शत्रुओंको कुचलता हुआ जाता है ॥ ६ ॥

[ १२६२ ] ( धारया पवमानः एषः ) धारसे छाना जानेवाला यह सोम ( कनिक्रदत् ) शब्द करता हुआ ( रजांसि तिरोः ) शत्रुके लोकोंको हराता हुआ यज्ञस्थानसे ( दिवं विधावति ) स्वर्गलोकको जाता हुआ प्रतीत होता है ॥ ७ ॥



- १२६३ एष दिवं व्यासरत्तिरा रजांस्यस्तुतः । पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥ ( ऋ. ९।३।८ )  
 १२६४ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥ ( ऋ. ९।३।९ )  
 १२६५ एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञाना जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २ ( दू ) ॥  
 [ धा० ३४ । उ० ३ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।६।१० )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

- १२६६ एष धिया यात्यण्ड्या शूरो रथेमिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१।५।१ )  
 १२६७ एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशत ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१।५।२ )  
 १२६८ एतं मृजन्ति मर्ज्येषुष द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१।५।३ )  
 १२६९ एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । यदी तुजन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१।५।४ )  
 १२७० एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिराशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१।५।५ )

[ १२६३ ] ( सु-अध्वरः पवमानः एषः ) उत्तम यज्ञ करनेवाला तथा छाना जानेवाला यह सोम ( अस्तुतः ) अपराजित अर्थात् विजयी होकर ( रजांसि तिरः ) शत्रुके लोकोंको नष्ट करके ( दिवं व्यासरत् ) स्वर्गको जाता हुआ सा प्रतीत होता है ॥ ८ ॥

[ १२६४ ] ( हरिः एषः देवः ) हरे रंगका यह दिव्य सोम ( प्रत्नेन जन्मना ) प्राचीन जन्मसे ही ( देवेभ्यः सुतः ) देवोंके लिए निचुड कर ( पवित्रे अर्षति ) छलनीसे छाना जाता है ॥ ९ ॥

[ १२६५ ] ( एष उ स्यः ) यही वह सोम ( पुरुव्रतः जज्ञानः ) बहुत कर्म करनेके लिए उत्पन्न हुआ हुआ और ( इषः जनयन् ) अन्न उत्पन्न करता हुआ ( सुतः धारया पवते ) रसकी धारासे छनता जाता है ॥ १० ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १२६६ ] ( शूरः ) शूरवीर तथा ( अण्ड्या ) अंगुलियोंसे दबाकर निकाला गया ( एषः ) यह सोम ( इन्द्रस्य निष्कृतं ) इन्द्रके स्थानके पास ( आशुभिः रथेभिः ) शीघ्रगामी रथोंसे ( गच्छन् ) जानेकी इच्छा करता हुआ ( धिया याति ) बुद्धिपूर्वक जाता है ॥ १ ॥

[ १२६७ ] ( एषः ) यह सोम ( बृहते देवतातये ) महान् यज्ञके लिए ( पुरू धियायते ) बहुतसे कर्म करनेकी इच्छा करता है । ( यत्र ) जिस यज्ञमें ( अमृतासः आशत ) अमर देव बैठते हैं ॥ २ ॥

[ १२६८ ] ( आयवः ) ऋत्विज ( महीः इषः प्रचक्राणं ) बहुत अन्न उत्पन्न करनेवाले ( एतं मर्ज्यं ) इस शुद्ध होनेके योग्य सोमको ( द्रोणेषु उप मृजन्ति ) कलशमें छानकर रखते हैं ॥ ३ ॥

[ १२६९ ] ( हितः एषः ) हवियोंमें रखा हुआ यह सोम ( विनीयते ) आहवनीय स्थानकी ओर लेजाया जाता है । ( अन्तः शुन्ध्यावता पथा ) यहाँ शुद्ध होनेके मार्गसे ( यदि भूर्णयः ) अध्वर्यु आवि ( तुजन्ति ) उसे देवोंकी ओर ले जाते हैं ॥ ४ ॥

[ १२७० ] ( वाजी ) बलवान् और ( शुभ्रेभिः अशुभिः ) शुभ किरणोंसे युक्त ( एषः ) यह सोम ( सिन्धूनां पतिः भवन् ) प्रवाहित होनेवाले रसोंका स्वामी होकर ( रुक्मिभिः ईयते ) याजकोंके साथ जाता है ॥ ५ ॥



- १२७१ एष ऋक्षाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्योऽ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥६॥ ( ऋ. ९।१५।१ )  
 १२७२ एष वसूनि पिबदनः परुषा ययिवाः अति । अव शादेषु गच्छति ॥७॥ ( ऋ. ९।१५।६ )  
 १२७३ एतस्य त्वं दश क्षिपो हरिः हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ३ ( के ) ॥  
 [ धा० ३१ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।१५।८ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

- १२७४ एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत । गच्छन्वाजः सहस्रिणम् ॥१॥ ( ऋ. ९।३८।१ )  
 १२७५ एतं त्रितस्य योषणो हरिः हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥२॥ ( ऋ. ९।३८।२ )  
 १२७६ एष स्य मानुषीष्व इयेनो न विश्वु सीदति । गच्छं जारो न योषितम् ॥३॥ ( ऋ. ९।३८।४ )  
 १२७७ एष स्य मद्या रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३८।५ )

[ १२७१ ] ( ओजसा नृम्णा दधानः ) अपने सामर्थ्यसे धनोंको धारण करते हुए ( एषः ) यह सोमरस ( यूथ्यः वृषा शिशीते ) जिसप्रकार झुण्डमें बेल अपने सींगोंको हिलाता है, उसीप्रकार ( ऋक्षाणि दोधुवत् ) अपनी किरणोंको हिलाता है ॥ ६ ॥

[ १२७२ ] ( वसूनि पिबदनः ) बैठनेवाले राक्षसोंको पीडा देनेवाला ( एषः ) यह सोम ( परुषा अति ययिवान् ) अपनी शक्तिसे शत्रुपर आक्रमण करता है, और ( शादेषु अव गच्छति ) मारने योग्य राक्षसोंको कुचलता हुआ चला जाता है ॥ ७ ॥

[ १२७३ ] ( सु-आयुधं ) उत्तम शस्त्रोंका उपयोग करनेवाले तथा ( मदिन्तमं ) अत्यन्त आनन्ददायक ( त्वं हरि एतं उ ) उस हरे रंगके सोमको ( यातवे ) देवोंके पास ले जानेके लिए ( दश क्षिपः हिन्वन्ति ) दसों अंगुलियां दबाकर रस निकालती हैं ॥ ८ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १२७४ ] ( एषः ) यह ( रथः ) रथके समान वेगवान् तथा ( वृषा स्यः ) बलवान् सोम ( सहस्रिणं वाजं ) हजारों प्रकारके अन्न देनेके लिए ( गच्छन् ) कलशमें जाते हुए ( अव्या वारेभिः ) बालोंकी छलनीके द्वारा ( अव्यत ) छाना जाता है ॥ १ ॥

[ १२७५ ] ( त्रितस्य योषणः ) त्रितकी अंगुलियां ( इन्द्राय पीतये ) इन्द्रको पीनेके वास्ते देनेके लिए ( एतं हरि इन्दुं ) इस हरे रंगके सोमको ( अद्रिभिः हिन्वन्ति ) पथरोंसे कूटती हैं ॥ २ ॥

[ १२७६ ] ( स्यः एषः ) वह यह सोम ( मानुषीषु विश्वु ) मनुष्यकी प्रजाओंमें ( इयेनः न ) इयेन पक्षीके समान तथा ( योषितं गच्छन् जारः न ) स्त्रीके पास जाते हुए जारके समान ( आ सीदति ) जाकर बैठता है ॥ ३ ॥

[ १२७७ ] ( दिवः शिशुः ) धूलोकका यह पुत्र ( यः इन्दुः ) जो सोम है वह ( वारं आ विशत् ) छलनीमें प्रवेश करता है, ( एषः स्यः ) वह यह ( मद्या रसः अव चष्टे ) आनन्द बढ़ानेवाला सोमरस सबको देखता है ॥ ४ ॥



१२७८ एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णासिः । क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।२।६ )

१२७९ एषं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥ ४ ( बी ) ॥

[ धा० २२ । उ० ८ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।२।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१२८० एष वाजी हिता नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः । अव्यं वारं वि धावति ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२।१ )

१२८१ एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२।२ )

१२८२ एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।२।३ )

१२८३ एष वृषा कनिक्रददशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥ ऋ. ९।२।४ )

१२८४ एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे भत्सरो मदः ॥ ५ ॥

( ऋ. ९।२।५ [ प्रथमः पादः ]; ऋ. ९।२।४ [ त्रयः पादाः ] )

[ १२७८ ] ( पीतये सुतः ) देवोंके पीनेके लिए निचोड़ा गया ( हरिः धर्णासिः ) हरे रंगका और सबको धारण करनेवाला ( स्यः एषः ) वह यह सोम ( प्रियं योनिं ) अपने प्रिय स्थान कलशमें ( क्रन्दन् अभि अर्षति ) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ५ ॥

[ १२७९ ] ( त्यं एतत् ) उस इस सोमको ( दशः हरितः ) दसों अंगुलियां ( अपस्युवः मर्मृज्यन्ते ) यज्ञ करनेकी इच्छा करती हुई साफ करती हैं । ( याभिः ) जिन अंगुलियोंसे ( मदाय शुम्भते ) इन्द्रका आनन्द बढ़ानेके लिए सोम छाना जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १२८० ] ( वाजी ) बलवान् सोम ( नृभिः हिताः ) याजकोंके द्वारा कलशमें रखा गया है । ( विश्ववित् मनसः पतिः ) सर्वज्ञ और मनका स्वामी ( एषः ) यह सोम ( अव्यं वारं विधावति ) बालोंकी छलनीकी ओर दौड़ता है ॥ १ ॥

[ १२८१ ] ( देवेभ्यः सुतः एषः ) देवोंको देनेके लिए निकाला गया यह सोम ( पवित्रे अक्षरत् ) छलनीसे छाना जाता है । ( विश्वा धामानि आविशन् ) वह सब धामोंमें-देवोंके शरीरोंमें-प्रवेश करता है ॥ २ ॥

[ १२८२ ] ( अमर्त्यः वृत्र-हा ) अमर और शत्रुओंका नाश करनेवाला ( देव-वी-तमः देवः एषः ) देवोंको बहुत अच्छा लगनेवाला यह दिव्य सोम ( अधि योनाव शुभायते ) अपने कलशमें सुशोभित होता है ॥ ३ ॥

[ १२८३ ] ( वृषा एषः ) बल बढ़ानेवाला यह सोम ( कनिक्रदत् ) शब्द करते हुए ( दशभिः जामिभिः यतः ) दसों अंगुलियोंके द्वारा बढ़ानेके बाद ( द्रोणानि अभि धावति ) कलशमें दौड़ता हुआ पहुँचता है ॥ ४ ॥

[ १२८४ ] ( पवित्रे ) छलनीमें रहनेवाला ( भत्सरो मदः ) आनन्द बढ़ानेवाला तथा प्रसन्नता देनेवाला ( एषः पवमानः ) यह शुद्ध किया जानेवाला सोमरस ( द्यवि सूर्यं अधि अरोचयत् ) धुलोकमें सूर्यको प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥



१२८५ एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता । पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ५ ( के ) ॥

[ धा० २६ । उ० १ । ख० ७ ] ( ऋ. १।२७।५ [ प्रथमः पादः ]; ऋ. १।२६।४ [ त्रयः पादाः ] )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१२८६ एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो मन्त्रप द्विषः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२७।१ )

१२८७ एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि पिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२७।२ )

१२८८ एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमा वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।२७।३ )

१२८९ एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तुतः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२७।४ )

१२९० एष शुष्मसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२७।५ )

१२९१ एष शुष्मदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंस सहा ॥ ६ ॥ ६ ( गु ) ॥

[ धा० ३१ । उ० ३ । ख० ९ ] ( ऋ. १।२८।६ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ १२८५ ] ( वाचः पतिः ) स्तुतिका स्वामी ( अदाभ्यः एषः ) और न बचाया जानेवाला यह सोम ( संवसानः ) जलवियोंमें मिलाये जानेके लिए ( विवस्वता सूर्येण ) प्रकाशमान सूर्यके द्वारा ( हासते ) छोड़ा जाता है । वर्तनमें छाना जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १२८६ ] ( कविः अभिष्टुतः ) कवियों-ज्ञानियों-के द्वारा प्रशंसित होनेवाला ( पुनानः ) छाना जानेवाला ( द्विषः अपघ्नन् ) शत्रुओंको मारनेवाला ( एषः ) यह सोम ( अधि तोशते ) काले हिरणके चमड़ेपर कूटा जाता है ॥ १ ॥

[ १२८७ ] ( दक्ष-साधनः स्वर्जित् एषः ) बल बढ़ानेके साधनोंको और स्वर्ग-सुख-को जीतनेवाला यह सोम ( इन्द्राय वायवे ) इन्द्र और वायुके लिए ( पवित्रे परि पिच्यते ) छलनीसे टपकता हुआ नीचेके कलशमें गिरता है ॥ २ ॥

[ १२८८ ] ( दिवः मूर्धा ) सुलोकका सिर ( वृषा सुतः ) बलवान् और रसरूप ( विश्ववित् एषः सोमः ) सर्वज्ञ सोम ( वनेषु नृभिः नीयते ) लकड़ीके वर्तनमें ऋत्विजों द्वारा ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

[ १२८९ ] ( गव्युः हिरण्ययुः ) गौ वृधमें मिलाया जानेवाला, सोनेका स्पर्श जिसमें होता है ऐसा ( इन्दुः सत्राजित् ) चमकनेवाला और जीतनेवाला ( अस्तुतः ) अपराजित ( एषः पवमानः ) यह शुद्ध होनेवाला सोम ( अचिक्रदत् ) शब्द करता हुआ टपकता है ॥ ४ ॥

[ १२९० ] ( वृषा हरिः ) बल बढ़ानेवाला हरे रंगका ( पुनानः इन्दुः ) पवित्र होनेवाला और चमकनेवाला ( शुष्मी एषः ) सामर्थ्यवान् यह सोम ( अन्तरिक्षे असिष्यदत् ) छलनीसे टपकता है और ( इन्द्रं आ ) इन्द्रके पास पहुँचता है ॥ ५ ॥

[ १२९१ ] ( देवावीः अघशंसहा ) देवोंका रक्षक और पापी शत्रुओंका नाश करनेवाला, ( अ-दाभ्यः पुनानः ) न बचनेवाला और शुद्ध होनेवाला ( शुष्मी एषः अर्षति ) बलवान् यह सोम कलशमें जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

- १२९२ स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्पति । विघ्नत्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।३।७।१ )
- १२९३ स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्पति घर्णसिः । अभि योनिं कनिकदत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।३।७।२ )
- १२९४ स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।३।७।३ )
- १२९५ स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यसह ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।३।७।४ )
- १२९६ स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।३।७।५ )
- १२९७ स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥ ६ ॥ ७ ( खे. ) ॥
- [ धा० २१ । उ० २ । स्व० ७ ] ऋ. ९।३।७।६ ]
- ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ ७ ]

- १२९८ यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
- ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।७।१ )

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १२९२ ] ( देवयुः ) देवोंको प्राप्त होनेवाला ( पीतये सुतः ) इन्द्रादि देवोंके पीनेके लिए तैय्यार किया गया तथा ( वृषा ) बल बढ़ानेवाला ( सः सोमः ) वह सोम ( रक्षांसि निघ्नन् ) राक्षसोंका नाश करता हुआ ( पवित्रे अर्पति ) छलनीसे नीचे उतरता है ॥ १ ॥

[ १२९३ ] ( विचक्षणः हरिः ) सबोंको देखनेवाला, हरे रंगका ( घर्णसिः सः ) सबोंको धारण करनेवाला वह सोम ( पवित्रे ) छलनीसे ( कनिकदत् योनिं अभि अर्पति ) शब्द करता हुआ कलशमें जाता है ॥ २ ॥

[ १२९४ ] ( वाजी दिवः रोचनं ) बलवान्, झुलोकमें चमकनेवाला ( रक्षोहा पवमानः सः ) राक्षसोंका नाश करनेवाला, शुद्ध होनेवाला वह सोम ( अव्ययं वारं विधावति ) बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

[ १२९५ ] ( सः ) वह सोम ( त्रितस्य/अधि सानवि ) त्रितके महान् यज्ञमें ( पवमानः ) छाना जाता हुआ ( जामिभिः सह ) महान् तेजोसे ( सूर्यं अरोचयत् ) सूर्यको प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

[ १२९६ ] ( वृत्रहा वृषा ) शत्रुको मारनेवाला बलवान् ( सुतो ) रस निचोड़नेके बाद ( वरिवोवित् ) धन देनेवाला ( अदाभ्यः सः सोमः ) न दबनेवाला वह सोम ( वाजं इव असरत् ) घोड़ेके समान कलशमें जाता है ॥ ५ ॥

[ १२९७ ] ( देवः इन्द्रः सः ) [ झुलोकमें ] प्रकाशित होनेवाला वह सोम ( कविना इषितः ) अध्वर्युके द्वारा प्रेरित ( इन्द्राय मंहयन् ) इन्द्रको महानता देकर ( द्रोणानि अभि धावति ) कलशमें जाता है ॥ ६ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १२९८ ] ( यः ) जो ( ऋषिभिः संभृतं रसं ) ऋषियोंके द्वारा एकत्रित किए गए रसका तथा ( पावमानीः ) पवमानके मंत्रोंका ( अध्येति ) अध्ययन करता है । ( सः ) वह ( मातरिश्वना स्वदितं सर्वं ) वायुके द्वारा जले हुए सारे ( पूतं अश्नाति ) पवित्र अन्नका भक्षण करता है ॥ १ ॥



१२९९ पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।

तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्

॥ ३ ॥ ( ऋ. १।६।३२ )

१३०० पवमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।

ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम्

॥ ३ ॥

१३०१ पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।

कामान्तसमर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहताः

॥ ४ ॥

१३०२ येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥

१३०३ पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।

पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति

॥ ६ ॥ ८ ( ती ) ॥

[ धा० ४४ । उ० १ । स्व० ४ ]

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

[ १२९९ ] ( यः ऋषिभिः संभृतं रसं ) जो ऋषियों द्वारा एकत्र किए गए साररूपी ( पावमानीः अध्येति ) श्रद्धा करनेवाले मंत्रोंका अध्ययन करता है, ( तस्मै सरस्वती ) उसे विद्यादेवी ( क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे ) दूध, घी, शहद और पानी देती हैं ॥ ३ ॥

[ १३०० ] ( पावमानीः ) श्रद्धा करनेवाले ( स्वस्त्ययनीः ) कल्याण करनेवाले ( सु-दुघा ) उत्तम फल देनेवाले ( घृतश्चुतः ) घीकी वृष्टि करनेवाले ये मंत्र ( हि ऋषिभिः संभृतः रसः ) ऋषियोंके द्वारा एकत्र किए गये साररूप हैं । ( ब्राह्मणेषु अमृतं हितं ) वेदपाठी ब्राह्मणोंमें मानों यह अमृत ही रख दिया है ॥ ३ ॥

[ १३०१ ] ( देवैः समाहताः पावमानीः देवीः ) देवों द्वारा तैयार की गई पवित्रता करनेवाली यह देवतारूपी ऋचा ( नः ) हमें ( इमं अथो अमुं लोकं ) इस और उस लोकको ( दधन्तु ) देवें । और उस लोकमें ( नः कामान् समर्धयन्तु ) हमारा मनोरथ सफल करें ॥ ४ ॥

[ १३०२ ] ( देवाः ) देव ( येन पवित्रेण ) जिस पवित्र साधनसे ( सदा आत्मानं पुनते ) हमेशा अपनेको पवित्र करते हैं । ( तेन सहस्रधारेण ) उन हजारों तरहके साधनोंसे ( पावमानीः नः पुनन्तु ) पवित्र करनेवाली वह ऋचायें हमें पवित्र करें ॥ ५ ॥

[ १३०३ ] ( पावमानीः ) पवित्र करनेवाली और ( स्वस्त्ययनीः ) कल्याण करनेवाली जो ऋचायें हैं ( ताभिः नान्दनं गच्छति ) उनके सहयोगसे मनुष्यको आनन्दपूर्ण स्थान प्राप्त होता है । वह ( पुण्यान् भक्षान् च भक्षयति ) पवित्र अन्न खाता है ( अमृतत्वं गच्छति ) और अमरत्वको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ८ ]

१३०४ अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।

चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१२।१ )

१३०५ स महा विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः एवे दम आ जातवेदाः ।

स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१२।२ )

१३०६ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।

त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ९ ( ही ) ॥

[ धा० २१ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।१२।३ )

१३०७ महा इन्द्रो य आजसा पर्जन्यो वृष्टिमा इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।१ )

१३०८ कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।३ )

[ ८ ] अष्टमः खण्डः ।

[ १३०४ ] ( यः स्वे दुरोणे ) जो अपने यज्ञस्थानमें ( समिद्धः दीदाय ) अग्निको उत्तम रीतिसे प्रदीप्त करता है । उस ( यविष्ठं ) तरुण ( ऊर्वी रोदसी अन्तः चित्रभानुं ) इस विशाल द्यावापृथिवीके बीचमें विशेष प्रकाशमान ( स्वाहुतं ) उत्तम रीतिसे आहुति दिये गये ( विश्वतः प्रत्यञ्चं ) सर्वत्र गमन करनेवाले अग्निके पास ( महा नमसा अगन्म ) हम महान् नमस्कार करते हुए जाते हैं ॥ १ ॥

[ १३०५ ] ( महा ) अपने महान् प्रभावसे ( विश्वा दुरितानि साह्वान् ) सब पापोंको दूर करनेवाला ( जात-वेदाः सः अग्निः ) ज्ञानका प्रसार करनेवाला अग्नि ( दमे आ स्तवे ) यज्ञशालामें प्रशंसित होता है, ( सः गृणतः नः ) वह स्तुति करनेवाले हमें ( दुरितात् अवद्यात् रक्षिषत् ) पापोंसे और निन्दित कर्मोंसे सुरक्षित रखता है, ( उत मघोनः अस्मान् ) और हविको पासमें रखनेवाले हमारा रक्षण करता है ॥ २ ॥

[ १३०६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं वरुणः उत मित्रः ) तू वरुण और मित्र है । ( वसिष्ठाः त्वां मतिभिः वर्धन्ति ) जितेन्द्रिय ऋषि तुझे बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियोंसे संवर्धित करते हैं, ( त्वे वसु ) तेरे पास जो धन है वे ( सुषणनानि सन्तु ) हमारे द्वारा स्वीकारने योग्य हों । ( यूयं ) तुम ( नः ) हमें ( सदा स्वस्तिभिः पात ) हमेशा कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ३ ॥

[ १३०७ ] ( यः इन्द्रः ) जो इन्द्र ( वृष्टिमान् पर्जन्यः इव ) वृष्टि करनेवाले मेघके समान ( तेजसा महान् ) अपने तेजसे महान् है, वह इन्द्र ( वत्सस्य स्तोमैः वावृधे ) वत्सके स्तोत्रोंसे बढ़ता है, इन्द्रका यश बढ़ता है ॥ १ ॥

[ १३०८ ] ( यत् ) जब ( कण्वाः ) कण्वोंने ( इन्द्रं ) इन्द्रको ( स्तोमैः यज्ञस्य साधनं अक्रत ) स्तोत्रोंके द्वारा यज्ञका साधन बनाया, तब ( आयुधा जामि ब्रुवत ) आयुध-युद्ध-का कोई कारण बचा नहीं ऐसा लोग कहने लगे ॥ २ ॥



१३०९ प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥ १० ( टि ) ॥  
[ धा० ८ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६।२ )

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

[ ९ ]

१३१० पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।२५ )

१३११ पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।२६ )

१३१२ पवमान व्यङ्गुहि रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ११ ( इ ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६।२७ )

१३१३ परीतो पिश्वता सुतः सोमो य उत्तमः हविः ।  
दधन्वाः यो नर्यो अप्सवन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१ )

१३१४ नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभितरः ।  
सुते चित्वाप्सु मदामो अंधसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।२ )

[ १३०९ ] ( यत् ) जब ( पिप्रतः वह्नयः ) आकाशको अपने वेगसे भरनेवाले वाहनरूपी घोड़े, ( ऋतस्य प्रजां ) यज्ञमें जानेके लिए तैयार हुए हुए इन्द्रको ( प्र भरन्त ) वेगसे लेकर जाते हैं, तब ( विप्राः ) ऋत्विज ( ऋतस्य वाहसा ) यज्ञको प्रेरणा देनेवाले स्तोत्रोंसे उसकी स्तुति करने लगते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ९ ] नवमः खण्डः ।

[ १३१० ] ( जिघ्नतः ) शत्रुका नाश करनेवाले ( हरेः अजिरशोचिषः ) हरे रंगके और सब जगह अपना तेज फैलानेवाले ( पवमानस्य ) छाने जानेवाले सोमकी ( चन्द्राः जीराः असृक्षत ) तेजस्वी धारा बहने लगी है ॥ १ ॥

[ १३११ ] ( रथीतमः ) उत्तम रथमें बैठनेवाला, ( शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ) अपने तेजसे अधिक तेजस्वी ( हरिः चन्द्रः ) हरे रंगके तेजवाला ( मरुद्गणः पवमानः ) मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाला तथा छाना जानेवाला यह सोम है ॥ २ ॥

[ १३१२ ] हे ( पवमान ) शुद्ध होनेवाले सोम ! ( वाजसातमः ) बहुत अन्न और बल देनेवाला तू ( स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् ) स्तुति करनेवालेको उत्तम वीरपुत्र अथवा उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य देता है ॥ ३ ॥

[ १३१३ ] ( यः सोमः ) जो सोम ( उत्तमं हविः ) उत्तम हविरूप है और ( यः नर्यः आ ) जो मानवोंका हित करनेवाला है वह ( अप्सु अन्तः दधन्वान् ) पानीमें मिलाया जाता है । ( सोमः अद्रिभिः सुषाव ) उस सोमको अध्वर्युओंने पत्थरोंसे कूटकर उसका रस निकाला है । उस ( सुते ) सोमरसको ( इतः परि पिबत ) यहांसे ऊपर लाकर पींचो ॥ १ ॥

[ १३१४ ] हे सोम ! ( अ-दब्धः ) न दबनेवाला ( सुरभितरः ) अत्यन्त सुगंधित ( नूनं पुनानः ) अब शुद्ध होता हुआ ( अविभिः परिस्रव ) तू वालोंकी छलनीसे छनता जा । ( सुते चित् ) छननेके बाद ( अन्धसा गोभिः श्रीणन्तः ) अन्न और गौबुधसे मिलाकर ( उत्तरं अप्सु त्वा मदामः ) फिर तुझे पानीमें मिलाकर प्रसन्न करते हैं ॥ २ ॥



१३१५ परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥ १२ (खा) ॥  
[ धा० १६ । उ० २ । स्व ७ ] ( ऋ ९।१०७।३ )

१३१६ असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।  
पुनानो वारमत्येव्यव्ययः श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ १ ॥ ( ऋ ९।८२।१ )

१३१७ पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।  
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥ २ ॥ ( ऋ ९।८२।२ )

१३१८ कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।  
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥ ३ ॥ १३ (गू) ॥  
[ धा० २६ । उ० ३ । स्व० ६ ] ( ऋ ९।८२।२ )

॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

[ १० ]

१३१९ श्रायन्त इव सूर्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।  
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ १ ॥ ( ऋ ८।९९।३ )

[ १३१५ ] ( देवमादनः क्रतुः ) देवोंको आनन्द, देनेवाले यज्ञका साधन, ( इन्दुः विचक्षणः ) तेजस्वी और ज्ञानी ( स्वानः ) सोम ( चक्षसे परि ) सबका निरीक्षण करनेके लिए कलशमें उतरे ॥ ३ ॥

[ १३१६ ] ( अरुषः वृषा ) तेजस्वी और बल बढ़ानेवाला ( हरिः सोमः असावि ) हरे रंगका सोम शुद्ध किया है, यह ( राजा इव दस्मः ) राजाके समान दर्शनीय है। ( गाः अभि अचिक्रदत् ) गायोंको देखकर शब्द करने लगता है, गायके दूधमें मिलनेके बाद शब्द करता है तथा ( पुनानः अव्ययं वारं अत्येषि ) पवित्र होनेवाला वह सोम भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है। ( श्येनः न ) बाज पक्षीके समान ( घृतवन्तं योनिं आसदत् ) पानीसे भरे हुए कलसेमें जाकर पहुंचता है ॥ १ ॥

[ १३१७ ] ( महिषस्य पर्णिनः पर्जन्यः पिता ) बड़े बड़े पत्तेवाले सोमका उत्पन्न करनेवाला पर्जन्य-मेघ है। वह ( पृथिव्याः नाभा गिरिषु क्षयं दधे ) पृथिवीके नाभिस्थानमें रहनेवाले पर्वतोंमें निवासस्थान बनाता है। ( स्वसारः आपः गाः ) अंगुलियां, जल और गायें ( अभिः उदासरन् ) उसके सामने आती हैं, ( वीते अध्वरे ) श्रेष्ठ यज्ञोंमें ( ग्रावभिः सं वसते ) पत्थरोंके साथ वह मिलकर रहता है ॥ २ ॥

[ १३१८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( कविः ) यह ज्ञानी सोम ( वेधस्या माहिनं पर्येषि ) यज्ञ करनेकी इच्छासे छलनी पर जाता है ( मृष्टः ) शुद्ध करनेके बाद ( अत्यः न ) घोड़ेके समान ( वाजं अभ्यर्षसि ) संग्राममें जाता है। हे सोम ! ( दुरिता अपसेधन् ) पापोंको दूर करते हुए ( नः मृड ) हमें सुखी कर। ( घृता वसानः निर्णिजं परि यासि ) तू जलमें मिलनेके बाद छलनीमें जाता है ॥ ३ ॥

॥ यहां नौवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ १० ] दशमः खण्डः ।

[ १३१९ ] हे पुत्रवो ! ( श्रायन्तः सूर्य इव ) सूर्यके आश्रयसे रहनेवाली किरणें जिसप्रकार सूर्यका आधार लेती हैं, उसीप्रकार ( विश्वा इत् इन्द्रस्य भक्षत ) सब धन इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं। ( जातः ) प्रकट हुआ हुआ इन्द्र ( वसूनि ओजसा जनिमानि ) जिन धनोंको अपने सामर्थ्यसे प्रकट करता है उन धनोंके ( भागं न प्रति दीधिमः ) भागको हम पितासे प्राप्त होनेके समान धारण करते हैं ॥ १ ॥



१३२० अलर्षिराति वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।

यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥ १४ ( लू ) ॥  
[ धा १९ । उ० नास्ति । स्व० ६ ] ( ऋ. ८।९९।४ )

१३२१ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।१३ )

१३२२ त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।

तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ २ ॥ १५ ( वा ) ॥  
[ धा० २० । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६१।१४ )

॥ इति दशमः खण्डः ॥ १० ॥

[ ११ ]

१३२३ त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६७।१ )

१३२४ त्वं सुतो मद्विन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्दुः सत्राजिदस्तुतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६७।२ )

[ १३२० ] ( अलर्षिराति वसुदां उप स्तुहि ) निष्पाप पुरुषोंको और भक्तोंको घन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति कर । क्योंकि ( इन्द्रस्य रातयः भद्राः ) इन्द्रके दान कल्याणकारी होते हैं । ( यः मनः दानाय चोदयन् ) जो इन्द्र अपने मनको दान देनेके लिए प्रेरित करता है ( विधतः अस्य कामं न रोषति ) वह उपासना करनेवाले इस यजमानकी इच्छा नष्ट नहीं करता ॥ २ ॥

[ १३२१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यतः भयामहे ) जिन दुष्टोंसे हम डरते हैं ( ततः नः अभयं कृधि ) उनसे हमें निर्भय कर । हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( नः तत् तव ऊतये शग्धि ) हमें उस अपने रक्षणसे सुरक्षित करनेके लिए तू समर्थ हो । ( द्विषः विजहि ) द्वेष करनेवालोंका पराभव कर तथा ( मृधः वि ) हमारे शत्रुओंको हरा ॥ १ ॥

[ १३२२ ] हे ( राधसस्पते ) धनपते इन्द्र ! ( त्वं हि ) तू ही ( महः राधसः क्षयस्य ) महान् धनके स्थानका ( विधर्ता असि ) विशेष रीतिसे धारण करनेवाला है । हे ( गिर्वणः ) स्तुत्य और ( मघवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( तं त्वा ) उस तुझे ( सुतावन्तः वयं हवामहे ) सोमयज्ञ करनेवाले हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ दसवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ११ ] एकादशः खण्डः ।

[ १३२३ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मन्द्रः ओजिष्ठः ) आनन्द बढ़ानेवाला और बहुत सामर्थ्यवाला तू ( अध्वरे धारयुः असि ) हिंसारहित यज्ञमें सोमरसकी धारासे युक्त होकर रहता है । इसलिए ( मंहयत् रयिः त्वं पवस्व ) घन देनेवाला तू शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १३२४ ] हे सोम ! ( सुतः ) निचोड़ा गया ( त्वं मद्विन्तमः ) तू अत्यन्त आनन्द बढ़ानेवाला ( दधन्वान् ) यज्ञको धारण करनेवाला ( मत्सरिन्तमः इन्दुः ) परम उत्साह बढ़ानेवाला और समझनेवाला ( सत्राजित् अस्तुतः ) सब शत्रुओंको जीतनेवाला और पराजित न होनेवाला है ॥ २ ॥



१३२५ त्वं सुष्वाणो अद्रिमिरभ्यर्ष कनिकदत् । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥ ३ ॥ १६ ( ली ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।६७।३ )

१३२६ पवस्व देववीतये इन्द्रो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्तसोम नः सदः ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०६।७ )

१३२७ तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ २ ॥

( ऋ. ९।१०६।८ )

१३२८ आ नः सुतास इन्द्रवः पुनाना धावता रथिम् ।

वृष्टिघावो रीत्यापः स्वर्विदः

॥ ३ ॥ १७ ( वौ ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । ख० नास्ति ] ( ऋ. ९।१०६।९ )

१३२९ परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

यो देवान्विश्वा इत्परि मदेन सह गच्छति

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१८।७ )

१३३० द्वियं पञ्च स्वयश्वासं सखायौ अद्रिसंहतम् ।

प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१८।६ )

[ १३२५ ] हे सोम ! ( अद्रिभिः सुष्वाणः त्वं ) पत्यरोंसे कूटकर रस निकाला गया तू ( कनिकदत् अभ्यर्ष ) शब्द करता हुआ कलशमें जा । ( द्युमन्तं शुष्मं आभर ) तेजस्वी सामर्थ्य हमें दे ॥ ३ ॥

[ १३२६ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( देववीतये ) देवोंको देनेके लिए ( ओजसा धाराभिः पवस्व ) वेगसे धार बंधकर छनता जा । हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमान् ) मोठा तू ( नः कलशं आ सदः ) हमारे कलशमें आकर रह ॥ १ ॥

[ १३२७ ] ( उदप्रुतः तव द्रप्साः ) पानीके साथ मिलनेवाले तेरे रस ( मदाय इन्द्रं वावृधुः ) आनन्दके लिए इन्द्रका यश बढ़ाते हैं । बाबमें ( देवासः कं त्वां अमृताय पपुः ) देवगण सुखस्वरूप तुझे अमर होनेके लिए पीते हैं ॥ २ ॥

[ १३२८ ] ( वृष्टि-घावः ) घुलोकरसे वृष्टि करानेवाले ( स्वः-विदः ) स्वर्गको जाननेवाले ( रीत्यापः सुतासः ) पृथ्वीपर पानीकी वृष्टि करनेवाले ये सोमरस ( पुनानाः इन्द्रवः ) स्वच्छ होनेवाले और तेजस्वी हैं । हे सोमरसो ! तुम ( नः रथिं आ धावत ) हमें धन प्राप्त हो ऐसा करो ॥ ३ ॥

[ १३२९ ] ( हर्यतं हरिं ) पूज्य और पाप दूर करनेवाले ( बभ्रुं त्यं ) उस भूरे रंगके सोमको ( वारेण परि पुनन्ति ) छलनीसे छानकर गूढ़ करते हैं । ( यः विश्वान् देवान् ) जो सब देवोंके पास ( मदेन सह इत् ) आनन्दकारक गुणोंके साथ ( परि गच्छति ) जाता है ॥ १ ॥

[ १३३० ] ( द्विः पञ्च सखायः ) बस अंगुलियां ( स्वयश्वासं अद्रिसंहतं ) स्वयं यशस्वी और पत्यरोंसे कूटे गए ( इन्द्रस्य प्रियं काम्यं यं ) इन्द्रको प्रिय और इष्ट ऐसे जिस सोमको ( ऊर्मयः ) जलोंके द्वारा ( प्रस्नापयन्ते ) स्नान करवाती हैं ॥ २ ॥



१३३१ इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि पिच्यसे ।

नरे च दक्षिणावते वीराय सदानासदे

॥ ३ ॥ १८ ( जी ) ॥

[ धा० २२ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।९८।१० )

१३३२ पवस्व सोम महे दक्षायाम्भो न निको वाजी भनाय

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१० )

१३३३ प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।११ )

१३३४ शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम्

॥ ३ ॥ १९ ( का ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०९।१२ )

१३३५ उपो षु जातमप्युरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६१।१३ )

१३३६ तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं सशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥ २ ॥

( ऋ. ९।६१।१४ )

१३३७ अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥ २० ( ही ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।६१।१५ )

॥ इति एकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

[ १३३१ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रको देनेके लिए ( दक्षिणा-वते वीराय ) यज्ञमें दक्षिणा देनेवाले वीरके लिए और ( सदाना-सदे नरे ) यज्ञमें बैठनेवाले यजमानके लिए ( परि-पिच्यसे ) तू कलशमें टपकता है ॥ ३ ॥

[ १३३२ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अश्वः न ) घोड़ेके समान ( निको ) धोकर शुद्ध किया गया ( वाजी ) वेगवान् तू ( महे दक्षाय धनाय पवस्व ) शत्रुको हरानेवाली शक्ति, बल और धनके लिए शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १३३३ ] हे सोम ! ( सोतारः ) रस निकालनेवाले ऋत्विज ( ते रसं ) तेरे रसको ( मदाय पुनन्ति ) आनन्द प्राप्तिके लिए शुद्ध करते हैं, तथा ( महे द्युम्नाय सोमं ) महान् तेजस्वी सोमरसोंको छानते हैं ॥ २ ॥

[ १३३४ ] ( शिशुं जज्ञानं ) नये पंदा हुए बच्चेको जैसे शुद्ध करते हैं उसीप्रकार ऋत्विग्गण ( देवेभ्यः ) देवोंको देनेके लिए ( हरिं इन्दुं सोमं ) हरे रंगके चमकनेवाले सोमको ( पवित्रे मृजन्ति ) छलनीसे शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

[ १३३५ ] ( जातं अप्युरं ) तैयार हुए हुए तथा पानीमें मिलाये गए ( अंगं ) शत्रुका नाश करनेवाले ( गोभिः सुपरिष्कृतं ) गायके दूधमें मिलाये गए ( इन्दुं देवाः उप अयासिषुः ) सोमरसको देव प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

[ १३३६ ] ( यः इन्द्रस्य हृदं सनिः ) जो इन्द्रके हृदयका श्रेष्ठ सेवक है ( तं इत् नः गिरः सं वर्धन्तु ) ऐसे उस सोमका वर्धन हमारी वाणी उत्तम रीतिसे करे । ( वत्सं शिश्वरीः इव ) जिसप्रकार बालकको उसकी माता बढ़ाती है, उसीप्रकार हमारी वाणी सोमके यशको बढ़ावे ॥ २ ॥

[ १३३७ ] हे सोम ! ( नः गवे शं अर्षं ) हमारी गायोंके सुखके लिए तू कलशमें जा । ( पिप्युषी इषं धुक्ष-स्व ) पीण्डिक अन्न हमें भरपूर दे । हे ( उक्थ्य ) स्तुत्य सोम ! ( समुद्रं वर्धं ) कलशमें पानीको बढ़ा ॥ ३ ॥

॥ यहां ग्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ १२ ]

१३३८ आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बहिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

( ऋ. ८।४५।१ )

१३३९ बृहन्निदिष्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४५।२ )

१३४० अयुद्ध इद्युषा वृतः शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥ २१ ( ठ ) ॥

[ धा० ३ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४५।३ )

१३४१ य एक इद्विद्यते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥

( ऋ. १।८४।७ )

१३४२ यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाः प्राविवासति । उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥

( ऋ. १।८४।९ )

१३४३ कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

कदा नः शुश्रवद्भिर इन्द्रो अङ्ग

॥ ३ ॥ २२ ( कि ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।८४।८ )

[ १२ ] द्वादशः खण्डः ।

[ १३३८ ] ( ये ) जो ऋषि ( आ घा ) सामने बैठकर ( अग्निं इन्धते ) अग्निको प्रदीप्त करते हैं । ( युवा इन्द्रः येषां सखा ) तरण इन्द्र जिनका मित्र है, वे ( आनुषक् बर्हिः स्तृणन्ति ) क्रमसे देवोंके लिए आसन फैलाते हैं ॥ १ ॥

[ १३३९ ] ( युवा इन्द्रः येषां सखा ) तरण इन्द्र जिनका मित्र है ऐसे ( एषां इध्मः बृहत् इत् ) इन ऋषियोंकी समिधा बहुत है । ( शस्त्रं भूरि ) स्तोत्र भी बहुत हैं ( स्वरुः पृथुः ) शस्त्र भी बड़े-बड़े हैं ॥ २ ॥

[ १३४० ] ( युवा इन्द्रः येषां सखा ) तरण इन्द्र जिसका मित्र है, वह ( अयुद्धः इत् ) युद्ध करनेकी इच्छा न रखते हुए भी ( युद्या वृत् ) योद्धाओंसे युद्ध शत्रुको ( सत्वभिः शूरः ) अपने बलकी सहायतासे शूरवीर होते हुए ( आजति ) हरा देता है ॥ ३ ॥

[ १३४१ ] ( यः एकः इत् ) जो अकेला ही इन्द्र ( दाशुषे मर्ताय वसु विद्यते ) बान देनेवाले याजकको धन देता है, वह ( अप्रतिष्कृतः इन्द्रः ) पराजित न होनेवाला इन्द्र ( अंग ईशानः ) उसीसमय इस सब जगत्का स्वामी होता है ॥ १ ॥

[ १३४२ ] ( बहुभ्यः यः चित् हि ) बहुत मनुष्योंमेंसे जो यजमान ( सुतावान् ) सोमयाग करके ( त्वा ) तेरी ( आ विवासति ) आराधना करता है, ( तत् ) उसको ( इन्द्रः ) इन्द्र ( उग्रं शवः ) उग्र बल ( अंग आपत्यते ) बहुत जल्दी देता है ॥ २ ॥

[ १३४३ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( कदा ) कब ( अ-राधसं मर्तं ) बान न देनेवाले मनुष्यको ( पदा क्षुम्पं इव ) पैरोंसे जिसप्रकार फूलोंको कुचलते हैं, उसीप्रकार ( स्फुरत् ) नष्ट करेगा ? हे ( अंग ) प्रिय ! ( नः गिरः कदा शुश्रवत् ) वह हमारी स्तुति कब सुनेगा ॥ ३ ॥



१३४४ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे

॥ १ ॥ ( ऋ. १।१०।१ )

१३४५ यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति

॥ २ ॥ ( ऋ. १।१०।२ )

१३४६ युंक्ष्व हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर

॥ ३ ॥ २३ ( बी ) ॥

[ धा० २५ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१०।३ )

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

॥ इति पञ्चमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥ पञ्चमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

[ १३४४ ] हे ( शतक्रतो ) सैंकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( गायत्रिणः त्वा गायन्ति ) उद्गाता तेरी स्तुतिका गान करते हैं। ( अर्किणः अर्कं अर्चन्ति ) अर्चना करनेवाले पूजनीय इन्द्रकी अर्चना करते हैं। ( ब्रह्माणः त्वा ) अन्य ऋत्विज भी तेरी महिमा गाते हैं। लोग ( वंशं इव ) जिसप्रकार बांसको ऊपर तठाते हैं, उसीप्रकार तेरा महत्त्व वर्णन करके तुझे ( उत् येमिरे ) उठाते हैं ॥ १ ॥

[ १३४५ ] ( यत् ) जब यजमान ( सानोः सानु आरुहः ) समिधा आदि लानेके लिए पहाड़की चोटीपर चढता है, तब वह ( भूरि कर्त्वं अस्पष्ट ) बहुत प्रयत्न करता है। ( तत् इन्द्रः ) उस समय इन्द्र ( अर्थं चेतति ) यजमानका उद्देश्य जानता है और ( वृष्णिः यूथेन ) मनोरथकी वृष्टि करनेवाला वह इन्द्र देवोंके साथ यज्ञभूमिमें ( एजति ) आता है ॥ २ ॥

[ १३४६ ] ( सोमपाः ) सोम पीनेवाला इन्द्र ( केशिना वृषणा ) उत्तम अयालवाले, बलवान् ( कक्ष्यप्राः हरी ) पुष्ट शरीरवाले अपने धोड़ोंको ( युंक्ष्व हि ) अवश्य जोड़ता है। ( अथ ) बावमें हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः गिरां उपश्रुतिं चर ) हमारी स्तुति सुननेके लिए पासमें आ ॥ ३ ॥

॥ यहां बारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

## दशम अध्याय

इन्द्र

इस दशम अध्यायमें सोमका वर्णन विशेष रूपसे है। पर उसके साथ अन्य देवोंका भी वर्णन है। उनमेंसे इन्द्र देवताका वर्णन प्रथम देखिए—

१ इन्द्रः कदा अ-राधसं मर्तं, पदा क्षुम्पं इव,

स्फुरत् [ १३४३ ]- इन्द्र कब, पाँवोंसे फूलोंकी रोंवनेके समान, फंजूस दान न देनेवाले मनुष्यको रोंवेगा ?

उदार मनुष्य ही समाजमें रहें। अनुवार मनुष्य समाजको परेशान करता है। यह भाव यहां है।

२ इन्द्रः उग्रं शवः आपत्यते [ १३४२ ]- इन्द्र उग्र



बल देता है। वह इन्द्र अपने उपासकोंको बलवान् बनाता है।

३ इन्द्रः ओजसा महान् [ १३०७ ]- इन्द्र अपने तेजसे महान् है।

४ विश्वा इत् इन्द्रस्य भक्षत [ १३१९ ]- सब प्रकारके धन निश्चयसे इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं।

५ जातः ओजसा वसूनि जनिमानि [ १३१९ ]- इन्द्र उत्पन्न होते ही अपनी शक्तिसे सब धन उत्पन्न करता है।

६ अलर्षिराति वसुदां उप स्तुहि। इन्द्रस्य रातयः भद्राः [ १३२० ]- पापरहित तथा दान करनेवाले पुरुषोंको धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो। इन्द्रके दान कल्याण करनेवाले हैं।

७ यः मनः दानाय चोदयन्, विधतः अस्य कामं न रोषति [ १३२० ]- जो इन्द्र अपने मनको दान देनेके लिए प्रेरित करता है तथा जो दान देनेवालेकी इच्छाको नष्ट नहीं करता।

८ हे इन्द्र ! यतः भयामहे ततः नः अभयं कृधि [ १३२१ ]- हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय हो वहांसे हमें निर्भय कर।

९ नः तव तत् ऊतये शग्धि। द्विषः वि जाहि। मृधः वि [ १३२१ ]- तू हमें अपने संरक्षणोंसे सुरक्षित करनेमें समर्थ है। द्वेष करनेवालोंको हरा और हिंसक शत्रुओंको दूर कर।

१० यत् कण्वाः इन्द्रं स्तोमैः यज्ञस्य साधनं अक्रत। आयुधा जामि ब्रुवत [ १३०८ ]- जब कर्षवोंने इन्द्रको स्तोत्रोंके द्वारा यज्ञका साधन बनाया, तब शस्त्रोंके उपयोग करनेका कोई कारण नहीं बचा, ऐसा लोग कहने लगे। इतनी शान्ति स्थापित हो गई कि शस्त्रोंसे लड़नेका कोई कारण ही नहीं बचा ऐसा लोगोंको प्रतीत हुआ।

११ हे राधसः पते ! त्वं महः राधसः क्षयस्य विधर्त्ता असि [ १३२२ ]- हे धनपते ! इन्द्र ! निश्चयसे तू महान् धनोंका और महान् धरोंका स्वामी है। इन्द्रके पास बहुत सारे धन भी हैं और बहुतसे घर भी।

१२ येषां युवा इन्द्रः सखा, शूरः अयुद्धः इत् युधा वृत्तं सत्वभिः आजति [ १३४० ]- जिनका मित्र तबण इन्द्र है, वे शूर युद्धकी इच्छा न होते हुए भी योधाओंसे युक्त शत्रुको अपने सामर्थ्यसे हराते हैं।

१३ यः एकः इत् दाशुषे मर्त्या वसु विदयते। अमतिष्कुतः इन्द्रः ईशानः [ १३४१ ]- जो अकेलाही इन्द्र दान देनेवाले मनुष्यको धन देता है, ऐसा न हारनेवाला इन्द्र निश्चयसे सबका ईश्वर है।

ऐसे बलशाली इन्द्रको सोम पीनेके लिए दिया जाता है—

## इन्द्रका सोम पीना

१ शूरः एषः अण्व्या इन्द्रस्य निष्कृतं आशुभिः रथेभिः धिया याति [ १२६६ ]- यह शूर सोम अंगुलियोंसे दबाकर निकालनेके बाद इन्द्रके स्थानके पास शीघ्र जानेवाले रथसे बुद्धिपूर्वक जाता है।

पहले सोमको कूटते हैं, बादमें अंगुलियोंसे दबाकर उसका रस निकालते हैं, फिर उसे इन्द्रके रहनेके स्थानपर ले जाते हैं। उसका रथसे जाना आलंकारिक है।

२ इन्द्राय पातवे त्रितस्य योषणः हरि इन्दुं अग्निभिः हिन्वन्ति [ १२७५ ]- इन्द्रको सोमरस देनेके लिए त्रित ऋषिकी अंगुलियां इस हरे रंगके सोमको पत्थरोंसे कूटती हैं।

३ वृषा हरिः पुनानः इन्दुः छाष्मी एषः अन्तरिक्षे इन्द्रं आ असिष्यदत् [ १२९० ]- बल बढानेवाला, हरे रंगका शुद्ध होनेवाला और चमकनेवाला यह सोम छलनीमेंसे होकर इन्द्रके पास पहुंचता है।

४ देवः इन्दुः, कविना इषितः, इन्द्राय मंहयन्, द्रोणानि अभि धावति [ १२९७ ]- ( छुलोकसे ) प्रकाशित होनेवाला वह सोम कविके द्वारा प्रेरित होनेके बाद इन्द्रको महत्व देकर कलशमें जाता है।

५ उदप्रुतः तव द्रप्सः मदाय इन्द्रं वावृधुः [ १३२७ ]- पानीके साथ मिलनेवाले तेरे रस आनन्दके लिए इन्द्रका यश बढाते हैं।

६ देवासः कं त्वां अमृताय पपुः [ १३२७ ]- देव-गण आनन्द देनेवाले तुझ सोमरसको अमरता प्राप्त करनेके लिए पीते हैं।

७ वृत्रघ्ने दक्षिणावते इन्द्राय पातवे सद्नासदे नरे परिषिच्यसे [ १३३१ ]- वृत्रको मारनेवाले तथा दान देनेवाले इन्द्रके पीनेके लिए और यज्ञ - मण्डपमें बैठे हुए यजमानके लिए यह सोमरस छाना जाता है।

इसप्रकार इन्द्रको पीनेके लिए सोमरस देनेका वर्णन है।

## अग्नि

अग्नि विषयक मंत्र भी थोड़ेसे इस अध्यायमें हैं—

१ स्वे दुरोणे यः समिद्धः दीदाय, यविष्ठं उर्वी रोदसी अन्तः चित्रभानुं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यंचं महा नमसा अगन्म [ १३०४ ]- अपने यज्ञ स्थानमें अग्निको उत्तम रीतिसे प्रदीप्त किया जाता है, उस तबण, चित्राक्ष



छालोक और पृथ्वीलोकके बीचमें विशेष प्रकाशमान्, उत्तम रीतिसे बी गई आहुतिके कारण सर्वत्र प्रकाशमान् अग्निके पास हम नमस्कार करते हुए जाते हैं।

२ महा विश्वा दुरितानि साह्यान् जातवेदाः अग्निः वमे आ स्तवे । सः गृणतः नः दुरितात् अवघात् रक्षिषत् । उत मघोनः अस्मान् रक्षिषत् [ १३०५ ]- अपने महान् प्रभावसे सब पापोंको दूर करनेवाला, ज्ञानका प्रसारक अग्नि यज्ञशालामें प्रशंसित होता है। वह स्तुति करनेवाले हमें पापोंसे व निन्दित कर्मोंसे दूर करता है और हजिको पासमें रखनेवाले हमारी रक्षा करता है।

३ हे अग्ने ! त्वे चक्षु सुषणनानि सन्तु [ १३०६ ]- हे अग्ने ! तेरे धन हमारे द्वारा स्वीकार करने योग्य हों।

यहां यज्ञशालामें अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, उसकी स्तुति की जाती है, उत्तम हवनीय पदार्थोंका उसमें हवन किया जाता है, इसप्रकार प्रदीप्त हुई हुई अग्नि अनेक प्रकारसे लोगोंकी रक्षा करती है, इत्यादि वर्णन यहां आये हैं।

### देवोंको सोमरस

इन्द्रको सोमरस देनेका वर्णन पीछे आया है। अब देवोंको सोमरस बिये जानेका वर्णन देखते हैं—

१ हे सोम ! नः इष्टये राघसे वायुं मित्रावरुणा मारुतं शर्घः देवान् द्यावापृथिवी मत्सि [ १२५४ ]- हे सोम ! हमें अन्न और धन प्राप्त हो इसलिए वायु, मित्र, वरुण, मरुत, सबदेवों तथा छालोक और पृथिवीको सन्तुष्ट कर।

२ पवमानः सोमः इन्द्रे ओजः, सूर्ये ज्योतिः, अपां गर्भः देवान् आवृणीत [ १२५५ ]- छने हुए सोमने इन्द्रमें सामर्थ्य तथा सूर्यमें तेज बढ़ाकर और पानीमें मिलकर देवोंकी सेवा की।

३ देवेभ्यः सुतः पवित्रे अक्षरत् विश्वा धामानि आविशन् [ १२८१ ]- देवोंको देनेके लिए यह सोमरस छलनीसे छाना जाता है। यह देवोंके सब स्थानोंमें पहुंचता है।

४ दक्षसाधनः स्वर्जित् पयः इन्द्राय वायवे पवित्रे परि बिच्यते [ १२८७ ]- बल बढ़ानेका साधन तथा स्वर्गको जीतनेवाला यह सोम इन्द्र और वायुको देनेके लिए छलनीसे छाना जाता है।

५ देवावीः अघशंसहा अदाभ्यः पुनानः शुष्मी पयः अर्षति [ १२९१ ]- देवोंके देनेके लिए पाणियोंको

नष्ट करनेवाला तथा न बबनेवाला यह सोम छाना जाता है। छनकर बर्तनमें गिरता है।

६ देवयुः पीतये सुतः वृषा रक्षांसि विघ्नन् पवित्रे अर्षति [ १२९२ ]- देवोंके देनेके लिए निचोड़ा गया यह बल बढ़ानेवाला सोमरस राक्षसोंको मारकर छलनीसे छाना जाता है।

७ यः विश्वान् देवान् मदेन सह इत् परि गच्छति [ १३२९ ]- यह सोमरस सब देवोंको आनन्द देनेकी इच्छासे देवोंके पास जाता है।

८ जातं अप्नुरं भंगं गोभिः सुपरिष्कृतं इन्दुं देवाः उप अयासिषुः [ १३३५ ]- तैय्यार किए गए, पानीमें मिलाये गए शत्रुका नाश करनेवाले तथा गायके दूधमें मिश्रित सोमके पास देव जाते हैं।

९ इन्द्रस्य हृदं सनिः तं नः गिरः संवर्धन्तु [ १३३६ ]- इन्द्रके हृदयको आनन्द देनेवाला यह सोम है, हमारी वाणी उसकी स्तुति करके उसके यज्ञकी बढ़ावे।

यह सोमरस तैय्यार करके सर्व प्रथम देवोंको समर्पित किया जाता है। बादमें उसे ऋत्विगण पीते हैं, ऐसा यह सोम पर्वतपर - हिमालयके ऊंचे शिखरपर मिलता है।

### पर्वतपर सोम

यह सोम हिमालय पर्वतकी ऊंची चोटीपर उगता है। इस विषयमें मंत्रोंमें वर्णन इस प्रकार है—

१ गिरिषु क्षयं दधे [ १३१७ ]- पर्वतपर यह सोम अपना घर बनाता है।

२ दिवः शिशुः इन्दुः [ १२७७ ]- छालोकमें जन्मा हुआ यह सोम है। छालोकका अर्थ है हिमालयकी ऊंची चोटी।

३ दिवः मूर्धा वृषा [ १२८८ ]- छालोकमें ऊंचे स्थानपर यह बल बढ़ानेवाला सोम रहता है।

४ वृष्टिद्यावः स्वर्विदः सुतासः इन्दवः [ १३२८ ]- स्वर्गलोकसे वृष्टि करनेवाले, स्वर्गको जाननेवाले ये सोमरस हैं। सोम पर्वतपर ऊंचे स्थानपर रहता है। वहांसे वृष्टि होती है। वह सोम स्वर्गमें रहता है, इसलिए वह स्वर्गको जानता है। ये वर्णन सोमलता हिमालयके ऊंचे शिखरपर उगती है यह बात दिखाते हैं।

### सोमका पत्थरोंमें कूटा जाना

१ वीते अध्वरे ब्राधभिः सं वसते [ १३१७ ]-



यक्रमें सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है और बावमें उसका रस अंगुलियोंसे दबाकर निकाला जाता है।

### दस अंगुलियां

ऋत्विजोंकी दस अंगुलियां उस कूटे हुए सोमको दबाकर रस निकालती हैं। इस विषयमें वर्णन इस प्रकार है—

१ त्वं दश हरितः मर्मुज्यन्ते [१२७९]— उस सोमको दस अंगुलियां शुद्ध करती हैं।

२ एषः वृषा कनिक्रदत् दशभिः जामिभिः यतः द्रोणानि अभि धावति [१२८३]— यह बल बढ़ानेवाला सोम शब्द करता है और दस बहिनों अर्थात् अंगुलियोंके द्वारा दबकर कलशमें जाता है।

३ द्विः पञ्च सखायः स्वयशसं अद्रिसंहतं इन्द्रस्य प्रियं काम्यं ऊर्मयः प्रस्नापयन्ति [१३३०]— दसों अंगुलियां स्वयं यशस्वी तथा पत्थरोंसे कूटे हुए तथा इन्द्रको प्रिय और इष्ट लगनेवाले सोमको पानीसे नहलाती हैं।

४ स्वायुधं मदिन्तमं हरिं यातवे दक्षक्षिपः हिंयन्ति [१२७३]— उत्तम शस्त्रोंका उपयोग करनेवाले, आनन्द-वायक और हरे रंगके सोमको देवोंके पास लेजानेके लिए दसों अंगुलियां रस निकालती हैं।

इस प्रकार दसों अंगुलियों द्वारा दबाकर रस निकालनेका वर्णन इस अध्यायमें है। ऐसा यह सोमरस भेडके वालोंकी छलनीसे छाना जाता है, उस विषयका वर्णन अब देखिए—

### सोम छाना जाता है

१ अधि सानौ अव्ये पवित्रे बृहत् वावृधे [१२५३]— अधिक ऊंचाई पर रखे हुए वालोंकी छलनीसे सोमरस अधिक बढ़ता है, छाना जाता है।

२ हरिः एषः देवः देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्षति [१२६४]— यह हरे रंगका चमकनेवाला देवोंके लिए निचोड़ा गया सोमरस छलनीसे छाना जाता है।

३ एषः अव्या वारेभिः अव्यत [१२७४]— यह सोमरस भेडके वालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

४ वाजी नृभिः हितः अव्यं वारं विधावति [१२८०]— यह बल बढ़ानेवाला तथा याजकों द्वारा रखा गया सोमरस भेडके वालोंकी छलनीसे नीचेके बर्तनमें गिरता है।

५ वाजी रक्षोहा सः पवमानः अव्ययं वारं विधावति [१२९४]— यह बलवान् और राक्षसोंको मारनेवाला, छाना जानेवाला सोमरस भेडके वालोंकी छलनीसे छाना जाता है।

६ हर्यतं हरिं वारेण परि पुनन्ति [१३२९]— पवित्र और हरे रंगका सोम छलनीसे छाना जाता है।

७ शिशुं जवानं इव, देवेभ्यः हरिं इन्दुं सोमं पवित्रे मृजन्ति [१३३४]— नये जन्मे हुए बच्चेको जिस-प्रकार स्वच्छ करते हैं, उसीप्रकार देवोंको देनेके लिए निचोड़ा गया हरा सोमरस पवित्र करनेवाली छलनीसे शुद्ध किया जाता है।

इसप्रकार सोमरस छाननेके वर्णन अनेक मंत्रोंमें हैं। भेडके वालोंकी छलनी बनाते हैं। उस छलनीको एक कलशके मुंह पर रखते हैं और उस पर दूसरे कलशसे सोमरस उड़ोला जाता है, तब वह छनकर नीचेके कलशमें टपकता है। उसके टपकनेका शब्द होता है। उसके शब्द होनेका वर्णन इस प्रकार है—

### सोम शब्द करता है

१ वग्वनुं आविष्कणोति [१२५९]— सोम शब्द प्रकट करता है।

२ एषः पवमानः धारया कनिक्रदत् [१२६२]— यह छाना जानेवाला सोमरस धारासे शब्द करता है।

३ हरिः सः पवित्रे कनिक्रदत् योनिं अभि अर्षति [१२९३]— वह हरे रंगका सोमरस छलनीसे शब्द करता हुआ नीचेके कलशमें जाता है।

४ अद्रिभिः सुप्वाणः त्वं कनिक्रदत् अभ्यर्ष [१३२५]— पत्थरोंसे कूटकर निकाला गया तू शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें आ।

५ पीतये सुतः हरिः एषः क्रन्दन् योनिं अभि अर्षति [१२७८]— पीनेके लिए निकाला गया यह सोमरस अपने प्रिय कलशमें शब्द करता हुआ जाता है।

६ इन्दुः एषः पवमानः अचिक्रदत् [१२८९]— चमकनेवाला यह शुद्ध होता हुआ सोमरस शब्द करता हुआ छाना जाता है।

इस प्रकार सोमरस छाना जाता है और शब्द करता है। ऊपरके बर्तनसे नीचेके बर्तनमें यदि कोई द्रव पदार्थ गिराया जाए तो उसका ऐसा शब्द तो होगा ही। वही यह शब्द है। उसका आलंकारिक वर्णन इसमें है।

### सोमका चमकना

सोमरस अन्धेरी जगहमें चमकता है। चमकनेका गुण सोमरसमें और सोमलतामें है। पर्यंतपर जहां उगती है,



वहाँ पर भी यह चमकती है, पर रस अधिक चमकता है। इसका वर्णन वेदमें इस प्रकार है—

१ देवः सोमः [ १३५४ ]- चमकनेवाला सोम ।

२ हरेः अजिरश्मैचिपः पवमानस्य चन्द्राः जीराः असृक्षत [ १३१० ]- हरे रंगके, सर्वत्र तेज फैलानेवाले, शुद्ध होनेवाले सोमरसकी तेजस्वी धारा बहती है।

३ पवमानः हरिः चन्द्रः [ १३११ ]- शुद्ध होनेवाला सोमरस हरे रंगका तेज फैलाता है।

४ हे पवमान ! रश्मिभिः व्यञ्जुहि [ १३१२ ]- हे सोमरस ! तू अपनी किरणोंसे व्याप्त हो।

५ अरुणः वृषा [ १३१६ ]- यह बलवान् सोम तेजस्व है।

इसप्रकार सोमरस चमकता है। सोमलताको कूटकर उसका रस निकालते हैं। उसमें पानी मिलाकर छानते हैं, बावमें उसमें गायका दूध मिलाया जाता है। इस विषयमें निम्न वर्णन है—

### गायके दूधमें मिलाना

१ गोपाः [ १२५३ ]- सोम गायें पालता हैं। गायके दूधमें वह मिलाया जाता है।

२ गाः अभि अचिक्रदत् [ १३१६ ]- गायके पास शब्द करता हुआ जाता है।

३ स्वसारः आपः गाः अभि उदासरन् [ १३१७ ]- अंगुली, पानी और गाय सोमके पास आती हैं। अंगुलियां बबाकर रस निकालती हैं, फिर उसमें पानी और गायका दूध मिलाया जाता है।

इसप्रकार सोममें गायका दूध मिलाया जाता है। पानी और गायें उसके सामने आती हैं, इसका अर्थ है कि उसमें पानी और गायका दूध मिलाया जाता है। अंशके लिए पूर्णका उपयोग, दूधके लिए गायका प्रयोग यह वेदोंकी पद्धति ही है।

### सोम युद्धमें जाता है

इन्द्र आदि देव सोमरस पीते हैं। इसकारण उनका उत्साह बढ़ता है। बावमें वे युद्धमें जाकर शत्रुको मारते हैं। यह सोमरसका कार्य है, ऐसा वर्णन वेद करता है—

१ पवमानः देवः अदाभ्यः ह्वरांसि अति धावति [ १२६१ ]- यह शुद्ध होनेवाला, न बबाया जानेवाला सोम शत्रुओंको कुचलता जाता है।

२७ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

२ पवमानः एषः रजांसि तिरः, दिवं विधावति [ १२६२ ]- शुद्ध होनेवाला यह सोमरस शत्रुओंको दूर करते हुए छलोकमें मानों दौड़ता जाता है।

३ एषः पवमानः अस्तृतः रजांसि तिरः, दिवं व्यासरत् [ १२६३ ]- यह शुद्ध होनेवाला अपराजित सोम शत्रुओंको दूर करता हुआ स्वर्गकी ओर जाता है।

४ एषः पुनानः द्विषः अपघ्नन् पवित्रे अधितो- शते [ १२८६ ]- यह पवित्र होनेवाला सोम शत्रुओंको दूर करते हुए पवित्र स्थानपर कूटा जाता है।

शत्रुओंको दूर करनेका अर्थ है, युद्धमें जाना और शत्रुओंके साथ लड़ना। यह वीरोंका कार्य है। वीर सोम पीते हैं, उस कारण वे उत्साहित होकर शत्रुओंको दूर करते हैं। यह सोमके उत्साहसे होता है, इसलिए सोम ही यह सब करता है ऐसा वर्णन यहां किया है।

### सोमको पानीमें मिलाना

१ एषः देवः अपः विगाहते [ १२५७ ]- यह दिव्य सोम पानीमें मिलाया जाता है।

२ वाजी सिन्धूनां पतिः भवन् [ १२७० ]- यह बलवान् सोम नदीका स्वामी हो गया है। पानीमें मिलाया गया है।

३ घृता वसानः निर्णिजं परियासि [ १३१८ ]- पानीमें मिलाये जानेके बाद छलनीमें जाता है।

इसप्रकार सोमरसको पानीमें मिलाया जाता है।

### सोम धन देता है

१ एषः देवः दाशुषे रत्नानि दधत् [ १२५७ ]- यह सोम बाताको रत्न देता है।

२ एषः शूरः विश्वानि वार्या सिषासति [ १२५८ ]- यह शूर सोम सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य धन देता है।

३ एषः ओजसा नृम्णा दधानः [ १२७१ ]- यह सोम अपने सामर्थ्यसे धन देता है।

४ नः रयिं आधावत [ १३२८ ]- हे सोमरस ! हमें धनके पास पहुंचा।

### सोम उत्तम वीर्य देता है

१ वाजसातमः स्तोत्रे सुवीर्यं दधत् [ १३१२ ]- बल बढ़ानेवाला यह सोम स्तुति करनेवालेको उत्तम वीर्य



देता है। सोमरस पीनेसे शरीर उत्तम बलयुक्त होता है, इस कारण उत्तम सन्तान होती है।

### पवित्र करनेवाली वेदवाणी

वेदमंत्रोंमें पवमानसूक्तका महत्व इसप्रकार वर्णित है—

१ यः ऋषिभिः संभृतं रसं पावमानीः अध्येति, सः सर्वं पूतं अश्नाति [ १२९८ ]— जो ऋषियों द्वारा एकत्रित किए गए पावमानी मंत्रसंग्रहकी ज्ञान - रसका अध्ययन करता है, वह सब प्रकारके पवित्र अन्न खाता है।

२ तस्मै सरस्वती क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुह [ १२९९ ]— जो पावमानी मंत्रका अध्ययन करता है, उसे सरस्वती दूध, घी, शहब और जल देती है।

३ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुधा [ १३०० ]— पवमानसूक्त कल्याण करनेवाले और उत्तम अन्न देनेवाले हैं।

४ देवैः समाहृताः पावमानीः देवीः नः इमं अथो अमुं लोकं दधन्तु, नः कामान् समर्धयन्तु [ १३०१ ]— देवों द्वारा एकत्रित की गई पावमानी देवी हमें इस लोकमें और उस लोकमें उत्तम स्थान देवे, और हमारी सब इच्छा पूर्ण करे।

५ देवाः येन पवित्रेण सदा आत्मानं पुनते, तेन पावमानीः नः पुनन्तु [ १३०२ ]— देव जिस पवित्रता करनेके साधनोंसे अपनी पवित्रता करते हैं, उन साधनोंसे ही पवमानसूक्त हमारी पवित्रता करे।

६ पावमानीः स्वस्त्ययनीः ताभिः नान्दनं गच्छति पुण्यान् भक्षान् भक्षयति, अमृतत्वं च गच्छति [ १३०३ ]— ये पवमान सूक्त कल्याण करनेवाले हैं, इनकी सहायतासे आनन्द मिलता है, पुण्यकारक अन्न खानेके लिए मिलते हैं और अमरता प्राप्त होती है।

वेदमंत्रोंके विशेषकर पवमान सूक्तोंके अध्ययनसे मनुष्यकी उत्तम उन्नति होती है। सोमके गुण यदि मनुष्य अपने अन्दर बढावे तो मनुष्यकी उन्नति होगी। इसकारण पाठक इस पर ध्यान दें।

### सुभाषित

१ गोपाः प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् प्रजाः जनयन् अक्रान् [ १२५३ ]— गाय और इन्द्रियोंका पालन करनेवाला, भुवनका विशेष धर्मसे पालन करके, सन्तान उत्पन्न

करके अर्थात् गृहस्यधर्मका विशेष रीतिसे पालन करके सबसे श्रेष्ठ होता है।

२ वृषा अद्रिः अधिस्तानौ पवित्रे बृहन् वावृधे [ १२५३ ]— बलवान् वह पर्वतके समान विशाल होकर, ऊँचे स्थान पर रहकर, पवित्र होकर अधिक श्रेष्ठ होता है।

३ हे देव ! नः इष्टये राधसे मत्सि [ १२५४ ]— हे देव ! हमारी इष्टसिद्धि और धनकी प्राप्तिके लिए आनन्दसे सहायता कर।

४ महिषः तत् महत् चकार [ १२५५ ]— उस महा बलवान् ने उस महान् कार्यको किया है।

५ पवमानः इन्द्रे ओजः अदधात् [ १२५५ ]— सोमके कारण इन्द्रमें सामर्थ्य बढा।

६ इन्दुः सूर्ये ज्योतिः अजनयत् [ १२५५ ]— सोमने सूर्यमें प्रकाश स्थापित किया।

७ विप्रैः अभिष्टुतः एषः देवः दाशुषे रत्नानि दधत् [ १२५७ ]— ब्राह्मणों द्वारा प्रशंसित यह देव दान-शीलको रत्न देता है।

८ एषः शूरः विश्वानि वार्या सत्वभिः यन् इव सिषासति [ १२५८ ]— यह शूर सब धनोंको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करके उसका उपभोग करता है।

९ एषः देवः रथर्यति, दिशस्यति, वज्रवन् आविष्करोति [ १२५९ ]— यह विद्वान् देव रथमें बैठनेकी इच्छा करता है, लोगोंको उन्नतिकी मार्ग दिखाता और उत्तम उप-देशके शब्दोंका व्याख्यान करता है।

१० एषः देवः हरिः क्रतायुभिः विपन्युभिः वाजाय मृज्यते [ १२६० ]— यह दुःखोंका हरण करनेवाला ज्ञानी वीर सत्यके लिए अपनी सम्पूर्ण आयुको खपानेवाले तथा हितकारक कर्म करनेवालोंके द्वारा, युद्धमें विजय प्राप्तिके लिए तैयार किया जाता है।

क्रतायुः ( क्रतु-आयुः )— सत्यके लिए, श्रेष्ठ कर्मोंके लिए जिसकी आयु खर्च होती है। विपन्युः ( वि-पन्युः )— विशेष हितकारी कर्म करनेवाला। हरिः— दुःखोंका हरण करनेवाला। देवः— प्रकाशमान्, वीर, विजयकी इच्छा करनेवाला। मृज्यते— शूद्ध किया जाता है, निर्दोष बनाया जाता है।

११ अदाभ्यः हरांसि अति धावति [ १२६१ ]— न दबाया जानेवाला वीर शत्रु पर आक्रमण करने जाता है।

१२ पवमानः रजांसि तिरः, दिवं विधावति



[ १२६२ ]- शुद्ध होनेवाला मनुष्य रजोगुणको दूर करके स्वर्गको जानेके मार्ग पर जाता है ।

१३ स्वध्वरः- अस्तुतः रजांसि तिरः दिवं व्यासरत् [ १२६३ ]- उत्तम हिसारहित कार्य करनेवाला, पराजित न होनेवाला, रजोगुणोंको दूर करके स्वर्गके रास्तेसे आगे जाता है ।

१४ एषः हरिः प्रत्नेन जन्मना देवेभ्यः सुतः पवित्रे अर्षति [ १२६४ ]- यह दुःख दूर करनेकी इच्छा करनेवाला जन्मसे ही देवोंके लिए निर्मित हुआ है, इसप्रकार पवित्रताके मार्ग पर जाता है ।

१५ एषः शूरः आशुभिः रथेभिः गच्छन् धिया याति [ १२६५ ]- यह शूर पुरुष शीघ्रगामी रथोंसे जाकर बुद्धिपूर्वक उन्नतिके मार्गसे आगे जाता है ।

१६ अभृतासः आशान् बृहते देवतातये, पुरु धियायते [ १२६७ ]- जहाँ अमरदेव रहते हैं, उस महान् यज्ञमें यह बहुतसे काम करनेकी इच्छा करता है ।

१७ एषः हितः अन्तः शुन्ध्यावता पथा विनीयते [ १२६९ ]- इस हितकारक साधकको अन्तर्यामीके शुद्ध होनेके मार्गसे आगे ले जाया जाता है ।

१८ ओजसा नृम्णा दधानः एषः शृंगाणि दोधुवत् [ १२७१ ]- अपने सामर्थ्यसे धनोंको धारण करनेवाला यह अपने सींग हिलाता है ।

१९ वसूनि पिबेद नः एषः परुषा अति ययिवान्, शादेषु अव गच्छति [ १२७२ ]- निवास करके रहनेवाले दुष्टोंको कष्ट देता हुआ अपनी शक्तिसे उसके आगे जाकर, मारनेके योग्य उस दुष्टको कुचलता हुआ चला जाता है ।

२० एषः सहस्रिणं वाजं गच्छन् [ १२७४ ]- यह हजारों प्रकारके अश्व देनेके लिए जाता है ।

२१ एषः मानुषीषु विश्व इयेनः न आ सीदति [ १२७६ ]- यह मानवीय प्रजाओंमें, इयेन पक्षीके समान, ऊँचे स्थान पर जाकर बैठता है ।

२२ वाजी विश्वचित् मनसः पतिः नृभिः हितः [ १२८० ]- बलवान् यह सर्वज्ञ और मनका स्वामी होकर मनुष्यों द्वारा सम्मानके योग्य स्थानमें रखा जाता है ।

२३ अमर्त्यः वृत्रहा देववीतमः देवः अधि योनौ शुभायते [ १२८२ ]- अमर, शत्रुओंको मारनेवाला और देवोंको बहुत आनन्द देनेवाला ऐसा यह देव अपने स्थानमें सुशोभित होता है ।

२४ एषः सवि सूर्ये भरोचयत् [ १२८४ ]- यह सुलोकमें सूर्यको प्रकाशित करता है ।

२५ दक्षसाधनः एषः स्फुर्जित् [ १२८७ ]- बल बढ़ानेका साधनरूप यह सुखोंको जीतकर प्राप्त करनेवाला है ।

२६ गव्युः हिरण्ययुः सप्राजित् अस्तुतः अचि- क्रदत् [ १२८९ ]- गाय पालनेवाला, सोना पासमें रखनेवाला, एकदम सब शत्रुओंको जीतनेवाला, अपराजित और शब्द करता है ।

२७ देवावीः अघशंसहा अदाभ्यः शुष्मी एषः अर्षति [ १२९१ ]- देवोंका रक्षक, पापियोंका संहारक, न बबाया जानेवाला यह बलवान् आगे जाता है ।

२८ वृषा रक्षांसि विघ्नन् अर्षति [ १२९२ ]- बल- वाला यह राक्षसोंको मारता हुआ आगे जाता है ।

२९ वृत्रहा वृषा वरिवोवित् अ-दाभ्यः, वाजं इव, असरत् [ १२९६ ]- शत्रुको मारनेवाला बलवान् वीर, धन देनेवाला तथा किसीसे न बबनेवाला होकर घोड़ेके समान आगे जाता है ।

३० यः ऋषिभिः संभृतं रसं अध्येति, सरस्वती तस्मै क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे [ १२९९ ]- जो ऋषियों द्वारा इकट्ठे किए हुए ज्ञानका अध्ययन करता है उसे सरस्वती वृष, घी, शहव और जल देती है ।

३१ ऋषिभिः संभृतः रसः ब्राह्मणेषु अमृतं हितं [ १३०० ]- ऋषियों द्वारा इकट्ठा किया गया यह ज्ञानरस ब्राह्मणोंमें अमृतके रूपमें स्थित है ।

३२ देवैः समाहृताः पादमानीः देवीः नः इमं अथो अमुं लोकं दधन्तु, नः कामान् समर्धयन्तु [ १३०१ ]- देवोंके द्वारा सम्पादित, ये पवित्रता करनेवाली देवियाँ हमें इस और उस लोकमें सुख देवें और हमारी कामनायें पूर्ण करें ।

३३ देवाः येन पवित्रेण आत्मानं पुनसे, तेन नः पुनन्तु [ १३०२ ]- देवगण जिस पवित्र करनेके साधनसे अपनेको पवित्र करते हैं, उन साधनोंसे वे हमें पवित्र करें ।

३४ पादमानीः स्वस्त्ययनीः, ताभिः नान्दनं गच्छति, पुण्यान् भक्षान् भक्षयति, अमृतत्वं गच्छति [ १३०३ ]- पवित्रता करनेवाली और कल्याण करनेवाली ये ऋचायें हैं । इनसे आनन्द प्राप्त होता है, पवित्र अन्न खानेको मिलता है तथा अमृतत्वकी प्राप्ति होती है ।

३५ स्वाहुतं चित्रभानुं नमसा अगन्म [ १३०४ ]-



जिसमें उत्तम हवन किया गया है, उस प्रकाशसे युक्त अग्निके पास नमस्कार करते हुए हम जावें ।

३६ मन्हा विश्वा दुरितानि साद्धान् अग्निः दमे आस्तये [ १३०५ ]- अपने महान् प्रभावसे सब पापोंको दूर करनेवाले अग्निकी यज्ञशालामें स्तुति की जाती है ।

३७ सः नः दुरितात् अवद्यात् रक्षिषत् [ १३०५ ]- वह हमारी पापोंसे और निन्दित कर्मोंसे रक्षा करता है ।

३८ हे अग्ने ! त्वे वसु सुषणनानि सन्तु [ १३०६ ]- हे अग्ने ! तेरे पासके धन हमारे द्वारा स्वीकार करने योग्य हों ।

३९ नः स्वस्तिभिः पात [ १३०६ ]- हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित कर ।

४० इन्द्रः ओजसा महान् [ १३०७ ]- इन्द्र अपने तेजसे महान् है ।

४१ आयुधा जामि ब्रुवन [ १३०८ ]- शस्त्र अब निरूपयोगी हो गए, ऐसा लोग कहने लगे ।

४२ वाजसातमः सुवीर्यं दधत् रश्मिभिः व्यश्नु-  
हि [ १३१२ ]- बल बढ़ानेवाला तू उत्तम वीर्य धारण करके अपने तेजसे सब जगको व्याप्त कर दे ।

४३ यः नर्यः [ १३१३ ]- जो सब मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

४४ वृषा हरिः, राजा इव, दस्मः [ १३१६ ]- तू बल बढ़ानेवाला तथा दुःखोंका हरण करनेवाला, राजाके समान, दर्शनीय है ।

४५ दुरिना अपसेधन् नः मृड [ १३१८ ]- पापोंको दूर करके हमें सुखी कर ।

४६ वसूनि ओजसा जनिमानि भागं प्रति दीधि-  
मः [ १३१९ ]- धन अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न करके उसका ठीक भाग हम लेते हैं ।

४७ इन्द्रस्य रातयः भद्राः [ १३२० ]- इन्द्रके दान कल्याणकारी हैं ।

४८ यः मनः चोदयत् [ १३२० ]- जो मनोको उत्तम प्रेरणा देता है ।

४९ विधतः कामं न रोषति [ १३२० ]- उपासककी इच्छा वह नष्ट नहीं करता ।

५० हे इन्द्र ! यतः भयामहे ततः नः अभयं कृधि [ १३२१ ]- हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय उत्पन्न हो, वहांसे हमें भयरहित कर ।

५१ हे मघवन् ! नः तव ऊतये शग्धि, द्विषः जाहि, मृधः वि [ १३२१ ]- हे धनवान् इन्द्र ! हमें अपने रक्षणोंसे सुरक्षित कर, द्वेष करनेवालोंका पराभव कर, शत्रुओंको दूर कर ।

५२ हे राधसः पते ! त्वं महः राधसः क्षयस्य विधर्ता असि [ १३२२ ]- हे धनपते ! तू महान् धनोंके स्थानोंको धारण करनेवाला है ।

५३ त्वं मदिन्तमः सत्राजित् अस्तुतः [ १३२४ ]- तू आनन्द देनेवाला सब शत्रुओंको एक स्थान जीतनेवाला और अपराजित है ।

५४ द्युमन्तं शुष्मं आभर [ १३२५ ]- तेजस्वी बल हमें भरपूर दे ।

५५ महे दक्षाय धनाय पनस्व [ १३२२ ]- शत्रुको हरानेवाले बलके लिए और धनके लिए शुद्ध हो ।

५६ नः भवे शं [ १३३७ ]- हमारी गाथोंका कल्याण होवे ।

५७ पिप्युषीं इषं धुक्षस्व [ १३३७ ]- पोषण करने-  
वाले अन्न दे ।

५८ युवा इन्द्रः येषां सखा, अयुद्धः इत् युधा वृतं सत्वभिः शूरः आजतिः [ १३४० ]- तरुण इन्द्र जिनका मित्र है, वे वीर युद्धकी इच्छा न होते हुए भी अनेक योद्धाओंसे युक्त शत्रुको अपने बलोंसे शूरवीर होकर दूर करते हैं ।

५९ दाशुये मर्ताय वसु विदयते [ १३४१ ]- दान देनेवाले मनुष्यको वह इन्द्र धन देता है ।

६० अ-प्रतिष्कुतः इन्द्रः ईशानः [ १३४१ ]- जिसका पराभव नहीं होता ऐसा इन्द्र सबका ईश्वर है ।

६१ यः आविवासति, तत् उग्रं शवः इन्द्रः आपत्यते [ १३४२ ]- जो उपासना करता है, इन्द्र उसे उग्र बल देता है ।

६२ इन्द्रः अराधसं मर्ते, पदा शुष्मं इव, स्फुरत् [ १३४३ ]- इन्द्र दान न देनेवाले मनुष्यको, जैसे पेरसे फूलको कुचलते हैं, उसीप्रकार नष्ट कर देता है ।

## उपमा

१ पर्णवीः इव [ १२५६ ]- पक्षीके समान ( एषः देवः द्रोणानि अभि आसदम् ) यह सोम बतनमें वेगसे गिरता है ।



२ हरिः वाजाय मृज्यते [ १२६० ]- जिसप्रकार घोड़ेको युद्धमें जानेके लिए सजाते हैं, उसीप्रकार ( एषः प मानः विपन्युभिः मृज्यते ) यह सोम यज्ञ करनेवालोंके द्वारा शुद्ध किया जाता है।

३ यूथ्यः वृषा शिशृते [ १२७१ ]- जिसप्रकार भृङ्ग अपने बेल अपने सींग हिलाता है, उसीप्रकार ( एषः शृङ्गाणि-दोषुवत् ) यह सोम अपने सींग हिलाता है।

४ श्येनः न [ १२७६ ]- बाजके समान यह सोम ( आसीदति ) आकर बैठता है।

५ योषितं गच्छन् जारः न [ १२७६ ]- स्त्रीके पास जैसे उसका जार जाता है, उसीप्रकार ( एषः मानुषीषुविभ्रु ) यह सोम मनुष्योंमें जाकर बैठता है।

६ वाजं इव [ १२९६ ]- घोड़ेके समान ( सः सोमः ) वह सोम कलशमें वेगसे जाता है।

७ वृष्टिमान् पर्जन्यः इव [ १३०७ ]- वृष्टि करनेवाले मेघके समान ( तेजसा महान् ) यह सोम तेजसे महान् दीखता है।

८ राजा इव द्रुमः [ १३१६ ]- राजाके समान देखने वाला यह ( सोमः ) सोम है।

९ श्येनः न [ १३१६ ]- बाजपक्षीके समान ( घृत-वन्तं योनिं आसादत् ) पानीके कलशमें जाता है।

१० अत्यः न [ १३१८ ]- घोड़ेके समान ( वाजं अभ्यर्षति ) युद्धमें जाता है।

११ श्रायन्तः सूर्य इव [ १३१९ ]- किरणें जिसप्रकार सूर्यके आश्रयसे रहती हैं, उसीप्रकार ( विश्वा इत् इन्द्रस्य भक्षत ) सब धन इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं।

१२ भागं न प्रतिदीधिमः [ १३१९ ]- पिताके धनका भाग जिसप्रकार भाईके बांटमेंसे मिलता है, उसीप्रकार हमें धनका भाग मिले।

१३ अश्वः न [ १३३२ ]- घोड़ेके समान ( निकतः वाजी ) धोकर शुद्ध किया गया यह बलवान् सोम है।

१४ शिशुं जज्ञान [ १३३४ ]- नये बच्चेको जैसे साफ करते हैं, उसीप्रकार ( सोमं पवित्रे मृजन्ति ) सोमको उलनीपर शुद्ध करते हैं।

१५ वत्सं शिश्वरीः इव [ १३३६ ]- बच्चेको जिसप्रकार माता बढाती है, उसीप्रकार ( तं नः गिरः सं वर्धन्तु ) उस सोमका वर्णन हमारी स्तुति करती है।

१६ पदा ध्रुमं इव [ १३४३ ]- पांवसे जैसे फूलको रौवते हैं, उसीप्रकार ( अ-राधसं मर्तं स्फुरत् ) बान न देनेवाले मनुष्यका इन्द्र नाश करता है।

१७ वंशं इव [ १३४४ ]- बांसको जैसे ऊपर करते हैं, उसीप्रकार ( ब्रह्माणः त्वा उद्येमिरे ) ब्राह्मण तुझ इन्द्रको श्रेष्ठ कहकर उन्नत करते हैं, तेरा यश बढाते हैं।

## दशगाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः  | देवता       | छन्दः      |
|-------------|--------------|---|-------------|------------|
|             |              | ( १ )   |             |            |
| १२५३        | ९।९।४०       | पराशरः शाक्यः   | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप् |
| १२५३        | ९।९।३९       | पराशरः शाक्यः   | "           | "          |
| १२५५        | ९।९।४१       | पराशरः शाक्यः   | "           | "          |
| १२५६        | ९।३।१        | शुनःशेष आजीर्गतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | गायत्री    |
| १२५७        | ९।३।६        | शुनःशेष आजीर्गतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | "          |
| १२५८        | ९।३।४        | शुनःशेष आजीर्गतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | "          |



| संज्ञासंख्या | श्रुतवेदस्थानं | श्रुतिः   | देवता       | छन्दः   |
|--------------|----------------|---|-------------|---------|
| १२५९         | ९।३।५          | शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १२६०         | ९।३।३          | शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | "       |
| १२६१         | ९।३।९          | शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | "       |
| १२६२         | ९।३।७          | शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | "       |
| १२६३         | ९।३।८          | शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | "       |
| १२६४         | ९।३।९          | शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | "       |
| १२६५         | ९।३।१०         | शुनःशेष आजोगतिः सः देवरातः<br>कृत्रिमो वंश्वामित्रः | "           | "       |

( २ )

|      |        |                        |   |   |
|------|--------|------------------------|---|---|
| १२६६ | ९।१५।१ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२६७ | ९।१५।२ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२६८ | ९।१५।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२६९ | ९।१५।३ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२७० | ९।१५।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२७१ | ९।१५।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२७२ | ९।१५।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |
| १२७३ | ९।१५।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | " | " |

( ३ )

|      |        |                |   |   |
|------|--------|----------------|---|---|
| १२७४ | ९।३८।१ | राहूगण आंगिरसः | " | " |
| १२७५ | ९।३८।२ | राहूगण आंगिरसः | " | " |
| १२७६ | ९।३८।४ | राहूगण आंगिरसः | " | " |
| १२७७ | ९।३८।५ | राहूगण आंगिरसः | " | " |
| १२७८ | ९।३८।६ | राहूगण आंगिरसः | " | " |
| १२७९ | ९।३८।३ | राहूगण आंगिरसः | " | " |

( ४ )

|      |                        |                  |   |   |
|------|------------------------|------------------|---|---|
| १२८० | ९।१८।१                 | प्रियमेध आंगिरसः | " | " |
| १२८१ | ९।१८।२                 | प्रियमेध आंगिरसः | " | " |
| १२८२ | ९।१८।३                 | प्रियमेध आंगिरसः | " | " |
| १२८३ | ९।१८।४                 | प्रियमेध आंगिरसः | " | " |
| १२८४ | ९।१८।५ [ प्रथमः पादः ] | प्रियमेध आंगिरसः | " | " |
|      | ९।१८।६ [ त्रयः पादाः ] | नृमेध आंगिरसः    | " | " |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं           | ऋषिः                                | देवता        | छन्दः                           |
|-------------|------------------------|-------------------------------------|--------------|---------------------------------|
| १२८५        | ९।२७।५ [ प्रथमः पादः ] | नृमेध आंगिरसः                       |              |                                 |
|             | ९।२६।४ [ त्रयः पादाः ] | इध्मवाहो वार्ध्व्युतः               | पवमानः सोमः  | गायत्री                         |
| ( ५ )       |                        |                                     |              |                                 |
| १२८६        | ९।२७।१                 | नृमेध आंगिरसः                       | "            | "                               |
| १२८७        | ९।२७।२                 | नृमेध आंगिरसः                       | "            | "                               |
| १२८८        | ९।२७।३                 | नृमेध आंगिरसः                       | "            | "                               |
| १२८९        | ९।२७।४                 | नृमेध आंगिरसः                       | "            | "                               |
| १२९०        | ९।२७।५                 | नृमेध आंगिरसः                       | "            | "                               |
| १२९१        | ९।२८।६                 | प्रियमेध आंगिरसः                    | "            | "                               |
| ( ६ )       |                        |                                     |              |                                 |
| १२९२        | ९।३७।१                 | राहूगण आंगिरसः                      | "            | "                               |
| १२९३        | ९।३७।२                 | राहूगण आंगिरसः                      | "            | "                               |
| १२९४        | ९।३७।३                 | राहूगण आंगिरसः                      | "            | "                               |
| १२९५        | ९।३७।४                 | राहूगण आंगिरसः                      | "            | "                               |
| १२९६        | ९।३७।५                 | राहूगण आंगिरसः                      | "            | "                               |
| १२९७        | ९।३७।६                 | राहूगण आंगिरसः                      | "            | "                               |
| ( ७ )       |                        |                                     |              |                                 |
| १२९८        | ९।६७।११                | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | पवमानाभ्येता | अनुष्टुप्                       |
| १२९९        | ९।६७।१२                | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | "            | "                               |
| १३००        | —                      | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | "            | "                               |
| १३०१        | —                      | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | "            | "                               |
| १३०२        | —                      | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | "            | "                               |
| १३०३        | —                      | पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा | "            | "                               |
| ( ८ )       |                        |                                     |              |                                 |
| १३०४        | ७।११।१                 | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                | अग्निः       | त्रिष्टुप्                      |
| १३०५        | ७।११।२                 | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                | "            | "                               |
| १३०६        | ७।११।३                 | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः                | "            | "                               |
| १३०७        | ८।६।१                  | वत्सः काण्वः                        | इन्द्रः      | गायत्री                         |
| १३०८        | ८।६।२                  | वत्सः काण्वः                        | "            | "                               |
| १३०९        | ८।६।३                  | वत्सः काण्वः                        | "            | "                               |
| ( ९ )       |                        |                                     |              |                                 |
| १३१०        | ९।६६।२५                | शतं वैखानसः                         | पवमानः सोमः  | "                               |
| १३११        | ९।६६।२६                | शतं वैखानसः                         | "            | "                               |
| १३१२        | ९।६६।२७                | शतं वैखानसः                         | "            | "                               |
| १३१३        | ९।१०७।१                | सप्तर्षयः                           | "            | प्रगाथः ( बृहती,<br>सतो बृहती ) |
| १३१४        | ९।१०७।२                | सप्तर्षयः                           | "            | "                               |



| संज्ञासंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                  | देवता       | छन्दः                          |
|--------------|--------------|---------------------------------------|-------------|--------------------------------|
| १३१५         | ९।१०७।३      | सप्तर्षयः                             | पवमानः सोमः | द्विपदा विराट्                 |
| १३१६         | ९।८९।१       | वसुभरिद्वजः                           | "           | जगती                           |
| १३१७         | ९।८९।३       | वसुभरिद्वजः                           | "           | "                              |
| १३१८         | ९।८९।९       | वसुभरिद्वजः                           | "           | "                              |
| ( १० )       |              |                                       |             |                                |
| १३१९         | ८।९९।३       | नृमेघ आंगिरसः                         | इन्द्रः     | प्रगाथः ( बृहती<br>सतो बृहती ) |
| १३२०         | ८।९९।४       | नृमेघ आंगिरसः                         | "           | "                              |
| १३२१         | ८।९९।१३      | भर्गः प्रागाथः                        | "           | "                              |
| १३२२         | ८।९९।१४      | भर्गः प्रागाथः                        | "           | "                              |
| ( ११ )       |              |                                       |             |                                |
| १३२३         | ९।६७।१       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः                 | पवमानः सोमः | गायत्री                        |
| १३२४         | ९।६७।२       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः                 | "           | "                              |
| १३२५         | ९।६७।३       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः                 | "           | "                              |
| १३२६         | ९।१०६।७      | मनुराप्सवः                            | "           | उष्णिक्                        |
| १३२७         | ९।१०६।८      | मनुराप्सवः                            | "           | "                              |
| १३२८         | ९।१०६।९      | मनुराप्सवः                            | "           | "                              |
| १३२९         | ९।९८।७       | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिदवा भरद्वाजश्च | "           | अनुष्टुप्                      |
| १३३०         | ९।९८।६       | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिदवा भरद्वाजश्च | "           | "                              |
| १३३१         | ९।९८।१०      | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिदवा भरद्वाजश्च | "           | "                              |
| १३३२         | ९।१०९।१०     | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः               | "           | द्विपदा विराट्                 |
| १३३३         | ९।१०९।११     | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः               | "           | "                              |
| १३३४         | ९।१०९।१२     | अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः               | "           | "                              |
| १३३५         | ९।६१।१३      | अमहीयुरांगिरसः                        | "           | गायत्री                        |
| १३३६         | ९।६१।१४      | अमहीयुरांगिरसः                        | "           | "                              |
| १३३७         | ९।६१।१५      | अमहीयुरांगिरसः                        | "           | "                              |
| ( १२ )       |              |                                       |             |                                |
| १३३८         | ८।४५।१       | त्रिशोकः काण्वः                       | अग्नीन्द्रो | "                              |
| १३३९         | ८।४५।२       | त्रिशोकः काण्वः                       | इन्द्रः     | "                              |
| १३४०         | ८।४५।३       | त्रिशोकः काण्वः                       | "           | "                              |
| १३४१         | १।८४।७       | गोतमो राहूगणः                         | "           | "                              |
| १३४२         | १।८४।९       | गोतमो राहूगणः                         | "           | उष्णिक्                        |
| १३४३         | १।८४।८       | गोतमो राहूगणः                         | "           | "                              |
| १३४४         | १।१०।१       | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः               | "           | अनुष्टुप्                      |
| १३४५         | १।१०।२       | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः               | "           | "                              |
| १३४६         | १।१०।३       | मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः               | "           | "                              |





## अथ एकादशोऽध्यायः ।

अथ षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्थः ॥ ६ ॥

[ १ ]

( १-११ ) मेधातिथिः काण्वः, २, १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ प्रगाथः काण्वः; ४ पराशरः शाक्यः, ५ प्रगाथो घोरः काण्वः; ६ मेधातिथिः काण्वः; ७ उग्ररुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरकुत्स्यः, ८ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; ९ हिरण्यस्तूप आगिरसः; १० सारंपराज्ञी ॥ १ आप्रीसूक्तं = ( १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः ); २ आवित्यः; ३, ५-६ इन्द्रः, ४, ७-९ पवमानः सोमः; १० अग्निः; ११ आत्मा, सूर्यो वा । १-३, ११ गायत्री; ४ त्रिष्टुप्; ५-६ प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्; ८ द्विपदा विराट्; ९ जगती; १० विराट् ॥

१३४७ सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१३।१ )  
 १३४८ मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहयूतये ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१३।२ )  
 १३४९ नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१३।३ )  
 १३५० अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥ १ ( रा ) ॥  
 [ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १।१३।४ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १३४७ ] हे अग्ने ! ( सु समिद्धः ) अच्छी तरह प्रज्वलित होकर ( नः हविष्मते ) हमारी हविको अपने पास रखनेवाले यजमानके लिए ( देवान् आ वह ) देवोंको बुलाकर ला । हे ( होतः पावक ) हवन करनेवाले तथा पवित्रता करनेवाले अग्ने ! ( यक्षि च ) उन देवताओंको लक्ष्य करके यज्ञ कर ॥ १ ॥

[ १३४८ ] हे ( कवे ) दूरदर्शी अग्ने ! ( तनू-न-पात् ) शरीरको न गिरानेवाला तू ( अद्या ) आज ( ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( नः मधुमन्तं यज्ञं ) हमारी अत्यन्त मीठी हविको ( देवेषु कृणुहि ) देवोंकी ओर पहुंचा ॥ २ ॥

[ १३४९ ] ( इह अस्मिन् यज्ञे ) यहां इस यज्ञमें ( प्रियं मधु-जिह्वं ) प्रिय और मीठा बोलनेवाले ( हविष्कृतं नराशंसं ) हविको देवोंकी ओर पहुंचानेवाले और मनुष्य जिसकी स्तुति करते हैं, ऐसे उस अग्निको ( उप ह्वये ) मैं बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

१ मधुजिह्वः— मीठा भाषण करनेवाला ।

२ प्रियः— प्रिय आचरण करनेवाला ।

३ नराशंसः— मनुष्य जिसकी प्रशंसा करते हैं ।

४ हविष्कृतम्— हवि तैय्यार करके यजन करनेवाला ।

[ १३५० ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ईडितः ) प्रशंसित हुआ हुआ तू ( सुखतमे रथे ) अत्यन्त सुख देनेवाले रथसे ( देवान् आ वह ) देवोंको लेकर आ । ( मनुः-हितः ) मनुष्यों-यजमानों-द्वारा स्थापित किया गया ( होता असि ) तू देवोंको बुलाकर लानेवाला है ॥ ४ ॥

१ सुख-तमः रथः— अत्यन्त सुख देनेवाला रथ ।

२८ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



१३५१ यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६६।४ )

१३५२ सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहाऽतिपिप्रति ॥ २ ॥

( ऋ. ७।६६।५ )

१३५३ उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥ ३ ॥ २ ( खि ) ॥

[ धा० ११ । उ० २ । स्व० ३ ] ( ऋ. ७।६६।६ )

१३५४ उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६४।१ )

१३५५ पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महो असि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥ १ ॥

( ऋ. ८।६४।२ )

१३५६ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥ ३ ( ठि ) ॥

[ धा० १३ । उ० २ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६४।३ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ १३५१ ] ( यत् ) उन धनोंको ( अद्य सूर उदिते ) आज सूर्यके उदय होनेके बाद सबेरे ( अनागाः ) निष्पाप ( मित्रः अर्यमा भगः सविता ) मित्र, अर्यमा, भग और सविता देव ( सुवाति ) हमारी ओर प्रेरित करें ॥ १ ॥

१ मित्रः— मित्रके समान आचरण करनेवाला ।

२ अर्य-मा— श्रेष्ठ पुरुषका निर्णय करनेवाला ।

३ भगः— भाग्यवान् ।

४ सविता— ( सर्वस्य प्रसविता ) सब जगत्को उत्पन्न करनेवाला-सूर्य ।

[ १३५२ ] ( सु-दानवः ) हे उत्तम दान देनेवाले देवो ! ( प्र नु यामन् ) तुम्हारे आगमनके बाद ( सः क्षयः ) तुम्हारा यज्ञमें होनेवाला निवास ( सु-प्र-अवीः अस्तु ) हमारा अच्छी तरह रक्षण करनेवाला होवे । ( ये नः अंहाः अति पिप्रति ) जो तुम हमें पापसे दूर करते हो ॥ २ ॥

[ १३५३ ] ( उत ये ) और जो देव तथा ( अदितिः ) देवोंकी माता अदिति हैं, ये सब ( अ-दब्धस्य व्रतस्य स्वराजः ) न दबाये जानेवाले व्रतके राजा हैं, वे ( महः राजानः ) वे महान् राजा हैं, और ( ईशते ) सब पर शासन करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

[ १३५४ ] हे इन्द्र ! ( सोमाः त्वा ) सोमरस तुझे ( उत् मदन्तु ) उत्तम आनन्द देवें । हे ( अद्रि-वः ) वज्र-धारी इन्द्र ! ( राधः कृणुष्व ) हमें ऐश्वर्य दे और ( ब्रह्म-द्विषः अवजहि ) ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको हरा ॥ १ ॥

[ १३५५ ] हे इन्द्र ! तू ( महान् असि ) बड़ा है । ( त्वा प्रति कश्चन न हि ) तेरे समान दूसरा कोई भी नहीं है, ( अ-राधसः पणीन् ) दान न देनेवाले लोभी लोगोंको तू ( पदा नि बाधस्व ) पैरोंसे कुचल डाल ॥ २ ॥

[ १३५६ ] हे [ इन्द्र ] इन्द्र ! ( त्वं सुतानां ) तू रस निकाले गए और ( त्वं असुतानां ) रस न निकाले गए सोमोंका ( ईशिषे ) स्वामी है । ( त्वं जनानां राजा ) तू लोगोंका भी राजा है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

१३५७ आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदचमूषु ।

सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९७।३७ )

१३५८ स पुनान उप सूरं दधान ओमे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।

प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९७।३८ )

१३५९ स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीद्वान् अभि नो ज्योतिषावित् ।

यत्र नः पूर्वे पितरः पदद्वाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥ ३ ॥ ४ ( तै ) ॥

[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।९७।३९ )

१३६० मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमिस्तोता वृषणं सचा सुते मुहुःकथा च शंसत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।१ )

[ ३ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १३५७ ] ( जागृविः ) जाग्रत रहनेवाला ( ऋतं मतीनां विप्रः ) सच्ची स्तुतियोंका ज्ञाता ( सोमः ) सोम ( पुनानः ) छनकर ( चमूषु आसदत् ) कलशमें बैठता है । ( मिथुनासः ) एकत्र रहनेवाले ( निकामाः ) इष्ट-कामना करनेवाले ( रथिरासः सुहस्ताः ) यज्ञ करनेवाले और उत्तम हाथवाले ( अध्वर्यवः ) अध्वर्यु ( यं सपन्ति ) जिसे स्पर्श करते हैं, ऐसा यह सोम है ॥ १ ॥

[ १३५८ ] ( पुनानः दधानः सः ) पवित्र होनेवाला, यज्ञकर्मोंको सिद्ध करनेवाला वह सोम ( सूरं उप [ गच्छति ] ) इन्द्रके पास जाता है । ( ओमे रोदसी ) दोनों ही धु और पृथिवीको ( आ अप्राः ) यह भर देता है । ( [ सोमः ] आवः ) यह सोम तेजसे हमें आच्छादित करता है । ( प्रियाः ) प्रिय पदार्थ देनेवाली ( यस्य सतः ) जिसके रसकी ( प्रियसासः ) अत्यन्त प्रिय धारा ( ऊती ) हमारा संरक्षण करती है और ( कारिणे न ) यज्ञ करनेवालेको जैसे धन मिलता है, उसीप्रकार ( धनं प्र यंसत् ) धन हमें देती है ॥ २ ॥

[ १३५९ ] ( वर्धिता ) संवर्धन करनेवाला ( वर्धनः ) तथा स्वयं भी बढ़नेवाला ( पूयमानः ) छाना जानेवाला और ( मीद्वान् ) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ( सः सोम ) वह सोम ( नः ज्योतिषा अभि आवित् ) अपने तेजसे हमारी रक्षा करे । ( पदद्वाः स्वर्विदः ) पदोंका अर्थ जाननेवाले, आत्मज्ञानी ( नः पूर्वे पितरः ) हमारे पूर्वकालके पितर ( गाः ) गायोंको ( यत्र अद्रि अभि इष्णन् ) पर्वतके पास ले जानेकी इच्छा करते थे ॥ ३ ॥

जहां सोमलता होती थी, वहां वे गायें ले जाते थे ।

[ १३६० ] हे ( सखायः ) मित्रो ! ( अन्यत् मा चित् वि शंसत ) इन्द्रके स्तोत्रके सिवाय दूसरे स्तोत्र मत बोलो और ( मा रिषण्यत ) दूसरेके स्तोत्र बोलकर व्यर्थ ही अपनी शक्ति क्षीण मत करो । ( सुते ) सोमरस निकालनेके बाद ( वृषणं इन्द्रं इत् ) बलवान् इन्द्रकी ही ( सचा स्तोत ) एक जगह बैठकर स्तुति करो । ( उक्था च मुहुः शंसत ) इन्द्रके स्तोत्र बारबार कहो ॥ १ ॥



१३६१ अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।

विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम्

॥ २ ॥ ५ (यी) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।१।२ )

१३६२ उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।१५ )

१३६३ कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्

॥ २ ॥ ६ (ला) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।३।१६ )

१३६४ पर्युषु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः । द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥१॥

( ऋ. ९।१।१०।१ )

१३६५ अजीजनो हि पवमान सूर्य विधारे शकमना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥२॥

( ऋ. ९।१।१०।३ )

[ १३६१ ] ( वृषभं यथा अवक्रक्षिणं ) बलके समान शत्रुओंसे टक्कर लेनेवाले ( गां न जुवं ) बलके समान क्षीप्रता करके ( चर्षणीसहं ) शत्रुओंको हरानेवाले ( विद्वेषणं ) शत्रुओंसे द्वेष करनेवाले ( संवननं ) उपासकोंके द्वारा सेवा करने योग्य ( अभयं-करं मंहिष्ठं ) निर्भय करनेवाले, महान् तथा ( उभयाविनं ) दोनों प्रकारके ऐश्वर्य देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो ॥ २ ॥

[ १३६२ ] ( त्ये मधुमत्तमाः ) वे अत्यन्त मीठे ( गिरः स्तोमासः ) बाणीके स्तोत्र ( उदु ईरते ) कहे जाते हैं । ( सत्राजितः ) बहुतसे शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले ( धनसा ) धन देनेवाले ( अ-क्षित-ऊतयः ) न नष्ट होनेवाले रक्षाके साधनोंसे युक्त ये स्तोत्र ( वाजयन्तः रथाः इव ) युद्धमें जानेवाले रथके समान, कहे जाते हैं ॥ १ ॥

[ १३६३ ] ( कण्वाः इव ) कण्वके समान ( भृगवः ) भृगुओंने ( धीतं विश्वं इत् ) ध्यान किए गए और सर्वत्र रहनेवाले इन्द्रको ( आशत ) प्राप्त किया । ( सूर्या इव ) सूर्य जैसे प्रकाशसे व्यापता है, उसीप्रकार उसने उन्हें देखा । ( प्रियमेधासः आयवः ) प्रेमसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके समान ( इन्द्रं महयन्तः ) इन्द्रका महत्त्व प्रकट करते हुए ( स्तोमेभिः अस्वरन् ) वे स्तोत्रपाठ करने लगे ॥ २ ॥

[ १३६४ ] हे सोम ! ( सु वाजसातये ) उत्तम प्रकारसे अन्न देनेके लिए ( प्र धन्व ) तू आगे जा । ( सक्षणिः वृत्राणि परि ) साहस करनेवाला धीर जिसप्रकार वृत्र जैसे बलशाली शत्रुओं पर चढ़ता चला जाता है, वैसे ही तू शत्रुओं पर आक्रमण कर । ( नः ऋणया ) हमारे ऋण दूर करनेवाला तू ( द्विषः तरध्वै ) शत्रुओंको मारनेके लिए ( ईरसे ) आगे जाता है ॥ १ ॥

[ १३६५ ] हे ( पवमान ) सोम ! ( पयः विधारे हि ) जल धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( शकमना सूर्य अजीजनः ) अपनी शक्तिसे तूने सूर्यको उत्पन्न किया । ( गो-जीरया पुरन्ध्या ) स्तुति करनेवालोंको गाय देनेकी बुद्धिसे ( रंहमाणः ) तू प्रगतिवाला हुआ है ॥ २ ॥



१३६६ अनु हि त्वा सुतः सोम मदामसि महे समर्थराज्ये ।

वाजाः अभि पवमान प्र गाहसे

॥ ३ ॥ ७ ( ल ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ९।१०।२ )

१३६७ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०९।१ )

१३६८ एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०९।३ )

१३६९ इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात्क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः

॥ ३ ॥ ८ ( ला ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०९।२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१३७० सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्त्वो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।

तन्तुं ततं परि सर्गास आश्वो नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६९।६ )

१३७१ उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।

पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६९।२ )

[ १३६६ ] हे ( सोम ) सोम ! ( महे अर्थराज्ये ) महान् आर्य राज्यमें ( त्वा सुतं अनु ) तेरे अनुकूल होकर ही ( सं मदामसि ) हम आनन्दसे रहते हैं । हे ( पवमान ) सोम ! ( वाजान् अभि प्र गाहसे ) तू बलसे होनेवाले कार्यमें जाता है ॥ ३ ॥

[ १३६७ ] हे सोम ! तू ( स्वादुः ) मधुर होकर ( मित्राय पूष्णे भगाय इन्द्राय ) मित्र, पूषा, भग और इन्द्रकी ओर जानेके लिए ( प्र धन्व ) आगे जा ॥ १ ॥

[ १३६८ ] हे सोम ! ( शुक्रः दिव्यः ) तेजस्वी और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ ( पीयूषः सः ) पीनेके योग्य तू ( अमृताय ) अमर होनेके लिए ( महे क्षयाय एव ) महान् स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छासे ( अर्ष ) आगे जा ॥ २ ॥

[ १३६९ ] हे सोम ! ( क्रत्वे दक्षाय ) ज्ञान और बल प्राप्त करनेके लिए ( सुतस्य ते ) तेरा रस ( इन्द्रः पेयात् ) इन्द्र पिये ओर ( विश्वे च देवाः ) सब देव भी पियें ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३७० ] ( सूर्यस्य रश्मयः इवः ) सूर्यकी किरणोंके समान ( द्रावयित्त्वः मत्सरासः ) प्रेरणा करनेवाले और आनन्द देनेवाले, ( प्रसुतः आश्वः सर्गासः ) शुद्ध किए गए, पात्रमें रहनेवाले सोमरस ( ततं तन्तुं साकं परि ईरते ) फैली हुई छलनीमेंसे एकदम नीचे गिरते हैं । वे ( इन्द्रात् क्रते ) इन्द्रके सिवाय ( किंचन धाम ) और किसी स्थानको ( न पवते ) पसन्द नहीं करते ॥ १ ॥

[ १३७१ ] इन्द्रकी ( मतिः पृच्यते ) स्तुति की जाती है ( मधु सिच्यते ) मधुर सोमरस इन्द्रको दिया जाता है । ( मन्द्रा-जनी आसनि अन्तः उप चोदते ) आनन्द देनेवाली रसकी धारा इन्द्रके मुंहमें छोड़ी जाती है । ( सन्तनिः ) हमेशा ( सुन्वतां ) सोमरसको निकालनेवाले यजमानोंका ( पवमानः मधुमान् द्रप्सः ) शुद्ध किया जानेवाला भीठा सोमरस ( वारं परि अर्षति ) छलनीसे नीचे पड़ता है ॥ २ ॥



१३७२ उक्षा मिमेति प्रति यन्ति घेनवो देवस्य देवीरूप यन्ति निष्कृतम् ।

अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न नित्तं परि सोमो अव्यत ॥ ३ ॥ ९ ( ग ) ॥

[ धा० २६ । उ० ३ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६९।४ )

१३७३ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।

दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१।१ )

१३७४ तमग्निमस्ते वसवो न्युण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।

दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१।२ )

१३७५ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्या यविष्ठ ।

त्वांश्श्वन्त उप यन्ति वाजाः

॥ ३ ॥ १० ( डी ) ॥

[ धा० २८ । उ० ३ । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।१।३ )

१३७६ आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१८९।१ )

१३७७ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१८९।२ )

[ १३७२ ] ( उक्षा मिमेति ) सोमरस शब्द करता है । ( घेनवः प्रति यन्ति ) गायें उसके पीछे जाती हैं ( देवस्य निष्कृतं देवीः उप यन्ति ) चमकनेवाले सोमको दिव्य स्तुतियां प्राप्त होती हैं । ( अर्जुनं अव्ययं वारं अत्यक्रमीत् ) सफेद रंगके बालोंकी छलनीसे छनकर सोमरस नीचे उतरता है । ( अत्कं न ) कवचके समान ( नित्तं सोमः परि अव्यत ) साफ पदार्थोंको यह सोम अपने ऊपर ओढता है ॥ ३ ॥

[ १३७३ ] हे ( नरः ) ऋत्विजो ! तुम ( प्रशस्तं दूरेदृशं ) प्रशंसित ओर दूरसे देखनेवाले ( गृह-पतिं अथव्युं ) गृहके रक्षक और अगम्य ( हस्तच्युतं ) हाथोंके द्वारा जलाये जानेवाले ( अग्निं ) अग्निको ( अरण्योः ) अरण्यमें ( दीधितिभिः जनयन्तः ) अंगुलियों द्वारा उत्पन्न करो ॥ १ ॥

[ १३७४ ] ( यः दमे ) जो घरमें ( दक्षाय्यः ) हवियों द्वारा प्रज्वलित करने योग्य है, ऐसे ( नित्यः आस ) हमेशा रहनेवाले ( तं ) उस ( सु प्रतिचक्षं अग्निं ) दर्शनीय अग्निको ( कुतः चित् ) कहींसे भी लाकर ( अवसे ) अपने रक्षणके लिए ( वसवः ) स्तुति करनेवालोंने ( अस्ते नि ऋण्वन् ) यज्ञशालामें स्थापित किया ॥ २ ॥

[ १३७५ ] हे ( यविष्ठ अग्ने ) हे बलवान् अग्ने ! ( प्रेद्धः ) पूर्ण रीतिसे प्रज्वलित हुआ हुआ तू ( अजस्रया सूर्या ) बड़ी-बड़ी ज्वालाओंसे ( नः ) हमारे लिए ( पुरः दीदिहि ) हमारे आगे - आहवनीय स्थानमें प्रवीण हो, अच्छी तरह जल, ( शश्वन्तः वाजाः ) बहुतसी हवियां ( त्वां उप यन्ति ) तेरे पास जाती हैं ।

[ १३७६ ] ( आयं गौः पृश्निः अक्रमीत् ) यह सूर्य नित्य गतिवाला होकर अपने व्यापक तेजसे उदयाचल पर जाता है । बादमें वह ( पुरः मातरं असदन् ) पूर्व दिशामें भूमिमाताके ऊपर आकर ( च पितरं स्वः प्रयन् ) अपने छुलोकरूपी पिताको शीघ्र प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ १३७७ ] ( अन्तः ) छुलोक और पृथ्वीके बीचमें ( अस्य रोचना ) इसका प्रकाश ( प्राणात् अपानती ) उदयके बाद अस्तको ( चरति ) प्राप्त होता है ( महिषः ) ऐसा यह महान् सूर्य ( दिवं व्यख्यत् ) छुलोकको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥



१३७८ त्रिंशद्द्वाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥ ११ ( छि ) ॥  
[ धा० १७ । उ० २ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१८९।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ६-१ ॥

॥ एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

[ १३७८ ] ( वस्तोः त्रिंशद्द्वाम अह ) दिनकी तीस घड़ी तक यह सूर्य ( द्युभिः विराजति ) किरणोंसे विशेष सुशोभित होता है । उस समय ( वाक् ) वेदवाणी ( पतङ्गाय ) इस सूर्यकी ( प्रति धीयते ) स्तुति करती है ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥

## एकादश अध्याय

इस ग्यारहवें अध्यायमें कुछ देवताओंके बाव सोमका गुण गान है । इसलिए प्रथम हम अन्य देवोंका वर्णन देखेंगे । सर्व प्रथम इन्द्रका स्थान है—

इन्द्र

१ आद्वि-वः [ १३५४ ]- वज्रधारी, पहाड़ी किलेमें रहनेवाला ।

२ महान् [ १३५५ ]- सबकी अपेक्षा बड़ा ।

३ जनानां राजा [ १३५६ ]- लोगोंका शासक, लोगोंका राज्य चलानेवाला ।

४ वृषा [ १३६० ]- बलवान्, सामर्थ्ययुक्त ।

५ चर्षणीसहः [ १३६१ ]- शत्रु सैन्यको हरानेवाला ।

६ विद्वेषी [ १३६१ ]- शत्रुओंसे द्वेष करनेवाला ।

७ संवननः [ १३६१ ]- सेवा करनेके योग्य ।

८ अभयंकरः [ १३६१ ]- लोगोंको निर्भय करनेवाला ।

९ मंहिष्ठः [ १३६१ ]- महान्, बड़ा ।

१० उभयावी [ १३६१ ]- दोनों प्रकारके ऐश्वर्य देनेवाला, भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य देनेवाला ।

११ अवक्रक्षी [ १३६१ ]- शत्रुओंको टक्कर देनेवाला ।

इस प्रकार इन्द्रके गुण इस अध्यायमें हैं । अब उसके लिए और भी जो कुछ कहा है, उसे देखें—

१ सोमाः त्वा मदन्तु [ १३५४ ]- हे इन्द्र ! सोमरस तुझे आनन्द देवें ।

२ हे अद्रिवः ! राघः कृणुष्व [ १३५४ ]- हे वज्रधारी इन्द्र ! हमें धन दे ।

३ ब्रह्माद्विषः अवजहि [ १३५४ ]- जानसे द्वेष करनेवालोंका नाश कर ।

४ हे इन्द्र ! महान् असि, त्वा प्रति कश्चन नहि [ १३५५ ]- हे इन्द्र ! तू महान् है । तेरे समान दूसरा कोई नहीं है ।

५ अराधसः पणीन् पदा नि बाधस्व [ १३५५ ]- दान न देनेवाले लोगोंको पैरोंसे कुचल डाल । उन्हें कष्ट पहुँचा ।

६ हे इन्द्र ! त्वं सुतानां असुतानां ईशिषे [ १३५६ ]- हे इन्द्र ! तू रस निकाले गए और न निकाले गए सोमोंका स्वामी है ।

७ हे सखायः ! अन्यत् चित् मा विशंसत [ १३६० ]- हे मित्रो ! तुम और कुछ न करो ।

८ मा रिषण्यत [ १३६० ]- व्यर्थ ही दूसरे कामोंमें अपनी शक्ति खर्च मत करो ।

९ सुते वृषणं इत् सत्ता स्तोत उक्था च मुहुः



शंसत [ १३६० ]- सोमयागमें बलवान् उस इन्द्रके हो स्तोत्र कहो, और बारबार उसके स्तोत्र कहो ।

१० वृषभं यथा अवक्रक्षिणं [ १३६१ ]- टषकर मारनेवाले बलके समान सामर्थ्यशाली इन्द्रकी स्तुति करो ।

११ कण्वाः भृगवः धीते विश्वं इत् आशत [ १३६३ ]- कण्व और भृगुने ध्यान द्वारा उस सर्वव्यापक इन्द्रकी उपासना की ।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें है ।

### अग्नि

१ अग्निः [ १३४७ ]- अग्रणी, आगे ले जानेवाला, नेता ।

२ पावकः [ १३४७ ]- पवित्रता करनेवाला, शुद्धता करनेवाला ।

३ होता [ १३४७ ]- हवन करनेवाला ।

४ कविः [ १३४८ ]- ज्ञानी, दूरदर्शी, अतीन्द्रियार्थदर्शी ।

५ तनू-न-पात् [ १३४८ ]- शरीरका पतन न होने देनेवाला ।

६ मधुजिह्वः [ १३४९ ]- मधुर भाषण करनेवाला ।

७ प्रियः [ १३४९ ]- सबोंको प्रिय ।

८ नराशंसः [ १३४९ ]- मनुष्यों द्वारा प्रशंसित ।

९ मनुर्हितः [ १३५० ]- मनुष्यका हित करनेवाला, मनुष्योंके द्वारा स्थापित ।

१० होता [ १३५० ]- हवन करनेवाला, बुलानेवाला ।

११ प्रशस्तः [ १३७३ ]- प्रशंसित, स्तुत्य ।

१२ दूरेदृक् [ १३७३ ]- दूरसे देखनेवाला ।

१३ गृहपतिः [ १३७३ ]- गृहस्थ, घरका स्वामी ।

१४ अथव्युः [ १३७३ ]- प्रगतिशील, गति करनेवाला ।

१५ सुप्रतिचक्षः [ १३७४ ]- अत्यन्त दर्शनीय ।

१६ यमिष्ठः [ १३७५ ]- तरुण, नौजवान ।

इन गुणवर्णनोंके अलावा और भी वर्णन इस अध्यायमें हैं—

१ हे अग्ने ! देवान् आ वह [ १३४७ ]- हे अग्ने ! देवोंको बुलाकर ला ।

२ यक्षि [ १३४७ ]- यजन कर ।

३ सुखतमे रथे देवान् आ वह [ १३५० ]- उत्तम सुखदायक रथमें देवोंको यहां बुलाकर ला । शरीर ही सुखदायक रथ है । जितने देव विश्वमें हैं, वे सभी देव अंशरूपसे इस देहमें हैं । अग्नि अर्थात् उष्णताके रहनेतक सब देवोंका

निवास इस शरीरमें होता है । देहके ठण्डे होनेपर सब देव शरीर छोड़ जाते हैं । तब “ अत्यन्त सुखदायक रथसे देवोंको यहां ला ” इसका अर्थ है कि “ शरीररूपी रथसे ला ” ।

४ यः दमे दक्षाय्यः नित्यः आस [ १३७४ ]- यह अग्नि प्रत्येक स्थानमें बल बढ़ानेवाला होकर हमेशा रहता है । ( दक्षाय्यः- बल बढ़ानेवाला )

५ अवसे वसवः अस्ते नृपवन् [ १३७४ ]- संरक्षणके लिए इसे वसुदेव प्रत्येक स्थानमें रखते हैं । अग्निके रहने तक ही देहमें देवोंका निवास रहता है । यह सभीके अनुभवमें आ सकता है ।

### देवोंका दर्शन

अनेक देवोंके नाम इस अध्यायमें आए हैं—

१ तत् मित्रः अर्यमा भगः सविता सुवाति [ १३५१ ]- उन धनोंको मित्र अर्यमा, भग और सविता हमारी ओर प्रेरित करें ।

२ सु दानवः ! प्र जु यामन् सः क्षयः सु-प्रावीः अस्तु [ १३५२ ]- हे उत्तम दान देनेवाले देवो ! तुम्हारा आगमन होने पर तुम्हारा यज्ञमें निवास हमारा उत्तम संरक्षण करनेवाला होवे ।

३ ये नः अंहः अति पिप्रति [ १३५२ ]- जो तुम हमें पापोंसे दूर करते हो ।

४ उत ये अदितिः अ-दब्धस्य व्रतस्य स्वराजः महः राजानः ईशते [ १३५३ ]- और वे देव तथा देवमाता अदिति सब मिलकर न दबाये जानेवाले व्रतके समाद हैं । वे महान् राजा और सबके ईश्वर हैं ।

५ हे सोम ! स्वादुः मित्राय, भगाय, पूष्णे इन्द्राय प्र धन्व [ १३६७ ]- हे सोम ! तू मीठा होकर मित्र, भग, पूषा और इन्द्रकी ओर जा ।

इसप्रकार अनेक देवोंके नाम इस अध्यायमें हैं । कितने ही देव धन देते हैं । कितने ही संरक्षण करते हैं । कितने ही देव साधकोंको पापोंसे दूर करते हैं । कितने ही सब संसार पर शासन करते हैं । यज्ञमें सब देवोंको सोमरस विया जाता है ।

### सोम

१ जागृविः ऋतं मतीनां विप्रः सोमः पुनानः चमूषु आसदत् [ १३५७ ]- जाग्रत रहनेवाला, सत्य स्तुतियोंका ज्ञाता यह सोम छननेके बाद कलशमें जाता है ।



कलशमें सोम भरकर रखते हैं। यह सोम ( जाग्रुविः ) जागता रहता है, अर्थात् इसके पीनेके बाद इतना उत्साह बढ़ता है कि उसके पीनेवालेको आलस्य नहीं आता।

२ वाजसातये प्र धन्व [ १३६४ ]- अन्न बान करनेके लिए तू आगे हो। सोमरस एक अन्न है। उसे पीनेके लिए देना एक प्रकारसे अन्न बान ही है।

३ सक्षणिः वृत्राणि परि [ १३६४ ]- साहस करनेवाला वीर शत्रुओं पर चढ़ता चला जाता है, उसीप्रकार “ द्विषः तर्ध्वै ईरसे ” द्वेष करते रहनेवाले शत्रुओंको धारनेके लिए आगे जाता है। सोमरस पीकर उत्साहित हुए हुए वीर शत्रुओं पर चढ़ते चले जाते हैं।

४ हे सोम ! महे अर्य-राज्ये संमदामसि [ १३६६ ]- हे सोम ! महान् आर्य राज्योंमें हम संगठितरूपसे आनंदित होकर रहें।

५ हे सोम ! शुक्रः दिव्यः पीयूषः सः अमृताय महे क्षयाय एव अर्षे [ १३६८ ]- हे सोम ! तू तेजस्वी, बलवान् और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ अमृतरूपी रस है। ऐसा तू अमर होनेके लिए तथा बड़े बड़े निवास स्थान प्राप्त करनेके लिए आगे होकर प्रगति कर।

६ हे सोम ! ऋत्वे दक्षाय सुतस्य ते इन्द्रः पेयात्, विश्वे च देवाः [ १३६९ ]- हे सोम ! कर्म और बल प्राप्त करनेके लिए तेरा रस इन्द्र और सब दूसरे देव पीवें।

७ सूर्यस्य रश्मयः इव, द्रावथित्त्वः मत्सरासः प्रसुतः आशवः सर्गासः ततं तप्तुं साकं ईरते, इन्द्रात् ऋते किंचन धाम न पवते [ १३७० ]- सूर्यकी किरणोंके समान फैलनेवाले और आनन्द देनेवाले सोमरस फैली हुई छलनीसे नीचे गिरते हैं। वे इन्द्रके सिवाय और कोई स्थान पसन्द नहीं करते।

इसप्रकार सोमरस इस अध्यायमें वर्णित है। यह सोम उत्साह बढ़ानेवाला, आलस्य कम करनेवाला, अन्नके समान उपयोगमें आनेवाला, शत्रुओंको धूर करनेवाला, महान् राष्ट्रमें संगठित होकर रहनेकी व्यवस्था करनेवाला, कर्मशक्ति और बल बढ़ानेवाला है।

### सोम रक्षण करता है

१ सोमः आवः [ १३५८ ]- सोम हमारा रक्षण करता है। सोमसे जो उत्साह बढ़ता है, उससे वीरता बढ़ती है, फिर वीरतासे रक्षा होती है।

२९ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

२ प्रियसासः ऊती [ १३५८ ]- प्रिय लगनेवाले ये सोमके रस हमारी रक्षा करनेवाले हैं।

३ वर्धिता वर्धनः मीद्वान् सोमः नः ज्योतिषा अभि आवित् [ १३५९ ]- संवर्धन करनेवाला, बढ़ानेवाला, कामनाओंकी तृप्ति करनेवाला यह सोम अपने तेजसे हमारी रक्षा करे। बल बढ़ानेकी शक्ति जिसके पास है, वह संरक्षण कर सकता है।

### सोम धन देता है

१ सोमः कारिणे न, धनं प्र यंसत् [ १३५८ ]- कारीगरको, यज्ञ करनेवालोंको जैसे धन दिया जाता है, उसी प्रकार यह सोम स्फूर्ती बढ़ानेवाला होने के कारण पीनेसे स्फूर्ती बढ़ाता है, इस कारण बहुत सारा काम करके धन प्राप्त किया जा सकता है।

### वैदिक-स्तोत्र

वैदिक स्तोत्रोंका महत्त्व इस अध्यायमें निम्न है। वह ध्यानपूर्वक देखने योग्य है—

१ ते मधुमत्तमाः गिरः स्तोमासः उदीरते, सप्राजितः धनसा अक्षितोतयः वाजयन्तः रथाः इव [ १३६२ ]- उन अत्यन्त मीठे स्तोत्रोंका उच्चारण किया जाता है। वे स्तोत्र शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले, धन देनेवाले, अक्षय संरक्षण करनेवाले, युद्धमें जानेवाले रथके समान विजय देनेवाले हैं।

वेदमंत्रके स्तोत्रोंका यह वर्णन बिल्कुल ठीक है। इन्द्र और सोमके स्तोत्र शौर्य और पराक्रम बढ़ानेकी शक्तिवाले हैं। अग्नि के स्तोत्र ज्ञान बढ़ानेवाले हैं। अन्य देवोंके सूक्त भी इसीप्रकार विजयका मार्ग दिखाते हैं। मंत्रमें वर्णित देवताओंके गुण उपासकोंको अपने अन्दर लाने चाहिए। यह विजयका निश्चित मार्ग है।

### सुभाषित

१ सुसमिद्धः हविष्मते देवान् आ घृह [ १३४७ ]- प्रवीण होकर यज्ञ करनेवाले देवोंको ले आ।

२ हे पावक ! यक्षि [ १३४७ ]- हे पवित्र करनेवाले देवो ! यज्ञ करो।

३ हे कवे ! तनू-न-पात् [ १३४८ ]- हे जानी



अग्ने ! तू शरीरका पतन नहीं होने देता । शरीरमें जबतक गर्मी रहती है, तबतक मृत्यु नहीं होती ।

४ अद्य नः ऊतये मधुमन्तं यक्षं देवेषु कृणुहि [ १३४८ ]- आज हमारे संरक्षणके लिए हमारे मधुर हवनसे होनेवाले यक्षको देवोंकी ओर पहुँचा ।

५ प्रियं मधुजिह्वं नराशंसं उपह्वये [ १३४९ ]- प्रिय, मधुरभाषी लोगों द्वारा प्रशंसित उस अग्निको मैं अपने पास बुलाता हूँ ।

६ ईडितः सुखतमे रथे देवान् आवह [ १३५० ]- स्तुतिके बाद अत्यन्त सुख देनेवाले रथसे देवोंको ले आ ।

७ मनु-हितः असि [ १३५० ]- तू मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

८ हे सुदानवः ! सक्षयः सु-प्राचीः अस्तु [ १३५२ ]- हे उत्तम दान देनेवाले देवो ! तुम्हारा यहाँका निवास हमारा उत्तम रक्षण करनेवाला होवे ।

९ नः अंहः अति पिप्रति [ १३५२ ]- हे देवो ! हमें पापोंसे दूर करो ।

१० ये अक्वधस्य व्रतस्य स्वराजः महः राजानः ईशते [ १३५३ ]- जो न दबनेवाले व्रतोंके राजा और स्वयं महान् शासक हैं, वे देव सभीपर शासन करते हैं ।

११ हे अद्रिवः ! राधः कृणुष्व [ १३५४ ]- हे वज्रधारी इन्द्र ! हमें ऐश्वर्य दे ।

१२ ब्रह्मद्विषः अवजहि [ १३५४ ]- ज्ञानसे द्वेष करनेवालों को मार ।

१३ हे इन्द्र ! महान् असि, त्वा प्रति कश्चन नहि [ १३५५ ]- हे इन्द्र ! तू महान् है, तेरे समान दूसरा कोई भी नहीं है ।

१४ अ-राधसः पणीन् पदा नि बाधस्व [ १३५५ ]- दान न देनेवाले लालचियोंको पैरसे कुचल डाल ।

१५ हे इन्द्र ! त्वं जनानां राजा [ १३५६ ]- हे इन्द्र ! तू मनुष्योंका राजा है ।

१६ जागृविः क्रतं मतीनां विप्रः सोमः पुनानः [ १३५७ ]- सब जाग्रत रहनेवाला, यज्ञोंमें स्तुतियोंसे प्रशंसित यह ज्ञानी सोम छाना जाता है ।

१७ पुनानः उभे रोदसी आ अप्राः [ १३५८ ]- शुद्ध होनेवाला सोम दुःख और भूलोक दोनोंको ही अपने तेजसे भर देता है ।

१८ सोमः आवः [ १३५८ ]- सोम हमारा रक्षण करता है ।

१९ कारिणे न, धनं प्र यंसत् [ १३५८ ]- यज्ञ करनेवालोंको जैसे धन मिलता है, वैसे ही हमें भी दे ।

२० वर्धिता वर्धनः पूयमानः मीद्वान् सोमः नः ज्योतिषा अभि आवित् [ १३५९ ]- दूसरोंको बढ़ानेवाला, स्वयं भी बढ़नेवाला, स्वच्छ होनेवाला, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला सोम अपने तेजसे हमारी रक्षा करे ।

२१ यत्र पदज्ञाः स्वर्चिदः नः पूर्व पितरः गाः अभि इष्णन् [ १३५९ ]- जिस सोमके स्थानके पास पर्वोंका अर्थ जाननेवाले, आत्मज्ञानी हमारे पूर्वज अपनी गायें लेजाते थे । गायें चरानेके लिए वहाँ ले जाते थे जहाँ सोमवल्ली उगती थी ।

२२ हे सखायः ! अन्यत् मा चित् विशंसत, मा रिषण्यत, सुते वृषणं इन्द्रं सचा स्तोत, उक्था च मुहुः शंसत [ १३६० ]- हे मित्रो ! इन्द्रको छोड़कर और किसीकी स्तुति मत करो । निरर्थक अपनी शक्ति खर्च मत करो । सोमयज्ञमें एक जगह बैठकर बलवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो । इन्द्रके स्तोत्र बारबार कहो ।

२३ वृषभं यथा अवक्रक्षिणं, गां न जुवं, चर्षणी-सहं, विद्वेषिणं, संवननं अभयंकरं मंहिष्ठं उभयाविनं मुहुः शंसत [ १३६१ ]- बैलके समान शत्रुको टक्कर देनेवाले, बैलके समान शीघ्रता करके शत्रुको हरानेवाले, शत्रुसे द्वेष करनेवाले, उपासकोंके द्वारा सेवा करने योग्य, निर्भय करनेवाले, महान् और दोनों तरहके ऐश्वर्य देनेवाले इन्द्रकी बारबार स्तुति करो ।

२४ सत्राजितः धनसा, अक्षितोतयः, वाजयन्तः रथाः इव गिरः उदीरते [ १३६२ ]- एक साथ शत्रुओंको जीतनेवाले, धन देनेवाले, रक्षण करनेवाले, युद्धमें जानेवाले रथके समान स्तोत्र कहे जाते हैं ।

२५ कण्वाः भृगवः धीतं विश्वं इत् इन्द्रं आशत [ १३६३ ]- कण्व और भृगु ध्यानके द्वारा सर्वव्यापक इन्द्रको प्राप्त हुए ।

२६ आयवः महयन्तः स्तोमेभिः अस्वरन् [ १३६३ ]- उपासक इन्द्रके महत्व गाते हुए स्तोत्र बोलने लगे ।

२७ सु वाजसातये प्रधन्व [ १३६४ ]- उत्तम रीतिसे अन्नदान करनेके लिए तू आगे हो ।

२८ सक्षणिः वृत्राणि परि [ १३६४ ]- साहस करने-वाला वीर शत्रुपर जैसा आक्रमण करता है, वैसे ही तू कर ।



२९ द्विषः तरध्वै ईरसे [ १३६४ ]- शत्रुओंको मार-  
नेके लिए आगे जाता है ।

३० नः ऋणया [ १३६४ ]- हमारे ऋण उतारनेवाला  
तू है ।

३१ महे अर्यराज्ये सं मदामसि [ १३६६ ]- महान्  
आर्य राज्यमें रहकर हम आनंदित होते हैं ।

३२ स्वादुः प्र धन्व [ १३६७ ]- तू मीठा बनकर आगे  
चल ।

३३ शक्रः दिव्यः पीयूषः सः अमृताय महे क्षयाय  
अर्ष [ १३६८ ]- तेजस्वी स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ अमृतके  
समान वह सोम अमर होनेके लिए और महान् स्थान प्राप्त  
करनेके लिए छनता है ।

३४ सूर्यस्य रश्मयः इव, द्रावयित्स्नवः मत्सरासः  
प्रसृतः आशवः सर्गासः ततं तन्तुं साकं ईरते, इन्द्रात्  
ऋते किंचन धाम न पवते [ १३७० ]- सूर्यकी किरणोंके  
समान प्रेरणा करनेवाले और आनन्द देनेवाले, शुद्ध किए  
गए और वर्तनमें रखे गए सोमरस फंली हुई छलनीमेंसे एक-  
दम नीचे रखे हुए वर्तनमें गिरते हैं । वे इन्द्रके सिवाय और  
कोई स्थान पसन्द नहीं करते ।

३५ अयं गौः पृश्निः अक्रमीत् [ १३७६ ]- यह सूर्य  
अपने तेजसे आकाशमें उदय हो गया ।

३६ महिषः दिवं व्यख्यत् [ १३७७ ]- यह महान्  
सूर्य झुलोकको प्रकाशित करता है ।

३७ वस्तोः त्रिशत् धाम युभिः विराजति [ १३७८ ]  
- बिनकी तीस घडीतक वह विशेष प्रकाशित होता है ।

## उपमा

१ कारिणे न [ १३५८ ]- कारीगर, कवि, स्तोता  
इत्यादिकोंको जैसे धन मिलता है, उसीप्रकार ( धनं प्र  
यंसत् ) धन हमें मिले ।

२ वाजयन्तः रथाः इव [ १३६२ ]- युद्धमें जानेवाले  
रथके समान विजय देनेवाले ( स्तोमासः सन्नाजितः )  
स्तोत्र शत्रुओंको जीतनेवाले हैं ।

३ कण्वाः इव [ १३६३ ]- कण्वाँके समान ( भृगवः  
विश्वं इत् इन्द्रं आशत ) भृगु सर्वव्यापक ईश्वरको प्राप्त  
करते हैं ।

४ सूर्या इव [ १३६३ ]- सूर्यके समान वह ईश्वर उन्हें  
बिछाई दिया ।

५ सूर्यस्य रश्मयः इव [ १३७० ]- सूर्यकी किरणोंके  
समान ( मत्सरासः परि ईरते ) सोमरस नीचे आते हैं ।

६ अत्कं न [ १३७२ ]- कबचके समान ( नित्तं परि  
अव्यत ) दूधका आवरण - मिश्रण सोम पर पड़ गया है ।

इस प्रकार इस अध्यायमें उपमायें आई हैं ।

## एकादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                 | देवता   | छन्दः   |
|-------------|--------------|----------------------|---|---------|
|             |              | ( १ )                |   |         |
| १३४७        | १।१३।१       | मेधातिथिः काण्वः     | आग्नी-सूक्तं- [ १ ] इन्द्रः सभिद्धः<br>अग्निर्वा, [ २ ] तनूनपात्,<br>[ ३ ] नराशंसः, [ ४ ] इळा | गायत्री |
| १३४८        | १।१३।२       | मेधातिथिः काण्वः     | "   | "       |
| १३४९        | १।१३।३       | मेधातिथिः काण्वः     | "   | "       |
| १३५०        | १।१३।४       | मेधातिथिः काण्वः     | "   | "       |
| १३५१        | ७।६६।४       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | आदित्यः   | "       |
| १३५२        | ७।६६।५       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "   | "       |



| संज्ञसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                 | देवता   | छन्दः |
|-------------|--------------|----------------------|---------|-------|
| १३५३        | ७।६६।६       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "     |
| १३५४        | ८।६४।१       | प्रगाथः काण्वः       | इन्द्रः | "     |
| १३५५        | ८।६४।२       | प्रगाथः काण्वः       | "       | "     |
| १३५६        | ८।६४।३       | प्रगाथः काण्वः       | "       | "     |

( २ )

|      |         |   |             |   |
|------|---------|---|-------------|---|
| १३५७ | ९।९७।३७ | पराशरः शाक्यः                           | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप्                                |
| १३५८ | ९।९७।३८ | पराशरः शाक्यः                           | "           | "   |
| १३५९ | ९।९७।३९ | पराशरः शाक्यः                           | "           | "   |
| १३६० | ८।१।१   | प्रगाथः घोरः काण्वः                     | इन्द्रः     | प्रगाथः=( विषमा बृहती,<br>समा सती बृहती ) |
| १३६१ | ८।१।२   | प्रगाथः घोरः काण्वः                     | "           | "   |
| १३६२ | ८।३।१५  | मेध्यातिथिः काण्वः                      | "           | "   |
| १३६३ | ८।३।१६  | मेध्यातिथिः काण्वः                      | "           | "   |
| १३६४ | ९।११०।१ | अ्यरुणस्त्रैवृष्णः असवस्युः पौरकुत्स्यः | पवमानः सोमः | पिपीलिका मध्या अनुष्टुप्                  |
| १३६५ | ९।११०।३ | अ्यरुणस्त्रैवृष्णः असवस्युः पौरकुत्स्यः | "           | "   |
| १३६६ | ९।११०।२ | अ्यरुणस्त्रैवृष्णः असवस्युः पौरकुत्स्यः | "           | "   |
| १३६७ | ९।१०९।१ | अग्नयो विष्ण्या ऐश्वराः                 | "           | द्विपदा विराट्                            |
| १३६८ | ९।१०९।३ | अग्नयो विष्ण्या ऐश्वराः                 | "           | "   |
| १३६९ | ९।१०९।२ | अग्नयो विष्ण्या ऐश्वराः                 | "           | "   |

( ३ )

|      |          |                      |                 |         |
|------|----------|----------------------|-----------------|---------|
| १३७० | ९।६९।६   | हिरण्यस्तूप आंगिरसः  | "               | अगती    |
| १३७१ | ९।६९।२   | हिरण्यस्तूप आंगिरसः  | "               | "       |
| १३७२ | ९।६९।४   | हिरण्यस्तूप आंगिरसः  | "               | "       |
| १३७३ | ७।१।१    | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | अग्निः          | विराट्  |
| १३७४ | ७।१।२    | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "               | "       |
| १३७५ | ७।२।३    | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "               | "       |
| १३७६ | १०।१८९।१ | सार्पराज्ञी          | आत्मा सूर्यो वा | गायत्री |
| १३७७ | १०।१८९।२ | सार्पराज्ञी          | "               | "       |
| १३७८ | १०।१८९।३ | सार्पराज्ञी          | "               | "       |





## अथ द्वादशोऽध्यायः ।



अथ षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ६-२ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ ( १-२ ) गौतमो राहूगणः; १ ( ३ ), ८, ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणः; २, ७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ प्रजा-  
पतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा; ४, १३ सोमरिः काण्वः; ५ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; ६ ( १ ) ऋजिश्वा भारद्वाजः;  
६ ( २ ) ऊर्ध्वसन्धा आंगिरसः, ९ तिरश्चीरांगिरसः; १० सुतंभर आत्रेयः; १२, १९ नृमेघ-पुरुमेधावांगिरसो;  
१४ शुनःशेष आजीगर्तिः; १५ नोधा गौतमः; १६ मेध्यातिथिः काण्वः; १७ रेणुर्वैश्वामित्रः; १८ कुत्स आंगि-  
रसः; २० अगस्त्यो मैत्रावरुणः ॥ १-२, ७, १०, १३-१४ अग्निः; ३, ६, ८, ११, १५, १७-१८ पवमानः  
सोमः; ४, ५, ९, १२, १६, १९, २० इन्द्रः ॥ १-२, ७, १०, १४, गायत्री; ३, ९, १९ ( १-२ ) २०  
( २-३ ) अनुष्टुप्; ४, ६-१३ काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); ५, १९  
( ३ ) बृहती; ८, ११, १५, १८ त्रिष्टुप्; १२, १६ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती );  
१७ जगती; २० ( १ ) स्कन्धोग्रीवी बृहती ॥

१३७९ उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७४।१ )  
१३८० यः स्नीहितीषु पूर्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्वाशुषे गयम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७४।२ )  
१३८१ स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥ ( ऋ. ७।१९।३ )  
१३८२ उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥ ४ ॥ १ ( ति ) ॥  
[ धा० १९। उ० १। स्व० ३ ] ( ऋ. १।७४।३ )  
॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १३७९ ] ( अध्वरं उप प्रयन्तः ) हिसारहित यज्ञ करनेवाले हम ( आरे च अस्मे शृण्वते ) दूरसे ही हमारी स्तुतियोंको सुननेवाले ( अग्नये ) अग्निके लिए ( मन्त्रं वोचेम ) मन्त्र बोलते हैं ॥ १ ॥

[ १३८० ] ( यः पूर्यः ) जो पहलेसे ही जाग्रत है, वह अग्नि ( स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु ) हिंसक शत्रुओंके एकत्रित होने पर भी ( दाशुषे ) दाताके लिए ( गयं अरक्षत् ) घरकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

[ १३८१ ] ( शन्तमः सः अग्निः ) अत्यन्त सुख देनेवाला वह अग्नि ( नः वेदः ) हमारे धन ( अमा-त्यं रक्षतु ) पासमें सुरक्षित रखे, ( उत अस्मान् ) और हमें ( अंहसः पातु ) पापोंसे सुरक्षित रखे ॥ ३ ॥

[ १३८२ ] ( वृत्र-हा ) शत्रुको मारनेवाला ( रणे रणे धनञ्जयः ) प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंको हराकर धन जीतने-वाला ( अग्निः उदजनि ) अग्नि प्रकट हुआ है, ( उत ) और अब ( जन्तवः ब्रुवन्तु ) ऋत्विज उसकी स्तुति करें ॥ ४ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

१३८३ अग्ने युंक्ष्व हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याश्वः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।४३ )

१३८४ अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्सोमपीतये ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।४४ )

१३८५ उदग्ने भारत द्युमदजस्त्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥ ३ ॥ २ ( यी ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।१६।४५ )

१३८६ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।

अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०।१३ )

१३८७ आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।

सरजारो न योषणां वरो न योनिमासदम्

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।१०।१४ )

१३८८ स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।

हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम्

॥ ३ ॥ ३ ( खै ) ॥

[ धा० २१ । उ० २ । स्व० ८ ] ( ऋ. ९।१०।१५ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १३८३ ] हे ( अग्ने देव ) अग्निदेव ! ( ये तव साधवः अश्वासः ) जो तेरे उत्तम और सुशील घोडे ( आश्वः अरं वहन्ति ) शीघ्रतासे तुझे पहुंचाते हैं, उनको ( युंक्ष्व हि ) तू अपने रथमें जोड ॥ १ ॥

[ १३८४ ] हे अग्ने ! ( नः अच्छ याहि ) हमारे पास तू सीधे आ ( वीतये सोमपीतये ) अन्न भक्षणके बाव सोम पीनेके लिए ( प्रयांसि अभि ) हविरूप अन्नके पास ( देवान् आ वह ) देवोंको ले आ ॥ २ ॥

[ १३८५ ] हे ( भारत अग्ने ) पोषण करनेवाले अग्ने ! ( उत शोच ) तू प्रज्वलित हो । हे ( अ-जर ) जरारहित ( दविद्युतत् ) तेजस्वी और ( द्युमत् ) प्रकाशमान अग्ने ! ( अ-जस्त्रेण विभाहि ) कम न होनेवाले तेजसे प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

[ १३८६ ] ( सुन्वानाय अन्धसः ) रस निकाले गए सोमके विषयमें ( तत् वचः ) उन प्रसिद्ध शब्दोंको ( मर्तः न वष्ट ) नीचे मनुष्य न सुने । हे स्तुति करनेवालो । ( अ-राधसं श्वानं अप हत ) विघ्न करनेवाले कुत्तोंको मारो, ( भृगवः मखं न ) जिसप्रकार भृगुने दुष्ट मखको मारा ॥ १ ॥

[ १३८७ ] ( जामिः ) भाईके समान सोम ( अत्के आ अव्यत ) छलनीसे छाना जाता है । ( ओण्योः भुजे पुत्रः न ) रक्षण करनेवाले माता पिताकी भुजाओंमें जैसे पुत्र रहता है, उसीप्रकार वह ( योनिं आसदम् ) अपने कलशमें जानेके लिए ( सरत् ) नीचे गिरता है ( जारः योषणां न ) जिसप्रकार जार स्त्रीकी ओर जाता है, अथवा ( वरः न ) वर - पति - कन्याकी ओर जाता है उसीप्रकार सोमरस कलशकी ओर जाता है ॥ २ ॥

[ १३८८ ] ( दक्ष-साधनः सः वीरः ) बल बढ़ानेके साधनसे युक्त वह वीर सोम ( यः रोदसी वितस्तम्भ ) जिसने द्युलोक और पृथ्वीको अपने तेजसे भर दिया है । ( वेधाः न ) जिसप्रकार यजमान अपने घर आता है, उसीप्रकार यह सोम ( हरिः योनिं आसदम् ) हरे रंगवाला होकर कलशमें आया है, वह ( पवित्रे अव्यत ) छलनीमेंसे छाना जाता है ॥ ३ ॥



१३८९ अ-भ्रातृव्यो अना त्वमेनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

( ऋ. ८।२।१३ )

१३९० न की रेवन्तः सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।

यदा कृणोषि नदनुः समूहस्यादित्पितेव ह्यसे

॥ २ ॥ ४ ( पि ) )

[ धा० १९ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।२।१४ )

१३९१ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।२४ )

१३९२ आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेष्या ।

शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।२९ )

१३९३ पित्रा त्वरस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।

परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुमदाय पत्यते

॥ ३ ॥ ५ ( प ) ॥

[ धा २० । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१।२६ )

[ १३८९ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं जनुषा अ-भ्रातृव्यः ) तू जन्ममे ही शत्रुरहित है । ( सनात् अ-ना ) हमेशासे नेतारहित और ( अनापिः असि ) भाईरहित है । जब ( आपित्वं इच्छसे ) 'तू भाईकी इच्छा करता है, तब ( युधा इत् ) युद्धसे ही वह चाहता है ॥ १ ॥

१ अ-भ्रातृव्यः — भाईरहित, शत्रुरहित ।

२ अ-ना — जिसपर नियंत्रण रखनेवाला कोई नहीं ।

३ युधा इत् — युद्ध करके ही-शत्रुओंको दूर करके ही उपासकोंको अपना मित्र बनाता है ।

[ १३९० ] ( रेवन्तं ) केवल धन उसके पास है, इसीलिए किसी मनुष्यको (सख्याय न किः विन्दसे ) तू अपना मित्र नहीं बनाता । ( सुराश्वः ते पीयन्ति ) शराब पीनेवाले नास्तिक तुझे दुःख देते हैं । ( यदा नदनुं कृणोषि ) जब ज्ञान प्राप्त करनेवालेको तू अपना मित्र बनाता है, तब ( समूहसि ) उसे उत्तम मार्ग पर चलाता है । ( आदित् ) तब ( पिता इव ह्यसे ) पिताके समान तू उनके द्वारा पुकारा जाता है ॥ २ ॥

[ १३९१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ब्रह्म-युजः केशिनः ) इसारेसे रथमें जुड़ जानेवाले, सुन्दर अयालवाले, ( हिरण्यये रथे युक्ताः ) सोनेके रथमें जोड़े गए ( सहस्रं शतं हरयः ) हजारों व सैकड़ों घोड़े ( सोम-पीतये त्वा ) आ हवन्तु ) सोम पीनेके लिए तुझे यज्ञके स्थानपर ले आवें ॥ १ ॥

[ १३९२ ] हे इन्द्र ! ( मध्वः विवक्षणस्य अन्धसः पीतये ) मीठे रससे युक्त तथा स्तुत्य सोमके पीनेके लिए ( हिरण्यये रथे ) सुनहरे रथमें ( मयूर-शेष्या शितिपृष्ठा हरी ) मोरके समान रंगवाले, सफेद पीठवाले दो घोड़े ( त्वा आवहतां ) तुझे यज्ञमें पहुँचावें ॥ २ ॥

[ १३९३ ] हे ( गिर्वणः ) प्रशंसनीय इन्द्र ! ( परिष्कृतस्य रसिनः अस्य सुतस्य ) स्वच्छ किए गए रस युक्त इस सोमरसका ( पित्रा ) तू निःसंशय पान कर । तू ( पूर्व-पाः इव ) प्रथम पीनेवाला है । ( चारुः इयं आसुतिः ) सुन्दर यह सोमरस ( मदाय पत्यते ) आनन्द देनेके योग्य है ॥ ३ ॥



१३९४ आ सोता परि पिञ्चताश्च न स्तोममप्युत्तरजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०।८।७ )

१३९५ सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।

ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ २ ॥ ६ ( या ) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।१०।८।८ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१३९६ अग्निवृत्राणि जङ्घनद्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।३४ )

१३९७ गर्भे मातुः पितुः पिता विदियुतानो अक्षरे । सीदन्मृतस्य योनिमा ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।३५ )

१३९८ ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यदीदयदिवि ॥ ३ ॥ ७ ( व ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ३।१६।३६ )

१३९९ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मिमेव सद्यः पशुमन्ति होता ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१७।१ )

[ १३९४ ] हे ऋत्विजो ! ( अश्वं न ) घोडेके समान ( अप्युत्तरं स्तोमं ) जलोंको वेगसे बहानेवाले प्रशंसनीय ( रजस्तुरं वनप्रक्षं ) तेजको तेजीसे फँलानेवाले और पानीके समान गति करनेवाले ( उदप्रुतं आसोत ) पानीमें तेरनेवाले सोमका रस निकालो और ( परि पिञ्चत ) उसे पानीमें मिलाओ ॥ १ ॥

[ १३९५ ] ( सहस्र-धारं वृषभं ) हजारों धाराओंसे छाना जानेवाला, बलवर्धक ( पयो-दुहं प्रियं ) बूधमें मिलाये गए प्रिय सोमको ( देवाय जन्मने ) देवोंको देनेके लिए शुद्ध करो । ( देवः ऋतं ) दिव्य और यज्ञरूप ( बृहत् ऋतजातः ) महान् और यज्ञमें लाया गया ( यः राजा ) जो राजा सोम है, वह ( ऋतेन विवावृधे ) जलसे बढ़ाया जाता है ॥ २ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १३९६ ] ( समिद्धः शुक्रः ) प्रज्वलित और तेजस्वी ( आहुतः विपन्यया ) आहुति दिया गया और स्तुति किया गया ऐसा वह ( द्रविणस्युः अग्निः ) धन देनेवाला अग्नि ( वृत्राणि जङ्घनत् ) शत्रुओंको मारता है ॥ १ ॥

[ १३९७ ] ( मातुः गर्भे ) मातृभूमिमें ( अ-क्षरे ) अविनाशी यज्ञवेदोके स्थान पर ( विदियुतानः ) विशेष प्रवीण हुआ हुआ ( पितुः पिता ) बालकका रक्षक अग्नि ( ऋतस्य योनिं ) यज्ञकी वेदोमें ( आसीदन् ) बैठा हुआ है ॥ २ ॥

[ १३९८ ] हे ( जातवेदः विचर्षणे अग्ने ) सर्वज्ञ, विशेष द्रष्टा अग्ने ! ( प्रजावत् ब्रह्म आ भर ) पुत्रपौत्रोंसे युक्त अन्न हमें दे । ( यत् दिवि दीदयत् ) जो बालकमें देवताओंको दिया जाता है ॥ ३ ॥

[ १३९९ ] ( अस्य प्रेषा ) इस सोमका प्रेरणा देनेवाला और ( हेमना पूयमानः देवः ) सोनेसे पवित्र होनेवाला तेजस्वी ( रसं देवेभिः समपृक्त ) रस देवोंसे मिलता है । ( सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ) सोमरस शब्द करता हुआ छलनी द्वारा छनता है । ( होता मितः पशुमन्ति सद्यः इव ) जिसप्रकार हवन करनेवाला यजमान स्वयंके द्वारा बनाये गए पशुयुक्त घरोंमें जाता है, उसीप्रकार सोम कलशमें जाता है ॥ १ ॥



- १४०० भद्रा वस्त्रा समन्याः वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।  
आ वच्यस्व चम्बोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९।१२ )
- १४०१ समु प्रियो मृज्यते सानौ अव्ये यशस्त्रो यशसां क्षैतो अस्मे ।  
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ८ ( रि ) ॥  
[ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९।१३ )
- १४०२ एतो निवन्द्रंस्तवाम शुद्धंशुद्धेन साम्ना ।  
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसंशुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९।७ )
- १४०३ इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।  
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममाद्धि सोम्य ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९।८ )
- १४०४ इन्द्र शुद्धो हि नो रयिंशुद्धो रत्नानि दाशुषे ।  
शुद्धो वृत्राणि जिघ्रसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ ३ ॥ ९ ( यी ) ॥  
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९।९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ १४०० ] ( भद्रा समन्या वस्त्रा वसानः ) कल्याणकारक युद्धके योग्य ऐसे वस्त्रोंको - तेजोंको धारण करनेवाला ( महान् कविः ) महान् ज्ञानी ( नि वचनानि शंसन् ) स्तुति और स्तोत्रोंका कहनेवाला ( विचक्षणः जागृविः ) ज्ञानी और जाग्रत रहनेवाला यह सोम है, हे सोम ! वह तू ( पूयमानः ) पवित्र होकर ( देववीतौ ) यशमें ( चम्बोः आ वच्यस्व ) बर्तनमें प्रविष्ट हो ॥ २ ॥

[ १४०१ ] ( यशसां यशस्त्रः ) यशस्वी होनेवालोंमें श्रेष्ठ यशस्वी ( क्षैतः प्रियः ) भूमिपर उत्पन्न होकर सबको प्यारा लगनेवाला ( सानौ अव्ये ) बालोंकी श्रेष्ठ छलनीमें ( अस्मे सं मृज्यते ) हमारे लिए ऋत्विजोंके द्वारा छाना जाता है । ( पूयमानः ) पवित्र होनेवाला तू भी ( धन्वा अभि स्वर ) खाली बर्तनमें शब्द करते हुए जा । ( यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात ) तुम कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमारी हमेशा रक्षा करो ॥ ३ ॥

[ १४०२ ] ( नु एत उ ) तुम शीघ्र आओ । ( शुद्धेन साम्ना ) हम शुद्ध सामगायनसे और ( शुद्धैः उक्थैः ) शुद्ध मंत्रोंसे ( शुद्धं इन्द्रं स्तवामः ) शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करते हैं । ( वावृध्वांसं ) सामर्थ्यसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले इन्द्रको ( शुद्धैः आशीर्वान् ) शुद्ध और गायके वृद्धके साथ मिला हुआ सोम ( ममत्तु ) प्रसन्न करे ॥ १ ॥

[ १४०३ ] हे इन्द्र ! तू ( शुद्धः नः आगहि ) शुद्ध रहनेवाले हमारे पास आ ( शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः ) शुद्ध रक्षणके साधनोंसे युक्त, शुद्ध पवित्र तू ( शुद्धः रयिं नि धारय ) शुद्ध रहकर हमें धन दे । हे ( सोम्य ) सोम पीने-वाले इन्द्र ! ( शुद्धः ममाद्धि ) तू शुद्ध होकर हमें आनन्द प्राप्त करा ॥ २ ॥

[ १४०४ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( शुद्धः हि नः रयिं ) तू शुद्ध है इसलिए तू हमें धन दे । ( शुद्धः दाशुषे रत्नानि ) तू शुद्ध रहकर बाताको रत्न दे । ( शुद्धः वृत्राणि जिघ्रसे ) तू शुद्ध रहकर शत्रुओंको मारता है । ( शुद्धः वाजं सिषाससि ) तू शुद्ध रहकर अश्व बेता है ॥ ३ ॥

॥ यद्वां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ४ ]

१४०५ अग्ने स्तोमं मनामहे सिद्धमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१३।२ )

१४०६ अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्व । स यक्षदैव्यं जनम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१३।३ )

१४०७ त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ३ ॥ १० ( रि ) ॥

[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ५।१३।४ )

१४०८ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गाषिणमवावशंत वाणीः ।

वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नभा दयते वार्याणि ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१०।२ )

१४०९ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।

तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वपाठः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१०।३ )

१४१० उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्तसमीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।

अपः सिषासन्नुपसः स्वऽर्गाः सं चिक्रदो महो असभ्यं वाजान् ॥ ३ ॥ ११ ( ५ ) ॥  
[ धा० ३० । उ० १ । स्व० ६ ] ( ऋ. ५।१०।४ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४०५ ] ( द्रविणस्यवः ) धनकी हृष्टा करनेवाले हम ( दिवि-स्पृशः देवस्य अग्नेः ) आकाशमें व्याप्त होनेवाले तेजस्वी अग्निके ( सिद्धं स्तोमं ) सिद्धि देनेवाले स्तोत्रको ( अद्य ) आज ( मनामहे ) करते हैं ॥ १ ॥

[ १४०६ ] ( होता यः अग्निः ) हवन करनेवाला जो अग्नि ( मानुषेषु आ ) मनुष्योंके घरोंमें रहता है । ( सः नः गिरः जुषत ) वह हमारी स्तुतिर्थोंको सुने, और ( दैव्यं जनं यक्षत् ) दिव्य जनोंको पूज्य करे ॥ २ ॥

[ १४०७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( जुष्टः वरेण्यः होता त्वं ) प्रसन्न, श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू ( स-प्रथाः असि ) सबसे श्रेष्ठ है । सब यजमान ( त्वया ) तेरे द्वारा ही ( यज्ञं वितन्वते ) यज्ञका अनुष्ठान करते हैं ॥ ३ ॥

[ १४०८ ] ( त्रिपृष्ठं वृषणं ) तीनों सवनोंमें रहनेवाले बलवान् ( वयोधां ) अन्न देनेवाले और ( अङ्गोषिणं ) शब्द करनेवाले सोमकी ( वाणीः अभ्यवावशन्त ) हमारी वाणियां स्तुति करती हैं ( वरुणः न ) वरुणके समान ( वना वसानः ) जलमें मिला हुआ ( सिन्धुः रत्नधाः ) गमनशील और रत्न देनेवाला सोम ( वार्याणि दयते ) स्वीकार करने योग्य धन स्तुति करनेवालोंको देता है ॥ १ ॥

[ १४०९ ] हे सोम ! ( शूरग्रामः सर्ववीरः ) शूरोंके समूह और अनेक वीरोंसे युक्त ( सहावान् जेता ) सामर्थ्यवान् और विजयी ( धनानि सनिता ) धन देनेवाला ( तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा ) तीक्ष्ण शस्त्र पासमें रखनेवाला और शीघ्रतासे धनुष चलानेवाला ( समत्सु अशकृहः ) संग्राममें असह्य ( पृतनासु शत्रून् साह्वान् ) युद्धमें शत्रुको हरानेवाला तू सोम ( पवस्व ) कलशमें छनता जा ॥ २ ॥

[ १४१० ] हे सोम ! ( उरु-गव्यूतिः ) विस्तीर्ण मार्गवाला ( अभयानि कृण्वन् ) निर्भय करनेवाला ( पुरन्धी समीचीने कुर्वन् ) शावापुषिवीको जोड़नेवाला ( आ पवस्व ) तू छनता जा और ( अपः उपसः स्वः गाः सिषासन् ) जल, उषा सूर्य, किरणें और गायोंका अपनी पुष्टिके लिए सेवन करता हुआ ( सं चिक्रदः ) तथा शब्द करता हुआ ( महः वाजान् ) बहुत सारा अन्न ( असभ्यं ) हमें दे ॥ ३ ॥



१४११ त्वमिन्द्र यशा असृजीषी शवसस्पतिः ।

त्वं वृत्राणि हस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तर्षणीधृतिः

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९०।५ )

१४१२ तस्य त्वा नूनमसुर प्रचेतस राधो भागमिवेमहे ।

महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन्

॥ २ ॥ १२ ( त ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।९०।६ )

१४१३ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९१।३ )

१४१४ अपां नपात सुभग सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि

॥ २ ॥ १३ ( ता ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९१।४ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१४१५ यमग्ने पृतसु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२७।७ )

१४१६ न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाद्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२७।८ )

[ १४११ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( शवसः पतिः ऋजीषी ) बलका स्वामी और सोमकी इच्छा करने-वाला तथा ( यशाः असि ) यशस्वी है । ( अनुत्तः चर्वणी-धृतिः त्वं ) अपराजित और सब मनुष्योंका आधार तू ( एकः इत् ) अकेला ही ( अप्रतीनि वृत्राणि ) बलवान् शत्रुओंको ( पुरु हंसि ) बहुत संख्यामें मारता है ॥ १ ॥

[ १४१२ ] हे ( असुर इन्द्र ) बलवान् इन्द्र ! ( तं प्रचेतसं त्वा उ ) उस ज्ञानसे युक्त तेरे पाससे ( भागं इव ) पितासे जिसप्रकार धनका भाग मांगते हैं, उसीप्रकार ( राधः नूनं ईमहे ) हम धन मांगते हैं । ( कृत्तिः इव ) बड़े चोगेके समान ( ते मही शरणा ) तेरे विस्तृत स्थान हमें आश्रय देनेवाले हैं, ( ते सुम्ना ) तेरे उत्तम मन बनानेवाले सुख ( नः प्राश्नुवन् ) हमें प्राप्त हों ॥ २ ॥

[ १४१३ ] हे अग्ने ! ( देवत्रा देवं ) देवोंमें अधिक विषय ( होतारं अमर्त्यं ) हवन करनेवाले, अमर ( अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं ) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले ( यजिष्ठं त्वा ववृमहे ) यज्ञके कर्त्ता तेरी हम भक्ति करते हैं ॥ १ ॥

[ १४१४ ] ( अपां-न-पातं ) जलोंको न गिरानेवाले ( सुभगं सु-दीदिति ) उत्तम भाग्यवान् और उत्तम तेजसे तेजस्वी ( श्रेष्ठ-शोचिषं अग्निं ) तथा श्रेष्ठ ज्वालाओंसे युक्त अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं । ( सः नः ) वह हमें ( दिवि मित्रस्य वरुणस्य ) यज्ञस्थानमें रहनेवाले मित्र और वरुणके द्वारा मिलनेवाले ( सुम्नं यक्षते ) सुख देवे, ( सः अपां ) वह हमें जलोंसे मिलनेवाले सुख देवे ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १४१५ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( पृतसु यं मर्त्यं अवाः ) संप्राममें जिस मनुष्यकी तू रक्षा करता है, ( वाजेषु यं जुनाः ) स्पर्धामें जिस पुरुषको तू प्रेरणा देता है ( सः ) वह ( शश्वतीः इषः यन्ता ) हमेशा अन्न प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[ १४१६ ] हे ( सहन्त्य ) शत्रुओंकी हरानेवाले अग्ने ! ( अस्य कयस्य पर्येता न किः चित् ) इस तेरे भक्तका पराभव करनेवाला कोई भी नहीं, क्योंकि इसका ( श्रवाद्यः वाजः अस्ति ) यशस्वी बल प्रसिद्ध है ॥ २ ॥



१४१७ स वाजं विश्वचर्षणिरर्वङ्गिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥ १४ ( ठा ) ॥  
[ धा० १८ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १।२७।९ )

१४१८ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।  
हरिः पर्यद्रवजाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९३।१ )

१४१९ सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अङ्गिः ।  
मर्यो न योषामभिः निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्त्रियाभिः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९३।२ )

१४२० उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।  
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न नितैः ॥ ३ ॥ १५ ( वृ ) ॥  
[ धा ३० । उ० नास्ति । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।९३।३ )

१४२१ पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।  
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधेऽस्माऽवन्तु ते धियः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।१ )

[ १४१७ ] ( विश्व-चर्षणिः सः ) सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला वह अग्नि ( अर्वङ्गिः वाजं तरुता अस्तु ) घोड़ोंके द्वारा युद्धमें जय प्राप्त करानेवाला होवे, ( विप्रेभिः सनिता अस्तु ) तथा ज्ञानियों द्वारा प्रसन्न किया गया वह अग्नि हमें फल देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ १४१८ ] ( साकं उक्षः स्वसारः ) एक साथ कार्य करनेवाली ये अंगुलियां ( मर्जयन्त ) सोमरसको शुद्ध करती हैं । ( दश धीतयः ) ये दसों अंगुलियां ( धीरस्य धनुत्रीः ) इस धैर्यधारी सोममें हलचल पैदा करती हैं । बादमें ( हरिः सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत् ) यह हरे रंगका सोम सूर्यकी दिशासे छाना जाता है । ( वाजी न अत्यः ) घोड़ोंके समान यह चंचल सोम ( द्रोणं ननक्षे ) कलशमें जाता है ॥ १ ॥

[ १४१९ ] ( वावशानः ) देवता जिसकी इच्छा करते हैं ( पुरुवारः ) अनेक जिसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ऐसा यह ( वृषा ) बलवान् सोम ( अङ्गिः सं दधन्वे ) पानीके साथ मिलाया जाता है, ( मातृभिः शिशुः न ) मातासे जैसे पुत्र मिलाया जाता है, अथवा ( मर्यः योषां न ) पुरुष जवान स्त्रीसे जैसे मिलता है उसीप्रकार सोम पानीमें मिलाया जाता है । ( निष्कृतं अभियन् ) अपने संस्कार किये जानेवाले स्थान पर जानेंके लिए ( कलशे ) कलशमें ( उस्त्रियाभिः सं गच्छते ) गायके दूधके साथ सोमरस मिलाया जाता है ॥ २ ॥

[ १४२० ] ( उत अघ्न्यायाः ऊधः प्रपिप्ये ) और गायके दुग्धाशयको यह सोम अधिक पूर्ण करता है । ( सु-मेधाः इन्दुः ) उत्तम बुद्धिमान् यह सोम ( धाराभिः सचते ) धाराओंसे मिलाया जाता है । ( गावः चमूषु मूर्धानं ) गायें बर्तनमें रहनेवाले श्रेष्ठ सोमको ( नितैः वसुभिः न ) जिसप्रकार लोग स्वच्छ कपड़ोंसे अपने आपको आच्छादित करते हैं, उसीप्रकार ( पयसा अभि श्रीणन्ति ) अपने दूधसे आच्छादित करती हैं ॥ ३ ॥

[ १४२१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( गोमतः नः रसिनः सुतस्य ) गायके दूधसे युक्त, हमारे द्वारा निचोड़े गए सोमरसको ( पिब, मत्स्वा ) पी और आनन्दित हो । ( सधमाद्ये आपिः नः वृधे बोधि ) एक जगह बैठकर पीनेके समय भाईके समान हमें बड़ाना है, तू यह जान । ( ते धियः अस्मान् अवन्तु ) तेरी बुद्धियां हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥



१४२२ भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।

अस्मां चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥ १६ ( ल ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । ख० १ ] ( ऋ. ८।३।२ )

१४२३ त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुहिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।

चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारुणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७०।१ )

१४२४ स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि श्रथे ।

तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७०।२ )

१४२५ ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।

येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥ ३ ॥ १७ ( चे ) ॥

[ धा० ३२ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।७०।३ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ १४२२ ] हे इन्द्र ! ( वयं ते सुमतौ ) हम तेरे अनुकूल उत्तम बुद्धिमें रहकर ( वाजिनः भूयाम ) बलवान् होवें । ( अभिमातये ) शत्रुओंके लिए ( नः मा स्तः ) हमारा नाश न कर । अपितु ( अभिष्टिभिः चित्राभिः [ ऊतिभिः ] ) इच्छित और सामर्थ्य युक्त संरक्षणोंसे ( अस्मान् अवतात् ) हमारा संरक्षण कर और ( सुम्नेषु नः आयामय ) सुख समृद्धियोंमें हमें बढा ॥ २ ॥

[ १४२३ ] ( परमे व्योमनि अस्मै ) अन्तरिक्षमें रहनेवाले इस सोमको । ( त्रिः सप्त धेनवः ) इसकीस गायें ( सत्यां आशिरं दुदुहिरे ) उत्तम दूध देती हैं । और यह सोम ( यत् ) जब ( ऋतैः अवर्धत ) यज्ञोंसे बढाया जाता है, तब ( अन्या चत्वारि भुवनानि ) अन्य चार प्रकारके पानीको ( निर्णिजे चारुणि चक्रे ) छाननेमें सहायक होता है ॥ १ ॥

[ १४२४ ] ( चारुणः अमृतस्य ) उत्तम जलकी ( भक्षमाणः सः ) इच्छा करनेवाला यह सोम ( उभे द्यावा ) दोनों ध्रु और पृथ्वीलोकको ( काव्येन विश्रथे ) स्तुतिस्तोत्रोंके द्वारा जलसे परिपूर्ण करता है । ( तेजिष्ठाः अपः ) तेजस्वी पानीको ( मंहना परिव्यत ) अपने महत्वसे ढक देता है ( यदि ) इस समय ऋत्विज ( देवस्य सदः ) इस विषय सोमके स्थानको ( श्रवसा विदुः ) यज्ञके लिए हविसे युक्त करते हैं ॥ २ ॥

[ १४२५ ] ( अमृत्यवः अदाभ्यासः ) अमर और न दबाये जानेवाली ( अस्य ते केतवः ) इस सोमकी वे किरणें ( उभे जनुषी अनु सन्तु ) दोनों प्राणियोंको सुरक्षित रखती हैं । ( येभिः ) जिन किरणोंसे सोम ( नृम्णा च देव्या च ) अपने सामर्थ्योंको और देवोंको देने योग्य अश्वोंको ( पुनते ) देवोंकी ओर प्रेरित करता है । ( आत् इत् ) बाबमें ( राजानं ) सोम राजाको ( मननाः अगृभ्णत ) स्तुतियां प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पाचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

१४२६ <sup>३ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> अग्निं वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽग्निं मित्रावरुणा पूयमानः ।

<sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> अभी नरं धीजवनं रथेष्टामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९।४९ )

१४२७ <sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> अग्निं वस्त्रा सुवसनान्यर्षाग्निं धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।

<sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> अग्निं चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वात्रथिनो देव सोम

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९।५० )

१४२८ <sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यग्निं विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।

<sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> अग्निं येन द्रविणमश्रवामाभ्यर्षेयं जमदग्निवन्नः

॥ ३ ॥ १८ ( खे ) ॥

[ या० २१ । उ० २ । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।९।५१ )

१४२९ <sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> यज्जायथा अपूर्व्यं मघवन्वृत्रहत्याय ।

<sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तम्ना उतो दिवम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८।५९ )

१४३० <sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।

<sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम्

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८।६० )

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १४२६ ] हे सोम ! ( गृणानः ) स्तुति किए जानेके बाद तू ( वीति वायुं अग्निं अर्ष ) पीनेके लिए वायुके पास जा । ( पूयमानः मित्रावरुणौ अग्निं ) साफ होनेके बाद मित्र और वरुणके पास जा । ( नरं-धी-जवनं ) सबोंके नेता और बुद्धिको देनेवाले ( रथेष्टां अग्निं ) रथमें बैठे हुए अश्विनो कुमारोंके पास जा, तथा ( वृषणं वज्र-बाहुं इन्द्रं अग्निं ) बलवान्, वज्रके समान जिसकी भुजायें हैं, ऐसे इन्द्रके पास भी जा ॥ १ ॥

[ १४२७ ] हे ( देव सोम ) दिव्य सोम ! तू हमें ( सु वसनानि वस्त्रा अभ्यर्ष ) उत्तम पहननेके योग्य वस्त्र दे । ( पूयमानः ) साफ होनेवाला तू ( सुदुघाः धेनूः अग्निं ) उत्तम दूध देनेवाली गाय दे । ( भर्तवे ) भरण पोषणके लिए ( नः चन्द्रा हिरण्या अग्निं ) हमें तेजस्वी सोना दे और ( रथिनः अश्वान् अग्निं ) रथके साथ घोड़े दे ॥ २ ॥

[ १४२८ ] हे सोम ! ( पूयमानः ) छाना जानेवाला तू ( नः दिव्या वसूनि अभ्यर्ष ) हमें दिव्य धन दे । ( पार्थिवा विश्वा अग्निं ) पृथ्वी परके सब ऐश्वर्य दे । ( येन द्रविणं अश्रुवाम अग्निं ) जिससे हमें धन मिले वह सामर्थ्य हमें दे । ( जमदग्निवत् आर्षेयं नः ) जमदग्निके समान ऋषियोंके धन भी हमें दे ॥ ३ ॥

[ १४२९ ] ( अपूर्व्यं मघवन् ) हे अपूर्व इन्द्र ! ( वृत्रहत्याय यत् जायथाः ) शत्रुओंका नाश करनेके लिए जब तू प्रकट होता है, तब ( तत् पृथिवीं अ प्रथयः ) तूने पृथ्वीको दृढ़ किया ( उत उ तत् दिवं अस्तम्नाः ) और बुल्लोकको ऊपर स्तब्ध किया ॥ १ ॥

[ १४३० ] हे इन्द्र ! ( तत् ते यज्ञः अजायत ) उस समय तेरे लिए यज्ञ हुए ( उत तत् हस्कृतिः अर्कः ) तब बिनाको बनानेवाला सूर्य उत्पन्न हुआ । ( यत् जातं यत् जन्त्वं ) जो कुछ हुआ और होनेवाला है ( तत् विश्वं अभिभूः असि ) उन सबोंको तू हरानेवाला है ॥ २ ॥



१४३१ आमासु पक्कमैरय आ सूर्यः रोहयो दिवि ।

घर्म न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ३ ॥ १९ ( पे ) ॥

[ धा० ३० । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ८।८९।७ )

१४३२ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१७५।१ )

१४३३ आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।

सहावाः इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१७५।२ )

१४३४ त्वं हि शूरः सनिता चौदयो मनुषो रथम् ।

सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥ २० ( बि ) ॥

[ धा० २५ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।१७५।३ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्थः ॥ ६-२ ॥

॥ द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

[ १४३१ ] हे इन्द्र ! ( आमासु पक्कमैरयः ) अपक्व गायोंमें परिपक्व दूधको तूने उत्पन्न किया । ( दिवि सूर्यः अरोहयः ) सुलोकमें सूर्यको चढ़ाया । ( घर्मं सामं न ) जिसप्रकार प्रवर्ग - यज्ञको जलाते हैं, उसीप्रकार ( सु वृक्तिभिः तपता ) उत्तम स्तुतियोंसे इन्द्रको तपाओ, उत्साहित करो । ( गिर्वणसे जुष्टं बृहत् ) स्तुत्य इन्द्रको आनन्द देनेके लिए बृहत् सामका गान करो ॥ ३ ॥

[ १४३२ ] हे ( हरिवः ) घोड़े पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( महः पात्रस्य इव ते ) बड़े बर्तनके समान तू महान् है । ( वृष्णः ते ) बलयुक्त तेरे लिए ( मत्सरो मदः वृषा ) आनन्ददायक, हर्षवर्धक, बल बढ़ानेवाला ( वाजी सहस्रसातमः इन्दुः ) बलवान् और हजारों दान देनेवाला जो सोमरस है, उसे ( अपायि मत्सि ) पी और आनन्दित हो ॥ १ ॥

[ १४३३ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( ते ) तेरे लिए तैयार किया गया यह ( वृषा मदः ) बलवर्धक, आनन्ददायक ( वरेण्यः सहावान् ) श्रेष्ठ, सामर्थ्यवान् ( सानसिः पृतनाषाड् ) पीने योग्य, शत्रुओंको हरानेवाला ( अमर्त्यः मत्सरो आगन्तु ) अमर और आनन्द देनेवाला सोमरस तुझे प्राप्त होवे ॥ २ ॥

[ १४३४ ] हे इन्द्र ! ( त्वं हि शूरः सनिता ) तू शूर और दानका देनेवाला है, ( मनुषः रथं चौदय ) मनुष्यके मनोरथोंको उत्तम प्रकारसे प्रेरित कर । ( सहावान् ) सहायता करनेवाला होकर ( [ अग्निः ] शोचिषा पात्रं न ) जिस प्रकार अग्नि अपनी उवालासे बर्तन जला डालता है, उसीप्रकार ( दस्युं अव्रतं ओषः ) दुष्ट और व्रत पालन न करनेवालेको जला डाल ॥ ३ ॥

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥



## द्वादश अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

१ हे इन्द्र ! त्वं जनुषा अ-भ्रातृव्यः [ १३८९ ]- हे इन्द्र ! तू जन्मसे शत्रुरहित है। तेरा कोई शत्रु नहीं। यहाँ “भ्रातृव्य” शब्द भाईबन्धुका भाव दिखाता है। भाई भाईमें बँट होना स्वाभाविक है, ऐसा प्रतीत होता है। वैदिककालमें भी “भ्रातृव्य” पद बँटभावका छोटक था। जन्मसे ही इन्द्रका कोई भाई नहीं, जिससे द्वेष हो सके।

२ सनात् अ-ना [ १३८९ ]- तुझ पर नेतृत्व करनेवाला कोई नहीं।

३ अनापिः असि [ १३८९ ]- तू भाईरहित है। तेरा कोई भाई नहीं, तेरा सहायक कोई नहीं।

४ आपित्वं इच्छसे युधा इत् [ १३८९ ]- तू जब भाई चाहता है, तब युद्ध करके तू शत्रुओंको दूर करता है और लोगोंको अपना मित्र बनाता है।

इन्द्रका भाई नहीं, नेता नहीं, मित्र नहीं, ऐसा यह इन्द्र अकेला ही है। पर वह अपनी अपार शक्तसे सबसे अधिक सामर्थ्यवान् है। और अकेला ही जो कुछ करना होता है करके दिखाता है। जिसका नेता, भाई, मित्र कोई दूसरा नहीं, फिर भी वह सब कुछ करता है। इससे उसकी अपार शक्तिका ज्ञान होता है। वह अकेला ही सबसे अधिक शक्तिशाली है, इसलिए वह अकेला ही सब कुछ करता है।

५ रेवन्तं सख्याय न किः विन्दसे [ १३९० ]- केवल कोई धनवान् है, इसलिए तू उसे अपना मित्र नहीं बनाता। उसमें कौनसे अच्छे गुण हैं, यह तू देखता है और जो गुणवान् है उसे ही तू अपना मित्र बनाता है।

६ यदा नदनुं कृणोषि, समूहसि, आदित् पिता इव ह्यसे [ १३९० ]- जब तू ज्ञान प्राप्त करनेवालेको मित्र बनाता है, तब उसे सम्मार्गसे चलाकर समूह बनता है। तब लोग तेरी पिताके समान स्तुति करते हैं। क्योंकि पिता अपने बच्चोंको उत्तम मार्ग पर चलाता है, और उनकी उत्पत्ति करता है।

७ हे इन्द्र ! त्वं शवसः पतिः यशाः असि [ १४११ ]- हे इन्द्र ! तू बलवान् है और उस कारण यशस्वी भी है।

८ अनुसः चर्यणीधृतिः त्वं एकः इत् अप्रतीनि, पुरु वृत्राणि हंसि [ १४११ ]- पराजित न होनेवाला और

सब मनुष्योंका धारण करनेवाला अकेला ही तू बहुत बलवान् शत्रुओंको हराता है।

९ ते धियः अस्मान् अवन्तु [ १४२१ ]- तेरी बुद्धियाँ हमारी रक्षा करें।

१० वयं ते सुमतौ वाजिनः भूयाम [ १४२२ ]- हम तेरी अनुकूलतासे बलवान् हों।

११ नः मा स्तः [ १४२२ ]- हमारा नाश मत कर।

१२ अभिष्टिभिः चित्राभिः [ ऊतिभिः ] अस्मान् अवतात् [ १४२२ ]- इष्ट और सामर्थ्यवान् तथा विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर।

१३ सुस्रेषु नः आयामय [ १४२२ ]- सुख समृद्धिमें हमें बढा।

१४ हे इन्द्र ! शुद्धः नः रयिं, शुद्धः दाशुषे रत्नानि [ १४०४ ]- हे इन्द्र ! शुद्ध और पवित्र तू हमें धन दे, शुद्ध तू दाताको रत्न दे।

१५ शुद्धः वृत्राणि जिघ्रसे [ १४०४ ]- शुद्ध तू शत्रुओंको मारता है।

१६ शुद्धः वाजं सिषाससि [ १४०४ ]- शुद्ध तू अश्व देता है।

१७ यत् जातं यत् जन्तुं तत् विश्वं अभिभूः असि [ १४३० ]- जो उत्पन्न हुए या होनेवाले हैं उन सबको तू हरानेवाला है।

१८ हे अपूर्व ! मघवन् ! यत् वृत्रहत्याय त्वं जायथाः, तत् पृथिवीं अप्रथयः, उत दिवं अस्तभ्नाः [ १४२९ ]- हे अपूर्व इन्द्र ! शत्रुका नाश करनेके लिए जब तू तैयार हुआ, तब तूने पृथ्वीको बूढ़ किया और छुलोकको ऊपर स्तब्ध किया।

१९ हे इन्द्र ! त्वं शूरः सनिता [ १४३४ ]- हे इन्द्र ! तू शूर है और दाता है।

२० मनुषः रथं चोदय [ १४३४ ]- मनुष्योंका मनोरथ सिद्ध हो ऐसी प्रेरणा कर।

२१ सहावान् अवतं दस्युं ओषः [ १४३४ ]- तू सामर्थ्यवान् होकर नियम न पालन करनेवाले दुष्टोंको नष्ट कर दे।

२२ हे असुर इन्द्र ! प्रचेतसं त्वा भागं इव राधः नूनं ईमहे [ १४१२ ]- हे बलवान् इन्द्र ! ज्ञानवान् ऐसे



तेरे पास हम धनका भाग मांगते हैं। अपने पितासे जैसे मांगते हैं, वैसे ही धनका भाग हम मांगते हैं।

१३ ते महर्षी शरणा [ १४१२ ]- तेरा महान् स्थान आश्रय लेने योग्य है।

२४ ते सुम्ना नः प्राश्नुवन् [ १४१२ ]- तुमसे उत्तम धन मांगते हैं।

२५ आमासु पक्वं पेरयः [ १४३१ ]- तू गायोंमें पका दूध उत्पन्न करता है।

२६ दिवि सूर्य अरोहयः [ १४३१ ]- आकाशमें सूर्यको ऊपर चढाया।

२७ तत् ते यज्ञः अजायत [ १४३० ]- तब तेरे लिए यज्ञ शुद्ध हुए। तू महान् प्रतापी होनेके कारण यज्ञके द्वारा तेरा सम्मान लोग करते हैं।

२८ गिर्वणसे जुष्टं बृहत् [ १४३१ ]- प्रशंसनीय इन्द्रको आनन्द देनेके लिए बृहत् सामका गायन किया जाता है।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन मंत्रों द्वारा किया गया है। इस इन्द्रके लिए यज्ञ करते हैं और उनमें उसको पीनेके लिए सोमरस देते हैं।

### इन्द्रको सोम

१ वाजी सहस्रसातमः अपायि मत्सि [ १४३२ ]- बलवान् और हजारों प्रकारके दान देनेवाला इन्द्र सोमरस पीता है और आनन्दित होता है।

२ हे इन्द्र ! ते वृषा मदः वरेण्यः सहावान् सानसिः पृतनाषाट्, अमर्त्यः मत्सरः गन्तु [ १४३३ ]- हे इन्द्र ! तेरे लिए तैय्यार किया गया यह बलवान् और आनन्द देनेवाला, श्रेष्ठ और सामर्थ्य युक्त, सेवन करनेके योग्य, शत्रुओंको हरानेवाला, अमर अल्हाददायक सोमरस तुझे प्राप्त हो।

३ त्वं पूर्वपाः असि । इयं चारुः आसुतिः मदाय पत्यते [ १३९३ ]- तू प्रथम पीनेवाला है। यह सुन्दर सोमरस तुझे आनन्द देने योग्य है।

४ शुद्धेन साम्ना, शुद्धैः उक्थैः, शुद्धं इन्द्रं स्तवाम्। वावृध्वांसं शुद्धः आशीर्वान् ममत्तु [ १४०२ ]- शुद्ध सामगायनसे, शुद्ध स्तोत्रोंसे, शुद्ध इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं। आत्म-सामर्थ्यसे बढनेवाले इन्द्रको शुद्ध गायके दूधसे मिलकर सोमरस प्रसन्न करे।

५ हे इन्द्र ! शुद्धः नः आगहि। शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः रार्ये नि धारय। शुद्धः ममाग्नि [ १४०३ ]- हे,

३१ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

इन्द्र ! तू शुद्ध हो कर हमारे पास आ। शुद्ध संरक्षणके साधनोंसे शुद्ध होकर हमें धन दे और शुद्ध होकर सोम पीकर आनन्दित हो।

६ हे इन्द्र ! नः रसिनः गोमतः सुतस्य पिव, मत्स्व। सधमाये आपिः न वृधे वोधि [ १४२१ ]- हे इन्द्र ! गायके दूधसे मिश्रित तथा हमारे द्वारा निचोड़े गए सोमरस पी और आनन्दित हो। एकत्र बैठकर पीनेकी जगह-यज्ञस्थान-में मित्रके समान हमारा संवर्धन करना है, यह जान।

७ हे इन्द्र ! ब्रह्मयुजः केशिनः हिरण्यये रथे युक्ताः सहस्रं शतं हरयः सोम-पीतये त्वा वहन्तु [ १३९१ ]- हे इन्द्र ! शब्दोंके इशारेसे जुड़ जानेवाले, उत्तम अयालवाले, सोनेके रथमें जुड़े हुए हजारों और सैकड़ों घोड़े सोम पीनेके लिए तुझे ढो कर ले जाते हैं।

८ मध्वः विवक्षणस्य अन्धसः पीतये हिरण्यये रथे मयूर-शेण्या शितिपृष्ठा हरी त्वा आ वहताम् [ १३९२ ]- मधुर रस युक्त, प्रशंसनीय सोमरस पीनेके लिए सोनेके रथसे मोरपंखके समान सुन्दर रंगके अयालवाले तथा सफेद पीठवाले दोनों घोड़े तुझे पहुंचावें।

इस प्रकार इन्द्रके सोम पीनेके लिए यज्ञमें जानेका वर्णन है।

### अग्नि

अग्निदेवका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार आया है।

१ आरे अस्मे शृण्वते अग्नये मंत्रं वोचेम [ १३७९ ]- बुर रहकर भी हमारी प्रार्थनाओंको सुननेवाले अग्निके लिए हम मंत्र बोलते हैं। मंत्रोंके द्वारा उसकी स्तुति करते हैं।

२ पूर्यः स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु दाशुषे गयं अरक्षत् [ १३८० ]- पहलेसे ही हिंसक शत्रु सैन्यके इकट्ठे होनेपर भी दानी मनुष्यके घरकी यह अग्नि रक्षा करता है।

३ शंतमः सः अग्निः नः वेद, अमा-त्यं रक्षतु उत्त अस्मान् अंहसः पातु [ १३८१ ]- अत्यन्त सुखमय ज्ञान्ति देनेवाला वह अग्नि हमारा धन अथवा ओ कुछ हमारे पास है उस सबको सुरक्षित रखे, तथा हमें पापोंसे बचावे।

४ धृत्रहा रणे धनंजयः अग्निः उदजनि [ १३८२ ] शत्रुका नाश करनेवाला और प्रत्येक युद्धमें धन देनेवाला अग्नि प्रकट हो गया है।

५ हे भारत अग्ने ! उत् शोच ! हे अजर ! दधि-घृतं द्युमन् अजस्त्रेण वि भाहि [ १३८५ ]- हे भरणपौषण



करनेवाले अग्ने ! तू प्रज्वलित हो। हे जरारहित ! तेजस्वी और प्रकाशमान् अग्ने ! कम न होनेवाले तेजसे तू प्रकाशित हो।

६ समिद्धः शुक्रः आहुतः द्रविणस्युः अग्निः वृत्राणि जंघनत् [ १३९६ ]- प्रज्वलित, तेजस्वी, आहुतिसे युक्त, धन देनेवाला अग्नि शत्रुओंको मारता है।

७ हे अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, वाजेषु यं जुनाः, सः शश्वतीः इषः यन्ता [ १४१५ ]- हे अग्ने ! तू संग्राममें जिसकी रक्षा करता है, स्वर्धामें जिसको तू प्रेरणा देता है, वह सब अन्न प्राप्त करता है।

८ हे सहन्त्य ! अस्य कयस्य पर्येता न किः। श्रवाय्यः वाजः अस्ति [ १४१६ ]- हे शत्रुओंको हरानेवाले अग्ने ! इस तेरे भक्तको कोई भी नहीं हरा सकता। इसका यशस्वी बल प्रसिद्ध है।

९ सः विश्वचर्षणिः अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु, विप्रेभिः सनिता अस्तु [ १४१७ ]- वह सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला अग्नि घोंडोंके युद्धमें विजय प्राप्त करानेवाला और ज्ञानियों द्वारा प्रसन्न किया गया है।

१० हे अग्ने ! प्रजावत् ब्रह्म आ भर [ १३९८ ]- हे अग्ने ! पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाले अन्न हमें भरपूर दे।

११ होता अग्निः मानुषेषु आ। सः नः गिरः जुषत। दैव्यं जन् यक्षत् [ १४०६ ]- हवन जिसमें होता है ऐसा अग्नि मानवोंके घरमें रहता है। वह हमारी स्तुति सुने और विषय जनको अधिक पवित्र करे।

१२ अपां नर्पातं सुभगं सुदीदिति श्रेष्ठशोचिषं अग्निं [ १४१४ ]- कर्मोंका पालन करनेवाला, उत्तम भाग्यवान् तेजस्वी, प्रकाशमान् अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं।

१३ सः नः द्युम्नं यक्षते [ १४१४ ]- वह हमें सुख देवे।

१४ हे अग्ने ! जुष्टः वरेण्यः होता त्वं सप्रथाः अस्ति, त्वया यक्षं वितन्वते [ १४०७ ]- हे अग्ने ! प्रसन्न, श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू सबसे महान् है। तेरी सहायतासे यज्ञका अनुष्ठान होता है।

१५ हे अग्ने ! ये तव साधवः आशवः अश्वासः अरं वहन्ति, युंक्च हि [ १३८३ ]- हे अग्ने ! जो तेरे उत्तम सुशिक्षित शीघ्रगामी घोड़े शीघ्रतासे तुझे ले जाते हैं, उन्हें अपने रथमें जोड़।

१६ हे अग्ने ! देवान् प्रयांसि अभि आवह [ १३८४ ]- हे अग्ने ! देवोंको यज्ञमें बुला ला।

इस प्रकार अग्निका वर्णन इस अध्यायमें है।

## देवोंके लिए सोम

१ गृणानः वीति वायुं अभि अर्ष [ १४२६ ]- हे सोम ! स्तुतिके बाद पीनेके लिए वायुके पास जा।

२ पूयमानः मित्रावरुणौ अभि अर्ष [ १४२६ ]- स्वच्छ किए जानेके बाद मित्र और वरुणके पास जा।

३ नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि अर्ष [ १४२६ ]- नेताकी बुद्धिकी गति देनेवाले और रथमें बैठनेवाले अश्विनोकी ओर जा।

४ वृषणं वज्रवाहुं इन्द्रं अभि अर्ष [ १४२६ ]- बलवान् और वज्रके समान बाहुओंवाले इन्द्रके पास जा।

इस प्रकार देवोंको सोमरस दिये जानेके सम्बन्धमें वर्णन है।

## सोम

१ दक्षसाधनः सः वीरः रोदसी वि तस्तम्भ [ १३८८ ]- बल बढ़ानेका साधन वह शूर सोम अपने तेजसे छावापुषिवीको भर देता है।

२ हरिः योर्नि आसदम् [ १३८८ ]- हरे रंगका सोम कलशमें जाता है।

३ पवित्रे अव्यत [ १३८८ ]- सोम छलनीसे छाना जाता है।

४ अप्तुरं स्तोमं रजस्तुरं वनप्रक्षं उद्भुतं आसोत, परि विश्रुत [ १३९४ ]- पानीमें शीघ्रतासे मिलनेकी इच्छा करनेवाले तेजस्वी तथा पात्रमें रहनेवाले सोमरसको निकाल कर उसमें पानी मिलाओ।

५ सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने [ १३९५ ]- हजारों धाराओंसे छानेजानेवाले बलवर्धक वृषभमें मिलाये हुए प्रिय सोमको देवोंको देनेके लिए शुद्ध कर।

६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानः देवः रसं देवेभिः सम्पृक्त। सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति [ १३९९ ]- इस सोमका प्रेरणा देनेवाला और सोनेसे पवित्र होनेवाला तेजस्वी रस देवोंसे मिलता है। यह सोमरस शब्द करता हुआ छलनीसे छाना जाता है।

सोम छाननेवाले ऋत्विज हाथोंमें सोनेकी अंगूठी पहनते थे। सोमरससे उस सोनेका स्पर्श होनेपर सोमरस शुद्ध होता था। ऐसा “हेमना पूयमानः” शब्दसे प्रतीत होता है। अथवा और किसी प्रकारसे भी सोमरसके साथ सोनेका सम्बन्ध होता होगा। पर सोमरसके लिए सोनेका स्पर्श आवश्यक समझा जाता था, यह बात निश्चित है।



७ भद्रा समन्या वस्त्रा वसानः महान् कविः नि वचनानि शंसन् विचक्षणः जागृविः पूयमानः देव-धीतौ चम्बोः आ वच्यस्व [ १४०० ]- कल्याणकारक, युद्धके योग्य वस्त्रोंको-तेजोंको-धारण करनेवाला, महान् ज्ञानी, स्तुति स्तोत्र कहते हुए ज्ञानी होकर जाग्रत रहनेवाला सोम पवित्र होकर-छाना जाकर-यज्ञ स्थान पर रखे हुए कलशमें छननेके बाद गिरता है ।

८ त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधां अंगोषिणं वाणीः अभि अवावशन्त [ १४०८ ]- तीन सवनोंमें रहनेवाले, बलवान् और अन्न देनेवाले और शब्द करनेवाले सोमकी हमारी वाणी स्तुति करती है ।

९ वना वसानः सिन्धुः रत्नधाः वार्याणि दयते [ १४०८ ]- जलमें मिलाया गया, प्रगतिशील और रत्न देनेवाला सोम स्वीकार करने योग्य धन देता है ।

१० शूरग्रामः, सर्ववीरः, सहावान्, जेता, धनानि सनिता, तिग्मायुधः क्षिप्र-धन्वा, समत्सु अषाढहः, पृतनासु शत्रून् साह्वान् पवस्व [ १४०९ ]- शूरोंके समूहको पासमें रखनेवाला, अनेक वीरोंसे युक्त, सामर्थ्ययुक्त और विजयी, धन देनेवाला, तीक्ष्ण शस्त्र पासमें रखनेवाला, शीघ्र धनुष चलानेवाला, संग्राममें शत्रुओंको असह्य, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला सोम छाना जाता है । सब देव और वीर सोम पीकर लड़ाई पर जाते हैं और वीरताके काम करते हैं, इसलिए वीरताके काम सोम ही करता है, यह आलंकारिक वर्णन यहां किया गया है ।

११ वावशानः वृषा पुरुवारः अद्भिः संदधन्वे [ १४११ ]- देव जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसा यह बलवान् सोम बहुतों द्वारा चाहने योग्य है और पानीके साथ मिलाया जाता है ।

१२ निष्कृतं अभियन् कलशो उस्त्रियाभिः सं गच्छते [ १४११ ]- अपने संस्कार करनेके स्थान पर जानेके लिए कलशमें गायके दूधके साथ मिलकर रहता है ।

१३ अचन्यायाः ऊधः प्रपिप्ये [ १४२० ]- गायके दुग्धाशयको यह सोम अधिक पूर्ण करता है ।

१४ सुमेधाः इन्दुः धाराभिः सचते [ १४२० ]- उत्तम बुद्धिमान् यह सोम धाराओंसे मिलाया जाता है ।

१५ गावः चमूषु मूर्धानं पयसा अभि श्रीणन्ति [ १४२० ]-गायें बर्तनोंमें इस श्रृष्ठ सोमको दूधसे ढकती हैं । सोमरसमें दूध मिलाया जाता है ।

१६ परमे व्योमनि अस्मे त्रिः सप्त धेनवः सत्यां आशिरं दुदुहिरे [ १४२३ ]- अन्तरिक्षमें-पर्वतपर ऊंचे स्थान पर रहनेवाले इस सोमके लिए इक्कीस गायें उत्तम दूध मिलानेके लिए देती हैं ।

१७ चारुणः अमृतस्य भक्षमाणः सः उभे द्यावा काव्येन वि शश्रथे [ १४२४ ]- उत्तम जलकी इच्छा करनेवाला यह सोम दोनों ही द्यावापृथिवीको अपनी स्तुतिसे परिपूर्ण करता है ।

१८ तेजिष्ठाः अपः मंहना परिव्यत [ १४२४ ]- तेजस्वी पानीको अपने महत्वसे ढक देता है । पानीमें सोम-रस मिलाया जाता है ।

१९ हे सोम देव ! सु वसनानि वस्त्रा अभ्यर्षे [ १४२७ ]- हे सोम देव । उत्तम पहननेके योग्य वस्त्र दे ।

२० पूयमानः सुदुधाः धेनूः अभि अर्षे [ १४२७ ]- स्वच्छ होनेके बाद उत्तम दूध देनेवाली गायोंको प्राप्त हो । गायके दूधमें मिल जा ।

२१ नः चन्द्रा हिरण्या अभि [ १४२७ ]- हमें चमकने वाले सोनेके सिक्के दे ।

२२ रथिनः अश्वान् अभि [ १४२७ ]- रथमें जोड़ने योग्य घोड़े दे ।

२३ पूयमानः नः दिव्या वसूनि अभ्यर्षे [ १४२८ ]- छाने जानेके बाद हमें दिव्य धन दे ।

२४ पार्थिवा विश्वा अभि [ १४२८ ]- सब पार्थिव धन दे ।

२५ येन घयं द्रविणं अभि अश्नुवाम [ १४२८ ]- जिसकी सहायतासे हमें धन मिले ऐसा सामर्थ्य हमें दे ।

२६ आर्षेयं नः [ १४२८ ]- ऋषियोंके पास होनेवाले धन हमें दे ।

२७ यशसां यशस्तरः क्षैतः प्रियः सानौ अव्ये सं मृज्यते [ १४०१ ]- यशस्वी होनेवालोंमें प्रिय हुआ हुआ सोम बालोंकी छलनीसे छाना जाता है ।

इस प्रकार सोमरसको छानने और उसे पीनेका वर्णन इस अध्यायमें है । इसमें प्रत्येक स्थान पर आलंकारिक वर्णन है । जैसे " सोमरस गायोंके साथ बर्तनमें जाता है " इसका अर्थ है कि सोमरस गायके दूधमें मिलाकर कलशमें रखा जाता है । ऐसे अनेक अलंकार इस अध्यायमें हैं ।



## सुभाषित

१ आरे च अस्मे शृण्वते अग्नये मंत्रं वोचेम [ १३७९ ]  
-दूर रहकर भी हमारी प्रार्थनाओंको सुननेवाले अग्निकी हम स्तुति करते हैं।

२ यः पूर्यः स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु दाशुषे गयं अरक्षत् [ १३८० ]- जो पूर्वसे हिंसक शत्रुओंके एकत्रित होनेपर भी दाताके घरकी रक्षा करता है।

३ शन्तमः सः अग्निः नः अमा-त्यं वेदः रक्षतु [ १३८१ ]- अत्यन्त सुख देनेवाला वह अग्नि हमारे पासके धनको सुरक्षित रखे।

४ उत अस्मान् अंहसः पातु [ १३८१ ]- और वह हमारी पापोंसे रक्षा करे।

५ वृत्रहारणे रणे धनंजयः अग्निः उदजनि [ १३८२ ]  
-शत्रुओंको मारनेवाला, प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला तथा धन जीतनेवाला अग्नि प्रकट हो गया है।

६ हे अग्ने देव ! ये तव साधवः आश्वः अश्वासः अरं वहन्ति युंक्ष्व हि [ १३८३ ]- हे अग्निदेव ! जो तेरे उत्तम तथा वेगवान् घोड़े हैं उन्हें अपने रथमें जोड़।

७ नः अच्छ वीतये आयाहि [ १३८४ ]- हमारे पास अन्न लाकर सोम पीनेके लिए आ।

८ प्रयांसि अभि देवान् आ वह [ १३८४ ]- अन्नोंके पास देवोंको लेकर आ।

९ हे भारत अग्ने ! उत् शोच [ १३८५ ]- हे मरण पोषण करनेवाले अग्ने ! तू जल।

१० हे अजर ! दधिद्युतत् धुमत् अजस्त्रेण विभाहि [ १३८५ ]- हे जरारहित ! तेजस्वी और प्रकाशमान तू कल न होनेवाले तेजसे प्रकाशित हो।

११ सुन्वानाय अन्धसः तत् वचः मर्तः न वष्ट [ १३८६ ]- रस निकाले गए सोमकी स्तुति नीच मनुष्य न सुने।

१२ अराधमं श्वानं अपहत [ १३८६ ]- बिछन करनेवाले कुत्तेको दूर करो।

१३ हे इन्द्र ! त्वं जनुषा अभ्रातव्यः [ १३८९ ]- हे इन्द्र ! तू जन्मसे ही शत्रुरहित है।

१४ सनात् अना, अनापिः असि [ १३८९ ]- कोई दूसरा तेरा नेता नहीं और कोई सहायक भाई भी नहीं। तुझ पर नियंत्रण करनेवाला दूसरा कोई नहीं। तू अकेला ही सब कुछ करता है।

१५ युधा इत् आपित्वं इच्छसे [ १३८९ ]- जब तू भाईकी इच्छा करता है, तब शत्रुओंको मारकर उपासकोंको मित्र बनाता है।

१६ रेवन्तं सख्याय न किः विन्दसे [ १३९० ]- केवल धनवान्को अपना मित्र नहीं बनता।

१७ सुराश्वः ते पीयन्ति [ १३९० ]- शराब पीनेवाले नास्तिक तुझे दुःख देते हैं।

१८ यदा नदनुं कृणोषि, समूहसि, आदित् पिता इव ह्यसे [ १३९० ]- जब स्तुति करनेवालोंको तू अपना मित्र बनाता है, तब तू उन्हें धन देता है, उस समय वे अपने पिताके समान तेरी स्तुति करते हैं।

१९ हे इन्द्र ! ब्रह्मयुजः कोशिनः, हिरण्यये रथे युक्ताः, सहस्रं शतं हरयः सोमपीतये त्वा वहन्तु [ १३९१ ]- हे इन्द्र ! शब्दके इशारेसे जुड़ जानेवाले, उत्तम अयालवाले, तेरे सोनेके रथमें जुड़े हुए हजारों अथवा सैकड़ों घोड़े सोम पीनेके लिए तुझे यज्ञमें पहुंचाते हैं। यहां ( सहस्रं शतं हरयः ) हजार अथवा सौ घोड़े ये वास्तविक घोड़े न होकर आलंकारिक हैं। रथके घोड़े दो अथवा चार ही होते हैं। यहां हजार बताये हैं, ये किरण हैं। क्योंकि किरणें हजारों हो सकती हैं। रथके हजारों घोड़े नहीं हो सकते। रथमें दो घोड़ोंके जोड़नेका भी वर्णन कई स्थलोंपर आया है। आगेके मंत्र देखिए—

२० हिरण्यये रथे मयूर-शेप्या शितिपृष्ठा हरी त्वा आ वहतां [ १३९२ ]- सोनेके रथसे मोरके पंखके समान रंगवाले तथा सफेद पीठवाले दो घोड़े तुझे ढोकर ले जाते हैं।

२१ राजा ऋतेन विवायुधे [ १३९५ ]- राजा सत्यसे विशेष बढता है।

२२ द्रविणस्युः अग्निः वृत्राणि जंघनत् [ १३९६ ]  
- धन देनेवाला अग्नि शत्रुओंको मारता है।

२३ प्रजावत् ब्रह्म आ भर [ १३९८ ]- पुत्रपौत्रोंके साथ होनेवाले अन्न अथवा ज्ञान हमें भरपूर बे।

२४ यशसां यशस्तरः [ १४०१ ]- यशवालोंमें सबसे अधिक यशस्वी हो।

२५ शुद्धं इन्द्रं स्तवाम [ १४०२ ]- शुद्ध इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं।

२६ हे इन्द्र ! शुद्धः नः आगहि [ १४०३ ]- शुद्ध होनेवाला तू हमारे पास आ।

२७ शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः [ १४०३ ]- रक्षणके शुद्ध साधनोंसे शुद्ध ऐसा तू है।



२८ शुद्धः रयिं नि धारय [ १४०३ ]- तू शुद्ध होकर हमें धन दे ।

२९ शुद्धः ममद्धि [ १४०३ ]- तू शुद्ध होकर आनन्द प्राप्त कर ।

३० शुद्धः नः रयिं [ १४०४ ]- शुद्ध होकर तू हमें धन दे ।

३१ शुद्धः दाशुषे रत्नानि [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर दाताओंको धन दे ।

३२ शुद्धः वृत्राणि जिघ्रसे [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर शत्रुओंको मारता है ।

३३ शुद्धः दाजं सिषाससि [ १४०४ ]- तू शुद्ध रहकर अन्न देता है ।

३४ दिव्यं जनं यक्षत् [ १४०६ ]- दिव्यजनोंको पूज्य कर ।

३५ जुष्टः वरेण्यः होता सप्रथाः त्वं असि [ १४०७ ]- प्रसन्न, श्रेष्ठ और हवन करनेवाला तू सबसे श्रेष्ठ है ।

३६ रत्नधाः वार्याणि दयते [ १४०८ ]- रत्नोंको धारण करनेवाला धन देता है ।

३७ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता, धनानि सनिता, तिग्मायुधः क्षिप्र-धन्वा, समत्सु अपाल्हः, पृतनासु शत्रून् साह्वान् [ १४०९ ]- शूरोके समूहसे तथा अनेक बीरोंसे युक्त, सामर्थ्यसंपन्न और विजयी, धन देनेवाला, तीक्ष्ण शस्त्र रखनेवाला, धनुष शीघ्र चलानेवाला, संग्रामोंमें शत्रुओंको असह्य, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला ( सोम ) है ।

३८ उरु-गव्यूतिः अभयानि कृण्वन् [ १४१० ]- जिसका मार्ग विस्तीर्ण है, वह हमें निर्भय करता है ।

३९ हे इन्द्र ! शवसः पतिः अनुसः चर्षणी-धृतिः एकः इत्, अप्रतीनि वृत्राणि पुरु हंसि [ १४११ ]- हे इन्द्र ! तू बलका स्वामी, प्रजाओंका धारण पोषण करनेवाला, अकेला ही बलवान् शत्रुओंको बहुत बड़ी संख्यामें मारता है ।

४० हे असुर इन्द्र ! प्रचेतसं त्वा भागं इव राधः ईमहे [ १४१२ ]- हे बलवान् इन्द्र ! तेरे समान ज्ञानियोंके पाससे धनका भाग हम मांगते हैं ।

४१ ते मही शरणा [ १४१२ ]- तेरा महान् स्थान शरणके योग्य है ।

४२ ते सुस्ना नः प्राश्नुवन् [ १४१२ ]- तुमसे हमें उत्तम सुख मिले ।

४३ देवं अमर्त्यं यज्ञस्य सुक्रतुं यजिष्ठं त्वा ववृमहे

[ १४१३ ]- देवोंमें श्रेष्ठ अमर देव, यज्ञ उत्तम रीतिसे करने-वाले, श्रेष्ठ ऐसे तुमसे हम उपास्य मानकर स्वीकार करते हैं ।

४४ अपां-न-पातं सुभगं सुदीदितं श्रेष्ठशोचिषं अग्निं [ १४१४ ]- कर्मोंको न गिरानेवाला, उत्तम भाग्यवान्, उत्तम तेजस्वी और श्रेष्ठ प्रकाशसे युक्त अग्निकी हम स्तुति करते हैं ।

४५ सः नः युष्मन् यक्षते [ १४१४ ]- वह हमें सुख देवे ।

४६ हे अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, वाजेषु यं जुनाः, सः शश्वतीः इषः यन्ता [ १४१५ ]- हे अग्ने ! युद्धमें जिस मनुष्यकी तृक्षा करता है, स्पर्धामें जिसे तू उत्तम प्रेरणा देता है, उसे हमेशा अन्न प्राप्त होता है ।

४७ सहंत्य ! अस्य कयस्य पर्येता न किः, श्रवाय्यः वाजः अस्ति [ १४१६ ]- हे शत्रुको हरानेवाले ! इस तेरे भक्तको हरानेवाला कोई भी नहीं है, क्योंकि उसका यज्ञस्वी बल प्रसिद्ध है ।

४८ विश्वचर्षणिः सः अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु, विप्रेभिः सनिता अस्तु [ १४१७ ]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला वह घोड़ोंवाले युद्धमें विजय प्राप्त करावे तथा ज्ञानियोंके द्वारा वह प्रसन्न किया जावे ।

४९ ते धियः अस्मान् अवन्तु [ १४२१ ]- तेरी बुद्धियां हमारा रक्षण करें ।

५० सधमाद्ये आपिः नः वृधे बोधि [ १४२१ ]- एक जगह बैठकर आनन्द प्राप्त करनेके समय मित्रके समान हमारा संवर्धन करना है, यह तू जान ।

५१ वयं ते सुमतौ वाजिनः भूयाम [ १४२२ ]- हम तेरे अनुकूल उत्तम विचारोंसे युक्त होकर बलवान् हों ।

५२ अभिमातये नः मा स्त [ १४२२ ]- शत्रुके हितके लिए हमारा नाश मत कर ।

५३ अभिष्टिभिः चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अव-तात् [ १४२२ ]- इष्ट सामर्थ्यसे युक्त संरक्षणोंसे हमारी रक्षा कर ।

५४ सुस्नेषु नः आयामय [ १४२२ ]- सुख समृद्धिमें हमें बढ़ा ।

५५ अमृत्यवः अदाभ्यासः अस्य केतवः उभे जनुषी अनु सन्तु [ १४२५ ]- अमर और न दबनेवाली इतकी किरणें दोनों ही प्रकारके प्राणियोंको सुरक्षित रखती हैं ।

५६ राजानं मननाः अगृभ्णत [ १४२५ ]- राजाकी स्तुतियां प्राप्त होती है ।



५७ नः दिव्या वसूनि अभ्यर्ष [ १४२८ ]- हमें दिव्य धन दे ।

५८ पार्थिवा विश्वा अभि अर्ष [ १४२२ ]- हमें पार्थिव धन दे ।

५९ येन वयं द्रविणं अभि अश्नुवाम [ १४२२ ]- जिससे हमें धन प्राप्त हो सके ऐसा सामर्थ्य हमें दे ।

६० आर्षेयं नः [ १४२२ ]- ऋषिके समान धन हमें मिले ।

६१ हे मघवन ! वृत्रहत्याय यत् जायथाः तत् पृथिवीं अप्रथयः उत दिवं अस्तग्नाः [ १४२९ ]- हे इन्द्र ! तू वृत्रका वध करनेके लिए जब गया, तब तूने पृथ्वीको सुदृढ़ किया और छलोककी स्तब्ध किया ।

६२ यत् जातं यत् जन्तुं तत् विश्वं अभिभूः असि [ १४३० ]- जो हो गये और जो होनेवाले हैं उन सबको तू हरानेवाला है ।

६३ आमासु पक्वं ऐरयः [ १४३१ ]- गायमें पके दूधको तूने रखा है ।

६४ दिवि सूर्यं अरोहयः [ १४३१ ]- छलोकमें सूर्यको चढ़ाया ।

६५ गिर्वणसे जुष्टं बृहत् [ १४३१ ]- स्तुत्य इन्द्रके लिए बृहत् सामका गान-करो ।

६६ हे इन्द्र ! ते वरेण्यः सहावान् पृतनायाद् अमर्त्यः मत्सरः गन्तु [ १४३३ ]- हे इन्द्र ! तुझे यह श्रेष्ठ सामर्थ्यवान्, शत्रुओंको हरानेवाला अमर और आनन्द देनेवाला सोम प्राप्त हो ।

६७ हे इन्द्र ! त्वं शूरः सनिता मनुष्यः रथं चोदय [ १४३४ ]- हे इन्द्र ! तू शूर और दाता है । मनुष्योंके मनोरथोंको उत्तम रीतिसे प्रेरित कर ।

६८ सहावान् दस्युं अ-व्रतं ओषः [ १४३४ ]- तू सामर्थ्यवान् है, इसलिए व्रतोंका पालन न करनेवाले दुष्टोंका नाश कर ।

## उपमा

१ भृगवः मखं न [ १३८६ ]- भृगुओंने जिसप्रकार मखको दूर किया, उसीप्रकार (अ-राधसं श्वानं अपहत) बिघ्नकारी कुत्तोंको मारो ।

२ ओण्योः भुजे पुत्रः न [ १३८७ ]- माता पिताके

हाथमें जैसे पुत्र रहता है, उसीप्रकार ( जामिः अत्के आ अव्यत् ) सोमरस छलनीमें शुद्ध होता है ।

३ जारः योषणां न [ १३८७ ]- जिसप्रकार जार स्त्रीके पास जाता है, उसीप्रकार सोम (योनिं आसदत्) कलशमें जाता है ।

४ वरः न [ १३८७ ]- जिसप्रकार पति पत्नीके पास जाता है, उसीप्रकार सोम कलशमें जाता है ।

५ वेधाः न [ १३८८ ]- जानी जिसप्रकार अपने घर आता है, उसीप्रकार ( हरिः योनिं आसदम् ) हरे रंगका सोम कलशमें जाता है ।

६ पिता इव ह्यसे [ १३९० ]- जैसे पिताकी प्रार्थना करते हैं वैसे ही लोग तेरी - इन्द्रकी - प्रार्थना करते हैं ।

७ अश्वं न [ १३९४ ]- घोड़ेके समान ( अप्तुरं सोमं परि पिचत ) - पानीमें मिलाये जानेवाले सोमको मिलाओ । घोड़ा जिसप्रकार पानीमें स्नान करता है, उसीप्रकार सोमरस पानीमें मिलता है ।

८ होता पशुमन्ति सव इव [ १३९९ ]- हवन करने-वाला जैसे गायोंसे युक्त घरमें जाता है, उसीप्रकार ( सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति ) सोमरस शब्द करता हुआ छलनीमें जाता है ।

९ वरुणः न [ १४०८ ]- वरुणके समान ( घना वसानः ) सोम जलमें रहता है ।

१० भागं इव [ १४१२ ]- पिताके पास अपने धनका हिस्सा जिस प्रकार मांगते हैं, उसीप्रकार इन्द्रसे ( राधः ईमहे ) हम धन मांगते हैं ।

११ कृत्तिः इव [ १४१२ ]- बड़े चोगेके समान ( ते मही शरणा ) तेरा विशाल आश्रय स्थान हमारे योग्य है ।

१२ वाजी अत्यः न [ १४१८ ]- शीघ्र भागनेवाले घोड़ेके समान सोम ( द्रोणं ननक्षे ) बर्तनमें वेगसे जाता है ।

१३ मातृभिः शिशुः न [ १४१९ ]- मातासे जैसे पुत्र मिलकर रहता है, उसीप्रकार सोम ( अद्भिः सं दधन्वे ) पानीसे मिलकर रहता है ।

१४ मर्यः योषां न [ १४१९ ]- जिसप्रकार पुरुष स्त्रीकी ओर जाता है, उसीप्रकार सोम पानीकी तरफ जाता है ।

१५ निकैः वसुभिः न [ १४२० ]- जैसे सफेद वस्त्रोंसे शरीरको ढकते हैं, उसीप्रकार ( गावः पयसा चमूषु मूर्धानं अभि श्रीणन्ति ) गायें अपने दूधसे बर्तनमें रहने-



वाले श्रेष्ठ सोमको आच्छादित करती हैं। सोमरसमें गायका वृध मिलाया जाता है।

१६ जमदग्निवत् आर्षेयं नः [ १४२८ ]- जमदग्निके समान ऋषिके योग्य वान हमें दे।

१७ घर्मं सामं न [ १४३१ ]- जिसप्रकार प्रवर्ग नामक यज्ञको प्रज्वलित करते हैं, उसीप्रकार ( सुवृत्तिभिः तपत )

उत्तम स्तुतियोंसे इन्द्रको उत्साहित करो।

१८ महः पात्रस्य इव [ १४३२ ]- महान् बर्तनके समान तू ( वृष्णः ते ) मेहान् बलवान् है।

१८ [ अग्निः ] शोचिषा पात्रं न [ १४३४ ]- जैसे अग्नि अपनी ज्वालासे बर्तनको जला देती है, उसीप्रकार ( दस्युं अव्रतं ओषः ) हे इन्द्र ! तू नियम न पालनेवाले दुष्टोंका नाश कर।

## द्वादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                             | देवता       | छन्दः  |
|-------------|--------------|----------------------------------|-------------|--|
| ( १ )       |              |                                  |             |  |
| १३७९        | १।७४।१       | गोतमो राहूगणः                    | अग्निः      | गायत्री                                      |
| १३८०        | १।७४।२       | गोतमो राहूगणः                    | "           | "  |
| १३८१        | ७।१५।३       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः             | "           | "  |
| १३८२        | १।७४।३       | गोतमो राहूगणः                    | "           | "  |
| ( २ )       |              |                                  |             |  |
| १३८३        | ६।१६।४३      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः            | "           | "  |
| १३८४        | ६।१६।४४      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः            | "           | "  |
| १३८५        | ६।१६।४५      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः            | "           | "  |
| १३८६        | ९।१०।१।१३    | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | पवमानः सोमः | अनुष्टुप्                                    |
| १३८७        | ९।१०।१।१४    | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | "           | "  |
| १३८८        | ९।१०।१।१५    | प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा | "           | "  |
| १३८९        | ८।११।१३      | सोभरिः काण्वः                    | इन्द्रः     | काकुभः प्रगाथः=( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ) |
| १३९०        | ८।११।१४      | सोभरिः काण्वः                    | "           | "  |
| १३९१        | ८।११।१४      | मेधातिथि - मेध्यातिथी काण्वो     | "           | बृहती  |
| १३९२        | ८।११।१५      | मेधातिथि - मेध्यातिथी काण्वो     | "           | "  |
| १३९३        | ८।११।१६      | मेधातिथि - मेध्यातिथी काण्वो     | "           | "  |
| १३९४        | ९।१०।८।७     | ऋजिश्वा भारद्वाजः                | पवमानः सोमः | काकुभः प्रगाथः=( विषमा ककुप् समा सतोबृहती )  |
| १३९५        | ९।१०।८।८     | ऊर्ध्वसद्या आंगिरसः              | "           | "  |
| ( ३ )       |              |                                  |             |  |
| १३९६        | ६।१६।३४      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः            | अग्निः      | गायत्री                                      |
| १३९७        | ६।१६।३५      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः            | "           | "  |
| १३९८        | ६।१६।३६      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः            | "           | "  |
| १३९९        | ९।१७।१       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः             | पवमानः सोमः | त्रिष्टुप्                                   |
| १४००        | ९।१७।२       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः             | "           | "  |
| १४०१        | ९।१७।३       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः             | "           | "  |



| संज्ञसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                   | देवता        | छन्दः   |
|-------------|--------------|------------------------|--------------|---|
| १४०२        | ८।९५।७       | तिरश्चीरांगिरसः        | इन्द्रः      | अनुष्टुप्                                       |
| १४०३        | ९।९५।८       | तिरश्चीरांगिरसः        | "            | "   |
| १४०४        | ९।९५।९       | तिरश्चीरांगिरसः        | "            | "   |
| ( ४ )       |              |                        |              |   |
| १४०५        | ५।१३।२       | सुतंभर आत्रेयः         | अग्निः       | गायत्री   |
| १४०६        | ५।१३।३       | सुतंभर आत्रेयः         | "            | "   |
| १४०७        | ५।१३।४       | सुतंभर आत्रेयः         | "            | "   |
| १४०८        | ९।९०।२       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः   | पशुमानः सोमः | त्रिष्टुप्                                      |
| १४०९        | ९।९०।३       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः   | "            | "   |
| १४१०        | ९।९०।४       | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः   | "            | "   |
| १४११        | ८।१०।५       | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | इन्द्रः      | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती )       |
| १४१२        | ८।१०।६       | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | "            | "   |
| १४१३        | ८।१९।३       | सोभरिः काण्वः          | अग्निः       | काकुभः प्रगाथः= ( विषमा<br>ककुप् समा सतोबृहती ) |
| १४१४        | ८।१९।४       | सोभरिः काण्वः          | "            | "   |
| ( ५ )       |              |                        |              |   |
| १४१५        | १।१७।७       | शुनःशेष आजोगतिः        | "            | गायत्री   |
| १४१६        | १।१७।८       | शुनःशेष आजोगतिः        | "            | "   |
| १४१७        | १।१७।९       | शुनःशेष आजोगतिः        | "            | "   |
| १४१८        | ९।९३।१       | नोधा गौतमः             | पशुमानः सोमः | त्रिष्टुप्                                      |
| १४१९        | ९।९३।२       | नोधा गौतमः             | "            | "   |
| १४२०        | ९।९३।३       | नोधा गौतमः             | "            | "   |
| १४२१        | ८।३।१        | मेध्यातिथिः काण्वः     | इन्द्रः      | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती )       |
| १४२२        | ८।३।२        | मेध्यातिथिः काण्वः     | "            | "   |
| १४२३        | ९।७०।१       | रेणुर्वेद्वामित्रः     | पशुमानः सोमः | जगती  |
| १४२४        | ९।७०।२       | रेणुर्वेद्वामित्रः     | "            | "   |
| १४२५        | ९।७०।३       | रेणुर्वेद्वामित्रः     | "            | "   |
| ( ६ )       |              |                        |              |   |
| १४२६        | ९।९७।४३      | कुत्स आंगिरसः          | "            | त्रिष्टुप्                                      |
| १४२७        | ९।९७।५०      | कुत्स आंगिरसः          | "            | "   |
| १४२८        | ९।९७।५१      | कुत्स आंगिरसः          | "            | "   |
| १४२९        | ८।८९।५       | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | इन्द्रः      | अनुष्टुप्                                       |
| १४३०        | ८।८९।६       | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | "            | "   |
| १४३१        | ८।८९।७       | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ | "            | बृहती   |
| १४३२        | १।१७।५।१     | अगस्त्यो मैत्रावरुणः   | "            | स्कन्धोषीषो बृहती                               |
| १४३३        | १।१७।५।२     | अगस्त्यो मैत्रावरुणः   | "            | अनुष्टुप्                                       |
| १४३४        | १।१७।५।३     | अगस्त्यो मैत्रावरुणः   | "            | "   |





## अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ षष्ठप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ६-३ ॥

[ १ ]

( १-२० ) १ कविर्भागवः; २, ९, १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ असितः काश्यपो देवलो वा; ४ सुकक्ष आंगिरसः; ५ विश्वाद् सौर्यः; ६, ८ वसिष्ठो मित्रावरुणिः; ७ भर्गः प्रागाथः; १०, १७ विश्वामित्रो गायिनः; ११ मेधातिथिः काण्वः; १२ शतं बैलानसाः; १३ यजत आत्रेयः; १४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १५ उशना काण्वः; १८ हर्यतः प्रागाथः; १९ बृहद्विष आथर्वणः; २० गृत्समवः शौनकः ॥ १, ३, १५ पवमानः सोमः; २, ४, ६, ७, १४, १९, २० इन्द्रः; ८ सरस्वान्; ९ सरस्वती; १० सविता; ११ ब्रह्मणस्पतिः; १२ अग्निः पवमानः; १३ मित्रावरुणौ; १६-१८ अग्निः; १८ हवींषि वा; ५ सूर्यः ॥ १, ३-४, ८-१४, १६ ( २-३ ) १७, १८ गायत्री; २ ( १ ३ ) अनुष्टुप्; २ ( ४ ) बृहती; ६, ७ प्रगाथः = ( विषमा बृहती, समा सतो बृहती ); १६ ( १ ) वर्धमाना; १५ १९ त्रिष्टुप्; २० ( १ ) अष्टिः; २० ( २-३ ) अतिशक्नोरी, ५ जगती ॥

१४३५ पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मि दिवस्पति । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।४९।१ )  
 १४३६ तथा पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।४९।२ )  
 १४३७ घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।४९।३ )  
 १४३८ स न ऊर्जे व्यश्न्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।४९।४ )  
 १४३९ पवमानो असिष्यदद्रक्षाः स्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन्नुचः ॥ ५ ॥ १ ( ची ) ॥  
 [ धा० २२ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।४९।५ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १४३५ ] हे सोम ! तू ( दिवः वृष्टि ) पुलोकसे वृष्टिको ( नः सु आ पवस्व ) हमारे लिए उत्तम रीतिसे नीचे ला । ( अपां ऊर्मि परि ) पानीकी लहरें उछलें, तथा ( अ-यक्ष्मा बृहतीः इषः ) रोगरहित बहुत सारा अन्न हमें दे ॥ १ ॥

[ १४३६ ] हे सोम ! तू ( तथा धारया पवस्व ) उस धारासे यहां पवित्र हो ( यया जन्यासः गावः ) जिसकी सहायतासे बुधाय गायें ( इह नः गृहं उप आगमन् ) यहां हमारे घर आयें ॥ २ ॥

[ १४३७ ] हे सोम ! ( यज्ञेषु देव-वीतमः ) यज्ञमें देवों द्वारा जाहा गया तू ( अस्मभ्यं घृतं धारया पवस्व ) हमें धारारूप-वृष्टिरूपसे पानी दे अर्थात् ( वृष्टिं आ पव ) बरसात गिरा ॥ ३ ॥

[ १४३८ ] हे सोम ! ( सोम ) वह तू ( नः ऊर्जे ) हमारे अन्नके लिए ( व्यश्न्ययं पवित्रं धारया वि धाव ) बालोंकी छलनीसे धाराके रूपमें नीचेके बर्तनमें गिर । ( देवासः हि कं शृणवन् ) देव तेरा वह शब्द सुनें ॥ ४ ॥

[ १४३९ ] ( रक्षांसि अप जङ्घनत् ) राक्षसोंका नाश करते हुए ( रुचः प्रत्नवत् रोचयन् ) अपने तेजकी पहलके समान ही प्रकाशित करते हुए ( पवमानः असिष्यदत् ) छाना जानेवाला सोम नीचेके कलशमें टपकता है ॥ ५ ॥

३२ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



१४४० प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥ १ ॥

( ऋ. ६।४२।१ )

१४४१ एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥

( ऋ. ६।४२।२ )

१४४२ यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ । वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३ ॥

( ऋ. ६।४२।३ )

१४४३ अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।

कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतः समस्य जेन्यस्य अभिशस्तेरवस्वरत्

॥ ४ ॥ २ ( ठ ) ॥

[ धा० २३ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ६।४२।४ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१४४४ बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।४ )

१४४५ हस्तच्युतेभिराद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।५ )

[ १४४० ] हे अध्वर्यो ! ( नरः ) यज्ञका चालक तू ( विश्वानि विदुषे ) सब जाननेवाले ( अरङ्गमाय जग्मये ) बहुत प्रगतिशील और यज्ञमें जानेवाले ( अ-पश्चात् अध्वने ) सबके आगे रहनेवाले ( पिपीषते अस्मै ) पीनेकी इच्छा करनेवाले इस इन्द्रके लिए ( प्रति भर ) सोमरस भर दे ॥ १ ॥

[ १४४१ ] हे अध्वर्यो ! ( अमत्रेभिः ऋजीषिणं ) सोमके पात्रोंसे सोमरस पीनेवाले ( सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः ) रस निकाले गए चमकनेवाले सोमरसको ( सोमपातमं ) बहुत ज्यादा पीनेवाले ( एनं इन्द्रं ) इस इन्द्रकी ( आ प्रत्येतन ) पास जाकर प्रार्थना करो ॥ २ ॥

[ १४४२ ] हे अध्वर्यो ! ( सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः ) रस निकाले गए चमकनेवाले सोमरसके साथ ( यदि प्रतिभूषथ ) यदि तुम इन्द्रके पास जाओगे, तो ( मेधिरो विश्वस्य वेद ) बुद्धिमान् इन्द्र तुम्हारे सारे मनोरथोंको जानेगा, ( धृषत् ) शत्रुओंको हरायेगा और ( तं इत् एषते ) तुम्हारी कामनायें पूर्ण करेगा ॥ ३ ॥

[ १४४३ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यो ! ( अस्मा अस्मा इत् ) इस इन्द्रके लिए ही ( अन्धसः सुतं प्रभर ) अन्नरूप सोमरस भरपूर दे । वह इन्द्र ( शर्धतः समस्य जेन्यस्य ) स्पर्धा करनेवाले जीतनेके योग्य जो सब शत्रु हैं उनका ( अभिशस्तेः ) नाश करके ( कुवित् अवस्वरत् ) तुम्हारा संरक्षण करेगा ॥ ४ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १४४४ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( बभ्रवे ) भूरे रंगके ( स्व-तवसे ) अपने बलसे युक्त ( अरुणाय दिवि-र शो ) अरुण रंगके और आकाशमें रहनेवाले ( सोमाय ) सोमकी ( गाथं अर्चत ) तुम स्तुति करो ॥ १ ॥

[ १४४५ ] हे ऋत्विजो ! ( हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः सुतं ) हाथोंसे छूटनेवाले पत्थरोंसे निकाले गए ( सोमं पुनीतन ) सोमरसको तुम शुद्ध करो । ( मधावा मधु आ धावता ) मीठे सोमरसमें मीठा दूध मिलाओ ॥ २ ॥



१४४६ नमसेदुष सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ३ ॥ ( ऋ. ९।१।६ )

१४४७ अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ४ ॥ ( ऋ. ९।१।७ )

१४४८ इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि पिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥ ( ऋ. ९।१।८ )

१४४९ पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः । इन्द्रविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥ ३ ( यू ) ॥  
[ धा० ३२ । उ० नास्ति । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।१।९ )

१४५० उद्वेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।१ )

१४५१ नव यो नवति पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९३।२ )

१४५२ स न इन्द्रः शिवः सखाश्चावद्रोमघवमत् । उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥ ४ ( ती ) ॥  
[ धा० ९ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९३।३ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ १४४६ ] हे ऋत्विजो ! ( नमसा इत् उप सीदत ) नमस्कार करते हुए सोमके पास बैठो, ( दध्ना इत् अभि-श्रीणीतन ) उसमें बही मिलाओ और ( इन्द्रे इन्दुं दधातन ) इन्द्रको जमकनेवाला सोमरस दो ॥ ३ ॥

[ १४४७ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अमित्र-हा विचर्षणिः ) शत्रुका नाश करनेवाला, सबोंको देखनेवाला ( देवेभ्यः अनु-कामकृत् ) देवोंको जो इष्ट होता है, वो ही कार्य करनेवाला तू ( गवे शं पवस्व ) हमारी गायोंको सुख दे ॥ ४ ॥

[ १४४८ ] हे ( सोम ) सोम ! ( मनः चित् मनसः पति ) मनका ज्ञाता तू मनोंका स्वामी है । ( इन्द्राय पातवे ) इन्द्रके पीनेके लिए तथा उसके ( मदाय ) आनन्द बढानेके लिए तू ( परिपिच्यसे ) बर्तनमें गिरता है ॥ ५ ॥

[ १४४९ ] हे ( इन्द्रो पवमान ) छाने जानेवाले सोम ! तू ( सुवीर्यं रयिं ) उत्तम वीर्यसे युक्त धन ( नः युजा इन्द्रेण ) हमारे सहायक इन्द्रसे ( नः रिरीहि ) हमें बिला ॥ ६ ॥

[ १४५० ] हे ( सूर्य ) प्रकाशनेवाले इन्द्र ! ( श्रुतामघं ) प्रसिद्ध धनसे युक्त ( वृषभं नर्यापसं ) बलवान् और मानवोंका हित करनेवाले ( अस्तारं अभि उद्वेधि ) दाताके पास तू उद्यत होता है ॥ १ ॥

[ १४५१ ] ( यः ) जो इन्द्र ( नव नवति पुरः ) शत्रुके निन्यानवे नगरोंको ( बाह्वोजसा बिभेद ) अपने बाहु-बलसे तोड़ता है ( च ) और ( वृत्रहा ) जिस वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने ( अ-हिं ) कम न होनेवाले शत्रुका ( अवधीत् ) बध किया, वह इन्द्र हमें धन देवे ॥ २ ॥

[ १४५२ ] ( सः शिवः इन्द्रः ) वह कल्याण करनेवाला इन्द्र ( नः सखा ) हमारा मित्र है, वह हमें ( अश्वा वत्, गोमत्, यवमत् ) घोड़े, गाय और अन्नसे युक्त धन ( उरु-धारा इव ) दोहन करनेके समय बहुत सारा दूध देनेवाली गायके समान ( दोहते ) बेता है ॥ ३ ॥

॥ यद्वां दुस्तरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ३ ]

- १४५३ विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहृतम् ।  
वातजूता यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपति बहुधा वि राजति ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१७०।१ )
- १४५४ विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।  
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१७०।२ )
- १४५५ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।  
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दश उरु पप्रथे सह औजो अच्युतम् ॥ ३ ॥ ५ ( जि ) ॥  
[ धा० २७ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१७०।३ )
- १४५६ इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।  
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।२६ )
- १४५७ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्योऽ माशिवासोऽव क्रमुः ।  
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥ ६ ( ल ) ॥  
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ७।३२।२७ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १४५३ ] ( विभ्राट् ) विशेष प्रकाशनेवाला सूर्य ( यज्ञपतौ ) यज्ञ करनेवालेको ( अ-वि-हृतं आयुः दधत् ) आरोग्यपूर्ण दीर्घायु देता है । ( यः वातजूतः ) जो वायुको गति देनेवाला ( त्मना अभि रक्षति ) स्वयं सबका रक्षण करता है, ( प्रजाः पिपति ) प्रजाओंका अच्छी तरह पालन करता है और ( बहुधा विराजति ) अनेक प्रकारसे सुशो-भित होता है, ऐसा वह इन्द्र ( बृहत् सोम्यं मधु पिबतु ) बहुत सोमरसरूपी मीठा पेय पिये ॥ १ ॥

[ १४५४ ] ( विभ्राट् बृहत् ) विशेष प्रकाशमान् और महान्, ( सुभृतं वाजसातमं ) उत्तम पोषण करनेवाला तथा अन्न देनेवाला, ( धर्मं दिवः धरुणे अर्पितं ) अपने धर्मसे छलोकको धारण करनेके लिए नियुक्त किया गया, ( सत्यं अ-मित्र-हा ) निश्चयसे शत्रुओंका नाश करनेवाला, ( वृत्र-हा ) वृत्रको मारनेवाला, ( दस्यु-हन्तमं ) दुष्टोंको मारनेवाला ( असुर-हा ) राक्षसोंका विनाशक, ( सपत्न-हा ) शत्रुको मारनेवाला सूर्य ( ज्योतिः जज्ञे ) अपना प्रकाश फैलाता है ॥ २ ॥

[ १४५५ ] ( इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिः ) यह सूर्यका तेज अनेक तेजोंका प्रकाशक ( उत्तमं विश्वजित् ) उत्तम विश्वविजयी ( धनजित् बृहत् उच्यते ) धनोंको जीतनेवाला तथा महान् कहा जाता है, ( विश्वभ्राट् भ्राजः ) विश्वको प्रकाशित करनेवाला और स्वयं प्रकाशमय ( महि सूर्यः ) यह महान् सूर्य ( दश उरु सहः ) दीखनेमें महान् सामर्थ्यवान् ( अच्युतं औजः पप्रथे ) अविनाशी तेजरूपी बलको प्रसारित करता है ॥ ३ ॥

[ १४५६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः क्रतुं आभर ) हमारा यज्ञ पूर्ण कर । ( यथा पिता पुत्रेभ्यः ) जैसे पिता पुत्रोंको धन देता है, उसीप्रकार ( नः शिक्ष ) हमें दे । हे ( पुरुहूत ) अनेकों द्वारा सहायताके लिए बुलाये गए इन्द्र ! ( यामनि ) यज्ञमें हम ( जीवाः ) मनुष्य ( ज्योतिः अशीमहि ) तेज प्राप्त करें ॥ १ ॥

[ १४५७ ] हे इन्द्र ! ( अ-ज्ञाताः ) अज्ञात ( वृजनाः अ-शिवासः दुराध्यः ) कुटिल पापी और अमंगल शत्रु ( नः मा अवक्रमुः ) हम पर आक्रमण न करें । हे ( शूर ) शूर ! ( त्वया वयं प्रवतः ) तेरे कारण सुरक्षित हुए हुए हम ( शश्वतीः अपः आति तरामसि ) बहुतसे सँकटोंके प्रवाहोंसे पार हों ॥ २ ॥



१४५८ अद्याद्या श्वःश्च इन्द्र त्रास्व परे च नः ।

विश्वा च नो जरितुन्तसत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।१७ )

१४५९ प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्रो वीर्याय कम् ।

उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ २ ॥ ७ ( वी ) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।६१।१८ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१४६० जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तश्चवामहे ॥ १ ॥ ८ ( रौ ) ॥

[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ७।९६।४ )

१४६१ उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १ ॥ ९ ( हौ )

[ धा० १ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।६१।१० )

१४६२ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।६२।१० )

१४६३ सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१८।१ )

[ १४५८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अद्य अद्य ) आज ( श्वः श्वः ) कल ( परे च नः ) और परसों अर्थात् हमेशा हमारी ( त्रास्व ) रक्षा कर । हे ( सत्पते ) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! ( विश्वा च जहा ) सब दिन ( नः जरितुन् ) हम स्तुति करनेवालोंकी ( दिवा नक्तं च रक्षिषः ) दिन और रात रक्षा कर ॥ १ ॥

[ १४५९ ] ( [ अयं ] मघवा ) यह इन्द्र ( वीर्याय कं ) सुखसे पराक्रम करनेके लिए ( प्र-भङ्गी शूरः ) शत्रुओंको तोड़नेवाला, शूर ( तुवी-मघः सम्मिश्रः ) बहुत धनवान् और सबसे मिलकर रहनेवाला है । हे ( शतक्रतो ) सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( या वज्रं नि मिमिक्षतुः ) जो वज्रको धारण करती हैं, ऐसी ( ते उभा बाहू वृषणा ) तेरी वे दोनों भुजायें बहुत बलवान् हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १४६० ] ( जनीयन्तः ) स्त्रीवाले ( पुत्रीयन्तः ) पुत्रवाले ( सुदानवः अग्रवः ) उत्तम धन देनेवाले और आगे रहनेवाले हम ( सरस्वन्तं चवामहे ) सरस्वतीकी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

[ १४६१ ] ( उत नः प्रियासु प्रिया ) और हमें प्रिय वस्तुमें अत्यन्त प्रिय ( सप्तस्वसा ) सात नदीख्यी बहिनें जिससे मिलती हैं, ऐसी ( सुजुष्टा सरस्वती ) अच्छी तरहसे सेवित सरस्वती नदी ( स्तोम्या भूत् ) स्तुति करनेके योग्य हो गई है ॥ १ ॥

[ १४६२ ] ( यः सविता देवः ) जो सविता देव ( नः धियोः प्रचोदयात् ) हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करता है, उस ( देवस्य सवितुः ) सविता देवके ( तत् वरेण्यं भर्गः ) उस श्रेष्ठ तेजका ( धीमहि ) हम ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

[ १४६३ ] हे ( ब्रह्मणः पते ) ज्ञानपते ! ( सोमानां ) सोम अर्थात् ज्ञानसे प्राप्त योग साधनके अनुभवसे ( कक्षी-वन्तं ) छातीमें रहनेवाले प्राणको ( स्वरण-सु-अरण ) उत्तम प्रकारसे आने जानेवाला ( कृणुहि ) कर तथा ( यः औशिजः ) जो प्राण वज्रमें आ गया है, उसे भी बलवान् कर ॥ २ ॥



१४६४ अम आयूषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥३॥ १० (य) ॥  
[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।६६।१९ )

१४६५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वा क्षत्रं देवेषु ॥१॥ ( ऋ. १।६८।३ )

१४६६ ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धते ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६८।४ )

१४६७ वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ३ ॥ ११ (या) ॥  
[ धा० ९ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।६८।९ )

१४६८ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥ ( ऋ. १।६।१ )

१४६९ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥ ( ऋ. १।६।२ )

१४७० केतुं कृण्वन्केतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥ १२ (य) ॥  
[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।६।३ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ १४६४ ] हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप ! ( नः आयूषि पवसे ) हमें वीर्याय दे । ( नः ऊर्ज ) हमें बल और ( इषं ) अन्न दे, ( दुच्छुनां आरे बाधस्व ) दुष्टोंको दूर कर ॥ ३ ॥

[ १४६५ ] ( ता ) वे मित्र और वरुण देव ( नः ) हमें ( पार्थिवस्य दिव्यस्य ) पृथ्वीपरके और धूलोकके ( महः रायः शक्तं ) महान् धन देनेके लिए समर्थ हों । हे मित्रावरुण ! ( वां महि क्षत्रं ) तुम्हारा महान् साम्रज्य ( देवेषु ) देवोंमें प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

[ १४६६ ] ( ऋतेन ऋतं सपन्ता ) यज्ञसे यज्ञ पूर्ण करते हुए ( इषिरं दक्षं आशाते ) चाहने योग्य बलकी प्राप्ति करते हैं । ऐसे ( अ-द्रुहा देवौ वर्धते ) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण अपने सामर्थ्यसे बढ़ते हैं ॥ २ ॥

[ १४६७ ] ( वृष्टि-द्यावा ) वृष्टिके लिए जिसकी स्तुति होती है, ( रीत्यापा ) योग्य रीतिसे जिसे वस्तुयें प्राप्त होती हैं, ऐसे ( दानुमत्याः इषः पती ) वान देनेके योग्य अन्नके स्वामी वे मित्र और वरुण ( बृहन्तं गर्तं आशाते ) महान् रथपर बैठते हैं ॥ ३ ॥

[ १४६८ ] लोग ( ब्रध्नं ) आविर्भूतके रूपमें रहनेवाले, ( अरुषं ) तेजस्वी अग्निके रूपवाले ( चरन्तं ) चलते हुएके समान बीकनेवाले पर ( परि तस्थुषः ) स्थिर रहनेवाले सूर्यका ( युञ्जन्ति ) उपासनाके लिए उपयोग करते हैं । उस इन्द्रकी ( रोचना दिवि रोचन्ते ) प्रकाशकी किरणें धूलोकमें प्रकाशित होती हैं ॥ १ ॥

[ १४६९ ] ( अस्य रथे ) इस इन्द्रके रथमें ( काम्या विपक्षसा ) सुन्दर और दोनों तरफ खुड़े हुए ( शोणा धृष्णू ) लाल रंगके और शत्रुओंको हरा देनेवाला तथा ( नृवाहसा हरी ) इन्द्रकी ओकर लेजानेवाले घोड़े ( युञ्जन्ति ) जोड़े जाते हैं ॥ २ ॥

[ १४७० ] हे ( मर्याः ) मनुष्यो ! ( अ-केतवे ) अज्ञानीको ( केतुं कृण्वन् ) ज्ञान देते हुए और ( अपेशसे पेशः ) रूप रहितोंको रूप देते हुए ( उषद्भिः समजायथाः ) उषःकालके बाद सूर्यका उदय होता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ५ ]

- १४७१ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८।१ )
- १४७२ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स ईश्रथो न भूरिषाडयोजि महः पुरुणि सातये वसूनि ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।८।२ )
- १४७३ <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिश्वास्ता दिव्या यथा विट् ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आपो न मक्षु सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण यज्ञः ॥ ३ ॥ १३ ( घी ) ॥  
 [ धा० २६ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ. ९।८।३ )
- १४७४ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।१ )
- १४७५ <sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वाक्षि यक्षि च ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।२ )

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १४७१ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे ) यह सोमरस तेरे लिए निकाला जाता है, ( तुभ्यं पवते ) तेरे लिए ही छाना जाता है, ( त्वं अस्य पाहि ) तू इसका पान कर, ( त्वं ह यं चकृषे ) तूने ही इसे बनाया है, ( इन्दुं सोमं ) इस चमकनेवाले सोमको ( मदाय युज्याय ) आनन्दके लिए और सहायताके लिए ( त्वं ववृषे ) तू स्वीकार करता है ॥ १ ॥

[ १४७२ ] ( सः ई महः ) वह इन्द्र महान् है । ( भूरि-षाड् रथः न ) बहुतसा बोझ ले जानेवाले रथके समान ( पुरुणि वसूनि सातये ) बहुत सारा धन देनेके लिए ( अयोजि ) यज्ञमें इसकी नियुक्ति की गई है, ( आत् ई ) इसके बाद ( विश्वा नहुष्याणि जाता ) सब मनुष्योंका विरोध करनेवाले शत्रु उत्पन्न हो गए हैं, वे ( ऊर्ध्वा ) ऊपर मुँह करके ( वने स्वर्षाता नवन्त ) वनमें होनेवाले युद्धमें जावें और वहां नष्ट हो जायें ॥ २ ॥

[ १४७३ ] हे सोम ! ( शुष्मी ) तू बलवान् है । ( मारुतं शर्धः न ) मरुतोंके बलके समान बलशाली होनेके लिए ( पवस्व ) तू शुद्ध हो । ( यथा दिव्या विट् ) जिसप्रकार दिव्य प्रजायें ( अनभिश्वास्ता ) अनिन्वित रूपसे प्रशस्त होती हैं, उसीप्रकार ( आपः न ) पानीके समान पवित्र होकर ( मक्षु नः सुमतिः भव ) उसी समय हमारे लिए उत्तम बुद्धि देवेवाला हो । ( सहस्राप्साः ) अनेक रूपोंमें रहनेवाला तथा ( पृतनाषाट् ) शत्रुको हरानेवाला तू ( यज्ञः न ) यज्ञके समान पूजनीय है ॥ ३ ॥

[ १४७४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता ) तू सब यज्ञोंमें हवन करनेवाला है, और ( देवेभिः मानुषे जने हितः ) देवोंके द्वारा मानवी प्रजाओंमें तू स्थापित किया गया है ॥ १ ॥

[ १४७५ ] हे अग्ने ! ( सः नः अध्वरे ) वह तू हमारे यज्ञमें ( मन्द्राभिः जिह्वाभिः ) आनन्द बढानेवाली ज्वालाओंके द्वारा ( महः यज्ञः ) देवोंका धजन कर । ( देवान् आ वक्षि ) देवोंको बुलाकर ला ( यक्षि च ) और उन्हें हवि अर्पण कर ॥ २ ॥



१४७६ वेत्था हि वेधा अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुकृतो ॥ ३ ॥ १४ ( हौ )

[ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।१६।३ )

१४७७ होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।२७।७ )

१४७८ वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।२७।८ )

१४७९ धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥ १५ ( रा ) ॥

[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ३।२७।९ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ ६ ]

१४८० आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्चियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७२।३ )

१४८१ ते जानत स्वमोक्यं स वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ॥ २ ॥

( ऋ. ८।७२।४ )

१४८२ उप स्रक्षेषु वप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ ३ ॥ १६ ( च ) ॥

[ धा० १२ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।७२।५ )

[ १४७६ ] ( वेधः सुकृतो देव अग्ने ) हे विधाता, उत्तम कर्म करनेवाले देव अग्ने ! तू ( यज्ञेषु ) यज्ञमें ( अध्वनः पथः अंजसा च वेत्था ) यज्ञके पासके और दूरके मार्ग तू जानता है, इसलिए यज्ञमानको मार्ग दिखा ॥ ३ ॥

[ १४७७ ] ( होता अमर्त्यः देवः ) हवन करनेवाला अमर देव अग्नि ( विदथानि प्रचोदयन् ) कर्मोंको प्रेरित करता हुआ ( मायया ) कुशलतासे ( पुरस्तात् पति ) आगे आता है ॥ १ ॥

[ १४७८ ] ( वाजी वाजेषु धीयते ) बलवान् अग्नि युद्धमें शत्रुका नाश करनेके लिए स्थापित किया जाता है, ( अध्वरेषु प्रणीयते ) यज्ञमें वह ले जाया जाता है, इसलिए ( विप्रः ) यह ज्ञानी अग्नि ( यज्ञस्य साधनः ) यज्ञका साधन है ॥ २ ॥

[ १४७९ ] अग्नि ( धिया चक्रे ) कर्मोंमें प्रज्वलित किया गया है, इसलिए वह ( वरेण्यः ) श्रेष्ठ है और वह ( भूतानां गर्भं आदधे ) सब प्राणियोंमें व्याप्त है । ( पितरं दक्षस्य तना ) जगत्के पालक अग्निको दक्षकी देवीरूपी यह पुत्री धारण करती है ॥ ३ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १४८० ] हे अघ्वर्बुजो ! ( सुते ) सोमरसमें ( रोदस्योः अभिश्चियं ) शुलोक और पृथ्वीलोकमें शोभा बढ़ाने-वाले ( श्रियं आसिञ्चत ) दूधको मिलाओ । बाबमें ( रसा वृषभं दधीत ) वे दूध बलवान् सोमको अपने अन्दर धारण करते हैं ॥ १ ॥

[ १४८१ ] ( ते स्वं ओक्यं ) वे गायें अपने स्थानको ( जानत ) जानती हैं, ( वत्सासः मातृभिः न ) बछड़े जिसप्रकार अपनी माताओंके पास जाते हैं, उसीप्रकार वे गायें ( जामिभिः मिथः नसन्त ) अपने बाल्बबोंके साथ मिलती हैं ॥ २ ॥

गायके दूधके स्थान [ घर ] सोमके बर्तन हैं, यह उन्हें मालूम है ।

[ १४८२ ] ( स्रक्षेषु वप्सतः ) ज्वालाओंसे भक्षण करनेवाले अग्निके ( नमः ) असरूप गौ दूधके ( धरुणं ) धारण करनेवालेको ( दिवि उप कृण्वते ) अन्तरिक्षमें स्थापित करते हैं । बाबमें ( इन्द्रे अग्ना स्वः नमः ) इन्द्र और अग्निको सब दूध देते हैं ॥ ३ ॥



- १४८३ तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।  
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु य विश्वे मदन्त्युमाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१२०।१ )
- १४८४ वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।  
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१२०।२ )
- १४८५ त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्युमाः ।  
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥ १७ ( गी. ) ॥  
[ धा० २३ । उ० ५ । स्व० ४ ] ( ऋ. १०।१२०।३ )
- १४८६ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृप्पत्  
सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।  
स ई ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुः सैनः  
सश्वदेवो देवः सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥ ( ऋ. २।२२।१ )

[ १४८३ ] ( तत् ज्येष्ठं इत् ) वह ज्येष्ठ ब्रह्म ही ( भुवनेषु आस ) सब भुवनोंमें व्याप्त होता है, ( यतः ) जिससे ( उग्रः त्वेषनृम्णः जज्ञे ) उग्र और तेजस्वी बलसे युक्त सूर्य प्रकट हुआ । ( जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति ) उत्पन्न होते ही उसने उसी समय सब शत्रुओंको नष्ट किया । ( यं विश्वे ऊमाः अनुमदन्ति ) जिसे देखकर सब प्राणी प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

[ १४८४ ] ( शवसा वावृधानः ) बलके कारण बठनेवाला तथा ( भूर्योजाः शत्रुः ) अनन्तशक्ति युक्त दुष्टोंका शत्रु इन्द्र ( दासाय भियसं दधाति ) शत्रुके अन्तःकरणमें भय उत्पन्न करता है, ( अव्यनत् च व्यनत् च सस्नि ) प्राण लेनेवाले और प्राण न लेनेवाले दोनोंका हित करता है, हे इन्द्र ! ( ते मदेषु ) तेरे आनन्दमें ( प्रभृता सं नवन्त ) बड़े हुए सब लोग तेरी भक्ति करनेके लिए एकत्रित होते हैं ॥ २ ॥

[ १४८५ ] हे इन्द्र ! ( विश्वे अपि त्वे क्रतुं वृञ्जन्ति ) सब यजमान तेरे लिए ही यज्ञ करते हैं, ( यत् एते ऊमाः ) जिस समय ये यज्ञ करनेवाले यजमान ( द्विः त्रिः भवन्ति ) शायी करके दो अथवा पुत्र होनेके बाद तीन होते हैं, उस समय हे इन्द्र ! ( स्वादोः स्वादीयः ) प्रियसे भी प्रिय लगनेवाले [ सन्तान ] को ( स्वादुना संसृज ) प्रिय [ लगन वाले माता पिता ] से संयुक्त कर । ( अदः मधु ) बाबमें इस प्रिय सन्तानको ( मधुना सु अभि योधीः ) पौत्ररूपी मधुरतासे युक्त कर ॥ ३ ॥

[ १४८६ ] ( महिषः तुविशुष्मः ) महान् और अधिक सामर्थ्यवान् ( तृप्पत् ) तृप्त हुआ हुआ इन्द्र ( त्रिकद्रुकेषु सुतं ) तीन वर्तनमें निकाले गए ( यवाशिरं सोमं ) सत्तूके आटेसे मिश्रित सोमरसको ( विष्णुना यथावशं अपिबत् ) विष्णुके साथ इच्छानुसार पीता है । ( सः ) वह सोमरस ( महान् ऊरुं ईं ) महान् विस्तृत तेजस्वी इत इन्द्रको ( महि कर्म कर्तवे ) महान् कार्य करनेके लिए ( ममाद ) आनन्दित करता है । ( सत्यः इन्दुः ) सत्यस्वरूप और बलकनेवाला ( देवः सः ) विष्णुगुण युक्त वह सोम ( सत्यं देवं ) अविनाशी तथा तेजस्वी ( एनं इन्द्रं सश्वत् ) इस इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ १ ॥



१४८७ साकं जातः क्रतुना साकमाजसा ववक्षिथ  
 साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मधो विचर्षणिः ।  
 दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनः  
 सश्वदेवो देवः सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्

॥ २ ॥ ( ऋ. २।२।३ )

१४८८ अध त्विषीमाऽअभ्योजसा कृविं युधामवदा  
 रोदसी आपणदस्य मज्मना प्र वावुधे ।  
 अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनः  
 सश्वदेवो देवः सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्

॥ ३ ॥ १८ ( थि ) ॥

[ धा० ५४ । उ० २ । स्व० १३ ] ( ऋ. २।२।२ )

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥ षष्ठः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ६ ॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

[ १४८७ ] हे इन्द्र ! तू ( क्रतुना साकं जातः ) यज्ञके साथ प्रकट हुआ है, ( ओजसा साकं ववक्षिथ ) अपने सामर्थ्यसे विश्वका भार उठानेकी तू इच्छा करता है । हे ( प्रचेतन ) श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्र ! ( वीर्यैः साकं वृद्धः ) अपने पराक्रमसे तू महान् हुआ है, ( मृधः सासहिः ) संग्राममें शत्रुओंको तू हराता है । ( विचर्षणिः स्तुवते ) विशेष ज्ञानी तू स्तुति करनेवालोंको ( राधः काम्यं वसु दाता ) धन और इष्ट ऐश्वर्य देता है । ( सत्यः इन्दुः ) सत्य सोमरस ( देवः सः ) चमकते हुए ( सत्यं देवं ) सत्य देव ( एनं इन्द्रं सश्वत् ) इस इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ १४८८ ] हे इन्द्र ! ( अध ) बादमें ( त्विषीमान् ) तेजस्वी तूने ( ओजसा कृविं युधा अभ्यभवत् ) अपने सामर्थ्यसे युद्धमें कृविको जीता और ( रोदसी आ पृणात् ) छावापृथ्वीको अपने तेजसे भर दिया । ( अस्य मज्मना प्र वावुधे ) इस सोमके बलसे तू और अधिक बड़ा हुआ है, उस इन्द्रने ( अन्यं जठरे अधत्त ) सोमरसका एक भाग अपने पेटमें और दूसरा भाग ( ईं प्रारिच्यत ) देवोंके लिए रख दिया है । हे इन्द्र ! तू दूसरे देवोंको ( प्र चेतय ) सोम पीनेके लिए प्रेरित कर । ( सत्यः इन्दुः ) सत्य तथा ( देवः सः ) विश्व गुणोंवाला वह सोम ( सत्यं देवं एनं इन्द्रं सश्वत् ) सत्य देव इस इन्द्रको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

॥ यद्वां छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥





## त्रयोदश अध्याय

### इन्द्र देवता

इस अध्यायमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

१ यः नव नवति पुरः बाह्वोजसा विभेद । वृत्रहा  
अहिं अवधीत् [१४५१]— इन्द्रने अपने बाहु बलसे शत्रुके  
९९ नगरोंको तोड़ा और इस वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने अहिको  
मारा ।

२ समस्य जेन्यस्य शर्धतः अभिशस्तेः कुवित्  
अवखरत् [१४४३]— सब जीतने योग्य तथा स्पर्धा करने-  
वाले सब शत्रुओंको नष्ट करके वह इन्द्र तुम्हारा अधिक  
संरक्षण करेगा ।

३ शवसा वावृधानः भूर्योजाः शक्रः दासाय  
भियसं दधाति [१४८४]— अपने बलसे बठनेवाला,  
अनन्त सामर्थ्यसे युक्त, दुष्टोंका शत्रु इन्द्र शत्रुके विलम्ब भय  
उत्पन्न करता है ।

४ क्रतुना साकं जातः । ओजसा साकं ववक्षिथ ।  
वीर्यैः साकं वृद्धः । मृधः सासहि [१४८७]— कर्म  
करनेके लिए वह प्रसिद्ध है । अपने सामर्थ्यसे वह सब  
कार्योंका भार उठाता है । अपने पराक्रमसे वह महान् हुआ  
है । वह सब शत्रुओंको हराता है ।

५ अज्ञाताः वृजनाः अशिवासः दुराध्याः नः मा  
अन्नक्रमुः [१४५७]— अज्ञात, कुटिल, पापी और अमंगल  
शत्रु हम पर हमला न करें ।

६ हे शूर ! त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति  
तरामधि [१४५७]— हे शूर इन्द्र ! तेरी सहायतासे सुर-  
क्षित हुए हुए हम बहुत संकटोंके प्रवाहसे पार हों ।

७ हे इन्द्र ! अद्य इवः परे च नः त्रास्व [१४५८]—  
आज, कल और परसों अर्थात् हमेशा हमारा तू संरक्षण कर ।

८ विश्वा च अहानः दिवा नक्तं च राक्षिषः [१४५८]  
— सब दिन और रात्रिमें हमारा संरक्षण कर ।

९ अयं मघवा वीर्याय कं, प्रभंगी शूरः, तुर्वीमघः  
संमिश्रः । हे इन्द्र शतक्रतो ! ते उभा बाहु वृषणा या  
वज्रं नि मिमिक्षतुः [१४५९]— यह इन्द्र सुखसे पराक्रम  
करनेवाला, शत्रुका नाश करनेवाला शूर, बहुत धनवान् और  
सबसे मिल मिलाकर रहनेवाला है । हे सैंकड़ों कार्य करने-

वाले इन्द्र ! वज्रको धारण करनेवाली तेरी दोनों भुजायें  
बलवान् हैं ।

१० स ईं महः, भूरिषाद् रथः इव, पुरुणि वसूनि  
सातये अयोजि । आत् ईं विश्वा नहुष्याणि जाता,  
ऊर्ध्वा वने स्वर्षाता नवन्त [१४७२]— वह निःशय  
महान् इन्द्र है । बहुत सारा वजन ढोकर ले जानेवाले रथके  
समान बहुत सारा धन देनेके लिए उस रथमें उसने योजना  
की है । हे इन्द्र ! सब मनुष्योंका विरोध करनेवाले शत्रुओंके  
उत्पन्न होनेपर उनका नाश वनमें होनेवाले युद्धमें हो, और  
मुख ऊपर करके वे नष्ट हो जाएं ।

११ त्विषीमान् ओजसा कृवि युधा अभ्यभवत् ।  
अस्य मज्मना प्र वावृधे [१४८८]— उस तेजस्वी इन्द्रने  
अपने सामर्थ्यसे शत्रुको युद्धमें जीत लिया है । वह अपने  
बलसे बहुत महान् हो गया है ।

इस प्रकार इन्द्रके सामर्थ्यका वर्णन है । अब उसके विषयमें  
दूसरे वर्णन देखिए—

१२ सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः यदि प्रतिभूषथ,  
मेधिरः विश्वस्य वेद, धृषत् इत् एषते [१४४२]—  
सोमरसके साथ यदि तुम इन्द्रके पास गए, तो वह बुद्धिमान्  
इन्द्र तुम्हारे सब मनोरथ जानेगा और तुम्हारी सब कामना-  
ओंको पूर्ण करेगा ।

१३ अस्मा इत् अन्धसः सुतं प्र भर [१४४३]— उस  
इन्द्रको सोमरस भरपूर दो ।

१४ सः शिवः इन्द्रः नः सखा, अश्वावत् गोमत्  
यवमत् उरु धारा इव दोहते [१४५२]— वह कल्याण  
करनेवाला इन्द्र हमारा मित्र है । वह हमें बहुतसा दूध देने-  
वाली गायोंके समान, घोड़े, गाय और धान्य बहुत देता है ।

१५ हे इन्द्र ! नः क्रतुं आ भर । यथा पुत्रेभ्यः  
पिता, नः शिक्ष । हे पुरुहूत ! यामनि जीवाः ज्योतिः  
अशमिहि [१४५६]— हे इन्द्र ! हमारा यज्ञ पूर्ण कर ।  
जैसे पिता अपने पुत्रोंको धन देता है, उसीप्रकार तू हमें धन  
दे । हे प्रशंसनीय इन्द्र ! यज्ञमें हम मनुष्य तेजस्वी बनें ।

१६ हे इन्द्र ! अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे । तुभ्यं पवते ।  
त्वं अस्य पाहि [१४७१]— हे इन्द्र ! यह सोमरस तेरे  
लिए निबोड़ा गया है । तेरे लिए छाया जाता है । तू उसे पी ।



१७ विचर्यणिः स्तुवते राधः काम्यं वसु दाता [ १४८७ ]- विशेष ज्ञानी तू स्तुति करनेवालेको धन और चाहे हुए ऐश्वर्य देता है।

१८ अव्यनत् च व्यनत् च सस्नि [ १४८४ ]- स्वासोच्छ्वास करनेवाले और न करनेवाले दोनोंका हित करनेवाला है।

१९ विश्वे त्वे कतुं वृंजन्ति [ १४८५ ]- सब यज्ञ-कर्ता तेरे लिए ही यज्ञ करते हैं।

२० महिषः तुविशुष्मः तृप्पत् यवाशिरं सोमं विष्णुना यथावशं अपिवत् । सः महान् ऊरुं हं महि कर्म कर्तवे ममाद् [ १४८६ ]- महान् और अत्यधिक सामर्थ्य-वान् तृप्त हुआ हुआ इन्द्र सत्से मिले हुए सोमको विष्णुके साथ इच्छानुसार पीता है। वह सौमरस उस महान् इन्द्रको महान् कार्य करनेके लिए हर्षित करता है।

२१ अस्य रथे काम्या विषश्वसा शोणा, धृष्णू नृवाहसा हरी युंजन्ति [ १४८९ ]- इस इन्द्रके रथमें सुन्दर, दोनों तरफ जोड़े जानेवाले, लाल रंगके, शत्रुओंको हरानेवाले, इन्द्रको ढोकर ले जानेवाले दो घोड़े जोड़े जाते हैं।

इस प्रकार इन्द्र और इन्द्रके रथका वर्णन है।

### सूर्य इन्द्र

सूर्यके रूपमें इन्द्र और सूर्यका भी वर्णन इस अध्यायमें आया है—

१ हे सूर्य ! श्रुतामघं वृषभं नर्यापसं अस्तारं अभि उदेधि [ १४५० ]- हे सूर्य ! प्रसिद्ध धनवान्, बलवान्, मनुष्योंका हित करनेवाले दाताके सामने तू उदय होता है।

२ विभ्राद् यज्ञपतौ अविश्रुतं आयुः दधत् [ १४५३ ]- विशेष प्रकाश करनेवाला सूर्य यज्ञ करनेवालेको आरोग्य पूर्ण दीर्घायु देता है।

३ तमना अभिरश्नति [ १४५३ ]- वह स्वयंका संरक्षण करता है।

४ विभ्राद् बृहत् सुभृतं वाजसातमं, धर्मन् दिवः धरुणे अर्पितं, सत्यं अमित्र-हा, दस्युहन्तमं असुर-हा सपत्न-हा ज्योतिः जज्ञे [ १४५४ ]- विशेष प्रकाशमान् और महान्, उत्तम भरणपोषण करनेवाला और अन्न देनेवाला, अपनी शक्तिसे छुलोकको धारण करनेके लिए नियुक्त किया गया, निश्चयसे शत्रुओंका नाश करनेवाला, दुष्टोंको मारने-वाला, और राक्षसोंका विनाशक, सपत्नोंको मारनेवाला सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है।

५ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां उत्तमं ज्योतिः, विश्वजित्, धनजित् बृहत् उच्यते । विश्वभ्राद् भ्राजः महि सूर्यः दृशे, उरु सहः अच्युतं ओजः पप्रथे [ १४५५ ]- यह श्रेष्ठ और उत्तम सूर्यका तेज अनेक तेजोंका प्रकाशक है। यह तेज उत्तम विश्वविजयी, धन जीतनेवाला और बहुत महान् है ऐसा कहते हैं। विश्वको प्रकाशित करनेवाला, स्वयं प्रकाशी यह महान् सूर्य दिनमें महान् सामर्थ्यवान् अविनाशी और तेजरूपी बलको प्रकाशित करता है।

६ ब्रध्नं अरुषं चरन्तं परि तस्थुषः युञ्जन्ति । रोचना दिवि रोचन्ते [ १४६८ ]- आविर्त्यरूपी तेजस्वी, चलनेके समान बिछाई देनेवाले, पर स्थिर रहनेवाले सूर्यका उपयोग साधक उपासनामें करते हैं। उसकी प्रकाश किरणें आकाशमें प्रकाशित होती हैं।

७ तत् ज्येष्ठं भुवनेषु आस, यतः उग्रः त्वेषनुग्णः जज्ञे । जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति । यं विश्वे ऊमाः अनुमदन्ति [ १४८३ ]- वह ज्येष्ठ ब्रह्म सब भुवनोंमें व्याप्त है, जिससे बहुत तेजस्वी सूर्य उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही उसने उसी समय सब शत्रुओंको नष्ट किया, उसे देखकर सब प्राणी प्रसन्न होते हैं।

८ मर्याः ! अकेतवे केतुं कृण्वन्, अपेशसे पेशः, उपद्भिः समजायथाः [ १४७० ]- हे मनुष्यो ! अज्ञानियोंको ज्ञान देते हुए, रूपरहितोंको रूप देते हुए उषःकालके बाद यह सूर्य उदय होता है।

९ सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि, यः नः धियः प्रचोदयात् [ १४६२ ]- सविता देवके उस श्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो सविता - सूर्य - हमारी बुद्धियोंको उत्तम प्रेरणा दे।

इस प्रकार सूर्यका वर्णन इस अध्यायमें है। अन्तका मंत्र गायत्री मंत्र है, और वह प्रसिद्ध होनेके कारण सबको पता है। अब अग्निका वर्णन देखें—

### अग्नि

१ हे अग्ने ! नः आयूंषि ऊर्जं इषं च पवसे [ १४६४ ]- हे अग्ने ! हमें दीर्घायु बल और अन्न दे।

२ दुच्छुनां आरे वाधस्व [ १४६४ ]- दुष्टोंको दूर कर।

३ हे अग्ने ! त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता, देवेभिः मानुषे जने हितः [ १४७४ ]- हे अग्ने ! तू सब यज्ञोंका होता, देवों द्वारा मनुष्योंमें स्थापित किया गया है।

४ सः नः अध्वरे मन्द्राभिः जिह्वाभिः महः यज,



देवान् आ वक्षि यक्षि च [ १४७५ ]- वह तू हमारे यज्ञमें आनन्द बढ़ानेके लिए ज्वालाओंसे प्रवीप्त हो, और देवोंके लिए यजन कर। देवोंको बुलाकर ला और उनके लिए यज्ञ कर।

५ वेधः सुक्रतो देव अग्ने ! यज्ञेषु अध्वनः पथः अंजसा वेत्थ [ १४७६ ]- हे विधाता और उत्तम कर्म करनेवाले अग्नि देव ! तू यज्ञके पासके और दूरके मार्गोंको जानता है, इसलिए तू उत्तम मार्ग दिखा।

६ होता अमर्त्यः देवः विदथानि प्रचोदयन् मायया पुरस्तात् एति [ १४७७ ]- होता अमर देव कर्मोंकी प्रेरणा करते हुए कुशलतासे आगे जाता है।

७ वाजी वाजेषु धीयते। अध्वरेषु प्रणीयते। विप्रः यज्ञस्य साधनः [ १४७८ ]- बलवान् अग्नि युद्धमें स्थापित किया जाता है। दोनों पक्षोंमें जब अग्निके समान द्वेष प्रज्वलित होता है, तभी युद्ध होता है। यज्ञमें अग्नि ले जाया जाता है। यह ज्ञानी अग्नि यज्ञका साधन है।

अग्निके वर्णनमें यज्ञ करना ही अग्निका मुख्य काम है। आरोग्यसाधन और दीर्घायु इस यज्ञके फल हैं। शरीरमें अग्निकी उष्णताके रहनेतक शरीररूपी यज्ञशालामें सूर्यादि देवोंके अंश रहते हैं। और उष्णताके नष्ट होते ही सब देव निकल जाते हैं, यह अनुभव सबको है। ऊपरके मंत्रोंके वर्णन मानवशरीरमें होनेवाले शतसंबत्सरीय यज्ञमें देखें। उससे मंत्रकी आलंकारिक भाषा स्पष्ट रूपसे समझमें आ जाएगी और सब मंत्रोंका अर्थ स्पष्ट हो जाएगा।

### मित्र और वरुण

१ ताः नः पार्थिवस्य दिव्यस्य महः रायः शक्तं, देवेषु वां माहि क्षत्रं [ १४६५ ]- वे दो मित्र और वरुण देव पार्थिव और दिव्य ऐसे दोनों प्रकारके धन देनेमें समर्थ हैं। सब देवोंमें इनका महान् बल प्रसिद्ध है।

२ ऋतेन ऋतं सपन्ता इषिरं दक्षं आशाते, अद्रुहा देवौ वर्धेते [ १४६६ ]- यज्ञसे यज्ञ पूर्ण करते हुए चाहने योग्य बल प्राप्त करते हैं। द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण दोनों देव अपने सामर्थ्यसे बढ़ते हैं।

३ वृष्टिद्यावा रीत्यापादानुमत्या इषः पती, वृहन्तं गर्तं आशाते [ १४६७ ]- वृष्टिके लिए जिनकी स्तुति होती है, प्रगतिके लिए जो कर्म करते हैं, दान देनेकी ओर जिनकी बुद्धि जाती है ऐसे अन्नके स्वामी ये मित्र और वरुण महान् रथमें बैठते हैं।

इन मंत्रोंमें मित्र और वरुण देवता हैं। पार्थिव और दिव्य ऐश्वर्य दे देते हैं। क्षात्रकर्ममें कुशल होनेके कारण ये शत्रुओंको हटाकर दूर करते हैं। ये बलवान् हैं। एक काम समाप्त हुआ कि दूसरा शुरू कर देते हैं। आलस्यमें समय नष्ट नहीं करते। आपसमें झगडते नहीं। प्रगति करनेके सब कार्य करते हैं। ये इनके अच्छे गुण ग्रहण करने योग्य हैं।

### सरस्वती

सरस्वती देवीके सम्बन्धमें भी इस अध्यायमें वर्णन है—

१ उत नः प्रियासु प्रिया, सप्त-स्वसा सुजुष्टा सरस्वती स्तोम्या भूत् [ १४६१ ]- हमें प्रिय वस्तुओंमें प्रिय, सात बहिनों द्वारा सेवित सरस्वती स्तुतिके योग्य हो गई है।

सरस्वती विद्या और संस्कृतिकी देवी है। अपने देशकी संस्कृति सबको प्रिय होनी चाहिए। यह संस्कृति सबसे अधिक प्रिय है सब प्रशंसनीयोंमें यह सर्वाधिक प्रशंसनीय है। इसकी सात बहिनें हैं। धर्म भावना, भाषा, सभ्यता, सत्कर्म करनेकी इच्छा, शक्ति, संस्कृति और मातृभूमि ये सरस्वतीकी सात बहिनें हैं। इनकी सेवा प्रत्येकको करनी चाहिए।

२ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः सरस्वन्तं हवामहे [ १४६० ]- स्त्रीवाले गृहस्थी, पुत्रवाले, उत्तम दान देनेवाले, सबके आगे रहनेवाले, ऐसे हम सब सरस्वतीकी सहायताके लिए प्रार्थना करते हैं।

सब प्रकारके लोगोंको इस विद्यादेवीकी उपासना करनी चाहिए। सब प्रकारकी प्रगतिके लिए विद्याका उपयोग होता है। विद्यामें आगे रहनेवाला ही सबमें आगे रहता है।

### प्राणकी उपासना

दीर्घायुष्य प्राप्त करनेके लिए प्राणकी उपासना अत्यन्त आवश्यक है—

१ हे ब्रह्मणस्पते ! सोमानां कक्षीवन्तं स्वरणं कृणुहि, यः औशिजः [ १४६२ ]- हे ज्ञानके स्वामी ! हे ज्ञानपते ! ( स-उमानां ) ब्रह्मविद्या ही उमा है, इस ब्रह्म-विद्यासे युक्त ब्रह्मज्ञानी ही सोम है। उन ज्ञानियोंमें योग साधनके अनुभवसे जिन प्राणोंका ज्ञान होता है, उन छातीमें रहनेवाले प्राणोंको ( स्वरणं सु-अरण ) उत्तम पूरक और रेचक-उत्तम आने जाने-वाला करो। यह प्राण अपने बशमें होगा, तो महान् सिद्धि मिलेगी।



ज्ञान प्राप्त करें, फिर प्राणोंको वशमें करें। पुरक और रेचक इनका अभ्यास करें। इस छातीमें रहनेवाला प्राण यदि वशमें हो गया तो दीर्घजीवन प्राप्त हो जाएगा। निरोगी रहा जा सकेगा। स्वास्थ्य सुख मिलेगा।

इस प्रकार इस अध्यायमें ही महत्त्वकी साधना बताई है। ओ इसका अनुष्ठान करेगा, उसको स्वास्थ्य, आरोग्य और दीर्घजीवनका सुख प्राप्त होगा।

### सोम

अब इस अध्यायमें सोमका वर्णन इस प्रकार है—

१ बभ्रुः [ १४४४ ]- भूरे रंगका।

२ स्वतवाः [ १४४४ ]- अपनी शक्तिसे बढ़नेवाला।

३ अरुणः [ १४४४ ]- चमकनेवाला।

४ दिविस्पृक् [ १४४४ ]- स्वर्गमें रहनेवाला, हिमालयकी ऊंची चोटी पर उगनेवाला।

५ मनसः पतिः [ १४४८ ]- मनका स्वामी, मनका उत्साह बढ़ानेवाला।

६ शुष्मी [ १४७३ ]- सामर्थ्यवान्, बलवान्।

७ सुमतिः [ १४७३ ]- उत्तम बुद्धि देनेवाला, मनको उत्तेजित करनेवाला।

८ दिवः वृष्टिं नः आ पवस्व, अपां ऊर्मिं परि, अयक्ष्माः बृहतीः इषः [ १४३५ ]- छुलोके वृष्टि कर ताकि पानीकी लहरें उछलें और रोगरहित अन्न मिले।

९ तया धारया पवस्व, यया जन्यासः गावः इह नः गृहं उप आगमन् [ १४३६ ]- उस धारासे छनता जा, जिसके कारण दुधारा और बछड़े सहित गायें हमारे घरके पास आयें और उनका दूध सोमरसमें मिलाया जावे।

१० नः ऊर्जे अव्ययं पवित्रं धारया विधाव [ १४३८ ]- हमारे बल बढ़ानेके लिए भेड़के बालोंकी छलनीमेंसे धार बनाकर नीचे बर्तनमें जल्दी जा।

११ रक्षांसि अपजंघनत्, रुचः प्रत्नवत् रोच्यन् पवमानः असिप्यदत् [ १४३९ ]- राक्षसोंको मारकर पहलेके समान तेजकी किरणोंको प्रकाशित करते हुए छनकर बर्तनमें जा।

१२ विश्वानि विदुषे अरंगमाय जग्मये अपश्चाद् अध्वने पिपीषते अस्मै प्रति भर [ १४४० ]- सबको जाननेवाले, बहुत प्रगति करनेवाले, यज्ञमें जानेवाले, आगे रहनेवाले, सोम पीनेकी इच्छा करनेवाले इस इन्द्रके लिए सोमरस दो।

१३ हे सोम ! अ-मित्र-हा विश्वचर्षणिः देवेभ्यः अनुकामकृत् गवे इं पवस्व [ १४४७ ]- हे सोम ! तू शत्रुओंको मारनेवाला, सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला, देवोंके लिए अनुकूल कर्म करनेवाला तू गायोंके कल्याण करनेके लिए शुद्ध हो। गायका दूध सोममें मिलाया जाता है, इस कारण गायोंको आनन्द होता है।

१४ हे सोम ! इन्द्राय पातवे मदाय परिषिच्यसे [ १४४८ ]- हे सोम ! इन्द्रके पीनेके लिए और उसे आनन्द देनेके लिए तू बर्तनमें गिरता है। छाना जाता है।

१५ हे इन्द्रो पवमान ! सुवीर्यं रयिं नः युजा इन्द्रेण नः रिरिहि [ १४४९ ]- हे शुद्ध होनेवाले सोम ! उत्तम वीर्यसे युक्त धन हमारी सहायता करनेके लिए इन्द्रसे लेकर हमें दे।

१६ यथा दिव्या विद् अनभिशास्ता [ १४७३ ]- जिस रीतिसे दिव्य प्रजायें आनन्दित रहें ऐसा कर।

१७ नः मधु सुपतिः भव। सहस्राप्साः पृतनाषाब् [ १४७३ ]- हमारी बुद्धि शीघ्र ही उत्तम हो ऐसा कर। अनेक कर्म करनेवाला और शत्रुसेनाको हरानेवाला हो।

१८ सुते श्रियं आसिचत। रसा वृषभं दधीत [ १४८० ]- सोमरसमें दूध मिलाओ, ताकि उस दूधसे बलवान् सोमका धारण हो।

१९ ते स्वं ओक्यं जानत, वत्सासः मातृभिः न, जामिभिः मिथः नसन्त [ १४८१ ]- वे गायें अपना घर जानें। जिसप्रकार बछड़े अपनी माताओंसे मिलकर रहते हैं उसीप्रकार अपने बन्धुओंसे वे मिलकर रहें।

गायोंका घर सोम है इसका अर्थ है कि सोममें गायका दूध मिलाया जाता है। गायका दूध अपने घर जाता है अर्थात् सोममें दूध मिलाया जाता है। यह आलंकारिक वर्णन है

### सोममें दूध

१ हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन, मधो मधु आधावत् [ १४४५ ]- हाथोंसे कूटे जानेवाले पत्थरोंके द्वारा कूटकर निचोड़ा गया सोमरस शुद्ध करो और इस मधुर सोमरसोंमें दूध मिलाओ।

२ नमसा उपसीदत्, दध्ना अभिशीणीत, इन्द्रे इन्दुं दधातन, [ १४४६ ]- नमस्कार करते हुए सोमके पास जा बैठो और उस सोमरसमें वही या दूध मिलाओ और वह सोमरस इन्द्रको दो।

इस प्रकार सोमको इन्द्र के लिए देनेका वर्णन है। अन्य देवोंको भी इसप्रकार सोम पीनेके लिए दिया जाता है।



## सुभाषित

१ दिवः वृष्टिं नः सु आ पवस्व, अयक्ष्माः बृहतीः  
वृषः [ १४३५ ]- आकाशसे वर्षा अच्छी तरह गिरा और  
रोगरहित बहुत सारा अन्न हमें दे ।

२ तथा धारया पवस्व, यया जन्यासः गावः इह  
नः गृहं उपागमन् [ १४३६ ]- तू मूसलाधार बरसात  
गिरा, जिसके कारण वृष देनेवाली गायें यहां हमारे घर आयें ।

३ देवासः कं शृणवन् [ १४३८ ]- वेब आनन्दसे  
शब्द सुनें ।

४ रक्षांसि अपजंघनत्, रुचः प्रत्नवत् रोचयन्  
[ १४३९ ]- राक्षसोंको मारकर, पहलेके समान अपने तेजसे  
तेजस्वी हो ।

५ विश्वानि विदुषे, अरंगमाय जग्मये, अपश्चात्  
अध्वने प्रतिभर [ १४४० ]- सब जाननेवाले, बहुत प्रगति  
करनेवाले, सबसे आगे रहनेवालेको भरपूर अन्न दे ।

६ मेधिरः विश्वस्य वेद, धृषत्, तं इत् पश्यते  
[ १४४२ ]- बुद्धिमान् इन्द्र तुम्हारे सारे मनोरथोंको जानता  
है, वह शत्रुओंको हराता है, और तुम्हारी सब कामनाओंको  
पूरा करता है ।

७ समस्य जेन्यस्य शर्धतः अभिशस्तेः कुवित्  
अवस्वरत् [ १४४३ ]- सब जीतने योग्य और स्पर्धा  
करनेवालोंका नाश करके वह इन्द्र तुम्हारा निःसंशय संरक्षण  
करेगा ।

८ अमित्रहा विश्वचर्षणिः देवेभ्यः अनुकामकृत्  
[ १४४७ ]- तू शत्रुओंका नाश करनेवाला, सब मनुष्योंका  
कल्याण करनेवाला और देवोंके अनुकूल कार्य करनेवाला है ।

९ गवे शं पवस्व [ १४४७ ]- गायोंको सुख दे ।

१० मनः चित् मनसः पतिः [ १४४८ ]- मनकी  
शक्तिको जानें और मन पर शासन करें ।

११ सुवीर्यं रयिं नः रिरिहि [ १४४५ ]- उत्तम पराक्रम  
करनेके सामर्थ्यसे युक्त धन हमें दे ।

१२ श्रुतामघं वृषमं नर्यापसं अस्तारं अभि उदेधि  
[ १४५० ]- प्रसिद्ध धनधानों, बलवानों तथा मनुष्योंके  
हित करनेवालोंके तथा दान देनेवालोंके सामने तू प्रकट  
होता है ।

१३ यः नव नवति पुरः बाहोजसा विभेद [ १४५१ ]  
- जिस इन्द्रने शत्रुओंकी निम्नानवे नगरियोंको अपने बाहु-  
बलसे तोड़ डाला ।

१४ वृत्र-हा अहिं अवधीत् [ १४५१ ]- वृत्रको  
मारनेवाले इन्द्रने अहिको मार दिया ।

१५ सः शिवः इन्द्रः नः सखा, अश्वावत्, गोमत्  
यवमत् उरुधारा इव दोहते [ १४५२ ]- वह कल्याण  
करनेवाला इन्द्र हमारा मित्र है, वह घोड़े, गाय और जो  
इनके साथ मिलनेवाला अन्न, बहुत दूध देनेवाली गायोंके  
समान, हमें देता है ।

१६ विश्राद् यज्ञपतौ अ-विन्दुतं आयुः दात्  
[ १४५३ ]- सूर्ययज्ञ करनेवालेको आरोग्यमय दीर्घायु देत ।

१७ बृहत् सोम्यं मधु पिबतु [ १४५३ ]- बहुत  
सोमरसके भीठे पेय वह पीवे ।

१८ घातजूतः तमना अभि रक्षति [ १४५३ ]- वायुसे  
प्रेरित किए गए स्वयंकी हर तरहसे रक्षा करता है ।

१९ प्रजाः पिपति [ १४५३ ]- प्रजाओंका उत्तम पोषण  
करता है ।

२० बहुधा विराजति [ १४५३ ]- अनेक रीतियोंसे  
वह विशेष तेजस्वी होता है ।

२१ विश्राद् बृहत् सत्यं अमित्रहा दस्युहन्तमः  
असुरहा सपत्नहा, ज्योतिः जज्ञे [ १४५४ ]- विशेष  
तेजस्वी और विशाल, निश्चयसे शत्रुओंका नाशक, दुष्टोंको  
मारनेवाला, असुरोंको मारनेवाला, सपत्नों [ शत्रुओं ] को  
मारनेवाला तेजस्वी वीर उत्पन्न हुआ है ।

२२ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां उत्तमं ज्योतिः विश्ववित्,  
धनजित् बृहत् उच्यते [ १४५५ ]- ये तेजस्वी पदार्थोंमें  
उत्तम तेजस्वी, सब जगह विजय करनेवाले, धन जीतनेवाले  
महान् और प्रसिद्ध तेज हैं ।

२३ विश्वभ्राद्, भ्राजः महि सूर्यः दृशे उरु सहः  
अच्युतं ओजः पप्रथे [ १४५५ ]- सबको प्रकाशित करने-  
वाला, स्वयं प्रकाशमान यह महान् सूर्य देखनेमें बड़ा सामर्थ्य-  
वान्, अविनाशी और तेजस्वी सामर्थ्यको फैलाता है ।

२४ क्रतुं आ भर [ १४५६ ]- यज्ञ उत्तम रीतिसे  
समाप्त कर ।

२५ यथा पुत्रेभ्यः पिता, नः शिक्ष [ १४५६ ]- जैसे  
अपने पुत्रोंको पिता धन देता है, उसीप्रकार तू हमें दे ।

२६ यामानि जीवाः ज्योतिः अशीमहि [ १४५६ ]-  
यज्ञमें हम मनुष्य प्रकाश प्राप्त करें ।

२७ अज्ञाताः वृजनाः अशिवासः दुराध्याः नः मा  
अवक्रमुः [ १४५७ ]- अज्ञात, कुटिल, पापी और अर्बणले  
शत्रु हमपर आक्रमण न करें ।



२८ हे शूर ! त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः  
अति तरामसि [ १४५७ ]- हे शूर ! तेरी सहायतासे सुर-  
क्षित हुए हुए हम बहुतसे संकटोंके प्रवाहसे पार हों ।

२९ अद्य इवः परे च नः त्रास्व [ १४५८ ]- आज,  
कल और परसों अर्थात् हमेशा हमारी रक्षा कर ।

३० हे सत्पते ! विश्वा च अहा नः दिवा नक्तं च  
रक्षिषः [ १४५८ ]- हे सज्जनोंके संरक्षक ! हमेशा हमें  
दिन और रात्रिमें सुरक्षित कर ।

३१ अयं मघवा वीर्याय कं प्रभंगी शूरः तुवी-मघः  
संमिश्रः [ १४५९ ]- यह धनवान् इन्द्र सुखसे पराक्रम  
करनेके लिए शत्रुको नष्ट करनेवाला, शूर, अत्यधिक ऐश्वर्य-  
वान् और मिलमिलाकर रहनेवाला है ।

३२ या वज्रं नि मिमिक्षतुः ते उभा वाहू वृषणा  
[ १४५९ ]- जो वज्रको धारण करते हैं वे तेरे दोनों बाहू  
बलवान् हैं ।

३३ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः सर-  
स्वन्तं हवामहे [ १४६० ]- स्त्रीके साथ रहनेवाले अर्थात्  
विद्याहित, पुत्रवाले, उत्तम दान देनेवाले, आगे रहनेवाले हम  
विद्यादेवीको सहायताके लिए बुलाते हैं ।

सरस्वान्- विद्याका उपासक, विद्वान्, ज्ञानी ।

३४ सरस्वती स्तोम्या भूत् [ १४६१ ]- विद्यादेवी  
स्तुतिके योग्य है ।

३५ सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भग्नः धीमहि, यः  
नः धियः प्रचोदयात् [ १४६२ ]- सविता देवके उस श्रेष्ठ  
तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा  
देता है ।

३६ हे ब्रह्मणस्पते ! सोमानां कर्क्षीवन्तं स्वरणं  
कृणुहि [ १४६३ ]- हे ज्ञानपते ! ज्ञानसे और योगसे छातीमें  
रहनेवाले प्राणको अच्छी तरहसे आने और जानेवाला कर ।  
प्राणायामका अभ्यास कर ।

३७ नः आयूषि पवसे, नः ऊर्जे इषं च [ १४६४ ]-  
हमें वीर्यायुष्य दे तथा हमें बल और अन्न भी दे ।

३८ वुच्छुनां आरे वाधस्व [ १४६४ ]- बुद्धोंको  
तूर कर ।

३९ ता नः दिव्यस्य पार्थिवस्य महः रायः शक्तं,  
वां देवेषु माहि क्षत्रं [ १४६५ ]- वे तुम हमें छुलोक और  
पृथ्वीपरके महान् ऐश्वर्योंको दो, क्योंकि तुम्हारा देवोंमें महान्  
बल प्रसिद्ध है ।

४० ऋतेन ऋतं सपन्ता इषिरं दक्षं आशाते,  
अद्रुहौ देवौ वर्धते [ १४६६ ]- सत्यसे सत्यका पालन  
करते हुए चाहनेके योग्य बल प्राप्त करते हैं, ये आपसमें ग्राह  
न करनेवाले दोनों देव बढ़ते हैं ।

४१ दानुमत्या इषस्पती वृहन्तं गर्तं आशाते  
[ १४६७ ]- दान देनेवाले अन्नके स्वामी महान् रथमें बैठते हैं ।

४२ ब्रध्नं अरुषं चरध्तं परि तस्थुषः युञ्जति [ १४६८ ]  
- ध्यान करनेवाले उपासक सूर्यके तेजस्वी और चलायमान  
रूपका उपासनाके लिए उपयोग करते हैं ।

४३ रोचना दिवि रोचन्ते [ १४६८ ]- उसकी किरणें  
आकाशमें प्रकाशित होती हैं ।

४४ अस्य रथे काम्या विपक्षसा शोणा धृष्णू  
नृवाहसा हरी युञ्जन्ति [ १४६९ ]- इसके रथमें सुन्दर,  
दोनों तरफ जोड़े जानेवाले, लाल रंगके, शत्रुओंको हरानेवाले  
तथा वीरोंको ढोकर ले जानेवाले दो घोड़े जोड़े जाते हैं ।

४५ अकेतवे केतुं कृण्वन्, अपेशसे पेशः, उषाङ्गिः  
समजायथाः [ १४७० ]- अज्ञानीको ज्ञान देनेवाले, रूप-  
रहितको सुन्दर रूप देनेवाले सूर्यका उषाके आनेके बाद उदय  
होता है ।

४६ सः महः पुरुणि वसूनि सातये अयोजि [ १४७१ ]  
- इस महान् इन्द्रने बहुत सारा धन देनेकी योजना बनाई है ।

४७ विश्वा नहुष्याणि जाता, ऊर्ध्ना वने स्वर्षाता  
नवन्त [ १४७२ ]- सबका विरोध करनेवाले शत्रु उत्पन्न  
हो गये हैं, वे ऊपर सिर करके वनमें होनेवाले युद्धमें नष्ट हों ।

४८ सहस्राप्साः पृतनाषाद् [ १४७३ ]- अनेक रूपोंसे  
शत्रुसेनाको हरानेवाला वह वीर है ।

४९ अमर्त्यः देवः विदथानि प्रचोदयन् मायया  
पुरस्तात् पति [ १४७७ ]- अमर देव सब उत्तम कर्मोंको  
प्रोत्साहन देता हुआ कुशलतासे आगे जाता है ।

५० वाजी वाजेषु धीयते [ १४७८ ]- बलवान् वीर  
युद्धमें जाता है ।

५१ विप्रः यज्ञस्य साधनः [ १४७८ ] ज्ञानी यज्ञको  
सिद्ध करता है ।

५२ ते स्वं ओषयं जानत [ १४८१ ]- वे अपने घर  
जानते हैं ।

५३ वत्सासः मातृभिः [ १४८१ ]- लड़के माताके  
साथ जाते हैं ।

५४ जामिभिः मिथः नसन्त [ १४८१ ]- अपने  
भाईयोंके साथ वे मिलकर रहते हैं ।



५५ तत् ज्येष्ठं इत् भुवनेषु आस [ १४८३ ]- वह श्रेष्ठ ब्रह्म निश्चयसे भुवनोंमें व्याप्त रहता है।

५६ यतः उग्रः त्वेष-नृम्णः जज्ञे [ १४८३ ]- जिससे उग्र तेजस्वी सूर्य प्रगट हुआ है।

५७ जज्ञानः सद्यः शत्रून् निरिणाति [ १४८३ ]- उत्पन्न होते ही वह शत्रुओंको नष्ट करता है।

५८ यं विश्वे ऊमाः अनु मदन्ति [ १४८३ ]- जिसे देखकर सब प्राणी आनंदित होते हैं।

५९ शवसा वावृधानः भूर्योजाः शत्रुः दासाय भियसं दधाति [ १४८४ ]- सामर्थ्यसे बढ़नेवाला तथा अनन्त शक्तियोंसे युक्त ऐसा वह दुष्टोंका शत्रु इश्वर शत्रुके बिलमें भय उत्पन्न करता है।

६० अव्यनत् च व्यनत् च सस्नि [ १४८४ ]- श्वासोच्छ्वास करनेवाले और न करनेवाले दोनोंका हित करता है।

६१ ते मदेषु प्रभृता सं नवन्त [ १४८४ ]- तेरे आनन्दमें बड़े हुए सब लोग तेरी भक्ति करनेके लिए एक जगह इकट्ठे होते हैं।

६२ महान् उरुं ह्ये माहि कर्म कर्तवे ममाद् [ १४८५ ]- महान्, अधिक और सामर्थ्यवान् धीरको महान् कर्म करनेके लिए उत्साहित कर।

६३ क्रतुना साकं जातः [ १४८७ ]- कर्म करनेकी शक्तिके साथ तू उत्पन्न हुआ है।

६४ ओजसा साकं ववक्षिथ [ १४८७ ]- अपने सामर्थ्यसे काम करनेकी तेरी इच्छा है।

६५ हे प्रचेतन ! वीर्यैः साकं वृद्धः [ १४८७ ]- हे उत्साही धीर ! अपने पराक्रमसे तू महान् हुआ है।

६६ मृधः सासहिः [ १४८७ ] शत्रुको हरा।

६७ विचर्वणिः स्तुवते राधः काम्यं वसु दाता [ १४८७ ]- विशेव ज्ञानी तू स्तुति करनेवालेको धन और चाहे हुए ऐश्वर्यको देता है।

६८ त्विषीमान् ओजसा कृषि युधा अभि अभवत् [ १४८८ ]- तेजस्वी तूने अपने सामर्थ्यसे हिंसक शत्रुको युद्धमें जीत लिया है।

६९ रोदसी आ पृणात् [ १४८८ ]- छावापृथिवीको तेजसे भर दिया।

७० अस्य मज्मना प्र वावृधे [ १४८८ ]- इसके सामर्थ्यसे तू बढ़ा।

७१ प्र चेतय [ १४८८ ]- दूसरोंको उत्तम प्रेरणा दे।

## उपमा

१ उरुधारा इव [ १४५२ ]- बहुतसा दूध देनेवाली गायोंके समान ( सः इन्द्रः दोहते ) वह इन्द्र धन देता है।

२ यथा पिता पुत्रेभ्यः, नः शिक्ष [ १४५६ ]- जैसे पिता पुत्रोंको धन देता है, उसीप्रकार हे इन्द्र ! तू हमें धन दे।

३ यथा दिव्या विद् अनभिशास्ता [ १४७३ ]- जिसप्रकार दिव्य प्रजाजन आनन्दसे पवित्र रहते हैं, उसीप्रकार सोम पवित्र रहता है।

४ आपः न [ १४७३ ]- पानीके समान शुद्ध बुद्धि हमें दे।

५ यज्ञः न [ १४७३ ]- यज्ञके समान तू पूज्य है।

६ वत्सासः मातृभिः न [ १४८१ ]- जिसप्रकार बछड़े माताके पास जाते हैं, उसीप्रकार अपने बान्धवोंके साथ वे सोमरस जाते हैं। सोमरस बर्तनमें गिरता है।

## त्रयोदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थान | ऋषिः       | देवता       | छन्दः   |
|-------------|-------------|------------|-------------|---------|
|             |             | ( १ )      |             |         |
| १४३५        | ९।४९।१      | कविर्भागवः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १४३६        | ९।४९।२      | कविर्भागवः | "           | "       |
| १४३७        | ९।४९।३      | कविर्भागवः | "           | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                  | देवता       | छन्दः     |
|-------------|--------------|-----------------------|-------------|-----------|
| १४३८        | ९।४९।४       | कविभर्गवः             | पवमानः सोमः | गायत्री   |
| १४३९        | ९।४९।५       | कविभर्गवः             | "           | "         |
| १४४०        | ६।४२।१       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | इन्द्रः     | अनुष्टुप् |
| १४४१        | ६।४२।२       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "           | "         |
| १४४२        | ६।४२।३       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "           | "         |
| १४४३        | ६।४२।४       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "           | बृहती     |

( २ )

|      |        |                        |             |         |
|------|--------|------------------------|-------------|---------|
| १४४४ | ९।११।४ | असितः काश्यपो देवलो वा | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १४४५ | ९।११।५ | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |
| १४४६ | ९।११।६ | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |
| १४४७ | ९।११।७ | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |
| १४४८ | ९।११।८ | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |
| १४४९ | ९।११।९ | असितः काश्यपो देवलो वा | "           | "       |
| १४५० | ८।९३।१ | सुकक्ष आंगिरसः         | इन्द्रः     | "       |
| १४५१ | ८।९३।२ | सुकक्ष आंगिरसः         | "           | "       |
| १४५२ | ८।९३।३ | सुकक्ष आंगिरसः         | "           | "       |

( ३ )

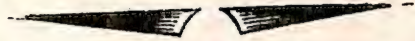
|      |          |                      |         |  |
|------|----------|----------------------|---------|--|
| १४५३ | १०।१७०।१ | विभ्राट् सौर्यः      | सूर्यः  | जगती                                     |
| १४५४ | १०।१७०।२ | विभ्राट् सौर्यः      | "       | "  |
| १४५५ | १०।१७०।३ | विभ्राट् सौर्यः      | "       | "  |
| १४५६ | ७।३२।२६  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | इन्द्रः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती<br>समा सतोबृहती ) |
| १४५७ | ७।३२।२७  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः | "       | "  |
| १४५८ | ८।६१।१७  | भर्गः प्रागाथः       | "       | "  |
| १४५९ | ८।६१।१८  | भर्गः प्रागाथः       | "       | "  |

( ४ )

|      |         |                         |               |         |
|------|---------|-------------------------|---------------|---------|
| १४६० | ७।९६।४  | वसिष्ठो मैत्रावरुणिः    | सरस्वान्      | गायत्री |
| १४६१ | ६।६१।१० | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः   | सरस्वती       | "       |
| १४६२ | ३।३२।१० | विश्वामित्रो गायिनः     | सविता         | "       |
| १४६३ | १।१८।१  | मेधातिथिः काण्वः        | ब्रह्मणस्पतिः | "       |
| १४६४ | ९।६६।१९ | शतं वैखानसः             | अग्निः पवमानः | "       |
| १४६५ | ५।६८।३  | यजत आत्रेयः             | मित्रावरुणौ   | "       |
| १४६६ | ५।६८।४  | यजत आत्रेयः             | "             | "       |
| १४६७ | ५।६८।५  | यजत आत्रेयः             | "             | "       |
| १४६८ | १।६।१   | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः | इन्द्र        | "       |
| १४६९ | १।६।२   | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः | "             | "       |
| १४७० | १।६।३   | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः | "             | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                  | देवता             | छन्दः      |
|-------------|--------------|-----------------------|-------------------|------------|
| ( ५ )       |              |                       |                   |            |
| १४७१        | ९।८८।१       | उशना काव्यः           | पवमानः सोमः       | त्रिष्टुप् |
| १४७२        | ९।८८।२       | उशना काव्यः           | "                 | "          |
| १४७३        | ९।८८।७       | उशना काव्यः           | "                 | "          |
| १४७४        | ६।१६।१       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्निः            | वर्धमाना   |
| १४७५        | ६।१६।२       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "                 | गायत्री    |
| १४७६        | ६।१६।३       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "                 | "          |
| १४७७        | ३।१७।७       | विश्वामित्रो गायनिः   | "                 | "          |
| १४७८        | ३।१७।८       | विश्वामित्रो गायनिः   | "                 | "          |
| १४७९        | ३।१७।९       | विश्वामित्रो गायनिः   | "                 | "          |
| ( ६ )       |              |                       |                   |            |
| १४८०        | ८।७१।१३      | हर्यतः प्रागाथः       | अग्निः, हवींषि वा | "          |
| १४८१        | ८।७१।१४      | हर्यतः प्रागाथः       | "                 | "          |
| १४८२        | ८।७१।१५      | हर्यतः प्रागाथः       | "                 | "          |
| १४८३        | १०।१२०।१     | बृहद्दिव आथर्वणः      | इन्द्रः           | त्रिष्टुप् |
| १४८४        | १०।१२०।२     | बृहद्दिव आथर्वणः      | "                 | "          |
| १४८५        | १०।१२०।३     | बृहद्दिव आथर्वणः      | "                 | "          |
| १४८६        | १।२१।१       | गृत्समदः शौनकः        | "                 | अष्टिः     |
| १४८७        | १।२१।२       | गृत्समदः शौनकः        | "                 | अतिशक्वरी  |
| १४८८        | १।२१।३       | गृत्समदः शौनकः        | "                 | "          |





## अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।



अथ सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७-१ ॥

[ १ ]

( १-१६ ) १, ९ प्रियमेघ आंगिरसः; २ नुमेध-पुनमेधावांगिरसो; ३, ७ अग्रहणस्त्रैवृष्णः, अस्रवस्युः पौरुकुत्सः; ४ शुनःशेष  
आजीर्गतिः; ५ वत्सः काण्वः; ६ अग्निस्तापसः; ८ विश्वमना वयश्च; १० वसिष्ठो मंत्रावरुणिः; ११ सौभरिः  
काण्वः; १२ शतं खैलानसः; १३ वसूयव आत्रेयः; १४ गोतमो राहूगणः; १५ केतुराग्नेयः; १६ विरूप आंगिरसः ॥  
१-२, ५, ८-९ इन्द्रः; ३, ७ पवमानः सोमः; ४, १०-११, १३-१६ अग्निः; ६ विश्वे देवाः, १२ अग्निः  
पवमानः ॥ १, ४-५, १२-१६ गायत्री; २, १० प्रगाथः=( त्रिषमा बृहती, समा सतो बृहती ); ३, ७ ऊर्ध्वा  
बृहती; ६ अनुष्टुप्, ८-९ उष्णिक्; ११ बृहती ॥

१४८९ अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्चं यथा विदे । स्रुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६९।४ )

१४९० आ हरयः ससृजिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि सन्नवामहे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६९।५ )

१४९१ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपहरे विदत् ॥ ३ ॥ १ ( हा ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६९।६ )

१४९२ आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।  
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९०।१ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १४८९ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( सत्यस्य स्रुं ) सत्य यज्ञके पालक ( सत्पतिं गोपतिं ) सृजनोंके रक्षक और गायोंके पालक इस ( इन्द्रं ) इन्द्रकी ( विदे यथा गिरा ) जिसप्रकार तुम जानते हो, उसीप्रकार स्तुतिसे ( अभि प्र अर्चं ) उत्तम स्तुति करो ॥ १ ॥

[ १४९० ] ( हरयः ) इन्द्रके घोड़े ( अरुषीः ) चमकनेवाले ( अधि बर्हिषि ) आसन पर उसे ( आ ससृजिरे ) लावें । ( यत्राभि सन्नवामहे ) जिस स्थानपर बैठे हुए इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९१ ] ( यत् ) जब इन्द्र ( उपहरे ) पास ही ( मधु सीं विदत् ) मीठा रस पीता है तब ( गावः ) गायें ( वज्रिणे इन्द्राय ) वज्रधारी इन्द्रके लिए ( मधु आशिरं दुदुहे ) मीठा दूध देती हैं ॥ ३ ॥

[ १४९२ ] हे ऋत्विजो ! ( विश्वासु समत्सु ) सब युद्धोंमें ( हव्यं इन्द्रं ) सहायताके लिए बुलाये जाने योग्य इन्द्रको लक्ष्य करके गायें गए ( नः ब्रह्माणि सवनानि उप आभूषत ) हमारे स्तोत्र तथा यज्ञ उसकी शोभा बढ़ाते हैं । ( वृत्रहन् परमज्याः ऋचीषम ) हे वृत्रको मारनेवाले, उत्तम डोरीसे युक्त धनुषवाले तथा प्रशंसनीय इन्द्र ! हमें इच्छित धन दे ॥ १ ॥



१४९३ त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः

॥ २ ॥ २ ( या ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९०।२ )

१४९४ प्रत्नं पीयूषं पूव्यं यदुक्थ्यं महो गाहादिव आ निरधुक्षत ।

इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन्

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११०।८ )

१४९५ आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।

दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११०।६ )

१४९६ अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना !

यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि

॥ ३ ॥ ३ ( खू ) ॥

[ धा० १६ । उ० २ । स्व० ६ ] ( ऋ. ९।११०।९ )

१४९७ इमम् पु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ १ ॥

( ऋ. १।२७।४ )

१४९८ विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२७।६ )

[ १४९३ ] हे इन्द्र ! ( प्रथमः त्वं राधसां दाता असि ) सर्वमे प्रथमं तू धनका दाता है, ( ईशानकृत् सत्यः असि ) ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला तू सत्य है, ( तुविद्युम्नस्य शवसः पुत्रस्य महः ) बहुत तेजस्वी बलके पुत्रके समान तुमसे ( युज्या वृणीमहे ) धनकी प्रार्थना हम करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९४ ] ( यत् प्रत्नं ) जो पहलेसे मिलता आ रहा है, वह ( पीयूषं उक्थ्यं ) अमृत प्रशंसनीय है, वह ( पूव्यं ) पहलेसे मिलनेवाला अमृत ( महः गाहात् दिवः ) महान् और अगाध छुलोकसे ( आ निरधुक्षत ) निकाला गया है । उसके बाद ( इन्द्रं अभि ) इन्द्रके आगे ( जायमानं ) उत्पन्न हुए हुए सोमकी ( समस्वरन् ) यज्ञकर्ता स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १४९५ ] ( आत् ) बादमें ( पश्यमानासः दिव्याः वसुरुचः ) इसको देखनेवाले दिव्य वसुरुच, जबतक ( दिवः सविता ) छुलोकसे सूर्य ( वारं न व्यूर्णुते ) सबको ढकनेवाले अन्धकारको दूर नहीं करता, तबतक ( आप्यं ई अभ्यनूषत ) भाईके समान इस सोमकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १४९६ ] हे ( पवमान ) सोम ! ( अध ) बादमें ( यत् इमे रोदसी ) जब इस धु और पृथिवी ( इमा विश्वा भुवना च ) और इन सभी प्राणियोंमें ( मज्मना यूथे निष्ठा वृषभः न ) अपने बलसे गायोंके झुण्डके बीचमें रहनेवाले बैलके समान ( विराजसि ) तू विराजमान होता है ॥ ३ ॥

[ १४९७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं अस्माकं ) तू हमारे द्वारा ( इमं ऊ सु ) बोले जानेवाले इन ( सनिं ) हवन युक्त ( नव्यांसं गायत्रं ) नवीन स्तुतिके मंत्रोंको ( देवेषु प्रवोचः ) देवोंके पास जाकर उन्हें बता ॥ १ ॥

[ १४९८ ] हे ( चित्रभानो ) विलक्षण तेजस्वी अग्ने ! तू ( विभक्ता असि ) धन देनेवाला है । ( सिन्धोः उपाके ऊर्मा आ ) जिसप्रकार नदीके पास पानीकी लहरें आती हैं उसीप्रकार ( दाशुषे सद्यः क्षरसि ) दाताको उसी समय कर्मोंका फल तू देता है ॥ २ ॥



१४९९ आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥ ४ (टा) ॥  
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १२७५ )

१५०० अहमिद्वि पितुष्वपरि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८६१० )

१५०१ अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुम्भमिदधे ॥ २ ॥ ( ऋ. ८६११ )

१५०२ ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ ५ (थु) ॥  
[ धा० १४ । उ० २ । स्व० ५ ] ( ऋ. ८६१२ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१५०३ अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत । ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥ १ ॥

१५०४ प्र स विश्वेभिरग्निभिर्गिरः स यस्य वाजिनः ।

तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः

॥ २ ॥

१५०५ त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।

त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय

॥ ३ ॥ ६ (डि) ॥

[ धा० १८ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०१४१६ )

[ १४९९ ] हे अग्ने ! ( नः ) हमें ( परमेषु वाजेषु ) श्रेष्ठ भोगोंमें ( आ भज ) पहुंचा, तथा ( मध्यमेषु आ ) मध्यम भोगोंमें हमें पहुंचा और ( अन्तमस्य वस्वः शिक्षा ) कनिष्ठ धन भी हमें दे ॥ ३ ॥

[ १५०० ] ( पितुः ऋतस्य मेधां ) पालक तथा अमर इन्द्रकी अनुकूल बुद्धिकी ( अहं इत् परि जग्रह ) मैंने प्राप्त किया है, इस कारण ( अहं सूर्यः इव अजनि ) मैं सूर्यके समान हो गया हूँ ॥ १ ॥

[ १५०१ ] ( कण्ववत् अहं ) कण्वके समान ( प्रत्नेन जन्मना ) प्राचीन वाणीसे ( गिरः शुम्भामि ) स्तोत्र कहकर मैं इन्द्रको सुशोभित करता हूँ, ( येन इन्द्रः शुम्भं दधे इत् ) जिसकी सहायतासे इन्द्र बलको धारण करता है ॥ २ ॥

[ १५०२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( ये त्वां न तुष्टुवुः ) जिन्होंने तेरी स्तुति नहीं की, तथा ( ये ऋषयः च तुष्टुवुः ) जिन ऋषियोंने स्तुति की, उनमेंसे ( मम इत् ) मेरे स्तोत्रोंसे ही ( सुष्टुतः वर्धस्व ) उत्तमतासे प्रशंसित होनेके कारण संबोधित हो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५०३ ] हे ( सहस्कृत अग्ने ) बल प्रकट करनेवाले अग्ने ! ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब अग्नियोंके साथ-साथ तू भी ( ब्रह्म जोषि ) हमारे स्तोत्र सुन । ( ये देवत्रा ) जो अग्नियों देवोंमें हैं, और ( ये आयुषु ) जो मनष्योंमें हैं, ( तेभिः नः गिरः महया ) उनके द्वारा हमारी स्तुतियोंके सहत्वको बढ़ा ॥ १ ॥

[ १५०४ ] ( यस्य वाजिनः ) जिस बलवान् अग्निमें हवन करनेवाले बहुत हैं, ( सः अग्निः ) वह अग्नि ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब दूसरी अग्नियोंके साथ ( वाजैः परीवृतः ) हविष्याससे घिरा हुआ ( सम्यक् अस्मत् प्र आ ) उत्तम रीतिसे हमारे पास आवे, तथा ( सः तनये तोके ) वह हमारे पुत्र, पौत्रोंकी तरफ भी जावे ॥ २ ॥

[ १५०५ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं अग्निभिः ) तू अन्य अग्नियोंके साथ ( नः ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ) हमारे स्तोत्र और यज्ञ बढ़ा । ( त्वं नः ) तू हमें ( रायः दानाय ) धन देनेके लिए ( देवतातये ) देवोंकी ( चोदय ) प्रेरित कर ॥ ३ ॥



१५०६ त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।

स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११०।७ )

१५०७ अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।

शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११०।९ )

१५०८ अजीजनो अमृत मर्त्याय कर्मृतस्य धर्मन्मृतस्य चारुणः ।

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत्

॥ ३ ॥ ७ ( ले ) ॥

[ धा० १०। उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. ९।११०।४ )

१५०९ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिब्याति सोम्यं मधु । प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥ १ ॥

( ऋ. ८।२४।१३ )

१५१० उपो हरीणां पतिं राधः पृश्नन्तमब्रवम् । नूनंश्रुधि स्तुवतो अश्वस्य ॥ २ ॥

( ऋ. ८।२४।१४ )

१५११ न ह्यंशग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् । न की राया नैवथा न भन्दना ॥ ३ ॥ ८ ( चा ) ॥

[ धा० १७। उ० १। स्व० २ ] ( ऋ. ८।२४।१५ )

[ १५०६ ] ( सोम ) हे सोम ! ( प्रथमाः वृक्त-बर्हिषः ) सबोसे प्रथम आसन फैलानेवाले यजमान ( महे वाजाय श्रवसे ) विशेष बल और अन्नके लिए ( त्वे धियं दधुः ) तेरे विषयमें उत्तम विचार रखते हैं । ( सः त्वं ) वह तू, ( वीर ) हे वीर सोम ! ( नः वीर्याय चोदय ) हमें वीर होनेके लिए प्रेरित कर ॥ १ ॥

[ १५०७ ] हे सोम ! ( श्रवसा ) अन्नसे युक्त होकर ( अभि-अभि ततर्दिथ ) तू छलनीसे नीचे गिरता है, ( न ) जिसप्रकार ( जनपानं ) मनुष्योंके पीनेके लिए ( गभस्त्योः शर्याभिः ) हाथोंकी अंगुलियोंसे ( कं चित् अ-क्षितं उत्सं ) किसी न चूनेवाले हौजको ( भरमाणः ) पानीसे भरते हैं, उसीप्रकार तू कलशमें भरता है ॥ २ ॥

[ १५०८ ] हे ( अमृत ) अमृतरूपी सोम ! तूने ( ऋतस्य चारुणः अमृतस्य ) सत्य और मंगलकारक पानीको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें ( कं मर्त्याय अजीजनः ) सूर्यको मनुष्यके लिए उत्पन्न किया, ( सनिष्यदत् ) वैद्योंकी सेवा की । ( वाजं अच्छा ) तू युद्धके लिए सीधे ही ( सदा असरः ) हमेशा जाता है ॥ ३ ॥

[ १५०९ ] ( इन्दुं ) सोमरस ( इन्द्राय आ सिञ्चत ) इन्द्रको दो । वह इन्द्र ( सोम्यं मधु पिब्याति ) सोमका मोठा रस पीता है और ( महित्वना राधांसि प्रचोदयते ) अपने महत्वसे धनोंको प्रेरित करता है ॥ १ ॥

[ १५१० ] ( हरीणां पतिं ) घोड़ोंके स्वामी और ( राधः पृश्नन्तं ) भक्तोंको धन देनेवाले इन्द्रकी ( उपो अब्रवम् ) मैं स्तुति करता हूँ । ( अश्वस्य स्तुवतः नूनं श्रुधि ) अश्व ऋषि स्तुति करता है, उस स्तुतिको हे इन्द्र ! तू अवश्य सुन ॥ २ ॥

[ १५११ ] हे इन्द्र ! ( त्वत् पुरा न जज्ञे ) तुझसे पहले तेरे समान कोई भी नहीं हुआ, हे ( अंग ) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! ( वीरतरः न हि ) तुझसे बढकर वीर भी कोई दूसरा नहीं हुआ, ( राया नकि ) धन देनेवाला भी कोई दूसरा नहीं हुआ ( एवथा न ) युद्धमें शत्रुको कुचलनेवाला भी दूसरा कोई नहीं हुआ तथा ( भन्दना न ) स्तुतिके लायक भी दूसरा कोई नहीं हुआ ॥ ३ ॥



१५१२ नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।

पतिं वा अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि

॥ १ ॥ ९ ( व ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।६९।२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१५१३ देवो वा द्रविणोदाः पूर्णा विवष्टासिचम् ।

उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पूणध्वमादिद्वो देव ओहते

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।६।११ )

१५१४ तः होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।

दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे

॥ २ ॥ १० ( लि ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ७।६।१२ )

१५१५ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्वतान्यादधुः ।

उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०३।१ )

१५१६ यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चकृत्यानि कृण्वतः ।

सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०३।३ )

[ १५१२ ] हे यजमानो ! ( वः ) तुम्हारे लिए ( ओदतीनां नदं ) उषाओंको उत्पन्न करनेवाले आदित्यरूपी इन्द्रको हम बुलाते हैं । ( योयुवतीनां नदं ) चन्द्र किरणोंको उत्पन्न करनेवाले इन्द्रको तुम्हारे हितके लिए बुलाते हैं, ( अघ्न्यानां पतिं वः ) गायोंके पालन करनेवाले इन्द्रको हम तुम्हारे लिए बुलाते हैं, ( धेनूनां इषुध्यसि ) हे यजमान ! तू गायके दूधका अन्नके रूपमें उपयोग करनेको इच्छा करता है ॥ १ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५१३ ] ( द्रविणोदाः देवः ) धन देनेवाला अग्निदेव ( वः पूर्णा आसिचं विविष्टु ) तुम्हारी घीसे भरी हुई चम्मचोंकी इच्छा करे । और तुम ( उत् सिञ्चध्वं वा ) सोमके बर्तन भरो, ( पूणध्वं वा ) बर्तनोंकी हविसे पूरी तरह भरो, ( आत् इत् देवः वः ओहते ) वावमें अग्नि देव तुम्हारा पोषण करेंगे ॥ १ ॥

[ १५१४ ] ( देवाः ) देवोंने ( प्रचेतसं ) श्रेष्ठ बुद्धिमान् ( अध्वरस्य वह्निं होतारं तं ) अहिंसापूर्ण यज्ञके कर्ता, हविको होनेवाले और हवन करनेवाले उस अग्निको ( अकृण्वत ) अपना सहायक बनाया है, वह ( अग्निः ) अग्नि ( विधते दाशुषे जनाय ) यज्ञ करनेवाले तथा दान देनेवाले मनुष्यको ( सु-वीर्यं रत्नं दधाति ) उत्तम वीरता बढ़ानेवाले धन देता है ॥ २ ॥

[ १५१५ ] ( यस्मिन् वतानि आदधुः ) जहां जिस अग्निमें यजमान यज्ञकर्म करते हैं, वहां ( गातुवित्तमः अदर्शि ) मार्गदर्शकोंमें सर्व श्रेष्ठ यह अग्नि उत्पन्न होता है । ( सुजातं आर्यस्य वर्धनं ) उत्तम रीतिसे प्रदीप्त हुए हुए और आर्योंको बढ़ानेवाले ( अग्निः ) अग्निको ( नः गिरः उपो नक्षन्तु ) हमारी स्तुतियां प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५१६ ] ( यस्मात् चकृत्यानि कृण्वतः ) जिस समय कर्तव्य करनेवाले मनुष्योंको ( कृष्टयः रेजन्ते ) शत्रुके मनुष्य कंपानेका प्रयत्न करते हैं, उस समय हे मनुष्यो ! ( सहस्रसां अग्निं ) हजारों प्रकारके धन देनेवाले अग्निको ( मेधसातां ) यज्ञमें ( धीभिः त्मना नमस्यत ) बुद्धिपूर्वक स्तुति प्रणाम करो ॥ २ ॥



१५१७ प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्जना ।

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि

॥ ३ ॥ ११ ( हा ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१०३।२ )

१५१८ अग्न आयुषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥

( ऋ. ९।६६।१९ )

१५१९ अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६६।२० )

१५२० अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयि मयि पोषम् ॥ ३ ॥ १२ ( फ ) ॥

[ धा० १० । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६६।२१ )

१५२१ अग्ने पावक राचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२६।१ )

१५२२ तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।२६।२ )

१५२३ वीतिहोत्रं त्वा कवे धुमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥ १३ ( टौ ) ॥

[ धा० १८ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।२६।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ १५१७ ] ( दैवोदासः अग्निः देवः ) बलपूर्वक रहनेवाला अग्निदेव ( इन्द्रः न ) इन्द्रके समान ( मज्जना ) बलपूर्वक ( मातरं पृथिवीं अनु ) मातृभूमि पर ( प्र वि वावृते ) अनेक प्रकारके कार्य करता है, और ( नाकस्य शर्मणि तस्थौ ) अन्तरिक्षके आश्रयसे रहता है ॥ ३ ॥

[ १५१८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः आयुषि पवसे ) हमें लम्बी आयु प्रदान कर । ( नः ऊर्जे इषं च आ सुव ) हमें बल और अन्न दे । ( दुच्छुनां ) दुष्टोंको ( आरे बाधस्व ) दूर करके उन्हें पीड़ित कर ॥ १ ॥

[ १५१९ ] ( पाञ्चजन्यः ऋषिः ) पञ्चजनोंका हित करनेवाला और सब देखनेवाला ( पवमानः अग्निः ) शुद्ध अग्नि ( पुरोहितः ) आगे स्थापित किया गया है । ( तं महागयं ईमहे ) उस महान् यज्ञशालामें रहनेवाले अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५२० ] हे अग्ने ! तू ( स्वपाः ) उत्तम कर्म करनेवाला है, ( अस्मे वर्चः सुवीर्यं पवस्व ) हमें तेज तथा पराक्रम करनेकी शक्ति दे और ( मयि रयि पोषं दधत् ) मुझे धन और पोषण दे ॥ ३ ॥

[ १५२१ ] ( पावक अग्ने देव ) हे पवित्र करनेवाले अग्निदेव ! ( शोचिषा मन्द्रया जिह्वया ) अपने तेजसे और आनन्द देनेवाली ज्वालासे ( देवान् आ वक्षि यक्षि च ) देवोंको बुला और उनके लिए यज्ञ कर ॥ १ ॥

[ १५२२ ] हे ( घृत-स्नो चित्र-भानो ) घीसे उत्पन्न होनेवाले तथा विलक्षण तेजस्वी अग्ने ! ( स्वर्दशं तं त्वा ईमहे ) सबको देखनेवाले तेरी हम प्रार्थना करते हैं । वह प्रार्थना यह है कि ( वीतये देवान् आ वह ) हवि भक्षण करनेके लिए देवोंको यहां बुलाकर ला ॥ २ ॥

[ १५२३ ] हे ( कवे अग्ने ) जानी अग्ने ! ( वीति-होत्रं धुमन्तं ) हवन पर प्रेम करनेवाले, तेजस्वी तथा ( बृहन्तं त्वा ) महान् तुझे ( अध्वरे समिधीमहि ) यज्ञमें हम प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ४ ]

१५२४ अवा नो अग्रे ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७९।७ )

१५२५ आ नो अग्रे रयि भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृतसु दुष्टरम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७९।८ )

१५२६ आ नो अग्रे सुचेतुना रयि विश्वायुपोषसम् । मर्डीकं धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ १४ ( वौ ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १।७९।९ )

१५२७ अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुभिवाजिषु । तेन जेषम धनंधनम् ॥ १ ॥

( ऋ. १०।१५६।१ )

१५२८ यया गा आकरामहै सेनयासे तवोत्था । तां नो हिन्व मघत्तये ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१५६।२ )

१५२९ आग्ने स्थूरं रयि भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्घ्रि खं वर्तया पविम् ॥ ३ ॥

( ऋ. १०।१५६।३ )

१५३० अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१५६।४ )

१५३१ अग्ने केतुर्विधामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥ ५ ॥ १५ ( था ) ॥

[ धा० १५ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. १०।१५६।५ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १५२४ ] हे ( विश्वासु धीषु वन्द्य अग्रे ) सब यज्ञोंमें वन्दनीय अग्ने ! ( गायत्रस्य प्रभर्मणि ) गायत्री छन्द-वाले सामगानोंके शुरू होनेपर ( ऊतिभिः नः अव ) संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

[ १५२५ ] हे ( अग्रे ) अग्ने ! ( सत्रा-साहं ) सब शत्रुओंको हरानेवाले ( वरेण्यं ) श्रेष्ठ ( विश्वासु पृतसु दुष्टरं ) सब युद्धोंमें दुस्तर ( रयि नः आभर ) धन हमें दे ॥ २ ॥

[ १५२६ ] हे ( अग्रे ) अग्ने ! ( नः जीवसे ) हमारे बीचजीवनके लिए ( सु-चेतुना ) उत्तम ज्ञानसे युक्त ( विश्व-आयु-पोषसं ) सब आयु तक पोषण करनेवाले ( मर्डीकं रयिं ) सुखदायक धन ( नः धेहि ) हमें दे ॥ ३ ॥

[ १५२७ ] ( आजिषु आशुं सप्तिं इव ) जिसप्रकार युद्धमें शीघ्र चलनेवाले घोड़ेको प्रेरित करते हैं, उसीप्रकार ( नः धियः ) हमारी बुद्धियां ( अग्निं हिन्वन्तु ) अग्निको प्रेरित करें । ( तेन धनं धनं जेषम ) उसमें हम प्रत्येक युद्ध जीतें ॥ १ ॥

[ १५२८ ] हे ( अग्रे ) अग्ने ! ( यया सेनया ) जिस सेनासे तथा ( तव ऊत्या ) जिस तेरे संरक्षणसे ( गाः आकरामहै ) गायें हमें मिलें ( तां ) उस संरक्षणकी शक्तिको ( नः मघत्तये हिन्व ) हमारे धनकी प्राप्तिके लिए प्रेरित कर ॥ २ ॥

[ १५२९ ] हे ( अग्रे ) अग्ने ! ( स्थूरं पृथुं ) बहुत महान् तथा ( गोमन्तं अश्विनं रयिं ) गाय और घोड़ेसे युक्त धन ( आ भर ) हमें भरपूर दे । ( खं अङ्घ्रि ) आकाशमें अपने तेज फैला और ( पविं वर्तय ) शत्रुके शस्त्र हमसे दूर कर ॥ ३ ॥

[ १५३० ] हे ( अग्रे ) अग्ने ! ( जनेभ्यः ज्योतिः दधत् ) लोगोंके लिए प्रकाश करते हुए ( अजरं नक्षत्रं सूर्यं दिवि ) जरारहित और निरन्तर गतिमान् सूर्यको शूलोकमें ( आरोहयः ) तू चढा ॥ ४ ॥

[ १५३१ ] हे ( अग्रे ) अग्ने ! ( विशां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः ) तू प्रजाओंको ज्ञान देनेवाला, प्रिय और श्रेष्ठ ( असि ) है, ( उप-स्थ सत् ) यज्ञशालामें रहनेवाला तू ( स्तोत्रे वयः दधत् ) स्तुति करनेवालेको अन्न देते हुए ( बोधा ) उसकी स्तुति जान ॥ ५ ॥



<sup>३२ ३२ ३२ ३१ २२ ३ २ ३२ ३१ २२</sup>  
१५३२ अभिर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १ ॥

( ऋ. ८।४४।१६ )

<sup>१ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २</sup>  
१५३३ ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४४।१८ )

<sup>१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup>  
१५३४ उदग्ने शुचयस्तव शुका भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींश्चर्चयः ॥ ३ ॥ १६ ( ली ) ॥  
[ धा० ४ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४४।१७ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७-१ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

[ १५३२ ] ( मूर्धा ) सबमें श्रेष्ठ ( दिवः ककुत् ) छलोकमें ऊंचे स्थान पर रहनेवाला ( पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः ) पृथ्वीका पालक यह अग्नि ( अपां रेतांसि जिन्वति ) जलोंका सार तत्त्व अपनेमें रखता है ॥ १ ॥

[ १५३३ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( स्वः पतिः ) स्वर्गका स्वामी तू ( वार्यस्य दात्रस्य ईशिषे ) स्वीकार करने योग्य और दान देने योग्य धनका स्वामी है । ( तव शर्मणि ) तेरे द्वारा दिए गए सुखमें रहकर ( स्तोता स्याम् ) मैं तेरी स्तुति करनेवाला होऊँ ॥ २ ॥

[ १५३४ ] हे अग्ने ! तेरी ( शुचयः शुकाः ) शुद्ध, स्वच्छ और ( भ्राजन्तः अर्चयः ) बेबीप्यमान ज्वालायें ( तव ज्योतींषि ) तेरे तेजोंको ( उदीरते ) प्रेरणा देती हैं ॥ २ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥

## चतुर्दश अध्याय

इस चौदहवें अध्यायमें इन्द्र, अग्नि और सोम देवताओंका वर्णन है । उनमें इन्द्र देवताका वर्णन इस प्रकार है—

इन्द्र

१ सत्यस्य सनुं सत्पतिं गोपतिं इन्द्रं, यथा विदे, गिरा अभि प्र अर्च [ १४८९ ]— सत्यके प्रचारक, सत्यके पालक और गायोंके पालक इन्द्रकी अपने ज्ञानके अनुसार स्तुति करो ।

२ विश्वास्तु समस्तु हव्यं नः ब्रह्माणि सवनानि उप आभूषत [ १४९२ ]— सब युद्धोंमें सहायताके लिए बुलाने योग्य इन्द्रकी हमारे स्तोत्र शोभा बढ़ाते हैं । इन्द्र ऐसा

शूरवीर है कि उसे सब प्रकारके युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए लोग बुलाते हैं ।

३ वृत्रहन् परमज्याः ऋषीषम [ १४९२ ]— हे शत्रुको मारनेवाले और धनूष्यकी उत्तम डोरीवाले इन्द्र ! हमें इच्छित धन दे ।

४ त्वत्पुरा न जज्ञे । वीरतरः न किं । राया न किं । एवथा न । भन्दना न [ १५११ ]— तुझसे पहले तेरे समान कोई नहीं हुआ । तेरी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ वीर कोई भी उत्पन्न नहीं हुआ । धनसे भी तुझसे अधिक सामर्थ्यवान् कोई नहीं है । युद्धमें शत्रुओंको कुचलनेवाला भी तेरे समान दूसरा कोई नहीं है । इसलिए तेरे समान प्रशंसनीय भी कोई नहीं है ।



५ अघ्न्यानां पतिं वः [ १५१२ ]- अवध्य गायोंके पालन करनेवालेको तुम्हारे लिए मैं बुलाता हूँ।

६ त्वं प्रथमः राधसां दाता असि, ईशानकृत् सत्यः असि, तुविद्युमनस्य शवसः पुत्रस्य महः युज्या वृणी-महे [ १४९३ ]- तू सबोंसे प्रथम धन देनेवाला है। तू हमें निश्चयसे ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला है। बहुत तेजस्वी बलके लिए प्रसिद्ध तूझसे हम धन पानेकी इच्छा करते हैं।

७ पितुः सत्यस्य मेधां अहं परि जग्रह, अहं सूर्यः इव भजनि [ १५०० ]- सत्यके पालक, सबके पिता और पूज्य इन्द्रकी बुद्धिको मैंने अपने अनुकूल बना लिया है। इस कारण मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ।

८ हे इन्द्र ! ये त्वां न तुष्टुवुः, ये च तुष्टुवुः, मम इत् सुष्टुतः वर्धस्व [ १५०२ ]- हे इन्द्र जो तेरी स्तुति नहीं करते और जो तेरी स्तुति करते हैं, उनमें मेरी ही स्तुतिसे तू अच्छी तरह बढ़।

९ हरीणां पतिं, राधः पृश्नतं, उप अन्नवं, अद्वयस्य स्तुवतः नूनं श्रुधि [ १५१० ]- घोड़ोंके स्वामी और धन देनेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ। अश्वत्थवृक्षकी इस स्तुतिको तू सुन।

१० हरयः अरुषीः अधि वर्हिषि आ ससृजिरे [ १४९० ]- इन्द्रके घोड़े चमकनेवाले आसन पर उसे लावें। इन्द्र यज्ञशालामें आकर बैठे।

११ गावः वज्रिणे इन्द्राय मधु आशिरं दुदुहे, उपह्वरे सीं मधु विदत् [ १४९१ ]- गायें वज्रधारी इन्द्रके लिए मोठा दूध देती हैं। वह इन्द्र पास ही बैठकर मधुर सोमरस पीता है। सोमरसमें गायका दूध मिलाकर इन्द्र पीता है।

१२ इन्द्राय इन्दुं आसिचत। सोम्यं मधु पिबाति। महित्वना राधांसि प्रचोदयते [ १५०९ ]- इन्द्रको सोमरस दो। इन्द्र मोठा सोमरस पीता है, और अपने महत्वसे वह धन देता है।

इस प्रकार इन्द्रका वर्णन इस अध्यायमें आया है। इसमें इन्द्रकी शूरता, वीरता, उदारता, धनके दान करनेकी प्रवृत्ति और सोमरस पीनेकी प्रवृत्ति दिखाई गई है। इन्द्रके घोड़ोंका भी यहां वर्णन है।

### अग्नि

१ त्वं अस्माकं नव्यांसं गायत्रं देवेषु प्रवोचः [ १४९७ ]- हे अग्ने ! तू हमारे अपूर्व गायत्री मंत्रके स्तोत्र देवोंके पास जाकर कह।

२ हे चित्रभानो ! विभक्ता असि, दाशुषे सद्यः क्षरसि [ १४९८ ]- हे विलक्षण प्रकाशमान अग्ने ! तू धन देनेवाला है। दाताको उसके कर्मका फल तत्काल तू देता है।

३ नः परमेषु वाजेषु, मध्यमेषु आ भज। अन्तमस्य वस्वः शिक्ष [ १४९९ ]- हमें श्रेष्ठ भोगोंमें और मध्यम भोगोंमें स्थापित कर। तथा निकृष्ट धन भी दे।

४ सहस्कृत अग्ने। ब्रह्म जुषस्व, ये देवत्रा, ये आयुषु, तेभिः नः गिरः महय [ १५०३ ]- हे बल प्रकट करनेवाले अग्ने ! ये स्तोत्र सुन, जो देवोंमें और जो मनुष्योंमें देव हैं, उनकी सहायतासे हमारी स्तुतिके महत्वको बढ़ा।

५ अग्ने ! त्वं अग्निभिः नः ब्रह्म यज्ञं च वर्धय। त्वं नः रायः दानाय देवतातये चोदय [ १५०५ ]- हे अग्ने ! तू अन्य अग्नियोंकी सहायतासे हमारा ज्ञान और यज्ञकर्म बढ़ा। तू हमें धन देनेके लिए देवोंको प्रेरित कर। यज्ञमें अनेक अग्नियां रहती हैं, वे यज्ञका अनुष्ठान बढ़ाती हैं।

६ देवाः प्रचेतसं तं अध्वरस्य वर्हिहोतारं अकृण्वत। विधते दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति [ १५१४ ]- देवोंने ज्ञानी, हिसारहित यज्ञके कर्ता और हविको पहुंचानेवाले अग्निको उत्पन्न किया। यज्ञ करनेवाले दाता मनुष्यको उत्तम वीरता बढ़ानेवाले धन वह देता है।

७ यस्मिन् व्रतानि आदधुः गातुवित्तमः अदर्शि, सुजातं आर्यस्य वर्धनं अग्निं नः गिरः उपो नक्षन्तु [ १५१५ ]- जिस अग्निमें यजमान व्रत करते हैं, वहां सन्मार्ग दिखानेवाला अग्नि प्रकट होता है। उत्तम रीतिसे प्रकट हुए हुए और आर्योंका संवर्धन करनेवाले अग्निको हमारी स्तुति प्राप्त हो।

८ यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वनः कृष्टयः रेजन्ते सहस्रसां मेधसातौ धीभिः त्मना नमस्यत [ १५१६ ]- जिस समय कर्तव्य करनेवाले मनुष्योंको शत्रुके मनुष्य कंपानेका प्रयत्न करते हैं, उस समय हे मनुष्यो ! हजारों प्रकारके धन देनेवाले अग्निको यज्ञमें बुद्धिपूर्वक स्वयं प्रणाम करो। वह तुम्हारा भय दूर करेगा।

९ दैवोदासो अग्निः, इन्द्रः नः मज्मना मातरं पृथिवीं अनु प्र विवावृते [ १५१७ ]- द्युलोकमें रहनेवाला अग्नि इन्द्रके समान बलपूर्वक मातृभूमि पर अनेक प्रकारकी प्रवृत्ति करता है। अग्निकी सहायतासे अनेक यज्ञ किए जाते हैं।

१० हे अग्ने ! नः आयूषि, नः ऊर्जे इषं च पवसे। दुच्छुनां आरे बाधस्व [ १५१८ ]- हे अग्ने ! हमें आयुष्य बल और अन्न दे। दुष्टोंको दूर कर।



११ पांचजन्यः ऋषिः पवमानः अग्निः पुरोहितः । तं महागयं ईमहे [ १५१९ ]- पंचजन्योंका हित करनेवाला ज्ञानी शुद्ध अग्नि आगे स्थापित किया गया है । उस महान् यज्ञशालामें रहनेवाली अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं ।

१२ अग्ने ! स्वपा अस्मे वर्चः पवस्व, मायि रार्यि पोषं दधत् [ १५२० ]- हे अग्ने ! तू उत्तम कर्म करनेवाला है, हमें तेज दे, तथा धन और पोषण दे ।

१३ हे पावक अग्ने देव ! शोचिषा मन्द्रया जिह्वया देवान् आवक्षि यक्षि च [ १५२१ ]- हे पवित्र करनेवाले अग्निदेव ! अपने तेजसे और आनन्द देनेवाली ज्वालासे देवोंको बुला और उनके लिए यज्ञ कर ।

१४ हे घृतसनो चित्रभानो ! स्वर्दृशं त्वा ईमहे । वीतये देवान् आ वह [ १५२२ ]- हे घीसे उत्पन्न हुए हुए और विलक्षण तेजस्वी अग्ने ! सबोंको देखनेवाले तुझसे हम प्रार्थना करते हैं । वह प्रार्थना यह है कि हवि भक्षण करनेके लिए देवोंको यहां बुलाकर ला ।

१५ हे कवे अग्ने ! वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तं त्वा अध्वरे समिधीमहि [ १५२३ ]- हे ज्ञानी अग्ने ! हवन पर प्रेम करनेवाले तेजस्वी और महान् तुझे यज्ञमें हम जलाते हैं ।

१६ हे अग्ने ! रुत्रासाहं वरेण्यं विश्वासु पृच्छु दुष्टं रार्यि नः आभर [ १५२४ ]- हे अग्ने ! सब शत्रुओंको एक साथ हरानेवाले, श्रेष्ठ और सब युद्धोंमें शत्रुको दुस्तर ऐसे धन हमें भरपूर दे ।

१७ हे अग्ने ! नः जीवसे सुचेतुना विश्वायुपायसं मार्षिकं रार्यि नः धेहि [ १५२५ ]- हे अग्ने ! हमारे दीर्घ-जीवनके लिए उत्तम ज्ञानसे युक्त, सम्पूर्ण आयु तक भरण पोषण करनेमें समर्थ और सुखदायक धन दे ।

१८ नः धियः अग्निं हिन्वन्तु, आजिषु आशुं सतिं इव, तेन धनं धनं जेष्म [ १५२६ ]- हमारी बुद्धि अग्निको हमारे अनुकूल करे । जिसप्रकार युद्धमें घोड़ेको शीघ्र दौड़ाते हैं, उसीप्रकार शीघ्र जाकर हम प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त करें ।

१९ हे अग्ने ! यया सेनया तव ऊत्या गाः आकरामहे, तां नः मघत्तये हिन्व [ १५२७ ]- हे अग्ने ! जिस सेनासे तथा जिस तेरे संरक्षणसे हमें गायें प्राप्त हों, उस संरक्षणशक्तिकी, हमारा महत्त्व बढे तथा वे हमारे अनुकूल हों, इसलिए प्रेरित कर ।

२० हे अग्ने ! स्थूरं पृथुं गोमन्तं अश्विनं रार्यि आभर । खं अंघ्रि पविं वर्तय [ १५२८ ]- हे अग्ने ! बहुत

बडी गायों और घोड़ोंसे युक्त धन हमें भरपूर दे । आकाशमें अपने तेज फैला और शत्रुओंके शस्त्र हमसे दूर कर ।

२१ हे अग्ने ! जनेभ्यः ज्योतिः दधत्, अजरं नक्षत्रं सूर्यं दिवि आरोहयः [ १५३० ]- हे अग्ने ! तू लोगोंके लिए प्रकाश देता है और तूने क्षीण न होनेवाले प्रकाशमान् सूर्यको आकाशमें चढाया ।

२२ हे अग्ने ! विशां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः अस्ति, उपस्थ-सत् स्तोत्रे वयः दधत्, बोध [ १५३१ ]- हे अग्ने ! तू प्रजाओंको ज्ञान देनेवाला प्रिय और श्रेष्ठ है । यज्ञशालामें रहनेवाला तू स्तुति करनेवालेको अन्न देता है और स्तुति जानता है ।

२३ मूर्धा दिवः ककुत् पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः अपां रेतांसि जिह्वति [ १५३२ ]- सबमें श्रेष्ठ और झुलकमें श्रेष्ठ स्थान पर रहनेवाला पृथ्वीका पालक अग्नि जलके तत्वको अपनेमें धारण करता है ।

२४ हे अग्ने ! स्वः पतिः वार्यस्य दात्रस्य ईशिषे, तव शर्मणि स्तोता स्याम् [ १५३३ ]- हे अग्ने ! तू स्वर्गका स्वामी, स्वीकार करने योग्य और दान देने योग्य ऐसे धनोंका भी स्वामी है । तेरे द्वारा दिए गए सुखमें रहकर मैं तेरी स्तुति करनेवाला होऊँ ।

२५ हे अग्ने ! शुचयः शुक्राः भ्राजन्तः अर्चयः तव ज्योतींषि उदीरते [ १५३४ ]- हे अग्ने ! शुद्ध, स्वच्छ और देवीप्यमान ज्वालायें तेरे तेजको प्रेरणा देती हैं ।

इस प्रकार अग्निका वर्णन इस अध्यायमें है । अग्नि यज्ञमें प्रदीप्त होता है । ऋत्विज उसकी स्तुति करते हैं । यज्ञमें सब देवोंको वह बुलाकर लाता है । उन देवोंको सोमरस दिया जाता है । यह सब अग्निके वर्णनमें हमें मिलता है । अब सोमका वर्णन देखिए—

### सोम

१ यत्प्रतनं पीयूषं पूर्व्यं उक्थ्यं महः गाहात् दिवः आ निरधुक्षत् [ १४९४ ]- पहलेसे मिलनेवाला अमृत प्रशंसनीय है । महान् अगाध झुलोकेसे वह निकाला गया है । हिमालयके ऊँचे शिखर पर यह सोम उगता है और वहांसे वह यज्ञके लिए लाया जाता है ।

२ पश्यमानासः दिव्याः वसुरुचः आप्यं ईं अभ्य-नूषत [ १४९५ ]- इस सोमको देखनेवाले दिव्य वसुरुच भाईके समान इस सोमकी स्तुति करते हैं ।

३ हे पवमान ! यत् इमे रोदसी इमा विश्वा भुवना च विराजसि [ १४९६ ]- हे सोम ! इस धु और पृथ्वी पर और इन सब भुवनों पर तू विराजमान होता है ।



४ प्रथमः वृक्त-वर्हिषः महे वाजाय श्रवसे ते धियं दधुः । सः त्वं नः वीर्याय चोदय [ १५०६ ]- तू सबसे मुख्य है, आसन फलानेवाले यजमान, विशेष बल और अन्न प्राप्त हो, इसलिए तेरे विषयमें उत्तम आदर बुद्धि धारण करते हैं। वह तू हे सोम ! हम बीर हों ऐसी हमें प्रेरणा दे।

५ श्रवसा अभ्यभि ततर्दिथ [ १५०७ ]- अन्नसे युक्त होकर यह सोम छलनीसे नीचे बर्तनमें छाना जाता है।

६ हे अमृत ! ऋतस्य चारुणः अमृतस्य कं मर्त्याय अजीजनः सनिष्यदत् वाजं अच्छ सदा असरः [ १५०८ ] - हे अमृतरूपी सोम ! सत्य और मंगल करनेवाले, पानीको धारण करनेवाले आकाशमें सूर्यको तूने मनुष्योंके हितके लिए धारण किया। तूने देवोंकी सेवा की। तू हमेशा युद्धमें सीधा जाता है।

इस प्रकार इस अध्यायमें सोमका वर्णन है। सोम ऊंचे पर्वत शिखर पर उत्पन्न होता है। वहांसे वह यज्ञके लिए लाया जाता है। कूटकर उनका रस निकाला जाता है। उसमें पानी मिलाकर वह छाना जाता है। उसमें गायका दूध मिलाने हैं। वह इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है, बादमें उसे सब पीते हैं।

यह सब आलंकारिक भाषामें वर्णित है।

## सुभाषित

१ सत्यस्य सूनुं गोपतिं सत्पतिं अभि प्र अर्च [ १४८९ ]- सत्यके प्रचार करनेवाले, गायके रक्षक और सत्यके रक्षकका सत्कार करो।

२ गावः वज्रिणे इन्द्राय मधु आशिरं दुदुहे [ १४९१ ] - गायें वज्रधारी इन्द्रको मीठा दूध देती हैं। बीरोंको गायका दूध पीना चाहिए।

३ विश्वासु समत्सु हव्यं नः ब्रह्माणि सवनानि उप आभूषत [ १४९२ ] - सब युद्धोंमें बुलाने योग्य बीरोंकी शोभा हमारे स्तोत्र बढ़ाते हैं।

४ वृत्रहन् परमज्याः ऋचीषम ! [ १४९२ ]- हे शत्रुको मारनेवाले और महान् धनुषकी डोरीवाले बीर ! हम तेरी स्तुति करते हैं।

५ त्वं राघसां प्रथमः दाता असि [ १४९३ ]- तू धनोंका सबसे पहिला दाता है।

६ ईशानकृत् सत्यः असि [ १४९३ ]- तू ऐश्वर्ययुक्त करनेवाला और सत्य है।

७ तुविद्युम्नस्य शवसः पुत्रस्य महः युज्या वृणी-महे [ १४९३ ]- बहुत तेजस्वी, बलवान्के पुत्रके समान तुझसे बहुत सारा धन प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं। जो बलवान् होता है, उसे बहुतसा धन मिलता है और वह बहुतसा धन देता भी है। उसी तरह बहुतसा धन प्राप्त करें और दें।

८ दिव्याः पश्यमानासः आप्यं अभ्यनूषत [ १४९५ ] - दिव्य दृष्टिवाले उत्तम भाईकी स्तुति करते हैं।

९ दिवः सविता वारं न व्यूर्णुते [ १४९५ ]- धूलोकसे सूर्य जब तक अन्धकार दूर नहीं करता तब तक उसकी स्तुति कोई नहीं करता। वह अन्धकार दूर करने लगा कि उसकी स्तुति शुरु हो जाती है।

१० इमे रोदसी, इमा विश्वा भुवना, मज्मना विरा-जसि [ १४९६ ]- इस ध्रुव पृथ्वीमें और इन सब भुवनोंमें अपने सामर्थ्यसे तू सुशोभित होता है।

११ हे चित्रभानो ! विभक्ता असि [ १४९८ ]- हे तेजस्वी देव ! तू धन देनेवाला है।

१२ दाशुषे सद्यः क्षरसि [ १४९८ ]- बाताको कर्मके फल तत्काल देता है।

१३ नः परमेषु मध्यमेषु वाजेषु आभज [ १४९९ ] - हमें श्रेष्ठ और मध्यम भोगोंमें पटुंवा।

१४ अन्तमस्य वस्वः शिक्ष [ १४९९ ]- हमें निकृष्ट भोग भी मिलें।

१५ पितुः अमृतस्य मेधां अहं इत् परि जग्रह [ १५०० ]- पालन करनेवालेकी सत्यबुद्धि मैंने प्राप्त की है।

१६ अहं सूर्यः इव अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ।

१७ येन इन्द्रः शुष्मं दधे [ १५०१ ]- जिससे इन्द्र बलको धारण करता है।

१८ त्वं नः रायः दानाय देवतातये चोदय [ १५०५ ] - तू हमें धन देनेके लिए देवोंको प्रेरित कर।

१९ प्रथमः महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः [ १५०६ ] - मुख्य होकर वे महान् बल और यश प्राप्त करनेकी बुद्धि धारण करते हैं।

२० सः त्वं नः वीर्याय चोदय [ १५०६ ]- वह तू हमें बीर होनेके लिए प्रेरित कर।



२१ वाजं अच्छ सदा असरः [ १५०८ ]- युद्धके लिए आगे हो ।

२२ महित्वना राधांसि प्रचादयते [ १५०९ ]- अपनी महानतासे वह धनोंको प्रेरित करता है ।

२३ त्वत् पुरा वीरतरः न जज्ञे [ १५११ ]- तुझसे पहले तुझसे बढ़कर महान् वीर और कोई नहीं हुआ ।

२४ राया न कि, एवथा न, भन्दना न [ १५११ ]- धनसे भी तुझसे बढ़कर कोई नहीं हुआ, शत्रुओंको कुचलने-वाला भी कोई नहीं हुआ और स्तुतिके योग्य भी दूसरा कोई नहीं हुआ ।

२५ विधते दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति [ १५१४ ]- यज्ञ करनेवाले, दाता मनुष्यको उत्तम वीरता बढ़ानेवाले धन देता है ।

२६ गातुचित्तमः अदर्शि [ १५१५ ]- वह उत्तम मार्गदर्शक प्रतीत होता है ।

२७ सुजातं आर्यस्य वर्धनं नः गिरः उपो नक्षन्तु [ १५१५ ]- उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए तथा आर्योंके संवर्धन करनेवालेकी हमारी वाणियां स्तुति करती हैं ।

२८ यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वतः कृष्टयः रेजन्ते, सहस्रसां मेधसातौ धीभिः त्मना नमस्यत [ १५१६ ]- जब कर्म करनेवाले मनुष्यको शत्रु कंपाते हैं, तब हजारों प्रकारसे सहायता करनेवाले अग्निको हे मनुष्यो ! बुद्धिपूर्वक तुम स्वयं प्रणाम करो ।

२९ नः आर्युषि ऊर्जं इपं च पवसे [ १५१८ ]- हमें वीर्यायु, बल और अन्न दे ।

३० दुच्छुनां आरे वाधस्व [ १५१८ ]- दुष्टोंको दूर करके उन्हें कष्ट दे ।

३१ पांचजन्यः ऋषिः पुरोहितः [ १५१९ ]- पंच-जनोंका हित करनेवाला ऋषि आगे रहकर कार्य करता है ।

३२ तं महागयं ईमहे [ १५१९ ]- उसकी सहायतासे हम बड़े धरम रहनेकी इच्छा करते हैं ।

३३ स्वपाः अस्मे वर्चः पवस्व, मयि रयिं पोषं दधत् [ १५२० ]- उत्तम कार्य करनेवाला तू हमें तेज दे और हमें धन और पोषण भी दे ।

३४ ऊतिभिः नः अव [ १५२४ ]- संरक्षणके साधनोंसे हमारा संरक्षण कर ।

३५ सत्रासाहं वरेण्यं विश्वासु पृत्सु दुष्टं रयिं

नः आ भर [ १५२५ ]- सब शत्रुओंको हरानेवाले, श्रेष्ठ और युद्धमें शत्रुओंके लिए दुस्तर धन हमें दे ।

३६ नः जीवसे सुचेतुना विश्वायुपोषसं मर्डीकं रयिं नः धेहि [ १५२६ ]- हमारे वीर्य जीवनके लिए उत्तम ज्ञानसे युक्त, सब आयु पर्यन्त पोषण करनेवाले मुखदायक धन हमें दे ।

३७ तेन धनं धनं जग्म [ १५२७ ]- उस सामर्थ्यसे हम प्रत्येक युद्ध जीतें ।

३८ यया सेनया तव ऊत्या गाः आकरामहे, तां नः मघत्तये हिन्व [ १५२८ ]- जिस सैन्यसे और जिस तेरे संरक्षणसे हमें गाय मिलें उस संरक्षणशक्तिको हमें धन मिले इसलिए प्रेरित कर ।

३९ स्थूरं पृथुं गोमन्तं अश्विनं रयिं आ भर [ १५२९ ]- बहुत महान् गाय और घोड़ेसे युक्त धन हमें दे ।

४० खं अंगिध, पविं वर्तय [ १५२९ ]- आकाशमें अपने तेज फैला और शस्त्रोंको दूर कर ।

४१ जनेभ्यः ज्योतिः दधत् [ १५३० ]- लोगोंके लिए प्रकाश दे ।

४२ त्वं विशां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः [ १५३१ ]- तू प्रजाओंको ज्ञान देनेवाला प्रिय और श्रेष्ठ है ।

४३ स्वपतिः वार्यस्य दात्रस्य ईशिषे [ १५३३ ]- तू स्वामी है । स्वीकार करने योग्य और दान देने योग्य धनका स्वामी है ।

४४ शुचयः शुक्राः भ्राजन्तः अर्चयः तव ज्योतींषि उदीरते [ १५३४ ]- शुद्ध, स्वच्छ, तेजस्वी और प्रकाशमान तेरी प्रकाशकी किरणें चारों ओर फैलती हैं ।

## उपमा

१ मज्जना यूथे निष्ठा वृषभः न [ १४९६ ]- अपनी शक्तिके मुण्डमें जैसे बल रहता है, उसीप्रकार हे सोम ! तू ( विराजसि ) यहां विराजमान होता है ।

२ सिन्धोः उपाके ऊर्मा आ [ १४९८ ]- जैसे समुद्रमें पानीकी लहरें जाती हैं, उसीप्रकार ( दाशुषे सद्यः क्षरसि ) दाताको तू धन देता है ।

३ अहं सूर्यः इव अजनि [ १५०० ]- मैं सूर्यके समान तेजस्वी हो गया हूँ ।



४ कण्ववत् अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि [ १५०१ ] कण्वके समान में प्राचीन वाणीसे इन्द्रकी स्तुति करके उसे सुशोभित करता हूँ ।

५ न कंचित् जनपानं अक्षितं उत्सं [ १५०७ ]- मनुष्योंके पानी पीनेके लिए जैसे होज भरा जाता है, उसी-प्रकार हे सोम ! ( अभ्यभि ततर्दिथ ) छाना जाकर तू बर्तनमें भरा जाता है ।

६ भरमाणः न [ १५०७ ]- जिसप्रकार होज भरते

हैं, उसीप्रकार ( गभस्त्योः शर्याभिः ) हाथकी अंगुलियोंसे सोमरस बर्तनमें भरा जाता है ।

७ इन्द्रः न [ १५१७ ]- इन्द्रके समान ( अग्निः मातरं पृथिवीं अनु प्र वि वावृते ) अग्नि मातृभूमिपर अनेक प्रवृत्ति करता है ।

८ आजिषु आशुं सति इव [ १५२७ ]- युद्धमें वेगवान् घोड़ेको जिसप्रकार बौडाते हैं, उसीप्रकार ( नः धियः अग्निं हिन्वन्तु ) हमारी बुद्धियां अग्निको प्रेरित करें ।

### चतुर्दशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                    | देवता       | छन्दः                                     |
|-------------|--------------|---|-------------|---|
| ( १ )       |              |   |             |   |
| १४८९        | ८।६९।४       | प्रियमेध आंगिरसः                        | इन्द्रः     | गायत्री                                   |
| १४९०        | ८।६९।५       | प्रियमेध आंगिरसः                        | "           | "   |
| १४९१        | ८।६९।६       | प्रियमेध आंगिरसः                        | "           | "   |
| १४९२        | ८।९०।१       | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ                  | "           | प्रगाथः=( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| १४९३        | ८।९०।२       | नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ                  | "           | "   |
| १४९४        | ९।११०।८      | अ्यरुणस्त्रैबृहणः, त्रसवस्युः पौरकुत्सः | पवमानः सोमः | ऊर्ध्वा बृहती                             |
| १४९५        | ९।११०।६      | अ्यरुणस्त्रैबृहणः, त्रसवस्युः पौरकुत्सः | "           | "   |
| १४९६        | ९।११०।९      | अ्यरुणस्त्रैबृहणः, त्रसवस्युः पौरकुत्सः | "           | "   |
| १४९७        | १।२७।४       | शुनःशेप आजीगतिः                         | अग्निः      | गायत्री                                   |
| १४९८        | १।२७।६       | शुनःशेप आजीगतिः                         | "           | "   |
| १४९९        | १।२७।५       | शुनःशेप आजीगतिः                         | "           | "   |
| १५००        | ८।६।१०       | वत्सः काण्वः                            | इन्द्रः     | "   |
| १५०१        | ८।६।११       | वत्सः काण्वः                            | "           | "   |
| १५०२        | ८।६।१२       | वत्सः काण्वः                            | "           | "   |
| ( २ )       |              |   |             |   |
| १५०३        | —            | अग्निस्तापसः                            | विश्वेदेवाः | अनुष्टुप्                                 |
| १५०४        | —            | अग्निस्तापसः                            | "           | "   |
| १५०५        | १०।१४१।६     | अग्निस्तापसः                            | "           | "   |
| १५०६        | ९।११०।७      | अ्यरुणस्त्रैबृहणः, त्रसवस्युः पौरकुत्सः | पवमानः सोमः | ऊर्ध्वा बृहती                             |
| १५०७        | ९।११०।५      | अ्यरुणस्त्रैबृहणः, त्रसवस्युः पौरकुत्सः | "           | "   |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                   | देवता       | छन्दः         |
|-------------|--------------|--|-------------|---------------|
| १५०८        | ९।११०।३      | उग्रहणस्त्रेवृष्णः, असवस्युः पौतकुत्सः | पवमानः सोमः | ऊर्ध्वा बृहती |
| १५०९        | ८।१४।१३      | विश्वमना वंयश्वः                       | इन्द्रः     | उष्णिक्       |
| १५१०        | ८।१४।१४      | विश्वमना वंयश्वः                       | "           | "             |
| १५११        | ८।१४।१५      | विश्वमना वंयश्वः                       | "           | "             |
| १५१२        | ८।१५।१       | प्रियमेधे आंगिरसः                      | "           | "             |

( ३ )

|      |         |                      |               |   |
|------|---------|----------------------|---------------|---|
| १५१३ | ७।१६।११ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | अग्निः        | प्रगाथः = ( विषमा बृहती,<br>समा सतो बृहती ) |
| १५१४ | ७।१६।१२ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "             | "   |
| १५१५ | ८।१०३।१ | सौभरिः काण्वः        | "             | बृहती                                       |
| १५१६ | ८।१०३।३ | सौभरिः काण्वः        | "             | "   |
| १५१७ | ८।१०३।९ | सौभरिः काण्वः        | "             | "   |
| १५१८ | ९।६६।१९ | शतं वेखानसः          | अग्निः पवमानः | गायत्री                                     |
| १५१९ | ९।६६।२० | शतं वेखानसः          | "             | "   |
| १५२० | ९।६६।२१ | शतं वेखानसः          | "             | "   |
| १५२१ | ५।२६।१  | वसूयव आत्रेयः        | अग्निः        | "   |
| १५२२ | ५।२६।२  | वसूयव आत्रेयः        | "             | "   |
| १५२३ | ५।२६।३  | वसूयव आत्रेयः        | "             | "   |

( ४ )

|      |          |               |   |   |
|------|----------|---------------|---|---|
| १५२४ | १।७९।७   | गोतमो राहूगणः | " | " |
| १५२५ | १।७९।८   | गोतमो राहूगणः | " | " |
| १५२६ | १।७९।९   | गोतमो राहूगणः | " | " |
| १५२७ | १०।१५६।१ | केतुराग्नेयः  | " | " |
| १५२८ | १०।१५६।२ | केतुराग्नेयः  | " | " |
| १५२९ | १०।१५६।३ | केतुराग्नेयः  | " | " |
| १५३० | १०।१५६।४ | केतुराग्नेयः  | " | " |
| १५३१ | १०।१५६।५ | केतुराग्नेयः  | " | " |
| १५३२ | ८।४४।१६  | विरूप आंगिरसः | " | " |
| १५३३ | ८।४४।१८  | विरूप आंगिरसः | " | " |
| १५३४ | ८।४४।१७  | विरूप आंगिरसः | " | " |



## अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथ सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ७-२ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १, ११ गीतमो राहूगणः; २, ९ विश्वामित्रो गायिनः; ३ विरूप आंगिरसः; ४, ७ भर्गः प्रगाथः; ५ त्रित आप्त्यः; ६ उशाना काव्यः; ८ सुवीति- पुरुमीळ्हावांगिरसो १० सोभरिः काव्यः; १२ गोपवन आत्रेयः; १३ भर-  
द्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आंगिरसो वा; १४ प्रयोगो भार्गवः; पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठो  
सहसः पुत्रावान्यतरो वा ॥ अग्निः ॥ १-३, ६, ९, १४ गायत्री; ४, ७, ८ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा  
सतोबृहती, ); ५ त्रिष्टुप् १० काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); ११ उष्णिक्; १२  
अनुष्टुप्मुखः प्रगाथः= ( अनुष्टुप् + गायत्री ); १३ जगती ॥

१५३५ कस्ते जामिर्जनानामग्रे को दाश्रध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७५।३ )

१५३६ त्वं जामिर्जनानामग्रे मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७५।४ )

१५३७ यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाः ऋतं बृहत् । अग्रे यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥ १ ( रु ) ॥  
[ धा० ८ । उ० नास्ति । ख० ५ ] ( ऋ. १।७५।५ )

१५३८ ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमाःसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।२७।१३ )

१५३९ वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।२७।१४ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १५३५ ] हे अग्ने ! ( जनानां ते जामिः कः ) मनुष्योंमें तेरा भाई कौन है ? ( दाशु-अध्वरः कः ) वानसे तेरा यज्ञ करनेवाला कौन है ? ( कः ह ) तू कैसा है यह कौन जानता है ? ( कस्मिन् श्रितः असि ) तू कहां आश्रय लेकर रहता है ? ॥ १ ॥

[ १५३६ ] हे अग्ने ! ( त्वं जनानां जामिः प्रियः मित्रः असि ) तू मनुष्योंका भाई और प्रिय मित्र है । ( ईड्यः सखिभ्यः सखा ) तू स्तुत्य और ऋत्विजरूपी मित्रोंका मित्र है ॥ २ ॥

[ १५३७ ] हे अग्ने ! ( नः ) हमारे लिए ( मित्रावरुणा यज ) मित्र और वरुणका यजन कर । ( देवान् यज ) देवोंका यजन कर । ( ऋतं बृहत् स्वं दमं यक्षि ) यज्ञ कर और महान् यज्ञशालामें पूज्य होकर रह ॥ ३ ॥

[ १५३८ ] ( ईडेन्यः ) स्तुत्य और नमस्कार करने योग्य ( तमांसि तिरः ) अन्धकारको दूर करनेवाला ( दर्शतः वृषा अग्निः ) वर्शनीय और बलवान् अग्नि ( स्वं ईड्यते ) आहुतिके द्वारा उत्तमतासे प्रदीप्त किया जाता है ॥ १ ॥

[ १५३९ ] ( वृषा उ ) बलवान् ( अश्वः न देववाहनः ) घोडा जैसे राजाको छोकर ले जाता है उसीप्रकार अग्नि देवोंके पास हवि ले जाता है, ऐसा यह ( अग्निः समिध्यते ) अग्नि आहुतिके द्वारा प्रदीप्त किया जाता है । ( तं हविष्मन्तः ईडते ) यजन करनेवाले यजमान उस अग्निकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥



- १५४० वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥ २ ( लि ) ॥  
[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ३।२७।१९ )
- १५४१ उते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।४४।४ )
- १५४२ उप त्वा जुहोरे मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।४४।९ )
- १५४३ मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥ ३ ॥ ३ ( ह ) ॥  
[ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४४।६ )
- १५४४ पाहि नो अग्र एकया पाह्येत द्वितीयया ।  
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६०।९ )
- १५४५ पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।  
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपि नक्षामहे वृधे ॥ २ ॥ ४ ( यि ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।६०।१० )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ १५४० ] हे ( वृषन् अग्ने ) बलवान् अग्ने ! ( वृषणः वयं ) आहुति देनेवाले हम ( वृषणं दीद्यतं बृहत् ) बलवान्, तेजस्वी और महान् तुम अग्निको ( समिधीमहि ) प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

[ १५४१ ] हे ( दीदिवः ) तेजस्वी अग्ने ! ( समिधानस्य ते ) प्रवीप्त होनेवाले तेरी ( बृहन्तः शुक्रासः ) महान् शुद्ध ( अर्चयः ) ज्वालार्ये ( उदीरते ) निकलती हैं ॥ १ ॥

[ १५४२ ] हे ( हर्यत अग्ने ) पूज्य अग्ने ! ( मम घृताचीः जुहोः ) मेरे घीसे पूर्ण भरे हुए चमचे ( त्वा उप-यन्तु ) तेरे पास जावें, ( नः हव्या जुषस्व ) हमारी हविका तू सेवन कर ॥ २ ॥

[ १५४३ ] ( मन्द्रं होतारं ) आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलाकर लानेवाले ( मृत्विजं चित्रभानुं ) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले तेजस्वी ( विभावसुं अग्निमीडे ) प्रकाशमान् अग्निकी में स्तुति करता हूँ । ( सः श्रवत् उ ) वह उसे सुने ॥ ३ ॥

[ १५४४ ] हे ( अग्र ) अग्ने ! ( नः एकया पाहि ) तू हमारा एक ऋचासे रक्षण कर । ( उत द्वितीयया पाहि ) और दूसरी ऋचासे रक्षा कर । हे ( ऊर्जां पते ) बलोंके पालक ! ( तिसृभिः गीर्भिः पाहि ) तीन मंत्रोंसे हमारा संरक्षण कर । हे ( वसो ) निवासक ! ( चतसृभिः पाहि ) चार मंत्रोंसे रक्षण कर ॥ १ ॥

[ १५४५ ] हे अग्ने ! ( विश्वस्माद्रक्षसः अ-राव्णः ) सब राक्षसोंसे और दान न देनेवाले शत्रुओंसे ( नः पाहि ) हमारी रक्षा कर । तथा ( वाजेषु प्राव स्म ) युद्धमें हमारी रक्षा कर । ( हि ) क्योंकि ( नेदिष्ठं आपि त्वां इत् हि ) हमारा पासका भाई तू ही है । ( देवतातये वृधे नक्षामहे ) यज्ञकी सिद्धिके लिए और अपने संवर्धनके लिए तेरी शरणमें आते हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

१५४६ इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमा५ अदर्शि ।

चिकिद्भि भाति भासा बृहतासिक्रीमेति रुशतीमपाजन्

॥ १ ॥ ( ऋ. १०।३।१ )

१५४७ कृष्णां यदेनीमभि वर्षसाभूजनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।

ऊर्ध्वं भानु५ सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति

॥ २ ॥ ( ऋ. १०।३।२ )

१५४८ भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।

सुप्रकेतैर्द्युभिरभिर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्

॥ ३ ॥ ५ ( यो ) ॥

[ धा० २७। उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. १०।३।३ )

१५४९ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।८४।४ )

१५५० दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।८४।५ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५४६ ] हे अग्ने ! तू ( इनः ) सबका स्वामी है, ( अरतिः ) देवोंके पास जानेवाला ( समिद्धः ) प्रज्वलित किया गया ( रौद्रः ) शत्रुओंको भय दिखानेवाला ( सुषुमान् ) उपासकोंको दृष्ट पदार्थ देनेवाला ( दक्षाय अदर्शि ) तू बल बढ़ानेवाला है यह देख लिया है । ( चिकित् विभाति ) सर्वज्ञ तू प्रवीण होता है । ( रुशतीं अपाजन् ) तेजस्वी ज्वालाओंको फंलाते हुए ( बृहता भासा ) महान् तेजसे ( असिक्रीं एति ) रात्रीमें जाता है ॥ १ ॥

[ १५४७ ] यह अग्नि ( यत् ) जब ( बृहतः पितुः जां योषां ) महान् पितासे उत्पन्न हुई हुई स्त्रीरूपी उषाकी ( जनयन् ) प्रकट करके ( कृष्णां एनीं वर्षसा अभिभूत् ) काली रात्रीको अपनी ज्वालाओंसे हराता है । तब ( अरतिः ) यह गतिमान् अग्नि ( दिवः वसुभिः ) धूलोकमें अपने तेजसे ( सूर्यस्य भानुं ) सूर्यके तेजकी ( ऊर्ध्वं स्तभायन् ) ऊपर ही थामकर ( विभाति ) स्वयं प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ १५४८ ] ( भद्रः ) कल्याण करनेवाला अग्नि ( भद्रया सचमानः आगात् ) कल्याण करनेवाली उषाके द्वारा सेवित होता हुआ प्रज्वलित होता है । ( पश्चात् जारः स्वसारं अभ्येति ) तब शत्रुका नाश करनेवाला अग्नि अपनी बहिन उषाकी प्राप्त होता है । ( सुप्रकेतैः द्युभिः चितिष्ठिन् ) अपने तेजोंसे सर्वत्र रहनेवाला यह ( अग्निः ) अग्नि ( उशद्भिः वर्णैः ) तेजस्वी रंगोंकी ज्वालाओंसे ( रामं अभ्यस्थात् ) रात्रीके अंधकारको हराकर स्थिर रहता है ॥ ३ ॥

[ १५४९ ] हे ( अङ्गिरः ) अंगोंके प्रकाशक और ( ऊर्जः न-पात् ) बल कम न करनेवाले ( देव अग्ने ) अग्नि देव ! ( वराय ) सबोंके द्वारा स्वीकरणीय और ( मन्यवे ते ) शत्रु पर क्रोध करनेवाले तेरे लिए ( कया उप स्तुतिं ) कौनसी रीतिसे मैं स्तुति करूँ ? ॥ १ ॥

[ १५५० ] ( सहसः यहो ) हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! ( कस्य यज्ञस्य मनसा दाशेम ) किस यज्ञ करनेवालेके मनके समान हम हवि अर्पण करें ? ( इदं नमः कन वोचे उ ) ये हवि अथवा यह नमस्कार तुझे प्राप्त हों, यह हम कब कहें ? ॥ २ ॥



१५५१ अग्ना त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥३॥ ६ (ट) ॥  
[ धा० १८। उ० १। स्व० १ ] ( ऋ. ८।८४।६ )

१५५२ अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।  
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिः आसदे ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६०।१ )

१५५३ अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः सुचश्चरन्त्यध्वर ।  
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्यम् ॥ २ ॥ ७ (या) ॥  
( धा० १७। उ० नास्ति । स्व० २ ) ( ऋ. ८।६०।२ )

१५५४ अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।  
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्तमृतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७१।१० )

१५५५ अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।  
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वाम होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥ ८ (टा) ॥  
[ धा० ८। उ० १। स्व० २ ] ( ऋ. ८।७१।११ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ १५५१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अध ) इसके बाद ( त्वं हि अस्मभ्यं करः ) तू ही हमारे लिए ऐसा कर कि ( नः विश्वाः गिरः ) हमारी सब स्तुतियां ( सु-क्षितीः ) हमें सब श्रेष्ठ स्थानोंके स्वामी और ( वाजद्रविणसः ) अग्न अथवा धनसे युक्त करें ॥ ३ ॥

[ १५५२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वा होतारं वृणीमहे ) तू देवोंको बुलानेवाला है । ऐसा समझकर तेरी प्रार्थना हम करते हैं । तू ( अग्निभिः आयाहि ) अग्नियोंके साथ यहां आ । ( यजिष्ठं त्वां ) पूजनीय तुझे ( प्रयता हविष्मती ) तैय्यार हवियुक्त आहुति ( बर्हिः आसदे ) आसन पर बैठनेके बाद ( अनक्तु ) प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १५५३ ] हे ( सहसः सूनो अङ्गिरः ) बलके पुत्र और सब जगह गमन करनेवाले अग्ने ! ( त्वा अध्वरे अच्छा ) तुझे यज्ञमें प्राप्त करनेके लिए ( सुचः चरन्ति ) चमके हलचल करते हैं । ( ऊर्जः नपातं घृतकेशं ) बल कम न करनेवाले और प्रखर ज्वालासे युक्त ( पूर्यं अग्निं ) मनोरथ पूर्ण करनेवाले अग्निकी हम ( यज्ञेषु ईमहे ) यज्ञमें स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[ १५५४ ] ( नः गिरः ) हमारी स्तुतियां ( शीरशोचिषं दर्शतं ) प्रज्वलित ज्वालाओंसे युक्त और दर्शनीय अग्निके पास ( अच्छा यन्तु ) सीधी जावें । ( उतये ) हमारी रक्षाके लिए ( नमसा यज्ञासः ) घीसे युक्त होनेवाले हमारे यज्ञ ( पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं अच्छा ) बहुत धनसे युक्त और बहुत प्रशंसनीय अग्निकी प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५५५ ] ( मर्त्येषु ) मनुष्योंमें ( यः अमृतः ) जो अमृत है, ( द्विता अभूत् ) वह देवोंमें भी अमर है, अर्थात् दोनों स्थानोंमें वह अमर है, ( विशि होता मन्द्रतमः ) वह मनुष्योंमें हवन करनेवाला और आनन्द देनेवाला है । ( सहसः सूनुं ) बलसे उत्पन्न होनेवाले ( जात-वेदसं अग्निं ) सर्व ज्ञानी अग्निकी ( वार्याणां दानाय ) धनके दानके लिए हम प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ३ ]

- १५५६ अदाभ्यः<sup>१ २</sup> पुर<sup>३ २</sup>एता<sup>३ २ ३ १</sup> विशामभिर्मानुषीणाम्<sup>२ २</sup> । तूर्णी<sup>२ ३ २ ३</sup> रथः<sup>२ ३ १ २</sup> सदा नवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१।१३ )
- १५५७ अभि<sup>३ १</sup> प्रयांसि<sup>२ २</sup> वाहसा<sup>३ १ २</sup> दाश्वा<sup>३ १ २</sup> अश्नोति<sup>३ २</sup> मर्त्यः<sup>३ १ २</sup> । क्षयं<sup>३ २</sup> पावकशोचिषः<sup>३ १ २</sup> ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१।१७ )
- १५५८ साह्वान्विश्वा<sup>३ १</sup> अभियुजः<sup>२ २</sup> क्रतुर्देवानाममृक्तः<sup>३ २ ३ १ २</sup> । अग्निस्तुविश्रवस्तमः<sup>३ २ ३ १ २</sup> ॥ ३ ॥ ९ ( वि ) ॥
- [ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ३।१।१६ )
- १५५९ भद्रो<sup>३ १</sup> नो<sup>२</sup> अभिराहुतो<sup>३ १</sup> भद्रा<sup>२ २</sup> रातिः<sup>३ २ ३ १</sup> सुभग<sup>२</sup> भद्रो<sup>३ १ २</sup> अध्वरः<sup>३ २ ३ १</sup> । भद्रा<sup>२ २</sup> उत<sup>३ १</sup> प्रशस्तयः<sup>२ २</sup> ॥ १ ॥
- ( ऋ. ८।१९।१९ )
- १५६० भद्रं<sup>३ १</sup> मनः<sup>२ २</sup> कृणुष्व<sup>३ २ ३ १ २</sup> वृत्रतूर्ये<sup>३ १ २</sup> येना<sup>३ २</sup> समत्सु<sup>३ १ २</sup> सासहिः<sup>३ १ २</sup> ।
- अव<sup>१ २</sup> स्थिरा<sup>३ १</sup> तनुहि<sup>२ ३</sup> भूरि<sup>२ ३ १ २</sup> शर्धतां<sup>३ १ २</sup> वनेमा<sup>३ १ २</sup> ते अभिष्टये ॥ २ ॥ १० ( लि )
- [ धा० ४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।१९।२० )
- १५६१ अग्ने<sup>२ ३</sup> वाजस्य<sup>१ २ ३</sup> गोमत<sup>१ २ ३ १ २</sup> ईशानः<sup>३ १ २</sup> सहसो<sup>३</sup> यहो<sup>२ २ ३ १ २</sup> । अस्मे<sup>३ १ २</sup> देहि<sup>३</sup> जातवेदो<sup>२ २ ३ १ २</sup> महि श्रवः ॥ १ ॥
- ( ऋ. १।७९।४ )

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५५६ ] ( मानुषीणां विशां पुर-एता ) मानवी प्रजाओंमें आगे रहनेवाला ( तूर्णीः ) शीघ्रतासे कार्य करने-वाला ( रथः ) रथके समान प्रगतिशील ( सदा नवः ) सदा नवीन यह अग्नि ( अ-दाभ्यः ) किसीके द्वारा न बचाए जानेवाला है ॥ १ ॥

[ १५५७ ] ( दाश्वान् मर्त्यः ) बाता मनुष्य ( वाहसा ) हवि पहुंचानेवाले अग्निसे ( प्रयांसि अभि अश्नोति ) अन्नको प्राप्त करता है, तथा ( पावकशोचिषः ) पवित्र प्रकाशवाले अग्निसे ( क्षयं ) निवास योग्य घर प्राप्त करता है ॥ २ ॥

[ १५५८ ] ( अभियुजः विश्वाः साह्वान् ) चढाई करनेवाले सब शत्रुकी सेनाओंको हरानेवाला ( देवानां क्रतुः अग्निः ) देवोंका यज्ञ करनेवाला अग्नि ( तुवि-श्रवस्तमः ) बहुतसा अन्न देनेवाला है ॥ ३ ॥

[ १५५९ ] ( आहुतः अग्निः नः भद्रः ) आहुतियोंसे तृप्त हुआ हुआ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला हो । हे ( सु-भग ) उत्तम भाग्यवान् अग्ने ! ( भद्रा रातिः ) तेरे कल्याण करनेवाले वान हमें प्राप्त हों । ( अध्वरः भद्रः ) हमारा यज्ञ कल्याण करनेवाला हो । ( उतः प्रशस्तयः भद्राः ) और हमारे द्वारा की गई स्तुतियां हमारा कल्याण करने-वाली हों ॥ १ ॥

[ १५६० ] हे अग्ने ! ( वृत्र-तूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व ) युद्धमें हमारे मनको कल्याणमय विचार करनेवाला कर । ( येन समत्सु सासहिः ) जिससे युद्धमें शत्रुका पराभव तू करता है । ( शर्धतां भूरि स्थिरा अवतनुहि ) युद्ध करने-वाले शत्रुकी सुबुद्ध सेनाका भी तू पराभव कर, ( अभिष्टये ते वनेम ) हम अपने कल्याणके लिए तेरी आराधना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६१ ] हे ( सहसः यहो ) बलके पुत्र अग्ने ! ( गोमतः वाजस्य ईशानः ) गायोंके साथ होनेवाले अन्नका तू स्वामी है । हे ( जातवेदः ) सर्वज्ञ ! ( अस्मे महि श्रवः देहि ) हमें बहुत सारा अन्न दे ॥ १ ॥



१५६२ स इधानो वसुष्काविराग्नेरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पूर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥  
( ऋ. १।७९।५ )

१५६३ क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥ ११ (टा) ॥  
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।७९।६ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१५६४ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।  
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७४।१ )

१५६५ यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।७४।२ )

१५६६ पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्पुद्यता । हव्यान्यैरथादिवि ॥ ३ ॥ १२ (टा) ॥  
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७४।३ )

१५६७ समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।  
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्रीमहे जातवेदसम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१५।७ )

[ १५६२ ] ( सः अग्निः ) वह अग्नि ( इधानः वसुः ) प्रवीप्त हुआ हुआ और निवास करनेवाला ( कविः ) ज्ञानी ( गिरा ईडेन्यः ) बाणीके द्वारा स्तुति करने योग्य है । हे ( पुरु-अनीक ) अनेक ज्वाला युक्त अग्ने ! ( अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि ) हमें चमकनेवाले धन दे ॥ २ ॥

[ १५६३ ] ( राजन् अग्ने ) हे प्रकाशमान अग्ने ! ( वस्तोः उत उषसः ) सब दिन और रात्रिमें ( क्षपः ) शत्रुओंका नाश कर । ( उत त्मना ) और स्वयं तू हे ( तिग्म जम्भ ) तीक्ष्ण मुखवाले अग्ने ! ( रक्षसः प्रति दह ) राक्षसोंको जला दे ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १५६४ ] हे याजकी ! ( वाजयन्तः वः ) अन्न व बलकी इच्छा करनेवाले तुम ( विशः विशः अतिथिं ) प्रत्येक प्रजाजनोंके घरमें अतिथिके समान पूजनीय और ( पुरुप्रियं अग्निं ) बहुतोंको प्रिय लगनेवाले अग्निको हवि अर्पित करो । ( वः शूषस्य मन्मभिः ) तुम्हारे बल बढ़ानेवाले स्तोत्रोंके द्वारा ( दुर्यं वचः स्तुषे ) स्थण्डिलमें रहनेवाले अग्निकी हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १५६५ ] ( यं ) जिसकी ( हविष्मन्तः जनासः ) हवि रखनेवाले लोग ( मित्रं न ) मित्रके समान ( सर्पि-रासुतिं ) धीके हवनके साथ ( प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति ) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६६ ] ( पन्यांसं जातवेदसं ) अत्यन्त स्तुतिके योग्य सर्वज्ञानी अग्निकी हम स्तुति करते हैं, ( यः ) जो ( देवताति ) देव यज्ञमें ( उद्यता हव्यानि ) दिए जानेवाले हविर्द्रव्य ( दिवि पेरयत् ) सुलोकमें पहुंचाता है ॥ ३ ॥

[ १५६७ ] ( समिधा समिद्धं अग्निं ) समिधाओंसे प्रज्वलित हुए हुए अग्निकी मैं ( गिरा गृणे ) बाणीसे स्तुति करता हूँ । ( शुचिं ध्रुवं पावकं अध्वरे पुरः ) शुद्ध, स्थिर और पवित्र करनेवाले अग्निकी यज्ञमें मैं आगे स्थापित करता हूँ । ( विप्रं होतारं ) ज्ञानी तथा हवन करनेवाले ( पुरुवारं अद्रुहं ) अनेकों द्वारा स्वीकार करने योग्य, द्रोह न करनेवाले ( कविं जातवेदसं ) ज्ञानी और सर्वज्ञानी अग्निकी ( सुम्रीमहे ) धनके लिए हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥



१५६८ त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीज्यम् ।

देवासश्च मर्तासश्च जागृवि विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१५।८ )

१५६९ विभूषण्य उभयां अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।

यत्तं धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्म नस्त्रिवरुथः शिवो भव ॥ ३ ॥ १३ ( या ) ॥

[ धा० २२ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ६।१५।९ )

१५७० उप त्वा जामयां गिरा देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०२।१३ )

१५७१ यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तथावसन्दिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१०२।१४ )

१५७२ पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदक् ॥ ३ ॥ १४ ( इ ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ५ ] ( ऋ. ८।१०२।१५ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ७-२ ॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

[ १५६८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( देवासः च मर्तासः च ) देव और मनुष्य ( अमृतं युगे युगे हव्यवाहं ) अमर, और प्रत्येक यज्ञमें हविको देवोंकी ओर पहुंचानेवाले ( पायुं ईड्यं त्वां ) रक्षक और स्तुतिके योग्य तुझे ( दूतं दधिरे ) दूत बनाते हैं, तथा ( जागृवि विभुं विश्पतिं ) जागृत, व्यापक और प्रजाके रक्षक अग्निकी ( नमसा निषेदिरे ) नमन करते हुए उपासना करते हैं ॥ २ ॥

[ १५६९ ] हे अग्ने ! ( उभयान् विभूषन् ) देव और मनुष्य इन दोनोंको सुशोभित करनेवाला तू ( अनुव्रता देवानां दूतः ) अनुकूल नियमके समान चलनेवाले देवोंका दूत होकर ( रजसी समीयसे ) झुलोक व इस लोकमें हवि पहुंचानेके लिए जाता है । ( यत् ते ) इसलिए तेरी तरफ ( धीतिं सुमतिं आवृणीमहे ) उत्तम कर्ममें की गई स्तुति भेजते हैं, ( अध ) इसके बाद ( त्रि-वरुथः ) तीन स्थानोंमें रहनेवाला तू ( अस्मान् शिवः भव ) हमें सुख देनेवाला हो ॥ ३ ॥

[ १५७० ] हे अग्ने ! ( हविष्कृतः ) यज्ञ करनेवालेके लिए ( गिरः जामयः ) स्तुतियां बहिनके समान ( देदि-शतीः ) तेरा गुणगान करती हुई ( वायोः अनीके ) वायुके पास ( त्वां उपास्थिरन् ) तुझे प्रवीण करके स्थापित करती हैं ॥ १ ॥

[ १५७१ ] ( यस्य ) जिस अग्निके ( त्रिधातु अवृतं ) तीन पर्वोंवाले, खुले हुए ( अवसं दिनं बर्हिः तस्थौ ) और न बंधे हुए आसन रखे हुए हैं । उस अग्निके ( आपः चित् ) जल भी ( पदं निदधा ) अपना स्थान रखता है ॥ २ ॥  
जलका स्थान अन्तरिक्ष है । वहां अग्नि भी विद्युत् रूपमें है ।

[ १५७२ ] ( मीढुषः देवस्य पदं ) स्तुत्य और तेजस्वी अग्नि देवके स्थान ( अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः ) शत्रुओंके द्वारा बाधा न पहुंचानेवाले संरक्षणोंसे युक्त हैं, उसकी ( उपदक् ) दृष्टि भी ( सूर्यः इव भद्रा ) सूर्यके समान कल्याण करनेवाली है ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥



## पञ्चदश अध्याय

### अग्नि देवता

अग्नि देवकी उपासना हवनसे होती है। इस सम्बन्धमें कहा है—

१ वृषः अश्वः न, देववाहनः अग्निः समिधयते, तं हविष्मन्तः ईडते [ १५३९ ]— बलवान् घोडा जिसप्रकार राजाको ढोकर ले जाता है, उसीप्रकार अग्नि आहुतिके द्वारा प्रज्वलित किया जाता है। उस अग्निकी स्तुति हवन करनेवाले करते हैं।

अग्नि देवोंको अपने रथसे यज्ञकी जगह पर ढोकर लाता है और हवि अर्पण करनेवाले यजमान उसकी स्तुति करते हैं।

२ वृषणः वयं वृषणं दीद्यतं बृहत् समिधीमहि [ १५४० ]— आहुति देनेवाले हम बलवान् और तेजस्वी अग्निकी समिधाओंसे प्रज्वलित करते हैं।

३ समिधानस्य ते बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उदीरते [ १५४१ ]— हे अग्ने ! प्रदीप्त होनेवाली तेरी बड़ी - बड़ी सफेद ज्वालायें निकलती हैं।

४ हविष्मन्तः जनासः विप्रं न सर्पिरासुतिं प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति [ १५६५ ]— हविकी पासमें रखनेवाले यजमान मित्रके समान धीके हवनके साथ अग्निकी स्तुति करते हैं।

५ पन्यांसं जातवेदसं, यः देवताति उद्यता हव्यानि दिवि ऐरयत् [ १५६६ ]— अत्यन्त स्तुति करने योग्य सर्वज्ञ अग्निकी हम स्तुति करते हैं, वह यज्ञमें डाले जानेवाले हविर्द्रव्योंको छुलोकमें देवोंके पास पहुंचाता है।

६ विशः विशः अतिथिं पुरु-प्रियं अग्निं, वः शूष-स्य मन्मभिः दुर्यं घचः स्तुषे [ १५६४ ]— प्रत्येक प्रजाजनके घरमें अतिथिके समान पूजनीय और बहुतसे लोगोंको प्रिय लगनेवाले अग्निकी हवि अर्पित करो। तुम्हारे बल बढ़ानेवाले स्तोत्रोंसे कुण्डमें रखे गए अग्निकी हम स्तुति करते हैं।

प्रत्येक घरमें अग्नि स्थापित की हुई होती है और उसमें हवन होता है।

७ समिधा समिद्धं अग्निं गिरा गृणे [ १५६० ]—

३७ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

समिधाओंसे प्रदीप्त हुई हुई अग्निकी मैं अपनी वाणीसे स्तुति करता हूँ।

इसमें समिधा डालकर अग्नि प्रज्वलित किया जाता है, यह कहा है।

८ शुचिं ध्रुवं पावकं अध्वरे पुरः [ १५६७ ]— शुद्ध, स्थिर और पवित्र करनेवाले अग्निकी यज्ञमें आगे स्थापित किया जाता है।

९ होतारं पुरुवारं अदुहं कविं जातवेदसं सुम्नैः ईमहे [ १५६७ ]— हव्य करनेवाले, बहुतों द्वारा स्वीकार करने योग्य, द्रोह न करनेवाले, ज्ञानी और सर्वज्ञ अग्निकी उत्तम मनसे हम स्तुति करते हैं।

१० देवासः मर्त्तासः च अमृतं युगे युगे हव्यवाहं पायुं ईडयं त्वां जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे [ १५६८ ]— देव और मनुष्य अमर, प्रत्येक यज्ञमें डाले गए हवनीय द्रव्योंको देवोंके पास पहुंचानेवाले, संरक्षक और स्तुत्य, जागृत, व्यापक और प्रजारक्षक ऐसे अग्निकी नमस्कार पूर्वक उपासना करते हैं।

११ अग्ने ! उभयान् विभूषन् अनुवता देवानां दूतः रजसी समीयसे [ १५६९ ]— हे अग्ने ! देव और मनुष्य इन दोनोंको ही सुशोभित करनेवाला तू नियमानुसार चलनेवाले देवोंका दूत होकर छुलोकमें और इस लोकमें हवि पहुंचानेके लिए जाता है।

१२ यत् ते धीतिं सुमतिं आनृणीमहे [ १५६९ ]— इसलिए तेरी ओर उत्तम यज्ञकर्ममें की गई स्तुति भेजते हैं।

१३ त्रिवरुथः अस्मान् शिवः भव [ १५६९ ]— तीन स्थानोंमें रहनेवाला तू हमें सुख देनेवाला हो।

१४ त्वं जनानां जामिः मित्रः प्रियः ईड्यः सखिभ्यः सखा असि [ १५३६ ]— तू लोगोंका भाई, स्तुत्य, मित्रमें प्रिय मित्र है।

१५ देवान् यज। ऋतं बृहत् स्वं दमं यक्षि [ १५३७ ]— तू देवोंके लिए यज्ञ कर। यज्ञोंके लिए महान् यज्ञशालामें पूज्य होकर तू रह।

१६ तमांसि तिरः दर्शतः वृषा अग्निः इध्यते



[ १५३८ ]- अन्धकार दूर करनेवाला, दर्शनीय और बलवान् अग्नि आहुति देकर प्रदीप्त किया जाता है।

१७ मन्द्रं होतारं ऋत्विजं चित्रभानुं विभावसुं अग्निं ईडे [ १५४३ ]- आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलाकर लानेवाले, ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाले, विशेष तेजस्वी प्रकाशमान् अग्निकी हम स्तुति करते हैं।

१८ विश्वस्मान् अरावणः रक्षसः नः पाहि [ १५४५ ]-सब कंजूस राक्षसोंसे हमारी रक्षा कर। अग्नि रोगबीजोंका नाश करता है। रोगबीज, रोगजन्तु राक्षस हैं। क्योंकि वे प्राणियोंका नाश करते हैं।

१९ इनः अरतिः समिद्धः रौद्रः सुषुमान्, दक्षाय अदर्शि [ १५४६ ]- अग्नि सबोंका स्वामी, देवोंके पास जानेवाला, प्रदीप्त, शत्रुओंको भय दिखानेवाला, उपासकोंको इष्ट पदार्थ देनेवाला और बल बढ़ानेवाला है, ऐसा दिखाई दिया है।

२० चिकित् विभाति [ १५४६ ]- वह ज्ञान बढ़ाते हुए प्रकाशता है।

२१ रुशतीं अपाजन् बृहता भासा असिक्नीं एति [ १५४६ ]- तेजस्वी उवालोंको बाहर फेंकते हुए महान् प्रकाशसे रातमें यह प्रकाशता है। प्रकाशित होकर आगे जाता है।

२२ भद्रः भद्रयाः सचमानः पश्चात् जारः स्वसारं अभ्येति [ १५४८ ]- कल्याण करनेवाला अग्नि उषाके द्वारा सेवित होता है। बादमें शत्रुओंका नाश करनेवाला यह अग्नि अपनी बहिन उषाके पास जाता है।

यज्ञशालामें उषःकालमें अग्नि जलाई जाती है। थोड़ी देरके बाद दिन हो जाता है और उषाका नाश होता है। अग्नि ही उषाका नाश करता है। क्योंकि अग्निके प्रदीप्त होनेके थोड़ी देरके बाद ही उषःकाल समाप्त हो जाता है। उषा बहिन और अग्नि उषाका भाई है। पर यह अग्नि ही उषाका जार अर्थात् नाश करनेवाला है।

२३ नः विश्वाः गिरः सुक्षित्रीः वाजद्रविणसः [ १५५१ ]- हमारी सभी स्तुतियों हमें उत्तम घरका स्वामी बनाकर अन्न और धनसे युक्त करें।

२४ ऊतये यक्षासः पुरुवसुं पुरुप्रशस्तं अच्छु [ १५५४ ]- हमारे संरक्षणके लिए ये यज्ञ बहुत सारा धन रखनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसनीय अग्निके पास पहुंचावें। अग्निमें यज्ञ करनेके कारण हमारा संरक्षण हो।

२५ अमृतः मर्त्येषु, विशि होता मन्द्रतमः [ १५५५ ]

प्रजाओंमें यह अग्नि अमर है, यह प्रजाओंमें हवन करनेवाला और आनन्द बढ़ानेवाला है। हवनसे रोगोंके दूर होनेके कारण लोगोंका आनन्द बढ़ता है।

२६ मानुषीणां विशां पुर-एता तूर्णाः रथः सदा नवः अग्निः अदाभ्यः [ १५५६ ]- मानवी प्रजाओंका यह नेता, शीघ्रतासे सब कार्य करनेवाला, रथके समान प्रगतिशील, हमेशा तरुणोंके समान कार्य करनेवाला अग्नि किसीके द्वारा दबाया नहीं जा सकता।

२७ दाश्वान् मर्त्यः वाहसा प्रयांसि अभि अश्नोति, पाषकशोचिषः क्षयं [ १५५७ ]- दाता मनुष्य अग्निसे बहुत अन्न और उत्तम घर पानेकी इच्छा करता है।

२८ अभियुजः विश्वाः साह्वान् अमृतः देवानां क्रतुः अग्निः तुविश्रवस्तमः [ १५५८ ]- चढाई करनेवाले शत्रुओंको हरानेवाला, किसीसे भी न हारनेवाला, देवोंके लिए यज्ञ करनेवाला अग्नि बहुत सारा अन्न देनेवाला है।

२९ आहुतः अग्निः भद्रः। रातिः भद्रा। अध्वरः भद्रः। प्रशस्तयः भद्राः [ १५५९ ]- आहुति दिया गया अग्नि कल्याण करनेवाला है। तेरे दान कल्याण करनेवाले हैं। यज्ञ कल्याण करनेवाला है। स्तुतियां कल्याण करनेवाली हैं।

३० वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व, येन समत्सु सासहिः [ १५६० ]- शत्रुके साथ युद्ध करनेके समय मनको कल्याणकारक विचारसे भरपूर कर, जिससे युद्धमें विजय मिल सके।

३१ शर्धतां भूरि स्थिरा अव तनुहि [ १५६० ]- स्पर्धा करनेवाले शत्रुके महान् और सुदृढ़ सेनाका तू पराभव कर।

३२ गोमतः वाजस्यः ईशानः [ १५६१ ]- गायके वृषके साथ होनेवाले अन्नका तू स्वामी है।

३३ हे जातवेदः! अस्मे महि श्रवः देहि [ १५६१ ] हे सर्वज्ञ! हमें बहुत अन्न दे।

३४ वसुः कविः गिरा ईडेन्यः, अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि [ १५६२ ]- निवास करानेवाला, जानी और बाणीसे स्तुत्य तू चमकनेवाले धन हमें दे।

३५ हे राजन् अग्ने! वस्तो उषसः क्षपः [ १५६३ ]- हे अग्नि राजन्! तू दिन रात शत्रुओंका नाश कर।

३६ हे तिग्मजम्भ! रक्षसः प्रति दह [ १५६३ ]- हे तीक्ष्ण प्रकाशयुक्त अग्ने! राक्षसोंको जला डाल।







## सुभाषित

१ जनानां ते कः जामिः [ १५३५ ]- लोगोंमेंसे तेरा भाई कौन है ?

२ दाशु-अध्वरः कः [ १५३५ ]- कौन भला तुझे देकर यज्ञ करनेकी इच्छा करता है।

३ कस्मिन् श्रितः असि [ १५३५ ]- तू किसके आश्रयसे रहता है ?

४ हे अग्ने ! त्वं जनानां जामिः मित्रः प्रियः असि [ १५३६ ]- हे अग्ने ! तू मनुष्योंका भाई और प्रिय मित्र है। मनुष्योंके शरीरके अन्दर उष्णता रूपसे रहता है।

५ ईड्यः सखिभ्यः सखा [ १५३६ ]- तू प्रशंसनीय और मित्रोंका मित्र है।

६ ईडेभ्यः नमस्यः तमांसि तिरः दर्शतः वृषा सं इध्यते [ १५३८ ]- जो प्रशंसनीय, नमस्कार करनेके योग्य, अन्धकार दूर करनेवाला, दर्शनीय और बलवान् है उसका तेज बढ़ता है।

७ वृषणः वयं वृषणं दीद्यतं बृहत् समिधीमहि [ १५४० ]- बलवान् हम बलवान् तेजस्वी महान् अग्निको प्रज्वलित करते हैं।

८ समिधानस्य ते बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उदीरते [ १५४१ ]- प्रदीप्त होनेवाले तेरी बड़ी और सफेद ज्वालायें निकलती हैं।

९ विश्वस्मात् अरावणः रक्षसः नः पाहि [ १५४५ ]- सब अनुदार राक्षसोंसे हमारी रक्षा कर।

१० वाजेषु प्राव रम [ १५४५ ]- युद्धोंमें हमारी रक्षा कर।

११ नोदृष्टं आपि त्वां इत् हि [ १५४५ ]- हमारे समीपका भाई तू ही है।

१२ देवतातये वृधे नक्षामहे [ १५४५ ]- यज्ञकी सिद्धि और हमारे संवर्धनके लिए हम तेरा सहारा लेते हैं।

१३ इनः अरतिः समिद्धः रौद्रः दक्षाय अदर्शि [ १५४६ ]- तू स्वामी, प्रगतिशील, प्रदीप्त, शत्रुओंका भय दिखानेवाला और बल बढ़ानेवाला दिखाई देता है।

१४ चिकित् विभानि [ १५४६ ]- ज्ञानयुक्त तू प्रदीप्त होता है।

१५ रुशतीं अपाजन्, बृहता भासा असिक्तीं पति [ १५४६ ]- तेजस्वी प्रकाश गिराते हुए अपने महान् तेजसे राश्रीमें बह आगे जाना है।

१६ नः गिरः सुक्षितीः वाजद्रविणसः [ १५५१ ]- हमारी स्तुति हमें उत्तम घरका स्वामी तथा अन्न व धनसे युक्त करे।

१७ नः गिरः शिरशोचिषं दर्शतं अच्छ यन्तु [ १५५४ ]- हमारी स्तुतियां प्रज्वलित और दर्शनीय अग्निको पहुंचे।

१८ जातवेदसं अग्निं वार्याणां दानाय [ १५५५ ]- ज्ञान जिससे उत्पन्न हुआ है, ऐसे अग्निकी धनके दानके लिए हम प्रार्थना करते हैं।

१९ मानुषीणां विशां पुर-एता, तूर्णाः रथः सदा नवः अदाभ्यः [ १५५६ ]- मानवी प्रजाओंमें अग्रगामी, शीघ्रतासे काम करनेवाला, रथके समान आगे जानेवाला, सदा नया होकर काम करनेवाला अग्नि कभी दबाया नहीं जा सकता।

२० दाश्वान् मर्त्यः वाहसा प्रियांसि अभि अश्नोति [ १५५८ ]- दाता मनुष्य अग्निसे प्रिय अन्न प्राप्त करता है।

२१ पावक-शोचिषः क्षयं [ १५५७ ]- पवित्र प्रकाश-वालोंसे घर प्राप्त करता है।

२२ अभियुजः विश्वाः साह्वान् अमृक्तः देवानां क्रतुः अग्निः तुविश्रवस्तमः [ १५५८ ]- चढाई करनेवाले शत्रुकी सब सेनाओंको हरानेवाला, किसीसे न हारनेवाला, देवोंका यज्ञ करनेवाला अग्नि बहुत अन्न देनेवाला है।

२३ आहुतः अग्निः नः भद्रः [ १५५९ ]- आहुतियोंसे तृप्त हुआ हुआ अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला है।

२४ रातिः भद्रा [ १५५९ ]- दान कल्याण करनेवाले हों।

२५ अध्वरः भद्रः [ १५५९ ]- यज्ञ कल्याण करनेवाला हो।

२६ प्रशस्तयः भद्राः [ १५५९ ]- स्तुतियां कल्याण करनेवाली हों।

२७ वृत्रतूर्यं मनः भद्रं कृणुष्व [ १५६० ]- युद्धमें मनको कल्याणमय विचार करनेवाला कर।

२८ समत्सु सासहिः [ १५६० ]- युद्धमें शत्रुका पराभव करनेवाला हो।

२९ शर्धतां भूरि स्थिरा अवतनुहि [ १५६० ]- युद्ध करनेवाले सुदृढ़ शत्रुसेनाको तू हरानेवाला हो।

३० अभिष्टये ते वनेम [ १५६० ]- कल्याणके लिए तेरी भक्ति करते हैं।



३१ गोमतः वाजस्य ईशानः अस्मे महि श्रवः देहि  
[ १५६१ ]- गायोंके साथ मिलनेवाले अन्नका तू स्वामी है।  
हमें बहुत अन्न दे।

३२ अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि [ १५६२ ]- हमें चमकने-  
वाले धन दे।

३३ हे राजन् ! वस्तोः उत उषसः क्षपः, रक्षसः  
प्रति दह [ १५६३ ]- हे राजन् ! रात्रि और दिनमें शत्रुओंका  
नाश कर, राक्षसोंको जला दे।

३४ शुचिं ध्रुवं पावकं अध्वरे पुरः पुरुवारं, अद्रुहं  
कविं जातवेदसं सुम्नैः ईमहे [ १५६७ ]- शुद्ध, स्थिर,  
पवित्र करनेवाला, हिंसारहित यज्ञमें आगे स्थापित किये  
गये, अनेकोंके द्वारा स्वीकार करने योग्य, द्रोह न करनेवाले,  
ज्ञानी सर्वज्ञ अग्निकी धनके लिए स्तोत्रोंसे प्रार्थना करते हैं।

३५ देवासः मर्तसिः अमृतं, पायुं, ईड्यं त्वा दूतं  
दधिरे, जागृविं विभुं विश्वपतिं नमसा निषेदिरे [ १५६७ ]  
- देव और मनुष्य अमर, रक्षक और स्तुतिके योग्य ऐसे तुझ  
अग्निको हविको देवोंकी ओर पहुंचानेवाले दूतके रूपमें स्वीकार  
करते हैं तथा जागृत, व्यापक और प्रजारक्षक अग्निकी  
नमस्कार करके उपासना करते हैं।

३६ अस्मान् शिवः भव [ १५६९ ]- हमारा कल्याण  
करनेवाला हो।

३७ मीदुषः देवस्य पदं अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः  
[ १५७२ ]- स्तुत्य और विष्य अग्निका स्थान शत्रुओं द्वारा  
बाधा न पहुंचानेके योग्य संरक्षणके साधनोंसे युक्त रहता है।

३८ उपदृक् सूर्यः इव भद्रा [ १५७२ ]- उसकी  
दृष्टि सूर्यके समान कल्याण करनेवाली है।

## उपमा

१ अश्वः नः देववाहनः [ १५३९ ]- घोड़ेके समान  
देवोंका वाहन यह अग्नि है।

२ मानुषीणां विशां पुरः पता तूर्णाः रथः अग्निः  
[ १५५६ ]- मानवी प्रजाओंका नेता तथा शीघ्रतासे दौड़ने-  
वाले रथके समान यह अग्नि है।

३ मित्रं नः [ १५६५ ]- मित्रके समान इस अग्नि  
( प्रशंसन्ति ) प्रशंसा करते हैं।

४ जामयः देदिशतीः [ १५७० ]- बहिनें जिसप्रकार  
स्तुति करती हैं, उसीप्रकार ( गिरः ) हमारी वाणियां तेरी  
स्तुति करती हैं।

५ सूर्यः इव भद्रा उपदृक् [ १५७२ ]- सूर्यके समान  
कल्याण करनेवाली उसकी दृष्टि है।

## पञ्चदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                | देवता  | छन्दः                                    |
|-------------|--------------|---------------------|--------|--|
|             |              | ( १ )               |        |  |
| १५३५        | १।७।१।३      | गोतमो राहूगणः       | अग्निः | गायत्री                                  |
| १५३६        | १।७।५।४      | गोतमो राहूगणः       | "      | "  |
| १५३७        | १।७।५।५      | गोतमो राहूगणः       | "      | "  |
| १५३८        | ३।२७।१।३     | विश्वामित्रो गाथिनः | "      | "  |
| १५३९        | ३।२७।१।४     | विश्वामित्रो गाथिनः | "      | "  |
| १५४०        | ३।२७।१।५     | विश्वामित्रो गाथिनः | "      | "  |
| १५४१        | ८।४४।४       | विरूप आंगिरसः       | "      | "  |
| १५४२        | ८।४४।५       | विरूप आंगिरसः       | "      | "  |
| १५४३        | ८।४४।६       | विरूप आंगिरसः       | "      | "  |
| १५४४        | ८।६०।९       | भर्गः प्रागाथः      | "      | प्रगाथः ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १५४५        | ८।६०।१०      | भर्गः प्रागाथः      | "      | "  |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः  | देवता  | छन्दः  |
|-------------|--------------|---|--------|--|
| ( २ )       |              |   |        |  |
| १५४६        | १०।३।१       | त्रित आप्त्यः   | अग्निः | त्रिष्टुप्                                       |
| १५४७        | १०।३।२       | त्रित आप्त्यः   | "      | "  |
| १५४८        | १०।३।३       | त्रित आप्त्यः   | "      | "  |
| १५४९        | ८।८४।४       | उशना काव्यः   | "      | गायत्री  |
| १५५०        | ८।८४।५       | उशना काव्यः   | "      | "  |
| १५५१        | ८।८४।६       | उशना काव्यः   | "      | "  |
| १५५२        | ८।६०।१       | भर्गः प्रागाथः  | "      | प्रगाथः= ( विषमा बृहती<br>समा सतोबृहती )         |
| १५५३        | ८।६०।२       | भर्गः प्रागाथः  | "      | "  |
| १५५४        | ८।७१।१०      | सुवीति - पुरुषोद्धवांगिरसो  | "      | "  |
| १५५५        | ८।७१।११      | सुवीति - पुरुषोद्धवांगिरसो  | "      | "  |
| ( ३ )       |              |   |        |  |
| १५५६        | ३।११।५       | विश्वामित्रो गाथिनः   | "      | गायत्री  |
| १५५७        | ३।११।७       | विश्वामित्रो गाथिनः   | "      | "  |
| १५५८        | ३।११।९       | विश्वामित्रो गाथिनः   | "      | "  |
| १५५९        | ८।१९।१९      | सोभरिः काण्वः   | "      | काकुभः प्रगाथः= ( विषमा<br>ककुप्, समा सतोबृहती ) |
| १५६०        | ८।१९।२०      | सोभरिः काण्वः   | "      | "  |
| १५६१        | १।७९।४       | गोतमो राहूगणः   | "      | उष्णिक्  |
| १५६२        | १।७९।५       | गोतमो राहूगणः   | "      | "  |
| १५६३        | १।७९।६       | गोतमो राहूगणः   | "      | "  |
| ( ४ )       |              |   |        |  |
| १५६४        | ८।७४।१       | गोपवन आत्रेयः   | "      | अनुष्टुप्मुख प्रगाथः=<br>( अनुष्टुप्+गायत्री )   |
| १५६५        | ८।७४।२       | गोपवन आत्रेयः   | "      | "  |
| १५६६        | ८।७४।३       | गोपवन आत्रेयः   | "      | "  |
| १५६७        | ६।१५।७       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आंगिरसो वा   | "      | जगती   |
| १५६८        | ६।१५।८       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आंगिरसो वा   | "      | "  |
| १५६९        | ६।१५।९       | भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आंगिरसो वा   | "      | "  |
| १५७०        | ८।१०२।१३     | प्रयोगो भार्गवः, पावकोग्निर्बार्हस्पत्यो वा,<br>गृहपतियविष्ठो सहसः पुत्रो बान्यतरो वा | "      | गायत्री  |
| १५७१        | ८।१०२।१४     | प्रयोगो भार्गवः, पावकोग्निर्बार्हस्पत्यो वा,<br>गृहपतियविष्ठो सहसः पुत्रो बान्यतरो वा | "      | "  |
| १५७२        | ८।१०२।१५     | प्रयोगो भार्गवः, पावकोग्निर्बार्हस्पत्यो वा,<br>गृहपतियविष्ठो सहसः पुत्रो बान्यतरो वा | "      | "  |



## अथ षोडशोऽध्यायः ।



अथ सप्तमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ७-३ ॥

[ १ ]

( १-२१ ) १, ८, १८, मेघ्यातिथिः काण्वः; २ विश्वामित्रो गाथिनः; ३-४ भर्गः प्रागाथः; ५ सोभरिः काण्वः;  
६, १५ शुनःशेष आजोगतिः; ७ सुकक्ष आंगिरसः; ९ विश्वकर्मा भोवनः; १० अनानतः पावच्छेपिः; ११ भरद्वाजो  
बार्हस्पत्यः; १२ गोतमो राहूगणः; १३ ऋजिश्वा भारद्वाजः; १४ वामदेवो गोतमः; १६ हयंतः प्रागाथः; १७  
देवातिथिः काण्वः १९ वालखिल्यः ( श्रुष्टिगुः काण्वः ); २० पर्वतनारदौ; २१ अत्रिभौमः ॥ १, ३-४, ७-८,  
१५ १७-१९ इन्द्रः; २ इन्द्राग्नी; ५ अग्निः; ६ वरुणः; ९ विश्वकर्मा; १०, २०, २१ पवमानः सोमः; ११  
पूषा; १२ भरतः; १३ विश्वे देवाः; १४ द्यावापृथिवी; १६ अग्निः हवींषि वा ॥ १, ३-५, ८, १७-१९  
प्रगाथः= ( विश्वमा बृहती, समा सतोबृहती ); २, ६-७, ११-१६ गायत्री; ९ त्रिष्टुप्; १०  
अत्यष्टिः; २० उष्णिक्; २१ जगती ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २  
१५७३ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
समीचीनास ऋभवः समस्वरनुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।७ )

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २  
१५७४ अस्येदिन्द्रो वावृषे वृण्यशवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा

॥ २ ॥ १ ( रि ) ॥

[ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व ३ ] ( ऋ. ८।३।८ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१५७५ प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१२।५ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१५७६ इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१२।६ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १५७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( आयवः ) उपासक मनुष्य ( पूर्वपीतये ) प्रथम रतपान करनेके लिए ( त्वा स्तोमेभिः अभि ) तेरी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं । ( समीचीनासः ऋभवः ) योग्य इष्टिवाले ऋभु ( समस्वरन् ) तेरी स्तुति करते हैं, ( रुद्राः पूर्व्यं गृणन्तः ) रुद्र पुराण पुरुष ऐसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

याज्ञिक लोग, ऋभु और रुद्र ये सब इन्द्रके ही गुण गाते हैं ।

[ १५७४ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( सुतस्य विष्णवि मदे ) सोमका व्यापक आनन्द प्राप्त होनेपर ( अस्य इत् वृण्यं शवः ) इस यजमानके धीर्य और बलको बढ़ाता है । इसलिए ( आयवः अद्या ) मनुष्य आज भी ( पूर्वथा ) पहलेके सम्मान ही ( अस्य तं महिमानं अनुष्टुवन्ति ) इस इन्द्रकी उस महिमाका वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

[ १५७५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! ( उक्थिनः वां प्रार्चन्ति ) वेदपाठी तुम्हारी अर्चना करते हैं, ( नीथाविदः जरितारः ) सामगायक तेरी स्तुति करते हैं, ( इषः आवृणे ) अन्नके लिए मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥

[ १५७६ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! तुम ( दासपत्नीः नवतिं पुरः ) शत्रुओंकी नब्बे नगरियोंको ( एकेन कर्मणा साकं ) एक ही प्रयत्नसे एक ही समय ( अधूनुतं ) हिला देते हो ॥ २ ॥



१५७७ इन्द्राग्नी अपसस्पयुष प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्याऽनु ॥ ३ ॥ ( ऋ. ३।१२।७ )

१५७८ इन्द्राग्नी तविषाणि वांसधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्युत्थितम् ॥ ४ ॥ २ ( टा ) ॥  
[ धा० १३ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ३।१२।८ )

१५७९ शग्ध्युः शु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।  
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।९ )

१५८० पौरौ अश्वस्य पुरुकृद्रवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।  
न किर्हि दानं परि मर्धिषत्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥ ३ ( चु ) ॥  
[ धा० १७ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ८।६१।६ )

१५८१ त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।  
उद्रावृषस्व मघवन्गविष्टये उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६१।७ )

१५८२ त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे  
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ २ ॥ ४ ( फा ) ॥  
[ धा० १९ । उ० २ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ८।६१।८ )

[ १५७७ ] ( इन्द्राग्नी ) हे इन्द्र और अग्ने ! ( धीतयः ) होता आदि ऋत्विज ( ऋतस्य पथ्या अनु ) यज्ञके मार्गसे ( अपसः परि ) हमारे यज्ञमें ( उप प्रयन्ति ) आकर बैठते हैं ॥ ३ ॥

[ १५७८ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि ) तुम्हारे बल और अन्न एकत्र ही रहते हैं । ( युवो हितं ) तुम्हारे बल ( अप्युत्थितं ) शुभ कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले हैं ॥ ४ ॥

[ १५७९ ] हे ( शचीपते इन्द्र ) शक्तिमान् इन्द्र ! ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) सब प्रकारकी संरक्षणकी शक्तियोंसे ( उ सु शग्ध्युः ) तू उत्तम रीतिसे तमर्थ है । हे ( शूर ) शूर-इन्द्र ! ( वसुविदं ) धन सम्पन्न ( यशसं ) यशस्वी ( भगं न ) भाग्यवान्के समान ( त्वा हि अनुचरामसि ) तेरे अनुकूल होकर हम चलते हैं ॥ १ ॥

[ १५८० ] हे इन्द्र ! तू ( अश्वस्य पौरः ) घोड़ोंको पुष्ट करनेवाला और ( गवां पुरुकृत् असि ) गायोंका पोषण करनेवाला है । हे ( देव ) देव ! ( हिरण्ययः उत्सः ) सोनेके समान जलका हौज जैसे होता है, बंसा ही तू तृप्ति करनेवाला है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वे दानं ) तेरे दान ( न किः हि परमर्धिषत् ) कोई भी नष्ट नहीं कर सकता, ( यत् यत् यामि ) जो जो मैं मांगता हूँ, ( तत् आ भर ) वह मुझे भरपूर दे ॥ २ ॥

[ १५८१ ] ( त्वं वसुत्तये हि एहि ) तू धन देनेके लिए अवश्य आ, ( चेरवे भगं विदाः ) सदाचरण करनेवालेको भाग्य दे । हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! ( गविष्टये उत् वावृषस्व ) गायोंकी इच्छा करनेवाले मुझे गायें दे, तथा हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अश्वं इष्टये ) घोड़ोंकी इच्छा करनेवाले मुझे ( उत् ) घोड़े दे ॥ १ ॥

[ १५८२ ] हे इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( पुरु सहस्राणि शतानि च ) बहुत हजार अथवा सैंकड़ों ( यूथा दानाय मंहसे ) गायोंके मुण्ड दान देनेवालेको वेता है । ( पुरंदरं इन्द्रं ) शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाले इन्द्रको ( अवसे ) अपने रक्षणके लिए ( गायन्तः विप्र-वचसः ) सामगान करनेवाले ज्ञानयुक्त बात करनेवाले हम ( आ चकृम ) बुलाते हैं ॥ २ ॥



१५८३ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रा जनानाम् ।

मधोन पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०३।६ )

१५८४ अश्वं न गीर्भी रथ्य सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।

उभे तोके तनये दस्म विशपते पर्षि राधो मघोनाम्

॥ २ ॥ ५ ( पु ) ॥

[ धा० १५ । उ० १ । स्व० ५ ] ( ऋ. ८।१०३।७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१५८५ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके

॥ १ ॥ ६ ( व ) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।२५।१९ )

१५८६ कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ७ ( य ) ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१३।१९ )

१५८७ इन्द्रमिद्वतातये इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३।५ )

[ १५८३ ] ( होता मन्द्रः यः ) यज्ञमें देवोंको बुलानेवाला और आनन्द देनेवाला जो अग्नि है, वह ( विश्वा वसु ) सब प्रकारके धन ( जनानां दयते ) लोगोंको देता है । ( अस्मै अग्नये ) इस अग्निको ( मधोः न ) सोमरसके ( प्रथमानि पात्रा ) मुख्य पात्र और ( स्तोमाः प्रयन्तु ) स्तोत्र प्राप्त हों ॥ १ ॥

[ १५८४ ] ( दस्म विशपते ) हे सुन्दर और प्रजापालक अग्ने ! तेरी ( सुदानवः देवयवः ) उत्तम वान देनेवाले और देवत्व प्राप्त करनेवाले यजमान ( रथ्यं अश्वं न ) रथमें जोड़े जानेवाले घोड़के समान / गीर्भीः मर्मृज्यन्ते ) अपनी वाणीसे स्तुति करते हैं । ऐसा तू यज्ञ करनेवालोंके ( तनये तोके उभे ) पुत्र और पौत्र इन दोनोंको भी ( मघोनां राधः पर्षि ) धनवानोंके धन दे ॥ २ ॥

रथमें जोड़े जानेवाले घोड़ोंका उत्साह बढ़ानेके लिए रथको हांकनेवाले उनकी स्तुति करते हैं, उसीप्रकार यज्ञ करनेवाले लोग अग्निकी स्तुति करते हैं ।

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १५८५ ] ( वरुण ) वरुण ! ( मे इमं हवं श्रुधि ) मेरी यह प्रार्थना सुन ( अद्य मृडय च ) और आज हमें सुखी कर । ( वस्युः त्वां आ चके ) अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १५८६ ] हे ( वृषन् ) इष्ट फल देनेवाले इन्द्र ! ( कया ऊत्या ) कौनसे रक्षणशक्तियसे ( त्वं नः अभि प्रमन्दसे ) तू हमें अधिक आनन्द देता है ? ( कया स्तोतृभ्यः आभर ) कौनसी रक्षणशक्तियसे तू स्तोताओंको भरपूर अन्न देता है ? ॥ १ ॥

[ १५८७ ] ( देवतातये ) यज्ञके लिए ( इन्द्रं इत् हवामहे ) इन्द्रको ही हम बुलाते हैं ( अध्वरे प्रयति इन्द्रं ) अहिंसामय यज्ञके शुरु होते ही हम इन्द्रको बुलाते हैं । ( समीके वनिनः ) युद्धमें भक्तलोग ( इन्द्रं ) इन्द्रको ही बुलाते हैं और ( धनस्य सातये ) धनके वान करनेके समय ( इन्द्रं ) इन्द्रको ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

३८ [ साम. हिन्वी भा. २ ]



१ २ ३ १ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २  
१५८८ इन्द्रो मद्वा रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २  
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे स्वानास इन्द्रवः ॥ २ ॥ ८ ( वा ) ॥

[ धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१।६ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१५८९ विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्व३५ स्वा हि ते ।

१ २ ३ २ ३ २ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिस्तु ॥ १ ॥ ९ ( ला ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १०।८।१।६ )

३ २ ३ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१५९० अया रुचा हरिण्या पुनाना विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरौ न सयुग्वभिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्कभिः सप्तास्येभिर्ऋक्कभिः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।११।११ )

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१५९१ प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अगमन्नुक्तानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।११।१३ )

[ १५८८ ] ( इन्द्रः शवः मद्वा ) इन्द्रने अपनी शक्तिकी महिमासे ( रोदसी पप्रथत् ) झुलोक और पृथिवीका विस्तार किया । ( इन्द्रः सूर्यं अरोचयत् ) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया, ( इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि ) इन्द्रमें ही सारे भुवन ( येमिरे ) रहते हैं । ( स्वानासः इन्द्रवः इन्द्रे ) छने हुए सोमरस इन्द्रको दिए जाते हैं ॥ २ ॥

[ १५८९ ] हे ( विश्वकर्मन् ) सब कर्म करनेवाले ईश्वर ! ( हविषा वावृधानः ) हविसे बढनेवाला ( स्वयं ) स्वयं तू ही ( तन्वं स्वा हि ते यजस्व ) अपने शरीरको स्वयं द्वारा किए जानेवाले विश्वरूपी यज्ञमें अर्पण कर । ( अन्ये जनासः अभितः मुह्यन्तु ) अन्य यज्ञ न करनेवाले जन चारों दिशाओंमें मूर्च्छित होकर गिर जाएं । ( इह ) यहां वह ( मघवा ) धनवान् इन्द्र ( सूरिः अस्माकं अस्तु ) तथा सब जानी हमारे होकर रहें ॥ १ ॥

[ १५९० ] ( पुनानः ) छाने जानेवाला सोम ( हरिण्या अया रुचा ) हरे रंगके तेजसे ( सूरः सयुग्वभिः न ) जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है, उसीप्रकार ( विश्वा द्वेषांसि तरति ) सब शत्रुओंका नाश करता है । ( पुनानः हरिः अरुपः ) पवित्र होनेवाला हरे रंगका सोम चमकता है तथा ( पृष्ठस्य धारा रोचते ) छलनीकी पीठपर इसकी धारा भी चमकती है, हे सोम ! तू ( सप्तास्येभिः ) सात मुखोंसे-तेजोंसे ( ऋक्कभिः ) और किरणोंसे ( विश्वा रूपा परियासि ) सब तेजस्वी पदार्थोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होकर जाता है ॥ १ ॥

[ १५९१ ] ( चेकितत् प्राचीं प्रदिशं अनुयाति ) सर्वज्ञानी सोम पूर्व दिशाको जाता है, तब ( दैव्यः दर्शतः रथः रश्मिभिः सं यतते ) दिव्य और सुन्दर ऐसा तेरा रथ किरणोंके कारण तेजस्वी दीखता है । ( पौंस्या उक्तानि अगमन् ) पौरुषका वर्णन करनेवाले स्तोत्र इन्द्रको प्राप्त होते हैं । स्तोता उनसे ( जैत्राय इन्द्रं हर्षयन् ) विजयके लिए इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ( वज्रः च ) वज्र भी इन्द्रको प्राप्त होता है, हे सोम और इन्द्र ! ( यत् समत्सु अनपच्युता भवथः ) तब तुम दोनों युद्धमें नहीं हारते ॥ २ ॥



१५९२ त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।

परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।

त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ ३ ॥ १० ( छे ) ॥

[ धा० ४१ । उ० ५ । स्व० ७ ] ( ऋ. १।११।२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१५९३ उत नो गोषणि धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्युतये ॥ १ ॥ ११ ( यौ ) ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।५३।१० )

१५९४ शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ १ ॥ १२ ( व ) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।८६।८ )

१५९५ उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥ १३ ( रौ ) ॥

[ धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ६।५२।९ )

१५९६ प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।१६।५ )

१५९७ पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । उह्याथे सनादृतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।५६।६ )

[ १५९२ ] हे सोम ! ( त्वं ह ) तूने ( पणीनां त्यत् वसु ) पणियोंसे उस धनको ( विदः ) प्राप्त किया । ( ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः ) यज्ञके आधार भूत जलोंसे ( स्वे दमे सं मर्जयसि ) अपने यज्ञके स्थानमें उत्तम प्रकारसे तू शुद्ध होता है । ( परावतः न साम तत् ) दूरसे वह सामगान सुननेमें आता है ( यत्र धीतयः रणन्ति ) जहाँ यज्ञ करनेवाले यजमान आनन्दित हुए हुए दीखते हैं, ( त्रिधातुभिः अरुषीभिः ) तीन स्थान पर प्रकाशनेवाले तेजोंसे ( रोचमानः ) चमकनेवाला सोम ( वयः दधे वयः दधे ) अन्न देता है, निश्चयसे अन्न देता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १५९३ ] हे पूषा देव ! ( उत ) और ( गो-षणि अश्व-सां वाजसां ) गाय, घोडे और अन्न देनेवाली तथा ( नृवत् ) पुत्र अथवा सेवक देनेवाली ( धियं ) बुद्धिको ( नः ऊतये कृणुहि ) हमारे संरक्षणके लिए उपयोगी बना ॥ १ ॥

[ १५९४ ] हे ( सत्य-शवसः नरः ) सत्य बलसे युक्त वीर महतो ! ( शशमानस्य स्वेदस्य ) तुम्हारी स्तुति करनेके कारण पसीनसे तर-ब-तर और ( वेनतः ) फलकी इच्छा करनेवालोंको ( कामस्य विदः ) इष्ट फल दे ॥ १ ॥

[ १५९५ ] ( ये अमृतस्य सूनवः ) जो अमर प्रजापतिके पुत्र हैं, वे ( नः गिरः उप शृण्वन्तु ) हमारी स्तुति सुनें और ( नः सुमृडीकाः भवन्तु ) हमें उत्तम सुख देनेवाले हों ॥ १ ॥

[ १५९६ ] हे ( शुची ) पवित्र द्यावापृथिवियों ! ( प्रशस्तये उप ) स्तुति करनेके लिए तुम्हारे पास आकर ( द्यवी वां ) तेरा स्वी तुम दोनोंको ( उपस्तुतिं महि अभि भरामहे ) स्तुति और स्तोत्र बड़े प्रमाणमें अर्पित करते हैं ॥ १ ॥

[ १५९७ ] हे देवियों ! ( तन्वा दक्षेण ) अपने शरीरसे और बलसे तुम ( मिथः पुनाने ) यज्ञ और यजमान इन दोनोंको शुद्ध करते हुए ( राजथः ) प्रकाशित होते हो और ( सनात् ऋतं उह्याथे ) हमेशा यज्ञ करने हो ॥ २ ॥



१५९८ मही मित्रस्य साधयस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं निषेदथुः ॥ ३ ॥ १४ ( का ) ॥  
[ धा० ६ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ४।९६।७ )

१५९९ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥ ( ऋ. १।३०।४ )

१६०० स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥ ( ऋ. १।३०।९ )

१६०१ ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ १५ ( ह ) ॥  
[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।३०।६ )

१६०२ गाव उप वदावट मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७२।१२ )

१६०३ अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७२।११ )

१६०४ सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनचारमक्षितम् ॥ ३ ॥ १६ ( रा ) ॥  
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।७२।१० )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ १५९८ ] ( मही ) हे बड़ी छावापृथिवियो ! तुम ( मित्रस्य साधयः ) अपने मित्रको, जो तुम्हारी स्तुति करता है, अभिलषित फल देती हो । ( ऋतं तरन्ती ) यज्ञका रक्षण करती हुई और ( पिप्रती ) यज्ञको पूर्ण करती हुई ( यज्ञं परि निषेदथुः ) यज्ञको आश्रय देती हो ॥ ३ ॥

[ १५९९ ] हे इन्द्र ! ( अयं कपोतः ) यह कबूतर जिसप्रकार ( गर्भधि इव ) अपनी कबूतरीके पास जाता है, उसीप्रकार ( ते समतसि ) वह तेरे पास आता है, इसलिए ( नः तत् वचः ) हमारी वह प्रार्थना ( ओहसे ) तू विचारपूर्वक सुनता है ॥ १ ॥

[ १६०० ] हे ( राधानां पते ) धनोंके स्वामी और ( गिर्वाहः ) स्तुतिके योग्य ( वीर ) शूर इन्द्र ! ( यस्य ते स्तोत्रं ) जिस तेरे वे स्तोत्र हैं, उस तेरी ( विभूतिः सूनृता अस्तु ) वैभवसम्पन्न और सत्यस्वरूप वाणी सत्य हो ॥ २ ॥

[ १६०१ ] हे ( शतक्रतो ) सैंकड़ों कार्य करनेवाले इन्द्र ! ( अस्मिन् वाजे ) इस युद्धमें ( नः ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए तू ( ऊर्ध्वः तिष्ठ ) तैय्यार रह । हम तुझसे ( अन्येषु ) अन्य कार्योंके विषयमें ( सं ब्रवावहै ) मिलकर विचार करें ॥ ३ ॥

[ १६०२ ] हे ( गावः ) गायो ! ( अवटे उप वद ) यज्ञके स्थान पर आओ और अपना शब्द करो, तुम ( मही यज्ञस्य रप्सुदा ) महान् यज्ञके फल देनेवाली हो । ( उभा कर्णा हिरण्यया ) तुम्हारे दोनों कान सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत हैं ॥ १ ॥

[ १६०३ ] ( अद्रयः ) आदरणीय अध्वर्यु ( अभ्यारमित् ) यज्ञके पास आ गए हैं । ( निषिक्तं मधु ) बचे हुए इस मोठे सोयरसको ( अवटस्य विसर्जने ) महावीरके विसर्जन करनेके समय ( पुष्करे ) कलशमें रखा जाता है ॥ २ ॥

[ १६०४ ] ( उच्चा-चक्रं ) जिसके ऊपरके भागमें चक्र है ( परिज्मानं नीचीनचारं अक्षितम् ) और चारों ओरसे नीचे झुके हुए नीचेके द्वारके पास जो क्षीण नहीं हुआ है, ऐसे ( अवटं नमसा सिञ्चन्ति ) महावीरको नमस्कार करके यज्ञ करनेवाले हवन करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ४ ]

१६०५ मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।

महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।७ )

१६०६ सव्यामनु स्फिग्मं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।

मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तुयमेहि द्रवा पिब

॥ २ ॥ १७ ( वी ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।१।८ )

१६०७ इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।३ )

१६०८ अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये

॥ २ ॥ १८ ( रि ) ॥

[ धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१।४ )

१६०९ यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।

तिरश्चिदर्थं रुशमे पवीरवि तुभ्येतसो अज्यते रयिः

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।९ )

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १६०५ ] हे इन्द्र ! ( उग्रस्य तव सख्ये मा भेम ) महान् वीर ऐसे तेरी मित्रतामें रहकर हम किसीसे न डरें । ( मा श्रमिष्म ) हम न थकें । ( वृष्णः ते ) उपासकोंकी कामना तृप्त करनेवाले तेरे ( महत् कृतं अभि चक्ष्यं ) महान् कार्य वर्णनीय हो गए हैं । ( तुर्वशं यदुं पश्येम ) हम तुर्वश और यदुंको आनन्दित अवस्थामें देखें ॥ १ ॥

[ १६०६ ] ( वृषा ) बलवान् इन्द्र ! तू ( सव्यां स्फिग्मं अनु ) अपने बायें हाथके भागसे ( वावसे ) सबोंको आधार देता है । ( दानः अस्य न रोषति ) काटनेवाला हिंसक शत्रु इसे कष्ट नहीं दे सकता । ( सारघेण संपृक्ताः धेनवः ) शहदकी मक्खीके शहदके समान मोठे दूधसे युक्त गायोंके समान आनन्ददायक सोम ! ( तूयं एहि ) तू यहां शीघ्र आ ! ( द्रव ) यज्ञमें शीघ्र पहुंच और हे इन्द्र ! ( पिब ) सोम पी ॥ २ ॥

[ १६०७ ] हे ( पुरु-वसो ) बहुत धनवान् इन्द्र ! ( मम याः इमाः गिरः ) मेरी जो ये स्तुतियां हैं, वे ( त्वा वर्धन्तु ) तुझे बढ़ावें । ( पावक-वर्णाः शुचयः विपश्चितः ) अग्निके समान तेजस्वी और शुद्ध ज्ञानी ( स्तोमैः अभ्य-नूषत ) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १६०८ ] ( अयं ) यह इन्द्र ( सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः ) हजारों ऋषियोंके द्वारा बलवान्के रूपमें प्रसिद्ध किया गया है । वह ( समुद्रः इव पप्रथे ) समुद्रके समान विस्तृत है । ( अस्य सत्यः सः महिमा शवः ) इस इन्द्रकी वह सत्य महिमा और वह बल प्रसिद्ध है, ( यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे ) यज्ञोंमें और ब्राह्मणोंके राज्यमें उसकी स्तुति होती है ॥ २ ॥

[ १६०९ ] ( विश्वः अरिः आर्यः अयं ) सब लोकोंका स्वामी तथा श्रेष्ठ यह इन्द्र भी ( दासः अस्य शेव-धिपा ) दासके समान जिस यज्ञके खजानेकी रक्षा करता है, ( सः ) वह यज्ञ ( अयं रुशमे पवीरवि तिरः चित् ) अर्थ, रुशम और पवि इनमें गुप्त रहकर भी ( तुभ्या इत् अज्यते ) तुझे ही हवि प्रदान करता है ॥ १ ॥



१६१० तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।

अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यः शवोऽस्मे स्वानास इन्द्रवः ॥ २ ॥ १९ ( त ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।११।१० )

१६११ गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ १ ॥

( ऋ. ९।१०५।४ )

१६१२ स नो हरीणां पत इन्दो देव पसरस्तमः । सखेव सख्ये नर्या रुचे भव ॥ २ ॥

( ऋ. ९।१०५।५ )

१६१३ सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।

साह्वाः इन्दो परि बाधो अप द्रयुम् ॥ ३ ॥ २० ( ल ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १४ ] ( ऋ. ९।१०५।६ )

१६१४ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुः रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।

सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणः हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।८६।४३ )

[ १६१० ] ( तुरण्यवो विप्रासः ) यज्ञ करनेमें शीघ्रता करनेवाले ज्ञानी ( मधुमन्तं घृतश्चुतं ) मधुर दूध और घीकी आहुति जिसके लिए दी जाती है, ऐसे ( अर्क आनृचुः ) पूज्य इन्द्रकी अर्चना करते हैं । ( अस्मे रयिः पप्रथे ) हमारा हविरूपी धन प्रसिद्ध हो । ( वृष्ण्यः शवः ) सोम देनेवाले बल प्रसिद्ध हों और ( अस्मे स्वानासः इन्द्रवः ) हमारे द्वारा शुद्ध किए गए सोमरस प्रसिद्ध हों ॥ २ ॥

[ १६११ ] हे ( इन्दो ) सोम ! ( नः गोमत् अश्ववत् ) हमें गाय और घोड़ोंसे युक्त धन ( धनिव ) दे । हे ( सु-दक्ष ) उत्तम बल सम्पन्न सोम ! ( सुतः ) रस निकालनेके बाद ( गोषु शुचिं वर्णं च धारय ) गायके दूधसे शुद्ध वर्णको धारण कर ॥ १ ॥

गायका दूध सोममें मिला ।

[ १६१२ ] ( हरीणां पते देव इन्दो ) हे हरे रंगके वनस्पतिके स्वामी सोम देव ! ( पसरस्तमः नर्याः सः ) अत्यन्त तेजस्वी और मानवोंका हित करनेवाला यह तू ( नः रुचे भव ) हमारा तेज बढ़ानेवाला हो । ( सखा सख्ये इव ) जिसप्रकार एक मित्र दूसरे मित्रकी सहायता करता है, उसीप्रकार तू हमारी सहायता कर ॥ २ ॥

[ १६१३ ] हे सोम ! ( त्वं सनेमि कं अस्मत् आ ) तू प्राचीनकालसे चले आनेवाले सुखको हमसे प्रकट कर, हे ( साह्वान् इन्दो ) शत्रुको हरानेवाले सोम ! ( बाधः परि ) बाधा डालनेवाले शत्रुओंका नाश कर, तथा ( द्रयुं अप ) दुहरा व्यवहार करनेवाले शत्रुको मार तथा ( अ-देवं अत्रिणं चित् ) दिव्यगुणोंसे रहित और खाऊ शत्रुको भी मार ॥ ३ ॥

[ १६१४ ] सोमको ऋत्विजलोग ( अञ्जते ) गायके दूधके साथ मिलाते हैं, ( व्यञ्जते ) अनेक रीतिसे मिलाते हैं, ( समञ्जते ) उत्तम रीतिसे मिलाते हैं ( क्रतुं रिहन्ति ) फिर इस मीठे सोमका स्वाद लेते हैं, ( मध्वा अभ्यञ्जते ) मीठे दूधके साथ मिलाते हैं ( सिन्धोः उच्छ्वासे ) पानीके ऊँचे भागसे ( पतयन्तं मुक्षणं ) गिरनेवाले सोमको एवं ( पशुं ) सबको देखनेवाले सोमको ( हिरण्यपावाः अप्सु गृभ्णते ) सोमसे पानीमें पवित्र करके फिर पानीमें मिलाते हैं ॥ १ ॥



१६१५ विपश्चिते पवमानाय गायत मही न भ्रातृन्धा अर्पति ।  
 अहिर्न जूणांमति सर्पति त्वचमत्यो न कीडन्नसरदृषा हरिः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८६।४४ )

१६१६ अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।  
 हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्थः ॥ ३ ॥ २१ ( ले ) ॥  
 [ धा० ३९ । उ० नास्ति । स्व ७ ] ( ऋ. १।८६।४५ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः ॥ ३ ॥ सप्तमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ७ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

[ १६१५ ] हे ऋत्विजो ! ( विपश्चिते पवमानाय गायत ) ज्ञानी और छानेजानेवाले सोमकी स्तुतिका गान करो । ( माहि धारा न अन्धः अत्यर्षति ) वह सोम बड़ी धाराके समान प्रवाहसे अन्न देता है । ( अहिः न ) सांपके समान ( जूणां त्वचं अति सर्पति ) गली हुई चमडीको वह छोड़ता है । ( दृषा हरिः ) बलवान् और हरे रंगका वह सोमरस ( अत्यः न ) घोड़ेके समान ( कीडन् असरत् ) क्रीड़ा करता हुआ कलशमें गिरता है ॥ २ ॥

[ १६१६ ] ( अग्रेगः राजा ) प्रगति करनेवाला राजा सोम ( आप्य-स्तविष्यते ) जलमें मिलाया जाता हुआ प्रशंसित होता है । ( अह्नां विमानः ) बिनको मापनेवाला सोम ( भुवनेषु अर्पितः ) जलमें रखा हुआ है । ( हरिः घृतस्नुः ) हरे रंगका और पानीमें मिलाया गया ( सु-दृशीकः अर्णवः ) सुन्दर दर्शनीय और पानीमें रहनेवाला ( ज्योतिरथः ) तेजस्वी रथ जिसका है, ऐसा ( रायः ओक्थः ) यह सोम धनके घरको रखनेवाला है ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥

## षोडश अध्याय

### इन्द्र-देवता

इस सोलहवें अध्यायमें अनेक देवताओंकी स्तुति है । उनमें इन्द्र देवताकी बड़ी स्तुति है । वह इसप्रकार है—

१ इन्द्रः सुतस्य विष्णवि मदे अस्य वृष्ण्यं शवः  
 वावृधे [ १५७४ ]- इन्द्र सोमरस पीनेके बाद विशेष आनन्द प्राप्त करके इस यजमानका वीर्य और बल बढ़ाता है ।

२ आयवः अद्य पूर्वथा अस्य तं महिमानं अनुधु-  
 वन्ति [ १५७४ ]- मनुष्य आज पहलेके समान इस इन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हैं ।

३ हे शचीपते इन्द्र ! विश्वाभिः ऊतिभिः सुशग्धि  
 [ १५७९ ]- हे शक्तिमान् इन्द्र ! सब संरक्षणके साधनोंसे तू समर्थ हुआ है ।

४ हे शूर ! वसुविदं यशसं, भगं न, त्वा अनु  
 चरामसि [ १५७९ ]- हे शूर इन्द्र ! धनसे युक्त, यशस्वी और भाग्यवान्के समान रहनेवाले तेरे अनुकूल होकर ही हम आचरण करें ।

५ अश्वस्य पौरः गवां पुरुकृत् असि [ १५८० ]- इन्द्र घोड़ोंको पुष्ट करनेवाला और गायोंका पोषण करनेवाला है ।

६ हे इन्द्र ! त्वे दानं नकिः परमर्षिषत् । यत् यामि



तत् आभर [ १५८० ]- हे इन्द्र ! तेरे दान कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । जो मैं मांगता हूँ, वह मुझे भरपूर दे ।

७ हे देव ! हिरण्ययः उत्सः [ १५८० ]- हे इन्द्र देव ! जैसे सोनेसे हौज भरा हुआ हो, वैसे ही तू सम्पत्तिसे भरा हुआ है ।

८ वसुतये एहि [ १५८० ]- धन देनेके लिए तू आ ।

९ चेरवे भगं विदाः [ १५८० ]- उत्तम आचरण करनेवालेको भाग्य दे ।

१० हे मघवन् ! गविष्टये वावृषस्व [ १५८० ]- हे धनवान् इन्द्र ! गायकी इच्छा करनेवाले मुझे गायें दे ।

११ अश्वं इष्टये उत् [ १५८० ]- घोड़ेकी इच्छा करनेवालेको घोड़े दे ।

१२ त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे [ १५८२ ]- तू अनेक अर्थात् हजारों और सैंकड़ों गायोंके झुण्ड दान करनेके लिए पासमें रखता है ।

१३ हे वृषन् ! कया उत्था त्वं नः अभि प्रमन्दसे [ १५८६ ]- हे इन्द्र ! तू कौनसे संरक्षण सामर्थ्यसे हमें अधिक आनन्द देता है ।

१४ इन्द्रः महा रोदसी पप्रथत् [ १५८८ ]- इन्द्रने अपनी शक्तिसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको विस्तृत किया ।

१५ इन्द्रः सूर्य अरोचयत् [ १५८८ ]- इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया ।

१६ इन्द्रे विश्वा भुवनानि येमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रमें सब भुवन रहते हैं ।

१७ हे राधानां पते ! गिर्वणः वीर ! यस्य ते स्तोत्रं विभूतिः सन्नुता अस्तु [ १६०० ]- हे धनके अधिपते ! हे स्तुत्य वीर इन्द्र ! जो तेरे ये स्तोत्र हम गाते हैं, वह तेरी यह विभूति सत्य हो ।

१८ हे शतक्रतो ! अस्मिन्वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ [ १६०१ ]- हे सैंकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! इस युद्धमें हमारी रक्षा करनेके लिए तू उठकर तैयार हो और स्थिर रह ।

१९ उग्रस्य तव सख्ये मा भेम, मा श्रमिष्म [ १६०५ ]- तेरे समान शूरकी मित्रतामें हम न डरें और न थकें ।

२० वृष्णः ते महत् कृतं अभिचक्ष्य [ १६०५ ]- बल युक्त तूने महान् प्रशंसनीय कार्य किए हैं ।

२१ दानः अस्य न रोहति [ १६०६ ]- काटनेवाला शत्रु इसे कष्ट नहीं दे सकता ।

२२ पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः स्तोमैः अभ्यनूपत [ १६०७ ]- अग्निके समान तेजस्वी ऐसे शुद्ध जानी स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ।

२३ अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्रः इव पप्रथे [ १६०८ ]- यह हजारों ऋषियों द्वारा बलवान्के रूपमें प्रशंसित किया गया इन्द्र समुद्रके समान विस्तृत है ।

२४ तुरण्यवो विप्रासः अर्के आनृचुः [ १६१० ]- शीघ्रता करनेवाले जानी इन्द्रकी अर्चना करते हैं ।

इसप्रकार इन्द्रका वर्णन यहां किया गया है । इन्द्र बलवान् है, उसकी महिमा जानी विद्वान् वर्णन करते हैं । सब संरक्षणके साधन उसके पास तैयार रहते हैं । वह इन्द्र सब प्रकारके धन अपने पास रखता है । वह यशस्वी और भाग्यवान् है । घोड़े और गायोंका वह उत्तम पालन करता है । जैसे हौज सोनेसे भरा हुआ हो, वैसे ही यह इन्द्र धनसे भरपूर है । सदाचारी मनुष्यको वह धन देता है । उसके पास देनेके लिए हजारों गायें और घोड़े हैं । उसके शौर्य इस द्युलोक और भूलोकमें चारों ओर फैले हुए हैं । उसने सूर्यको तेजस्वी बनाकर आकाशमें स्थापित किया । भूमि भी उसीके आधार पर है । वह सब युद्धोंमें हमारी रक्षाके लिए तैयार और स्थिर रहे और चारों ओरसे हमारी रक्षा करे । इसके संरक्षणमें यदि हम रहें तो हमें किसीसे भी डर नहीं रहेगा । ऐसा यह इन्द्र है ।

### इन्द्र और अग्नि

इन्द्र और अग्निका वर्णन इसप्रकार है—

१ इन्द्राग्नी दासपत्नीः नवतिं पुरः एकेन कर्मणा साकं अध्वनुत [ १५७६ ]- इन्द्र और अग्निने दासके नब्बे नगरोंको एक आक्रमणसे हिला दिया ।

२ इन्द्राग्नी ! वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि [ १५७८ ]- हे इन्द्र और अग्नि ! तुम्हारे बल और अन्न एकत्र हैं, अर्थात् तुम मिलकर जो करना होता है, करते हो ।

३ अप्तूर्य युवोः हितम् [ १५७८ ]- उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देनेवाले तुम्हारे बल तुममें ही हैं ।

दासलोगोंकी नब्बे नगरियोंको एक ही आक्रमणसे हिला डाला, ऐसा युद्ध-कौशल्य इनका है ।

### अग्नि

अग्निका वर्णन इस अध्यायमें इस प्रकार है—

१ होता मन्द्रः यः विश्वा वसु जनानां द्यते



[ १५८३ ]- देवोंको बुलाकर लानेवाला और आनन्द बढ़ाने-वाला जो अग्नि है, वह हरप्रकारके धन लोगोंको देता है ।

२ दस्स विश्पते ! सुदानवः देवयुवः गर्भिः मर्म-ज्यन्ते, तनये तोके च मघोनां राघः पर्षि [ १५८४ ]- हे सुन्दर प्रजापालक अग्ने ! उत्तम दान देनेवाले और देवत्व प्राप्त करनेवाले अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करते हैं ।-ऐसा तू पुत्रपौत्रोंको धनवानोंके पास रहनेवाला धन दे । अर्थात् स्तुति करनेवालोंको धन मिलता है और वह धन उन्हें अग्नि देता है ।

### सोम और इन्द्र

१ समत्सु अनपच्युता भवथः [ १५९१ ]- तुम दोनों युद्धमें नहीं हारते, ऐसे ये दोनों शूरवीर हैं ।

### पूषा

१ गोपाणिं अश्वसां वाजसां नृवत् धियं नः ऊतये कृणुहि [ १५९३ ]- गाय देनेवाली, घोड़े देनेवाली, अश्व देनेवाली और पुत्र देनेवाली बुद्धिको हमारे संरक्षणके लिए उपयोगी बना ।

### वरुण

१ हे वरुण ! मे इमं हवं शुधि । अद्य मृडय । अवस्युः त्वां आ चके [ १५८५ ]- हे वरुण ! यह मेरी स्तुति सुन । आज मुझे सुखी कर । अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं ।

वरुण लोगोंको सुखी और सुरक्षित करता है ।

### मरुत्

१ हे सत्यशवसः नरः शशमानस्य स्वेदस्य धेनतः कामस्य विद [ १५९४ ]- हे उत्तम बलसे युक्त मरुतो ! सैनिको ! तुम्हारी स्तुति करनेके कारण पसीनेसे नहाये हुए तथा फलकी इच्छा करनेवाले स्तोताओंको इष्ट फल दो ।

२ अमृतस्य सूनवः नः गिरः उपशृण्वन्तु, नः सुमृळीकाः भवन्तु [ १५९५ ]- ये अमर प्रजापतिके पुत्र मरुत् वीर हमारी स्तुति सुनें और हमें सुख देनेवाले हों ।

मरुत् वीर सैनिक हैं, वे सबकी रक्षा शत्रुओंको नष्ट करते हैं ।

### द्यावापृथिवी

१ हे शुची ! प्रशस्तये उप, द्यवी धां, उपस्तुतिं ३९ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

महि, अभि भरामहे [ १५९६ ]- हे पवित्र द्यावापृथिवियो ! तुम्हारी स्तुति करनेके लिए तुम्हारे पास आकर, तेज युक्त तुम दोनोंकी स्तुति स्तोत्र बड़े प्रमाणमें अर्पण करते हैं ।

यहां द्यु और पृथिवी देवता " शुची " शुद्ध हैं और " द्यवी " तेजस्वी हैं; ऐसा कहा है ।

२ तन्वा दक्षेण मिथः पुनाने राजथः । सनात् ऋतं ऊह्याथे [ १५९७ ]- तुम अपने शरीरसे और अपने सामर्थ्यसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोककी शुद्धि करके प्रकाशित होते हो और हमेशा सत्य-यज्ञ-को सिद्ध करते हो ।

३ मही ! मित्रस्य साधथः, ऋतं तरन्ती, पिप्रती, यक्षं परि निषेदथुः [ १५९८ ]- हे महान् द्यावापृथिवियो ! तुम अपने मित्रका कार्य करती हो, सत्यका संरक्षण करती हो, कार्य पूर्ण करती हो और यज्ञको सिद्ध करती हो ।

तुम्हारे अनुकूल व्यवहार करनेवालोंका तुम संवर्धन करती हो । सत्यका तारण करके उनका पोषण करती हो, और विश्वयज्ञ पूर्ण करती हो । विश्वमें एक प्रकारका महायज्ञ चालू है । उसे यथायोग्य रीतिसे ये द्यु और पृथिवी करती हैं । इस यज्ञसे सबोंका कल्याण होता है ।

### गौ

१ हे गावः ! अवटे उपवद । मही यक्षस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया [ १६०२ ]- हे गायो ! यज्ञके स्थानपर आओ और शब्द करो । तुम महान् यज्ञके कार्य करनेवाली हो । तुम्हारे दोनों कानोंमें सोनेके अलंकार हैं ।

यज्ञ जिस जगह होता है, वहां गायें हों और उनका रंभाना सुनाई दे । गायें अपने दूध व घीसे यज्ञको उत्तम रीतिसे सिद्ध करती हैं । गायके दूध और घीके अभावमें यज्ञ सिद्ध होनेवाला ही नहीं है ।

२ सारधेण संपृक्ताः धेनवः [ १६०६ ]- शहवके समान मीठा दूध गायें भरपूर देती हैं । उनसे उत्तम घी मिलता है । ( हृद्यंगवीनं घृतं ) कलके दूधसे आज तैय्यार किये गये घृतका हवनमें आहुति देनेके लिए उपयोग करना चाहिए ।

### सोम

१ पुनानः हरिण्या अया रुचा, सूरः सयुग्वभिः न, विश्वा द्वेषांसि तरति [ १५९० ]- शुद्ध होनेवाला सोमरस अपने हरे रंगके तेजसे, सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है, उसीप्रकार सब द्वेष करनेवाले शत्रुओंका नाश करता है ।



२ पुनानः हरिः अरुषः [१५९०]- स्वच्छ होनेवाला सोम चमकता है।

३ पणीनां वसु विदः [१५९२]- पणि-व्यापारियों-से धनको तुने प्राप्त किया।

४ ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः स्वे दमे संमर्जयसि [१५९२]- यज्ञको आधार देनेवाले पानीसे तू अपने स्थान पर छाना जाता है।

सोमरसमें पानी मिलाकर उसे छानकर शुद्ध किया जाता है।

५ परावतः साम तत् [१५९२]- यज्ञमें दूरसे ही सामगायन सुननेमें आता है। उसी कारण वहां यज्ञ चालू है, और सोमरस छाना जाता है, यह जाना जा सकता है।

६ हे इन्द्रो ! नः गोमत् अश्वमत् धनिव [१६११]- हे सोम ! हमें गायों और घोड़ोंसे युक्त धन दे।

७ हे सुदक्ष ! सुतः गोषु शुचिं वर्णं धारय [१६११]- हे उत्तम बल बढ़ानेवाले सोम ! रस निचोड़े जानेके बाद गौदुग्धके उत्तम रंगको धारण कर। गायके दूधमें मिल जा।

८ हे हरीणां पते देव इन्द्रो ! पसरस्तमः नर्यः नः रुचे भव [१६१२]- हे हरे रंगके वनस्पतिके स्वामी सोमदेव ! अत्यन्त तेजस्वी और मनुष्योंका हित करनेवाला तू हमारे तेज बढ़ा।

९ साह्वान् ! बाधः परि, द्रयुं अप [१६१३]- हे शत्रुको हरानेवाले सोम ! बाधा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर और दुहरा व्यवहार करनेवाले दुष्टोंका नाश कर।

१० अहिः न, जीर्णां त्वचं अति सर्पति [१६१५]- सांप जैसे अपनी केंचुली उतार देता है, उसीप्रकार सोम अपनी छालको दूर करता है। सोम कूटनेके बाद उसकी छाल अलग हो जाती है।

११ अग्नेगः राजा आप्यः स्तविष्यते [१६१६]- प्रगति करनेवाला, राजा कर्तव्य करनेवालोंके द्वारा प्रशंसित होता है। राजा सोम पानीमें मिलते समय प्रशंसित होता है।

१२ हरिः घृतस्नुः सुदृशीकः अर्णवः उयोतीरथः रायः ओकयः [१६१६]- हरे रंगका पानीमें मिलाया गया सुन्दर दर्शनीय और तेजस्वी रथ जिसका है, ऐसा यह सोम मानों तेजोंका घर ही है ऐसा दिखाई देता है।

सोमका रस निकालनेके बाद उसमें पानी मिलाया जाता है और उसे छाना जाता है। तब वह सोम चमकने लगता है।

सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे चमकता है, उसीप्रकार यह सोम-रस चमकता है, उस समय वह छाना जाता है, उस समय सामगान शुरु होता है। वह सामगान बड़ी आवाजसे किए जानेके कारण दूरसे ही सुनाई देता है।

बादमें उसमें गायका दूध मिलाकर उसका हवन करते हैं, फिर उसे पिया जाता है। इसप्रकार सोमका वर्णन है।

इन देवताओंका इस अध्यायमें वर्णन है।

## सुभाषित

१ आयवः अस्य महिमानं अनुष्टुवन्ति [१५७४]- मनुष्य इस इन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हैं।

२ इषः आवृणे [१५७५]- अन्न प्राप्तिके लिए मैं प्रार्थना करता हूँ।

३ हे इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नवतिं पुरः एकेन कर्मणा साकं अधूनुतम् [१५७६]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम शत्रुकी नब्बे-नगरियोंको एक ही प्रयत्न-आक्रमण-से हिला डालते हो।

४ धीतयः ऋतस्य पथ्या अनु अपसः परि उप प्रयन्ति [१५७७]- बुद्धिमान् याज्ञिक सत्यके मार्गसे यज्ञके पास आकर बैठते हैं।

५ वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि, अप्तूर्य युवोः हितम् [१५७८]- तुम्हारे बल और अन्न एक जगह रहते हैं। तुम्हारे बल शुभ कर्मोंकी प्रेरणा देनेवाले हैं।

६ हे शचीपते इन्द्र ! विश्वाभिः ऊतिभिः सुशग्धि [१५७९]- हे शक्तिमान् इन्द्र ! सब संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त होनेके कारण तू सामर्थ्यवान् है।

७ वसुविदं यशसं भगं न त्वा अनु चरामसि [१५७९]- धनवान् और यशस्वी तेरे, जिसप्रकार भाग्यवान् के पीछे सब चलते हैं, उसीप्रकार हम अनुकूल हों ऐसा आचरण करते हैं।

८ अश्वस्य पौरः गवां पुरुकृत् असि [१५८०]- घोड़ेको पुष्ट करनेवाला और गायोंका पोषण करनेवाला है।

९ हिरण्ययः उत्सः [१५८०]- तू सोनेका स्रोत है।

१० त्वे दानं न किः परिमर्धिषत् [१५८१]- तेरे दान कोई भी नष्ट नहीं करता।



११ यत् यत् यामि तत् आभर [ १५८१ ]- में जो जो मांगता हूँ वह वह मुझे दे।

१२ त्वं वसुत्तये एहि [ १५८१ ]- तू धन देनेके लिए आ।

१३ चेरवे भगं विदा [ १५८१ ]- सदाचरण करने-वालेको भाग्य दे।

१४ हे मघवन् ! गविष्टये उत् वावृषस्व [ १५८१ ] - गायकी इच्छा करनेवालेको गायें दे।

१५ हे इन्द्र ! अश्वं इष्टये उत् [ १५८१ ]- हे इन्द्र ! घोड़ेकी इच्छा करनेवालेको घोड़े दे।

१६ त्वं पुरु सहस्राणि शताणि च यूथा दानाय मंहसे [ १५८२ ]- तू बहुतसे हजारों और सैकड़ों गायोंके झुण्ड दानके लिए देता है।

१७ पुरं इन्द्रं अघसे गायन्तः विप्रवचसः आचक्रुम [ १५८२ ]- शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाले इन्द्रको अपने रक्षण करनेके लिए ज्ञानयुक्त भाषण करनेवाले हम बुलाते हैं।

१८ होता मन्द्रः यः विश्वा वसु जनानां दयते [ १५८३ ]- देवोंको बुलानेवाला और आनन्द देनेवाला अग्नि सब धन लोगोंको देता है।

१९ दस्म विशपते ! सुदानवः देवयन्तः, रथ्यं अश्वं न, गीर्भिः मर्मुज्यन्ते [ १५८४ ]- हे दर्शनीय प्रजापालक ! उत्तम दान देनेवाले और देवत्व प्राप्त करनेवाले याजक, रथमें जुड़े हुए घोड़ेके समान, अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करते हैं।

२० तनये तोके उभे मघोनां राधः पर्षि [ १५८४ ]- पुत्र और पौत्र दोनोंको धनवालोंके पास रहनेवाले धन दे।

२१ अवस्युः त्वां आ चके। हे वरुण ! मे इमं हव्यं श्रुधि, अद्य मृडय च [ १५८५ ]- अपना संरक्षण हो ऐसी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति करते हैं।

२२ हे वृषन् ! कया ऊत्या त्वं नः अभि प्रमन्दसे [ १५८६ ]- हे बलवान् इन्द्र ! कौनसे संरक्षणके सामर्थ्यसे तू हमें अधिक आनन्दित करता है ?

२३ कया स्तोतृभ्यः आ भर [ १५८६ ]- कौनसी संरक्षणकी शक्तिसे तू स्तोताओंको भरपूर अन्न देता है ?

२४ इन्द्रः शवः मत्ता रोदसी पप्रथत् [ १५८८ ]- इन्द्र अपनी शक्तिसे बुलोक और पृथ्वीलोकको भर देता है।

२५ इन्द्रः सूर्यं अरोचयत् [ १५८८ ]- इन्द्रने सूर्यको तेजस्वी बनाया।

२६ इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे [ १५८८ ]- इन्द्रमें ही सब भुवन रहते हैं।

२७ विश्वकर्मन् ! हविषा वावृधानः स्वयं तन्वं स्वा हि ते यजस्व [ १५८९ ]- हे सब कर्म करनेवाले इन्द्र ! हविसे बढ़नेवाला तू स्वयं करनेवाले विश्वरूपी यज्ञके लिए स्वयंको अर्पित कर।

२८ अन्ये जनासः अभितः मुह्यन्तु [ १५८९ ]- अन्य यज्ञ न करनेवाले लोग चारों ओरसे मूर्च्छित होकर गिर जायें।

२९ इह मघवा सूरिः अस्तु [ १५८९ ]- यहां इन्द्र सब जाननेवाला हो।

३० पुनानः विश्वा द्वेपांसि तरति [ १५९० ]- पवित्र वीर शत्रुओंका नाश करता है।

३१ सूरः सयुग्वभिः [ १५९० ]- सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश करता है।

३२ दैव्यः दर्शतः रथः रश्मिभिः संयसते [ १५९१ ]- दैव्य और दर्शनीय ऐसा यह रथ किरणोंसे तेजस्वी हुआ हुआ दीखता है।

३३ जैत्राय इन्द्रं हर्षयन् [ १५९१ ]- विजयके लिए इन्द्रको प्रसन्न करते हैं।

३४ समस्तु अनपच्युता भवथः [ १५९१ ]- युद्धोंमें तुम दोनों नहीं हारते।

३५ गोपर्णि अश्वसां वाजसां नृवत् धियं नः ऊतये कृणुहि [ १५९३ ]- गाय, घोड़े, अन्न और पुत्र देनेवाली बुद्धिको हमारे संरक्षणके लिए उपयोगी बना।

३६ तन्वा दक्षेण मिथः पुनाने राजथः [ १५९७ ]- शरीर और बलसे तुम दोनों परस्परको शुद्ध करते हुए तेजस्वी होते हो।

३७ मित्रस्य साधथः [ १५९८ ]- तुम दोनों मित्रकी सहायता करते हो।

३८ ऋतं तरन्ती पिप्रती [ १५९८ ]- यज्ञको पूर्ण करते और यज्ञको पूर्ण कराते हो।

३९ नः तत् वचः ओहसे [ १५९९ ]- हमारी प्रार्थना ध्यान देकर तू सुनता है।

४० राधानां पते गिर्बाहः वीर ! ते स्तोत्रं विभूतिः स्मृता अस्तु [ १६०० ]- हे धनोंके स्वाप्ती स्तुत्य वीर ! तेरे स्तोत्र वंभव दिखानेवाले और सत्य हों।

४१ हे शतक्रतो ! अस्मिन् वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ [ १६०१ ]- हे सैकड़ों कार्य करनेवाले इन्द्र ! इस युद्धमें हमारे रक्षणके लिए तैयार होकर स्थिर रह।



४२ उग्रस्य तव सख्ये मा भेम [१६०५]- उग्रवीर ऐसे तेरी मित्रतामें हमें कोई भय नहीं हो।

४३ मा भ्रमिष्म [१६०५]- हम न थकें।

४४ वृष्णः ते महत् कृतं अभिचक्ष्यं [१६०५]- भवतोंकी इच्छा तृप्त करनेवाले तेरे महान् वर्णनके योग्य कृत्य हुए हैं।

४५ वृषा सव्यां स्फिग्यं अन् वावसे [१६०६]- बलवान् इन्द्र अपने वायें हाथसे सबको आधार देता है।

४६ दानः अस्य न रोषति [१६०६]- काटनेवाला शत्रु इसे कष्ट नहीं दे सकता। ( दानः= 'दा'-काटना, 'दानः'-काटनेवाला )

४७ सारघेण संपृक्ताः धेनवः [१६०६]- मधुर दूधसे युक्त ये गायें हैं।

४८ पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः स्तोमैः अभ्य-  
नूषत [१६०७]- अग्निके समान तेजस्वी शुद्ध विद्वान् स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं।

४९ अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्रः इव पप्रथे [१६०८]- यह इन्द्र हजारों ऋषियोंके द्वारा बलवान्के रूपमें प्रसिद्ध किया गया है। वह समुद्रके समान महान् हो गया है।

५० अस्य सत्यः महिमा शवः यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे [१६०८]- इसकी वह सत्य महिमा और सामर्थ्य ब्राह्मणोंके यज्ञके राज्यमें प्रशंसित होता है।

५१ अयं अस्य विश्वः आर्यः शोवधिपा अरिः [१६०९]- यह इस यज्ञका और सब आर्योंका निधि रक्षक है।

५२ देवः सोमः पसरस्तमः नर्यः सः नः रुचे भव [१६१२]- हे सोमदेव ! अत्यन्त तेजस्वी और मनुष्योंका हित करनेवाला तू हमारे तेज बढ़ानेवाला हो।

५३ इन्द्रो साह्वान् ! बाधः परि, द्रयुं अप [१६२३]- हे शत्रुको हरानेवाले सोम ! बाधा डालनेवाले और दुहरे व्यवहार करनेवाले शत्रुओंको दूर कर।

५४ अहिः न, जीर्णा त्वचं अति सर्पति [१६१५]- साँपके समान वह गली हुई चमडीको निकाल फेंकता है।

## उपमा

१ भगं न [१५७९]- भाग्यके समान तेरे ( अनु चरामसि ) अनुकूल हम चलते हैं। जैसे भाग्य अनुकूल होता है, उसीप्रकार तेरे अनुकूल हम व्यवहार करते हैं।

२ हिरण्ययः उत्सः [१५८०]- जिसप्रकार सोनेसे भरा हुआ हौज होता है, उसीप्रकार तू धनसे भरा हुआ है।

३ मधोः न प्रथमानि पात्रा [१५८३]- मोठे सोम-रसके मुख्य पात्रके समान इस अग्निकी ( स्तोमाः प्रयन्तु ) स्तुतियां प्राप्त हों।

४ रथ्यं अश्वं न [१५८४]- रथमें जुड़े हुए घोड़ेके समान ( गीर्भिः मर्मज्यन्ते ) अपनी वाणीसे अग्निकी स्तुति करते हैं।

५ सूरः सयुग्वभिः न [१५९०]- सूर्य अपनी किरणोंसे जैसे अन्धकार दूर करता है, उसीप्रकार ( पुनानः रुचा विश्वा द्वेषांसि तरति ) स्वच्छ होनेवाला सोम अपने प्रकाशसे सब शत्रुओंको दूर करता है।

६ परावतः तत् साम न [१५९२]- दूरसे जिसप्रकार वह सामगान सुनाई देता है ( यत्र धीतयः रणन्ति ) जहां ऋत्विज गाते हैं। यज्ञशालामें ऋत्विज सामगान करते हैं, वह दूरसे ही सुनाई देता है, और उससे वहां यज्ञ चल रहा है, ऐसा ज्ञात होता है।

७ कपोतः गर्भधि इव [१५९९]- कबूतर जिसप्रकार अपनी कबूतरीकी तरफ जाता है, उसीप्रकार ( ते समतसि ) वह तेरे पास आता है।

८ समुद्रः इव पप्रथे [१६०८]- समुद्रके समान वह इन्द्र महान् है।

९ सखा सख्ये इव [१६१२]- मित्र जिसतरह अपने मित्रकी सहायता करता है, उसीतरह ( सः नः रुचे भव ) तू हमारा तेज बढ़ानेवाला हो।

१० सिन्धोः उच्छ्वासे पतयन्तं उक्षणं [१६१४]- नदीके पानीमें जिसप्रकार बल डुबकी लगाता है, उसीतरह पानीमें सोमरस मिलाया जाता है।

११ महि धारा न अन्धः अत्यर्षति [१६१५]- मोटी धारासे अन्न जैसे छाना जाता है, उसीप्रकार अन्नरूपी सोम धारासे छाना जाता है।

१२ अग्नेगः राजा [१६१६]- प्रगति करनेवाला राजा जिसप्रकार प्रशंसित होता है, उसीप्रकार ( आप्यः स्तविष्यन्ते ) जलमें मिलाया जानेवाला सोम प्रशंसित होता है।



## षोडशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

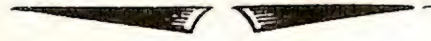
| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                  | देवता        | छन्दः                                     |
|-------------|--------------|-----------------------|--------------|---|
| ( १ )       |              |                       |              |   |
| १५७३        | ८।३।७        | मेध्यातिथिः काण्वः    | इन्द्रः      | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १५७४        | ८।३।८        | मेध्यातिथिः काण्वः    | "            | "   |
| १५७५        | ३।१२।५       | विश्वामित्रो गाथिनः   | इन्द्राग्नी  | गायत्री                                   |
| १५७६        | ३।१२।६       | विश्वामित्रो गाथिनः   | "            | "   |
| १५७७        | ३।१२।७       | विश्वामित्रो गाथिनः   | "            | "   |
| १५७८        | ३।१२।८       | विश्वामित्रो गाथिनः   | "            | "   |
| १५७९        | ८।६।१।५      | भर्गः प्रागाथः        | इन्द्रः      | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १५८०        | ८।६।१।६      | भर्गः प्रागाथः        | "            | "   |
| १५८१        | ८।६।१।७      | भर्गः प्रागाथः        | "            | "   |
| १५८२        | ८।६।१।८      | भर्गः प्रागाथः        | "            | "   |
| १५८३        | ८।१०।३।६     | सोभरिः काण्वः         | अग्निः       | "   |
| १५८४        | ८।१०।३।७     | सोभरिः काण्वः         | "            | "   |
| ( २ )       |              |                       |              |   |
| १५८५        | १।२५।१९      | शुनःशेष आजीगतिः       | वरुणः        | गायत्री                                   |
| १५८६        | ८।९।३।१९     | सुकक्ष आंगिरसः        | इन्द्रः      | "   |
| १५८७        | ८।३।५        | मेध्यातिथिः काण्वः    | "            | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १५८८        | ८।३।६        | मेध्यातिथिः काण्वः    | "            | "   |
| १५८९        | १०।८।१।६     | विश्वकर्मा भौवनः      | विश्वकर्मा   | त्रिष्टुप्                                |
| १५९०        | ९।११।१।१     | अनानतः पारुच्छेपिः    | पवमानः सोमः  | अत्यष्टिः                                 |
| १५९१        | ९।११।१।२     | अनानतः पारुच्छेपिः    | "            | "   |
| १५९२        | ९।११।१।२     | अनानतः पारुच्छेपिः    | "            | "   |
| ( ३ )       |              |                       |              |   |
| १५९३        | ६।५३।१०      | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | पूषा         | गायत्री                                   |
| १५९४        | १।८।६।८      | गोतमो राहूगणः         | मरुतः        | "   |
| १५९५        | ६।५२।९       | ऋजिश्वा भारद्वाजः     | विश्वेदेवाः  | "   |
| १५९६        | ४।५६।५       | वामदेवो गोतमः         | द्यावापृथिवी | "   |
| १५९७        | ४।५६।६       | वामदेवो गोतमः         | "            | "   |
| १५९८        | ४।५६।७       | वामदेवो गोतमः         | "            | "   |
| १५९९        | १।३०।४       | शुनःशेष आजीगतिः       | इन्द्रः      | "   |
| १६००        | १।३०।५       | शुनःशेष आजीगतिः       | "            | "   |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः              | देवता            | छन्दः   |
|-------------|--------------|-------------------|------------------|---------|
| १६०१        | १।३०।६       | शुनःशेष आजीर्गतिः | इन्द्रः          | गायत्री |
| १६०२        | ८।७२।१२      | हर्यतः प्रागाथः   | अग्निः हवींषि वा | "       |
| १६०३        | ८।७२।१२      | हर्यतः प्रागाथः   | "                | "       |
| १६०४        | ८।७२।१०      | हर्यतः प्रागाथः   | "                | "       |

( ४ )

|      |         |                                  |             |   |
|------|---------|----------------------------------|-------------|---|
| १६०५ | ८।४।७   | देवातिथिः काण्वः                 | इन्द्रः     | प्रगाथः= ( विषसा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १६०६ | ८।४।८   | देवातिथिः काण्वः                 | "           | "   |
| १६०७ | ८।३।३   | मेध्यातिथिः काण्वः               | "           | "   |
| १६०८ | ८।३।४   | मेध्यातिथिः काण्वः               | "           | "   |
| १६०९ | ८।५१।९  | वालखिल्यः ( श्रुष्टिगुः काण्वः ) | "           | "   |
| १६१० | ८।५१।१० | वालखिल्यः ( श्रुष्टिगुः काण्वः ) | "           | "   |
| १६११ | ९।१०५।४ | पर्वतनारदौ                       | पवमानः सोमः | उष्णिक्                                   |
| १६१२ | ९।१०५।५ | पर्वतनारदौ                       | "           | "   |
| १६१३ | ९।१०५।६ | पर्वतनारदौ                       | "           | "   |
| १६१४ | ९।८६।४३ | अत्रिभौमः                        | "           | जगती                                      |
| १६१५ | ९।८६।४४ | अत्रिभौमः                        | "           | "   |
| १६१६ | ९।८६।४५ | अत्रिभौमः                        | "           | "   |





## अथ सप्तदशोऽध्यायः ।



अथाष्टमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ८-१ ॥

[ १ ]

( १-१४ ) १, ७, १४ शुनःशेष आजोगतिः; २ मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः; ३ शंयुर्बर्हिस्पत्यः; ( तृणपाणिः ) ४ वसिष्ठो मंत्रा-  
वरुणिः; ५ वामदेवो गौतमः; ६ रेभसूत काश्यपो; ८ नृमेघ आंगिरसः; ९, ११ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १०  
श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; १२ विरूप आंगिरसः; १३ वत्सः काण्वः ॥ १, ३, ७, १२ अग्निः; २, ८-११,  
१३, १४ इन्द्रः, ४ विष्णुः; ५ ( १ ) वायु, ५ ( २-३ ) इन्द्रवायु; ६ पवमानः सोमः ॥ १-२, ७, ९, १०, १२, १३,  
१४ गायत्री; ३, ८ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतीबृहती ); ४ त्रिष्टुप्; ५, ६ अनुष्टुप्; ११ उष्णिक् ।

१६१७ विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२६।१० )  
१६१८ यच्चिद्धि शश्वता तना देवदेवं यजामहे । त्वे हद्रूयते हविः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।२६।६ )  
१६१९ प्रियो नो अस्तु विश्वपतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्रयो वयम् ॥ ३ ॥ १ ( ही ) ॥  
[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. १।२६।७ )  
१६२० इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।७।१० )  
१६२१ स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।७।६ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १६१७ ] हे ( सहसः यहो ) बलके पुत्र ! ( विश्वेभिः अग्निभिः ) सब अग्नियोंके साथ तू ( इमं यज्ञं ) इस यज्ञमें आ और ( इदं वचः ) यह स्तुति सुन और ( चनः धाः ) हमें अन्न दे ॥ १ ॥

[ १६१८ ] ( यत् चित् हि ) यद्यपि ( शश्वता तना ) नित्य और विस्तृत हवि अर्पण करके ( देवं देवं यजामहे ) प्रत्येक देवताके लिए हम यजन करते हैं, तो भी ( हविः त्वे हद्रूयते ) हवि तुझमें ही दी जाती है ॥ २ ॥

[ १६१९ ] ( विश्वपतिः होता ) प्रजाओंका पालक हवन करनेवाला ( मन्द्रः वरेण्यः ) आनंद बढ़ानेवाला श्रेष्ठ अग्नि ( नः प्रियः अस्तु ) हमें प्रिय हो, तथा ( स्वग्रयो वयं प्रियाः ) उत्तम रीतिसे अग्निको रखनेवाले हम उस अग्निके प्रिय हों ॥ ३ ॥

[ १६२० ] हे ऋत्विजो ! ( विश्वतः जनेभ्यः परि ) सब लोकोंमें श्रेष्ठ ऐसे ( इन्द्रं वो हवामहे ) इन्द्रको तुम सबके हितके लिए हम बुलाते हैं, वह इन्द्र ( अस्माकं केवलः अस्तु ) सिर्फ हम ही को अधिक लाभ देनेवाला होवे ॥ १ ॥

[ १६२१ ] हे ( सत्रा-दावन् वृषन् ) एकदम सब फल देनेवाले और बलवान् इन्द्र ! ( सः ) वह तू ( नः अमुं चरुं अपावृधि ) हमारे लिए इस साफ अन्नको स्वीकार कर और ( अस्मभ्यं अप्रतिष्कुतः ) हमारा प्रतीकार करनेवाला मत हो ॥ २ ॥



१६२२ वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियत्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कृतः ॥ ३ ॥ २ (१) ॥  
[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।७८ )

१६२३ त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।  
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४८।९ )

१६२४ पर्षिं तोकं तनयं पतुभिष्टमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।  
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥ २ ॥ ३ (की) ॥

[ धा० ११ । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।४८।१० )

१६२५ किमिच्छे विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्वक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।  
मा वर्षो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूव ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।१००।६ )

१६२६ प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।  
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २ ॥ ( ऋ. ७।१००।९ )

[ १६२२ ] ( ईशानः अप्रतिष्कृतः ) सबका ईश्वर और हमारा निषेध न करनेवाला तथा ( वृषा ) बलवान् इन्द्र ( ओजसा कृष्टीः इत्यर्ति ) अपने बलसे अनुग्रह करनेके लिए मनुष्योंके पास जाता है ( वंसगः यूथा इव ) जैसे बल गायोंके मुण्डमें जाता है ॥ ३ ॥

[ १६२३ ] हे ( वसो ) निवासक अग्ने ! ( चित्रं त्वं ) सुन्दर दर्शनीय ऐसा तू ( ऊत्या राधांसि नः चोदय ) रक्षणसे युक्त धन हमें दे । हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं अस्य रायः रथीः असि ) तू इन धनोंको रखसे ले जानेवाला है । ( नः तुचे गाधं नु विदः ) हमारे पुत्रोंको प्रतिष्ठाका स्थान प्राप्त हो ॥ १ ॥

[ १६२४ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( त्वं ) तू ( अ-प्रयुत्वभिः ) अविरोधी भावनाओंसे युक्त और ( अ-दब्धैः ) किसीके द्वारा न दबाये जानेवाले ( पतुभिः ) संरक्षणके साधनोंके द्वारा ( तोकं तनयं पर्षिं ) हमारे पुत्र और पौत्रोंका पालन कर । ( दैव्या हेडांसि नः युयोधि ) देवोंके क्रोधको हमसे दूर कर । ( अ-देवानि ह्वरांसि च ) मनुष्यों और राक्षसोंके क्रोधको भी हमसे दूर रख ।

[ १६२५ ] हे ( विष्णो ) व्यापक देव ! ( ते तत् नाम ) वह तेरा नाम ( किं परिचक्षि ) क्या प्रसिद्ध होने योग्य है ? ( यत् नाम ) जो नाम ( शिपि-विष्टः अस्मि इति प्र ववक्षे ) किरणोंसे व्याप्त में हूँ, ऐसा अर्थ विज्ञाता है । इसलिए ( एतद् वर्षः अस्मत् मा अपगूह ) यह रूप हमसे दूर मत कर ( यत् ) क्योंकि ( समिथे ) संग्राममें ( अन्यरूपः इत् ) दूसरा रूप धारण करके ही तू हमारा सहायक ( बभूव ) होता है ॥ १ ॥

[ १६२६ ] हे ( शिपि-विष्ट ) किरणोंसे व्याप्त हुए विष्णु ! ( ते हव्यं तत् ) तेरे उस पूजनीय नामकी ( अर्यः वयुनानि विद्वान् ) आर्य और सब कर्मोंको जाननेवाला विद्वान् में ( अद्य प्रशंसामि ) आज प्रशंसा करता हूँ । ( तं तवसं ) उस बलवान् तथा ( अस्य रजसः पराके क्षयन्तं ) इस रजोलोकसे दूर रहनेवाले ( त्वा ) तेरा ( अ-तव्यान् ) छोटा भाई मैं ( गृणामि ) तेरी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥



१६२७ वषट् ते विष्णवांस आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ४ ( ते ) ॥

[ धा० ४४ । उ० १ । स्व० ७ ] ( ऋ. ७।१००।७ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१६२८ वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।

आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।४७।१ )

१६२९ इन्द्रश्च वायवेषांसोमानां पीतिमर्हथः ।

युवांसहि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्न्यक् ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।४७।२ )

१६३० वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथंशवसस्पती ।

नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातंसोमपीतये ॥ ३ ॥ ५ ( ता ) ॥

[ धा० १९ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ४।४७।३ )

[ १६२७ ] हे ( विष्णो ) विष्णुदेव ! ( ते आसः आ ) तेरे मुँहके पास आकर ( वषट् कृणोमि ) वषट्कार-पूर्वक हव्य पदार्थोंका मैं हवन करता हूँ । हे ( शिपिविष्ट ) किरणोंसे व्याप्त हुए हुए देव ! ( तत् मे हव्यं जुषस्व ) तू मेरी उस हविको स्वीकार कर । ( सुष्टुतयः मे गिरः ) उत्तम स्तुति करनेवाली मेरी वाणिषां ( त्वा वर्धन्तु ) तेरी महिमा बढ़ावें । हे विष्णो ! ( यूयं ) तेरे साथ सब देवता ( स्वस्तिभिः नः सदा पात ) कल्याण करनेवाली शक्तियोंसे हमारी सदा रक्षा करें ॥ ३ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १६२८ ] हे ( वायो ) वायो ! ( शुक्रः ) निर्दोष मैं ( दिविष्टिषु ) यज्ञोंमें ( ते ) तुम ( मध्वः ) सोमरस ( अग्रं अयामि ) सबसे प्रथम अर्पण करता हूँ । हे ( देव ) देव ! ( स्पार्हः ) प्रशंसनीय ऐसा तू ( नियुत्वता ) नियुत नामक घोड़ेसे ( सोमपीतये आ याहि ) सोमपान करनेके लिए आ ॥ १ ॥

[ १६२९ ] हे ( वायो ) वायो ! तू ( इन्द्रः च ) और इन्द्र ( एषां सोमानां पीतिं अर्हथः ) दोनों इस सोम पीनेके योग्य हो । ( हि ) इसीलिए ( निम्नं आपः न ) जिसप्रकार नीचेकी तरफ पानीका प्रवाह बहता है, उसप्रकार ( सध्न्यक् ) एकदम ( युवांस इन्द्रवः यन्ति ) तुम्हारे पास सोमके प्रवाह जाते हैं ॥ २ ॥

[ १६३० ] हे ( वायो ) वायो ! तू ( इन्द्रः च ) और इन्द्र ( शवसः पती ) बलके स्वामी और ( शुष्मिणा बलवान् हो ) ( नियुत्वन्ता ) नियुत नामक घोड़े रखनेवाले तुम दोनों ( नः ऊतये ) हमारे रक्षणके लिए और ( सोम पीतये ) सोम पीनेके लिए ( सरथं आयातं ) एक रथसे आओ ॥ ३ ॥



१६३१ अध क्षपा परिष्कृतो वाजाऽभि प्र गाहसे ।

यदी विवस्वतो धियो हरिः हिन्वन्ति यातवे

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।९९।२ )

१६३२ तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।

यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।९९।३ )

१६३३ तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।

उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम विभ्रतीः

॥ ३ ॥ ६ ( लु ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ५ ] ऋ. ९।९९।४ )

१६३४ अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

( ऋ. १।२७।१ )

१६३५ स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाऽस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

( ऋ. १।२७।२ )

१६३६ स नो दूरात्सासा नि मर्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥ ७ ( टि ) ॥

[ धा० १३ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।२७।३ )

[ १६३१ ] ( क्षपा अध ) रात बीत जाने पर प्रातःकाल ( परिष्कृतः ) जलका मिश्रण करके शोभायमान हुआ हुआ सोम तैय्यार होता है, ऐसा है सोम ! तू ( वाजान् अभि प्रगाहसे ) अन्नकी ओर जाता है । ( विवस्वतः धियोः ) संस्कार करनेवालोंकी अंगुलियां ( हरिं यातवे ) हरे रंगके सोमको कलशमें जानेके लिए ( यदि हिन्वन्ति ) जब प्रेरणा करती हैं, तब तू सवनमें जाता है ॥ १ ॥

[ १६३२ ] ( अस्य तं मर्जयामसि ) इस सोमके उस रसको हम छानते हैं । ( यः मदः इन्द्रपातमः ) जो आनन्द बढानेवाला सोमरस इन्द्रके पीनेके योग्य है । ( यं सूरयः पुरा च नूनं ) जिस सोमरसको विद्वान् लोग पहले और अब भी पीते हैं । ( गावः आसभिः दधुः ) गायें अपने मुंहसे उस सोमका भक्षण करती हैं ॥ २ ॥

[ १६३३ ] ( पुनानं ) छाने जानेवाले सोमकी ( पुराण्या गाथया अभ्यनूषत ) पुराने स्तोत्रसे स्तुति की जाती है । ( उतो उ ) और ( नाम विभ्रतीः धीतयः ) हविको धारण करनेवाली अंगुलियां ( देवानां कृपन्त ) देवोंके लिए सोम अर्पण करनेमें समर्थ होती हैं ॥ ३ ॥

[ १६३४ ] ( अध्वराणां सम्राजन्तं त्वा अग्निं ) यज्ञोंके सम्राट् तुझ अग्निको ( नमोभिः वन्दध्वे ) हवि अर्पण करके हम नमस्कार करते हैं ( वारवन्तं अश्वं न ) जिसप्रकार अयालवाले घोड़ेसे उस पर बैठनेवाले प्रेम करते हैं ॥ १ ॥

[ १६३५ ] ( सः घा नः सुशेवः ) वह अग्नि हमारे द्वारा उत्तम रीतिसे सेवित होता है । ( शवसा सूनुः पृथुप्रगामा ) वह बलका पुत्र शीघ्र गमन करनेवाला अग्नि ( अस्माकं मीढ्वाऽस्माकं बभूयात् ) हमें सुख देनेवाला हो ॥ २ ॥

[ १६३६ ] हे अग्ने ! ( विश्वायुः ) सब मनुष्योंका हित करनेवाला तू ( दूरात् च आसात् च ) दूरसे और पाससे ( अघायोः मर्यात् ) पापी मनुष्योंसे ( नः सदं इत् निपाहि ) हमारी हमेशा रक्षा कर ॥ ३ ॥



१६३७ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अश्वस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१९।९ )

१६३८ अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृधः श्रथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि

॥ २ ॥ ८ ( टा ) ॥

[ धा० १८ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१९।६ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१६३९ यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१४।९ )

१६४० व्यश्नन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१४।६ )

१६४१ उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥ ९ ( पी ) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।१४।८ )

१६४२ त्वमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१२।७ )

[ १६३७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( प्रतूर्तिषु ) युद्धोंमें ( विश्वाः स्पृधः अभि असि ) सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको हराता है । हे ( तूर्य ) शत्रुओंको शीघ्र ही दूर करनेवाले इन्द्र ! ( त्वं अ-शस्तिहा ) तू विपत्तियोंको दूर करनेवाला ( जनिता ) सम्पत्तियोंका उत्पादक और ( वृत्र-तूरः ) शत्रुओंका नाश करनेवाला तथा ( तरुष्यतः असि ) बाधा करनेवालोंको दूर करनेवाला है ॥ १ ॥

[ १६३८ ] हे इन्द्र ! ( तुरयन्तं ते शुष्मं ) शत्रुका नाश करनेवाले तेरे बल हैं । ( क्षोणी ) छावापृथिवी लोक ( मातरा शिशुं न ) जिसप्रकार मातापिता अपने बच्चोंके पीछे जाते हैं, उसीप्रकार तेरे पीछे चलते हैं । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यत् वृत्रं तूर्वसि ) जब तू वृत्रका वध करता है, इस कारण ( ते मन्यवे ) तेरे क्रोधके आगे ( विश्वाः स्पृधः ) सब मुकाबला करनेवाले शत्रु ( श्रथयन्त ) ढीले पड़ जाते हैं ॥ २ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १६३९ ] ( यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत् ) यज्ञ इन्द्रको बढ़ाता है, इसका कारण ( यत् ) यह है कि वह ( दिवि ओपशं चक्राणः ) अन्तरिक्षमें मेवको लिटा देता है और उसकी बरसातसे ( भूमिं व्यवर्तयत् ) भूमिको पोषण करनेवाली बनाता है ॥ १ ॥

[ १६४० ] ( सोमस्य मदे ) सोमपान करके हविष होनेके बाव ( इन्द्रः ) इन्द्र ( रोचना अन्तरिक्षं ) तेजस्वी अन्तरिक्षको ( वि आतिरत् ) विशेष तेजस्वी करता है ( यत् ) क्योंकि वह ( वलं अभिनत् ) बावलोंको फाड़ता है ॥ २ ॥

[ १६४१ ] ( गुहा सतीः ) गुहामें गुप्त रखी हुई ( गाः ) गायोंको इन्द्र ( आविष्कृण्वन् ) बाहर लाता है और ( अङ्गिरोभ्यः उद्गाजत् ) अङ्गिरा ऋषियोंको वह देता है, और ( वलं अर्वाञ्चं नुनुदे ) उन गायोंको चुराकर ले जानेवाले बलामुरको नीचे मुंह करके भागना पड़ता है ॥ ३ ॥

[ १६४२ ] ( सत्रा-साहं ) अनेक शत्रुओंको हरानेवाले ( वः विश्वासु गीर्षु आयतं ) तुम्हारे सब स्तोत्रोंमें वर्णित ( त्वं उ ) उस इन्द्रको ( ऊतये ) हमारे संरक्षणके लिए ( आच्यावयसि ) हमारे पास आने से ॥ १ ॥



१६४३ युध्मः सन्तमनर्वाणः सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९२।८ )

१६४४ शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाः ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥ १० ( ता ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।९२।९ )

१६४५ तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् । वज्रः शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।९३।७ )

१६४६ तव द्यौरिन्द्र पौःस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥  
( ऋ. ८।९३।८ )

१६४७ त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।  
त्वाः शर्द्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥ ११ ( ठी ) ॥  
[ धा० १३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९३।९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१६४८ नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।७६।१० )

१६४९ कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्रे संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।७६।११ )

[ १६४३ ] ( युध्मः सन्तं ) युद्ध करनेवाले होनेपर भी ( अनर्वाणं ) कभी न हारनेवाले ( अनपच्युतं सोमपां ) न बबनेवाले और सोम पीनेवाले ( अवार्यक्रतुं नरं ) जिसका कार्यक्रम कोई बदल नहीं सकता, ऐसे नेता इन्द्रको सहायताके लिए हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ १६४४ ] ( ऋचीषम इन्द्र ) हे दर्शनीय इन्द्र ! ( विद्वाः ) सब कुछ जाननेवाला तू ( रायः आ ) धन लेकर ( नः पुरु शिक्ष ) हमें वह बहुत दे । ( पार्ये धने नः अव ) शत्रूके पाससे धन लाकर उससे हमारा संरक्षण कर ॥ ३ ॥

[ १६४५ ] हे इन्द्र ! तेरी ( धिषणा ) बुद्धि ( तव त्यत् बृहत् इन्द्रियं ) तेरे उस महान् बलको, ( तव दक्षं ) तेरी दक्षताको ( उत क्रतुं ) और तेरे पराक्रमको और ( वरेण्यं वज्रं ) तेरे श्रेष्ठ वज्रको ( शिशाति ) तीक्ष्ण करती है ॥ १ ॥

[ १६४६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( द्यौः तव पौंस्यं ) ध्रुलोक तेरे पौरुषको ( पृथिवी श्रवः वर्धति ) और पृथ्वी तेरे यशको बढ़ाती है । ( त्वां आपः ) तेरे पास जलप्रवाह और ( पर्वतासः च ) पर्वत ( हिन्विरे ) तुझे स्वामी मानकर आते हैं ॥ २ ॥

[ १६४७ ] हे इन्द्र ! ( बृहत् क्षयः ) महान् धर देनेवाला कह करके ( विष्णुः मित्रः वरुणः ) विष्णु, मित्र और वरुण ( त्वां गृणाति ) तेरी स्तुति करते हैं । ( मारुतं शर्द्धः ) मरुतोंका बल ( त्वां अनुमदाति ) तुझे आनन्दित करता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १६४८ ] हे ( अग्ने देव ) अग्नि देव ! ( कृष्टयः ) यज्ञ करनेवाले लोग ( ओजसे ते नमः गृणन्ति ) बल प्राप्त करनेके लिए तुझे नमस्कार करके तेरी स्तुति करते हैं । ( अमैः अमित्रं अर्दय ) अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश कर ॥ १ ॥

[ १६४९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः गविष्टये ) हमें गाये मिलें इसलिए तू ( कुवित्सु रयिं संवेषिषः ) बहुत सारा धन हमें दे । ( उरुकृत् ) महिमा बढ़ानेवाला तू ( नः उरु कृधि ) हमें महान् कर ॥ २ ॥



१६५० मा नो अग्ने महाधने परा वर्गभारभृद्यथा । संवर्गं स रयिं जय ॥ ३ ॥ १२ (प) ॥  
[ धा० १५ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।७५।१२ )

१६५१ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।६।४ )

१६५२ वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरा बिभेद वृष्णिना । वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।६ )

१६५३ ओजस्तदस्य तित्विष उमे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मैव रोदसी ॥ ३ ॥ १३ (तौ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ८।६।५ )

१६५४ सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥

१६५५ सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि । ताविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥

१६५६ नीव शीर्षाणि मृद्वं मध्य आपस्य तिष्ठति । शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥ १४ (यि) ॥  
[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ]

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इत्यष्टम-प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ८-१ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

[ १६५० ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( नः महाधने ) हमें संग्राममें ( मा परावर्क ) दूर मत कर । ( यथा भारभृत् ) जिसप्रकार बोझ ढोनेवाला भार पहुंचाता है, उसीप्रकार ( संवर्गं रयिं संजय ) एकत्र किए गये धन जीत कर ला, और उन्हें हमें दे ॥ ३ ॥

[ १६५१ ] ( विश्वाः विशः कृष्टयः ) सब प्रजाजन ( अस्य मन्यवे ) इस इन्द्रके क्रोधके आगे ( सं नमन्त ) झुक कर रहते हैं, ( समुद्राय सिन्धवः न ) समुद्रके आगे जैसे नदियां झुकती हैं ॥ १ ॥

[ १६५२ ] ( दोधतः वृत्रस्य शिरः चित् ) जगकी कंधानेवाले वृत्रके सिरको ( वृष्णिना ) बलवान् इन्द्रने ( शत-पर्वणा वज्रेण वि बिभेद ) संकड़ों धारवाले वज्रसे फोड़ डाला ॥ २ ॥

[ १६५३ ] ( अस्य तत् ओजः तित्विषे ) इसका वह सामर्थ्य चमकने लग गया । ( यत् इन्द्रः ) जिस बलसे इन्द्रने ( उमे रोदसी ) दोनों भूलोक और द्यूलोकको ( चर्मैव समवर्तयत् ) चमड़ेके समान लपेटकर अपने आधीन किया है ॥ ३ ॥

[ १६५४ ] हे इन्द्र ! तेरे घोड़े ( सुमन्मा वस्वी ) उत्तम समझदार और धनयुक्त हैं, तथा वे ( रन्ती सूनरी ) रमणीय और सुन्दर भी हैं ॥ १ ॥

[ १६५५ ] हे ( सरूप वृषन् ) सुरुप और बलवान् इन्द्र ! ( भद्रौ इमौ धुर्या ) उत्तम कल्याण करनेवाले इस रथमें जोड़ेजानेवाले दोनों घोड़ोंको जोड़कर ( अभि आगहि ) हमारे यज्ञमें आ । ( तौ इमौ उप सर्पतः ) तेरे ये दोनों घोड़े तेरी उत्तम सेवा करते हैं ॥ २ ॥

[ १६५६ ] हे ऋत्विजो ! ( दशभिः शृङ्गेभिः ) दसों अंगुलियोंसे ( इव दिशन् ) हमारे चाहे हुए धनको देता हुआ इन्द्र ( आपस्य मध्ये तिष्ठति ) हमारे यज्ञमें खड़ा हुआ है । ( शीर्षाणि नि मृद्वं ) अपने मिर झुकाकर उमे देखो ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥



## सप्तदश अध्याय

इस अध्यायमें इन्द्र, अग्नि, विष्णु, वायु और सोम इन पांच देवताओंका वर्णन है। उनमें इन्द्रका वर्णन बड़ा है, इस-लिए उसे पहले देखें—

### इन्द्र

१ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं हवामहे [ १६२० ]  
—सब लोगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ इन्द्रको तुम सबोंके हितके लिए हम बुलाते हैं।

२ अस्माकं केवलः अस्तु [ १६२० ]— इन्द्र सिर्फ हमें ही अधिक लाभ देनेवाला हो।

३ सत्रा-दावन वृषन् ! सः नः अमुं चरं अपावृधि, अस्मभ्यं अप्रतिष्कृतः [ १६२१ ]— हे एक साथ फल देनेवाले बलवान् इन्द्र ! वह तू हमारे अन्नोंको स्वीकार कर, हमसे बदला न ले, अपितु हमारा सहायक हो।

४ ईशानः अप्रतिष्कृतः वृषा ओजसा कृष्टीः इयति वंसगः यूथा इव [ १६२२ ]— सबोंका स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करनेवाला बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे उपकार करनेके लिए मनुष्योंके पास आता है, जैसे कि बेल झुंडमें जाता है।

५ हे इन्द्र ! प्रवृत्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि [ १६३७ ]— हे इन्द्र ! तू युद्धमें सब मुकाबला करनेवाले शत्रुओंको हराता है।

६ हे तूर्य ! त्वं अशस्ति-हा, जनिता वृत्रतूः तरुण्यतः असि [ १६३७ ]— शीघ्रतासे शत्रुओंको दूर करनेवाले हे इन्द्र ! तू विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्तियोंका निर्माता, शत्रुओंका नाश करनेवाला बाधा डालनेवाले शत्रुओंको दूर करनेवाला है।

७ तुरयन्तं ते शुष्मं [ १६३८ ]— शत्रुओंको नष्ट करनेवाले तेरे सामर्थ्य हैं।

८ यत् वृत्रं तूर्वसि, ते मन्यवे विश्वाः स्पृधः श्रथयन्त [ १६३८ ]— हे इन्द्र ! जब तू वृत्रका वध करता है, तब तेरे क्रोधके आगे सब स्पर्धा करनेवाले शत्रु ढीले पड़ जाते हैं।

९ यत् बलं अभिनत्, इन्द्रः रोचना अन्तरिक्षं च अतिरत् [ १६४० ]— इन्द्रने जब बलामुरको फाड़ा, तब उसने तेजस्वी अन्तरिक्षको और अधिक तेजस्वी बनाया।

१० गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन् अंगिरोभ्यः उदाजत्। अर्वाचं बलं नुनुदे [ १६४१ ] गुफामें छिपाकर रखी गई गायोंको इन्द्रने निकाला और अंगिरा ऋषियोंको वे गायें दीं। तब उन गायोंको चुराकर ले जानेवाले बल राक्षसकी नीचे मुंह करके भागना पड़ा।

११ सत्रासाहं वः विश्वासु गीर्षु आयतं त्वं ऊतये आच्यावयसि [ १६४२ ]— अनेक शत्रुओंको एक साथ हरानेवाले तथा तुम्हारे सभी स्तोत्रोंमें वर्णित उस इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं।

१२ युध्मं सन्तं अनर्वाणं अनपच्युतं अवार्यकृतं नरं [ १६४३ ]— युद्ध करनेवाले, पर कभी भी न हारनेवाले, किसीके भी आगे न झुकनेवाले, जिसका कार्यक्रम कोई बबल नहीं सकता ऐसे नेता इन्द्रको संरक्षणके लिए हम अपने पास बुलाते हैं।

१३ हे कक्षीषम इन्द्र ! विद्वान् रायः आ नः पुरु शिक्ष, पार्ये धने नः अव [ १६४४ ]— हे दर्शनीय इन्द्र ! सब जाननेवाला तू धन लेकर आ और हमें बहुत सारा धन दे। शत्रुके पाससे धन लाकर उनसे हमारा संरक्षण कर।

१४ धिषणा तव बृहत् इन्द्रियं दक्षं कर्तुं वरेण्यं वज्रं शिशाति [ १६४५ ]— तेरी बुद्धि तेरे महान् बल, दक्षता, पराक्रम और श्रेष्ठ वज्रको तीक्ष्ण करती है।

१५ द्यौः तव पौंस्यं, पृथिवी श्रवः वर्धति [ १६४६ ]— द्युलोक तेरे पौरुषको और पृथ्वी तेरे यशको बढ़ाती है।

१६ बृहत् क्षयः गृणाति [ १६४७ ]— तू महान् आश्रय देनेवाला है, इसलिए तेरी स्तुति होती है।

१७ विश्वाः कृष्टयः विशः अस्य मन्यवे सं नमन्त [ १६५१ ]— सारी प्रजायें इसके क्रोधके आगे झुकती हैं।

१८ दोधतः वृत्रस्य शिरः वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण बिभेद [ १६५२ ]— सब जगत्की कंपानेवाले वृत्रका शिर इन्द्रने बलयुक्त तथा हजारोंधारवाले वज्रसे काट डाला।

१९ अस्य ओजः तित्तिवरे [ १६५३ ]— इस इन्द्रका सामर्थ्य चमकने लग गया।

२० सुमन्मा वस्वी रन्ती सूतरी [ १६५४ ]— हे इन्द्र ! तेरे दोनों घोड़े बहुत समझदार, धनयुक्त, रमणीय और सुंदर हैं।



२१ सरूप वृषन् ! भद्रा इमौ भुर्यौ, तौ इमौ उप-  
सर्पतः, अभि आगहि [१६५५]- हे सरूप और बलवान्  
इन्द्र ! ये उत्तम कल्याण करनेवाले दोनों घोड़े रथमें जोड़-  
कर उत्तम प्रकारसे आगे आते हैं। उन्हें जोड़कर हमारे  
यज्ञमें आ।

२२ दशभिः शृंगेभिः दिशन् आपस्य मध्ये तिष्ठति,  
शीर्षाणि नि मृद्वं [१६५६]- दसों अंगुलियोंसे धन देता  
हुआ हमारे यज्ञमें इन्द्र खड़ा हुआ है। अपने सिर झुकाकर  
उसे देखो !

इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है, उससे बढ़कर सामर्थ्यवान् दूसरा कोई  
नहीं। वह हमारी सहायता करनेवाला है। वह एक ही साथ  
शत्रुओंको हराता है। वह हमारे द्वारा दिए गए अन्नको  
स्वीकार करके हमपर प्रसन्न हो। वह कभी भी न हारनेवाला  
इन्द्र यज्ञमें हमारे बीचमें आकर बैठे। युद्धमें वह सब शत्रुओंको  
हरावे। इन्द्र सब विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्ति उत्पन्न  
करनेवाला और शत्रुओंको दूर करनेवाला है।

जब इन्द्र वृत्रको मारता है, उस समय सब शत्रु ढीले पड़  
जाते हैं। जब बल राक्षसको उसने मारा तब अन्तरिक्षमें  
महान् प्रकाश पैदा हुआ। बलने गायोंको चुराकर गुफामें  
बन्द कर दिया था। इन्द्रने उस गुफाको फोड़कर उन गायोंको  
बाहर निकाला तथा उन्हें अंगिरा ऋषियोंको दे वीं।

वह सब शत्रुओंको एकदम हराता है ऐसा वह इन्द्र है।  
उसको कोई भी नहीं हरा सकता और उसके कार्यक्रममें कोई  
भी फेर बदल नहीं कर सकता। इन्द्र शत्रुओंसे धन छीनकर  
हमें बांटता है। उसका सामर्थ्य बल, पौरुष इत्यादि सब  
सामर्थ्य युक्त हैं। सब लोग उसके आगे सिर झुकाते हैं। वृत्रने  
सब जगत्को भयभीत किया, पर अन्तमें इन्द्रने वृत्रको मार  
डाला। इस कारण इन्द्रका तेज सब जगह फैल गया।

इन्द्रके दो घोड़े रथमें जोड़े जानेके लिए हैं। वे घोड़े उत्तम  
मुशबित, समझदार, चतुर और देखनेमें सुन्दर हैं। उन्हें  
रथमें जोड़कर वह यज्ञके स्थान पर जाता है।

### अग्नि

१ हविः त्वे इत् हूयते [१६१८]- हे अग्ने ! तुझमें  
हविर्द्रव्योंका हवन किया जाता है।

२ देवं देवं यजामहे [१६१८]- प्रत्येक देवके लिए  
हम यजन करते हैं।

३ विश्वपतिः होता मन्द्रः वरेण्यः नः प्रियः अस्तु,  
स्वन्नयः वयं प्रियाः [१६१९]- प्रजापालक, जिसमें हवन

होता है ऐसा आनन्द देनेवाला श्रेष्ठ अग्नि हमें प्रिय हो और  
उत्तम रीतिसे अग्निको रखनेवाले हम उस अग्निके प्रिय हों।

अग्नि “ विश्व-पतिः ” प्रजाओंका पालन करनेवाला  
है, उन्हें नीरोगी बनाता है।

४ हे वसो ! चित्रः त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय  
[१६२३]- हे निवासक अग्ने ! तू विलक्षण शक्तिवाला  
है, हमारी रक्षा कर और उसके साथ धन भी हमारे पास  
भेज।

५ हे अग्ने ! त्वं अस्य रायः रथीः असि [१६२३]-  
हे अग्ने ! तू इन धनोंको रथसे ले जानेवाला है।

६ नः तुचे गाधं विदः [१६२३]- हमारे पुत्रपौत्रोंको  
प्रतिष्ठाका स्थान मिले।

७ हे अग्ने ! त्वं अप्रयुत्वभिः अद्वैतैः पर्वभिः  
तोकं तनयं पर्षि [१६२४]- हे अग्ने ! तू अविरোধी  
भावनाओंसे युक्त और किसीसे न दबनेवाला अपने संरक्षणके  
साधनोंसे हमारे पुत्रपौत्रोंका पालन कर।

८ दैव्या हेडांसि नः युयोधि [१६२४]- देवी प्रकोपों-  
को हमसे दूर कर।

९ अदेवानि वहरांसि च [१६२४]- मनुष्यों और  
राक्षसोंके क्रोधोंको भी हमसे दूर कर।

१० अध्वराणां सम्राजन्तं त्वा अग्निं नमोभिः  
वन्द्यै [१६३४]- यज्ञके सम्राट् तुझ अग्निको हविष्यान्न  
अर्पित करके वन्दन करते हैं।

११ नः सुशेवः शवसा सनुः पृथुप्रगामा, अस्माकं  
मीद्वान् भूयात् [१६३५]- वह अग्नि हमारे द्वारा उत्तम  
रीतिसे सेवित होता है। वह बलका पुत्र, बहुत प्रगति करने-  
वाला हमें बहुत सुख देनेवाला होवे।

१२ हे अग्ने ! विश्वायुः दूरात् आसात् च अघायोः  
मर्त्यात् नः सदं इत् पाहि [१६३६]- हे अग्ने ! सब  
मनुष्योंका हित करनेवाला तू दूरके और पासके पापी मनुष्योंसे  
हमारी रक्षा हमेशा कर।

१३ हे अग्ने देव ! कृष्टयः ओजसे ते नमः गृणन्ति।  
अमैः अमित्रं अर्दय [१६४८]- हे अग्नि देव ! सब प्रजायें  
बल प्राप्त करनेके लिए नमस्कार करके तेरी स्तुति करती  
हैं। अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश कर।

१४ हे अग्ने ! गविष्ठये कुवित् सुरार्थि संघेषिषः।  
उरुकृत् । नः उरु कृधि [१६४९]- हे अग्ने ! हमें गाय  
मिले इसलिए हमें बहुत धन दे। हे बहुत कार्य करनेवाले  
अग्ने ! तू हमें महान् कर।



१५ हे अग्ने ! नः महाधने मा परावर्क । संवर्गं रायि संजय [ १६५० ]- हे अग्ने ! हमें संग्राममें दूर मत कर । इकट्ठे किए हुए धन जीत कर ला ।

अग्निमें हविर्द्रव्योंका हवन ऋतुके अनुसार किया जाता है, इस कारण वायु आदि देव प्रसन्न होते हैं । यह अग्नि प्रजाका पालन उत्तम रीतिसे करनेवाला है । अतः लोगोंको ऋतुके अनुसार यज्ञ करके अग्निको प्रसन्न करना चाहिए । यह अग्नि सब रोगबीजोंको दूर करता है और सब मनुष्योंका आरोग्य बढ़ाता है । पुत्रपौत्रोंका यह कल्याण करता है । देवी, मानुषिक और राक्षसोंका प्रकोप यह दूर करता है । रोगादि देवी प्रकोप हैं । चोरी, लूट और युद्ध आदि मानुषिक प्रकोप हैं । इन सभी भयोंको अग्नि दूर करता है । और लोगोंको सुखी करता है । पापी लोगोंका कष्ट वह दूर करता है । बल बढ़ाता है । इस कारण वह युद्धमें यश प्राप्त करता है ।

### विष्णु

१ हे विष्णो ! ते तत् नाम किं परिचक्षि [ १६२५ ] हे विष्णो ! तेरा वह नाम कितना उत्तम है ।

२ यत् नाम " शिपि-विष्टः अस्मि " इति ववक्षे [ १६२५ ]- जो नाम " किरणोंसे व्याप्त है " ऐसा भाव दिखाता है ।

३ एतत् वर्षः अस्मन् मा अप गूह [ १६२५ ]- यह रूप तू हमसे दूर मत रख ।

४ यत् समिथे अन्यरूपः इत् वभूव [ १६२५ ]- मुझमें तू अन्यरूप धारण करके ही हमारी सहायता करता है ।

५ हे शिपि-विष्ट ! ते तत् अर्थः वयुनानि विद्वान् अद्य प्रशंसामि [ १६२६ ]- हे किरणोंसे सबको व्यापनेवाले विष्णो ! तेरे उस नामका महत्त्व जाननेवाला विद्वान् मैं आज तेरी प्रशंसा करता हूँ ।

६ हे विष्णो ! ते आसः आ वषट् कृणोमि । हे शिपिविष्ट ! तत् मे हव्यं जुषस्व ! मे सुष्टुतयः गिरः त्वा वर्धन्तु [ १६२७ ]- हे विष्णो ! तेरे मुखमें मैं वषट्कार-पूर्वक हवि अर्पण करता हूँ । हे प्रकाशसे व्याप्त देव ! मेरी हविको तू स्वीकार कर । मेरी उत्तम स्तुति तेरी महिमा बढ़ावे ।

विष्णुका नाम शिपिविष्ट है । क्योंकि वह चारों ओरके किरणोंसे व्याप्त करता है । चारों ओर उसकी किरणें फैलती हैं । पर वह अपने अनेक रूपोंसे मनुष्योंका हित करता है । किरणोंसे व्यापनेवाला आकाशमें सूर्य है, मेघोंमें बिजुल है

और पृथ्वीपर अग्नि है । इस अग्निमें हवन किया जाता है । उन हवनीय पदार्थोंको सूक्ष्म करके वह चारों दिशाओंमें फैलाता है, इस कारण चारों ओर आरोग्यका वातावरण उत्पन्न होता है । सब लोगोंका जीवन इस कारण सुख और आरोग्यका जीवन होता है ।

### वायु

१ हे वायो ! शुक्रः दिविष्टिषु ते मध्वः अग्रं अयामि [ १६२८ ]- हे वायो ! मैं निर्वोष होकर यज्ञ करता हूँ । उस यज्ञमें तुझे सबसे प्रथम सोमरस देनेके लिए अर्पण करता हूँ ।

२ स्पार्हः सोमपीतये आयाहि [ १६२८ ]- प्रशंसनीय तू सोम पीनेके लिए आ ।

३ हे वायो ! इन्द्रः च एषां सोमानां पीति अर्हथः [ १६२९ ]- हे वायो ! तू और इन्द्र दोनों सोम पीनेके योग्य हो ।

४ युवां इन्द्रवः यन्ति [ १६२९ ]- तुम्हारे पास सोम-रस बढ़ता है ।

५ हे वायो ! इन्द्रः च शवसः पती शुष्मिणा । नः ऊतये आयातं [ १६३० ]- हे वायो ! तू और इन्द्र दोनों बलके स्वामी और वीर्यवान् हो । हमारी रक्षाके लिए आओ ।

वायुकी प्रशंसा सब जगह होती है । वायु और इन्द्र दोनों देव बहुत सामर्थ्यवान् हैं, इसलिए उन्हें सर्वप्रथम सोमरस दिया जाता है । लोगोंकी रक्षा वायु करता है । वायु यदि न हो, तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता । इवासी-च्छ्वास करके ही मनुष्य जीवित रहता है । अतः मनुष्योंका जीवन वायु पर अवलम्बित है । इसलिए सब यज्ञमें वायुको प्रथम स्थान दिया जाता है और उसकी पूजा प्रथम होती है । वायु शुद्ध हो तो प्राणियोंका जीना लम्बे समयतक हो सकता है । अन्न और पानीकी अपेक्षा वायुकी आवश्यकता ज्यादा होती है । यह आवश्यकता मनुष्योंको ही नहीं अपितु सभी प्राणियों और वनस्पतियोंको भी होती है । यह वायुका महत्त्व ऊपरके मंत्रोंमें उत्तम प्रकारसे दिखाया है ।

### सोम

१ विवस्वतः धियः हरिं यातवे हिन्वन्ति [ १६३१ ]- संस्कार करनेवालोंकी अंगुलियां हरे रंगके सोमकी कलशमें जानेके लिए प्रेरित करती हैं ।

२ अस्य तं मर्जयामसि [ १६३२ ]- इस सोमके उस रसको हम शुद्ध करते हैं ।



३ यं सूरयः पुरा च नूनं गावः आसभिः दधुः [ १६३२ ]- जिस सोमरसको विद्वान् लोग जैसे पहले पीते थे, वैसे ही अब भी पीते हैं। गायें भी अपने मुखसे सोमका भक्षण करती हैं।

४ पुनानं पुराण्या गाथया अभ्यनूषत [ १६३३ ]- छाने जानेवाले सोमकी पुराने स्तोत्रोंसे स्तुति की जाती है।

५ नाम विभ्रतीः धीतयः देवानां कृपन्त [ १६३३ ]- हवि धारण करनेवाली अंगुलियां देवोंको सोमरस अर्पण करनेमें समर्थ होती हैं।

सोम कूटा जाता है। अंगुलियोंसे दबाकर उसका रस निकाला जाता है और उसका रस कलशमें भरकर रखा जाता है। बादमें उसमें पानी मिलाकर वह छाना जाता है। विद्वान् लोग इस रसको पहलेके समान पीते हैं। सोमरसके छनते समय देवोंके स्तोत्र बड़ी आवाजमें बोले जाते हैं। बादमें वह देवोंको दिया जाता है, फिर बादमें यज्ञ करनेवाले भी सोमरस पीते हैं।

इस प्रकार सोमका वर्णन इस अध्यायमें आया है।

## सुभाषित

१ हे सहस्रः यहो ! विश्वेभिः अग्निभिः इमं यज्ञं इदं वचः, चनः धाः [ १६१७ ]- हे बलके पुत्र ! सब अग्नियोंके साथ इस यज्ञमें आ, यह स्तुति सुन और हमें अन्न दे।

२ यत् चित् हि शश्वता तना देवं देवं यजामहे हविः त्वे इत् ह्वयेत [ १६१८ ]- जो कुछ भी हमेशा हवि अर्पण करके प्रत्येक देवताका यजन हम करते हैं, वे हवन तुझमें किए जाते हैं।

३ विश्वपतिः होता मन्द्रः चरेण्यः नः प्रियः अस्तु, स्वप्नयः वयं प्रियाः [ १६१९ ]- प्रजाओंका पालक, हवन करनेवाला और सुखदायी ऐसा श्रेष्ठ अग्नि हमें प्रिय हो। तथा उत्तम रीतिसे अग्निको अपने घरमें रखनेवाले हम भी उसे प्रिय हों।

४ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं वः हवामहे, अस्माकं केवलः अस्तु [ १६२० ]- सब लोगोंमें श्रेष्ठ ऐसे इन्द्रको तुम्हारे हितके लिए हम बुलाते हैं, वह इन्द्र केवल हमें ही लाभ देनेवाला हो।

४१ [ साम. हिम्बो भा. २ ]

५ ईशानः अप्रतिष्कृतः वृषा ओजसा कृष्टीः इयर्ति [ १६२२ ]- वह सबका ईश्वर और हमारा प्रतिकार न करनेवाला बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे अनुग्रह करनेके लिए मनुष्यके पास जाता है।

६ हे वसो ! चित्रः त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय [ १६२३ ]- हे निवासक अग्ने ! सुन्दर और दर्शनीय ऐसा तू संरक्षणसे युक्त धन हमारी तरफ भेज।

७ त्वं अस्य रायः रथीः असि [ १६२३ ]- तू इस धनको रथसे लानेवाला है।

८ नः तुचे गाधं विदः [ १६२३ ]- हमारे पुत्रोंको प्रतिष्ठाका स्थान मिले।

९ अग्ने ! त्वं अप्रयुत्वभिः अदृग्धैः पर्थभिः तोकं तनयं पर्षि [ १६२४ ]- हे अग्ने ! अविरोधी भावनाओंसे युक्त और किसीके द्वारा न दबाया जानेवाला तू अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारे पुत्रपौत्रोंका पालन कर।

१० दैव्या हेडांसि नः युयोधि [ १६२४ ]- देवके क्रोधको हमसे दूर कर।

११ अदेवानि द्वांसि च [ १६२४ ]- मनुष्यों और राक्षसोंके क्रोधको दूर कर।

१२ हे शिपि-विष्ट ! ते तत् अर्यः वयुनानि विद्वान् अद्य प्रशंसामि [ १६२६ ]- हे किरणोंसे व्यापनेवाले विष्णो ! उस तेरे नामकी, श्रेष्ठ और सब कर्म जाननेवाला मैं, आज प्रशंसा करता हूँ।

१३ सुष्टुतयः मे गिरः त्वा वर्धन्तु [ १६२७ ]- मेरी उत्तम स्तुतियां तेरी महिमा बढ़ावें।

१४ यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात [ १६२७ ]- तुम कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमारी सदा रक्षा करो।

१५ शवसः पती शुष्मिणा [ १६३० ]- तुम दोनों बलके स्वामी और सामर्थ्यवान् हो।

१६ नः ऊतये आयातं [ १६३० ]- हमारी रक्षाके लिए आओ।

१७ शवसा सूनुः अस्माकं मीढ्वान् बभूयात् [ १६३५ ]- वह बलका पुत्र हमें सुख देनेवाला हो।

१८ विश्वायुः दूरात् च आसात् च अघायोः मर्त्यात् नः सदैव इत् निपाहि [ १६३६ ]- सब मनुष्योंका हित करनेवाला तू दूरके और पासके पापी मनुष्योंसे हमेशा हमारी रक्षा कर।



१९ हे इन्द्र ! प्रतूर्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि [ १६३७ ]- हे इन्द्र ! तू सब युद्धोंमें सब मुकाबला करनेवाले शत्रुओंको हरा ।

२० तूर्य ! त्वं अशस्तिहा जनिता वृत्र-तूः तरुष्यतः असि [ १६३७ ]- हे शीघ्रतासे शत्रुओंको दूर करनेवाले इन्द्र ! तू विपत्तियोंको दूर करनेवाला, सम्पत्तिका उत्पन्न करनेवाला, शत्रुओंका विनाशक और बाधा डालनेवाले शत्रुओंको दूर करनेवाला है ।

२१ तुरयन्तं ते शुष्मं [ १६३८ ]- शत्रुओंको नष्ट करनेवाला तेरा बल है ।

२२ यत् वृत्रं तूर्वासि, ते मन्यवे विश्वाः स्पृधः श्रथयन्त [ १६३८ ]- जब तू वृत्रका वध करता है, तब तेरे क्रोधके आगे सब मुकाबला करनेवाले शत्रु शिथिल हो जाते हैं ।

२३ इन्द्रः यत् बलं अभिनत् रोचना अन्तरिक्षं वि अतिरत् [ १६४० ]- इन्द्रने जब बल राक्षसको फाड़ डाला, तब उसने तेजस्वी अन्तरिक्षको और अधिक तेजस्वी बनाया ।

२४ गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन् बलं अर्वाचं नुनुदे [ १६४१ ]- गुहामें रखी हुई गायोंको इन्द्रने बाहर निकाला, तब गुहामें उनको रखनेवाले बल राक्षसको नीचे सुंह करके भागना पड़ा ।

२५ सत्रासाहं विश्वासु गीर्षु आयतं त्यं ऊतये आ च्यावयसि [ १६४२ ]- अनन्त शत्रुओंको एकदम मारनेवाले सब स्तोत्रोंके द्वारा वर्णित किए गए उस इन्द्रको हमारे संरक्षणके लिए हमारे पास आने दे ।

२६ युष्मं सन्तं अनर्वाणं अनपच्युतं अवार्यकतुं नरं [ १६४३ ]- युद्ध करने पर भी कभी भी न हारनेवाले, न दबनेवाले, जिसके कार्यक्रमको कोई बदल नहीं सकता ऐसे वीर नेता इन्द्रको हम सहायताके लिए बुलाते हैं ।

२७ हे ऋचीषम इन्द्र ! विद्वान् रायः नः पुरुशिक्ष, पार्ये धने नः अव [ १६४४ ]- हे सुन्दर इन्द्र ! सब जाननेवाला तू धन लेकर उसमेंसे हमें बहुत सारा दे और शत्रुसे धन लाकर उससे हमारी रक्षा कर ।

२८ धिषणा त्यत् बृहत् इन्द्रियं तव दक्षं उत क्रतुं वरेण्यं वज्रं शिशाति [ १६४५ ]- तेरी बुद्धि तेरे बलको, तेरी दक्षताको, तेरे कार्यको और तेरे श्रेष्ठ वज्रको तीक्ष्ण करती है ।

२९ हे इन्द्र ! द्यौः तव पौंस्यं पृथिवी श्रवः वर्धति

[ १६४६ ]- हे इन्द्र ! द्युलोक तेरे पौरुषको और पृथ्वी तेरे यशको बढ़ाती है ।

३० बृहत् क्षयः गृणाति [ १६४७ ]- बड़े-बड़े घर देनेवालेके रूपमें तेरी स्तुति होती है ।

३१ हे अग्ने देव ! कृष्टयः ओजसे ते नमः गृणन्ति, अमैः अमित्रं अर्दय [ १६४८ ]- हे अग्नि देव ! मनुष्य बल प्राप्त करनेके लिए तुझे नमन करके तेरी स्तुति करते हैं, अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश कर ।

३२ हे अग्ने ! नः गविष्टये कुवित् सु-रयिं सं-वेषिषः उरुकृत् नः उरुकृधि [ १६४९ ]- हे अग्ने ! हमें बहुतसी गायें मिलें इसलिए तू हमें बहुत सारा धन दे । तू यश बढ़ानेवाला हमें सहान् कर ।

३३ हे अग्ने ! नः महाधने मा परावर्क् । संवर्गं रयिं संजय [ १६५० ]- हे अग्ने ! हमें संग्राममें दूर मत कर । इकट्ठा करके और जीतकर धन ला ।

३४ विश्वाः विशः कृष्टयः अस्य मन्यवे सं नमन्त [ १६५१ ]- सब प्रजाजन इसके क्रोधके आगे झुककर रहते हैं ।

३५ दोधतः वृत्रस्य शिरः वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण वि विभेद [ १६५२ ]- जगत्को कंपानेवाले वृत्रके सिरको इन्द्रने संकड़ों धारवाले वज्रसे फोड़ डाला ।

३६ अस्य तत् ओजः तित्विषे, यत् इन्द्रः उभे रोदसी चर्म इव समवर्तयत् [ १६५३ ]- इसका वह सामर्थ्य चमकने लग गया, जिसके बलसे इन्द्रने द्यु और पृथ्वीको चमड़ेके समान लपेट कर रख दिया ।

३७ दशभिः शृंगेभिः इव दिशन् आपस्य मध्ये तिष्ठति, शीर्षाणि निमृद्वम् [ १६५६ ]- दसों अंगुलियोंसे हमारे चाहे हुए धनको देते हुए हमारे यज्ञमें इन्द्र खड़ा हुआ है । हे लोगो ! उसके आगे अपने सिरको नीचे करो ।

## उपमा

१ वंसगः यूथा इव [ १६२२ ]- जैसे बेल मुण्डमें जाता है, उसीप्रकार ( बुधा ओजसा कृष्टीः इयति ) बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे मानवी समूह-यज्ञ-में जाता है ।

२ निम्नं आपः न [ १६२९ ]- जिसप्रकार नीची जगहपर पानीका प्रवाह चलता है, उसीप्रकार ( युवां इन्दवः यन्ति ) तुम्हारी तरफ सोमरस जाते हैं ।



३ चारवन्तं अश्वं न [ १६३४ ]- जैसे अयालवाले घोड़ेसे उसपर बैठनेवाले लोग प्रेम करते हैं, उसीप्रकार ( अग्निं नमोभिः वन्दध्वै ) अग्निको यज्ञकर्त्ता हवि अर्पण करके प्रेम करते हैं।

४ मातरा शिशुं न [ १६३८ ]- जिसप्रकार मातायें अपने बच्चोंके पीछे चलती हैं, उसीप्रकार ( क्षोणी ) छाया-पृथिवी इन्द्रके अनुकूल चलते हैं।

५ यथा भारभृत् [ १६५० ]- जैसे बोझ उठानेवाला

मजदूर बोझको यथास्थान पहुंचाता है, वैसे ही ( रयिं संजय ) तू धन जीतकर ला।

६ समुद्राय सिन्धवः न [ १६५१ ]- जैसे समुद्रमें नदियां नम्र होकर मिलती हैं, वैसे ही ( विश्वाः विडाः अस्य-मन्यवे सं नमन्त ) सब प्रजायें इस इन्द्रके क्रोधके आगे नम्र होकर रहती हैं।

७ चर्म इव [ १६५३ ]- चमडोके समान ( उभे रोदसी समवर्तयत् ) छु और पृथ्वी दोनोंको इन्द्रने लपेट कर रख दिया।

## सप्तदशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                           | देवता       | छन्दः                                    |
|-------------|--------------|--------------------------------|-------------|--|
| ( १ )       |              |                                |             |  |
| १६१७        | १।१६।१०      | शुनःशेष आजीगतिः                | अग्निः      | गायत्री                                  |
| १६१८        | १।१६।६       | शुनःशेष आजीगतिः                | "           | "  |
| १६१९        | १।१६।७       | शुनःशेष आजीगतिः                | "           | "  |
| १६२०        | १।७।१०       | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः        | इन्द्रः     | "  |
| १६२१        | १।७।६        | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः        | "           | "  |
| १६२२        | १।७।८        | मधुच्छन्वा वैश्वामित्रः        | "           | "  |
| १६२३        | ६।४८।९       | शंयुर्बाहंस्पत्यः ( तृणपाणिः ) | अग्निः      | प्रगायः=( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १६२४        | ६।४८।१०      | शंयुर्बाहंस्पत्यः ( तृणपाणिः ) | "           | "  |
| १६२५        | ७।१००।६      | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः           | विष्णुः     | त्रिष्टुप्                               |
| १६२६        | ७।१००।५      | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः           | "           | "  |
| १६२७        | ७।१००।७      | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः           | "           | "  |
| ( २ )       |              |                                |             |  |
| १६२८        | ४।४७।१       | वामदेवो गौतमः                  | वायुः       | अनुष्टुप्                                |
| १६२९        | ४।४७।२       | वामदेवो गौतमः                  | इन्द्रवायू  | "  |
| १६३०        | ४।४७।३       | वामदेवो गौतमः                  | "           | "  |
| १६३१        | ९।९९।२       | रेभसून् काश्यपो                | पवमानः सोमः | "  |
| १६३२        | ९।९९।३       | रेभसून् काश्यपो                | "           | "  |
| १६३३        | ९।९९।४       | रेभसून् काश्यपो                | "           | "  |
| १६३४        | १।२७।१       | शुनःशेष आजीगतिः                | अग्निः      | गायत्री                                  |
| १६३५        | १।२७।२       | शुनःशेष आजीगतिः                | "           | "  |
| १६३६        | १।२७।३       | शुनःशेष आजीगतिः                | "           | "  |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः          | देवता   | छन्दः                                    |
|-------------|--------------|---------------|---------|--|
| १६३७        | ८।९९।५       | नृमेष आंगिरसः | इन्द्रः | प्रगायः=( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १६३८        | ८।९९।६       | नृमेष आंगिरसः | "       | "  |

( ३ )

|      |        |                                |         |         |
|------|--------|--------------------------------|---------|---------|
| १६३९ | ८।१४।५ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो काण्वायनो | इन्द्रः | गायत्री |
| १६४० | ८।१४।७ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो काण्वायनो | "       | "       |
| १६४१ | ८।१४।८ | गोषूक्त्यश्वसूक्तिनो काण्वायनो | "       | "       |
| १६४२ | ८।१५।७ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः  | "       | "       |
| १६४३ | ८।१५।८ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः  | "       | "       |
| १६४४ | ८।१५।९ | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः  | "       | "       |
| १६४५ | ८।१५।७ | विरूप आंगिरसः                  | "       | उष्णिक् |
| १६४६ | ८।१५।८ | विरूप आंगिरसः                  | "       | "       |
| १६४७ | ८।१५।९ | विरूप आंगिरसः                  | "       | "       |

( ४ )

|      |         |                 |         |         |
|------|---------|-----------------|---------|---------|
| १६४८ | ८।७५।१० | विरूप आंगिरसः   | अग्निः  | गायत्री |
| १६४९ | ८।७५।११ | विरूप आंगिरसः   | "       | "       |
| १६५० | ८।७५।१२ | विरूप आंगिरसः   | "       | "       |
| १६५१ | ८।६।४   | वत्सः काण्वः    | इन्द्रः | "       |
| १६५२ | ८।६।६   | वत्सः काण्वः    | "       | "       |
| १६५३ | ८।६।५   | वत्सः काण्वः    | "       | "       |
| १६५४ | —       | शुनःशेष आजीगतिः | "       | "       |
| १६५५ | —       | शुनःशेष आजीगतिः | "       | "       |
| १६५६ | —       | शुनःशेष आजीगतिः | "       | "       |



## अथाष्टादशोऽध्यायः ।

अथाष्टमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८-२ ॥

[ १ ]

( १-१९ ) १ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः; २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; ३ शुनःशेष आजोगतिः;  
 ४ शंयुर्बाह्रस्पत्यः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६, ९ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः; ७ बालवित्यम् ( आयुः काण्वः ); ८ अम्ब-  
 रिषो वाष्वांगिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १० विश्वमना वेंयश्च; ११ सोभरिः काण्वः; १२ सप्तर्वयः ( १ भरद्वाजो  
 बार्हस्पत्यः, २ काश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहगणः; ४ अत्रिर्मौमः, ५ विश्वामित्रो गाथितः, ६ जमवग्निर्भागवः,  
 ७ वसिष्ठो मंत्रावरुणिः ); १३ कलिः प्रागायः; १४, १७ विश्वामित्रः प्रागायः; १५ मेधातिथिः काण्वः,  
 १६ निध्रुविः काश्यपः; १८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ १-२, ४, ६-७, ९-१०, १३, १५ इन्द्रः; ३, ११,  
 १८, १९ अग्निः; ५ विष्णुः, ५ ( ६ ) वेवो वा; ८, १२, १६ पवमानः सोमः; १४, १७ इन्द्राग्ना ॥ १-५,  
 १४, १५-१८, १९ गायत्री; ६, ७, ९, १२, १३ प्रागायः- ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती );  
 ८ अनुष्टुप् १० उष्णिक्, ११ काकुभः प्रागायः= ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); १५ बृहती ॥

१६५७ पन्यं पन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।२९ )

१६५८ एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१।२७ )

१६५९ पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्तारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥ ३ ॥ १ ( ति ) ॥

[ धा० १४ । उ १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।१।२६ )

१६६० आ त्वा विशन्तिवन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १ ॥  
 ( ऋ. ८।९।२२ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १६५७ ] हे ( सोतारः ) सोमरस निकालनेवाले यजमानो ! ( मद्याय वीराय ) प्रसन्न और पराक्रमी ( शूराय )  
 सूर इन्द्रके पास ( पन्यं पन्यं इत् सोमं ) अत्यन्त प्रशंसनीय सोमरसको ( आ धावत ) पहुँचावो ॥ १ ॥

[ १६५८ ] ( ब्रह्मयुजा शग्मा ) शब्दोंके इशारेसे जुड़ जानेवाले, सुख देनेवाले ( हरी ) इन्द्रके वो घोड़े ( एह )  
 इस यज्ञमें ( सखायं गीर्भिः गिर्वणसं इन्द्रं ) मित्र और वाणियोंसे स्तुत्य इन्द्रको ( आवक्षतः ) लेकर आवें ॥ २ ॥

[ १६५९ ] ( सुतं पाता वृत्र-हा ) सोम पीनेवाला और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र ( अस्मत् आरे ) हमारे पास  
 ( घ आगमत् ) अवश्य आवे । ( शतं ऊतिः ) सैकड़ों साधनोंसे संरक्षण करनेवाला इन्द्र ( नियमते ) शत्रुओंको दूर  
 करता है ॥ ३ ॥

[ १६६० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( इन्दवः त्वा आ विशन्तु ) सोमरस तुमसे प्राप्त हों । ( सिन्धवः समुद्रं इव )  
 जैसे नवियां समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसीप्रकार इन्द्रको सोम प्राप्त हों । हे इन्द्र ! ( त्वां न अतिरिच्यते ) तेरी अपेक्षा  
 और कोई अधिक श्रेष्ठ नहीं है ॥ १ ॥



१६६१ विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षः सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥२॥ ( ऋ. ८९१।२३ )

१६६२ अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥ ३ ॥ २ ( क ) ॥

[ धा० ११ । उ० १ ख० १ ] ( ऋ. ८९१।२४ )

१६६३ जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१॥ ( ऋ. १।२७।१० )

१६६४ स ना महाः अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥२॥ ( ऋ. १।२७।११ )

१६६५ स रेवाः इव विशपतिर्देव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्वृहद्भानुः ॥ ३ ॥ ३ ( ह ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. १।२७।१२ )

१६६६ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्रवे न शाकिने ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।४९।२२ )

१६६७ न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥२॥ ( ऋ. ६।४९।२३ )

१६६८ कुवित्सस्य प्र हि वज्रं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥३॥ ४ ( फी ) ॥

[ धा० १९ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।४९।२४ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ १६६१ ] हे ( वृषन् जागृवे ) बलवान् और जाग्रत रहनेवाले इन्द्र ! तू ( सोमस्य भक्षः ) सोम पीनेके लिए ( महिना विव्यक्थ ) अपनी महिमासे सर्वत्र व्याप्त होकर रहता है । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यः ते जठरेषु ) जो सोम तेरे पेटमें जाता है, वह महान् है ॥ २ ॥

[ १६६२ ] हे ( वृत्रहन् इन्द्र ) वृत्रनाशक इन्द्र ! ( सोमः ते कुक्षये अरं भवतु ) हमारे द्वारा दिए गए सोम तेरे पेटमें भर जाएँ, ( इन्दवः धामभ्यः अरं ) सोमरस सब देवताओंको भरपूर हो ॥ ३ ॥

[ १६६३ ] हे ( जराबोध ) स्तुतिसे जाग्रत होनेवाले अग्ने ! ( विशे विशे ) प्रत्येक प्रजाजनके हितार्थ ( याज्ञियाय ) यज्ञ सिद्ध करनेके लिए ( तत् विविड्ढि ) उस यज्ञशालामें प्रवेश कर । ( रुद्राय दृशीकं स्तोमं ) रुद्र स्वरूपी अग्निके लिए सुन्दर स्तोत्र बोलो ॥ १ ॥

[ १६६४ ] ( महान् अनिमानः ) महान् और न मापने योग्य ( धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः सः ) धुंवेकी ध्वजावाला और बहुत आनन्द देनेवाला वह अग्नि ( नः धिये वाजाय हिन्वतु ) हमें ज्ञान और अन्न प्राप्त करनेके लिए प्रेरित करे ॥२॥

[ १६६५ ] ( देव्यः विशपतिः ) देव्य प्रजापालक ( वृहद्भानुः केतुः सः ) महान् प्रकाशमान् और ध्वजके समान वह अग्नि ( रेवान् इव ) धनवान् राजाके समान ( नः उक्थैः शृणोतु ) हमारे स्तोत्र सुने ॥ ३ ॥

[ १६६६ ] हे स्तुति करनेवालो ! ( सुते ) सोमका रस निकालनेके बाद ( वः ) तुम ( पुरु-हूताय सत्वने ) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित और बलवान् ऐसे इन्द्रके लिए ( तत् सचा गाय ) उन स्तोत्रोंको एक जगह बैठकर गावो । ( यत् गवे न ) जिसप्रकार गायोंको घास सुख देती है, उसीप्रकार ( शाकिने शं ) शक्तिमान् इन्द्रको वे स्तोत्र आनन्ददायक होते हैं ॥ १ ॥

[ १६६७ ] ( यत् सीं ) यदि वह इन्द्र ( गिरः उप श्रवत् ) हमारी स्तुति सुनेगा तो ( वसुः ) सबोंके निवासक इन्द्रको ( गोमतः वाजस्य दानं ) हमें गायोंसे युक्त अन्नका दान करनेसे ( न घ नियमते ) कोई भी रोक नहीं सकता ॥२॥

[ १६६८ ] ( दस्यु-हा ) शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र ( कुवित्सस्य ) बहुत हिंसा करनेवाले असुरके ( गोमन्तं वज्रं प्रागमत् ) गायोंसे भरे हुए बाड़े पर अधिकार करता है, तब ( हि शचीभिः ) अपनी शक्तिपौसे ( नः [ गाः ] अपवरत् ) वह हमारी गायोंको प्राप्त करके देता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ २ ]

१६६९ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ॥ १ ॥ ( ऋ. १।२२।१७ )

१६७० त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥  
( ऋ. १।२२।१८ )

१६७१ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥  
( ऋ. १।२२।१९ )

१६७२ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १।२२।२० )

१६७३ तदिप्रासो विपन्युवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १।२२।२१ )

१६७४ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥ ५ ( इ. ) ॥  
[ धा० ३३ । उ० २ । स्त्र० ६ ] ( ऋ. १।२२।१६ )

१६७५ मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।  
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नप श्रुधि ॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।१ )

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १६६९ ] ( विष्णुः इदं विचक्रमे ) विष्णुने जब इस जगमें पराक्रम किया, तब उसने ( त्रेधा पदं निदधे ) तीन प्रकारसे अपने पावोंको वहां रखा । ( अस्य पांसुले समूढम् ) इसके धूलियुक्त पावोंके स्थान पर सब जगत् रह रहा है ॥ १ ॥

[ १६७० ] ( अ-दाभ्यः गोपाः विष्णुः ) न दबनेवाला रक्षक विष्णु ( अतः धर्माणि धारयन् ) वहांसे सबके कर्तव्योंका पोषण करता हुआ ( त्रीणि पदा विचक्रमे ) अपने तीन पावोंसे सब जगत्को घेरता है ॥ २ ॥

[ १६७१ ] हे मनुष्यो ! ( विष्णोः कर्माणि पश्यत ) विष्णुके पुरुषार्थोंको देखो, ( यतः व्रतानि पस्पशे ) जिसके कारण सब व्रत-कर्म चलते हैं । वह विष्णु ( इन्द्रस्य युज्यः सखा ) इन्द्रका योग्य मित्र है ॥ ३ ॥

[ १६७२ ] ( सूरयः ) विद्वान् ( विष्णोः तत् परमं पदं ) विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ( सदा पश्यन्ति ) हमेशा देखते हैं । ( दिवि आततं चक्षुः इव ) आकाशमें फंसे हुए नेत्ररूपी सूर्यको देखनेके समान इस श्रेष्ठ स्थानको विद्वान् लोग देखते हैं ॥ ४ ॥

[ १६७३ ] ( विष्णोः तत् परमं पदं ) विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको ( विप्रासः जागृवांसः विपन्यवः ) ज्ञानी, जागृत और स्तुति करनेवाले ( यत् समिन्धते ) प्रदीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

[ १६७४ ] ( विष्णुः पृथिव्याः अधिसानवि ) विष्णु पृथ्वीपरके अत्यन्त उच्च स्थानमें ( यतः विचक्रमे ) जहांसे अपना विक्रम करता है, ( अतः ) उस स्थानसे ( देवाः नः अवन्तु ) सब देव हमारी रक्षा करें ॥ ६ ॥

[ १६७५ ] हे इन्द्र ! ( त्वा ) तुझे ( वाघतः च न ) स्तुति करनेवाले ( अस्मत् आरे ) हमसे दूर ( मा नि रीरमन् ) न रमायें । इसलिए तू ( आरात्ताद्वा ) दूर हो तो भी ( नः सधमादं आगहि ) हमारे यज्ञके स्थानपर आ, और ( इह वा सन् ) यहां रहते हुए भी ( उप श्रुधि ) हमारी स्तुति सुन ॥ १ ॥



१६७६ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सु ते सचा मधौ न मक्ष आसते ।

इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥ ६ ( डी ) ॥

[ धा० १३ । उ० ४ । स्व० ४ ] ( ऋ. ७।३।२ )

१६७७ अस्तावि मन्म पूर्य ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

पूर्वाकृतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।५।९ )

१६७८ समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणीं समु सूर्यम् ।

सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ २ ॥ ७ ( ठा ) ॥

[ धा० १३ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।५।१० )

१६७९ इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि पिच्यसे । नरे च दक्षिणावते वीराय सद्नासदे ॥ १ ॥

( ऋ. ९।९।१० )

१६८० तं सखायः पुरुुरुचं वयं यूयं च सूरयः । अश्याम वाजगन्धं सनेम वाजस्पत्यम् ॥ २ ॥

( ऋ. ९।९।१२ )

[ १६७६ ] हे इन्द्र ! ( त सुते ) तेरे लिए सोमरस निचोड़नेके बाद ( ब्रह्म-कृतः ) स्तोत्र कहनेवाले ऋत्विज ( मधौ मक्षः न ) शहबके लिए मक्खियां जिसप्रकार एक जगह जमा होती हैं, उसीप्रकार ( सचा आसते ) एक जगह बैठते हैं । ( वसूयवः जरितारः ) धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता ( कामं ) अपने इष्ट फलको ( रथे पादं न ) जिस-प्रकार रथमें पांव रखते हैं, उसीप्रकार ( आदधुः ) धारण करते हैं ॥ २ ॥

[ १६७७ ] हमने ( अस्तावि ) इन्द्रकी स्तुति की, हे ऋत्विजो ! उस ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( पूर्य मन्म ब्रह्म वोचत ) पहलेके मननीय स्तोत्र कहो । तथा ( पूर्वीः कृतस्य बृहतीः अनूषत ) पहलेके यज्ञोंके बृहती छन्दमें सामगान करो, ( स्तोतुः मेधाः असृक्षत ) स्तुति करनेवालोंकी ऐसी बुद्धियां दो ॥ १ ॥

[ १६७८ ] ( इन्द्रः ) इन्द्र ( बृहतीः रायः ) बहुत धन ( सं अधूनुत ) हमें देवे । ( क्षोणीः सं ) भूमि हमें दे, ( सूर्यं सं ) सूर्यप्रकाश हमें प्राप्त हो, ( शुचयः शुक्रासः इन्द्रं सं ) शुद्ध किए गए सोम इन्द्रको प्राप्त हों । ( गवाशिरः सोमाः इन्द्रं अमन्दिषुः ) गो दुग्धमें मिलाये गए सोमरस इन्द्रको प्रसन्न करें ॥ २ ॥

[ १६७९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे ) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रको पीनेको देनेके लिए ( परि-पिच्यसे ) तू कलशमें भरता जाता है । ( दक्षिणावते ) दक्षिणा देनेवाले ( वीराय ) वीर इन्द्रको देनेके लिए ( सद्ना-सदे ) यज्ञशालामें बैठनेवाले ( नरे ) नेता यज्ञमानको प्राप्त होनेके लिए कलशमें भरा जाता है ॥ १ ॥

[ १६८० ] हे ( सखायः ) स्तुति करनेवालो ! ( यूयं सूरयः ) तुम विद्वान् ( वयं च ) और हम ( तं पुरुुरुचं वाजगन्धं अश्याम ) उस अति तेजस्वी श्रेष्ठ सुगन्धसे युक्त सोमको पीयें, ( वाजस्पत्यं सनेम ) बल बढ़ानेवाले सोमको पीयें ॥ २ ॥



१६८१ परि त्यं हर्षतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

यो देवान् विश्वा इत् परि मदेन सह गच्छति

॥ ३ ॥ ८ ( हा ) ॥

[ धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।९।८७ )

१६८२ कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।

श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३२।१४ )

१६८३ मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।

तव प्रणीती हर्यश्च सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता

॥ २ ॥ ९ ( यि ) ॥

[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ७।३२।१५ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१६८४ एदु मधोर्मदिन्तरं सिष्वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीर स्तवते सदावृधः

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२४।१६ )

१६८५ इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्यस्तुतिम् । उदानंश्च शवसा न भन्दना

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।२४।१७ )

[ १६८१ ] ( हर्यतं हरिं बभ्रुं त्यं ) मनोहर, दुःखहरण करनेवाले और भरणपोषण करनेवाले उस सोमको ( वारेण परि पुनन्ति ) छलनीसे वे छानते हैं । ( यः विश्वान् देवान् ) जो सब देवोंको ( मदेन सह इत् ) आनन्दके साथ ही ( परि गच्छति ) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

[ १६८२ ] हे ( वसो इन्द्र ) निवासक इन्द्र ! ( तं त्वा ) उस तुझे ( कः आदधर्षति ) कौन भला घमकी देता है ? हे ( मघवन् ) इन्द्र ! ( ते श्रद्धा ) तुझपर जो श्रद्धा रखता है, वह ( वाजी ) बलवान् हवि लेकर ( पार्ये दिवि ) सोमरस निकालनेके दिन ( वाजं सिषासति ) अन्नका दान करनेकी इच्छा करता है ॥ १ ॥

[ १६८३ ] हे इन्द्र ! ( मघोनः ) धनवान् ऐसे तेरे लिए ( प्रिया वसु ये ददति ) प्रिय धन-हवि-जो देते हैं उन्हें ( वृत्रहत्येषु चोदय ) युद्धमें जानेका उत्साह दे । हे ( हर्यश्च ) उत्तम घोड़े रखनेवाले इन्द्र ! ( तव प्रणीती ) तेरी प्रेरणासे ( सूरिभिः ) विद्वानोंके साथ ( विश्वा दुरिता तरेम ) सब पापोंसे हम मुक्त हों ॥ ५ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १६८४ ] हे ( अध्वर्यो ) अध्वर्यु ! ( मधोः अन्धसः ) मीठे सोमका आनन्ददायक रस ( मदिन्तरं ) अत्यस्त हर्षको प्राप्त होनेवाले इन्द्रके पास ( आसिच ) रख । ( सदावृधः वीरः एव हि स्तवते ) अपने बलसे सदा बढते रहने-वाला वीर इन्द्र ही स्तुत होता है ॥ १ ॥

[ १६८५ ] हे ( हरीणां स्थातः इन्द्र ) घोड़े पासमें रखनेवाले इन्द्र ! ( ते पूर्य-स्तुतिम् ) तेरी पहले की गई स्तुति ( शवसा न किः उदानंश्च ) अपने बलसे दूसरा कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता तथा ( भन्दना न ) तेज से भी कोई पा नहीं सकता ॥ २ ॥

४२ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



- १६८६ तं. वो वाजानां पतिमहमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥३॥ १० ( क ) ॥  
[ धा० १६ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।२४।१८ )
- १६८७ तं गूर्ध्या स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥१॥ ऋ. ८।१९।१ )
- १६८८ विभूतरतिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।  
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोमरे प्रेमध्वराय पूर्यम् ॥ २ ॥ ११ ( या ) ॥  
[ धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ८।१९।२ )
- १६८९ आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।  
जनो न पुरि चम्बोर्विशद्वरिः सदा वनेषु दधिषे ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।१०७।१० )
- १६९० स मामृजे तिरौ अण्वानि मेष्यो मीद्वान्ससिर्न वाजयुः ।  
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्भिः ॥ २ ॥ १२ ( तु ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।१०७।११ )
- १६९१ वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१॥  
( ऋ. ८।६६।७ )

[ १६८६ ] ( श्रवस्यवः ) यशकी इच्छा करनेवाले हम ( वाजानां पति ) बलोंके स्वामी ( अप्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यं ) प्रमादरहित मनुष्योंके द्वारा किये जानेवाले यज्ञोंसे बढनेवाले ( वः तं ) तुम्हारे उस इन्द्रको ( अहमहि ) हम सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[ १६८७ ] ( स्वः-नरं तं गूर्ध्या ) स्वर्गके नेता उस अग्निकी स्तुति कर । ( देवासः देवं अरतिं दधन्विरे ) स्तुति करनेवाले ऋत्विज विष्य धनको प्राप्त करते हैं । हे अग्ने ! तू ( हव्यं देवत्रा ऊहिषे ) हविको देवोंकी ओर पहुंचाता है ॥ १ ॥

[ १६८८ ] हे ( सोमरे विप्र ) सोमरे ऋषि ! ( विभूतरतिं चित्रशोचिषं ) बहुत दान देनेवाले विशेष प्रकाशमान ( सोम्यस्य अस्य यन्तुरं ) इस सोमयागके चालक ऐसे ( पूर्यं अग्निं ) प्राचीन अग्निकी ( अध्वराय ह्यं ईडिष्व ) यज्ञ करनेके लिए स्तुति कर ॥ २ ॥

[ १६८९ ] हे ( सोम ) सोम ! ( अद्रिभिः स्वानः ) पथरोंसे कूटकर रस निचोडा गया ( अव्यया वाराणि तिरः आ ) भेडके बालोंकी छलनीसे छनकर ( हरिः चम्बोः विशत् ) हरे रंगका सोम कलशमें जाता है । ( पुरि जनः न ) नगरमें जिसप्रकार कोई मनुष्य जाता है, उसप्रकार यह सोम ( वनेषु सदा दधिषे ) लकड़ीके पात्रमें अपना स्थान बनाता है ॥ १ ॥

[ १६९० ] ( वाजयुः ) बल बढानेवाला ( मीद्वान् ससिः न अनुमाद्यः ) वीर्यवान् घोडेके समान प्रेम करने योग्य ( सः पवमानः सोमः ) वह छाना जानेवाला सोम ( मनीषिभिः मेष्यः अण्वानि तिरः ) विद्वानों द्वारा भेडके-बालोंकी बनी छलनीमें छाना जाता हुआ ( ऋक्विभिः विप्रेभिः मामृजे ) ऋत्विज विप्रों द्वारा स्तुत व प्रशंसित होता है ॥ २ ॥

[ १६९१ ] ( वयं एनं वज्रिणं ) हमने इस वज्रधारी इन्द्रको ( इदा ह्यः इह ) इस समय और पहिले भी इस यज्ञमें ( अपीपेम ) सोमसे तुप्त किया, ( तस्मा उ ) उसी इन्द्रके लिए ( अद्य सवने ) आजभी इस यज्ञमें ( सुतं भर ) सोमरस अर्पण करो । ( नूनं श्रुते आभूषत ) निश्चयसे स्तोत्रपाठ सुननेके लिए वह यहाँ आवे ॥ १ ॥



१६९२ वृकाश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

समं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया

॥ २ ॥ १३ (खा) ॥

[ धा० १६ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ८।६६।८ )

१६९३ इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वा चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१२।९ )

१६९४ इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या अनु ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१२।७ )

१६९५ इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्य हितम् ॥ ३ ॥ १४ (क) ॥

[ धा० ६ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ३।१२।८ )

१६९६ क ई वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनस्योजसा मन्दानः शिष्यन्धसः

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।३३।७ )

१६९७ दाना मृगो न वारणः पुरुषा च रथं दधे ।

न किष्ठा नि यमदा सुते गयो महाश्वरस्योजसा

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।३३।८ )

[ १६९२ ] ( अस्य वयुनेषु ) इस इन्द्रके मार्गमें ( उरामथिः वारणः वृकाश्चिद् ) कष्ट देनेवाला और विष्णु डालनेवाला शत्रु भेड़ियेके समान क्रूर भी हो तो भी ( आभूषति ) अनुकूल होकर उसकी सेवा करने लगता है । ( सः इन्द्र ) वह तू हे इन्द्र ! ( नः इमं स्तोमं जुजुषाणः ) हमारे इस स्तोत्रको स्वीकार करके ( चित्रया धिया प्र आगहि ) फल देनेवाली बुद्धिके साथ यहां आ ॥ २ ॥

[ १६९३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( दिवः रोचना ) सुलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम ( वाजेषु परिभूषथः ) युद्धमें विजय प्राप्त करके सुशोभित होते हो । ( वां तत् वीर्यं प्र चेति ) तुम्हारा वह वीर्य इस प्रकार प्रकट होता है ॥ १ ॥

[ १६९४ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( धीतयः ) ज्ञानी लोग ( ऋतस्य पथ्या अनु ) सत्य मार्गसे जाकर ( अपसः परि उप प्रयन्ति ) कर्मकी सिद्धिको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

ज्ञानी लोग सत्यके मार्गसे जाकर कर्मकी सिद्धि प्राप्त करते हैं ।

[ १६९५ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( वां तविषाणि ) तुम्हारे बल और ( प्रयांसि ) ज्ञान ( सधस्थानि ) एक साथ रहते हैं । ( युवोः अप्तूर्य हितं ) तुममें शोघ्रतासे काम करनेका सामर्थ्य स्थापित किया गया है ॥ ३ ॥

[ १६९६ ] ( सुते सचा पिबन्तं ई कः वेद ) सोमयज्ञमें सबके साथ बैठकर सोमरस पीनेवाले इस इन्द्रको भला कौन जानता है ? ( कद् वयो दधे ) उसकी कितनी आयु है, यह भी भला कौन जानता है ? ( अयं यः शिषी ) जो यह सिरपर शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र है, वह ( अन्धसः मन्दानः ) सोमरससे आनन्दित होकर ( ओजसा ) अपने सामर्थ्यसे शत्रुके ( पुरः विभिनसि ) नगरोंको तोड़ डालता है ॥ १ ॥

[ १६९७ ] ( मृगः वारणः दाना न ) शत्रुका शोष करनेवाले सवोन्मत्त हाथीके समान ( पुरुषा च रथं दधे ) अनेक यज्ञोंमें तू अपना रथ ले जाता है । ( त्वा न किः नियमत् ) तुझे कोई भी रोक नहीं सकता । हे इन्द्र ! ( सुते आगमः ) सोम यज्ञोंमें तू आ । ( नः महान् ) हमारे लिए तू महान् आवरणीय है, और तू ( ओजसा चरसि ) अपने सामर्थ्यसे सर्वत्र संचार करता है ॥ २ ॥



१६९८ य उग्रः सन्निष्टुतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्वं नेन्द्रो योषत्या गमत्

॥ ३ ॥ १५ ( ही ) ॥

[ धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।३३।९ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१६९९ पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६३।२५ )

१७०० पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६३।२७ )

१७०१ पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । मन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ १६ ( फ ) ॥

[ धा० १५ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. ९।६३।२६ )

१७०२ तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥ ( ऋ. ३।१२।४ )

१७०३ प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।१२।५ )

१७०४ इन्द्राग्नी नवति पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ३ ॥ १७ ( र ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ३।१२।६ )

[ १६९८ ] ( यः उग्रः सन् ) जो उग्रवीर होनेके कारण ( अनिष्टुतः ) शत्रुओंसे न हारते हुए ( स्थिरः ) स्थिर रहता है, और ( रणाय संस्कृतः ) युद्धके लिए शस्त्रोंसे भूषित हुआ रहता है ऐसा वह ( मघवा इन्द्रः ) धनवान् इन्द्र ( यदि स्तोतुः हवं शृणवत् ) यदि स्तोताकी प्रार्थना सुन ले तो वह ( न योषति ) दूसरी तरफ जाएगा नहीं और ( आगमत् ) यहीं यज्ञमें आएगा ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १६९९ ] ( शुक्रासः इन्दवः ) स्वच्छ और चमकनेवाले ( पवमानाः सोमाः ) छाने जानेवाले सोमरस ( विश्वानि काव्या ) सब वेदमंत्रोंकी स्तुतिके चलनेपर ( अभि असृक्षत ) शुद्ध किए जाते हैं ॥ १ ॥

[ १७०० ] ( पवमानाः ) शुद्ध होनेवाले सोमरस ( दिवः अन्तरिक्षात् ) छलोकसे और अन्तरिक्षसे ( पृथिव्याः अधि सानवि ) भूमिपरके ऊँचे यज्ञ स्थानमें ( पर्यसृक्षत ) बहते हैं ॥ २ ॥

[ १७०१ ] ( आशवः शुभ्राः ) वेगवान् और शुभ्र ऐसे ( पवमानासः इन्दवः ) शुद्ध होनेवाले सोमरस ( विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः ) सब शत्रुओंको विनष्ट करते हुए ( असृग्रम् ) कलशमें जाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७०२ ] ( तोशा ) शत्रुओं पर विघ्न डालनेवाले, ( वृत्रहणा ) शत्रुओंका नाश करनेवाले ( सजित्वाना अपराजिता ) शत्रुओंकी जीतनेवाले और स्वयं अपराजित ऐसे ( वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे ) अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्निकी में प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७०३ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( उक्थिनः धां अर्चन्ति ) वेवपाठी तुम्हारी अर्चना करते हैं । ( नीथाविदः जरितारः ) सामगायक तुम्हारी स्तुति करते हैं ( इषः आवृणे ) अन्न प्राप्तिके लिए मैं भी तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[ १७०४ ] हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्ने ! ( दास-पत्नीः नवति पुरः ) दासोंके द्वारा रक्षित नवने नगरोंकी ( एकेन कर्मणा साकं अधूनुत ) एक प्रयत्नसे एक साथ तुमने हिला दिया ॥ ३ ॥



- १७०५ उप त्वा रण्वसंहशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥ ( ऋ. ६।१६।३७ )
- १७०६ उप च्छायामिव घृणेः रगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंहशः ॥ २ ॥ ( ऋ. ६।१६।३८ )
- १७०७ य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥ १८ ( य ) ॥  
[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ६।१६।३९ )
- १७०८ ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं वर्ममीमहे ॥ १ ॥ ( अथर्व. ६।१६।१ )
- १७०९ य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् । ऋतुनुत्सृजते वशी ॥ २ ॥
- १७१० अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडिको विराजति ॥ ३ ॥ १९ ( का ) ॥  
[ धा० ११ । उ० १ । स्व० २ ]

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इत्यष्टमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८-२ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

[ १७०५ ] हे ( सहस्कृत अग्ने ) बलसे उत्पन्न किए गए अग्ने ! ( प्रयस्वन्तः ) हवि लेकर आनेवाले हव्य ( रण्वसंहशं त्वा उप ) रमणीय और दर्शनीय ऐसे तेरे पास रहकर ( गिरः ससृज्महे ) अपनी बाणीसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[ १७०६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( हिरण्यसंहशः घृणेः ते ) सुवर्णके समान तेजस्वी दीखनेवाले तेरे ( शर्म ) आश्रयमें आकर ( वयं उप अगन्म ) हम सुख प्राप्त करें ( छायां इव ) जिसप्रकार कोई घूपसे आकर छायामें सुख पाता है, उसीप्रकार हम भी तेरे आश्रयमें सुख प्राप्त करें ॥ २ ॥

[ १७०७ ] ( यः उग्रः इव ) जो अग्नि उग्रवीर धनुर्धारी शूरवीरके समान है, ( वंसगः न तिग्मशृङ्गः ) वेगवान् बल जैसे तेज सींगोंसे युक्त रहता है, वैसे ही वह अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओंसे युक्त रहता है । हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( पुरः रुरोजिथ ) तूने शत्रुके नगर तोड़े हैं ॥ ३ ॥

[ १७०८ ] हे अग्ने ! ( ऋतावानं वैश्वानरं ) यज्ञ करनेवाला, मनुष्योंका हित करनेवाला ( ऋतस्य ज्योतिषः ) यज्ञकी अपने तेजसे रक्षा करनेवाला ( अजस्रं वर्म ईमहे ) निरन्तर प्रदीप्त होनेवाले अग्निकी हम उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ १७०९ ] ( यः ) जो अग्नि ( इदं ) इस जगत्को सुखी करनेके लिए ( यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् ) यज्ञके सब विघ्नोंको दूर करता है, ऐसी ( प्रति पप्रथे ) जिसकी प्रसिद्धि है । वह ( वशी ) सबको अपने अधीन करके ( ऋतुनुत्सृजते ) ऋतुओंको उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[ १७१० ] ( भूतस्य भव्यस्य कामः ) उत्पन्न हुए और आगे उत्पन्न होनेवाले जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसा ( एकः सम्राट् अग्निः ) अकेला सम्राट् अग्नि ( प्रियेषु धामसु विराजति ) प्रिय यज्ञ स्थानोंमें विराजता है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥





## अष्टादश अध्याय

इस अठारहवें अध्यायमें इन्द्र, अग्नि, इन्द्राग्नी, विष्णु और सोम इन पांच देवताओंका वर्णन है। इसमें इन्द्र देवताका विस्तृत वर्णन है—

### इन्द्र

१ मध्याय वीराय शूराय पयं सोमं आधावत [ १६५७ ]- प्रसन्नचित्त और पराक्रमी शूर इन्द्रके पास प्रशंसनीय सोम शीघ्र पहुंचाओ। इन्द्र पराक्रमी और शूर है। सोम पीकर वह और अधिक पराक्रम करनेवाला हो जाता है।

२ वृत्रहा अस्मत् आरे आगमत्, दाते ऊतिः नियमते [ १६५९ ]- वृत्रको मारनेवाला इन्द्र हमारे पास आवे। सैकड़ों संरक्षणके साधनोंसे युक्त इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है।

३ हे इन्द्र ! त्वां न अतिरिच्यते [ १६६० ]- हे इन्द्र ! तेरी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और कोई नहीं है। तू ही सबसे श्रेष्ठ है।

४ पुरुहुताय सत्त्वे सचा गाय, शाकिने शं [ १६६६ ]- जिसे बहुतसे लोग सहायताके लिए बुलाते हैं, उस सत्त्ववान् इन्द्रके लिए एकत्र बैठकर स्तोत्रोंका गान करो। शक्तिवान् इन्द्रके लिए वे आनन्ददायक हों।

५ वसुः गोमतः वाजस्य दानं न य नियमते [ १६६७ ]- सबोंको बसानेवाले, गाय और अन्नका दान करनेवाले इन्द्रको उसके दान करनेसे कोई रोक नहीं सकता।

६ दस्युहा कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं प्रागमत्, शचीभिः नः [ गाः ] अपवरत् [ १६६८ ]- शत्रुको मारनेवाला इन्द्र बहुत हिंसा करनेवाले असुरोंकी गायोंके बाड़ों पर अपना अधिकार करता है, तब अपनी शक्तिसे वह हमें गायें देता है।

७ वाघतः अस्मत् आरे त्वा मा निरीरमत् । नः सधमादं आगाहि इह उप श्रुधि [ १६७५ ]- वे स्तुति करनेवाले मनुष्य तुझे हमसे दूर न करें। तू हमारे यज्ञके स्थान पर आ और यहां स्तुति सुन।

८ ते सुते ब्रह्मकृतः सचा आसते [ १६७६ ]- तेरे लिए सोमरस निकालनेके बाद स्तोत्र पाठ करनेवाले एकत्र बैठते हैं और स्तोत्र बोलते हैं।

९ पूर्वीः ऋतस्य वृहतीः अनूषत् [ १६७७ ]- पहलेके यज्ञमें बोले जाने योग्य बृहतीछन्दमें सामगान करो।

१० इन्द्रः वृहतीः रायः सं अधूनुत [ १६७९ ]- इन्द्र बृहत् धन हमें देवे।

११ क्षोणी सं [ १६७९ ]- भूमि भी हमें देवे।

१२ गवाशिरः सोमाः अमन्दिषुः [ १६७९ ]- गो-बुधमें मिलाये गए सोमरस इन्द्रको आनंद देवें।

१३ वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे परिषिच्यसे [ १६७९ ]- वृत्रका वध करनेवाले इन्द्रको पीनेको देनेके लिए हे सोम ! तुझे कलशमें भरा जाता है।

१४ हे मघवन ! ते अन्द्रा वाजी पार्ये दिवि वाजं सिपासति [ १६८२ ]- हे धनवान् इन्द्र ! तुझ पर श्रद्धा रखनेवाला बलवान् होकर सोमरस निकालनेके बिन अन्न दान करनेकी इच्छा करता है।

१५ मघोनः तव प्रिया वसु ये ददति, वृत्र-हत्येषु चोदय [ १६८३ ]- धनवान् इन्द्रको प्रिय वस्तु जो देता है, युद्धमें जानेका उसका उत्साह हे इन्द्र ! तू बढ़ा।

१६ हे हर्यश्व ! तव प्रणीति सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम [ १६८३ ]- हे उत्तम घोड़े पालनेवाले इन्द्र ! तेरी प्रेरणासे विद्वानोंके साथ रहकर हम सब पापोंसे मुक्त हो जायें।

१७ सदा वृधः वीरः स्तवते [ १६८४ ]- अपने बलसे सदा बढ़नेवाला वीर इन्द्र प्रशंसित होता है।

१८ हे हरीणां स्थातः इन्द्र ! ते पूर्व्य-स्तुतिं शवसा न किः उदानंश [ १६८५ ]- हे घोड़े पासमें रखनेवाले इन्द्र ! तेरी पहले की गई स्तुतिकी अपने बलसे दूसरा कोई प्राप्त नहीं कर सकता। तू ही ऐसा सामर्थ्यवान् है कि जिसकी ऐसी प्रशंसा होती है।

१९ श्रवस्यवः वाजानां पतिं अ-प्रायुभिः यक्षेभिः वावृधेन्यं वः तं अहूमहि [ १६८६ ]- यज्ञकी इच्छा करनेवाले हम बलके स्वामी और दोषरहित यज्ञोंसे बढ़ानेवाले तुम्हारे उस इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं।

२० वयं एनं वज्रिणं इह अपीपेम [ १६९१ ]- हम इस वज्रधारी इन्द्रको इस यज्ञमें सोमरससे तृप्त करते हैं।

२१ अस्य वयुनेषु उरामथिः वारणः वृकः चित्



आभूषति [ १६९२ ]- इस इन्द्रके कृत्यमें कष्ट देनेवाला और प्रतिबंध करनेवाला शत्रु भले ही भेड़ियेके समान क्रूर हो तो भी वह उसके अनुकूल होकर सुशोभित होने लगता है।

२२ शिप्री अन्धसः मन्दानः ओजसा पुरः विभि-  
नन्ति [ १६९६ ]- इन्द्र सोमपानसे आनन्दित होकर अपने सामर्थ्यसे शत्रुके नगरोंको तोड़ता है।

२३ पुरुत्रा रथं दधे, त्वा न किः नियमत् [ १६९७ ]-  
हे इन्द्र ! तू अपना रथ आगे चला। तुझे कोई भी रोक नहीं  
सकता।

२४ हे वसो इन्द्र ! त्वा कः आदधर्षति [ १६८२ ]-  
हे निवासक इन्द्र ! तुझे भय दिखानेमें भला कौन समर्थ है ?

२५ यः उग्रः सन् अनिष्टृतः, स्थिरः रणाय संस्कृतः  
मघवा इन्द्रः यदि स्तोतुः हव्यं शृणवत्, न योषति,  
आगमत् [ १६९८ ]- जो उग्रवीर होनेके कारण कभी भी  
नहीं हारता, युद्धभूमि पर स्थिर रहकर युद्ध करनेके लिए  
तैय्यार रहता है, वह धनवान् इन्द्र यदि स्तुति करनेवालेकी  
प्रार्थना सुन ले, तो दूसरी तरफ जायेगा ही नहीं, निश्चयसे  
यहीं यज्ञमें आएगा।

२६ ब्रह्मयुजा शग्मा हरी इह सखायं इन्द्रं आव-  
क्षतः [ १६५८ ]- शब्द कहते ही जुड़ जानेवाले और सुख  
देनेवाले इन्द्रके छोड़े यहां यज्ञमें मित्र और स्तुतिके योग्य  
इन्द्रको लेकर आते हैं।

इन्द्र हमेशा आनन्दित, उत्साहित और शूरवीर है। उसके  
पास संरक्षणके अनेक साधन हैं, उसके समान शूरवीर दूसरा  
कोई नहीं। वह जब धनादिका दान करता है तब उसे कोई  
रोक नहीं सकता। गायें चुरानेवाले असुरोंको हराकर वह  
गायें वापिस प्राप्त करता है। फिर उन गायोंको भक्तोंमें बांट  
वेता है। इस इन्द्रके रास्ते पर चलनेवाले सब पापोंसे मुक्त  
हो जाते हैं। सब लोग इस इन्द्रको अपनी सहायताके लिए  
बुलाते हैं, और वह इन्द्र उनकी मददके लिए जाता है। वह  
हतना बलवान् है कि एक ही आक्रमणसे शत्रुके सैकड़ों नगरोंको  
हाराकर विजयी होकर यशस्वी होता है। ऐसा इन्द्र सभीके  
द्वारा प्रशंसित होने योग्य है।

### अग्नि

१ हे जराबोध ! विशे विशे जनाय यक्षियाय तत्  
तत् विविदि [ १६६३ ]- हे स्तुतिसे जागृत होनेवाले  
अग्ने ! प्रत्येक मनुष्यके हितके लिए जो यज्ञ किया जाता है,  
उसे सिद्ध करनेके लिए तू यज्ञशालामें आ।

यज्ञशालामें अग्नि जलाकर उसमें विशेष वस्तुओंका हवन  
किया जाता है और उस यज्ञसे सब मनुष्योंका कल्याण होता है।

२ महान् अनिमानः धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः सः नः  
धिये वाजाय हिन्वतु [ १६६४ ]- महान् इसीलिए मापनेके  
अयोग्य, धुवां ही ध्वज है जिसका ऐसा बहुत आनन्द देनेवाला  
वह अग्नि हमें ज्ञान, बल और अन्नकी प्राप्तिके लिए प्रेरणा  
देवे। उस रास्तेसे हमें ले जाए कि जिस मार्गसे हमें ज्ञान  
और बल प्राप्त हो।

३ दैव्यः विश्पातिः बृहद् भानुः सः रेवान् इव नः  
उक्थैः शृणोतु [ १६६५ ]- यह दिव्य शक्तिसे युक्त  
प्रजाका पालन करनेवाला, महान् तेजस्वी वह अग्नि धनवान्  
राजाके समान हमारे स्तोत्र सुने। अग्निमें दिव्य शक्ति है।  
अग्निमें जो यज्ञ होता है, उससे प्रजा नीरोगी होती है, और  
रोगोंसे रक्षा होती है। ऐसी यह अग्नि हमारी स्तुतिके  
स्तोत्र सुने।

४ विभूतरातिं चित्रशोचिषं पूर्व्यं अग्निं अध्वराय  
ईडिष्व [ १६८८ ]- बहुत दान देनेवाले, विशेष प्रकाशमान  
प्राचीन अग्निकी यज्ञ करनेके लिए स्तुति कर।

५ हे सहस्रकृत अग्ने ! प्रयस्वन्तः रण्वसंदृशं त्वा  
उप गिरा ससृजमहे [ १७०५ ]- हे बलसे उत्पन्न होनेवाले  
अग्ने ! अन्न लेकर आनेवाले हम रमणीय दीखनेवाले तेरे  
पास आकर अपनी जगतीसे तेरी स्तुति करते हैं।

६ हे अग्ने ! हिरण्यसंदृशः धृणोः ते शर्म, छायां  
इव वयं उप अगन्म [ १७०६ ]- हे अग्ने ! सोनेके समान  
तेजस्वी दीखनेवाले तेरे आश्रयमें आकर, जैसे कोई धूपसे  
आकर छायामें सुख प्राप्त करता है, उसीप्रकार हम सुख  
प्राप्त करें।

७ यः उग्रः इव, वंसगः न तिग्मशृंगः, पुरः  
रुरोजिथ [ १७०७ ]- वह अग्नि महान् धनुर्धारीके समान  
वीर है, वेगवान् तेज सींगोंवाले बलके समान भयंकर वह  
अग्नि शत्रुओंके नगरोंको तोड़ता है।

८ ऋतावानं वैश्वानरं, ऋतस्य ज्योतिषः पतिं  
अजस्रं घर्म ईमहे [ १७०८ ]- सत्य-यज्ञ-मार्गसे जानेवाला  
सब मनुष्योंका हित करनेवाला, यज्ञके तेजसे रक्षा करनेवाला,  
अग्नि है। उस बाधा रहित प्रदीप्त अग्निकी हम आराधना  
करते हैं।

९ यः इदं यज्ञस्य स्वः उत्तिरन्, प्रति पप्रथे,  
वशी ऋतून् उत्सृजते [ १७०९ ]- जो अग्नि इस जगत्को  
वशी ऋतून् उत्सृजते



सुखी करनेके लिए यज्ञके सब विघ्नोंको दूर करता है, ऐसी उसकी प्रसिद्धि है। वह सबको अपने आधीन करके ऋतुओंको उत्पन्न करता है और उसके कारण सबको सुख देता है।

१० भूतस्य भव्यस्य कामः समाद् एकः अग्निः प्रियेषु धामसु विराजति [ १७१० ]- पहलेके तथा आगे होनेवाले जिसकी इच्छा करते हैं ऐसा अकेला ही सम्राट् अग्नि अपने यज्ञके प्रिय स्थान-यज्ञकुण्ड-में विराजमान होता है।

अग्निका ऐसा वर्णन इस अध्यायमें है। अग्निमें योग्य पदार्थोंका हवन करनेसे सब लोग रोगरहित होकर सुखी होते हैं।

### इन्द्र और अग्नि

१ हे इन्द्राग्नी ! दिवः रोचना वाजेषु परिभूषथः, वां तत् वीर्यं प्रचेति [ १६९३ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! ध्रुलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम युद्धमें विजय प्राप्त करके सुशोभित होते हो, तुम्हारा सामर्थ्य ऐसे प्रकट होता है।

२ हे इन्द्राग्नी ! वां तद्विषाणि प्रयांसि सधस्थानि युवा अन्तूर्य हितम् [ १६९५ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम्हारे बल और ज्ञान एक साथ रहते हैं। तुममें शीघ्रतासे कार्य करनेका सामर्थ्य है।

३ तोशा, वृत्रहणा, सजित्वाना, अपराजिता वाजसातमा इन्द्राग्नी हुवे [ १७०२ ]- शत्रुओंको बाधा पहुँचानेवाले, शत्रुओंको मारनेवाले, विजयी, पराजित न होनेवाले, अन्नका दान करनेवाले इन्द्र और अग्नि हैं, उनको अपनी सहायताके लिए मैं बुलाता हूँ।

४ इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नवर्ति पुरः एकेन कर्मणा साकं अध्वनुतम् [ १७०४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! दासोंके द्वारा रक्षित नब्बे नगरोंको एक ही आक्रमणसे तुमने हिला दिया।

इस प्रकार इन्द्र और अग्निकी शूरवीरता और पराक्रमका वर्णन इस अध्यायमें है। ये शूर कुशलतासे युद्ध करनेवाले, कभी भी न हारनेवाले होनेके कारण हमेशा विजयी ही रहते हैं।

### विष्णु

१ विष्णुः इदं विचक्रमे [ १६६९ ]- विष्णुका यह पराक्रम है।

२ अदाभ्यः गोपाः विष्णुः, धर्माणि धारयन्, त्रीणि पदा विचक्रमे [ १६७० ]- न बननेवाला, सबका

संरक्षण करनेवाला विष्णु, सब धर्म-कर्तव्यका पालन करके अपने तीन पावोंसे सब जगत् व्यापता है।

३ विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतः ब्रतानि पश्यशे, इन्द्रस्य युज्यः सखा [ १६७१ ]- विष्णुके पराक्रमके दर्शन करो, जिसके कारण सबके काम उत्तम रीतिसे चलते हैं। यह विष्णु उत्तम मित्र है।

इन्द्र और विष्णु ये दो देव हैं। विष्णु यह उपेन्द्र है। जैसे अध्यक्ष और उपाध्यक्ष होते हैं, उसीप्रकार ये “ इन्द्र और उपेन्द्र ” हैं।

४ सूरयः विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि आततं चक्षुः इव, सदा पश्यन्ति [ १६७२ ]- ज्ञानी लोग विष्णुके उस परम पदको, ध्रुलोकमें जगत्की आंख सूर्यको देखनेके समान, देखते हैं।

५ विष्णोः तत् परमं पदं विप्रासः विपन्यवः जागृ-वांसः समिन्धते [ १६७३ ]- विष्णुके उस परम पदको ज्ञानी और जागृत लोग प्रवीप्त करके स्वयं देखते हैं।

६ विष्णुः पृथिव्या अधि सानवि, यतः विचक्रमे, अत देवाः नः अवन्तु [ १६७४ ]- विष्णु पृथ्वीके ऊँचे स्थान पर जहाँसे वह पराक्रम करता रहता है। उस स्थानसे सब देव हमारी रक्षा करें।

विष्णु “ उपेन्द्र ” ( उप+इन्द्र ) है, वह इन्द्रकी सहायता करता है। अध्यक्ष उपाध्यक्षके समान ये दोनों एक दूसरेकी सहायता करते हैं। सर्वत्र विश्वमें विष्णुका पराक्रम दीखता है। ज्ञानी मनुष्य इसके पराक्रमको देखते हैं। लोग इसके पराक्रमको देखें और स्वयं भी पराक्रमी बनें।

### सोम

१ हे सखायः ! यूयं सूरयः वयं च तं पुरुषं वाजगन्धं अश्याम, वाजस्पत्यं सनेम [ १६८० ]- हे मित्रो ! तुम विद्वान् और हम मिलकर उस बहुत चमकनेवाले तथा उत्तम सुगन्धसे युक्त सोमको पीवें, बल बढ़ानेवाले सोमको पीवें।

२ हर्यतं हरिं बभ्रुं त्वं वारेण परि पुनन्ति, यः विश्वान् देवान् गच्छति [ १६८१ ]- मनोहर, दुःखहरण करनेवाले, भरण पोषण करनेवाले उस सोमको छलनीसे छानते हैं। उसके बाद वह सोम देवोंकी ओर जाता है।

३ अद्रिभिः स्वानः अव्यया वाराणि तिरः आ, हरिः चम्बोः विशत् वनेषु सदः दधिषे [ १६८२ ]- पथरोंसे कूटकर मिचोड़ा गया रस भेड़के बालोंकी छलनीसे



छाना जाता है। वह हरे रंगका सोमरस कलशमें उतरता है। लकड़ीके बर्तनमें अपना स्थान बनाता है।

४ वाजयुः मीढ्वान् पवमानः सोमः मेध्यः अव्यातिरिः विप्रेभिः मामृजे [ १६९० ]- बल बढ़ानेवाला, बोर्य बढ़ानेवाला, घोड़ेके समान प्रेम करनेके योग्य, ऐसा वह छाना जानेवाला सोम भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है, तथा जानियों द्वारा प्रशंसित होता है।

५ शुक्रासः इन्द्रवः पवमानाः सोमाः विश्वानि काव्या अभि असृक्षत [ १६९१ ]- स्वच्छ और चमकनेवाले छाने जानेवाले सोमरस वेदमंत्रों द्वारा प्रशंसित होते हुए शुद्ध किए जाते हैं।

६ पवमानाः दिवः पृथिव्याः अधि सानवि पर्यसृक्षत [ १७०० ]- शुद्ध होनेवाला सोमरस छुलोकसे पृथ्वीके ऊंचे भागमें तैयार किया जाता है।

७ आश्वः शुभ्राः पवमानासः इन्द्रवः विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः असृग्रम् [ १७०१ ]- वेगवान्, शुभ्र और शुद्ध होनेवाले सोमरस सब शत्रुओंको नष्ट करते हुए कलशमें जाते हैं।

सोमलता पत्थरोंसे कूटी जाती है। बादमें उसका रस निकाला जाता है, फिर उसमें पानी मिलाकर भेड़के बालोंकी छलनीसे छाना जाता है। यह छाना गया सोमरस कलशमें भरकर रखते हैं। इस समय वेदपाठ उच्च स्वरसे किया जाता है। यह सोम हिम पर्वत पर ऊंचाई पर होता है। वहांसे वह यज्ञ करनेके स्थान पर लाया जाता है, और उससे रस तैयार किया जाता है। छानकर इस रसके तैयार होनेके बाद उसे देवोंके लिए अर्पित किया जाता है, फिर यज्ञ करनेवाले स्वयं इस सोमरसको पीते हैं। इसके पीनेसे शरीरमें शक्ति बढ़ती है और मनका उत्साह बढ़ता है, तथा सब शत्रुओंको हरानेका सामर्थ्य मनके अन्तर पंदा होता है।

## सुभाषित

१ वीराय शूराय पन्यं सोमं आधावत [ १६५७ ]  
-शूरवीर इन्द्रको प्रशंसनीय सोमरस पहुंचाओ।

२ ब्रह्मयुजा शग्मा हरी इह सखायं गिर्वणसं इन्द्रं आवक्षतः [ १६५८ ]- शब्दके कहते ही रथमें जुड़ जानेवाले, सुखदायी दो घोड़े इस यज्ञमें मित्र और स्तुत्य इन्द्रको लेकर आवें।

४३ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

३ शतं ऊतिः वृत्रहा नियमते [ १६५९ ]- सैंकड़ों साधनोंसे संरक्षण करनेवाला, वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है।

४ त्वां न अतिरिच्यते [ १६६० ]- हे इन्द्र! तेरी अपेक्षा और कोई श्रेष्ठ नहीं।

५ हे वृषन् जागृवे! मंहिना विव्यकथ [ १६६१ ]- हे बलवान् और जागृत रहनेवाले! तू अपने महत्त्वसे सबको व्यापता है।

६ हे जराबोध! विशे विशे रुद्राय वृशीकिं [ १६६३ ]- हे जागृत रहकर सबको जाननेवाले अग्ने! प्रत्येक मनुष्यके हित करनेवाले रुद्र देवताके लिए सुन्दर स्तोत्र बोलें।

७ नः धिये वाजाय हिन्वतु [ १६६४ ]- हमें बुद्धि बढ़ाने व अन्न प्राप्त करनेके लिए प्रेरित कर।

८ दैव्यः विश्वपतिः बृहद्भानुः केतुः सः रेवान् इव नः उक्थैः शृणोतु [ १६६५ ]- दिव्य प्रजापालक महान् प्रकाशमान् और ध्वजाके समान शोभित होनेवाला धनवान् अग्नि राजाके समान हमारे स्तोत्र सुने।

९ पुरुहूताय सत्त्वेन तत् सचा गाय, तत् शाकिने शं [ १६६६ ]- बहुत लोग जिसे सहायताके लिए बुलाते हैं, उस बलवान् इन्द्रके लिए स्तोत्र एक जगह बैठकर गावो, उससे शक्तिमान् इन्द्रको आनन्द मिलता है।

१० वसुः गोमतः वाजस्य दानं न घ नियमने [ १६६७ ]- सबको बसानेवाले इन्द्रको गायके दूधसे होनेवाले अन्नके दान करनेसे कोई रोक नहीं सकता।

११ दस्यु-हा कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं प्रा गमत्, हि शचीभिः नः [ गाः ] अपवरत् [ १६६८ ]- शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र जब बहुत हिंसा करनेवाले असुरोंकी गायोंसे भरे हुए बाड़ेपर अपना अधिकार करता है, तब वह अपनी शक्तिसे हमारी गायोंको दूढ़कर हमें देता है।

१२ विष्णुः इदं विचक्रमे [ १६६९ ]- विष्णुने यहां पराक्रम किया।

१३ अद्राभ्यः गोपाः विष्णुः धर्माणि धारयन् पदा विचक्रमे [ १६७० ]- न दबनेवाला संरक्षक विष्णु सबके करने योग्य कर्मका पोषण करता हुआ अपने पाँवसे सब जगत् पर आक्रमण करता है।

१४ विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतः व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा [ १६७१ ]- विष्णुके कामोंको देखो, जिसके कारण सबके कार्य उत्तम रीतिसे चलते हैं। यह विष्णु इन्द्रका योग्य मित्र है।



१५ सूरयः विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि आततं चक्षुः इव, सदा पश्यन्ति [ १६७२ ]- ज्ञानी लोग विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानको, जिसप्रकार आकाशमें प्रकाशको फैलाने-वाले विश्वके नेत्ररूपी सूर्यको लोग देखते हैं, उसीप्रकार हमेशा देखते हैं।

१६ विष्णोः तत् परमं पदं विप्रासः जाग्रुवांसः विपन्यवः यत् समिन्धते [ १६७३ ]- विष्णुके उस श्रेष्ठ स्थानकी ज्ञानी जाग्रत रहकर स्तुति करनेवाले प्रदीप्त करते हैं।

१७ हे इन्द्रः ! वाघतः त्वा-अस्मत् आरे मा निरीरमन् [ १६७५ ]- हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले मनुष्य तुझे हमसे दूर ले जाकर आनन्दित न करें।

१८ आरात्तात् नः सधमादं आगाहि [ १६७५ ]- भले ही तू दूर हो फिर भी वहांसे हमारे यज्ञमें आ।

१९ इह सन् उपश्रुधि [ १६७५ ]- यहां रहकर हमारी स्तुति सुन।

२० इन्द्रः वृद्धतीः रायः सं अधूनुत [ १६७८ ]- इन्द्र बहुत सारा धन हमें देवे।

२१ इन्द्रः क्षोणीः सं अधूनुत [ १६७८ ]- इन्द्र हमें भूमि देवे।

२२ वृत्र-हत्येषु चोदय [ १६८३ ]- अपने भक्तोंको शत्रुके वधकी प्रेरणा कर।

२३ हे हर्यश्च ! तव प्रणीती सूरिभिः विश्वा दुस्तिता तरेम [ १६८३ ]- हे उत्तम घोड़े रखनेवाले इन्द्र ! तेरी प्रेरणासे विद्वानोंके साथ हम सब पापोंसे मुक्त हों।

२४ हे हरीणां स्थातः इन्द्र ! ते पूर्व्यस्तुतिं शवसा न किः उदानंश, भन्दना न [ १६८५ ]- हे घोड़े रखने-वाले इन्द्र ! तेरी स्तुतिको अपने बलसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता।

२५ अस्य वयुनेषु उरामथिः वारणः वृकश्चित् आभूषति [ १६९२ ]- इस इन्द्रके मार्गमें कण्ट देनेवाला और विघ्न डालनेवाला कोई क्रूर भी हुआ तो वह भी इसके अनुकूल होकर इसकी सेवा करने लगता है।

२६ हे इन्द्र ! चित्रया धिया प्र आगाहि [ १६९२ ]- हे इन्द्र ! अपनी उत्तम बुद्धिके साथ तू यहां आ।

२७ हे इन्द्राग्नी ! दिवः रोचना वाजेषु परिभूषथः वीर्यं तत् प्रचेति [ १६९३ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! धूलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम युद्धमें विजयी होकर शोभित होते हो। तुम्हारा सामर्थ्य इस प्रकार प्रकट होता है।

२८ धीतयः ऋतस्य पथ्या अनु अपसः परि उप प्रयन्ति [ १६९४ ]- ज्ञानी सत्य मार्गमें जाकर कर्मकी सिद्धि-को प्राप्त करते हैं।

२९ वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि, युवोः अप्तूर्य हितम् [ १६९५ ]- तुम्हारे बल और ज्ञान एक साथ रहते हैं। तुममें शीघ्रतासे कार्यको समाप्त करनेका सामर्थ्य है।

३० यः शिप्री ओजसा पुरः विभिन्नति [ १६९६ ]- जो इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुके नगरोंको तोड़ता है।

३१ त्वा न किः नियमत् [ १६९७ ]- तुझे कोई भी रोक नहीं सकता।

३२ नः महान् ओजसा चरसि [ १६९७ ]- हमारे लिए तू महान् है, और अपने सामर्थ्यसे तू सब जगह विचरता है।

३३ यः उग्रः सन् अनिधृतः स्थिरः रणाय संस्कृतः [ १६९८ ]- जो उग्रवीर है, और न हारता हुआ युद्धमें जो स्थिर रहता है और युद्धके लिए सदा गैर्यार रहता है।

३४ आशवः विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः [ १७०१ ]- वेगवान् वीर सब शत्रुओंका नाश करते हैं।

३५ तोशा वृत्रहणा सजित्त्वाना अपराजिता वाज-सातमा इन्द्राग्नी हुवे [ १७०२ ]- शत्रुओंका नाश करने-वाले, वृत्रको मारनेवाले, शत्रुओंको जीतनेवाले, स्वयं अपरा-जित, अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्निको मैं बुलाता हूँ।

३६ इषः आवृणो [ १७०३ ]- अन्न प्राप्तिके लिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ।

३७ हे इन्द्राग्नी ! दासपत्नीः नवति पुरः ऐकेन कर्मणा साकं अधूतम् [ १७०४ ]- हे इन्द्र और अग्ने ! दासोंके द्वारा रक्षित नब्बे नगरोंको तुमने एक आक्रमणसे ही नष्ट कर दिया।

३८ हे अग्ने ! पुरः रुरोजिथ [ १७०३ ]- हे अग्ने ! तूने शत्रुओंके नगरोंको तोड़ा।

३९ ऋतावानं वैश्वानरं ऋतस्य ज्योतिषः पतिं अजस्रं घर्म ईमहे [ १७०८ ]- यज्ञ करनेवाले, सब लोगोंका कल्याण करनेवाले, यज्ञकी तेजसे रक्षा करनेवाले, जिसे कोई बाधा नहीं पहुंचा सकता ऐसे प्रज्वलित अग्निकी हम आराधना करते हैं।

४० यः इदं यज्ञस्य स्वः उत्तिरन् प्रति पप्रथे [ १७०९ ]



— जो यज्ञके स्वत्वका रक्षण करता है, यज्ञके विघ्नोंको दूर करता है, ऐसा वह अग्नि प्रसिद्ध है ।

४१ भूतस्य भव्यस्य कामः एकः सम्राट् अग्निः प्रियेषु धामसु विराजति [१७१०]— पूर्व उत्पन्न हुए और आगे होनेवाले जिसकी इच्छा करते हैं, ऐसा अद्वितीय सम्राट् अग्नि अपने प्रिय ऐसे यज्ञके स्थानमें विराजता है ।

## उपमा

१ सिन्धवः समुद्रं इव [१६६०]— जैसे नवियां समुद्रमें मिलती हैं, ( इन्द्रवः त्वा आविशन्तु ) वैसे ही ये सोमरस हे इन्द्र ! तुझमें प्रविष्ट हों ।

२ रेवान् इव [१६६५]— धनवान् राजाके समान ( बृहद् भानुः नः उक्थेमिः शृणोतु ) विशेष प्रकाशमान अग्नि हमारी स्तुति सुने ।

३ तत् गवे न [१६६६]— गायोंको जैसे घास प्रिय होती है, उसीप्रकार ( शाकिने शं ) शक्तिमान् इन्द्रको ये स्तोत्र प्रिय लगते हैं ।

४ दिवि आततं चक्षुः इव [१६७२]— आकाशमें जिसप्रकार प्रकाशमान सूर्य दीखता है, उसीप्रकार ( विष्णाः परमं पदं सूरयः पश्यन्ति ) विष्णुके श्रेष्ठ स्थानको ज्ञानी देखते हैं ।

५ मधौ मक्षः न [१६७६]— शहवकी मधुमक्खियां जिसप्रकार इकट्ठी होती हैं, उसीप्रकार ( ब्रह्मकृतः सचा आसते ) स्तुति करनेवाले एकत्र बैठकर स्तुति करते हैं ।

६ पुरिः जनः न [१६८९]— नगरमें जैसे मनुष्य जाता है, उसीप्रकार ( वनेषुः सदः दधिषे ) लकड़ीके बर्तनमें सोम अपना स्थान प्राप्त करता है ।

वनं— लकड़ीके बर्तन, लकड़ी जंगलमें पड़ा होती है, और लकड़ीसे सोमपात्र बनता है अतः लकड़ीके बर्तनको ' वनं '—जंगल कह दिया । अंशके लिए पूर्णका प्रयोग करना वेदकी शैली है ।

७ सप्तिः न [१६९०]— घोड़ेके समान प्रेम करने लायक ( सः सोमः ) वह सोम है ।

८ मृगः वारणः दानः न [१६९५]— शत्रुको खोजनेवाले मदनमत्त हाथीके समान ( पुरुत्रा रथं दधे ) अपने रथको तू आगे स्थापित करता है ।

९ छायां इव [१७०६]— जैसे धूपसे तपा हुआ मनुष्य छायामें आकर आनन्दित होता है, उसीप्रकार ( ते शर्म वयं उप गन्म ) तेरे आश्रयमें हम आनन्दित हों ।

१० धन्वी इव [१७०७]— धनुर्धारी वीरके समान ( यः उग्रः ) जो उग्रवीर है ।

११ तिग्मशृङ्गः वंसगः न [१७०७]— तेज सींगोंवाले बलके समान वह इन्द्र पराक्रमी है ।

## अष्टादशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

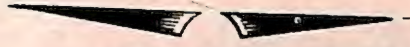
| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                | देवता   | छन्दः   |
|-------------|--------------|-------------------------------------|---------|---------|
|             |              | ( १ )                               |         |         |
| १६५७        | ८।१।२५       | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | इन्द्रः | गायत्री |
| १६५८        | ८।१।२७       | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | "       | "       |
| १६५९        | ८।१।२६       | मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः | "       | "       |
| १६६०        | ८।९।१२       | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः       | "       | "       |
| १६६१        | ८।९।१३       | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः       | "       | "       |
| १६६२        | ८।९।१४       | श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः       | "       | "       |
| १६६३        | १।२७।१०      | शुनः शेष आजीर्गतिः                  | अग्नि   | "       |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                                    | देवता       | छन्दः   |
|-------------|--------------|---|-------------|---|
| १६६४        | १।२७।११      | शुनःशेष आजीगतिः                         | अग्नि       | गायत्री   |
| १६६५        | १।२७।१२      | शुनःशेष आजीगतिः                         | "           | "   |
| १६६६        | ६।४५।२२      | शंयुर्बाह्स्पत्यः                       | इन्द्रः     | "   |
| १६६७        | ६।४५।२३      | शंयुर्बाह्स्पत्यः                       | "           | "   |
| १६६८        | ६।४५।२६      | शंयुर्बाह्स्पत्यः                       | "           | "   |
| ( २ )       |              |   |             |   |
| १६६९        | १।२९।१७      | मेधातिथिः काण्वः                        | विष्णुः     | "   |
| १६७०        | १।२९।१८      | मेधातिथिः काण्वः                        | "           | "   |
| १६७१        | १।२९।१९      | मेधातिथिः काण्वः                        | "           | "   |
| १६७२        | १।२९।२०      | मेधातिथिः काण्वः                        | "           | "   |
| १६७३        | १।२९।२१      | मेधातिथिः काण्वः                        | "           | "   |
| १६७४        | १।२९।२६      | मेधातिथिः काण्वः                        | देवा वा     | "   |
| १६७५        | ७।३१।१       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः                    | इन्द्रः     | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती )       |
| १६७६        | ७।३१।२       | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः                    | "           | "   |
| १६७७        | ८।११।९       | वालखिल्यम् ( आयुः काण्वः )              | "           | "   |
| १६७८        | ५।५९।१०      | वालखिल्यम् ( आयुः काण्वः )              | "           | "   |
| १६७९        | ९।२८।१०      | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | पवमानः सोमः | अनुष्टुप्                                       |
| १६८०        | ९।२८।१२      | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | "           | "   |
| १६८१        | ९।२८।७       | अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च | "           | "   |
| १६८२        | ७।३१।१४      | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः                    | इन्द्रः     | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती )       |
| १६८३        | ७।३१।२५      | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः                    | "           | "   |
| ( ३ )       |              |   |             |   |
| १६८४        | ८।२४।१६      | विश्वमना वैयश्वः                        | इन्द्रः     | उद्दिणक्  |
| १६८५        | ८।२४।१७      | विश्वमना वैयश्वः                        | "           | "   |
| १६८६        | ८।२४।१८      | विश्वमना वैयश्वः                        | "           | "   |
| १६८७        | ८।२९।१       | सोभरीः काण्वः                           | अग्निः      | काकुभः प्रगाथः= ( विषमा<br>ककुप् समा सतोबृहती ) |
| १६८८        | ८।२९।२       | सोभरीः काण्वः                           | "           | "   |
| १६८९        | ९।१०७।१०     | सप्तर्षयः                               | पवमानः सोमः | प्रगाथः= ( विषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती )       |
| १६९०        | ९।१०७।११     | सप्तर्षयः                               | "           | "   |
| १६९१        | ८।६६।७       | कलिः प्रागाथः                           | इन्द्रः     | "   |
| १६९२        | ८।६६।८       | कलिः प्रागाथः                           | "           | "   |
| १६९३        | ३।१९।९       | विश्वामित्रः प्रागाथः                   | इन्द्राग्नी | गायत्री   |
| १६९४        | ३।१९।७       | विश्वामित्रः प्रागाथः                   | "           | "   |
| १६९५        | ३।१९।८       | विश्वामित्रः प्रागाथः                   | "           | "   |



| मंत्रतल्पा | ऋग्वेदस्थानं                           | ऋषिः                  | देवता       | छन्दः   |
|------------|--|-----------------------|-------------|---------|
| १६९६       | ८।३३।७                                 | मेघ्यातिथिः काण्वः    | इन्द्रः     | बृहती   |
| १६९७       | ८।३३।८                                 | मेघ्यातिथिः काण्वः    | "           | "       |
| १६९८       | ८।३३।९                                 | मेघ्यातिथिः काण्वः    | "           | "       |
| ( ४ )      |  |                       |             |         |
| १६९९       | ९।६३।२५                                | निध्रुविः काश्यपः     | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १७००       | ९।६३।२७                                | निध्रुविः काश्यपः     | "           | "       |
| १७०१       | ९।६३।२६                                | निध्रुविः काश्यपः     | "           | "       |
| १७०२       | ३।१२।४                                 | विश्वामित्रः प्रागाथः | इन्द्राग्नी | "       |
| १७०३       | ३।१२।५                                 | विश्वामित्रः प्रागाथः | "           | "       |
| १७०४       | ३।१२।६                                 | विश्वामित्रः प्रागाथः | "           | "       |
| १७०५       | ६।१६।७                                 | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "           | "       |
| १७०६       | ६।१६।८                                 | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | अग्निः      | "       |
| १७०७       | ६।१६।९                                 | भरद्वाजो बार्हस्पत्यः | "           | "       |
| १७०८       | अथर्व. ६।३६।१ अथर्व ( स्वस्त्ययनकामः ) |                       | "           | "       |
| १७०९       | —                                      | —                     | "           | "       |
| १७१०       | —                                      | —                     | "           | "       |





## अथैकोनविंशोऽध्यायः ।



अथाष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्थः ॥ ८-३ ॥

[ १ ]

( १-१८ ) १ विरूप आंगिरसः; २, १८ अवत्सारः काश्यपः; ३ विश्वामित्रो गायिनः; ४ देवातिथिः काण्वः; ५, ८, ९, १६ गौतमो राहूगणः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ प्रस्कण्वः काण्वः; १० वसुश्रुत आत्रेयः; ११ सत्यश्रवा आत्रेयः; १२ अवस्युरात्रेयः; १३ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ; १४ कुत्स आंगिरसः; १५ अत्रिभौमः, १७ दीर्घतमा औचथ्यः ॥ १, १०, १३ अग्निः; २, १८ पवमानः सोमः; ३-५ इन्द्रः; ६, ८, ११, १४ ( १ उत्तरार्धः रात्रिश्च ), १६ उषाः; ७, ९, १२, १५, १७ अश्विनौ ॥ १-२, ६-७, १८ गायत्री; ३, १३-१५ त्रिष्टुप्; ४-५ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); ८-९ उष्णिक्; १०-१२ पङ्क्तिः; १६, १७ जगती ॥

१७११ अग्निं प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्व२५ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥ ( ऋ. ८।४४।१२ )

१७१२ ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥२॥ ( ऋ. ८।४४।१३ )

१७१३ स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुकेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३॥ १ ( ली ) ॥

[ धा० ९। उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।४४।१४ )

१७१४ उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व या परिस्पृधः ॥१॥ ( ऋ. ९।५३।१ )

१७१५ अया निजग्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥ ( ऋ. ९।५३।२ )

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १७११ ] ( कविः अग्निः ) ज्ञानी अग्नि ( प्रत्नेन जन्मना ) प्राचीन स्तोत्रसे ( स्वां तन्वं शुम्भानः ) अपने सेजोमय शरीरको सुशोभित करते हुए ( विप्रेण वावृधे ) ब्राह्मणोंके द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥ १ ॥

[ १७१२ ] ( ऊर्जः न-पातं ) बलको कम न करनेवाले ( पावक-शोचिषं ) पवित्रता करनेवाले प्रकाशसे युक्त ( अग्निं ) अग्निको ( अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे ) इस उत्तम हिसारहित यज्ञमें ( आहुवे ) हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[ १७१३ ] ( मित्र-महः अग्ने ) हे मित्रोंके द्वारा पूज्य अग्ने ! ( सः त्वं ) वह तू ( शुकेण शोचिषा ) शुद्ध ज्वालाओंसे युक्त होकर ( देवैः बर्हिषि आसत्सि ) देवोंके साथ इस यज्ञमें आकर बैठ ॥ ३ ॥

[ १७१४ ] हे ( अद्रिवः सोम ) पत्थरोंसे कूटे जानेवाले सोम ! ( ते शुष्मासः ) तेरे बल ( रक्षः भिन्दन्तः ) राजसौंका नाश करते हुए ( उदस्थुः ) ऊपर आते हैं । ( याः परिस्पृधः ) जो मुकाबला करनेवाले शत्रु हैं, उन्हें ( नुदस्व ) दूर कर ॥ १ ॥

[ १७१५ ] हे सोम ! तू ( अया ओजसा निजग्निः ) इस बलसे शत्रुओंको नष्ट करता है, ऐसे तेरी हम ( अबिभ्युषा हृदा ) निर्भय अन्तःकरणसे ( रथसङ्गे हिते ) रथोंके युद्धमें शत्रुओंके नष्ट होनेपर ( धने स्तवैः ) धनकी क्षान्तिके लिए स्तुति करते हैं ॥ २ ॥



१७१६ अस्य व्रतानि नाधूषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥ ( ऋ. १।५।३ )

१७१७ तं हिन्वति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥ २ ( पी ) ॥  
[ धा० २० । उ० १ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।५।४ )

१७१८ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।  
मा त्वा के चिन्नि येषुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव तां इहि ॥१॥ ( ऋ. ३।४५।१ )

१७१९ वृत्रखादो बलं रुजः पुरां दर्मा अपामजः ।  
स्थाता रथस्य हर्योऽभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥ २ ॥ ( ऋ. ३।४५।२ )

१७२० गम्भीरां उदधीं रिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।  
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥ ३ ( छा ) ॥  
[ धा० १७ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ३।४५।३ )

१७२१ यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नैत्यवेरिणम् ।  
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१।३ )

[ १७१६ ] ( पवमानस्य अस्य व्रतानि ) छाने जानेवाले इस सोमके कमोसे ( दूढ्या न आधूषे ) दुष्ट राक्षस प्रगति नहीं कर सकते । हे सोम ! ( यः त्वा पृतन्यति ) जो तुझ पर सेना भेजनेकी इच्छा करता है, उसे ( रुज ) तू नष्ट कर ॥ ३ ॥

[ १७१७ ] ( मदच्युतं हरिं ) आनन्द देनेवाले हरे रंगके ( वाजिनं मत्सरं ) बल और उत्साह बढ़ानेवाले ( तं इन्दुं ) इस सोमको ( नदीषु ) पानीमें ( इन्द्राय ) इन्द्रके लिए ( हिन्वन्ति ) मिलाते हैं ॥ ४ ॥

[ १७१८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र । ( मन्द्रैः मयूर रोमभिः हरिभिः ) आनन्द देनेवाले, मोरके पंखोंके समान बालों-वाले घोड़ोंसे तू ( आयाहि ) यहां यज्ञमें आ । ( केचित् त्वा ) कोई भी तुझे ( पाशिनः न ) जाल डालनेवाले शिकारी जिसप्रकार पक्षियोंको पकड़ते हैं, उसीप्रकार ( मा नियेमुः ) न पकड़े । ( धन्वेव तान् अति इहि ) रेगिस्तानके सवान उन्हें छोड़कर यहां आ ॥ १ ॥

[ १७१९ ] ( इन्द्रः ) वह इन्द्र ( वृत्र-खादः ) वृत्रका नाश करनेवाला ( बलं रुजः ) बल राक्षसको छिन्न भिन्न करनेवाला ( पुरां दर्मा ) शत्रुके नगर तोड़नेवाला ( अपां अजः ) पानीकी वृष्टि करनेवाला ( हर्योः अभिस्वरे रथस्य स्थाता ) घोड़ोंके रथमें बैठनेवाला ( दृढाचित् आरुजः ) बलवान् शत्रुको भी हरानेवाला है ॥ २ ॥

[ १७२० ] हे इन्द्र ! तू ( गम्भीरान् उदधीन् इव ) गंभीर समुद्रको पुष्ट करनेके समान ( क्रतुं पुष्यसि ) यज्ञका पोषण करता है । जिसप्रकार ( सु-गोपाः ) उत्तम गोपालक ( गाः इव ) गायोंको उत्तम घास आवि देकर पुष्ट करता है, ( यथा धेनवः यवसं प्र ) जिसप्रकार गायें घास खाती हैं, अथवा ( कुल्या ह्रदं इव आशते ) नहियां जिस-प्रकार तालाबमें मिलती हैं उसीप्रकार सोम तुझे प्राप्त होता है और पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

[ १७२१ ] ( गौरः तृष्यन् ) जैसे हिरण प्यासा होकर ( यथा अपाकृतं हरिणं एति ) पानीसे भरे हुए तालाबकी ओर जाता है, उसीप्रकार हे इन्द्र ! तू ( नः तूयं ) हमारे पास शीघ्रही ( आपित्वे प्रपित्वे आगहि ) मित्र भावनासे आ और ( कण्वेषु सचा सु पिब ) कण्वोंके यज्ञमें बैठकर सोम पी ॥ १ ॥



१७२२ मन्दन्तु त्वा मघवन् इन्द्रेन्द्रो राधो देयाय सुन्वते ।

आमुष्या सोममपिबश्मू सुतं ज्येष्ठं तदधिषे सहः

॥ २ ॥ ४ ( घ ) ॥

[ धा० २१ । उ० ४ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।४।४ )

१७२३ त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्दितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः

॥ १ ॥ ( ऋ. १।८।१९ )

१७२४ मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।

विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्मणिभ्य आ

॥ २ ॥ ५ ( का ) ॥

[ धा० २१ । उ० १ । स्व० २ ] ( ऋ. १।८।२० )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१७२५ प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥ ( ऋ. ४।९।१ )

१७२६ अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखा भूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।९।२ )

१७२७ उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥ ६ ( लि ) ॥

[ धा० २ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ४।९।३ )

[ १७२२ ] हे ( मघवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( सुन्वते राधः देयाय ) सोम याग करनेवालेको धन देनेके लिए ( इन्द्रवः त्वा मन्दन्तु ) सोमरस तुझे प्रसन्न करें । तू ( चमूषुतं सोमं आमुष्य अपिबः ) कलशमें रखे गए सोम-रसको जल्दीसे लेकर पीता है । ( तत् ज्येष्ठं सहः दधिषे ) क्योंकि तू विशेष बल धारण करता है ॥ २ ॥

[ १७२३ ] ( अंग शविष्ठ ) हे प्रिय और बलवान् इन्द्र ! ( देवः ) तेजस्वी ऐसा तू ( मर्त्यं प्रशंसिषः ) स्तुति करनेवाले मनुष्यकी प्रशंसा करता है । हे ( मघवन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( त्वद् अन्यः मर्दिता न अस्ति ) तेरे सिवाय दूसरा कोई मुख देनेवाला नहीं, इसलिए ( ते वचः ब्रवीमि ) मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७२४ ] हे ( वसो ) निवासक इन्द्र ! ( ते राधांसि ) तेरे धन ( अस्मान् कदाचन मा दभन् ) हमें कभी नष्ट न करें । ( ते ऊतयः मा ) तेरे संरक्षणके साधन हमारा नाश न करें । हे ( मानुष ) मनुष्योंका हित करनेवाले इन्द्र ! ( नः चर्मणिभ्यः ) हम प्रजाजनोंको ( विश्वा वसूनि आ उप मिमीहि ) सब धन लाकर दे ॥ २ ॥

॥ यहां पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १७२५ ] ( स्या सूनरी ) उस उत्तम प्रेरणा देनेवाली ( जनी ) फल देनेवाली ( स्वसुः परि व्युच्छन्ती ) अपनी बहिनके समान रात्रीके उत्तरभागमें प्रकाशित होनेवाली ( दिवः दुहिता ) सूर्यकी पुत्री उषा ( प्रत्यदर्शि ) दीखने लग गई है ॥ १ ॥

[ १७२६ ] ( अश्वेव इव चित्रा ) घोड़ीके समान सुन्दर ( अरुषी गवां माता ) चमकनेवाली किरणोंकी माता ( अमृतावरी उषाः ) यज्ञ करनेवाली उषा ( अश्विनोः सखा अभूत् ) अश्विनो देवोंकी मित्र हो गई है ॥ २ ॥

[ १७२७ ] ( उत अश्विनोः सखा असि ) और तू अश्विनो कुमारोंकी मित्र है । ( उत गवां माता असि ) और किरणोंकी माता है ( उत ) इसलिए तू हे ( उषः ) उषे ! ( वस्वः ईशिषे ) तू धन पर प्रभुता करती है ॥ ३ ॥



१७२८ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥ ( ऋ. १४६।१ )

१७२९ या दक्षा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥ ( ऋ. १४६।२ )

१७३० वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वा रथो विभिष्यतात् ॥३॥ ७ ( लि ) ॥

[ धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १४६।३ )

१७३१ उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥ ( ऋ. १९२।१३ )

१७३२ उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरी । रेवदस्मे व्युच्छ स्रुतावति ॥२॥ ( ऋ. १९२।१४ )

१७३३ युंक्ष्व हि वाजिनीवत्यश्वा अघारुणा उषः ।

॥ ३ ॥ ८ ( हि ) ॥

अथा नो विश्वा सौमगान्या वह

[ धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १९२।१५ )

१७३४ अश्विना वर्तिरसदा गोमदक्षा हिरण्यवत् । अर्वाग्रथ समनसा नि यच्छतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १९२।१६ )

१७३५ एह देवा मयोभुवा दक्षा हिरण्यवर्तनी । उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥२॥ ( ऋ. १९२।१८ )

[ १७२८ ] ( एषा प्रिया अपूर्व्या उषाः ) यह प्रिय अपूर्व उषा ( दिवः व्युच्छति ) धूलोकको प्रकाशित करती है । हे ( अश्विनौ ) अश्विनीकुमारो ! ( वां बृहत् स्तुषे ) तुम्हारी बहुतसी स्तुति में करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७२९ ] ( या देवा ) जो अश्विनौ देव ( दक्षा ) शत्रुका नाश करनेवाले ( सिन्धुमातरा ) नदियोंको उत्पन्न करनेवाले ( रयीणां मनोतरा ) धन देनेवाले ( धिया वसुविदा ) बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालोंको धन देनेवाले हैं ॥ २ ॥

[ १७३० ] हे अश्विनौ देवो ! ( वां रथः ) तुम्हारा रथ ( जूर्णायामधि विष्टपि ) प्रशंसनीय स्वर्गलोकमें ( यत् विभिः पतात् ) जब पक्षियोंसे ले जाया जाता है, उस समय ( वां ) तुम्हारे लिए ( ककुहासः वच्यन्ते ) स्तोत्र बोले जाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७३१ ] हे ( वाजिनीवति उषः ) हवनोको प्रारम्भ करनेवाली उषे ! ( अस्मभ्यं तत् चित्रं आभर ) हमें वह विलक्षण धन भरपूर दे, ( येन तोकं तनयं च धामहे ) जिसकी सहायतासे पुत्रपौत्रोंका रक्षण हम कर सकें ॥ १ ॥

[ १७३२ ] ( गोमति ) गायोंसे युक्त, ( अश्वावति ) घोड़ोंसे युक्त, ( स्रुतावति विभावरी उषः ) यज्ञसे युक्त और तेजस्विनी उषे ! ( अद्य इह ) आज यहां ( अस्मे रेवत् व्युच्छ ) हमें तू धनयुक्त कर ॥ २ ॥

[ १७३३ ] हे ( वाजिनीवति उषः ) यज्ञोंको शुरू करानेवाली उषे ! ( अरुणान् अश्वान् ) लाल रंगके घोड़ोंको ( अद्य युंक्ष्व हि ) अपने रथमें आज जोड़ और ( विश्वा सौमगानि नः आवह ) सब सौभाग्य हमें दे ॥ ३ ॥

[ १७३४ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( दक्षा ) शत्रुका नाश करनेवाले तुम ( अस्मत् वर्तिः आ ) हमारे घरकी तरफ आओ - यज्ञशालाकी ओर आओ । ( गोमत् हिरण्यवत् रथं ) गाय और सुवर्णसे युक्त रथको ( समनसा )

अर्वाक् नियच्छतम् ) मतःपूर्वक हमारे पास लाओ ॥ १ ॥

[ १७३५ ] ( उषर्बुधः ) उषःकाल में जगनेवाले घोड़े ( इह सोमपीतये ) यहां सोमपीतये ( दक्षा मयोभुवा ) शत्रुका नाश करनेवाले और सुख देनेवाले ( हिरण्यवर्तनी देवा ) सोनेके रथोंवाले अश्विदेवोंको ( आवहन्तु ) लावें ॥२॥



१७३६ यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम्

॥ ३ ॥ ९ ( भा ) ॥

[ धा० २० । उ० ४ । स्व० २ ] ( ऋ. १।९।१७ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१७३७ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६।१ )

१७३८ अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।

अग्नी राये स्वाभुवः स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६।१ )

१७३९ सो अग्निर्यो वसुगृणे सं यमायन्ति धेनवः ।

समर्वन्तो रघुद्रुवः सः सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥ १० ( घु ) ॥

[ धा० १६ । उ० ४ । स्व० ९ ] ( ऋ. ९।६।२ )

[ १७३६ ] हे ( अश्विना ) अश्विनीकुमारो ! ( यौ ) जो तुम ( दिवः श्लोकं ज्योतिः ) सुलोकसे प्रशंसनीय प्रकाश ( इत्था जनाय चक्रथुः ) इस तरह लोगोके हितके लिए लाते हो, ( युवम् ) ऐसे तुम ( नः ऊर्जं आ वहतं ) हमें बल दो ॥ ३ ॥

॥ यहां दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १७३७ ] ( तं अग्निं मन्ये ) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ( यः वसुः ) जो सबको बसानेवाला है । ( अस्तं यं धेनवः यन्ति ) जिसके आश्रयमें गाये जाती हैं, ( अस्तं आशवः अर्वन्तः ) जिसके आश्रयमें घोड़े जाते हैं ( अस्तं नित्यासः वाजिनः ) जिसके आश्रयमें नित्यकर्म करनेवाले, हवि पासमें रखनेवाले यजमान जाते हैं, ऐसा तू ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवाले हमें भरपूर अन्न दे ॥ १ ॥

[ १७३८ ] ( अग्निः हि ) अग्नि निश्चयसे ( विशे वाजिनं ददाति ) यजमानकी पुत्र देता है । ( विश्वचर्षणिः सः अग्निः ) सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला वह अग्नि ( प्रीतः ) प्रसन्न होकर ( स्वाभुवः वार्यं ) स्वयं खडखडानेवाले ( राये याति ) घन देनेके लिए यज्ञमें जाता है । हे अग्ने ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर अन्न दे ॥ २ ॥

[ १७३९ ] ( यः वसुः ) जो सबको बसानेवाला है, ( यं धेनवः समायन्ति ) जिसके पास गाये मिलकर जाती हैं । ( रघुद्रुवः अर्वन्तः सं ) शीघ्र दौड़नेवाले घोड़े जिसके पास जाते हैं । ( सु-जातासः सूरयः सं ) उत्तम प्रसिद्ध विद्वान् जिसके पास जाते हैं, ऐसा ( सः अग्निः ) वह अग्नि ( गृणे ) प्रशंसित होता है । हे अग्ने ! ( स्तोतृभ्यः इषं आभर ) स्तुति करनेवालोंको भरपूर अन्न दे ॥ ३ ॥



१७४० महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।

यथा चित्तो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनुते ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७९।१ )

१७४१ या सुनीथे औचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।

सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनुते ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७९।२ )

१७४२ सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।

यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनुते ॥ ३ ॥ ११ ( तु ) ॥  
[ धा० १९। उ० १। स्व० ९ ] ( ऋ. ९।७९।३ )

१७४३ प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।

स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।७९।१ )

१७४४ अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।

दक्षा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ९।७९।२ )

[ १७४० ] ( अद्य ) आज हे ( उषः ) उषे ! दिवित्मती ) प्रकाशयुक्त तू ( नः महे राये बोधय ) हमें बहुत धन प्राप्तिके लिए ज्ञानयुक्त कर । ( यथा चित् नो अबोधयः ) जिसप्रकार पहले ज्ञानयुक्त करती थी, उसीप्रकार अब भी कर । हे ( सुजाते अ-श्व सूनुते ) कुलीन और हमेशा सत्य बोलनेवाली उषे ! ( वाय्ये सत्यश्रवसि ) बय्यके पुत्र सत्यश्रवापर कृपा कर ॥ १ ॥

[ १७४१ ] हे ( दिवः दुहितः ) छलोककी कन्ये ! ( या ) जो तू ( सुनीथे औचद्रथे व्यौच्छः ) सुनीथ नामक शुचिद्रथके पुत्रके लिए प्रकाशित हुई, ( सा ) वह तू ( सहीयसी वाय्ये सुजाते सत्यश्रवसि व्युच्छ ) अति बलवान् बय्यके सत्यश्रवा नामक कुलीन पुत्र पर अपने प्रकाशरूपी अनुग्रहको कर ॥ २ ॥

[ १७४२ ] हे ( दिवः दुहितः ) छलोककी पुत्री ! ( सा वसु आभरद् ) वह तू हमें धन भरपूर दे, तथा ( नः अद्य व्युच्छ ) हमारे लिए आज प्रकाशित हो । हे ( सहीयसि ) अत्यन्त बलवाली ( या व्यौच्छः ) जिस तूने अन्ध-कारको दूर किया है, ऐसी हे ( सुजाते अ-श्वसूनुते ) कुलीन और सदा सत्य बोलनेवाली उषे ! ( वाय्ये सत्यश्रवसि ) बय्यके पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह कर ॥ ३ ॥

[ १७४३ ] ( अश्विनौ ) अश्विदेवो ! ( स्तोता ऋषिः ) स्तुति करनेवाला ऋषि ( वां ) तुम्हारे ( वृषणं वसु-वाहनं ) बलवान् और धन ढोकर ले जानेवाले ( प्रियतमं रथं ) अत्यन्त प्रिय रथको ( स्तोमेभिः प्रतिभूषति ) स्तोत्रोंसे सुशोभित करता है । इस कारण हे ( माध्वी ) मधुविद्याको जाननेवाली ! ( मम हवं श्रुतं ) हमारी प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥

[ १७४४ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( अत्यायातं ) तुम अन्य यजमानोंको पार करके हमारी तरफ आओ । ( अहं विश्वाः सना तिरः ) मैं अपने सब शत्रुओंको हराऊँ । हे ( दक्षा हिरण्यवर्तनी ) शत्रुका नाश करनेवाले और सोनेके रखवाले ( सुषुम्णा सिन्धुवाहसा ) उत्तम धनसे युक्त और नदियोंमें भी जानेवाले तथा ( माध्वी ) मधुविद्याको जाननेवाले अश्विदेवो ! ( मम हवं श्रुतं ) हमारी प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥



१७४५ आ नो रत्नानि विभ्रतावश्विना भच्छतं युवम् ।

रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥ १३ ( वा ) ॥  
[ धा० ३० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ५।७५।३ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१७४६ अवोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।

यद्वा इव प्र वयामुजिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।१।१ )

१७४७ अवोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।

समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।१।२ )

१७४८ यदी गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।

आदक्षिणा युज्यते वाजयंत्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुह्विभिः ॥ ३ ॥ १३ ( लि ) ॥  
[ धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ५।१।३ )

[ १७४५ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( रुद्रा हिरण्यवर्तनी ) तुम शत्रुओंको हलाने हारे तथा सोनेके रथमें बैठनेवाले ( रत्नानि विभ्रता ) रत्नों को धारण करनेवाले ( वाजिनीवसू जुषाणा ) अन्न और धनोंसे युक्त तथा यज्ञमें आनेवाले ( युवं आगच्छतं ) तुम हमारे पास आओ । ( माध्वी ! मम हवं श्रुतं ) हे मधुविद्याके जाननेवालों ! मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १७४६ ] ( अग्निः जनानां समिधा अवोधि ) अग्नि याजकोंकी समिधासे प्रज्वलित हुआ है । ( धेनुं इव ) गायोंको जिसप्रकार प्रातःकाल उठाते हैं, उसीप्रकार अग्नि जागृत हुआ है । ( आयतीं उषासं प्रति ) आनेवाले उषःकालमें ( भानवः ) अग्निकी ज्वालायें ( वयां प्रोजिहानाः यद्वाः इव ) अपनी डालियोंको फैलानेवाले वृक्षके समान ( नाकं अच्छ प्रसस्रते ) अन्तरिक्षकी ओर फैलती हैं ॥ १ ॥

[ १७४७ ] ( होता अग्निः ) हवन करनेवाला अग्नि ( देवान् यजथाय अवोधि ) देवों द्वारा यज्ञ किए जानेके लिए प्रज्वलित हुआ है । वह अग्नि ( प्रातः सुमनाः ) प्रातःकाल उत्तम मनसे ( ऊर्ध्वः अस्थात् ) ऊपर उठ गया है । ( समिद्धस्य रुशत् ) प्रज्वलित हुए हुए अग्निका ( पाजः अदर्शि ) तेजस्वी बल दीखने लगा है । यह ( महान् देवः तमसः निरमोचि ) महान् देव जगत्को अन्धकारसे छुड़ाता है ॥ २ ॥

[ १७४८ ] ( यद् ई ) जब यह अग्नि ( गणस्य रशनां अजीगः ) जन समुदायके कार्योंमें विघ्न डालनेवाले अन्धकाररूपी प्रतिबंधको निगल जाता है, तब ( शुचिः अग्निः ) शुद्ध तेजस्वी अग्नि ( शुचिभिः गोभिः ) शुद्ध किरणोंसे ( अङ्कते ) जगत्को प्रकट करता है । ( आत् ) उसके बाद ( वाजयन्ती दक्षिणा ) बल देनेकी इच्छा करती हुई घीकी मोटी धारा ( जुह्विभिः युज्यते ) यज्ञपात्रसे संयुक्त होती है । तब ( उत्तानां ऊर्ध्वः अधयत् ) ऊपरसे आनेवाली घीकी उस धाराको यह अग्नि ऊपर उठकर पीता है ॥ ३ ॥



१७४९ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाचित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विम्बा ।

यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।११३।१ )

१७५० रुशद्रत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।

समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिमाने ॥ २ ॥ ( ऋ. १।११३।२ )

१७५१ समानो अध्वा स्वस्मोरनतस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।

न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥ १४ ( म ) ॥

[ धा० ३० । उ० ५ । स्त्र० १ ] ( ऋ. १।११३।३ )

१७५२ आ भार्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।

अर्वाश्वा नूनं रथ्येह यातं पीपिवाऽसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥ ( ऋ. ५।७६।१ )

१७५३ न संस्कृतं प्रमिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।

दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्ति दाशुष शम्भविष्ठा ॥ २ ॥ ( ऋ. ५।७६।२ )

[ १७४९ ] ( ज्योतिषां इदं श्रेष्ठं ज्योतिः ) तेजस्वी पदार्थोंमें सबसे अधिक तेजवाली यह उषा ( आगात् ) उबय हुई है । ( चित्रः प्रकेतः ) उसका प्रकाश विलक्षण तेजस्वी ( विम्बा अजनिष्ट ) और चारों ओर फैला हुआ है । ( यथा सवितुः प्रसूता रात्रिः ) सूर्यसे उत्पन्न हुई हुई अर्थात् सूर्यके डूब जानेसे उत्पन्न हुई हुई रात्री ( उषसे सवाय ) उषाको उत्पन्न करनेके लिए ( योनिं आरैक् ) अपने बीचमें उसके लिए स्थान बनाती है ॥ १ ॥

[ १७५० ] ( रुशती श्वेत्या ) प्रकाशित होनेवाली श्वेत रंगकी उषा ( रुशद्रत्सा आगात् ) तेजस्वी सूर्यरूप पुत्रको लेकर आ गई है । ( अस्याः कृष्णा सदनानि आरैक् ) इस रात्रीके काले रंगके स्थान हैं । उषा व रात्री दोनोंका ( समान-बन्धू ) सूर्यके साथ समान बन्धुत्व-प्रेम है, ( अमृते अनूची ) अमर और क्रमसे एकके पीछे दूसरे आनेवाले हैं और ( वर्णं आमिमाने ) दोनों एक दूसरेके रंगको नष्ट करनेवाले हैं, तथा ( द्यावा चरतः ) दोनों ही छुलोकमें विचरनेवाले हैं ॥ २ ॥

[ १७५१ ] ( स्वस्मोः अध्वा समानः ) रात्री और उषा दोनों ही बहिनोंका मार्ग एक ही है, और वह मार्ग ( अनन्तः ) अन्तरहित है । ( तं देवशिष्टे अन्यान्या चरतः ) उस मार्गसे सूर्यके द्वारा कहे हुएके अनुसार एकके पीछे दूसरी क्रमसे चलती हैं । ( सुमेके नक्तोषासा ) उत्तम कार्य करनेवाली ये उषा और रात्री ( विरूपे समनसा ) विरुद्ध रूपवाली होती हुई भी एक विचारवाली हैं तथा कभी भी ( न मेथेते ) आपसमें झगडा नहीं करती तथा ( न तस्थतुः ) स्थिर भी नहीं रहती । अपने अपने कार्योंकी करती रहती हैं ॥ ३ ॥

[ १७५२ ] ( उषसां अनीकं अग्निः आभाति ) उषाका मुख्यरूपी यह अग्नि प्रदीप्त हो गया है । इस समय ( विप्राणां देवयाः वाचः उदस्थुः ) ज्ञानियोंकी विषय स्तुतिरूप धाणियां शुरु होगई हैं । इस कारण ( रथ्या अश्विना ) हे रथमें बैठनेवाले अश्विदेवो ! ( अर्वाश्वा नूनं इह ) हमारे पास यहां आओ । यज्ञमें ( पीपिवांसं घर्मं अच्छ ) पीने योग्य सोमरसके पास ( आयातं ) आओ ॥ १ ॥

[ १७५३ ] हे अश्विनीकुमारो ! ( संस्कृतं न प्रमिमीतः ) संस्कार किए गए पदार्थोंको लेनेसे मना मत करो । ( अन्ति नूनं इह गमिष्ठा ) पासमें होनेवाले इस यज्ञमें जाओ । ( अश्विना उपस्तुता ) अश्विनोदेवोंकी स्तुति की जाती है । ( दिवाभिपित्वे ) दिनके प्रातःकाल होते ही ( अवसा अवर्ति प्रत्यागमिष्ठा ) रक्षा करनेवाले अश्वके साथ तुम आते हो । इतलि ? ( दाशुषे शम्भविष्ठा ) दान देनेवालेकी सुख देनेवाले होओ ॥ २ ॥



३१ २ ३२ ३१ २२ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २  
१७५४ उता यातसंगवे प्रातरहो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
दिवा नक्तमवसा अन्तमेन नेदानी पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥ १५ ( लो ) ॥

[ धा० २४ । उ० नास्ति । स्व० ९ ] ( ऋ. ५।७६।३ )

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २  
१७५५ एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥ ( ऋ. १।९२।१ )

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१७५६ उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरश्विभ्युः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।९२।२ )

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
१७५७ अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २  
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ १६ ( कि ) ॥

[ धा० २६ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. १।९२।३ )

[ १७५४ ] हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( अहः संगवे ) दिनमें गाय बुहनेके समय ( प्रातः ) सबरे ( सूर्यस्य ) उदिता ) सूर्यके उदय होनेपर ( मध्यन्दिने ) मध्याह्नमें ( दिवा ) दिनमें ( नक्तं ) रात्रीमें अर्थात् हमेशा ( अन्तमेन अवसा ) सुप्तवायक रक्षणोंके साधनोंके साथ ( आयातं ) आओ । ( उत ) क्योंकि ( इदानीं पीतिः न ततान ) अभी सोम पीना शुरु नहीं हुआ है ॥ ३ ॥

॥ यहाँ चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १७५५ ] ( त्या एताः उषसः ) वे ये उषायें ( केतुं अक्रत ) प्रकाश करती हैं । ( रजसः पूर्वे अर्धे भानुं अंजते ) अन्तरिक्षके पूर्व अर्धमें प्रकाश हो गया है । ( धृष्णवः आयुधानि इव ) वीर लोग जैसे शस्त्र तीक्ष्ण करते हैं, उसीप्रकार ( निष्कृण्वानाः ) अपने प्रकाशसे जगत्की प्रकाशित करते हुए ( गावः ) गमन करनेवाली तथा ( मातरः अरुषीः ) जगत्की माता तेजयुक्त उषायें ( प्रति यन्ति ) प्रतिदिन आती हैं ॥ १ ॥

[ १७५६ ] ( अरुणाः भानवः ) अरुण रंगकी किरणें ( वृथा उदपप्तन् ) सरलतासे ही ऊपर आ गई हैं । ( स्वायुजः अरुषीः गाः अयुक्षत ) स्वयं ही जुड़जानेवाले बेल - किरण - रथमें जोड़े गए हैं । ( उषासः पूर्वथा वयुनानि अक्रन् ) उषायें पहले ज्ञानका प्रसार करती हैं । बादमें ( अरुषीः रुशन्तं भानुं अश्विभ्युः ) प्रकाश करनेवाली उषायें तेजस्वी सूर्यकी सेवा करने लगीं ॥ २ ॥

[ १७५७ ] ( सुकृते सुदानवे ) उत्तम कर्म करनेवाले और उत्तम वान देनेवाले ( सुन्वते यजमानाय ) सोमरस निकालनेवाले यजमानको ( विश्वा इत् अह इषं वहन्तीः ) बहुत अन्न देनेवाली ( नारीः ) उषारूपी स्त्रियों ( विष्टिभिः ) अपनी किरणोंसे ( समानेन योजनेन ) समान योजनासे ( परावतः आ अर्चन्ति ) दूर देशसे आकाशको सुन्दर बनाती हैं । ( अपसः न ) जिसप्रकार युद्ध करनेवाले वीर अपने शस्त्रोंको रणभूमिमें सुन्दर बनाते हैं, उसीप्रकार उषायें आकाशको सुन्दर बनाती हैं ॥ ३ ॥



- १७५८ <sup>१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २</sup> अबोध्याग्निर्जम् उदेति सूर्यो व्यूरेषाश्चन्द्रा महावो अर्चिषा ।  
<sup>१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीदेवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥ ( ऋ. १।१५७।१ )
- १७५९ <sup>१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> यद्युज्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।  
<sup>३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१५७।२ )
- १७६० <sup>३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।  
<sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> त्रिवन्धुरो मधवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥ १७ ( छा ) ॥
- १७६१ <sup>२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥  
 ( ऋ. १।१५७।३ )
- १७६२ <sup>३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुज्ञान आयुधा ॥ २ ॥  
 ( ऋ. १।१५७।४ )
- १७६३ <sup>१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २</sup> स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु वीदति ॥ ३ ॥ ( ऋ. १।१५७।५ )

[ १७५८ ] ( अग्निः जम्ः अबोधि ) अग्नि अपनी वेदीमें प्रदीप्त हुआ है। ( मही उषाः अर्चिषा चन्द्रा वि आवः ) बड़ी उषा अपने तेजसे लोगोंको आनन्द देती हुई प्रकट हुई है। हे ( अश्विना ) अश्विदेवो ! ( यातवे रथं आयुक्षातां ) यज्ञमें जानेके लिए अपने रथको जोड़ो। ( सविता देवः ) सूर्य देव ( जगत् पृथक् प्रासावीत् ) जगत्के सब प्राणियोंको अपने-अपने कर्तव्यमें लगाता है ॥ १ ॥

[ १७५९ ] हे ( अश्विना ) अश्विनीकुमारो ! ( यत् वृषणं रथं युज्जाथे ) जब तुम अपने बलवान् रथको जोड़ते हो, तब ( नः क्षत्रं ) हमारे क्षत्रियोंको ( मधुना घृतेन उक्षतं ) मीठे घीसे पुष्ट करो। ( अस्माकं पृतनासु ब्रह्म जिन्वतं ) हमारी प्रजाओंमें ज्ञानकी वृद्धि करो। ( वयं शूरसातौ धना भजेमहि ) और हम युद्धमें धनको प्राप्त करें ॥ २ ॥

[ १७६० ] ( अश्विनोः रथः अर्वाङ् यातु ) अश्विनोका रथ हमारे पास आवे। ( त्रिचक्रः मधुवाहनः ) तीन पहियोंवाला और मीठे अमृतको धारण करनेवाला ( जीराश्वः सुष्टुतः ) जल्दी चलनेवाले घोड़े जिसमें जुते हुए हैं, और जिसकी उत्तम स्तुति होती है, ऐसा ( त्रिवन्धुरः मधवा विश्वसौभगः ) तीन बैठकों वाला, धनसे भरा हुआ तथा सब सौभाग्यसे युक्त रथ ( नः द्विपदे चतुष्पदे शं आवक्षत् ) हमारे दुपाये और चोपायोंके लिए सुख लेकर आवे ॥ ३ ॥

[ १७६१ ] हे सोम ! ( ते असश्चतः धाराः ) तेरी न बन्द होनेवाली धारायें ( सहस्रिणं वाजं अच्छ प्रयन्ति ) हजारों तरहके अश्व हमें देती हैं। ( दिवः वृष्टयः न ) जैसे छुलोकसे वृष्टि होती है, उसीप्रकार तेरी धारायें हम पर अन्नकी वृष्टि करती हैं ॥ १ ॥

[ १७६२ ] ( हरिः ) हरे रंगका सोम ( विश्वा प्रियाणि काव्या चक्षाणः ) सब प्रिय कर्मोंको देखते हुए ( आयुधा तुंजानः ) आयुधोंको शत्रुओंपर फेंकते हुए ( अभ्यर्षति ) आगे जाता है ॥ २ ॥

[ १७६३ ] ( सुव्रतः सः ) उत्तम कर्म करनेवाला वह सोम ( आयुभिः मर्मृजानः इभः राजा इव ) ऋत्विजों द्वारा जुद्ध होता हुआ निर्भीक राजाके समान वीर्यता है और ( श्येनः न ) श्येन पक्षीके समान ( वंसु वीदति ) पानीमें निलाया जाता है ॥ ३ ॥



१७६४ स नो विश्वा दिवो वसुतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्द्रवा भर ॥ ४ ॥ १८ ( ती ) ॥  
[ धा० १४ । उ० १ । ख० ४ ] ( ऋ. ९।९।७।४ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

॥ इति अष्टमप्रपाठके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ अष्टमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

[ १७६४ ] हे ( इन्द्रो ) सोम ! ( पुनानः ) शुद्ध होनेवाला ( सः ) वह तू ( दिवः अधि ) छलोकमें ( उत पृथिव्याः ) और पृथिवीपर रहकर ( विश्वा वसु नः आभर ) सब धन हमें भरपूर दे ॥ ४ ॥

॥ यहां पांचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥

## एकोनविंश अध्याय

इस अध्यायमें उषा, अश्विनौ, इन्द्र और सोम देवताओंका वर्णन है । उनमेंसे उषा देवताका वर्णन इस प्रकार है—

### उषा देवता

१ स्या सूनरी दिवः दुहिता प्रत्यदर्शि, जनी स्वसुः परिव्युच्छन्ती [ १७२५ ]— वह उषा उत्तम प्रेरणा करनेवाली सूर्यकी पुत्री बीखने लग गई है, उसके प्रकाशकी पैदा करनेवाली रात्रोरूपी बहिन बावमें चारों ओरसे प्रकाशित होती है ।

२ अश्वा इष चित्रा, अरुषी गवां माता, ऋतावरी उषा अश्विनोः सखा अभूत् [ १७२६ ]— घोड़ोंके समान सुन्दर, बमकनेवाली किरणोंकी माता, यज्ञकी प्रेरक उषा अश्विनोके मित्रके समान हो गई है । अश्विनौ प्रातःकाल बीखते हैं, इसलिए उषा उनकी मित्र है ।

३ हे उषः ! वरुष ईशिषे [ १७२७ ]— हे उषे ! तू जनकी स्वामिनी है ।

४ गवां माता असि [ १७२७ ]— प्रकाश किरणोंकी उत्पन्न करनेवाली उनकी माता है ।

५ एषा प्रिया अपूर्व्या उषा दिवः व्युच्छति [ १७२८ ]

यह प्रिय अपूर्व उषा छलोकको प्रकाशित करती है ।

६ वाजिनीवति उषः ! अस्मभ्यं तत् चित्रं आ भर येन तोकं तनयं च धामहे [ १७३१ ]— हे अन्न पासमें

रखनेवाली उषे ! हमें वह श्रेष्ठ धन दे, जिसकी सहायतासे हम पुत्रपौत्रोंका उत्तम पोषण कर सकें ।

७ अश्वावति गोमति सूनृतावति विभावरि उषः ! अद्य इह अस्मे रेवत् व्युच्छ [ १७३२ ]— हे घोड़े और गायोंसे युक्त, यज्ञ करनेवाली प्रकाशमान् उषे ! आज यहां हमें धनसे युक्त करके प्रकाशित कर ।

८ हे वाजिनीवति उषः ! अरुणान् अश्वान् अद्य युंक्ष्व, विश्वा सौभगानि नः आ वह [ १७३३ ]— हे अन्नको अपने पास रखनेवाली उषे ! अपने रथमें लाल रंगके घोड़े जोड़ और सब सौभाग्य हमें दे ।

९ हे सुजाते अश्व सूनृते ! दिवित्मती नः महे राये बोधय यथा चित् नः अबोधयः [ १७४० ]— हे उत्तम कुलमें जन्म लेनेवाली, आज यज्ञको शुरू करनेवाली उषे ! तू प्रकाशयुक्त होकर हमें बहुत धन प्राप्त करनेका मार्ग बता, जैसा कि तूने पहले भी बताया था ।

१० हे दिवः दुहितः ! सा आभरद् वसु नः अद्य व्युच्छ [ १७४२ ]— हे छलोककी पुत्री उषे ! तू भरपूर धन देनेवाली होकर हमारे लिए प्रकाश दे ।

११ ज्योतिषां इदं श्रेष्ठं ज्योतिः आगात्, चित्रः प्रकेतः विश्वा अजनिष्ट [ १७४९ ]— तेजस्वी पदार्थोंमें विशेष तेजवाली उषा उदय होगई है, उसका प्रकाश सब जगहपर फैल गया है ।



१२ उषसां अनीकं अग्निः आभाति, विप्राणां देवया घाच्चः उदस्थुः [१७५२]- उषाका मुखरूपी अग्नि प्रदीप्त हो गया है, ब्राह्मणोंका विषय मंत्र घोष शुरू हो गया है।

१३ स्या एताः उषसः केतुं अकृत, रजसः पूर्वे अर्धे भ्राजुं अंजते, निष्कृण्वानाः मातरः उषसः प्रति यन्ति [ १७५५ ]- वह यह उषाका प्रकाश फैल रहा है अन्तरिक्षकी पूर्व दिशाके अर्धमें प्रकाश हो गया है। अपने प्रकाशसे जगत्को प्रकाशित करते हुए यह माता उषा प्रतिबिम्ब आती है।

उषा सूर्यकी अथवा छलोककी पुत्री है। उसकी बहिन रात्री है। ये दोनों क्रमशः एकके पीछे दूसरी आती हैं। उषा बीखनेमें सुन्दर है, क्योंकि वह प्रकाशवाली है। प्रकाशके किरणोंकी यह माता है। उषासे ही प्रकाशकी किरणें निकलती हैं। आकाशकी पूर्व दिशाके आगे भागमें उसका लाल प्रकाश बीखने लगता है। वह उषा ही होती है। यज्ञ करनेवाले हविर्ब्रह्म और अन्न लेकर अग्निकी सेवा करनेके लिए तैय्यार होते हैं, उस समय उषःकाल होता है।

उषःकाल होते ही गाय और घोड़े चरनेके लिए छोड़ दिए जाते हैं। यज्ञशालामें याजक यज्ञ करनेकी तैय्यारी करते हैं, वेवपाठियोंका वेवपाठ शुरू हो जाता है। अग्नि प्रदीप्त किया जाता है और हवन प्रारम्भ होते हैं।

यह सुन्दर वर्णन उषाका इन मंत्रोंमें आया है। उषःकालमें अश्विनौ (नक्षत्र) उदय होते हैं, इसलिए उषाको अश्विनौकी सहेली बताया है।

### अश्विनौ

१ उक्षा सिन्धु मातरा रथीनां मनोतरा धिया वसुधिदा [ १७२९ ]- ये अश्विनौ देव शत्रुका नाश करनेवाले, नवियोंको उत्पन्न करनेवाले और बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवालोंको धन देनेवाले हैं।

२ घां रथः जूर्णायां अधि विष्टुपि, यत् विभिः पतात् घां ककुहासः घञ्यन्ते [ १७३० ]- तुम्हारे रथ प्रशंसनीय अन्तरिक्षमें जब पक्षियों द्वारा ले जाये जाते हैं, उस समय तुम्हारे लिए स्तोत्र कहे जाते हैं।

३ हे अश्विना ! दक्षा अस्मत् वर्तिः आ । गोमत् हिरण्यवत् रथं समनसा अर्वाक् नि यच्छतम् [ १७३४ ]- हे अश्विनौ ! शत्रुका नाश करनेवाले तुम हमारी यज्ञशालाकी ओर आओ। गाय और सोनेसे युक्त अपने रथको बुद्धिपूर्वक हमारे पास ले आओ।

४५ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

४ हे अश्विना ! यौ दिवः श्लोकं ज्योतिः इत्था जनाय चक्रतुः, युवं न ऊर्जं आवहतम् [ १७३६ ]- हे अश्विनौ ! जो तुम आकाशसे प्रशंसनीय प्रकाशको इस प्रकार लोगोंके हितके लिए लाते हो, ऐसे तुम हमें बल बढ़ानेवाले अन्न दो।

५ हे दक्षा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी ! मम हवं श्रुतं [ १७४४ ]- हे शत्रुके नाश करनेवाले, सोनेके रथमें बैठनेवाले, उत्तम धन पासमें रखनेवाले, नवियोंसे जानेवाले और मधु विद्याको जाननेवाले अश्विनौ देवो ! हमारी प्रार्थना सुनो।

६ हे अश्विना ! रुद्रा हिरण्यवर्तनी वाजिनीवसू जुषाणा युवं आगच्छतम् [ १७४५ ]- हे अश्विनौ देवो ! तुम शत्रुको रलानेवाले, सोनेके रथ पर बैठनेवाले, अन्न और धन पासमें रखनेवाले और यज्ञमें आनेवाले हो। तुम हमारे यज्ञमें आओ।

७ दिवाभिपित्वे अवसा अवर्ति प्रत्यागमिष्ठा, दाशुपे शंभविष्ठा [ १७५३ ]- दिनके प्रारम्भ होते ही अन्नके साथ तुम आते हो। इसलिए दान देनेवालोंको सुख देनेवाले तुम होओ।

८ हे अश्विना ! अह्ना सम्भवे प्रातः दिवा नक्तं शंतमेन अवसा आयातं [ १७५४ ]- हे अश्विदेवो ! दिनमें गाय बुहनेके समय प्रातःकाल विनरात सुख देनेवाले संरक्षणके साधनोंके साथ आओ।

९ अश्विनोः रथः अर्वाक् यातु, त्रिचक्रः मधुवाहनः जीराश्वः सुष्टुतः, त्रिबन्धुरः, मघवा, विश्वसौभगः नः द्विपदे चतुष्पदे शं आवक्षत् [ १७६० ]- अश्विनौका रथ हमारे पास आवे। तीन पहियोंवाला, मीठे रसको धारण करनेवाला, तेज बौड़नेवाले घोड़ोंसे युक्त, जिसकी उत्तम प्रशंसा होती है, ऐसे तीन बैठकोंवाला, धनसे भरा हुआ, सब सौभाग्यसे युक्त रथ हमारे द्विपाद और चौपायोंको सुख देवे।

अश्विनौ शत्रुओंका वध करते हैं, धन देते हैं, मन लगाकर कार्य करनेवालोंको ऐश्वर्य देते हैं। उनका विमान अन्तरिक्षमें भी जाता है, उस समय उस रथमें पक्षी जोड़े जाते हैं। गोरस-घी और दूध तथा सोना इनके रथमें होता है। लोगोंके बल बढ़ानेवाले पदार्थ इनके रथमें होते हैं। इनका यह रथ सोनेका अर्थात् सोनेसे मठा हुआ है। अपने पराक्रमसे शत्रुओंको हलाते हैं, अन्न और धनको अपने रथमें रखते हैं। ये



सबरे गाय दुहनेके समय बिनरात अपने कल्याण करनेके साधनोंके साथ रोगियोंके पास जाते हैं और उनका इलाज करते हैं। इनके रथमें तीन पहिए और तीन बैठनेके स्थान हैं। इनके पास सबके आरोग्य बढ़ानेके साधन हैं।

### अग्नि

१ ऊर्जो-न-पातं पावकशोचिषं अग्निं अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे आहुवे [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाले, प्रकाशसे युक्त अग्निको उत्तम हिसारहित यज्ञमें हम बुलाते हैं।

२ मित्रमहः अग्ने ! शुक्रेण शोचिषा देवैः बर्हिषि आसत्सि [ १७१३ ]- हे मित्रोंके द्वारा पूज्य अग्ने ! वह तू शुद्ध ज्वालाओंसे युक्त होकर देवोंको अपने साथ लेकर आसन पर बैठ।

३ यः वसुः । अस्तं यं धेनवः यग्नि, अस्तं आशवः अर्वन्तः [ १७१७ ]- अग्नि सबको बसानेवाला है, उसके आश्रयमें गायें रहती हैं और उसके आश्रयमें घोड़े भी रहते हैं।

४ विश्वचर्षणिः अग्निः प्रीतः स्वाभुवं वार्यं राये याति [ १७३८ ]- सब लोगोंका कल्याण करनेवाला अग्नि प्रसन्न होकर खनखन करनेवाले धन देनेके लिए यज्ञमें जाता है।

५ अग्निः जनानां समिधा अबोधि [ १७४६ ]- अग्नि याजकोंकी समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ है।

६ आयतीं उषासं प्रति भानवः वयां प्रोज्जिहाना यद्वाः इव नाकं अच्छ प्र सस्त्रते [ १७४६ ]- आनेवाले उषःकालमें अग्नि, जिसप्रकार पेड़ अपनी डालियोंको आकाशमें फैलाता है, उसीप्रकार अपनी ज्वालाओंको अन्तरिक्षमें फैलाता है। अग्निके जलते ही उसकी ज्वालायें, वृक्षकी शाखाओंके समान, अन्तरिक्षमें फैलती हैं।

७ अग्निः देवान् यजथाय अबोधि । प्रातः सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात् । समिद्धस्य रुशत् पाजः अदर्शि । महान् देवः तमसः निरमोचि [ १७४७ ]- अग्नि देवोंकी पूजा करनेके लिए प्रदीप्त हुआ है। सबरे सबरे उत्तम मनसे ऊपर उठा है। प्रज्वलित हुए हुए अग्निका तेजस्वी बल देखने लग गया है। यह महान् देव जगत्को अन्धकारसे मुक्त करता है।

८ शुचिः अग्निः शुचिभिः गोभिः अंकते [ १७४८ ]- शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंसे जगत्को प्रकाशित करता है।

९ अग्निः उमः अबोधि [ १७५८ ]- अग्नि वेदीमें प्रज्वलित हो गया है।

अग्नि बल कम न करनेवाला है। शरीरमें अग्नि उष्णताके रूपमें रहता है। उसके रहने तक ही शरीरमें बल बढ़ाता है। जीवन एक यज्ञ है उस जीवन यज्ञका आधार शरीरकी उष्णता है। सब इन्द्रियोंमें देवोंके अंश रहते हैं। उन देवोंके साथ अग्नि यहां रहता है, और शरीर चलता है। शरीरमें गर्मी कम हुई कि देव निकल जाते हैं और शरीर कार्य करनेमें असमर्थ हो जाता है।

यह अग्नि सब शक्तियोंका निवासक है। उसमें गायका वृष और घीका हवन होता है। दूसरे हवनीय पदार्थ भी हवनके लिए लाये जाते हैं। सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला अग्नि है।

यह अग्नि समिधाओंसे जलाया जाता है और बाबमें उसमें हव्य पदार्थोंका हवन किया जाता है। यज्ञ स्थानमें सबरे सबरे अग्नि प्रदीप्त किया जाता है। वह प्रदीप्त होते ही अपनी ज्वालायें अन्तरिक्षमें फैलाने लगता है।

अग्नि महान् देव है। वह अन्धकार दूर करता है और प्रकाश फैलाता है। अपने प्रकाशसे सब जगह शुद्धता करके सब मनुष्योंका कल्याण करता है।

### इन्द्र

१ हे इन्द्र ! मन्द्रैः मयूर रोमभिः हरिभिः आयाहि [ १७१८ ]- हे इन्द्र ! आनन्द देनेवाले मोरके पंखके समान रंगवाले बालोंसे युक्त घोड़ोंके द्वारा तू यहां आ।

२ केचित् त्वा मा नियेमुः धन्वेव तान् अति इहि [ १७१८ ]- कोई भी तुझे बीचमें न रोके, जैसे मनुष्य रेगिस्तानको जल्दीसे पार कर जाता है, उसीप्रकार तू भी उन्हें शीघ्रतासे पार करके आ।

३ इन्द्रः वृत्रखादः, वलं रुजः, पुरां दर्मः, दृढाचित् आरुजः, हर्योः अभिस्वरे रथस्य स्थाता [ १७१९ ]- इन्द्र वृत्रका नाशक, बल राक्षसका विनाशक, शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला, मजबूत शत्रुओंको हरानेवाला और घोड़ोंके रथमें बैठनेवाला है।

४ क्रतुं पुष्यसि, सुगोपाः [ १७२० ]- तू यज्ञका पोषण करता है और तू गायोंका उत्तम पालन करनेवाला है।

५ हे मघवन् ! हे इन्द्र ! त्वत् अन्यः मर्दिता नास्ति [ १७२३ ]- हे धनवान् इन्द्र ! तेरे बिना सुख देनेवाला दूसरा और कोई नहीं है।

६ हे वसो ! ते राधांसि अस्मान् कदाचन मा दधन् [ १७२४ ]- तेरे धन हमें कभी भी नष्ट न करें।



७ ते ऊतयः मा दभन् [ १७२४ ]- तेरे संरक्षणके साधन हमारा नाश न करें ।

८ नः चर्षणिभ्यः विश्वा वसूनि आ उप मिमीहि [ १७२४ ]- हमारी प्रजाओंको सब धन भरपूर लाकर दे ।

इन्द्र सुन्दर अयालसे युक्त घोड़ोंवाले रथमें बैठकर यज्ञके स्थान पर आता है । इन्द्र वृत्रका वध करता है, बल राक्षसको मारता है । शत्रुके नगरोंको तोड़ता है । जो सामर्थ्यवान् शत्रु हैं उन्हें वह हराता है । गाय और घोड़ोंका पालन करता है । इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई भी सुख देनेवाला नहीं । इन्द्र लोगोंको अनेक प्रकारके धन देता है और उन्हें बड़ा बनाता है । सबका वह संरक्षण करता है और सबको निर्भय बनाता है । इस प्रकार वह सब लोगोंका कल्याण करता है ।

### सोम

१ हे अद्रिवः सोम ! ते शुष्मासः रक्षः भिन्दन्तः उदस्थुः, याः स्पृधः जुदस्व [ १७१४ ]- हे पत्थरोंसे कूटे जानेवाले सोम ! तेरे सामर्थ्य राक्षसोंका नाश करते हुए ऊपर प्रकट होते हैं । मुकाबला करनेवाले जो शत्रु हैं उन्हें दूर कर ।

२ अया ओजसा निजघ्निः, अविभ्युषा हृदा रथसंगे हिते धने स्तवै [ १७१५ ]- जिस अपने बलसे तू शत्रुओंका नाश करता है, उस बलको निर्भय हृदयसे रथके युद्धमें शत्रुको नष्ट करनेके बाव प्राप्त करनेके लिए मैं तेरी स्तुति करता हूँ ।

३ पवमानस्य अस्य व्रतानि दूढ्या न आधृषे, यः त्वा पृतन्याति, रुज [ १७१६ ]- इस छाने जानेवाले सोमके कर्मोंसे बुष्ट राक्षस प्रगति नहीं कर सकते । हे सोम ! जो तुझ पर सेना भेजनेकी इच्छा करता है उसका नाश कर ।

४ मदच्युतं हरिं वाजिनं मत्सरं तं इन्दुं नदीषु इन्द्राय [ १७१७ ]- आनन्द देनेवाले हरे रंगके, बल बढ़ानेवाले और उत्साह बढ़ानेवाले, चमकनेवाले सोमको नदीके पानीमें मिलाओ और वह इस इन्द्रको दो ।

५ ते असदचतः धाराः सहस्रिणं वाजं अच्छ प्रयन्ति [ १७१८ ]- तेरी न यमती हुई बहनेवाली धारा हजारों प्रकारके अन्न हमें देती है ।

६ हरिः विश्वा प्रियाणि काव्या चक्षाणः, आयुधा तुजानः अभ्यर्षति [ १७१९ ]- हरे रंगका सोम सर्व प्रिय यज्ञ कर्मको देखता हुआ, स्तुति सुनता हुआ और शस्त्रोंको शत्रु पर फेंकता हुआ आगे जाता है ।

\*

७ सुवतः सः आयुभिः मर्मजानः इभः राजा इव वंसु सीदति [ १७२३ ]- उत्तम कर्म करनेवाला वह सोम ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध होता हुआ राजाके समान दीखता है, बादमें वह पानीमें मिलाया जाता है ।

८ हे इन्दो ! पुनानः दिवः अधि उत पृथिव्याः विश्वा वसु नः आभर [ १७२४ ]- हे सोम ! शुद्ध होता हुआ तू छुलोक और पृथ्वीलोक पर रहकर सब धन हमें भरपूर दे ।

सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है, फिर उसका रस निकाला जाता है । उस समय उसका प्रकाश बाहर पड़ता है और उससे अन्धकार दूर होता है । यह सोम अपने सामर्थ्यसे वीरोंमें अपरिमित उत्साह उत्पन्न करता है । उसके द्वारा सब शत्रुओंको दूर करता है । द्वेष करनेवालोंका नाश करता है ।

सोमरसको पानीमें मिलाते हैं । इसकी धारा अनेक प्रकारसे अन्न देती है । सोमरस अन्नका काम देता है । क्षत्रिय वीर इसे पीते हैं और उत्साहित होकर शत्रुसे युद्ध करते हैं और अन्तमें विजयी होते हैं । सोमरसको पानीमें मिलानेके बाद छानते हैं । ऐसा तैय्यार किया गया रस पृथ्वीपरके सब ऐश्वर्य देनेमें समर्थ है ।

“ सोम स्वयं शत्रुपर शस्त्र फेंकता है ” ऐसा वर्णन आलंकारिक है । वीर सोमरस पीकर उत्साहित होकर शत्रु पर शस्त्र फेंकते हैं और विजय प्राप्त करते हैं । सोमका यह आलंकारिक वर्णन समझना चाहिए, नहीं तो अर्थका अनर्थ होना सम्भव है ।

### सुभाषित

१ कविः अग्निः प्रत्नेन जन्मना स्वां तन्वं शुम्भानः विप्रेण वावृधे [ १७११ ]- ज्ञानी अग्नि पुराने स्तोत्रोंसे अपने शरीरकी शोभा बढ़ाता हुआ ब्राह्मणोंके द्वारा की गई स्तुतियोंसे बढ़ता है । ब्राह्मण अग्निको प्रदीप्त करते हैं और स्तोत्र बोलकर हवनके द्वारा उसे बढ़ाते हैं ।

ज्ञानी पुरुष अपने शरीरकी सुन्दर बनाकर ज्ञानसे अपनेको बढ़ाता है ।

२ ऊर्जः नपातं पावकशोचिषं अग्निं अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे आधुवे [ १७१२ ]- बल कम न करनेवाले,



पवित्र प्रकाशसे युक्त अग्निको इस उत्तम यज्ञमें मैं बुलाता हूँ । बल बढ़ानेवाले वीरको अपनी सहायताके लिए बुलाना चाहिए ।

३ मित्रमहः शुक्रेण शोचिषा देवैः बर्हिषि आसत्सि [ १७१३ ]- मित्रके द्वारा पूज्य तू अपने तेजसे देवोंके साथ आसन पर बैठ । मित्रों द्वारा आवर प्राप्त करें, तेजस्वी हों, और श्रेष्ठके साथ सभामें बैठें ।

४ ते शुष्मासः रक्षः भिन्दन्तः उदस्थुः । याः स्पृधः नुदस्व [ १७१४ ]- तेरे बल राक्षसोंको नष्ट करते हुए प्रकट होते हैं और जो स्पर्धा करनेवाले हैं उन्हें दूर कर ।

५ अया ओजसा निजघ्निः [ १७१५ ]- तू इस बलसे शत्रुओंका नाश करता है ।

६ अविभ्युषा हृदा रथसंगे हिते [ १७१५ ]- निर्भय हृदयसे रथ युद्धमें शत्रुओंको नष्ट कर ।

७ अस्य व्रतानि दूद्धा न आधृषे [ १७१६ ]- इसके नियम दुष्टोंको आगे नहीं होने देते ।

८ यः त्वा पृतन्यति, रुज [ १७१६ ]- जो तुझ पर सेना भेजता है, उसका नाश कर ।

९ केचित् त्वा मा नियेमुः [ १७१८ ]- कोई भी तुझे रोक नहीं सकता ।

१० इन्द्रः वृत्रखादः वलं रुजः पुरां दर्मः अपां अजः हयोः अभिस्वरे रथस्य स्थाता दृढाचित् आरुजः [ १७१९ ]- इन्द्र वृत्रका नाश करनेवाला, बल राक्षसको छिन्नभिन्न करनेवाला, शत्रुके नगरोंको तोड़नेवाला, वृष्टि गिरानेवाला, घोड़ोंकी स्पर्धामें अपना रथ आगे रखनेवाला, बलवान् शत्रुको हरानेवाला है । इन्द्रके ये गुण वीरों द्वारा ग्रहण करने योग्य हैं ।

११ क्रतुं पुष्यसि [ १७२० ]- कर्मशक्तिका पोषण करता है ।

१२ सुगोपाः गाः इव [ १७२० ]- गायोंकी उत्तम रक्षा करनेवाला गायोंका पालन करता है । उसीप्रकार तुम भी करो ।

१३ हे इन्द्र मघवन् ! सुन्वते राधः देयाय इन्दवः त्वा मन्दन्तु [ १७२२ ]- हे धनवान् इन्द्र ! सोमयाग करनेवालेको धन देनेके लिए सोमरस तुम्हें आनन्दित करें ।

१४ तत् उयेष्टं सहः दधिषे [ १७२२ ]- उन श्रेष्ठ बलोंको तू अपने अन्तर धारण करता है ।

१५ हे मघवन् इन्द्र ! त्वद् अन्यः मर्दिता न अस्ति

[ १७२३ ]- हे धनवान् इन्द्र ! तेरे सिवाय दूसरा सुख देनेवाला कोई नहीं है ।

१६ हे वसो ! ते राधांसि अस्मान् कदाचन मा दधन् [ १७२४ ]- हे निवासक इन्द्र ! तेरे द्वारा दिए गए धन हमें कभी भी नष्ट न करें ।

१७ ते ऊतयः मा दधन् [ १७२४ ]- तेरे संरक्षण हमें नष्ट न करें ।

१८ हे मानुष ! नः चर्षणिभ्यः विश्वा वसूनि आ उपमिमीहि [ १७२४ ] हे मनुष्योंके हित करनेवाले इन्द्र ! हमारी प्रजाओंको हर प्रकारका धन तू दे ।

१९ गवां माता असि [ १७२७ ]- तू गायोंका पालन करनेवाली माता है ।

२० या देवा दक्ष्मा सिन्धु मातरा रयीणां मनोतरा धिया वसुविदा [ १७२९ ]- ये अश्विनी देव शत्रुओंका नाश करनेवाले, नदियां उत्पन्न करनेवाले, धन देनेवाले और बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालोंको धन देनेवाले हैं ।

२१ हे उषः ! अस्मभ्यं तत् चित्रं आभर, येन तोकं तनयं च धामहे [ १७३१ ]- हे उषे ! हमें वे उत्कृष्ट धन भरपूर दे, जिससे पुत्र और पौत्रोंका पोषण हम कर सकें ।

२२ हे गोमति अश्वावति सृनुतावति विभावति उषः ! अद्य इह अस्मे रेवत् व्युच्छ [ १७३२ ]- हे गाय और घोड़ोंसे युक्त तेजस्विनी उषे ! आज यहां हमें तू धनसे युक्त करके प्रकाशित हो ।

उषःकालमें गाय और घोड़ोंको घरानेके लिए छोड़ देते हैं, इस कारण उषा गाय और घोड़ोंसे युक्त दिखाई देती है ।

२३ वाजिनीवति उषः ! अरुणान् अश्वान् अद्य युंश्च, विश्वा सौभगानि नः आ वद्ध [ १७३३ ]- हे अन्न युक्त उषे ! अपने लाल रंगके घोड़ोंको आज जोड़ और सब सौभाग्य हमें दे ।

उषाके लाल रंगके घोड़ेका अर्थ है लाल रंगकी किरणें । “ वाजिनीवति ” का अर्थ है हविर्द्रव्य अथवा अन्नसे युक्त । उषःकालमें हवन शुरु होते हैं, इसलिए उस समय अन्न तैय्यार होता है ।

२४ हे अश्विना ! दक्ष्मा अस्मत् घर्त्तिः आ गोमत् हिरण्यवत् रथं समनसा अर्वाक् नियच्छतम् [ १७३४ ]- हे अश्विदेवो ! शत्रुओंके नाश करनेवाले तुम हमारे घरकी ओर आओ । गाय और सोनेसे युक्त अपने रथको बुद्धिपूर्वक हमारे पास लाओ ।



२५ हे अश्विना ! नः ऊर्जं आवहन्तं [ १७३६ ]- हे अश्विवेदो ! हमें बल बढ़ानेवाले अन्न दो ।

२६ तं अग्निं मन्ये यः वसुः, अकतं यं धेनवः यन्ति, अस्तं यं आशवः अर्वन्तः [ १७३७ ]- उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ, जिसके आश्वयमें गायें जाती हैं, जिसके आश्वयमें घोड़े जाते हैं ।

२७ अग्निः हि विशे वाजिनं ददाति [ १७३८ ]- अग्नि निश्चयसे मनुष्योंको पुत्र देता है ।

२८ विश्वचर्षणिः अग्निः प्रीतः स्वाभुवं वार्यं रागे याति [ १७३८ ]- सब मनुष्योंका कल्याण करनेवाला अग्नि सन्तुष्ट होनेपर स्वयं ही खनखन करनेवाले धन देनेके लिए जाता है ।

२९ सः अग्निः वसुः [ १७३९ ]- वह अग्नि सबको बसानेवाला है ।

३० हे उषः ! दिवित्मती नः महे राये बोधय [ १७४० ]- हे उषे ! तू प्रकाश युक्त होकर हमें बहुत धन मिले इसलिए हमें जाग्रत कर ।

३१ सु-जाते ! अश्वसूनुते ! यथा चित् नो अबोधयः [ १७४० ]- हे उत्तम कुलीन और आज सत्य बोलनेवाली उषे ! जिसप्रकार पहले भी तूने जगाया वैसे ही अब जगा !

३२ हे दिवः दुहितः सा अमरद्वसु ! नः अद्य व्युच्छ [ १७४२ ]- हे धूलोककी पुत्री और भरपूर धन देनेवाली उषे ! हमारे लिए आज प्रकाशित हो ।

३३ अहं विश्वा सना तिरः [ १७४४ ]- मैं सब विरोधियोंका पराभव करता हूँ ।

३४ अग्निः जनानां समिधा अबोधि [ १७४५ ]- अग्नि लोगोंकी समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ है ।

३५ आयतीं उषासं प्राति भानवः नाकं अच्छ प्रसस्रते [ १७४६ ]- आनेवाली उषःकालकी किरणें अन्तरिक्षमें उत्तम रीतिसे फैलती हैं ।

३६ होता अग्निः प्रातः सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात् [ १७४७ ]- हवन जिसमें होते हैं ऐसा अग्नि प्रातःकाल उत्तम मनसे ऊपर उठने लगता है, जलने लगता है ।

३७ समिद्धस्य रुशत् पाजः अदर्शि, महान् देवः तमसा निरमोचि [ १७४७ ]- प्रदीप्त हुए हुए अग्निका बल बीखने लगा है, उस महान् देवने जगत्को अन्धकारसे छुड़ा दिया है ।

३८ यत् गणस्य रशनां अजीगः, शुचिः अग्निः, शुचिभिः गोभिः अंकते [ १७४८ ]- जब समुदायमें बिज्ज डालनेवाला अन्धेरा दूर हो गया, तब तेजस्वी शुद्ध अग्नि शुद्ध किरणोंसे जगत्को प्रकाशित करने लगा ।

३९ ज्योतिषां इदं श्रेष्ठं ज्योतिः आगात्, चित्रः प्रकेतः विश्वा अजनिष्ट [ १७४९ ]- तेजस्वी पदार्थोंमें यह उषा सर्वाधिक तेजस्वी है, उसका प्रकाश चारों ओर फैला है ।

४० अस्माकं पृतनासु ब्रह्म जिन्वतं [ १७५१ ]- हममें ज्ञान बढ़ा ।

४१ वयं शूरसातौ धना भजेमहि [ १७५१ ]- हम युद्धमें धन प्राप्त करें ।

४२ आयुधा तुज्जानः अभ्यर्षति [ १७६२ ]- वह वीर शस्त्र शत्रुपर फेंकता हुआ आगे जाता है ।

४३ पुनानः विश्वावसु नः आभर [ १७६४ ]- पवित्र होकर सब धन हमें भरपूर दे ।

## उपमा

१ पाशिनः न [ १७१८ ]- जाल फैलानेवाले शिकारी जैसे पक्षियोंको पकड़ते हैं, उसप्रकार इन्द्रको कोई पकड़ नहीं सकता ।

२ सुगोपाः गाः इव [ १७२० ]- उत्तम गोपाल गायोंका जिसप्रकार पालन करता है, उसीप्रकार इन्द्र ( क्रतुं पुष्यसि ) यज्ञका पोषण करता है ।

३ यथा धेनवः यवसं प्र [ १७२० ]- जिसप्रकार गायें घास खाती हैं, उसीप्रकार इन्द्र सोमरस प्राप्त करता है ।

४ कुल्या हवं इव [ १७२० ]- जैसे नदियां तालाब व समुद्रमें जाकर मिलती हैं, वैसे ही सोमरस इन्द्रको मिलते हैं ।

५ गौरः तृष्यत् यथा अपाकृतं हरिणं [ १७२१ ]- जैसे प्यासा मृग पानीसे भरे तालाबके पास जाता है, वैसे ही ( तूयं आगाहि कण्वेषु सचा सु पिब ) हे इन्द्र ! तू जल्दी आ और कण्वके यज्ञमें बैठकर सबके साथ सोम पी ।

६ अश्व आ इव चित्रा [ १७२६ ]- घोड़ीके समान सुन्दर ( अरुषी उषा ) तेजस्वी उषा है ।

७ धेनुं इव [ १७४६ ]- गायें जैसे सबेरे जागती हैं, वैसे ही ( अग्निः जनानां समिधा अबोधि ) अग्नि लोगोंकी समिधाओंसे सबेरे प्रदीप्त किया गया है ।



८ नाकं यक्षाः यथां प्रोज्झिहानाः इव [ १७४६ ]-  
अन्तरिक्षमें जैसे बुझकी शाखायें फैलती हैं, उसीप्रकार  
( अग्निः भानवः ) अग्नि अपनी ज्वालाओंको आकाशमें  
फैलाता है ।

९ अपसः न [ १७५७ ]- युद्ध करनेवाले वीर जिस-  
प्रकार शस्त्रोंसे रणभूमिको सुशोभित करते हैं, उसीप्रकार  
( विष्टिभिः नारीः आ अर्चन्ति ) किरणोंसे उबारूपी  
स्त्रियां आकाशको सुन्दर बनाती हैं ।

१० दिवः वृष्टयः न [ १७६१ ]- जिसप्रकार बुलोकसे  
वृष्टि होती है, ( धाराः वाजं प्रयन्ति ) उसीप्रकार सोमरसकी  
धारायें अन्न देती हैं ।

११ राजा इव [ १७६३ ]- राजाके समान ( मर्मु-  
जानः ) शूद्र होनेवाला सोम बीखता है ।

१२ इयेनः न [ १७६३ ]- इयेन पक्षीके समान ( घंसु  
सीदति ) सोम पानीमें बँडता है, बुझकी मारता है । पानीमें  
मिलाया जाता है ।

## एकोनविंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थान | ऋषिः                | देवता       | छन्दः                                    |
|-------------|-------------|---------------------|-------------|--|
| ( १ )       |             |                     |             |  |
| १७११        | ८।४४।१२     | विरूप आंगिरसः       | अग्निः      | गायत्री                                  |
| १७१२        | ८।४४।१३     | विरूप आंगिरसः       | "           | "  |
| १७१३        | ८।४४।१४     | विरूप आंगिरसः       | "           | "  |
| १७१४        | ९।५३।१      | अबत्सारः काश्यपः    | पबमानः सोमः | "  |
| १७१५        | ९।५३।२      | अबत्सारः काश्यपः    | "           | "  |
| १७१६        | ९।५३।३      | अबत्सारः काश्यपः    | "           | "  |
| १७१७        | ९।५३।४      | अबत्सारः काश्यपः    | "           | "  |
| १७१८        | १।४५।१      | विश्वामित्रो गाविमः | इन्द्रः     | त्रिष्टुप्                               |
| १७१९        | १।४५।२      | विश्वामित्रो गाविमः | "           | "  |
| १७२०        | १।४५।३      | विश्वामित्रो गाविमः | "           | "  |
| १७२१        | ८।४।३       | देवातिथिः काण्वः    | "           | प्रगाथः=( विबमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १७२२        | ८।४।४       | देवातिथिः काण्वः    | "           | "  |
| १७२३        | १।८४।१९     | गोतमो राहूगणः       | "           | "  |
| १७२४        | १।८४।२०     | गोतमो राहूगणः       | "           | "  |
| [ २ ]       |             |                     |             |  |
| १७२५        | ४।५२।१      | वामदेवो गौतमः       | उषाः        | गायत्री                                  |
| १७२६        | ४।५२।२      | वामदेवो गौतमः       | "           | "  |
| १७२७        | ४।५२।३      | वामदेवो गौतमः       | "           | "  |
| १७२८        | १।४६।१      | प्रस्कण्वः काण्वः   | अश्विनो     | "  |
| १७२९        | १।४६।२      | प्रस्कण्वः काण्वः   | "           | "  |
| १७३०        | १।४६।३      | प्रस्कण्वः काण्वः   | "           | "  |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋविः          | देवता   | छन्दः   |
|-------------|--------------|---------------|---------|---------|
| १७३१        | १।९२।१३      | गोतमो राहूगणः | उषाः    | उष्णिह् |
| १७३२        | १।९२।१४      | गोतमो राहूगणः | "       | "       |
| १७३३        | १।९२।१५      | गोतमो राहूगणः | "       | "       |
| १७३४        | १।९२।१६      | गोतमो राहूगणः | अश्विनौ | "       |
| १७३५        | १।९२।१८      | गोतमो राहूगणः | "       | "       |
| १७३६        | १।९२।१७      | गोतमो राहूगणः | "       | "       |

( ३ )

|      |        |                   |         |          |
|------|--------|-------------------|---------|----------|
| १७३७ | ५।६।१  | वसुधुत आत्रेयः    | अग्निः  | पङ्क्तिः |
| १७३८ | ५।६।३  | वसुधुत आत्रेयः    | "       | "        |
| १७३९ | ५।६।२  | वसुधुत आत्रेयः    | "       | "        |
| १७४० | ५।७९।१ | सत्यश्रवा आत्रेयः | उषाः    | "        |
| १७४१ | ५।७९।२ | सत्यश्रवा आत्रेयः | "       | "        |
| १७४२ | ५।७९।३ | सत्यश्रवा आत्रेयः | "       | "        |
| १७४३ | ५।७५।१ | अवस्युरात्रेयः    | अश्विनौ | "        |
| १७४४ | ५।७५।२ | अवस्युरात्रेयः    | "       | "        |
| १७४५ | ५।७५।३ | अवस्युरात्रेयः    | "       | "        |

( ४ )

|      |         |                      |         |            |
|------|---------|----------------------|---------|------------|
| १७४६ | ५।१।१   | बुधगविष्टिरावात्रेयो | अग्निः  | त्रिष्टुप् |
| १७४७ | ५।१।२   | बुधगविष्टिरावात्रेयो | "       | "          |
| १७४८ | ५।१।३   | बुधगविष्टिरावात्रेयो | "       | "          |
| १७४९ | १।११३।१ | कुत्स आंगिरसः        | उषाः    | "          |
| १७५० | १।११३।२ | कुत्स आंगिरसः        | "       | "          |
| १७५१ | १।११३।३ | कुत्स आंगिरसः        | "       | "          |
| १७५२ | ५।७६।१  | अत्रिभौमः            | अश्विनौ | "          |
| १७५३ | ५।७६।२  | अत्रिभौमः            | "       | "          |
| १७५४ | ५।७६।३  | अत्रिभौमः            | "       | "          |

[ ५ ]

|      |         |                  |             |         |
|------|---------|------------------|-------------|---------|
| १७५५ | १।९२।१  | गोतमो राहूगणः    | उषाः        | जगती    |
| १७५६ | १।९२।२  | गोतमो राहूगणः    | "           | "       |
| १७५७ | १।९२।३  | गोतमो राहूगणः    | "           | "       |
| १७५८ | १।१५७।१ | दीर्घतमा औचभ्यः  | अश्विनौ     | "       |
| १७५९ | १।१५७।२ | दीर्घतमा औचभ्यः  | "           | "       |
| १७६० | १।१५७।३ | दीर्घतमा औचभ्यः  | "           | "       |
| १७६१ | ९।५७।१  | अवत्सारः काश्यपः | पवमानः सोमः | गायत्री |
| १७६२ | ९।५७।२  | अवत्सारः काश्यपः | "           | "       |
| १७६३ | ९।५७।३  | अवत्सारः काश्यपः | "           | "       |
| १७६४ | ९।५७।४  | अवत्सारः काश्यपः | "           | "       |





## अथ विंशोऽध्यायः ।

अथ नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥

[ १ ]

( १-१८ ) १ नृमेध आंगिरसः; २...३ प्रियमेध आंगिरसः; ४ दीर्घतमा औचध्यः; ५ वामदेवो गौतमः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; ७ बृहदुष्यो वामदेव्यः; ८ बिन्वुः पूतवक्षो वा आंगिरसः; ९, १७ जमवग्निर्भर्गवः; १० सुकक्ष आंगिरसः; ११-१३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ सुवासः पंजवनः; १५ मेधातिथिः काण्वः; १६ नीपातिथिः काण्वः; १८ पदच्छेपो देवोदासिः ॥ १, १७ पवमानः सोमः; ३, ७, १०-१६ इन्द्रः; ४-६, १८ अग्निः; ८ भरतः; ९ सूर्यः; २.....॥ १, ८, १०, १५-१७ गायत्री; ( १७ नित्यपदा ) २.....; ३ अनुष्टम्बमुखः प्रगाथः= ( १ अनुष्टुप्+गायत्र्यौ ); ४, ११, १३ विराट्; ५ पदपंक्तिः; ६, ९, १२ प्रगाथः= ( विषमा बृहती, समा सतोबृहती ); ७ त्रिष्टुप्; १४ शक्करी; १८ अत्यष्टिः ॥

१७६५ प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्योजसः । देवा अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥ ( ऋ. ९।२९।१ )

१७६६ सप्ति मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुकथ्यम् ॥ २ ॥

( ऋ. ९।२९।२ )

१७६७ सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुकथ्य ॥ ३ ॥ १ ( यि ) ॥

[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्त्र० ३ ] ( ऋ. ९।२९।३ )

१७६८ एष ब्रह्मा य ऋत्विज इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ १ ॥

१७६९ त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरा न संयतः ॥ २ ॥

१७७० वि स्तुतयो यथा पथः इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ३ ॥ २ ( प ) ॥

[ धा० ५ । उ० १ । स्त्र० १ ]

[ १ ] प्रथमः खण्डः ।

[ १७६५ ] ( देवान् अनु प्रभूषतः ) देवों पर अपना अनुकूल प्रभाव डालनेकी इच्छा करनेवाले, ( वृष्णः ) बल बढानेवाले ( अस्य सुतस्य धाराः ) इस सोमरसकी धारायें ( ओजसः प्र अक्षरन् ) वेगसे बर्तनमें गिरने लग गयी हैं ॥ १ ॥

[ १७६६ ] ( वेधसः कारवः ) ज्ञानी अध्वर्यु ( गिरा गृणन्तः ) अपनी वाणीसे स्तुति करते हुए ( ज्योतिः जज्ञानं ) तेज प्रकट करनेवाले ( उकथ्यं सप्ति ) स्तुत्य और घोड़ेके समान वेगवान् सोमको ( मृजन्ति ) शुद्ध करते हैं ॥ २ ॥

[ १७६७ ] ( प्रभूवसो उकथ्य सोम ) हे बहुत धनवान् और प्रशंसनीय सोम ! ( पुनानाय ते ) छाने जानेवाले तेरे ( तानि सुषहा ) वे तेज तेरी उत्तम रक्षा करते हैं ( समुद्रं वर्धा ) समुद्रके समान उस बर्तनको भर दे ॥ ३ ॥

[ १७६८ ] ( यः इन्द्रः नाम श्रुतः ) जो इन्द्रके नामसे प्रसिद्ध है, ( एषः ऋत्विजः ब्रह्मा ) यह ऋतुके अनुसार बहनेवाला ब्रह्मा - ज्ञानी - है, इसकी ( गृणे ) मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[ १७६९ ] ( हे शवसः पते ) हे बलवान् इन्द्र ! ( संयतः न ) जिसप्रकार लोग संयमी पुरुषको प्राप्त होते हैं, उसके पास जाते हैं, उसीप्रकार ( गिरः ) स्तुतियां ( त्वां इत् यन्ति ) तुमसे ही प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

[ १७७० ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( यथा पथा स्तुतयः ) जिसप्रकार बड़े रास्तेसे अनेक छोटे - छोटे रास्ते निकलते हैं, उसीप्रकार ( त्वत् रातयः वि यन्तु ) तुमसे अनेक प्रकारके दान उपासकोंकी ओर आते हैं ॥ ३ ॥



१७७१ आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । तुविकूर्मिमृतीषहामिन्द्रं शविष्ठं सत्पतिम् ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।६।१ )

१७७२ तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।६।२ )

१७७३ यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्यम् ॥ ३ ॥ ३ ( व ) ॥  
[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।६।३ )

१७७४ आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नमन्यो नार्वा । सूरौ न रुक्कां छतात्मा ॥ १ ॥  
( ऋ. १।१४९।३ )

१७७५ अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।  
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१४९।४ )

१७७६ अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।  
मर्तो यो असौ सुतुको ददाश ॥ ३ ॥ ४ ( छ ) ॥  
[ धा० १२ । उ० २ । स्व० १ ] ( ऋ. १।१४९।५ )

[ १७७१ ] हे इन्द्र ! हम ( ऊतये सुम्नाय ) स्वसंरक्षण और सुखकी प्राप्ति के लिए ( तुविकूर्मि ) अनेक कर्म करनेवाले और ( ऋती-षह ) हिसक शत्रुओंको नष्ट करनेवाले ( शविष्ठं सत्पति ) बलवान् और सज्जनोंके पालन करनेवाले ( त्वा इन्द्रं ) तुझ इन्द्रको ( रथं यथा ) जिसप्रकार लोग रथकी उपासना करते हैं, उसीप्रकार ( आवर्तयामसि ) प्रवक्षिणा करते हैं, तेरी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[ १७७२ ] ( तुवि-शुष्म तुवि-क्रतो ) महान् बलवान् और बहुत कर्म करनेवाले ( शचीवः मते ) शक्तिमान् और पूजनीय इन्द्र ! तू ( विश्वया महित्वना ) सब प्रकारके सहत्वसे युक्त होकर ( आ पप्राथ ) व्याप्त होता है ॥ २ ॥

[ १७७३ ] ( यस्य महः ते हस्ता ) जिस महान् पुरुषके - तेरे हाथ ( ज्मायन्तं हिरण्यं वज्रं ) पृथ्वी पर सब जगह संचार करनेवाले सोनेके वज्रको ( महिना परि ईयतुः ) शक्तिपूर्वक धारण करते हैं ॥ ३ ॥

[ १७७४ ] ( यः ) जो अग्नि ( नार्मिणीं पुरं ) यजमानोंके द्वारा बनाये गए देवीरूपी स्थानको ( अदीदेत् ) प्रवीप्त करता है । ( यः अर्वा नमन्यः न ) जो गतिमान् घोड़े और वायुके समान ( अत्यः कविः ) गति करनेवाला और दूरदर्शी है । वह ( शतात्मा सूरः न ) अनेक रूपोंमें रहनेवाला अग्नि सूर्यके समान ( रुक्कवान् ) तेजस्वी है ॥ १ ॥

[ १७७५ ] ( द्वि-जन्मा ) दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ हुआ, ( त्रि-रोचनानि ) गार्हपत्य आदि तीन स्थानोंको और ( विश्वा रजांसि शुशुचानः ) सब लोकोंको प्रकाशित करते हुए ( होता यजिष्ठः ) देवोंको बुलाकर लानेवाला, पूज्य यह अग्नि ( अपां सधस्थे ) जलके स्थानमें यज्ञशालामें ( अस्थात् ) रहता है ॥ २ ॥

[ १७७६ ] ( यः द्विजन्मा ) जो दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ हुआ ( सः होता ) देवोंको बुलाकर लानेवाला ( अयं ) यह अग्नि ( विश्वा वार्याणि ) सब स्वीकार करने योग्य धनको और ( श्रवस्या दधे ) यज्ञरथी कर्मोंको धारण करता है । ( असौ यः मर्तः ददाश ) इसे जो मनुष्य हवि देता है, वह ( सु-तुक् ) उत्तम पुत्रोंसे युक्त होता है ॥ ३ ॥



१७७७ अग्ने तमद्याधं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥  
( ऋ. ४।१०।१ )

१७७८ अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥ ( ऋ. ४।१०।२ )

१७७९ एभिर्नो अकैर्मवा नो अर्वाङ्क्स्वर्णं ज्योतिः ।

अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः

॥ ३ ॥ ५ ( चि ) ॥

[ धा० ७ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ४।१०।३ )

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

[ २ ]

१७८० अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

आ दाशुषे जातवेदो बहा त्वमद्या देवां उपबुधः

॥ १ ॥ ( ऋ. १।४४।१ )

१७८१ जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत

॥ २ ॥ ६ ( ला ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २ । ( ऋ. १।४४।२ )

[ १७७७ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अद्य ) आज ( ओहैः ते स्तोमैः ) इन्द्रादि देवोंके पास पहुँचनेवाले तेरे स्तोत्रोंसे ( अश्वं न ) घोड़ेके समान हविको ठीक स्थानपर पहुँचानेवाले ( क्रतुं न भद्रं ) यज्ञके समान कल्याणकारक ( हृदि-स्पृशं ते ऋध्यामा ) हव्यको प्रिय ऐसे उस तुझ अग्निको हम बढ़ाते हैं ॥ १ ॥

[ १७७८ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( अधा हि ) अभी ( भद्रस्य दक्षस्य ) कल्याणकारक और बल बढ़ानेवाले ( साधोः क्रतस्य ) इष्ट फलको सिद्ध करनेवाले और सत्यस्वरूप ऐसे ( बृहतः क्रतोः ) महान् यज्ञका तू ( रथीः बभूथ ) चालक होता है ॥ २ ॥

[ १७७९ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ज्योतिः स्वः न ) ज्योतिरूप सूर्यके समान ( विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः ) सब तेजोंसे युक्त और उत्तम मन धारण करनेवाला तू ( नः एभिः अकैः ) हमारे इन पूज्य देवोंके साथ ( नः अर्वाङ्क्स्वर्णं ) हमारे पास आ ॥ ३ ॥

॥ यहाँ पहला खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ २ ] द्वितीयः खण्डः ।

[ १७८० ] हे ( अमर्त्य जातवेदः अग्ने ) अमर सर्वज्ञ अग्ने ! ( त्वं ) तू ( उषसः ) उषा देवतासे ( दाशुषे ) दाताको देनेके लिए ( विवस्वत् चित्रं राधः ) उत्तम घर जिसके पास है ऐसे अनेक प्रकारके धन ( आवह ) लेकर आ और ( अद्य उपबुधः देवान् ) आज उषःकालमें उठनेवाले देवोंको भी यज्ञमें लेकर आ ॥ १ ॥

[ १७८१ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! तू ( जुष्टः ) सेवा करने योग्य ( हव्यवाहनः दूतः ) देवोंको हवि पहुँचानेवाला दूत और ( अध्वराणां रथीः असि ) यज्ञमें देवोंको लानेवाले रथके समान है । ( अश्विभ्यां उषसा सजूरः ) अश्विनी और उषाको साथमें लेकर ( अस्मे सुवीर्यं बृहत् श्रवः धेहि ) हमें उत्तम वीर्यसे युक्त बृहत् यज्ञ दे ॥ २ ॥



१७८२ विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।५५।५ )

१७८३ शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।

यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पर्हमुत जेतोत दाता ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।५५।६ )

१७८४ ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्थानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।

ये कर्मणः क्रियमाणस्य महः ऋते कर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ३ ॥ ७ ( धे ) ॥

[ धा० ३१ । उ० ४ । स्व० ७ ] ( ऋ. १०।५५।७ )

१७८५ अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ १ ॥

( ऋ. ८।९४।४ )

१७८६ पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९४।५ )

१७८७ उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ३ ॥ ८ ( ली ) ॥

[ धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९४।६ )

[ १७८२ ] ( विधुं समने बहूनां दद्राणं ) अनेक कार्य करनेवाले और युद्धमें बहुतसे शत्रुओंको मारनेवाले ( युवानं सन्तं पलितः जगार ) तरुणको भी वृद्धावस्था निगल जाती है । ( देवस्य महित्वा काव्यं पश्य ) देवोंके महत्त्वोंसे परिपूर्ण इस काव्यको देख ( अद्य ममार ) जो आज भरता है ( सः ह्यः समान ) वह ही कल प्रकट होता है ॥ १ ॥

[ १७८३ ] ( शाक्मना शाकः ) शक्तिसे सामर्थ्यवान् ( अरुणः सुपर्णः आ ) अरुण रंगका कोई पक्षी आता है, ( यः महः शूरः ) जो बड़ा शूरवीर है पर ( सनात् अ-नीडः ) अनन्तकालसे घोंसला-घर-रहित है, ऐसा वह इन्द्र ( यत् चिकेत ) जो कर्तव्यके रूपमें निश्चित करता है ( तत् सत्यं इत् ) उसे सत्य करके दिखाता है । ( मोघं न ) वह कभी भी व्यर्थ काम नहीं करता । ( उत स्पर्हं वसु जेता ) वह सुन्दर चाहने योग्य धनको जीतकर लानेवाला ( उत दाता ) और स्तुति करनेवालेको धन देनेवाला है ॥ २ ॥

[ १७८४ ] वह इन्द्र ( एभिः वृष्ण्या पौंस्थानि आददे ) इन मरुतोंके साथ रहकर बल युक्त पुरुषार्थके कार्य करता है । ( येभिः वृत्रहत्याय वज्री औक्षत् ) जिसके साथ रहकर शत्रुको मारनेके लिए वज्रधारी इन्द्र वृष्टि करता है । ( ये देवाः ) जो मरुत् देव ( महः क्रियमाणस्य कर्मणः ) महान् किये जानेवाले कर्मको ( ऋते कर्म उदजायन्त ) सत्य कर्म करके दिखाते हैं ॥ ३ ॥

[ १७८५ ] ( अयं सोमः सुतः अस्ति ) यह सोमरस निचोड़ कर तैयार किया गया है, ( अस्य स्वराजः मरुतः ) इसके स्वयंके तेजसे तेजस्वी हुए हुए मरुत् ( उत अश्विना ) और अश्विनौ इसे ( पिबन्ति ) पीते हैं ॥ १ ॥

[ १७८६ ] ( मित्र ) मित्र ( अर्यमा वरुणः ) अर्यमा और वरुण देव ( तना पूतस्य ) छलनीसे शुद्ध हुए हुए ( त्रिषधस्थस्य जावतः पिबन्ति ) तीन बर्तनमें रखे हुए स्तुत्य सोमको पीते हैं ॥ २ ॥

[ १७८७ ] ( उत उ इन्द्रः ) और इन्द्र ( सुतस्य गोमतः अस्य जोषं ) रस निकाले गए तथा गायके दूध मिलाये गए इस सोमको पीनेकी ( प्रातः नु मत्सति ) प्रातःकाल इच्छा करता है, ( होता इव ) जिसप्रकार होता स्तुति करनेकी इच्छा करता है, उसीप्रकार इन्द्र सोम पीनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥



१७८८ वण्महा॑ असि सूर्य॑ बडादित्य॑ महा॑ असि ।

महस्ते॑ सतो॒ माहि॑मा॒ पनिष्ट॑म॒ महा॑ देव॒ महा॑ असि ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१०।११ )

१७८९ बट् सूर्य॑ श्रवसा॑ महा॑ असि सत्रा॑ देव॒ महा॑ असि ।

महा॑ देवाना॑मसूर्यः॒ पुरो॑हितो विभु॒ ज्योति॑रदाभ्यम् ॥ २ ॥ ९ ( त ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० १ ] ( ऋ. ८।१०।१२ )

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

[ ३ ]

१७९० उप॑ नो हरि॑भिः सुतं॑ याहि॒ मदानां॑ पते । उप॑ नो हरि॑भिः सुतम् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।९३।३१ )

१७९१ द्वि॒ता यो वृ॒त्रह॑न्तमो वि॒द इन्द्रः॑ शत॒क्रतुः॑ । उप॑ नो हरि॑भिः सुतम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।९३।३२ )

१७९२ त्व॑ हि वृ॒त्रह॑न्नेषां पा॒ता सोमा॑नामसि । उप॑ नो हरि॑भिः सुतम् ॥ ३ ॥ १० ( री ) ॥

[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।९३।३३ )

१७९३ प्र वो॑ महे॒ महेवृ॑धे भर॒ध्वं प्रचे॑तसे प्र सु॒मतिं॑ कृणु॒ध्वम् ।

वि॒श्वः पूर्वाः॑ प्र चर॒ चर्ष॑णि॒प्राः

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३१।१० )

[ १७८८ ] हे ( सूर्य ) सूर्य ! ( महान् असि बट् ) तू निश्चयसे महान् है, ( आदित्य ! महान् असि बट् ) हे आदित्य ! तू महान् है यह सत्य है । हे ( पनिष्टम ) स्तुतिके योग्य ! ( ते महः सतः माहिमा ) तुम जैसे महान्की माहिमाकी स्तुति की जाती है । ( पनिष्टम ! महा महान् असि ) हे प्रशंसनीय ! तू अपने महत्वके कारण बडा है ॥ १ ॥

[ १७८९ ] हे ( सूर्य ) सूर्य ! तू ( श्रवसा महान् असि बट् ) तू अपने यशके कारण महान् है । हे ( देव ) सूर्य देव ! तू ( देवानां महा महान् असि सत्रा ) देवोंके बीचमें महत्वके कारण महान् है, यह सत्य है । तू ( असूर्यः पुरोहितः ) असुरोंका नाश करनेवाला है, इसलिए देवोंने तुझे आगे स्थापित किया है । ( ज्योतिः विभुः अदाभ्यं ) तेरे तेज व्यापक और किसीसे न बबनेवाले हैं ॥ २ ॥

॥ यहाँ दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ३ ] तृतीयः खण्डः ।

[ १७९० ] हे ( मदानां पते ) सोमके स्वामी इन्द्र ! ( हरिभिः नः सुतं उप याहि ) घोड़ोंके द्वारा हमारे सोम-यज्ञमें आ । ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़ोंसे हमारे सोमयज्ञमें आ ॥ १ ॥

[ १७९१ ] ( वृत्रहन्तमः शतक्रतुः यः इन्द्रः ) शत्रुओंको मारनेवाला और सैंकड़ों कर्म करनेवाला जो इन्द्र है वह ( द्वि॒ता वि॒द ) दो प्रकारके कर्म करनेवाला है, यह सबको मालूम है । ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़ोंसे हमारे सोमयागके पास आ ॥ २ ॥

शत्रुको मारना और आर्यका रक्षण करना ये दोनों काम वह करता है ।

[ १७९२ ] हे ( वृत्रहन् ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( हि त्वं एषां सोमानां पाता असि ) तू इन सोमरसोंको पीनेवाला है । इसलिए ( हरिभिः नः सुतं उप ) घोड़े जोड़कर हमारे सोमयज्ञके पास आ ॥ ३ ॥

[ १७९३ ] हे मनुष्यो ! ( वः महेवृधे ) तुम अपने धनको बढ़ानेके लिए ( महे प्र भरध्वं ) महान् इन्द्रको सोम अर्पण करो । ( प्र चेतसे सुमतिं प्र कृणुध्वं ) शानी इन्द्रकी स्तुति करो । हे इन्द्र ! ( चर्षणि-प्राः ) प्रजाओंका पोषण करनेवाला तू ( पूर्वाः विशः प्र चर ) हविसे तुझे पूर्ण करनेवाली प्रजाओंके पास जा ॥ १ ॥



१७९४ उरुव्यचसे महिने सुवृत्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।

तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।३।११ )

१७९५ इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्वै ।

हर्यश्वाय बर्हया समापीन्

॥ ३ ॥ ११ ( हि ) ॥

[ धा० २६। उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. ७।३।१२ )

१७९६ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिदधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम्

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।३।१८ )

१७९७ शिक्षयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।

न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न

॥ २ ॥ १२ ( ता )

[ धा० १४। उ० १। स्व० २ ] ( ऋ. ७।३।१९ )

१७९८ श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्वोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।

कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा

॥ १ ॥ ( ऋ. ७।२।४ )

[ १७९४ ] हे ( विप्राः ) ब्राह्मणो ! ( उरुव्यचसे महिने इन्द्राय ) विशेष व्यापक ऐसे महान् इन्द्रको ( सुवृत्तिं ब्रह्म जनयन्त ) उत्तम स्तुति और अन्न तुम अर्पण करते हो, ( तस्य व्रतानि ) उस इन्द्रके व्रतोंको ( धीराः न मिनन्ति ) बुद्धिमान् लोग नहीं तोड़ते ॥ २ ॥

[ १७९५ ] ( सत्रा राजानं ) सबके ईश्वर ( अनुत्तमन्युं इन्द्रं एव ) जिसके क्रोधके आगे कोई टिक नहीं सकता ऐसे इन्द्रको ही ( वाणीः सहध्वै दधिरे ) स्तुतियां शत्रुके पराभव करनेके लिए आगे स्थापित करती हैं। इसलिए हे स्तुति करनेवालो ! ( हर्यश्वाय आपीन् सं बर्हय ) इन्द्रकी स्तुति करनेके लिए अपने मित्रोंको उत्तेजित करो ॥ ३ ॥

[ १७९६ ] हे ( इन्द्रः ) इन्द्र ! ( यत् यावतः ) जितने धनका तू स्वामी है, ( एतावत् अहं ईशीय ) उतने ही धनका मैं भी स्वामी होऊँ। हे ( रदावसो ) धन देनेवाले इन्द्र ! मैं ( स्तोतारं इत् दधिषे ) अपने स्तोताको धन देकर उसका पोषण मैं कर सकूँ इतना ही धन मैं दूँगा। ( पापत्वाय न रंसिषं ) पापी होनेके लिए उसे ज्यादा धन नहीं दूँगा। मैं निर्धन हो जाऊँ इतना धन नहीं दूँगा ॥ १ ॥

[ १७९७ ] ( कुहचित् विदे महयते ) कहीं भी रहकर स्तुति करनेवालेको ( दिवे दिवे रायः शिक्षयं इत् ) प्रतिदिन धन देता हूँ। इन्द्रकी यह बात सुनकर उपासक कहता है ( मघवन् त्वत् अन्यत् आप्यं नहि ) हे इन्द्र ! तेरे सिवाय और कोई मेरा भाई नहीं, और ( वस्यः पिता च न अस्ति ) प्रजासन्तीय रक्षक भी कोई दूसरा नहीं है ॥ २ ॥

[ १७९८ ] हे इन्द्र ! ( विपिपानस्य अद्रेः हवं श्रुधि ) सोम कूटनेवाले मेरे पत्थरोंकी आवाज सुन, ( मनीषाः विप्रस्य मनीषां बोध ) स्तुति करनेवाले विद्वानोंकी बातें सुन, ( इमा दुवांसि ) इन सेवाओंको ( अन्तमा सच्चा कृष्वा ) अपने समीपके मित्रकी सेवायें हैं, ऐसा मानकर स्वीकार कर ॥ १ ॥



१७९९ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।

सदा ते नाम स्वयशो विवर्किम

॥ २ ॥ ( ऋ. ७।२।५ )

१८०० भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।

मारि अस्मन्मघवं ज्योक् ।

॥ ३ ॥ १३ ( बा ) ॥

[ धा० १५ । उ० ३ । स्व० २ ] ( ऋ. ७।२।६ )

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[ ४ ]

१८०१ प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।

अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१३।१ )

१८०२ त्वं सिधूँ रवासृजोऽधराचो अहमहिम् । अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।

तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१३।२ )

[ १७९९ ] हे इन्द्र ! ( तुरस्य ते गिरः ) शत्रुको शीघ्रतासे नष्ट करनेवाले तेरी स्तुतिको ( असुर्यस्य विद्वान् ) तेरे बलको जाननेके कारण ( न अपि मृष्ये ) में छोड़ नहीं सकता । ( स्वयशः ते नाम सदा विवर्किम ) अपने यश बढ़ानेवाले तेरे स्तोत्रोंको ही में हमेशा बोलता रहता हूँ ॥ २ ॥

[ १८०० ] हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! ( मानुषेषु ते भूरि सवना ) मनुष्योंमें तेरे लिए सोमयज्ञ बहुत होते हैं । ( मनीषी त्वां इत् भूरि हवते ) बुद्धिमान् तेरे लिए बहुत हवन करते हैं, ( अस्मत् आरे ) हमसे वर ( ज्योक् मा कः ) बहुत समय मत रह ॥ ३ ॥

॥ यहाँ तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ४ ] चतुर्थः खण्डः ।

[ १८०१ ] हे स्तोत्रपाठको ! ( अस्मै इन्द्राय ) इस इन्द्रके ( पुरो रथं शूषं ) रथके आगे रहनेवाले बलकी ( सु प्र अर्चत उ ) उत्तम प्रकारसे पूजा करो । ( समत्सु संगे अभीके चित् ) युद्धमें शत्रुकी सेना हम पर आक्रमण करती हुई हमारे पास आजाय, तो ( लोककृत् वृत्रहा ) लोकपालक और शत्रुको मारनेवाला इन्द्र ( अस्माकं चोदिता बोधि ) हमारा प्रेरक है यह तुम जानो । ( अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां ) अन्य शत्रुओंके धनुषकी डोरियाँ टूट जाएँ ॥ १ ॥

[ १८०२ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( त्वं ) तू ( सिधूँ अघराचः अवासृजः ) नवियोंको नीची जगह पर बहाकर लानेवाले मेघोंको गिराता है, उन्हें बरसाता है । ( अहिं अहन् ) मेघोंको फोड़ता है, इसलिए हे इन्द्र ! तू ( अशत्रुः जज्ञिषे ) शत्रुरहित होता है, तू ( विश्वं वार्यं पुष्यसि ) सब स्वीकार करने योग्य धन बढ़ाता है । ( तं त्वा परिष्वजामहे ) उस तुझे हम हवि देकर बशमें करते हैं । ( अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां ) शत्रुओंके धनुषकी डोरियाँ टूट जाएँ ॥ २ ॥



१८०३ विंशु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।

अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।

या ते रातिर्ददिवसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥ १४ ( टि ) ॥

[ धा० ४३ । उ० ६ । स्व० ३ ] ( ऋ १०।१३।३ )

१८०४ रेवां इद्रेवत स्तोता स्याच्चावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।२।१३ )

१८०५ उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।२।१४ )

१८०६ मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ ३ ॥ १५ ( ति ) ॥

[ धा० १४ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।२।१५ )

१८०७ एन्द्रः याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो

॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१४।१ )

१८०८ अत्रा वि नेमिरषामुरां न धूनुते वृकः ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो

॥ २ ॥ ( ऋ. ८।३४।३ )

[ १८०३ ] ( नः विश्वाः अरातयः अर्यः ) हमारे सब शत्रु जो हमपर चढाई करते हुए आते हैं, वे ( सु विन-शन्त ) उत्तम रीतिसे नष्ट हो जाएं । हे इन्द्र ! ( यः नः जिघांसति ) जो हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, उस ( शत्रवे वधं अस्तासि ) शत्रुपर तू शस्त्र फेंकता है । हे इन्द्र ! तेरे पास ( धियः ) हमारे बुद्धिपूर्वक किए गए कर्म पहुंचे । ( ते या रातिः वसु ददिः ) तेरे जो वान हैं, वे हमें धन दें । ( अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां ) शत्रुके धनुषकी डोरियां टूट जाएं ॥ ३ ॥

[ १८०४ ] हे ( हरिवः ) घोडे रखनेवाले इन्द्र ! ( रेवतः स्तोता रेवान् इत् स्यात् ) तेरे समान धनवान्की स्तुति करनेवाला अवश्य धनी होगा । ( त्वावतः मघोनः सुतस्य प्रेदुः ) तेरे समान धनवान्की स्तुति करनेवाला अवश्य ऐश्वर्यवान् होता है ॥ १ ॥

[ १८०५ ] हे इन्द्र ! ( न ) इस समय ( अ-गोः रयिः आ चिकेत ) स्तुति न करनेवालोंका धन तू जानता है, ( न ) अब ( शस्यमानं उक्थं च ) बोले जानेवाले स्तोत्रको भी तू जानता है । ( न ) अब ( गीयमानं गायत्रं ) गाये जानेवाले गायत्र सामको भी तू जानता है ॥ २ ॥

[ १८०६ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( पीयत्नवे नः मा परादाः ) हिंसक शत्रुओंके आधीन हमें मत कर ( शर्धते मा ) हमारा नाश करनेवालेके स्वाधीन हमें मत कर । हे ( शची-वः ) शक्तिमान् इन्द्र ! ( शचीभिः शिक्षा ) अपनी शक्तियोंसे हमें धन दे ॥ ३ ॥

[ १८०७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( हरिभिः ) घोड़ोंकी सहायतासे ( कण्वस्य सुष्टुतिं उप याहि ) कण्वकी उत्तम स्तुतिके पास पहुंच ( अमुष्य दिव शासतः ) इस छुलोकके शासनमें हम सुखसे रहते हैं, हे ( दिवावसो ) छुलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! ( दिवं यय ) छुलोकमें जा ॥ १ ॥

[ १८०८ ] ( अत्रा पेष्ठां नेमिः ) अब इन सोम कूटनेवाले पत्थरोंकी धारें ( उरां वृकः न ) भेड़की जिसप्रकार भेड़िया कंपाता है, उसीप्रकार सोमको ( विधूनुते ) कूटते हुए कंपाती हैं । ( अमुष्य दिवः शासतः ) इस इन्द्रके छुलोक पर शासन करते हुए हम [ इसके शासनमें ] सुखसे रहते हैं । हे ( दिवावसो ) तेजस्वी धनवान् इन्द्र ! ( दिवं यय ) छुलोकमें जा ॥ २ ॥



१८०९ आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो

॥ ३ ॥ १६ ( व ) ॥

[ धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १ ] ( ऋ. ८।३४।२ )

१८१० पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः

॥ १ ॥ ( ऋ. ९।६७।१६ )

१८११ ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत

॥ २ ॥ ( ऋ. ९।६७।१८ )

१८१२ असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव

॥ ३ ॥ १७ ( रौ ) ॥

[ धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति ] ( ऋ. ९।६७।१७ )

॥ इति ऋतुर्धः खण्डः ॥ ४ ॥

[ ५ ]

१८१३ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सृनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।

घृतस्य विभ्राष्टिमु शुक्रशोचिष आजुहानस्य सर्पिषः

॥ १ ॥ ( ऋ. १।१२७।१ )

[ १८०९ ] हे इन्द्र ! ( इह सोमी वदन् ग्रावा ) यह इस यज्ञमें सोम कूटनेके शब्द करनेवाला पत्थर ( घोषेण आवक्षतु ) शब्द करते हुए सोमको तेरे पास पहुंचावे । ( अमुष्य दिवः शासतः ) इस इन्द्रके धुलोकपर शासन करते हुए [ इसके शासनमें ] हम सुखसे रहते हैं । ( दिवावसो ) हे तेजस्वी धनवान् इन्द्र ! ( दिवं यय ) तू धुलोकमें जा ॥ ३ ॥

[ १८१० ] हे ( सोम ) सोम ! ( मधुमत्तमः मन्दयन् ) अत्यन्त मधुर ऐसा तू हर्ष उत्पन्न करता हुआ ( इन्द्राय पवस्व ) इन्द्रके लिए शुद्ध हो ॥ १ ॥

[ १८११ ] ( विपश्चितः ) बुद्धिबर्धक ( सुतासः ) सोमरस ( शुक्राः ते ) शुद्ध होनेके बाद वे सोमरस ( वायुं असृक्षत ) वायुके लिए तैय्यार होते हैं ॥ २ ॥

[ १८१२ ] ये सोमरस ( वाजयन्तः देववीतये ) अन्न प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले यजमान देवोंको देनेके लिए ( असृग्रं ) तैय्यार करते हैं । ( रथाः इव ) जिसप्रकार रथ तैय्यार करते हैं, उसीप्रकार सोमको तैय्यार करते हैं ॥ ३ ॥

॥ यहां चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥

[ ५ ] पञ्चमः खण्डः ।

[ १८१३ ] ( दास्वन्तं वसोः ) दान देनेवाला, सबको बसानेवाला ( सहसः सृनुं जातवेदसं ) बलसे उत्पन्न होनेवाला, सब जाननेवाला, ( विप्रं न जातवेदसं ) ब्राह्मणके समान ज्ञानी ( यः देवः स्वध्वरो ) जो प्रकाशमान और उत्तम यज्ञ करनेवाला है, ऐसे ( ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा ) उच्च अर्थात् श्रेष्ठ देवी सामर्थ्यसे युक्त, ( शुक्रशोचिषः आजुहानस्य ) उत्तम तेजस्वी और हवन किए जानेवाले ( सर्पिषः घृतस्य विभ्राष्टिं अनु ) घीके तेजके अनुकूल ( अग्निं होतारं मन्ये ) ऐसे अग्निको मैं देवोंको बुलानेवाला मानता हूँ ॥ १ ॥



१८१४ यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्यैष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।

परिजमानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।

शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।१२।७।२ )

१८१५ स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।

वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रवद्वनेव यत्स्थिरम् ।

निष्पहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥ १८ ( टी ) ॥

[ धा० ४३ । उ० २ । स्व० ४ ] ( ऋ. १।१२।७।३ )

॥ इति नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥

अथ नवमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ९-२ ॥

( १-१३ ) १ अग्निः पावकः; २ सोमरिः काण्वः; ३ अश्वो वेंतहव्यः; ४ अग्निः प्रजापतिः; ५-६, ८ अवत्सारः काश्यपः; ७ मृगः; ९ गोवृक्ष्यश्वसूक्तितौ काण्वायनौ; १० त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा; ११ उलो वातायनः; १३ वेनो भार्गवः; ४, ७, ८, १२ । १-४; ७-८, १२ अग्निः; ५-६ विश्वे देवाः; ९ इन्द्रः, १० आपः; ११ वायुः; १३ वेनः । १ ( १-२ ) विष्टारपंक्तिः; १ ( ३-५ ) सतोबृहती, १ ( ६ ) उपरिष्टाज्ज्योतिः, २ काकुभः प्रगाथः= ( विषमा ककुप्, समा सतोबृहती ); ३ जगती; ५-६, १३ त्रिष्टुप्; ४, ७-११, गायत्री ४, ७, ८, १२ ।

१८१६ अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।

बृहद्भानो श्रवसा वाजमुक्थ्यांश्च दधासि दाशुषे कवे ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१४०।१ )

[ १८१४ ] हे ( विप्र शुक्र ) ज्ञानी और तेजस्वी अग्ने ! ( यजमानाः ) हम यजमान ( विप्रेभिः मन्मभिः ) ज्ञानी विचारकोंके और ( मन्मभिः ) मननीय मंत्रोंके कारण ( अंगिरसां ज्यैष्ठं ) तेजस्वी लोगोंमें श्रेष्ठ हुए हुए ( यजिष्ठं त्वा हुवेम ) पूजनीय तुमने हवन अर्पण करते हैं। उसके बाद ( द्यां इव परिजमानं ) सूर्यके समान घूमनेवाले ( चर्षणीनां होतारं ) लोगोंके लिए हवन करनेवाले ( शोचिष्केशं वृषणं यं ) प्रवीण किरणोंसे युक्त अग्निका ( इमाः विशः ) ये प्रजापति ( जूतये प्र अवन्तु ) इष्ट फलकी प्राप्तिके लिए संरक्षण करती हैं ॥ २ ॥

[ १८१५ ] ( सः हि ) वह अग्नि ( विरुक्मता ओजसा ) तेजस्वी बलसे ( पुरुचिद् दीद्यानः ) अत्यधिक प्रकाशमान ( द्रुहन्तरः परशुः न ) शत्रुओंको कंपानेवाले फरसेके समान ( द्रुहन्तरः भवति ) द्रोह करनेवालोंका नाश करनेवाला होता है। ( यस्य समृतौ ) जिसके साथ-साथ रहनेसे ( वीडु चित् श्रवत् ) बलवान् शत्रु भी हार जाते हैं। ( यत् स्थिरं वना इव ) जो स्थिर होता है वह भी जलके समान छिन्नभिन्न हो जाता है। इस कारण यह अग्नि ( निः स्पहमाणः यमते ) शत्रुओंको हराकर सबका नियमन करता है। ( न अयते ) अपनी जगहसे भागता नहीं। ( धन्वासहा न अयते ) धनुषको धारण करनेवाले वीरके समान अपनी जगहसे दूर नहीं होता ॥ ३ ॥

[ १८१६ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( तव वयः श्रवः ) तेरे अन्न प्रशंसनीय हैं। हे ( विभावसो ) अति तेजस्वी अग्ने ! ( अर्चयः महि भ्राजन्ते ) तेरी बालायें बहुत प्रवीण हो गई हैं। हे ( बृहद्भानो कवे ) अत्यधिक तेजस्वी ज्ञानी देव ! ( श्रवसा ) अपने बलसे ( उक्थ्यां वाजं ) प्रशंसनीय अश्वको तू ( दाशुषे दधासि ) प्रत्येक दान देनेवाले यज्ञकर्ताको देता है ॥ १ ॥

४७ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



- १८१७ पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।  
 पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उमे ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१४०।२ )
- १८१८ ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।  
 त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्षसश्चित्रोतया वामजाताः ॥ ३ ॥ ( ऋ. १०।१४०।३ )
- १८१९ इरज्यन्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।  
 स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥ ४ ॥ ( ऋ. १०।१४०।४ )
- १८२० इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।  
 राति वामस्य सुभगां महींमिषं दधासि सानसि रयिम् ॥ ५ ॥ ( ऋ. १०।१४०।५ )
- १८२१ ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमाग्निं सुम्नाय दधिरे पुरा जनाः ।  
 श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥ १ ( दि ) ॥  
 [ वा० ५९ । उ० ३ । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।१४०।६ )

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

[ १८१७ ] हे अग्ने ! ( पावकवर्चाः ) पवित्रता करनेवाली किरणोंसे युक्त ( शुक्रवर्चाः ) निर्मल तेजसे युक्त ( अनूनवर्चाः ) पूर्ण तेजस्वी तू ( भानुना उदियर्षि ) अपने तेजसे उदय होता है । ( पुत्रः ) पुत्ररूप अग्नि ( मातरा विचरन् ) मातारूपी दो अरणियोंसे उत्पन्न होनेके बाद ( उपावसि ) समीप रहकर यज्ञ करनेवालोंकी रक्षा करता है । ( उमे रोदसी पृणक्षि ) दोनों छुलोक और पृथ्वीलोकको वह जोड़ता है, अर्थात् हविसे स्वर्गको और वृष्टिसे पृथ्वीको वह पूर्ण करता है ॥ २ ॥

[ १८१८ ] हे ( ऊर्जः नपात् ) बलके पुत्र ! ( जातवेदः ) सबको जाननेवाले अग्नि देव । ( सुशस्तिभिः मन्दस्व ) उत्तम स्तुतियोंसे तू आनन्दित हो । ( धीतिभिः हितः ) हमारे द्वारा किए गए कर्मोंसे तू तृप्त हो । ( भूरिवर्षसः चित्रोतया ) अनेक रूपोंसे युक्त और विलक्षण संरक्षण करनेवाले ( वामजाताः इषः ) उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए अन्नका ( त्वे संदधुः ) तुझमें यजमान हवन करते हैं ॥ ३ ॥

[ १८१९ ] हे ( अमर्त्य अग्ने ) अमर अग्ने ! ( जन्तुभिः इरज्यन् ) अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाला तू ( अस्मे रायः प्रथयस्व ) हमारे धनको बढ़ा । ( सः ) वह तू ( दर्शतस्य वपुषः ) वर्शनीय शरीरसे ( विराजसि ) विशेष शोभायमान होता है, और ( दर्शतं क्रतुं पृणक्षि ) वर्शनीय यज्ञ कर्मको उत्तम फल देता है ॥ ४ ॥

[ १८२० ] ( अध्वरस्य इष्कर्तारं ) यज्ञके संस्कार करनेवाले ( प्रचेतसं ) विशेष ज्ञानी ( महः राधसः क्षयन्तं ) बहुतसा धन पासमें रखनेवाले और ( वामस्य रातिं ) उत्तम धन देनेवाले ऐसे तुम्हारी स्तुति हम करते हैं । तू ( सुभगां महींमिषं ) उत्तम भाग्य युक्त बहुत अन्न और ( सानसि रयिं ) सेवन करने योग्य धन ( दधासि ) देता है ॥ ५ ॥

[ १८२१ ] ( जनाः ) यज्ञ करनेवाले लोग ( ऋतावानं महिषं ) यज्ञ करनेवाले और पूज्य ( विश्व-दर्शतं अग्निं ) सर्वत्र वर्शनीय अग्निको ( सुम्नाय पुरः दधिरे ) सुख प्राप्त करनेके लिए अपने सामने स्थापित करते हैं । हे अग्ने ! ( श्रुत्कर्णं ) उत्तम प्रकारसे प्रार्थना सुननेवाले ( सप्रथस्तमं ) अत्यन्त प्रसिद्ध ( दैव्यं त्वा ) दिव्यगुण युक्त तेरी ( युगा मानुषा ) पति और पत्नी मिलकर दोनों ही ( गिरा ) अपनी बाणीसे स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

॥ यहाँ पाँचवां खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ६ ]

१८२२ प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥ १ ॥  
( ऋ. ८।१९।३० )

१८२३ तव द्रुप्तो नीलवान्वाश ऋत्विग्य इन्धानः सिष्णवा ददे ।  
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपा वस्तुषु राजसि ॥ २ ॥ २ ( यी ) ॥  
[ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ८।१९।३१ )

१८२४ तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्विग्यं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।  
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥ १ ॥ ३ ( रि ) ॥  
[ धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३ ] ( ऋ. १०।९।१६ )

१८२५ अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति । महिषीव वि जायते ॥ १ ॥ ४ ( या ) ॥  
[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० २ ।

१८२६ यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।  
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमसि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ ५ ( या ) ॥  
[ धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ९।४३।१४ )

[ ६ ] षष्ठः खण्डः ।

[ १८२२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने । ( त्वं यस्य सख्यं आ विथ ) तू जिसके साथ मित्रता करता है, ( त्वः ) वह यजमान ( सुवीराभिः ) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त ( वाज-कर्मभिः ) और बलवर्धक कर्मोंसे युक्त ( तव ऊतिभिः ) ऐसे तेरे संरक्षणोंकी सहायतासे ( प्रतरति ) संकटोंसे पार हो जाता है ॥ २ ॥

[ १८२३ ] हे ( सिष्णो ) सोमकी आहुति जिसे दी जाती है ऐसे अग्ने ! द्रुप्तः नीलवान् ) प्रवाह रूप और पासमें रखनेवाला ( वाशः ऋत्विग्यः ) स्तुत्य और ऋतुके अनुकूल ऐसा ( इन्धानः आददे ) तेजस्वी सोम हवन करनेके लिए प्राप्त किया जाता है । ( त्वं महीनां उषसां प्रियः असि ) तू महान् उषाओंको प्रिय है । ( क्षपाः वस्तुषु राजसि ) रात्रीके समय हवनीय पदार्थोंसे तू प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[ १८२४ ] ( ऋत्विग्यं गर्भं तं ओषधीः दधिरे ) ऋतुके अनुकूल प्रदीप्त ऐसे अग्निको गर्भ रूपसे अरण्यां धारण करती हैं । ( तं अग्निं ) उस अग्निको ( मातरः आपः जनयन्त ) पानीरूपी मातायें उत्पन्न करती हैं । ( वनिनः च समानं तं इत् ) वनस्पतियां गर्भ रूपमें रहनेवाले उस अग्निको उत्पन्न करती हैं । ( अन्तर्वतीः वीरुधः च ) गर्भ धारण करनेवाली ओषधि उसे ( विश्वहा सुवते ) हमेशा उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

[ १८२५ ] ( अग्निः इन्द्राय पवते ) अग्नि इन्द्रके लिए प्रदीप्त होता है, वह ( शुक्रः दिवि विराजति ) प्रदीप्त होकर अन्तरिक्षमें प्रकाशित होता है । ( महिषी इव विजायते ) रानीके समान वह विशेष रूपसे सुशोभित होता है ॥ १ ॥

[ १८२६ ] ( यः जागारः ) जो जागता है ( तं ऋचः कामयन्ते ) उसकी ऋचायें इच्छा करती हैं, ( यः जागारः ) जो जागृत रहता है, ( तं उ सामानि यन्ति ) उसे साम प्राप्त होते हैं, ( यः जागार ) जो जागता है, ( तं अयं सोमः आह ) उससे यह सोम कहता है, कि ( तव सख्ये अहं अस्मि ) तेरी मित्रतामें मैं हूँ । ( अहं न्योकाः अस्मि ) मैं धरसे युक्त हूँ ॥ १ ॥



- १८२७ अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।  
 अग्निर्जागार तमयः सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ ६ ( वा ) ॥  
 [ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. ५।४४।१५ )
- १८२८ नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः । युञ्जे वाचः शतपदीम् । ॥ १ ॥
- १८२९ युञ्जे वाचः शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥
- १८३० गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता । देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ३ ॥ ७ ( यु ) ॥  
 [ धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ५ ]
- १८३१ अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निर्इन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥
- १८३२ पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरन्न इषायुषा । पुनर्नः पाशः सहस्रः ॥ २ ॥
- १८३३ सह रय्या नि वर्तस्वामि पिन्वस्व धारया । विश्वत्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥ ८ ( ठा ) ॥  
 [ धा० ८ । उ० २ । स्व० २ ]
- ॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[ १८२७ ] ( अग्निः जागार ) अग्नि जागता है, ( तं ऋचः कामयन्ते ) इसलिए ऋचायें उसकी कामना करती हैं। ( अग्निः जागार ) अग्नि जागृत रहता है, इसलिए ( तं उ सामानि यन्ति ) उसके पास साम जाते हैं, ( अग्निः जागार ) अग्नि जागृत रहता है, इसलिए ( तं अयं सोम आह ) उससे यह सोम कहता है कि ( तव सख्ये ) तेरी मित्रतामें ( अहं न्योकाः अस्मि ) मैं गृहयुक्त रहूंगा ॥ १ ॥

[ १८२८ ] ( पूर्व-सद्भ्यः सखिभ्यः नमः ) पहलेसे यज्ञमें बैठनेवाले मित्ररूपी देवोंको नमस्कार करता हूँ। ( साकंनिषेभ्यः नमः ) पास पास बैठनेवाले देवोंको नमस्कार करता हूँ ( शतपदीं वाचं युञ्जे ) असंख्य प्रकारसे स्तुतियोंको मैं करता हूँ ॥ १ ॥

[ १८२९ ] ( शतपदीं वाचं युञ्जे ) असंख्य प्रकारसे बनाई गई स्तुतियोंको मैं बोलता हूँ। ( गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ) गायत्री त्रिष्टुप्, जगती इन छन्दोंसे युक्त सामोंको ( सहस्रवर्तनि ) हजारों प्रकारसे ( गाये ) मैं गाता हूँ ॥ २ ॥

[ १८३० ] ( गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ) गायत्री, त्रिष्टुप् और जगतीके छन्दोंमें ( सम्भृता ) जो इकट्ठी की गई हैं, ऐसे ( विश्वा रूपाणि ) अनेक रूपोंवाले उन सामोंको ( देवाः ओकांसि चक्रिरे ) देवोंने अपने रहनेका स्थान बनाया है, [ उन सामोंको मैं गाता हूँ ] ॥ ३ ॥

[ १८३१ ] ( अग्निः ज्योतिः ) अग्नि ज्वाला रूप है। ( ज्योतिः अग्निः ) और ज्वाला भी अग्नि ही है। ( इन्द्रः ज्योतिः ) इन्द्र प्रकाशरूप है, ( ज्योतिः इन्द्रः ) और प्रकाश भी इन्द्र ही है। ( सूर्यः ज्योतिः ) सूर्य प्रकाश-रूप है, ( ज्योतिः सूर्यः ) ज्योतिः सूर्य है ॥ १ ॥

[ १८३२ ] हे ( अग्ने ) अग्ने ! ( ऊर्जा पुनः निवर्तस्व ) बलके साथ फिर हमारे पास आ। ( इषा आयुषा पुनः ) अन्न और आयुके साथ हमारी तरफ आ। ( अंहसः नः पुनः पाहि पापसे हमारी पुनः पुनः रक्षा कर ॥ २ ॥

[ १८३३ ] हे अग्ने ! ( रय्या सह निवर्तस्व ) धन साथमें लेकर हमारे पास आ। ( विश्वतः परि ) सबसे ओष्ठ और ( विश्वत्स्न्या धारया ) सबोंके लिए उपभोगके योग्य धारासे हमें ( पिन्वस्व ) युक्त कर ॥ ३ ॥

॥ यहाँ छठा खण्ड समाप्त हुआ ॥



[ ७ ]

१८३४ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ १ ॥ ( ऋ. ८।१४।१ )

१८३५ शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥ ( ऋ. ८।१४।२ )

१८३६ धेनुष्ट इन्द्र स्रुता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥ ९ ( पि ) ॥

[ धा० १५ । उ० १ । स्व० ३ ] ( ऋ. ८।१४।३ )

१८३७ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।९।१ )

१८३८ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।९।२ )

१८३९ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ १० ( वा ) ॥

[ धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २ ] ( ऋ. १०।९।३ )

१८४० वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूषि तारिषत् ॥ १ ॥

( ऋ. १०।१८।१ )

१८४१ उत वात पितासि न उत भ्रातौत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

( ऋ. १०।१८।२ )

[ ७ ] सप्तमः खण्डः ।

[ १८३४ ] हे इन्द्र ! ( यथा त्वं वस्वः एक इत् ) जैसा तू धनका अकेला ही स्वामी है, ( यत् अहं ईशीय ) वैसा ही यदि मैं भी धनका स्वामी हो गया तो ( मे स्तोता गोसखा स्यात् ) मेरी स्तुति करनेवाला गायोंका मित्र हो, तो फिर तेरी स्तुति करनेवाला गायोंका मित्र भला क्यों न होगा ? ॥ १ ॥

[ १८३५ ] हे ( शचीपते ) शक्तिमान् इन्द्र ! ( यत् अहं गोपतिः स्याम् ) यदि मैं गायका स्वामी बन जाऊं तो मैं ( अस्मै मनीषिणे दित्सेयं ) इस बुद्धिमान्को मैं धन देनेकी इच्छा करूँ और उसे ( शिक्षेयं ) धन भी दूँ ॥ २ ॥

[ १८३६ ] हे इन्द्र ! ( ते स्रुता धेनुः ) तेरी स्तुतिरूपी वाणी गायका रूप धारण करके ( पिप्युषी ) पोषण करनेकी इच्छा करते हुए ( सुन्वते यजमानाय ) सोम यज्ञ करनेवाले यजमानके लिए ( गां अश्वं दुहे ) गाय और घोड़े देती है ॥ ३ ॥

[ १८३७ ] ( आपः हि मयोभुवः स्था ) जल निस्सन्देह सुख देनेवाले हैं । ( ताः नः ऊर्जे दधातन ) वे हमारे अन्न और बल बढ़ानेवाले हों । तथा ( महे रणाय चक्षसे ) महान् रमणीय ज्ञान प्राप्त करके देनेवाले हों ॥ १ ॥

[ १८३८ ] हे जलो ! ( इह वः यः रसः शिवतमः ) यहां जो तुम्हारा रस अत्यन्त सुख देनेवाला है, ( तस्य नः भाजयत ) उसे हमें सेवन करनेके लिए दो । ( उशतीः मातरः इव ) बच्चेके पोषण करनेकी इच्छा करनेवाली माता जिसतरह अपना दूधरूपी रस अपने बच्चेको देती है, उसी तरह तुम हमें अपना रस दो ॥ २ ॥

[ १८३९ ] हे ( आपः ) जलो ! ( यस्य क्षयाय जिन्वथ ) जिसके निवासके लिए तुम प्रेरणा करते हो, ( तस्मै अरं नः गमाम ) उसके लिए पूर्णरूपसे हम तुम्हारा उपयोग कर सकें ऐसा तुम करो । ( नः जनयथा च ) हम पुत्रपौत्र उत्पन्न कर सकें ऐसा हमें सामर्थ्यशाली बनाओ ॥ ३ ॥

[ १८४० ] ( वातः नः ) वायु हमारी तरफ ( हृदे शम्भु मयोभु भेषजं ) हृदयको आनन्द देनेवाले और सुखकारक औषध ( आ वातु ) लेकर आवे और ( नः आयूषि प्रतारिषत् ) हमारी आयु बढ़ावे ॥ १ ॥

[ १८४१ ] हे ( वात ) वायो ! ( उत नः पिता असि ) तू हमारा पिता है, ( उत भ्राता ) और भाई है, ( उत नः सखा ) और हमारा मित्र भी है । ( सः नः जीवातवे कृधि ) वह तू हमारा जीवन दीर्घ कर ॥ २ ॥



१८४२ यददो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा । तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ ११ ( पौ ) ॥  
[ धा० १० । उ० १ । स्व० नास्ति ] ( ऋ. १०।१८६।३ )

१८४३ अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रः हिरण्यं बिभ्रदत्कः सुपर्णः ।

सूर्यस्य भानुमृता वसानः परि स्वयं मेधमृजो जजान

॥ १ ॥

१८४४ अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्संबभूव ।

अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः

॥ २ ॥

१८४५ अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।

सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विष्पतिः

॥ ३ ॥ १२ ( पु ) ॥

[ धा० २० । उ० १ । स्व० २ ]

१८४६ नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तः हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरग्युम्

॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१२३।६ )

[ १८४२ ] हे ( वात ) वायो ! ( ते गृहे ) तेरे घरमें ( यत् अदः गुहा अमृतं निहितं ) जो गुप्त स्थानमें यह अमृत रखा हुआ है । हे ( विभावसो ) तेजस्वी धन पासमें रखनेवाले वायो ! ( तस्य नः धेहि ) वह अमृत हमें दे ॥ ३ ॥

[ १८४३ ] ( सुपर्णः वाजी ) गहड़के समान बलवान् ( विश्वरूपः ऋजः ) अनेक रूपोंसे युक्त और पापनाशक अग्नि ( जनित्रं अत्कं ) अपने उत्पत्ति स्थान - अरणियों - को अपने तेजसे व्याप्त करता है और ( हिरण्यं अभि बिभ्रत् ) सोनेके समान तेज धारण करता है । ( सूर्यस्य भानुं ) सूर्यके तेजको ( ऋतुथा वसानः ) ऋतुके अनुसार धारण करके ( मेधं परि स्वयं जजान ) यज्ञको स्वयं सम्पन्न करता है ॥ १ ॥

[ १८४४ ] ( रेतः विश्वरूपं यत्तेजः ) वीर्यके समान अनन्त रूपवाले वे तेज ( अप्सु शिश्रिये ) जलके आश्रयसे रहते हैं । ( यत् पृथिव्यां अधि सं बभूव ) जो पृथ्वी पर है और ( अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः ) जो अन्तरिक्षमें अपनी महिमाको फैलाता है, ( वृष्णः अश्वस्य रेतः कनिक्रन्ति ) बलवान् सोमका वीर्य शब्द करता हुआ तुम्हें प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[ १८४५ ] ( दिवः भुवनस्य धर्ता ) ब्रूलोक और पृथ्वीलोकको धारण करनेवाला ( विष्पतिः ) प्रजाओंका पालन करनेवाला ( सहस्रदाः शतदाः भूरिदावा ) यज्ञ करनेवालोंको हजारों, सैंकड़ों तरहके बहुतसा धन देनेवाला ( यज्ञः अयं ) यज्ञ करनेवाला यह अग्नि ( युक्ता सहस्रा परि वसानः ) अपने पास रखी हुई हजारों किरणोंको फैलाता हुआ ( सूर्यस्य भानुं दधार ) सूर्यके तेजको धारण करता है ॥ ३ ॥

[ १८४६ ] हे वेन ! ( सुपर्णं पतन्तं ) गहड़के समान उड़नेवाले ( हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं ) सोनेके समान पंखवाले वरुणके दूतको ( यमस्य योनौ शकुनं भुरग्युम् ) नियमन करनेवाले विद्युत् रूप अग्निके स्थान अन्तरिक्षमें पक्षीके समान उड़नेवाले सब जगत्का पोषण करनेवाले ( त्वा हृदा वेनन्तः ) तुम्हें अन्तःकरणसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते हुए स्तोता ( नाके यत् अभ्यचक्षत ) अन्तरिक्षमें जब देखते हैं, तब ( उप ) तेरे पास आते हैं ॥ २ ॥



१८४७ ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्रा विभ्रदस्थायुधानि ।

वसानो अत्कः सुरभिं दृशे कः स्वादर्णं नाम जनत प्रियाणि ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१२३।७ )

१८४८ द्रप्सः समुद्रमभि यजिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।

भानु शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ३ ॥ १३ ( खु ) ॥

[ धा० २६ । उ० २ । ख० ५ ] ( ऋ. १०।१२३।८ )

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

॥ इति नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ ९-२ ॥

॥ इति विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

[ १८४७ ] ( ऊर्ध्वः गन्धर्वः प्रत्यङ् ) ऊपर रहनेवाला जलोंको धारण करनेवाला वेन जब हमारे सामने आकर ( नाके अधि अस्थात् ) अन्तरिक्षमें स्थिर होता है, तब वह ( अस्य चित्रा आयुधानि विभ्रत् ) अपने विलक्षण शस्त्रोंको धारण करके ( दृशे सुरभिं अत्कं वसानः ) देखनेके लिए सुन्दर रूप धारण करते हुए ( स्वः न ) सूर्यके समान ( नाम प्रियाणि जनत ) प्रिय जलोंको उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[ १८४८ ] ( विधर्मन् द्रप्सः ) विशेष गुणोंसे युक्त, प्रवाह युक्त ( गृध्रस्य चक्षसा पश्यन् ) गृध्र - सूर्य - के तेजसे तेजस्वी होकर देखनेवाला वेन ( यत् समुद्रं अभि जिगाति ) जब पानीसे भरे हुए मेघके पास जाता है, तब ( भानुः शुक्रेण शोचिषा ) सूर्य स्वच्छ तेजसे ( तृतीये रजसि चकानः ) तीसरे ब्रह्मलोकमें प्रकाशित होकर ( प्रियाणि चक्रे ) प्रिय जलोंको उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

॥ यहां सातवां खण्ड समाप्त हुआ ॥

॥ विंशोऽध्यायः ॥

## विंश अध्याय

इस बीसवें अध्यायमें इन्द्र, अग्नि, सूर्य, आप और सोम देवताओंका वर्णन है, उन्हें अब क्रमसे देखिए—

इन्द्र

१ इन्द्रः नाम श्रुतः, ऋत्विग्यः ब्रह्मा [ १७६८ ]— यह इन्द्रके नामसे विख्यात है, यह ऋतुओंके अनुसार कार्य करनेवाला और उत्तम ज्ञानी है ।

२ हे शवसः पते ! त्वां इत् संयतः न गिरः यन्ति [ १७६९ ]— हे बलके स्वामी इन्द्र ! संयमी पुरुषकी जैसी स्तुति होती है, उसप्रकार तेरी स्तुति होती है ।

३ हे इन्द्र ! यथा पथा स्मृतयः त्वत् रातयः वि यन्तु [ १७७० ]— हे इन्द्र ! जिसप्रकार बड़े मार्गसे अनेक छोटे मार्ग निकलते हैं, उसीप्रकार तुझसे अनेक प्रकारके दान उपासकोंकी ओर निकलते हैं ।

४ ऊतये सुम्नाथ तुविकूर्मि ऋतीषहं शविष्ठं सत्पतिं त्वा इन्द्रं आवर्तयामसि [ १७७१ ]— स्वसंरक्षण और सुख प्राप्तिके लिए अनेक उपयोगी कर्म करनेवाले, हिंसक शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, बलवान् सज्जनोंका पालन करनेवाले तुझ इन्द्रको हम अपने पास बुलाते हैं ।

५ तुविशुष्म तुविक्रतो शम्बीवः मते ! विश्वया



महिषना आ पमाथ [ १७७२ ]- महा बलवान्, बहुत कार्य करनेवाले शक्तिमान् और बुद्धिमान् इन्द्र ! तू सब प्रकारकी महत्वपूर्ण शक्तियोंसे युक्त होकर व्याप्त होता है ।

६ यस्य महः ते हस्ता उमा-यन्तं हिरण्यं वज्रं परि ईयतुः [ १७७३ ]- जिस महान् पुच्छके - तेरे - हाथ पुष्पी पर संचार करनेवाले वज्रको धारण करते हैं, वज्रका प्रयोग करते हैं ।

७ शाकमना शाकः महः शूरः यत् चिकेत, तत् सत्यं इत् मोघं न [ १७८३ ]- अपनी शक्तिसे सामर्थ्य सम्पन्न ऐसा महान् शूर इन्द्र जो करनेका निश्चय करता है, वह निश्चयसे करके दिखाता है, वह निष्फल नहीं होता ।

८ स्पार्हं वसु जेता, उत दाता [ १७८३ ]- स्पृहणीय धन वह जीतकर लाता है और उसका दान करता है ।

९ एभिः वृष्ण्या पौस्यानि आ ददे [ १७८४ ]- इन ऋतुओंके साथ रहकर वह इन्द्र सामर्थ्यसे होनेवाले कार्य करता है ।

१० येभिः वृत्रहत्याय वज्री औक्षत् [ १७८४ ]- इन ऋतुओंके साथ रहकर वह वज्रधारी इन्द्र शत्रुको मारनेके लिए वृष्टि करता है, बाणोंकी वर्षा करता है ।

११ वृत्रहन्तमः शतक्रतुः इन्द्रः द्विता विदे [ १७९१ ]- शत्रुको मारनेवाला, सैकड़ों कर्म करनेवाला इन्द्र दोनों ही तरहके काम करता है ।

१२ महेवृधे महे प्रभरध्वम् [ १७९३ ]- महान् बुद्धि हो, इसलिए महान् इन्द्रको भरपूर हवि अर्पण करो ।

१३ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं [ १७९३ ]- ज्ञानी इन्द्रके बारेमें उत्तम भावना हृदयमें धारण करो ।

१४ चर्यणि-प्राः विशः प्रचर [ १७९३ ] प्रजाओंका पोषण करनेवाला तू प्रजाओंकी सहायता कर ।

१५ हे विप्राः ! उरुध्वसे महिने इन्द्राय सुवृत्तिं ब्रह्म जनयन्त, तस्य प्रतानि धीराः न भिनन्ति [ १७९४ ] हे विद्वानो ! विशेष व्यापक महान् इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो ।

१६ सत्रा राजानं अनुसमन्युं इन्द्रं एव वाणीः सद्ध्यै दधिरे [ १७९५ ]- सबका राजा, जिसके क्रोधके आगे कोई भी टिक नहीं सकता, ऐसे उस इन्द्रको शत्रुको हरानेके लिए स्तुति आगे करती है ।

१७ हे इन्द्र ! यत् यावत्, एतावत् अहं ईशीय [ १७९६ ]- हे इन्द्र ! जितने धनका तू स्वामी है, उतने धनका मैं भी स्वामी हूँ ।

१८ पापत्वाय न रंसिषम् [ १७९६ ]- पापी होनेके लिए मैं किसीको धन नहीं दूंगा ।

१९ हे मधवन् ! त्वत् अन्यत् आप्यं नहि, [ १७९७ ]- हे धनवान् इन्द्र ! तेरे सिवाय हमारा कोई दूसरा भाई नहीं है ।

२० वस्यः पिता च न अस्ति [ १७९७ ]- तेरे सिवाय प्रशंसनीय संरक्षक भी दूसरा कोई नहीं ।

२१ अस्मै इन्द्राय पुरो रथं शूषं सुप्र अर्चत [ १८०१ ]- इस इन्द्रके रथके आगे जानेवाले बलकी स्तुति करो ।

२२ समस्तु संगे अभीके चित् लोककृत् वृत्रहा अस्माकं चोदिता बोधि [ १८०१ ]- युद्धमें शत्रुके सेनाके अपने ऊपर चढ़ते हुए चले आने पर, लोगोंका कल्याण करने-वाला और शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र हमारा प्रेरक है, यह तू जान ।

२३ अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्ताम् [ १८०१ ]- शत्रुके धन्वकी डोरियां टूट जायें ।

२४ हे इन्द्र ! अहिं महन्, अशत्रुः जग्धिषे, विश्वं वार्यं पुण्यसि [ १८०२ ]- हे इन्द्र ! तू अहिको मारकर शत्रुरहित हो गया है । तू सब स्वीकार करने योग्य धन अपने पास बढ़ाता है ।

२५ नः विश्वाः अरातयः अर्यः सु विनशन्त, यः नः जिघांसति, शत्रवे वधं अस्ता अस्ति [ १८०३ ]- हमारे सब शत्रु जो हम पर चढ़ाई करते हैं नष्ट हो जायें । जो हमें मारना चाहता है, उस पर तू शस्त्र फेंक ।

इन्द्र सुप्रसिद्ध है । वह महान् ज्ञानी और ठीक समय पर काम करनेवाला है । वह संयमी है । अनेक उपयोगी कार्य वह करता है । वह अत्यन्त सामर्थ्यवान् है । वह सज्जनोंका अच्छी तरह पालन करता है । वह हाथोंमें वज्र धारण करता है और उनका उपयोग शत्रुके नाश करनेके लिए करता है । जो करनेका निश्चय करता है, वह कार्य वह करता ही है । सामर्थ्यसे होनेवाले महान् महान् कार्य वह करता है । वह शत्रुका नाश करके आर्योंकी रक्षा करता है । वह दोनों ही काम करता है । वह प्रजाओंका पालन अच्छी तरह करता है । इसलिए उस इन्द्रके बारेमें उत्तम विचार धारण करने-चाहिए । वह इन्द्र सबका राजा है । उसका क्रोध जिस पर पड़ता है वह नष्ट हो जाता है । इसलिए उसे प्रसन्न रखना चाहिए । इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई भी सच्चा मित्र नहीं है । वह ही सबका कल्याण करनेवाला है । युद्धमें वह ही सच्चा संरक्षक है । उसने राक्षसोंको मारा इस कारण उसका कोई



भी शत्रु बचा नहीं । हमारे शत्रुओंको भी इन्द्र मार दे और हमें भी शत्रुरहित करे ।

### अग्नि

अब अग्निका वर्णन देखिये—

१ यः द्विजन्मा सः होता अयं विश्वा वार्याणि श्रवस्था दधे [ १७७६ ]— वो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ हुआ, देवोंको बुलाकर यज्ञस्थानमें लानेवाला यह अग्नि सब चाहने योग्य धनोंकी और यज्ञस्वी कर्मोंको धारण करता है ।

२ हे अग्ने ! भद्रस्य दक्षस्य साधोः क्रतस्य बृहतः क्रतोः रथीः बभूव [ १७७८ ]— हे अग्ने ! कल्याणकारक और बल बढ़ानेवाले उत्तम सत्य ऐसे महान् यज्ञका तू संचालक होता है । यज्ञ कल्याण करता है, बल बढ़ाता है ऐसा यह यज्ञ अग्निमें होता है ।

३ हे अग्ने ! हव्यवाहनः दूतः अध्वराणां रथीः असि । अस्मे सुवीर्यं बृहत् श्रवः घेहि [ १७८१ ]— हे अग्ने ! तू हवनीय द्रव्य देवोंके पास पहुंचानेवाला दूत और अहिंसापूर्ण यज्ञका संचालक है । हमें उत्तम वीर्यसे युक्त महान् यज्ञ दे । अग्निमें हवन किए गए पदार्थ अति सूक्ष्म हो जाते हैं और अग्नि उन्हें जहां पहुंचाना होता है वहां पहुंचा देता है । यह अग्नि हिंसाके बिना यज्ञ करता है । इस यज्ञमें हिंसा नहीं होती । इन यज्ञोंसे वीर्य बढ़ता है और यज्ञ भी बढ़ता है ।

४ विरुक्मता ओजसा पुरुचिस् दीधानः द्रुहन्तरः परशुः न द्रुहन्तरः भवति [ १८१५ ]— विशेष तेजस्वी और बलसे अधिक प्रकाशमान होकर, शत्रुओंको काटनेवाले फरसेके समान, द्रोह करनेवालोंका नाश करनेवाला होता है ।

५ यस्य समृतौ वीडु चित् श्रुवत् [ १८१५ ]— जिसके साथ रहनेसे शत्रुको भी हराना आसान हो जाता है ।

६ निःपहमाणः यमते [ १८१५ ]— शत्रुको हराकर उसका नियमन करता है ।

७ पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः भानुना उदियर्षि [ १८१७ ]— शुद्धता करनेवाली किरणोंसे युक्त, निर्मल किरणोंसे युक्त, पूर्ण तेजस्वी, ऐसा तू अपने तेजसे उदयको प्राप्त होता है ।

८ अध्वरस्य इष्कर्त्तरिं प्रचेतसं महः राघसः क्षयन्तं वामस्य रार्ति [ १८२० ]— यज्ञ करनेवाले, ज्ञानी, बहुत धन पासमें रखनेवाले ऐसे अग्निकी हम स्तुति करते हैं ।

४८ [ साम. हिन्दी भा. २ ]

९ सुभगां महीं इषं सानसि रयिं दधासि [ १८२० ]— अधिक भाग्ययुक्त अन्न और सेवन करने योग्य धन अग्नि देता है ।

१० जनाः ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतं आग्निं सुम्नाय पुरः दधिरे [ १८२१ ]— लोग यज्ञ करनेवाले, पूज्य, सर्वत्र दर्शनीय अग्निको अपने सुखकी प्राप्तिके लिए अपने आगे स्थापित करते हैं ।

११ हे अग्ने ! त्वं यस्य सख्यं आविथ, सः सुवीराभिः वाजकर्मभिः तव ऊतिभिः प्रतरति [ १८२२ ]— हे अग्ने ! तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह उत्तम वीर पुरुषोंसे और बल बढ़ानेवाले कर्मोंसे युक्त तेरे संरक्षणोंसे संकटोंसे पार हो जाता है ।

१२ हे अग्ने ! ऊर्जा इषा आयुषा निवर्त्तस्व । अंहसः नः पाहि [ १८३२ ]— हे अग्ने ! तू बल, अन्न और आयुके साथ हमारे पास आ । पापसे हमारी रक्षा कर ।

१३ हे अग्ने ! रथ्या सह निवर्त्तस्व [ १८३३ ]— हे अग्ने ! तू धनके साथ हमारे पास आ ।

यह अग्नि वो अरणियोंकी रगड़से उत्पन्न होता है । वह कल्याण करनेवाले बल बढ़ाता है । यह हवनमें डाले गए पदार्थोंको जहां पहुंचाना होता है वहां पहुंचाता है और उत्तम वीर्य बढ़ाता है । जिसप्रकार फरसा लकड़ीको काटता है, उसीप्रकार यह अग्नि रोगबीजोंको नष्ट करती है । इसकी सहायतासे बलवान् रोगबीज भी नष्ट हो जाते हैं । इसका प्रकाश पवित्रता करनेवाला है । यह अग्नि उत्तम बल बढ़ानेवाले अन्न और धन देता है । सुख और आरोग्यके लिए ज्ञानी लोग इस अग्निकी स्थापना करते हैं । इस अग्निमें हवन करना बल बढ़ानेवाला कर्म है । अग्निसे तैय्यार किए गए अन्न जनुष्योंके बल, आरोग्य और आयु बढ़ाते हैं ।

### आपः ( जल )

१ आपः मयोभुवः, ताः नः ऊर्जे दधातन, महे रणाय चक्षसे [ १८३७ ]— जल निःसन्देह सुख बढ़ानेवाले हैं । वे हमारे बल बढ़ानेवाले हों तथा वे महान् और सुन्दर वर्शन करानेवाले हों ।

२ इह यः वः शिष्यतमः रसः तस्य नः भाजयत [ १८३८ ]— यहां जो तुममें अत्यन्त कल्याण करनेवाला रस है, उसका सेवन हमारे द्वारा हो, ऐसा कर ।

३ हे आपः ! यस्य क्षयाय जिन्वथ, तस्मै अरं वः



आमाम [१७३९]— हे जलो ! जिसको सुखसे निवास करानेके लिए तुम प्रयत्न करते हो, वे कार्य हम तुमसे पूर्णरूपसे करवायें।

पानी आरोग्य बढ़ानेवाले और सुख देनेवाले हैं। उससे शरीरका बल बढ़ता है, और शरीरकी सुन्दरता बढ़ती है। पानीमें जो रस है, वह कल्याण करनेवाला है। उसे पानेवाला मनुष्य निरोगी होकर सुखी होता है। इन मंत्रोंमें जल चिकित्साका वर्णन है। पानी एक उत्तम औषधि है। जल-चिकित्सासे बहुत रोग दूर हो सकते हैं। इस प्रकार शुद्ध जल अत्यन्त उपयोगी है।

### वायु

१ वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आवातु, नः आयुंषि प्रतारिषत् [१८४०]— वायु हमारे हृदयका आनन्द बढ़ानेवाला और आरोग्य बढ़ानेवाला होकर बहे और हमारी आयु बढ़ावे।

२ हे वात ! ते गृहे यत् अदः गुहा अमृतं निहितं, तस्य नः धेहि [१८४२]— हे वायो ! तेरे घरमें जो अमृत रखा हुआ है, उसे हमें दे।

३ हे वात ! नः पिता, आता, सखा असि, नः जीवातवे कृधि [१८४१]— हे वायो ! तू ही हमारा पिता, भाई और मित्र है, इसलिए तू हमारा जीवन दीर्घ कर।

वायुमें औषधिका गुण है, वायु उन गुणोंको लेकर हमारे पास आये और हमारी उमर बढ़ावे। वायुमें अमृत है। इसलिए वायुका ठीक तरह सेवन करनेसे मृत्यु दूर होकर आयु बढ़ती है।

### सोम

१ यः जागार तं अयं सोम आह, तच्च सख्ये अहं अस्मि [१८२६]— जो जागता रहता है, उससे यह सोम कहता है कि तेरी मित्रतामें मैं हूँ। तेरा मैं मित्र हूँ।

जागृत रहनेवाले लोगोंसे सोम मित्रता करनेवाला है। वह उसका कल्याण करनेवाला है। सोमका उपयोग जागृत रहकर करना चाहिए।

### सुभाषित

१ वेधसः कारवः ज्योतिः जज्ञानं भृजम्भि [१७६६]— कार्य करनेवाले ज्ञानी तेजस्विता प्रकट करनेवालेको शुद्ध करते हैं।

२ पुनानाय ते तानि सुषहा [१७६७]— शुद्ध होनेवाले तुम वे उत्तम प्रकारसे रक्षा करनेवाले बल प्राप्त होते हैं।

३ एषः ऋत्विग्यः ब्रह्मा गृणे [१७६८]— यह ऋतुओंके अनुसार कार्य करनेवाला ज्ञानी प्रशंसित होता है।

४ हे शवसः पते ! संयतः न त्वां गिरः यन्ति [१७६९]— हे बलके स्वामी इन्द्र ! जैसे मनुष्य संयमी पुरुषको प्राप्त होते हैं, उसीप्रकार स्तुतियां तुम्हें प्राप्त होती हैं।

५ हे इन्द्र ! यथा पथा स्तुतयः, त्वत् रातयः वि यन्तु [१७७०]— हे इन्द्र ! जैसे बड़े रास्तेसे छोटे-छोटे रास्ते निकलते हैं, उसीप्रकार तुम्हें अनेक प्रकारके वान निकलते हैं।

६ ऊतये सुज्ञाय तुविकूर्मिं ऋतीषहं शविष्ठं सत्पतिं त्वा इन्द्रं आवर्तयामसि [१७७१]— स्वसंरक्षण और सुख प्राप्तिके लिए अनेक कर्म करनेवाले जिसका शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रकी हम उपासना करते हैं।

७ तुविशुष्म तुविकृतो शचीवः मते ! विश्वया महित्वना आ पप्राथ [१७७२]— हे महा बलवान् अनेक कर्म करनेवाले, शक्तिमान् और बुद्धिमान् इन्द्र ! सब प्रकारके महत्त्वपूर्ण शक्तियोंके साथ तू सर्वत्र व्याप्त है।

८ भद्रस्य दक्षस्य साधोः ऋतस्य बृहतः कतोः रथीः बभूथ [१७७८]— कल्याण करनेवाले, बल बढ़ानेवाले, उत्तम, सत्य और बड़े-बड़े कर्मोंका तू संचालक है।

९ ज्योतिः स्वः न, विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः नः अर्वाक् भव [१७७९]— ज्योतिस्वरूप सूर्यके समान, सब तेजोंसे युक्त उत्तम मन धारण करनेवाला तू हमारे पास आ।

१० विवस्वत् चित्रं राधः आ वह, अद्य उषर्बुधः देवान् आ वह [१७८०]— तेजस्वी और विलक्षण धन लेकर आ और आज सबेरे प्रातःकाल उठनेवाले विद्वानोंको लेकर इस यज्ञमें आ।

११ अध्वराणां रथीः असि [१७८१]— हिसारहित कर्मोंका तू संचालक है।

१२ अस्मे सुवीर्यं बृहत् श्रवः धेहि [१७८१]— हमें उत्तम पराक्रम करनेके सामर्थ्य और महान् यश दे।

१३ विधुं समने बहूनां दद्राणं युवानं सन्तं पलितः जगार [१७८२]— अनेक कार्य करनेवाले, युद्धमें बहुतसे शत्रुओंको मारनेवाले तपनको भी वृद्धावस्था निगल जाती है।

१४ देवस्य महित्वना काव्यं पश्य [१७८२]— देवके महिमासे भरे हुए इस काव्यको देखो।



१५ अद्य ममार स ह्यः समान [ १७८२ ]- आज जो मर गया वही कल प्रकट होता है । ' समान ' ( सं-आन ) उत्तम रीतिसे प्राण धारण करता है ।

१६ यत् चिकेत, तत् सत्यं इत्, मोघं न [ १७८३ ]- इन्द्र जो कर्तव्य करनेका निश्चय करता है, उसे सत्य करके बिखाता है, उसे व्यर्थ नहीं जाने देता ।

१७ स्पार्हं वसु जेता उत दाता [ १७८३ ]- वह चाहने योग्य धनको जीतकर लाता है और उसका दान करता है ।

१८ वृष्ण्या पौस्यानि आ ददे [ १७८४ ]- वह बल बढ़ानेवाले पौषके काम करता है ।

१९ ये देवाः महः क्रियमाणस्य कर्मणः क्रते कर्म उदजायन्त [ १७८४ ]- जो देव महत्वके करने योग्य कार्योंमें सत्य कर्म ही करके दिखाते हैं ।

२० हे सूर्य ! महान् असि बद् [ १७८८ ]- हे सूर्य ! तू निश्चयसे महान् है ।

२१ आदित्य ! महान् असि बद् [ १७८८ ]- हे सूर्य ! तू महान् है, यह सत्य है ।

२२ ते सतः महः महिमा [ १७८८ ]- तेरे जैसे महान्-की महिमा भी महान् है ।

२३ पनिष्ठम ! मत्ता महान् असि [ १७८८ ]- हे स्तुत्य ! तू अपनी महिमासे महान् है ।

२४ हे सूर्य ! श्रवसा महान् असि बद् [ १७८९ ]- हे सूर्य ! तू अपने महान् यशसे महान् है । यह सत्य है ।

२५ देवानां मत्ता महान् असि [ १७८९ ]- तू देवोंके महत्वके कारण बड़ा है ।

२६ असुर्यः पुरोहितः [ १७८९ ]- तू असुरोंका नाश करनेवाला है इसलिए तुझे आगे स्थापित किया है ।

२७ ज्योतिः विभुः अदाभ्यं [ १७८९ ]- तेरे तेज व्यापक और न दबनेवाले हैं ।

२८ वृत्रहन्तमः शतक्रतुः इन्द्रः द्विता विदे [ १७९१ ]- वृत्रको मारनेवाला, संकड़ों कर्म करनेवाला इन्द्र दोनों प्रकारके कार्य करता है । आर्योंका संरक्षण और दुष्टोंका नाश ये दोनों उसके काम हैं ।

२९ वः मेहेवृधे मेहे प्रभरध्वम् [ १७९३ ]- अपने महान् संवर्धनके लिए महान् बीरका विशेष सम्मान करो । उसे जो देना हो, भरपूर दो ।

३० प्रचेतसे सुमर्ति प्रकृणुध्वं [ १७९३ ]- विशेष बुद्धिमान्के विषयमें अपने उत्तम विचार बना ।

३१ चर्षणिप्राः विशः प्रचर [ १७९३ ]- प्रजाओंका पोषण करनेवाला तू सब प्रजाओंका पोषण कर ।

३२ हे विप्राः ! उरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुवृर्त्ति ब्रह्म जनयन्त, तस्य व्रतानि धीराः न भिनन्ति [ १७९४ ] हे ब्राह्मणो ! विशेष व्यापक इन्द्रके लिए उत्तम स्तुतिके स्तोत्र कहो । उसके कार्य बुद्धिमान् लोग विनष्ट नहीं कर सकते ।

३३ सत्रा राजानं अनुत्तमन्युं इन्द्रं एव वाणीः सहधै दधिरे [ १७९५ ]- सबका एक ही समयमें राजा होनेवाले, जिसके क्रोधके आगे कोई ठहर नहीं सकता, ऐसे इन्द्रको ही हमारी वाणी शत्रुओंको हरानेके लिए आगे करती है ।

३४ हर्यश्वाय आपीन् सं वर्धय [ १७९५ ]- इन्द्रकी स्तुति करनेके लिए मित्रको प्रोत्साहन दो ।

३५ हे इन्द्र ! यत् यावतः, एतावत् अहं ईशाय [ १७९६ ]- हे इन्द्र ! जितने धनका तू स्वामी है, उतनेका ही मैं स्वामी होऊँ ।

३६ स्तोतारं इत् दधिषे, पापत्वाय न रंक्षिषम् [ १७९६ ]- स्तोताको मैं धन देकर उसका धारण करूँगा, पर उसे पापमें प्रवृत्त नहीं होने दूँगा । पाप करनेमें वह आनन्द लाने ऐसा उसे अबनत नहीं होने दूँगा ।

३७ कुहचिद् विद महयते दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत् [ १७९७ ]- इन्द्र कहता है की जहाँ पर भी रहकर महत्वके कार्य करनेवालेको मैं धन देता हूँ ।

३८ हे मघवन् ! त्वत् अन्यत् आप्यं नहि, वस्यः पिता च न अस्ति [ १७९७ ]- हे इन्द्र ! तेरे सिवाय हमारा दूसरा कोई भाई नहीं है, और प्रशंसनीय पिता भी दूसरा कोई नहीं ।

३९ अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध [ १७९७ ]- अर्चना करनेवाले ब्राह्मणोंके मन तू जान ।

४० अन्तमा सच्चा इमा दुवांसि कृष्व [ १७९८ ]- मैं बहुत निकटका मित्र हूँ ऐसी भावनासे इन सेवाओंको स्वीकार कर ।

४१ तुरस्य ते गिरः असुर्यस्य विद्वान् न अपि मृष्ये [ १७९९ ]- शीघ्रतासे शत्रुओंका नाश करनेवाले तेरी स्तुतियोंको तेरे बलको जाननेवाला मैं दूर नहीं कर सकता । तेरी स्तुति मैं अवश्य करूँगा ।



४२ स्वयशः ते नाम सदा विवर्धिम [ १७९९ ]- अपने यशको बढ़ानेवाले तेरे नामको मैं सदा लेता रहूंगा ।

४३ मनीषी त्वां इत् भूरि हवते [ १८०० ]- बुद्धिमान तेरे लिए बहुत हवन करता है ।

४४ अस्मत् आरे ज्योक् मा कः [ १८०० ]- हमसे दूर तू बहुत ज्यादा समय तक न रह ।

४५ अस्मै इन्द्राय पुरोरथं शूणं सु प्र अर्चत [ १८०१ ] इस इन्द्रके रथके आगे रहनेवाले सामर्थ्यका अच्छी तरह पूजन करो ।

४६ समत्सु संगे अभीके चित् लोककृत् वृत्रहा अस्माकं चोदिता बोधि [ १८०१ ]- यदि युद्धमें शत्रुकी सेना हम पर चढती हुई पास आ जावे, तो लोगोंका पालन करनेवाला और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र हमारा उत्साह बढ़ानेवाला है, यह तुम जानो ।

४७ अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः न भन्तां [ १८०१ ]- अन्य शत्रुओंके धनुषकी डोरियां टूट जायें ।

४८ अहिं अहन् अशत्रुः जशिषे [ १८०२ ]- अहिको मारकर तू शत्रुरहित होता है ।

४९ विश्वं वार्यं पुष्यसि [ १८०२ ]- सब चाहने योग्य धनको तू बढ़ाता है ।

५० तं त्वा परिष्वजामहे [ १८०२ ]- उस तुझे हम बशमें करते हैं ।

५१ नः विश्वाः अरातयः अर्यः सुविनशन्त [ १८०३ ]- हम पर चढकर चले आनेवाले सब शत्रु उत्तम रीतिसे नष्ट हो जायें ।

५२ यः नः जिघांसति शत्रवे वधं अस्ता अस्मि [ १८०३ ]- जो हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, उस शत्रुपर तू मारक अस्त्र फेंकता है ।

५३ ते या रातिः वसु ददिः [ १८०३ ]- तेरे वे दान हमें धन देवें ।

५४ हे हरिवः ! रेवतः स्तोता रेवान् स्यात् [ १८०४ ]- हे घोड़े पासमें रखनेवाले इन्द्र ! तेरे समान धनवान्की स्तुति करनेवाला धनवान् होगा ही ।

५५ त्वावतः मघोनः सुतस्य प्रेदुः [ १८०४ ]- तेरे जैसे धनवालेकी स्तुति करनेवाला अवश्य धनवान् होगा ही ।

५६ अ-गोः रणिः आ चिकेत [ १८०५ ]- गाय न पालनेवालोंके धन तू जानता है ।

५७ पीयत्नवे नः मा परा दाः [ १८०६ ]- हिंसक शत्रुओंके आधीन हमें न कर ।

५८ शर्धते मा [ १८०६ ]- नाश करनेवालोंके अधीन हमें मत कर ।

५९ हे शचीवः । शचीभिः शिक्ष [ १८०६ ] हे शक्तिमान् इन्द्र ! अपनी शक्तिसे हमें धन दे ।

६० सः विरुक्मता ओजसा पुरुचित् दीधानः दुहन्तरः भवति [ १८१५ ] वह अपने तेजस्वी बलसे अत्यन्त तेजस्वी होकर शत्रुका नाश करनेवाला होता है ।

६१ यस्य समृतौ वीडु चित् श्रुवत् [ १८१५ ]- जिसके साथ रहनेसे बलवान् शत्रु भी हार जाता है ।

६२ धन्वासहा न अयते [ १८१५ ]- धनुषधारी कीर अपनी जगहसे नहीं हटता ।

६३ निःपहमाणः यमते [ १८१५ ]- शत्रुको हराने-वाला सबका नियमन करता है ।

६४ तव वयः श्रवः [ १८१६ ]- तेरा अस्त्र प्रशंसनीय है ।

६५ हे विभावसो ! अर्चयः महि भ्राजन्ते [ १८१६ ]- हे तेजस्वी अग्ने ! तेरी ज्वालायें बहुत प्रवीण हो चुकी हैं ।

६६ पावकवर्चाः, शुक्रवर्चाः, अनूनवर्चाः भानुना उदियर्षि [ १८१७ ]- शुद्ध करनेवाली किरणोंसे युक्त, निर्मल तेजसे युक्त, पूर्ण तेजस्वी ऐसा तू अपने तेजसे उबयको प्राप्त होता है ।

६७ हे अमर्त्य अग्ने ! जन्तुभिः इरज्यन् अस्मे रायः प्रथयस्व [ १८१९ ]- हे अमर अग्ने ! अपने तेजसे तेजस्वी हुआ हुआ तू हमारे धन बढ़ा ।

६८ दर्शतस्य वपुषः विराजसि [ १८१९ ]- तू सुन्दर शरीरसे सुशोभित होता है ।

६९ दर्शतं क्रतुं पृणक्षि [ १८१९ ]- दर्शनीय सुन्दर यज्ञकर्मको उत्तम फल देता है ।

७० अध्वरस्य इष्कर्त्तारं प्रचेतसं, महः राघसः क्षयन्तं, वामस्य रातिं सुभगां महीं इषं, सानसि रायिं दधासि [ १८२० ]- अहिंसापूर्ण यज्ञके संस्कार करनेवाले, विशेष ज्ञानी, बहुत धन पासमें रखनेवाले और उत्तम धन देनेवाले तेरी मैं स्तुति करता हूँ । तू उत्तम भाग्य युक्त बहुत अन्न और सेवनीय धन हमें देता है ।

७१ जनाः ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतं अग्निं सुम्नाय पुरः दधिरे [ १८२१ ]- याजक यज्ञ करनेवाले पूज्य, सब प्रकारसे दर्शनीय अग्निको सुख हो, इसलिए अपने आगे स्थापित करते हैं ।

७२ त्वं यस्य सख्यं आविथ, सः सुवीराभिः वाज-



कर्मभिः तव ऊतिभिः प्र तरति [ १८२२ ]- तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह वीर पुत्रोंसे और बलवर्धक कर्मोंसे युक्त होता है और तेरे संरक्षणोंसे युक्त होकर संकटोंसे पार हो जाता है।

७३ शुक्रः दिवि विराजति, महिषीव विजायते [ १८२५ ]- अग्नि प्रदीप्त होकर आकाशमें प्रकाशित होता है, रानीके समान वह सुशोभित होता है।

७४ यो जागार तं ऋचः कामयन्ते [ १८२६ ]- जो जागता है, उसकी इच्छा ऋचायें करती हैं।

७५ यो जागार तं उ सामानि यन्ति [ १८२६ ]- जो जागता रहता है उसे साम प्राप्त होता है।

७६ यः जागार तं अयं सोमः आह, तव सख्ये अहं अस्मि [ १८२६ ]- जो जागृत रहता है, उससे यह सोम कहता है कि मैं तेरा मित्र होकर रहता हूँ।

७७ अहं न्योकाः अस्मि [ १८२६ ]- मैं घर बनाकर नहीं रहता।

७८ पूर्वसङ्ग्रहः सखिभ्यः नमः [ १८२८ ]- पहलेसे यज्ञमें बैठनेवाले मित्रोंको मैं नमस्कार करता हूँ।

७९ साकंनिषेभ्यः नमः [ १८२८ ]- पास पास बैठनेवालोंको नमस्कार करता हूँ।

८० विश्वा रूपाणि ओकांसि देवाः चक्रिरे [ १८३० ]- अनेक रूपोंके घर देवोंने बनाये हैं।

८१ हे अग्ने ! ऊर्जा इषा आयुषा पुनः निवर्त्तस्व [ १८३२ ]- तू बल, अन्न और आयुके साथ हमारे पास आ।

८२ अंहसाः नः पुनः पाहि [ १८३२ ]- पापसे हमारी बार बार रक्षा कर।

८३ अग्ने ! रय्या सह निवर्त्तस्व [ १८३३ ]- हे अग्ने ! धनके साथ तू हमारे पास आ।

८४ हे इन्द्र ! यथा त्वं वस्वः एकः इत्, यत् अहं ईशीय, मे स्तोता गोसखा स्यात् [ १८३४ ]- हे इन्द्र ! जैसा तू अकेला ही धनका स्वामी है, वैसा ही मैं धनका स्वामी यदि हो जाऊं, तो मेरी स्तुति करनेवाला गायोंका मित्र हो।

८५ आपः मयोभुवः स्था, ताः नः ऊर्जे दधातन, महे रणाय चक्षसे [ १८३७ ]- जल निस्तब्धेह सुख देनेवाले हैं, वे हमारे बल बढ़ानेवाले हों, वे महान् और सुन्दर ज्ञानको देनेवाले हों।

८६ इह वः यः शिवतमः रसः, तस्य नः भाजयत [ १८३८ ]- हे जलो ! यहाँ जो तुम्हारा अत्यन्त सुख देनेवाला रस है, उसे हमें सेवन करनेके लिए दो।

८७ हे आपः ! यस्य क्षयाय जिन्वथ, तस्मै अरं गमाम [ १८३९ ]- हे जलो ! जिसका यहाँ निवास हो, ऐसी इच्छा करते हो, उसके लिए हम पूर्ण रूपसे उपयोगी हों, ऐसा तुम करो।

८८ वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आ वातु, नः आयूंषि प्रतारिषत् [ १८४० ]- वायु हमारी तरफ हृदयको आनन्द देनेवाले और सुखकारक औषध लेकर आवे, और हमारी आयु बढ़ावे।

८९ हे वात ! नः पिता, भ्राता, सखा अस्मि, सः नः जीवातवे कृधि [ १८४१ ]- हे वायो ! तू हमारा पिता, भाई और मित्र है, वह तू हमारी आयु दीर्घ कर।

९० हे वात ! ते गृहे गुहा अमृतं निहितं, हे विभावसो ! तस्य नः धेहि [ १८४२ ]- हे वायो ! तेरे घरमें गुप्त स्थान पर अमृत रखा हुआ है। हे धन पासमें रखनेवाले वायो ! वे धन हमें दे।

## उपमा

१ समुद्रं वर्ध [ १७६७ ]- समुद्रके समान पाश्र्वोंको भर दे।

२ संयतः न [ १७६९ ]- संयमी पुरुषके समान ( गिरः यन्तिः ) स्तुतियां तुझे प्राप्त होती हैं।

३ यथा पथा स्तुतयः [ १७७० ]- जैसे बड़े रास्तेसे अनेक छोटे रास्ते फूटते हैं, ( त्वत् रातयः वियन्तु ) उसीप्रकार तुझसे अनेक दान निकलते हैं।

४ यः अर्वा नभन्यः न [ १७७४ ]- जो [ अग्नि ] गतिमान् वायुके समान वेगवाला होता है।

५ अश्वं न [ १७७७ ]- जिसप्रकार घोड़ा मनुष्यको यथास्थान पहुँचाता है, उसीप्रकार वह अग्नि ( भद्रं क्रतुं ) कल्याण करनेवाले यज्ञको बढ़ाता है।

६ होता इव [ १७८७ ]- जिसप्रकार होता स्तुति करता है, उसीप्रकार ( प्रातः मत्सति ) वह प्रातःकाल सोमपानकी इच्छा करता है।



७ उरां वृकः न [१८०८]- भेडको जिसप्रकार भेड़िया कंपाता है, उसीप्रकार ( एषां नेमिः विधुनुते ) ये पत्थरोंकी धारें सोमलताको कूटते हुए कंपाती हैं।

८ रथाः इव [१८१२]- जिसप्रकार रथोंको तैय्यार करते हैं, उसीप्रकार ( अस्तुग्रन् ) अन्न तैय्यार करते हैं।

९ विप्रं न जातवेदसं [१८१३]- विप्रके समान ज्ञानी अग्निके समान तेजस्वी होता है।

१० द्यां इव परिज्मानं [१८१४]- सूर्यके समान घूमनेवाला।

११ द्रुहन्तरः परशुः न [१८१५]- लकड़ीको काटने-वाले फरसेके समान वह अग्नि ( द्रुहन्तरः भवति ) शत्रुओंको काटनेवाला होता है।

१२ महिषी इव विजायते [१८२५]- रानीके समान वह अग्नि सुशोभित होता है।

१३ स्वः न [१८४७]- सूर्यके समान ( वृशे सुरभिः अत्कं वस्तानः ) दीखनेमें सुन्दर लगानेवाले रूपको धारण करता है।

## विंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः              | देवता       | छन्दः           |
|-------------|--------------|-------------------|-------------|-----------------|
|             |              | ( १ )             |             |                 |
| १७६५        | ९।१९।१       | नृमेष आंगिरसः     | पवमानः सोमः | गायत्री         |
| १७६६        | ९।१९।२       | नृमेष आंगिरसः     | "           | "               |
| १७६७        | ९।१९।३       | नृमेष आंगिरसः     | "           | "               |
| १७६८        | —            | नृमेषः वामदेवो वा | इन्द्रः     | द्विपदा पंक्तिः |
| १७६९        | —            | नृमेषः वामदेवो वा | "           | "               |
| १७७०        | —            | नृमेषः वामदेवो वा | "           | "               |
| १७७१        | ८।६८।१       | प्रियमेषः आंगिरसः | "           | अनुष्टुप्       |
| १७७२        | ८।६८।२       | प्रियमेषः आंगिरसः | "           | गायत्री         |
| १७७३        | ८।६८।३       | प्रियमेषः आंगिरसः | "           | "               |
| १७७४        | १।१४९।३      | दीर्घतमा औचध्यः   | अग्निः      | बिंशट्          |
| १७७५        | १।१४९।४      | दीर्घतमा औचध्यः   | "           | "               |
| १७७६        | १।१४९।५      | दीर्घतमा औचध्यः   | "           | "               |
| १७७७        | ४।१०।१       | वामदेवो गौतमः     | "           | पदपंक्तिः       |
| १७७८        | ४।१०।२       | वामदेवो गौतमः     | "           | "               |
| १७७९        | ४।१०।३       | वामदेवो गौतमः     | "           | "               |

( २ )

|      |         |                     |         |  |
|------|---------|---------------------|---------|--|
| १७८० | १।४४।१  | प्रस्कण्वः काण्वः   | "       | प्रगाथः- ( विषमा बृहती, समा सतीबृहती ) |
| १७८१ | १।४४।२  | प्रस्कण्वः काण्वः   | "       | "                                      |
| १७८२ | १०।५५।५ | बृहदुक्थो वामदेव्यः | इन्द्रः | श्रिष्टुप्                             |
| १७८३ | १०।५५।६ | बृहदुक्थो वामदेव्यः | "       | "                                      |
| १७८४ | १०।५५।७ | बृहदुक्थो वामदेव्यः | "       | "                                      |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः                        | देवता  | छन्दः                                     |
|-------------|--------------|-----------------------------|--------|---|
| १७८५        | ८।९४।४       | बिन्दुः पूतबक्षो वा आंगिरसः | मरुतः  | गायत्री                                   |
| १७८६        | ८।९४।५       | बिन्दुः पूतबक्षो वा आंगिरसः | "      | "   |
| १७८७        | ८।९४।६       | बिन्दुः पूतबक्षो वा आंगिरसः | "      | "   |
| १७८८        | ८।१०१।११     | जमदग्निर्भागवः              | सूर्यः | प्रगाथः= ( बिषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १७८९        | ८।१०१।१२     | जमदग्निर्भागवः              | "      | "   |

( ३ )

|      |         |                      |         |   |
|------|---------|----------------------|---------|---|
| १७९० | ८।९३।३१ | सुकक्ष आंगिरसः       | इन्द्रः | गायत्री                                   |
| १७९१ | ८।९३।३२ | सुकक्ष आंगिरसः       | "       | "   |
| १७९२ | ८।९३।३३ | सुकक्ष आंगिरसः       | "       | "   |
| १७९३ | ७।३१।१० | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | बिराट्                                    |
| १७९४ | ७।३१।११ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | "   |
| १७९५ | ७।३१।१२ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | "   |
| १७९६ | ७।३१।१८ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | प्रगाथः= ( बिषमा बृहती,<br>समा सतोबृहती ) |
| १७९७ | ७।३२।१९ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | "   |
| १७९८ | ७।३२।१४ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | बिराट्                                    |
| १७९९ | ७।३२।१५ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | "   |
| १८०० | ७।३२।१६ | वसिष्ठो मंत्रावरुणिः | "       | "   |

( ४ )

|      |          |                  |              |         |
|------|----------|------------------|--------------|---------|
| १८०१ | १०।१३३।१ | सुवासः पंजवनः    | "            | शक्वरी  |
| १८०२ | १०।१३३।२ | सुवासः पंजवनः    | "            | "       |
| १८०३ | १०।१३३।३ | सुवासः पंजवनः    | "            | "       |
| १८०४ | ८।१।१३   | मेधातिथिः काण्वः | "            | गायत्री |
| १८०५ | ८।१।१४   | मेधातिथिः काण्वः | "            | "       |
| १८०६ | ८।१।१५   | मेधातिथिः काण्वः | "            | "       |
| १८०७ | ८।३४।१   | नीपातिथिः काण्वः | "            | "       |
| १८०८ | ८।३४।३   | नीपातिथिः काण्वः | "            | "       |
| १८०९ | ८।३४।२   | नीपातिथिः काण्वः | "            | "       |
| १८१० | ९।६७।१६  | जमदग्निर्भागवः   | पशुमानः सोमः | "       |
| १८११ | ९।६७।१८  | जमदग्निर्भागवः   | "            | "       |
| १८१२ | ९।६७।१७  | जमदग्निर्भागवः   | "            | "       |

( ५ )

|      |          |                    |        |                |
|------|----------|--------------------|--------|----------------|
| १८१३ | १।१२७।१  | परुच्छपो वैवोदासिः | अग्निः | अत्यष्टिः      |
| १८१४ | १।१२७।२  | परुच्छपो वैवोदासिः | "      | "              |
| १८१५ | १।१२७।३  | परुच्छपो वैवोदासिः | "      | "              |
| १८१६ | १०।१४०।१ | अग्निः पावकः       | अग्निः | बिष्टारपंक्तिः |
| १८१७ | १०।१४०।२ | अग्निः पावकः       | "      | "              |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः         | देवता  | छन्दः             |
|-------------|--------------|--------------|--------|-------------------|
| १८१८        | १०।१४०।३     | अग्निः पावकः | अग्निः | सतोबृहती          |
| १८१९        | १०।१४०।४     | अग्निः पावकः | "      | "                 |
| १८२०        | १०।१४०।५     | अग्निः पावकः | "      | "                 |
| १८२१        | १०।१४०।६     | अग्निः पावकः | "      | उपरिष्ठाञ्ज्योतिः |

( ६ )

|      |         |                  |              |  |
|------|---------|------------------|--------------|--|
| १८२२ | ८।१९।३० | सोभरिः काण्वः    | "            | काकुभः प्रगावः= ( बिषमा<br>ककुप्, सभा सतोबृहती |
| १८२३ | ८।१९।३१ | सोभरिः काण्वः    | "            | "  |
| १८२४ | १०।९।१६ | अरुणो वसंतहृष्यः | "            | जगती   |
| १८२५ | —       | अग्निः प्रजापतिः | "            | गायत्री  |
| १८२६ | ५।४४।१४ | अवत्सारः काश्यपः | बिह्वे देवाः | त्रिष्टुप्                                     |
| १८२७ | ५।४४।१५ | अवत्सारः काश्यपः | "            | "  |
| १८२८ | —       | मृगः             | अग्निः       | गायत्री  |
| १८२९ | —       | मृगः             | "            | "  |
| १८३० | —       | मृगः             | "            | "  |
| १८३१ | —       | अवत्सारः काश्यपः | "            | "  |
| १८३२ | —       | अवत्सारः काश्यपः | "            | "  |
| १८३३ | —       | अवत्सारः काश्यपः | "            | "  |

( ७ )

|      |          |  |         |            |
|------|----------|--|---------|------------|
| १८३४ | ८।१४।१   | गोबृक्षस्यश्चसूक्तिनो काण्वायनो                | इन्द्रः | "          |
| १८३५ | ८।१४।२   | गोबृक्षस्यश्चसूक्तिनो काण्वायनो                | "       | "          |
| १८३६ | ८।१४।३   | गोबृक्षस्यश्चसूक्तिनो काण्वायनो                | "       | "          |
| १८३७ | १०।९।१   | त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीपो आम्बरीषो वा | आपः     | "          |
| १८३८ | १०।९।२   | त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीपो आम्बरीषो वा | "       | "          |
| १८३९ | १०।९।३   | त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीपो आम्बरीषो वा | "       | "          |
| १८४० | १०।१८६।१ | उलो वातायनः                                    | वायुः   | "          |
| १८४१ | १०।१८६।२ | उलो वातायनः                                    | "       | "          |
| १८४२ | १०।१८६।३ | उलो वातायनः                                    | "       | "          |
| १८४३ | —        | सुपर्णः  | अग्निः  | त्रिष्टुप् |
| १८४४ | —        | सुपर्णः  | "       | "          |
| १८४५ | —        | सुपर्णः  | "       | "          |
| १८४६ | १०।१२३।६ | वेनो भार्गवः                                   | वेनः    | "          |
| १८४७ | १०।१२३।७ | वेनो भार्गवः                                   | "       | "          |
| १८४८ | १०।१२३।८ | वेनो भार्गवः                                   | "       | "          |





## अथैकविंशोऽध्यायः ।

अथ नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ९-३ ॥

( १-९ ) १-४, ५ ( १-२ ) अत्रतिरथ ऐन्द्रः; ५ ( ३ ), ६ ( ३ ), ८ ( १, ३ ) पायुर्भारद्वाजः; ७ ( १-२ ) शासो भारद्वाजः; ९ ( १ ) जय ऐन्द्रः; ९ ( २-३ ) गोतमो राहगणः; ४ ( ३ ) ६ ( १-२ )-? ७ ( ३ )... ८ ( २ )...  
 ॥ १, २ ( २-३ ), ३-४, ५ ( २ ), ६, ७, ९ ( १ ) इन्द्रः; ५ ( २ ) इन्द्रो मरुतो वा; २ ( १ ) बृहस्पतिः;  
 ५ ( १ ) अप्वा देवी, ५ ( ३ ) इषवः; ६ ( ३ ) ( संग्रामाशिषः ) युद्धभूमि - कवच - ब्रह्मणस्पत्यादितयः;  
 ८ ( १, ३ [ संग्रामाशिषः १ वर्म - सोम - वरुणाः, ३ देवब्रह्माणि ]; ९ सोमावरुणौ । ( २-३ ) विश्वे  
 देवाः; ८ ( ३ )... ॥ ३ ॥ १-४, ५ ( १ ), ६ ( १ ) ८ ( १ ) ९ ( १-२ ) त्रिष्टुप्;  
 ५ ( २ ३ ), ६ ( २ ) ७ ( १-२ ), ८ ( २ ) अनुष्टुप्; ६ ( ३ ) पंक्तिः;  
 ९ ( ३ ) विराट्स्थाना; ७ ( ३ ) विराट् जगती ८ ( ३ )... ॥

१८४९ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।

सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०३।१ )

१८५० सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।

तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०३।२ )

१८५१ स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी स संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।

स संस्रष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्वं रघन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥ १ ( फे ) ॥

[ धा० ४० । उ० २। स्व० ७ ] ( ऋ. १०।१०३।३ )

[ १८४९ ] ( आशुः भीमः ) शीघ्रता करनेवाला और भयंकर ( वृषभः न शिशानः ) बलके समान शत्रुको मारनेवाला ( घनाघनः ) शत्रुका नाश करनेवाला ( चर्षणीनां क्षोभणः ) द्वेष करनेवाले दुष्टोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला ( संक्रन्दनः अनिमिषः ) शत्रुओंको हलानेवाला और आलस्य न करनेवाला ( एकवीरः इन्द्रः ) ऐसा अद्वितीय वीर इन्द्र ( शतं सेनाः साकं अजयत् ) सैंकड़ों शत्रुओंकी सेनाको एक ही साथ जीतकर हराता है ॥ १ ॥

[ १८५० ] ( युधः नरः ) हे युद्ध करनेवाले नेताओ ! ( सं क्रन्दनेन ) शत्रुओंको हलानेवाले ( अ-निमिषेण ) आलस्य न करनेवाले ( जिष्णुना ) जय प्राप्त करनेवाले ( युत्कारेण ) युद्ध करनेमें निपुण ( दुश्च्यवनेन ) अपनेस्थान पर स्थिर रहनेवाले ( धृष्णुना ) शत्रुओंको पराजित करनेवाले ( इषु-हस्तेन वृष्णा इन्द्रेण ) बाण हाथमें धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रकी सहायतासे ( तत् जयत ) वह युद्ध जीतो; और ( तत् सहध्वं ) उसमें शत्रुको हरावो ॥ २ ॥

[ १८५१ ] ( सः इषुहस्तैः वशी ) वह इन्द्र बाण हाथोंमें धारण करनेवाले योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओं पर अपना अधिकार रखता है, ( सः निषङ्गिभिः ) वह तलवारधारी योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओंको वशमें करता है । ( सः इन्द्रः ) वह इन्द्र ( युधः ) युद्ध करनेमें प्रवीण ( गणेन संस्रष्टा ) शत्रु समुदायके साथ युद्ध करता है । ( सं-स्रष्टजित् ) युद्ध जीतनेवाला ( सोमपाः ) सोम पीनेवाला, ( बाहु-शर्ध्वं ) बाहुबलसे युक्त ( उग्र-रघन्वा ) धनुष चलाने-में कुशल ( प्रतिहिताभिः अस्ता ) छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुओंको मारनेवाला है ॥ ३ ॥

४९ [ साम. हिन्दी भा. २ ]



- १८५२ बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रा अपवाधमानः ।  
 प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन् अस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।०३।४ )
- १८५३ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।  
 अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०३।५ )
- १८५४ गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।  
 इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्र सखायो अनु स रभध्वम् ॥ ३ ॥ २ ( हे ) ॥  
 [ धा० ३६ । उ० नास्ति । स्व० ७ ] ( ऋ. १०।१०३।६ )
- १८५५ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽद्यो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।  
 दुश्च्यवनः पृतनाषाड्युध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०३।७ )
- १८५६ इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।  
 देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०३।८ )

[ १८५२ ] हे ( बृहस्पते ) बहुतोंका पालन करनेवाले इन्द्र ! ( रथेन परिदीया ) रथसे यहां आ । ( रक्षो-हा ) राक्षसोंको मारनेवाला और ( अमित्रान् अपवाधमानः ) शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाला ( सेनाः प्रभञ्जन् प्रमृण ) शत्रुकी सेनाको छिन्नभिन्न करके उनका नाश कर । ( युधा जयत् ) युद्धमें जय प्राप्त कर, ( अस्माकं रथानां अविता एधि ) हमारे रथोंका रक्षक होकर तू बढ ॥ १ ॥

[ १८५३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( बल-विज्ञायः ) सबके बल जाननेवाला ( स्थविरः ) बडा ( प्र-वीरः सह-स्वान् ) विशेष वीरता विखानेवाला, शत्रु को हरानेमें समर्थ ( वाजी सहमानः ) बलवान् और साहस विखानेवाला ( उग्रः अभिवीरः ) उग्र, महावीर ( अभि सत्वा सहोजाः ) बलवान् और बलके साथ उत्पन्न हुआ हुआ ( गोवित् ) गायोंका पालन करनेवाला तू ( जैत्रं रथं आ तिष्ठ ) विजयी रथ पर बैठ ॥ २ ॥

[ १८५४ ] हे ( सजाताः ) एक स्थानमें रहनेवाले योद्धाओ ! ( गोत्रभिदं ) शत्रुके किलोंको तोडनेवाले ( गो-विदं ) गाय पालनेवाले ( वज्रबाहुं ) वज्रके समान मजबूत भुजाओंवाले ( अज्म जयन्तं ) युद्ध जीतनेवाले ( ओजसा प्रमृणन्तं ) बलसे शत्रुका नाश करनेवाले ( इमं ) इस इन्द्रको आगे करके ( अनुवीरयध्वं ) उसके अनुकूल रहकर वीरता विखाओ । हे ( सखायः ) मित्रो ! ( अनु संरभध्वम् ) इस इन्द्रके अनुकूल रहकर शत्रु पर क्रोध करो ॥ ३ ॥

[ १८५५ ] ( गोत्राणि सहसा अभि-गाहमानः ) शत्रुके किलोंमें अपनी शक्तिसे प्रवेश करनेवाला ( अ-द्यः वीरः ) शत्रु पर दया न दिखानेवाला वीर ( शत-मन्युः ) बहुत शत्रुओं पर क्रोध करनेवाला ( दुश्च्यवनः ) जो अपने स्थानसे हिलाया नहीं जा सकता ( पृतना-षाड् ) शत्रुकी सेनाको हरानेवाला, ( अयुध्यः इन्द्रः ) जिसके साथ कोई भी शत्रु युद्ध नहीं कर सकता, ऐसा इन्द्र ( युत्सु ) युद्धमें ( अस्माकं सेनाः प्र अवतु ) हमारी सेनाका संरक्षण करे ॥ १ ॥

[ १८५६ ] ( आसां नेता इन्द्रः ) हमारी इन सेनाओंका नेता इन्द्र है । ( बृहस्पतिः पुरः एतु ) बृहस्पति सबमें आगे जावे । ( दक्षिणा यज्ञः सोमः ) चतुरतासे युद्धरूप यज्ञ चलानेवाला सोम भी आगे जावे, ( मरुतः ) मरुतवीर ( अभिभञ्जतीनां ) शत्रुओंको मारनेवाले ( जयन्तीनां देवसेनानां ) विजयी देवोंकी सेनाके आगे चले ॥ २ ॥



१८५७ इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताः शर्ध उग्रम् ।

महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥ ३ ॥ ( च ) ॥

[ धा० २७ । उ० १ । स्व० १ । ( ऋ. १०।१०३।९ )

१८५८ उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्त्वनां मामकानां मनांसि ।

उद्ध्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०३।१० )

१८५९ अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माः उ देवा अवता हवेषु ॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०३।११ )

१८६० असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।

तां गूहत तमसापव्रतेन यथेतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ३ ॥ ४ ( चु ) ॥

[ धा ३२ । उ० १ । स्व० ५ ] ( अथर्व ३।२।६ )

१८६१ अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्ये परेहि ।

अभि प्रेहि निर्दह हत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१०३।१२ )

[ १८५७ ] ( वृष्णः इन्द्रस्य ) बलवान् इन्द्रके ( राज्ञः वरुणस्य ) राजा वरुणके ( आदित्यानां मरुतां ) आदित्योंके और मरुतोंके ( उग्रं शर्धः ) उग्र बल हमारे सहायक हों । ( महामनसां ) विशाल हृदयवाले ( भुवनच्यवानां ) शत्रुके लोगोंको हिला देनेवाले ( जयतां देवानां घोषः ) विजयी देवोंकी जयजयकार ( उदस्थात् ) सुनाई देती है ॥ ३ ॥

[ १८५८ ] हे ( मघवन् ) धनवान् इन्द्र ! हमारे ( आयुधानि उद्धर्षय ) शस्त्रधारी वीरोंका उत्साह बढ़ा, ( मामकानां सत्त्वनां मनांसि उत् ) हमारे बलवान् सैनिकोंका मन उत्साहित कर । हे ( उद्ध्रहन् ) शत्रुको मारनेवाले इन्द्र ! ( वाजिनां वाजिनानि उत् ) हमारे घोड़ोंकी गति बढ़ा, तथा ( जयतां रथानां घोषाः उत् यन्तु ) विजयी होकर आनेवाले हमारे रथोंके शब्द सुनाई देवें ॥ १ ॥

[ १८५९ ] ( अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु ) हमारे वज्रधारी सैनिकोंका रक्षण ( इन्द्रः ) इन्द्र करे । ( अस्माकं याः इषवः जयन्तु ) हमारे जो बाण हैं, वे विजयी हों । ( अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु ) हमारे वीर अछे हों । हे ( देवाः ) देवों ! ( अस्मान् उ हवेषु अवत ) युद्धमें हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥

[ १८६० ] हे ( मरुतः ) मरुतो ! ( या असौ ) जो यह ( ओजसा स्पर्धमाना ) अपने सामर्थ्यसे हमारे साथ-सुकाबला करती हुई परेषां सेना नः अभ्येति ) शत्रुकी सेना हम पर आक्रमण करती हुई आती है । ( तां अपव्रतेन तमसा गूहत ) उस सेनाको, जिसमें कुछ भी काम नहीं किया जा सकता ऐसे, गहरे अन्धकारसे ढक दे, ( यथा एतेषां अन्यः अन्यं न जानात् ) जिससे कि शत्रु सेनाके लोग शत्रु-मित्रको न पहचान सकें और आपसमें ही कट मरें ॥ ३ ॥

[ १८६१ ] हे ( अप्ये ) पापके देवते ! ( परा इहि ) तू मुझसे दूर हो जा, ( अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती ) इन शत्रुओंके चित्तको मोहित कर और ( अंगानि गृहाण ) उनके अंगोंको जकड़ दे । ( अभि प्र इहि ) उन शत्रुओं पर आक्रमण कर । ( हत्सु शोकैः निर्दह ) उनके हृदयोंको शोकसे जला दे । ( मित्राः अन्धेन तमसा सचन्तां ) हमारे शत्रु गहरे अन्धकारके कारण व्याकुल हो जावें ॥ १ ॥



१८६२ प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।

उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ

॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१०३।१३ )

१८६३ अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः

॥ ३ ॥ ५ ( ठा ) ॥

[ धा० १८ । उ० २ । स्व० २ ] ( ऋ. ६।७५।१६ )

१८६४ कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।

मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान्

॥ १ ॥

१८६५ अमित्रसेनां मघवन्नस्मां छत्रयतीमभि । उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्मग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

१८६६ यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।

तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु

॥ ३ ॥ ६ ( या ) ॥

[ धा० २७ । उ० नास्ति । स्व० २ ] ऋ. ६।७५।१७ )

१८६७ वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।

वि मन्थुमिन्द्र वृत्रहन्मित्रस्याभिदासतः

॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१५२।३ )

[ १८६२ ] हे ( नरः ) वीरो ! ( प्र इत, जयत ) शत्रु पर चढाई करो और विजय प्राप्त करो । ( इन्द्रः वः शर्म यच्छतु ) इन्द्र सुन्हें सुख देवे । ( वः बाहवः उग्राः सन्तु ) तुम्हारी भुजाएं वीरता युक्त हों । ( यथा अनाधृष्याः आसथ ) जिसके कारण तुम पर शत्रु आक्रमण न कर सकें ॥ २ ॥

[ १८६३ ] हे ( ब्रह्मसंशिते शरव्ये ) ज्ञानसे प्रेरित किये गए बाण ! ( अवसृष्टा परा पत ) छोड़े जानेके बाद तू दूर जाकर गिर और ( अमित्रान् ) शत्रु पर ( प्र पद्यस्व ) जाकर गिर । ( अमीषां कंचन मा उच्छिषः ) उनमेंसे कोई भी जीवित न रहे ॥ ३ ॥

[ १८६४ ] ( सुपर्णाः कङ्काः ) उत्तम पंखवाले मांस भक्षक पक्षी [ बाण ] ( एनान् अनु यन्तु ) इन शत्रुओंका पीछा करें । ( असौ सेना ) वह शत्रुकी सेना ( गृध्राणां अन्नं अस्तु ) गिद्धोंका अन्न बने । ( एषां मा अमोचि ) इनमेंसे कोई भी न बचे । हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( अघहारः च न ) जो अधिक पापी न हो वह शत्रु भी न छूटे, ( वयांसि एनान् सर्वान् अनु संयन्तु ) मांसभक्षक पक्षी इन सबका पीछा करें ॥ १ ॥

[ १८६५ ] हे ( मघवन् वृत्रहन् इन्द्र ) धनवान् और शत्रुके वध करनेवाले इन्द्र ! तू ( अग्निः च ) और अग्नि ( उभौ ) दोनों ( अस्मान् तां अभि शत्रुयतीं ) हमसे शत्रुता करनेवाले ( अमित्रसेनां प्रति दहतं ) शत्रुकी सेनाको जला डालो ॥ २ ॥

[ १८६६ ] ( यत्र ) जिस संग्राममें ( विशिखाः कुमाराः इव ) शिखारहित लड़कोंके समान ( बाणाः संपतन्ति ) बाण गिरते हैं, ( तत्र नः ) वहां हमें ( ब्रह्मणस्पतिः अदितिः ) ब्रह्मणस्पति और अदिति ( शर्म यच्छतु ) सुख देवें । ( विश्वाहा शर्म यच्छतु ) हमेशा सुख देवें ॥ ३ ॥

[ १८६७ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( रक्षः विजहि ) राक्षसोंका नाश कर, ( मृधः विजहि ) हिसक शत्रुओंका नाश कर । ( वृत्रस्य हनू रुज ) वृत्रकी ठोठी तोड़ दे । हे ( वृत्रहन् ) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र ! ( अभिदासतः अमित्रस्य मन्थुं ) हमारी हानि करनेवाले शत्रुके क्रोधको समाप्त कर ॥ १ ॥



१८६८ वि न इन्द्र मधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

यो अस्मा५ अभिदासत्यधरं गमया तमः

॥ २ ॥ ( ऋ. १०।१५२।४ )

१८६९ इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसहौ ।

तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणा५ सहो महत् ॥ ३ ॥ ७ ( थि ) ॥

[ धा० २९ । उ० २ । स्व० ३ ]

१८७० मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।

उरोवरीया वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु

॥ १ ॥ ( ऋ. ६।७९।१८ )

१८७१ अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।

तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम्

॥ २ ॥ ( अथर्व. ६।६७।२ )

१८७२ यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठयो जिघांसति ।

देवास्त५ सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं५ शर्म वर्म ममान्तरम् ॥ ३ ॥ ८ ( वी ) ॥

[ धा० २९ । उ० नास्ति । स्व० ४ ] ( ऋ. ६।७९।१९ )

[ १८६८ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( नः मृधः विजहि ) हमारे शत्रुओंका नाश कर, ( पृतन्यतः नीचा यच्छ ) हम पर सेना भेजनेवाले शत्रुओंको नीचे गिरा । ( यः अस्मान् अभिदासति ) जो हमें दास बनानेकी इच्छा करता है, उसे ( अधरं तमः गमय ) गहरे अन्धेरेमें डाल दे ॥ २ ॥

[ १८६९ ] ( याभ्यां असुराणां महत् सहः जितं ) जिनके द्वारा असुरोंके महान् बलको जीता, ( तौ इन्द्रस्य ) वे इन्द्रके ( स्थविरौ युवानौ ) बड़े और तरुण ( अनाधृष्यौ सु प्रतीकौ ) जिनपर किसीका आक्रमण नहीं हो सकता, ऐसे हाथीकी सूंडके समान ( असह्यौ बाहू ) न सहने योग्य भुजायें ( योगे आगते ) युद्धके समयमें ( प्रथमौ युञ्जीत ) सबसे पहले उपयोगमें आती हैं ॥ ३ ॥

[ १८७० ] हे राजन् ! ( ते मर्माणि ) तेरे मर्मस्थानोंको ( वर्मणा छादयामि ) कवचसे ढक देता हूँ । उसके बाद ( सोमः राजा त्वा ) सोम राजा तुझे ( अमृतेन अनु वस्ताम् ) अमृतसे ढक देवे । ( वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु ) वरुण तुझे अधिक सुख देवे । ( देवाः जयन्तं त्वा अनु मदन्तु ) सब देव विजय प्राप्त करनेवाले तुझे आनन्दित करें ॥ १ ॥

[ १८७१ ] ( अमित्राः ) शत्रु ( अशीर्षाणः अहयः इव ) कटे हुए सिरवाले सांपोंके समान ( अन्धाः भवत ) अन्धे हो जाएं । ( तेषां अग्निनुन्नानां वः ) अग्निसे जलनेसे बचे हुए तुम शत्रुओं में से ( वरं वरं इन्द्रः हन्तु ) श्रेष्ठ श्रेष्ठ शत्रुको इन्द्र मारे ॥ २ ॥

[ १८७२ ] ( यः नः अरणः ) जो अपना होते हुए भी शत्रुता करता है, ( यः च निष्ठयः ) जो गुप्त रहकर ( नः जिघांसति ) हमें मारना चाहता है, ( तं सर्वे देवाः धूर्वन्तु ) उसे सब देव नष्ट करें । ( ब्रह्म मम अन्तरं वर्म ) ज्ञान मेरे अन्तरका कवच है । ( शर्म वर्म मम अन्तरं अस्तु ) कल्याण भी मेरा आन्तरिक कवच हो ॥ ३ ॥



१८७३ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।

सुकं संशाय पविभिन्द्र तिग्मं वि शत्रू ताढि विमृधो नुदस्व ॥ १ ॥ ( ऋ. १०।१८०।२ )

१८७४ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २ ॥ ( ऋ. १।८९।८ )

१८७५ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु

॥ ३ ॥ ९ ( कू ) ॥

[ धा० २६ । उ० १ । ख० ६ ] ( ऋ. १।८९।६ )

॥ इति नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ९-३ ॥ नवमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ९ ॥

॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इत्युत्तरार्चिकः समाप्तः ॥

॥ इति सामवेदसंहिता समाप्ता ॥

[ १८७३ ] हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! तू ( कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः ) पर्वतपर रहनेवाले हिंसक सिंहके समान भयंकर है । ( परस्याः परावतः आ जगन्था ) बहुत दूरके स्थानसे भी तू यहां आ ( सुकं तिग्मं पवि संशाय ) दूर पहुंचनेवाले तीक्ष्ण वज्रको और अधिक तीक्ष्ण करके ( शत्रून् विताढि ) शत्रुओंको नष्ट कर । ( वि मृधः नुदस्व ) संग्राम करनेवाले शत्रुओंको दूर कर ॥ १ ॥

[ १८७४ ] हे ( देवाः ) देवो । ( कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम ) कानोंसे हम कल्याण करनेवाली बातें सुनें । हे ( यजत्राः ) याजको ! ( अक्षभिः भद्रं पश्येम ) आंखोंसे हितकारी वृक्ष ही देखें, ( स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः ) मजबूत अवयवोंवाले शरीरसे ( तुष्टुवाꣳसः ) तुम्हारी स्तुति करते हुए ( यत् देवहितं आयुः ) देवोंके द्वारा नियत की गई आयुको ( व्यशेमहि ) हम प्राप्त करके अन्त तक हम कार्य करते रहें ॥ २ ॥

[ १८७५ ] ( वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति ) बहुत प्रशंसित इन्द्र हमारा कल्याण करनेवाला हो, ( विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति ) सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करनेवाला हो, ( अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति ) अहिंसित शस्त्रोंको पासमें रखनेवाला सुपर्ण हमारा हित करनेवाला हो । ( बृहस्पतिः नः स्वस्ति विदधातु ) जानका स्वामी हमारा कल्याण करे ॥ ३ ॥

॥ इति एकविंशोऽध्यायः ॥





# एकविंश अध्याय

## सुभाषित

१ आशुः भीमः वृषभः न शिशानः घनाघनः चर्ष-  
ण निं क्षोभणः, संक्रन्दनः अनिमिषः एकवीरः इन्द्रः  
शतं सेनाः साकं अजयत् [ १८४९ ]- शीघ्र कार्य  
करनेवाला, भयंकर शूर, बैलके समान शत्रुको मारनेवाला,  
शत्रुका समूल नाश करनेवाला, द्वेष करनेवाले दुष्टोंमें क्षोभ  
उत्पन्न करनेवाला, शत्रुओंको हलानेवाला, आलस्य न करने-  
वाला अद्वितीय वीर इन्द्र सैंकड़ों शत्रुओंकी सेनाओंको जीतकर  
हराता है ।

२ हे युधः नरः ! संक्रन्दनेन अनिमिषेण जिष्णुना  
युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना इषुहस्तेन वृष्णा  
इन्द्रेण तत् जयत, सहध्वं [ १८५० ]- हे युद्ध करनेवाले  
नेताओ ! शत्रुओंको हलानेवाले, आलस्य न करनेवाले, विजयी,  
युद्धमें प्रवीण, युद्धमें अपने स्थानपर स्थिर रहनेवाले, शत्रु-  
ओंको हरानेवाले, बाणोंको हाथोंमें धारण करनेवाले बलवान्  
इन्द्रकी सहायतासे युद्ध जीतो और शत्रुओंको हटाओ ।

३ सः इषुहस्तैः वशी, सः निषङ्गिभिः सः इन्द्रः  
युधः गणेन संस्रष्टा, संस्रष्टजित्, बाहुशर्धा उग्रधन्वा  
प्रहिताभिः अस्ता [ १८५१ ]- वह इन्द्र बाण हाथमें  
धारण करनेवाले योधाओंकी सहायतासे सब शत्रुओंको अपने  
अधिकारमें रखता है । वह तलवार हाथमें रखनेवाले योधाओं-  
की सहायतासे शत्रुओंको वशमें करता है । वह इन्द्र युद्ध  
करनेमें प्रवीण शत्रुओंके समूहके साथ एकदम युद्ध करता है ।  
वह युद्ध जीतनेवाला, बाहुबलसे सामर्थ्यवान्, धनुष चलानेमें  
कुशल और छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुओंका वध करनेवाला है ।

४ हे बृहस्पते ! रथेन परिदीय, रक्षोहा, अमित्रान्  
अपवाधमानः, सेनाः प्रभञ्जन् प्रमृण, युधा जयन्,  
अस्माकं रथानां अविता एधि [ १८५२ ]- हे बहुतोंका  
पालन करनेवाले इन्द्र ! रथसे यहां आ, राक्षसोंको मारने-  
वाला, शत्रुओंको रोकनेवाला, तू शत्रुकी सेनाको छिन्नभिन्न  
करके उनको नष्ट कर । युद्धमें जय प्राप्त कर और हमारे  
रथका रक्षक हो ।

५ हे इन्द्र ! बलविधायः स्थविरः प्रवीरः सह-  
स्वान् वाजी सहमानः उग्रः अभिवीरः अभिसत्त्वा,

सहोजाः गोवित्, जैत्रं रथं आतिष्ठ [ १८५३ ] हे  
इन्द्र ! तू सबका बल जानता है । महान् विशेष सामर्थ्यवान्  
वीर, शत्रुको हरानेवाला, बलवान् और साहस दिखानेवाला,  
उग्र महावीर, प्रभाव डालनेवाले सामर्थ्यसे युक्त, गायोंको  
पालनेवाला तू विजयी रथ पर बैठ ।

६ हे सजाताः ! गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं अज्म-  
जयन्तं ओजसा प्रमृणन्तं इमं इन्द्रं अनुवीरयध्वं अनु-  
संरभध्वम् [ १८५४ ]- हे युद्ध करनेवाले वीरो ! शत्रुओंके  
किले तोड़नेवाले, गाय पालनेवाले, वज्रके समान कठोर  
बाहुओंवाले, युद्ध जीतनेवाले, अपने बलसे शत्रुओंको नष्ट  
करनेवाले इस इन्द्रको आगे करके वीरता दिखाओ, शत्रु  
पर क्रोध दिखाओ ।

७ गोत्राणि सहसा अभिगाहमानः अदयः वीरः  
शतमन्युः दुश्च्यवनः, पृतनापाद् अयुध्यः इन्द्रः  
युत्सु अस्माकं सेनाः प्र अवतु [ १८५५ ]- शत्रुके किलेमें  
अपनी शक्तिसे प्रवेश करनेवाला, शत्रु पर दया न करनेवाला,  
सैंकड़ों प्रकारसे शत्रुपर क्रोध करनेवाला, जो अपने स्थानसे  
हिलाया नहीं जाता, शत्रुकी सेनाको हरानेवाला, जिसके  
साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता ऐसा इन्द्र हमारी सेनाकी  
रक्षा करे ।

८ मरुतः अभिभञ्जतीनां जयन्तीनां देव-सेनानां  
अग्रं यन्तु [ १८५६ ]- मरुत वीर शत्रुओंको मारनेवाले  
विजयी देवसेनाके आगे चलें ।

९ उग्रं शर्धः महामनसां भुवनच्यवानां जयतां  
देवानां घोषः उदस्थात् [ १८५७ ]- उदार मनके, शत्रुके  
वीरोंको स्थान भ्रष्ट करनेवाले विजयी देवोंके उग्र बलके  
कारण होनेवाले, जयघोष सुनाई देते हैं ।

१० हे मघवन् ! आयुधानि उद्धर्षय [ १८५८ ]  
- हे इन्द्र ! हमारे शस्त्रधारी वीरोंका उत्साह बढ़ा ।

११ मामकानां सत्त्वनां मनांसि उत् हर्षय  
[ १८५९ ]- हमारे बलवान् वीरोंका मन हर्षित कर ।

१२ वाजिनां वाजिनानि उत् जयतां रथान  
घोषाः उत् यन्तु [ १८६० ]- हमारे घोड़ोंके वेग बढ़ा  
हमारे विजयी रथोंका शब्द सुनाई दे



१३ अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु इन्द्रः [ १८५९ ]- हमारे ध्वजाधारी सैनिकोंकी इन्द्र रक्षा करे ।

१४ अस्माकं इषवः जयन्तु [ १८५९ ]- हमारे बाण विजयी हों ।

१५ अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु [ १८५९ ]- हमारे वीर विजयी हों ।

१६ देवाः ! अस्मान् हवेषु अवत [ १८५९ ]- हे देवो ! हमें युद्धमें सुरक्षित रखो ।

१७ या असौ ओजसा स्पर्धमाना परेषां सेनां नः अभ्येति, तां अपव्रतेन तमसा गृह्णत, यथा एतेषां अन्यः अन्यं न जानात् [ १८६० ]- जो यह अपने सामर्थ्यसे हमसे मुकाबला करती हुई शत्रुकी सेना हम पर चढाई करती हुई आती है, उस शत्रुकी सेना पर अन्धकार छा जाए ऐसा कर, जिससे कि वे एक दूसरेको पहचान न सकें ।

“ अपव्रत तमसास्त्र ” नामका अस्त्र प्रयोग-युद्धमें होता था, उससे शत्रुके वीर अन्धरेके कारण अन्धेसे हो जाते थे और आपसमें एक दूसरेको पहचान भी नहीं सकते थे ।

१८ अप्वे ! परा इहि, अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती अंगानि गृहाण [ १८६१ ]- हे पाप ! हमसे दूर हो, इन शत्रुओंके चित्तोंको मोहित कर और उनके शरीरके अंग जकड़ दे ।

१९ अभि प्रेहि, हस्तु शोकैः निर्दह [ १८६१ ]- शत्रु पर आक्रमण कर, उनके हृदय शोकसे जला दे ।

२० अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्ताम् [ १८६१ ]- हमारे शत्रु घोर अन्धकारसे व्याकुल हों ।

२१ नरः प्र इत, जयत, इन्द्रः वः शर्म यच्छतु [ १८६२ ]- हे वीरो ! शत्रु पर आक्रमण करो, विजय प्राप्त करो, इन्द्र तुम्हारा कल्याण करे ।

२२ वः बाहवः उग्राः सन्तु, यथा अनाधृष्याः आसथ [ १८६२ ]- तुम्हारी भुजायें वीरभाव दिखानेवाली हों, जिनके कारण तुम पर शत्रु आक्रमण न कर सकें ।

२३ हे ब्रह्मसंशिते शरव्ये । अवसृष्टा परा पत, अमित्रान् प्र पयस्व, अमीषां कंचन मा उच्छिषः [ १८६३ ]- हे ज्ञानपूर्वक छोड़े गए बाण ! तू दूर जाकर शत्रुपर गिर । उनमें कोई भी जिन्दा न रहे ।

२४ सुपर्णाः कंकाः एनान् अनु यन्तु [ १८६४ ]- उत्तम पंखवाले मांसभक्षक पक्षी ( बाण ) इन शत्रुओंका पीछा करें ।

२५ असौ सेना गृध्राणां अन्नं अस्तु [ १८६४ ]- यह शत्रुकी सेना गिद्धोंका अन्न बने ।

२६ एषां मा अमोचि, अघहारः च न, वयांसि एनान् सर्वान् अनु संयन्तु [ १८६४ ]- इन शत्रुओंमेंसे कोई भी न बचे । अत्यधिक पापी न होनेवाला शत्रु भी न बचे, मांसभक्षक पक्षी इन शत्रुओंका पीछा करें ।

२७ अस्मान् तां अभि शत्रुयतीं अमित्रसेनां प्रतिदहतं [ १८६५ ]- हम पर चलकर आनेवाले उस शत्रुकी सेनाको जला दे ।

२८ यत्र बाणाः सम्पतन्ति, तत्र नः शर्म यच्छतु [ १८६५ ]- जहां बाण शत्रुकी ओरसे आकर हम पर गिरते हैं, उस युद्धमें हमें सुख मिले ।

२९ हे इन्द्र ! रक्षः मृधः विजहि, अभिदासतः अमित्रस्य मन्युं [ १८६७ ]- हे इन्द्र ! राक्षसों और हिसकोंको मार, हमारी हानि करनेवाले शत्रुओंके क्रोधको समाप्त कर ।

३० हे इन्द्र ! नः मृधः विजहि, पृतन्यतः नीचा यच्छ, यः अस्मान् अभिदासति, अधरं तमः गमय [ १८६८ ]- हे इन्द्र ! हमारे हिसक शत्रुओंको हरा, हम पर सेना भेजनेवालोंको नीचे गिरा । जो हमें दास बनानेकी इच्छा करता है उसे गहरे अन्धकारमें डाल दे ।

३१ याभ्यां असुराणां महत् सहः जितं, तौ इन्द्रस्य स्थविरौ युवानौ अनाधृष्यौ सुप्रतीकौ असह्यौ बाहू योगे आसते प्रथमौ युंजीत [ १८६९ ]- जिनसे असुरोंके महान् बलको जीता, उन इन्द्रकी बड़ी, तरुण, आक्रमण किए जानेके अयोग्य, उत्तम प्रतीक, शत्रुके लिए असह्य ऐसी दोनों ही भुजाएं युद्धके समय उपयोगमें आती हैं ।

३२ हे राजन् ! ते मर्माणि वर्मणा छादयामि [ १८७० ]- हे राजन् ! तेरे मर्मस्थान कवचसे मैं ढकता हूँ ।

३३ देवाः जयन्तं त्वा अनुमदन्तु [ १८७० ]- देव जीतनेवाले तुझे आनन्दित करें ।

३४ अमित्राः अशीर्षाणः अहयः इव अन्धाः भवत [ १८७१ ]- शत्रु कटे हुए सिरवाले सांपोंके समान अन्धे हो जाए ।

३५ तेषां वरं वरं इन्द्रः हन्तु [ १८७१ ]- शत्रुओंके मुख्य-मुख्य वीरोंको इन्द्र मारे ।

३६ यः स्वः अरुणः यः च निष्ठयः नः जिघांसति तं सर्वं देवाः धूर्वन्तु [ १८७२ ]- जो अपना होते हुए भी



द्वेष करता है और जो गुप्त रह करके हमें मारना चाहता है । उसे सब देव नष्ट करें ।

३७ ब्रह्म मम अन्तरं वर्म [ १८७२ ]- ज्ञान मेरे अन्तरका कवच है ।

३८ हे इन्द्र ! कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः [ १८७३ ]- हे इन्द्र ! पर्वत पर रहनेवाले सिंहके समान तू शत्रुओंके लिए भयंकर है ।

३९ परस्याः परावतः आजगन्ध [ १८७३ ]- बहुत दूरके स्थानसे भी तू हमारे पास आ ।

४० सृकं तिग्मं पवि संशाय शत्रून् विताहि, मृधः वि नुदस्व [ १८७३ ]- दूर पहुँचनेवाले तीक्ष्ण शस्त्रको और अधिक तीक्ष्ण करके शत्रु पर फेंक व दुष्टोंको मार ।

४१ हे देवाः ! कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम [ १८७४ ]- हे देवो ! कानोंसे हम कल्याण करनेवाली बात सुनें ।

४२ अश्वभिः भद्रं पश्येम [ १८७४ ]- आंखोंसे कल्याणकारक वृश्य देखें ।

४३ स्थिरैः अंगैः तनूभिः तुष्टुवांसः यत् देवहितं

आयुः व्यशेमहि [ १८७४ ]- सुस्थिर अंगोंसे युक्त शरीरोंसे ईश्वरकी स्तुति करते हुए देवों द्वारा दी हुई आयुका उपभोग करें ।

४४ इन्द्रः, पूषा बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु [ १८७५ ]- इन्द्र, पूषा, बृहस्पति आवि देव हमारा कल्याण करें ।

## उपमा

१ वृषभः शिशानः न [ १८४९ ]- बेलके समान शत्रुको टक्कर देनेवाला ।

२ विशिखाः कुमारः इव [ १८६६ ]- शिखासे रहित कुमारोंके समान तीक्ष्ण ( बाणाः ) बाण होते हैं ।

३ अशीर्षाणः अहयः इव [ १८७१ ]- कटे हुए सिरवाले साँपोंके समान ( अमित्राः अन्धाः भवत ) शत्रु अन्धे हो जाएं ।

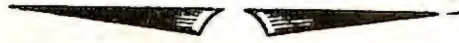
४ कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न [ १८७३ ]- पर्वत पर रहनेवाले सिंहके समान ( इन्द्रः भीमः ) इन्द्र भयंकर है ।

## एकविंशाध्यायान्तर्गत ऋषि-देवता-छन्द सूची

| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं | ऋषिः             | देवता     | छन्दः      |
|-------------|--------------|------------------|-----------|------------|
| १८४९        | १०।१०३।१     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | इन्द्रः   | त्रिष्टुप् |
| १८५०        | १०।१०३।२     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | "         | "          |
| १८५१        | १०।१०३।३     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | "         | "          |
| १८५२        | १०।१०३।४     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | बृहस्पतिः | "          |
| १८५३        | १०।१०३।५     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | इन्द्रः   | "          |
| १८५४        | १०।१०३।६     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | "         | "          |
| १८५५        | १०।१०३।७     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | "         | "          |
| १८५६        | १०।१०३।८     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | "         | "          |
| १८५७        | १०।१०३।९     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | "         | "          |
| १८५८        | १०।१०३।१०    | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | "         | "          |
| १८५९        | १०।१०३।११    | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | "         | "          |
| १८६०        | अथर्व. ३।१।६ | अथर्व            | भवतः      | "          |
| १८६१        | १०।१०३।१२    | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | अप्वा     | "          |



| मंत्रसंख्या | ऋग्वेदस्थानं  | ऋषिः             | देवता            | छन्दः        |
|-------------|---------------|------------------|------------------|--------------|
| १८६२        | १०।१०३।१३     | अप्रतिरथ ऐन्द्रः | इन्द्रो मरुतो वा | अनुष्टुप्    |
| १८६३        | ६।५।१७        | पायुर्भरिद्वाजः  | इषवः             | "            |
| १८६४        | —             | —                | इन्द्रः          | त्रिष्टुप्   |
| १८६५        | —             | —                | "                | अनुष्टुप्    |
| १८६६        | ६।७५।१७       | पायुर्भरिद्वाजः  | संग्रामाशिवः     | पंक्तिः      |
| १८६७        | १०।१५२।३      | शासो भारद्वाजः   | इन्द्रः          | अनुष्टुप्    |
| १८६८        | १०।१५२।४      | शासो भारद्वाजः   | "                | "            |
| १८६९        | —             | —                | "                | विराड् जगती  |
| १८७०        | ६।७५।१८       | पायुर्भरिद्वाजः  | वर्मसोमवरुणाः    | त्रिष्टुप्   |
| १८७१        | अथर्व. ६।३७।९ | अथर्व            | इन्द्रः          | अनुष्टुप्    |
| १८७२        | ६।७५।१९       | पायुर्भरिद्वाजः  | वर्म सोमवरुणाः   | "            |
| १८७३        | १०।१८०।२      | जय ऐन्द्रः       | इन्द्रः          | त्रिष्टुप्   |
| १८७४        | १।८९।८        | गोतमो राहूगणः    | विश्वदेवाः       | "            |
| १८७५        | १।८९।६        | गोतमो राहूगणः    | "                | विराट्स्थाना |





# सामवेदमन्त्राणां वर्णानुक्रमसूची ।

|                             |                 |                           |           |                            |           |
|-----------------------------|-----------------|---------------------------|-----------|----------------------------|-----------|
| अक्रोःसमुद्रः प्रथम         | ५२९; १२२३       | अग्ने जरितर्निष्पतिः      | ३९        | अत्या द्वियाना न           | ११९१      |
| अक्षत्रमीमदन्त              | ४१५             | अग्ने तमद्याइवं           | ४३४; १७७७ | अत्रा वि नेमिरेषामुरां     | १८०८      |
| अगन्म महा नमजा              | १३०४            | अग्ने तव श्रवो वयो        | १८१६      | अत्राह गोरमन्वत            | १४७; ९१५  |
| अगन्म वृत्रहन्तमं           | ८९              | अग्ने त्वं नो अन्तम       | ४४८; ११०७ | अथा ते अन्तमानां           | १०८९      |
| अम आ याहि वीनये             | १; ६६०          | अग्ने देवा इहा            | ७९२       | अदर्दकसमसृजो               | ३१५       |
| अम आ याह्यमिर्होतारं        | १५५२            | अग्ने नक्षत्रमजरमा        | १५३०      | अदर्शिं गातुवित्तमो        | ४७; १५१५  |
| अम आयुषि पवम                | ६२७; १४६४; १५१८ | अग्ने पवस्व स्वपा         | १५२०      | अदाभ्यः पुरएता             | १५५६      |
| अम ओजिष्ठमा भर              | ८१              | अग्ने पावक रोचिषा         | १५११      | अदृशस्य केतवो              | ६३४       |
| अग्निः प्रत्नेन जन्मना      | १७११            | अग्ने मृढ मर्हो अस्यय     | २३        | अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र  | १४५८      |
| अग्निः प्रियेषु धामसु       | १७१०            | अग्ने यजिष्ठो अध्वरे      | १००       | अद्या नो देव सवितः         | १४१       |
| अग्निं तं मन्य              | ४२५; १७३७       | अग्ने युंक्ष्वा हि ये तव  | २५; १३८३  | अध क्षपा परिष्कृतो         | १६३१      |
| अग्निं दूतं वृणीमहे         | ३; ७९०          | अग्ने रक्षा णो अंसः       | ३४        | अध उमो अध वा शिवो          | ५२        |
| अग्निं नरो दीधितिभिः        | ७२; १३७३        | अग्ने वाजस्य गोमत         | ९९; १५६१  | अध त्विषीमां अभ्योजसा      | १४८८      |
| अग्निं वो देवमग्निभिः       | १२१९            | अग्ने विश्वदा             | १०        | अध धारया मध्वा             | १०२०      |
| अग्निं वो वृधन्तम्          | २१; ९४६         | अग्ने विवस्वदुषसः         | ४०; १७८०  | अध यदिमे पवमान             | १४९६      |
| अग्निं सूनुं सहसो           | १५५५            | अग्ने विश्वभिरमिभिर्जोषि  | १५०३      | अधा त्वं हि नस्क्रुरो      | १५५१      |
| अग्निं हिन्वन्तु नो         | १५२७            | अग्ने सुष्ठमे रथे         | १३५०      | अधा हिन्वान इन्द्रिधं      | ८३९       |
| अग्निं होतारं मन्ये         | ४६५; १८१३       | अग्ने स्तोमं मनामहे       | १४०५      | अधा हीन्द्र निर्बण         | ४०६; ७१०  |
| अग्निनाभिः समिधये           | ८४४             | अग्नेगो राजाप्यस्तविष्यते | १६१६      | अधा ह्यग्ने क्रतोः         | १७७८      |
| अग्निमग्निं हवीमभिः         | ७९१             | अग्ने सिन्धूनां पवमानो    | १०३३      | अधि गदस्मिन्वाजिनी         | ५३९       |
| अग्निमिधानो मनसा            | १९              | अचिक्रददृष्ट्वा हरिः      | ४९७; १०४२ | अधुक्षत प्रियं मधु         | १०३९      |
| अग्निमीडिष्वावसे            | ४९              | अचैत्यमिश्चिकितिः         | ४४७       | अध्वर्यो अग्निभिः          | ४९३; १२५५ |
| अग्निमीडे पुरोहितं          | ६०५             | अचोदसो नो धन्वन्तिवन्तवः  | ५५५       | अध्वर्यो द्रावया त्वं      | ३०८       |
| अग्निरस्मि जन्मना           | ६१३             | अच्छा कोशं मधुश्चुतं      | ६५८       | अनवस्ते रथं                | ४४०       |
| अग्निरिन्द्राय पवन्ते       | १८२५            | अच्छा नः शीरशोचिषं        | १५५४      | अनु ते शुष्मं तुरन्तमयितुः | १६३८      |
| अग्निं यथे पुरोहितो         | ४८              | अच्छा नो याह्या           | १३८४      | अनु त्वा रादसी उमे         | ९८९       |
| अग्निं कृषिः पवमानाः        | १५१९            | अच्छा व इन्द्रं मतयः      | ३७५       | अनु प्रत्नस्यौकसो          | ७४४       |
| अग्निर्जागार तमृतः          | १८२७            | अच्छा समुद्रमिन्दवो       | ६५२       | अनु प्रत्नाय आयषः          | ५०९       |
| अग्निर्जुपत नो गिरो         | १४०६            | अच्छा हि त्वा सहसः        | १५५३      | अनु हि-त्वा सुतं           | ४३१; १३६३ |
| अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः | १८३१            | अजीजनो अमृत               | १५०८      | अनूपे गोमान् गौभिः         | ९९८       |
| अग्निर्मूर्धा दिवः          | २७; १५३२        | अजीजनो हि पवमान           | १३६५      | अन्तश्चरति रोचनास्य        | ६३१; १३७७ |
| अग्निर्ब्रह्माणि जंघनद्     | ४; १३९६         | अजते व्यजते समजते         | ५६४; १६१४ | अन्धा अमित्रा भवता         | १८७१      |
| अग्निर्हि वाजिनं विशे       | १७३८            | अतश्चिदिन्द्र न उपा       | २१५       | अपघ्नन्तो अरावणः           | ११९५      |
| अग्निस्तिग्मेन शोचिषा       | २२              | अतस्तवारयिः               | ८३८       | अपघ्नन्पवते मृधो           | ५१०; १२१३ |
| अग्ने केतुर्विशामसि         | १५३१            | अतीहि मन्युषविणं          | २२३       | अपघ्नन्पवसे मृधः           | ४९; १२३७  |
|                             |                 | अतो देवा अवन्तु नो        | १६७४      | अपत्यं ब्राजर्नं रिपुं     | १०५       |
|                             |                 | अत्यायातमाश्विना तिरो     | १७४४      | अपत्ये तावयो               | ६३३       |



|                          |           |                        |           |                        |           |
|--------------------------|-----------|------------------------|-----------|------------------------|-----------|
| अप द्वारा मतीनां         | ११२४      | अभि व्रतानि पवते       | १०९१      | अया निजघ्नरोजसा        | १७१५      |
| अपां नपातं सुभगं         | १४१४      | अभि सोमास आयवः         | ५१८; ८५६  | अया पवस्य देवयु        | ७७९       |
| अपां फनेन नमुचेः         | २११       | अभि हि सत्य सोमपा      | १९४८      | अया पवस्व धारया        | ४२३; १९१६ |
| अपादु क्षिप्यन्धसः       | १४५       | अभी नवन्ते अद्भुतः     | ५५०       | अया पवा पवस्वेना       | ५४१; ११०४ |
| अपामीवामपस्त्रि          | ३९७       | अभी नो अर्षं दिव्याः   | १४२८      | अया रुचा हरिण्या       | ४६३; १५९० |
| अपामिवेदुर्मयस्तपुराणाः  | ५४४       | अभी नो वाजसातमं        | ५४९; १९३८ | अया वाजं देवहितं       | ४५४       |
| अपिवत्कद्रुवः            | १३१       | अभीषतस्तदा             | ३०९       | अयावीती परित्स्त्र     | ४२५; १९१० |
| अपूर्व्या पुष्टतमा       | ३९९       | अभी पुणः सखीनाम्       | ६८४       | अया सोम सुकृत्यया      | ५०७       |
| अप्सा इन्द्राय वायव      | ९९५       | अभ्यभि हि श्रवसा       | १५०७      | अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः | ६३९       |
| अप्सु रेतः क्षिप्रिये    | १८४४      | अभ्यर्ष बृहद्यशो       | ९७१       | अयुक्त सूर एतशं        | १२१७      |
| अबोधि हाता यजथाय         | १७४७      | अभ्यर्ष स्वायुध        | १०५३      | अयुद्ध हयुभाभृतं       | १३४०      |
| अबोध्यभिः समिधा          | ७३; १७४६  | अभ्यर्षानिपद्युतो      | १०५३      | अरं त इन्द्र कुक्षये   | १६६९      |
| अबोध्यभिर्जर्म उदेति     | १७५८      | अभ्यारमिदद्रयो         | १६०३      | अरं त इन्द्र श्रवसे    | ९०९       |
| अभिकन्दन्कन् शं          | १०३९      | अभ्रातृव्यो अनी        | ३९९; १३८९ | अरण्योर्निहितो जातेवदा | ७९        |
| अभि गव्यानि वीतये        | १०६२      | अभिन्न सेना मघवन्      | १८६५      | अरमश्राय गायत          | ११८       |
| अभि गावो अश्वन्विपुरापो  | ९६२       | अभिन्नहा विचर्षणिः     | १४४७      | अरुचदुषष्टः पृश्निः    | ५९६; ८७७  |
| अभिगोत्राणि सहसा         | १८५५      | अमी ये देवाः           | ३६८       | अर्चत प्राचत           | ३६९       |
| अभि ते मधुना             | ६५२       | अमीषां चित्तं प्रति    | १८६१      | अर्चति नारीरपसो        | १७५७      |
| अभित्यं देवं सविता       | ४६४       | अयं त इन्द्र सोमो      | १५९; ७२५  | अर्चत्यर्कं मरुतः      | ४४५; १११४ |
| अभि त्यं मेघं            | ३७३       | अयं दक्षाय साधनोऽयं    | ११००      | अर्वाक् त्रिचको        | १७३०      |
| अभि त्रिपृष्ठं वृषणं     | ५२८; १४०८ | अयं पुनान उपसो         | ८२६       | अर्षा नः सोम शं गवे    | १२३७      |
| अभि त्वा पूर्वपीतय       | २५६; १५७३ | अयं पूषा रयिर्भागः     | ५४६; ८१८  | अर्षा सोम द्युमत्तमो   | ५०३; ९९४  |
| अभि त्वा वृषभा सुते      | १६१; ७३१  | अयं भराय सानसिः        | ६९५       | अलर्षिराति वसुदामुप    | १२२०      |
| अभि त्वा शूर नोनुमो      | २३३; ६८०  | अयं यथा न आमुवत्       | ९४७       | अवक्कक्षिणं वृषभं      | १३६१      |
| अभि युमं बृहद्यश         | ५७२; १०११ | अयं वो मधुमत्तमः       | ३०६       | अव द्युतानः कलशौ       | ७०२       |
| अभि द्रौणानि बभ्रवः      | ७६५       | अयं वो मित्रावरुणा     | ९१०       | अवद्रप्सो अंशुमती      | ३२१       |
| अभि द्विजन्मा त्री       | १७७५      | अयं विचर्षणिर्हितः     | ५०८       | अवस्तृष्टा परापत       | १८६३      |
| अभि प्र गोपति            | १६८; १४८९ | अयं विश्वा अभि         | ९४८       | अव स्म दुर्हृणायतो     | १०९२      |
| अभि प्रयांसि वाहसा       | १५५७      | अयं विश्वानि तिष्ठति   | ७५७       | अवा नो अरन कृत्तिभिः   | १५२४      |
| अभि प्र वः सुराधसं       | २३५; ८११  | अयं स यो दिवस्पति      | ९००       | अव्या वारे परि         | ११३३      |
| अभि प्रियं दिवस्पदम्     | ११२७      | अयं सहस्रभानवो         | ४५८       | अव्या वारैः परि        | १२०७      |
| अभिप्रियाणि काव्या       | १७६२      | अयं सहस्रमृषिभिः       | १६०८      | अश्वं न गीर्भि रथ्यं   | १५८४      |
| अभि प्रियाणि पवते        | ५५४; ७००  | अयं सहस्रा परि युक्ताः | १८४५      | अश्वं न त्या वारवन्तं  | १७; १६३४  |
| अभि प्रिया दिवः          | ११०४      | अयं स होता यो          | १७७६      | अश्विना वर्तिरस्मदा    | १७३३      |
| अभि ब्रह्मीरनूषत         | ८७०       | अयं सूर्य हवोपहयं      | ७५३       | अश्वो रथी सुरुप        | २७७       |
| अभि वज्रा सुवसनन्वर्षाभि | १४२७      | अयं सोम इन्द्र         | १२७१      | अश्वेव चित्रारुषी      | १७२६      |
| अभि वार्जा विश्वरूपो     | १८४३      | अयमभिः सुवीर्यस्य      | ६०        | अश्वो न चक्रदो वृषा    | ७८३       |
| अभि वायुं क्षित्यर्षा    | १४२६      | अयमु ते समतसि          | १८३; १५९९ | अषाढमुमं पृतनासु       | ११५६      |
| अभि वित्रा अनूषत         | ११२७      | अया चित्तो विपानया     | ८०५       | असर्जि कलशा अभि        | ९४२       |
| अभि वो वीरमन्वसो         | २६५       | अया धिया च गव्यया      | १८८       | असर्जि रथ्यो यथा       | ४९०       |
|                          |           |                        |           | असर्जि वक्त्रा रथ्ये   | ५४३       |



|                         |           |                            |           |                           |           |
|-------------------------|-----------|----------------------------|-----------|---------------------------|-----------|
| असावि देवं •            | ३१३       | आ ते दक्षं मयोभुव          | ४९८; ११३७ | आपानासो विवस्वतो          | ११२३      |
| असावि सोम इन्द्र        | ३४७; १०२८ | आ ते वत्सो मनो             | ८; ११६६   | आपो हि छा मयोभुवः         | १८३७      |
| असावि सोमो अरुषो        | ५६२; १३१६ | आ त्वा गिरो                | ३४९       | आ प्रागाद्भद्रा           | ६०८       |
| असाव्यंशुर्मदायाप्सु    | ४७३; १००८ | आ त्वा प्रावा वदन्निह      | १८०९      | आ बुन्दं वृत्रहा ददे      | २१६       |
| असि हि वीर सेन्यो       | १००३      | आ त्वा रथ सवर्दुषा         | २९५       | आ भात्यमिषुषा             | १७५२      |
| अमृतं प्र वाजिनो        | ४८२; १०३४ | आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी      | ६६७       | आभिष्वममिष्टिभिः          | ६४२       |
| अमृतं देववीतये          | १८१२      | आ त्वा रथं यथो             | ३५४; १७७१ | आ मन्द्रमा वरेण्यमा       | ११३८      |
| अमृतमिन्द्रवः पथा       | ११२८      | आ त्वा रथे हिरण्यये        | १३९२      | अ मन्द्रैर्मिन्द्र हरिभिः | २४६; १७१८ |
| अमृतमिन्द्र ते गिरः     | २०५       | आ त्वा विशन्तिवन्दवः       | १९७; १६६० | आमासु पक्कमैरय            | १४३१      |
| असौ या सेना मरुतः       | १८६०      | आ त्वा सखायः               | ३४०       | आ मित्रं वरुणे भगे        | ११३५      |
| अस्तन्नि मन्म पूर्य     | १६७७      | आ त्वा सहस्रमा             | २४५; १३९१ | आ यः पुरे नार्मिणीम्      | १७७४      |
| अस्ति सोमो अयं सुतः     | १७४; १७८५ | आ त्वा सोमस्य              | ३०७       | आयं गोः पृथिनरकमीद्       | ६३०; १३७६ |
| अस्तु श्रौषट् पुरो      | ४६१       | आ त्वेता नि षीदते          | १६४; ७४०  | आ यद् दुवः शतक्रतवा       | १०८६      |
| अस्मभ्यं त्वा वसुवेदमभि | ५७५       | आदह स्वधामनु               | ८५१       | आ ययोऽशितं                | १०६०      |
| अस्मभ्ये रोदसी          | ११३६      | आदित्यप्रलस्य रेतसो        | २०        | आ याहि वनसा               | ४४३       |
| अस्मभ्यमिन्द्रबिन्ध्यं  | १०४६      | आदित्यैरिन्द्रः सगणो       | १११२      | आ याहि सुषुमा हि त        | १९१; ६६६  |
| अस्मा अस्मा इदन्धमो     | १४४३      | आदो हंसो यथा गणं           | ७७०       | आ यात्यमिन्द्रवे          | ४०२       |
| अस्माकमिन्द्रः समृतेषु  | १८५९      | आदो केचित्पश्यमानास        | १४९५      | आ यात्युप नः सुतं         | ९२७       |
| अस्य प्रतनामनुयुतं      | ७५५       | आदो त्रितस्य योषणो         | ७७१       | आ योनिमरुणो               | ९२५       |
| अस्य प्रेषा हेमना       | ५२६; १३९९ | आदीमथं न                   | १०१०      | आ रयिमा सुचेतुनमा         | ११३९      |
| अस्य व्रतानि धृषे       | १७१६      | आ न इन्द्रो शातविनं        | ८२५       | आ व इन्द्रं कृवि यथा      | २१४       |
| अस्येदिन्द्रो मदेत्वा   | ६९६       | आ नः सुतास                 | १३२८      | आ वंसते मघवा              | ८७९       |
| अस्येदिन्द्रो वाधृषे    | १५७४      | आ नः सोम संयतं             | ११५४      | आ वच्यस्व महि             | १०३८      |
| अहं प्रत्नेन जन्मना     | १५०१      | आ नः सोम सहे               | ८३४       | आ वच्यस्व सुदक्ष          | १०१२      |
| अहमस्मि प्रथमजा         | ५९४       | आ नस्ते गन्तु मत्परो       | १४३३      | आविर्मर्या आ वाजं         | ४३५       |
| अहमिद्धि पितुष्वरि      | १५२; १५०० | आ नो अमे रयि               | १५१५      | आविवासन्परावतो अथो        | ९०२       |
| आ गन्ता मा विषण्यत      | ४०१       | आ नो अमे वयोधृषं           | ४३        | आविशन्तलशं सुतो           | ४८९       |
| आग्निं न स्वधृक्किभिः   | ४२०       | आ नो अमे सुचेतुना          | १५२६      | आ वो राजानमध्वरस्य        | ६९        |
| आग्ने स्था रयि          | १५२९      | आ नो भज परमेष्वा           | १४९९      | आशुः विशानो वृषभो         | १८४९      |
| आ घा गमद्यदि श्रवत्     | ७४५       | आ नो मित्रावरुणा           | २२०; ६६३  | आशुरषं बृहन्मते           | ८९८       |
| आ घा त्वावान् त्मना     | १०८५      | आ नो रत्नानि बिभ्रतौ       | १७४५      | आ सुते सिञ्चत अयं         | १४८०      |
| आ घा ये अग्निमिधते      | १३३; १३३८ | आ नो वयो वयः               | ३५३       | आ सोता परि                | ५८०; १३९४ |
| आ जागृविर्विप्र श्रुतं  | १३५७      | आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं | २६९; १४९२ | आ सोम स्वानो              | ५१३; १६८९ |
| आ जामिरत्के अव्यत       | १३८७      | आ पप्राथ महिना             | ८६३       | आ हरयः ससृजिरे            | १४९०      |
| आ जुहोता हविषा          | ६३        | आ पवमान धरया               | १२०३      | आ हर्यताय धृष्णवे         | ५५१       |
| आ तिष्ठ वृत्रहत्रयं     | १०२९      | आ पवमान सुश्रुति           | ९०६       | आ हर्यतो अर्जुनो          | ७६८       |
| आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं | १६७; ७२८  | आ पवस्व सुवीर्यं           | ७८६       | इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं  | ७२१       |
| आ तू न इन्द्र वृत्रहन्  | १८१       | आ पवस्व मदिन्तम            | १२०८      | इच्छन्तश्च यच्छिरः        | ९१४       |
| आ ते अग्न इधीमहि        | ४१९; १०२२ | आ पवस्व महीमिषं            | ८९५       | इडामग्ने पुरुदंशं         | ७६        |
| आ ते अग्न ऋचा हविः      | १०२३      | आ पवस्व सहस्रिणं           | ५०१       | इत ऊति वो अजरं            | २८३       |



|                            |           |                              |            |                           |           |
|----------------------------|-----------|------------------------------|------------|---------------------------|-----------|
| इत एत उदाहरन्              | ९२        | इन्द्रमिदरी वहतो             | १०३०       | इन्द्रो मत्स्यन्धसो       | १८०       |
| इत्था हि सोम               | ४१०       | इन्द्रमीजानमोजसामि           | १५५२       | इन्द्रो अंग महद्भयम्      | २००       |
| इदं त एकं पर उ त           | ६५        | इन्द्र वाजेषु नोऽव           | ५९८; ७९८   | इन्द्रो दधीचो अस्थमिः     | १७९; ११३  |
| इदं वमो सुतमन्धः           | १२४; ७३४  | इन्द्र शुद्धो न आगहि         | १४०३       | इन्द्रो वीर्याय चक्षस     | ७५९       |
| इदं वो मदिरै               | १०७५      | इन्द्र शुद्धो हि नो          | १४०४       | इन्द्रो मदाय वावृधे       | ४११; १००२ |
| इदं विष्णुर्विचक्रमे       | २२२; १६६२ | इन्द्रश्च वायवेष्वां         | १६२९       | इन्द्रो महा रोदसी         | १५८८      |
| इदं श्रेष्ठं ज्योतिषी      | १७४२      | इन्द्र सुतेषु धोमेषु         | ३८१; ७४६   | इन्द्रो राजा जगतः         | ५८७       |
| इदं श्रेष्ठं ज्योतिषी      | १४५५      | इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो       | ९५४        | इन्द्रो विश्वस्य          | ४५६       |
| इदं ह्यन्वोजसा सुतं        | १६५; ७३७  | इन्द्रस्ते सोम सुतस्य        | १३६९       | इन्धे राजा समयो           | ७०        |
| इनो राजजरतिः समिद्धो       | १५४६      | इन्द्र स्यातर्दरीणां         | १६८५       | इम इन्द्र मदाय ते         | २२४       |
| इन्दुः पविष्ट              | ४३१       | इन्द्रस्य नु वीर्याणि        | ६१२        | इम इन्द्राय सुन्विरे      | २२३       |
| इन्दुः पविष्ट चेतनः        | ४८१       | इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ       | १८६९       | इमा उ त्वा पुरुवसो        | १४६       |
| इन्दुरिन्द्राय पवत         | ८७३       | इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य     | १८५७       | इम उ त्वा विचक्षते        | १३६       |
| इन्दुर्वाजी पवते           | ५४०; १०१९ | इन्द्रस्य सोम पवमान          | १२३०       | इमं स्तोममर्हते           | ६६; १०६४  |
| इन्द्रो यथा तव             | ९७६       | इन्द्रस्य सोम राघसे          | ११८०       | इममिन्द्र सुतं पिब        | ३४४; ९४२  |
| इन्द्रो यदग्निमिः          | ९६४       | इन्द्रामी अपसरपर्युप         | १५७७; १६२४ | इमम् पु त्वमस्माकं        | २८; १४९७  |
| इन्द्र आसां नेता           | १८५६      | इन्द्राग्नी अपादियं          | २८१        | इमं मे वरुण श्रुधी        | १५८५      |
| इन्द्र इक्ष्योः सचा        | ५२७; ७७७  | इन्द्राग्नी आगतं सुतं        | ६६९        | इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् | ५२१       |
| इन्द्र इक्षो महोर्ना       | ७१५       | इन्द्राग्नी जरितुः सचा       | ६७०        | इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो   | १५०; १६०७ |
| इन्द्र इषे ददातु न         | १९९       | इन्द्राग्नी तविषाणि वा       | १५७८; १६९५ | इमा उ त्वा सुतेसुते       | २०१       |
| इन्द्र सक्थेमिर्मन्दिष्ठो  | २२६       | इन्द्राग्नी नवति पुरो        | १५७६; १७०४ | इमा उ वां दिविष्टय        | ३०४; ७५३  |
| इन्द्रः स दामने            | १२२३      | इन्द्राग्नी युवामिमे         | ९९१        | इमा नु कं भुवना           | ४५२; १११० |
| इन्द्रं वयं महाधन          | १३०       | इन्द्राग्नी रोचना दिवः       | १६९३       | इमास्त इन्द्र पृश्नयो     | १८७       |
| इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्धुं   | १७७५      | इन्द्रा नु पूषणा वयं         | २०२        | इमे त इन्द्र ते वयं       | ३७३       |
| इन्द्रं विश्वा अवी         | ३३३; ८९७  | इन्द्रापर्वता वृद्धता        | ३३८        | इमे त इन्द्र सोमाः        | २१२       |
| इन्द्रं वो विश्वतस्पदि     | १६२०      | इन्द्राय गाव आशिरे           | १४९१       | इमे हि ते ब्रह्मकृतः      | १६७६      |
| इन्द्र कर्तुं न आ भर       | २५२; १४५६ | इन्द्राय गिरो अनिशित         | ३३९        | इयं धामस्य मन्मन          | ९१६       |
| इन्द्र जठरं नव्यं          | २५३       | इन्द्राय नूनमर्चत            | ९५१        | इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व     | १८१९      |
| इन्द्र जुषस्व प्र वहा      | ९५२       | इन्द्राय पवते मदः            | ५२०        | इषं तोकाय नो दधत          | ९२६       |
| इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर     | ५८६       | इद्राय मद्रते सुतं           | १५८; ७९२   | इषे पवस्व धारया           | ५०५; ८४१  |
| इन्द्र तुभ्यमिदग्निवो      | ४१२       | इन्द्राय साम गायत            | ३८८; १०२५  | इकर्तारमध्वरस्य           | १८०       |
| इन्द्र त्रिधातु शरणं       | ६६६       | इन्द्राय सोम सुधुतः          | ५६१        | इष्टा द्वोत्रा असृक्षत    | १५१       |
| इन्द्र जेभीय एदिहि         | २८२       | इन्द्राय सोम पातवै मदाय      | १४४८       | इह त्वा गोपरीणसं          | ७३३       |
| इन्द्र तं शुम्भ पुरुहुत    | २३४       | इन्द्राय सोम पातवै वृत्रघ्ने | १३३१; १६७९ | इहेव शृण्व एषां           | १३५       |
| इन्द्रं नरो नेमाधिता       | ३१८       | इन्द्रा याहि चित्रभानो       | ११४६       | इक्षिष्व हि प्रतीक्यां    | १०३       |
| इन्द्रं धनस्य सातये        | ६४७       | इन्द्रा याहि ततुजानः         | ११४८       | इक्षयंतीरपस्युव           | १७५       |
| इन्द्रमग्निं कविच्छदा      | ६७१       | इन्द्रा याहि चियेचितो        | ११४७       | इक्षेयो नमस्यस्तिरस्तमासि | १५३८      |
| इन्द्रमष्ट सुता            | ५६६; ६९४  | इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वते     | ४७१; १०७६  | इशान इमा भुवनानि          | ९५७       |
| इन्द्रमिन्द्राग्निनो बृहन् | १९८; ७२६  | इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्      | ८००        | इक्षिषे वार्यस्य हि       | १५३३      |
| इन्द्रमिद्वेवतातय          | २४९; १५८७ | इन्द्रेण सं हि दग्ने         | ८५०        | इक्षो हि शक्रस्           | ६४६       |



|                           |           |                          |                |                                     |           |
|---------------------------|-----------|--------------------------|----------------|-------------------------------------|-----------|
| उक्थं च न शस्यमानं        | २२५; १८०५ | उप त्वा कर्मन्तूतये न नो | ७०९            | ऋतावानं वैश्वानरं                   | १७०८      |
| उक्थमिन्द्राय शंस्यम्     | ३६३       | उप त्वाग्ने दिवेदिवे     | १४             | ऋतेन मित्रावरुणा                    | ८४८       |
| उक्षा मिमेति प्रति        | १३७१      | उप त्वा जामथो गिरो       | १३; १५७०       | ऋतेन या वृतावृधा                    | ७९४       |
| उग्रा विधनिना मृध         | ८५४       | उप त्वा जुहोरे मम        | १५४९           | ऋधक् सोम स्वस्तये                   | ६५६       |
| उच्चा ते जातमन्धसो        | ४६७; ६७२  | उप त्वा रण्वसंहशं        | १७०५           | ऋषिमना य ऋषिऋस्वर्षाः               | ११७३      |
| उत त्या हरितो रथे         | १२१८      | उप नः रावना गहि          | १०८८           | ऋषिर्विप्रः पुरेता                  | ६७९       |
| उत न एना पवया             | ११०५      | उप नः सूनवो गिरः         | १५९५           | एतं त्वं हरितो दश                   | १२७९      |
| उत नः प्रिया प्रियासु     | १४६१      | उप नो हरिभिः             | १५०; १७९०      | एतं त्रितस्य योषणो                  | १२७५      |
| उत नो गोमतीरिषो           | १०६३      | उप प्रक्षे मधुमति        | ४४४; १११५      | एतमु त्वं दश                        | १०८१      |
| उत नो गोविदश्ववित्        | ९७७       | उपप्रयन्तो अध्वरं        | १३७९           | एतमु त्वं दश क्षिपो                 | १२७३      |
| उत नो गोषणि               | १५९३      | उप शिक्षापतस्थुषो        | ७६१            | एतमु त्वं मद्व्युतं                 | ५८१       |
| उत नो वाजसांतये           | ११९०      | उप स्त्रक्षु बध्नतः      | १४८२           | एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप               | १२६८      |
| उत प्र पिप्य ऊधरध्वन्याया | १४१०      | उपह्वरे गिरीणाम्         | १४३            | एता उ त्या उषसः                     | १७५५      |
| उत व्रुवन्तु जन्तवः       | १३८२      | उपारुमं गायता नरः        | ६५१; ७६३       | एते अस्यमिन्द्रवः                   | ८३०       |
| उत वात पितासि नः          | १८४१      | उपो भतिः पृथ्यते         | १३७१           | एते सोमा अभि                        | ११७८      |
| उत सखास्यश्विनोऽस्तु      | १७१७      | उपोषु जातमस्तुरं         | ४८७; ७६२; १३३५ | एते सोमा अस्यस्त                    | १०६१      |
| उत स्या नो दिवा           | १०२       | उपोषु शृणुहि             | ४१६            | एतो निवन्दं स्तवाम शुद्धमृ३५०; १४०२ |           |
| उत श्वराजो अदितिरदन्धस्य  | १३५३      | उपो हरीणां पति           | १५१०           | एतो निवन्दं स्तवाम सखायः            | ३८७       |
| उता यातं संगवे            | १७५४      | उभयं शृणवच्च न           | २९०; १२३३      | एदु मघोर्मदिन्तरं                   | ३८५; १६८४ |
| उतो न्वस्य जोषमा          | १७८७      | उभयतः पवमानस्य           | ८८७            | एना विश्वान्यर्य आ                  | ५९३; ६७४  |
| उत्तिष्ठन्नोजसा सह        | ९८८       | उभे यदिन्द्र रोदसी       | ३७९; १०९०      | एना वो अग्नि नमसो                   | ४५; ७४९   |
| उत्ते वृद्धन्तो अर्चयः    | १५४१      | उरुगव्युतिरभयानि         | १४१०           | एन्दुमिन्द्राय धिचत                 | ३८६; १५०२ |
| उत्ते शुष्मास ईरते        | १२०५      | उरुगव्यचसे महिने         | १७९४           | एन्द्र नो गधि प्रिय                 | ३९३; १२४७ |
| उत्ते शुष्मासो अस्थू      | १७१४      | उरुशंसा नमोवृधा          | ६६४            | एन्द्र पृक्षु कासु                  | २३१       |
| उत्त्वा मंदन्तु सोमाः     | १९४; १३५४ | उवस्तच्चित्रमा भरा       | १७३१           | एन्द्र याहि हरिभिः                  | ३४८; १८०७ |
| उदग्ने भारत युमत          | १३८५      | उषा अप स्वसुष्टमः        | ४५१            | एन्द्र याह्युप नः                   | ४५९       |
| उदग्ने शुचयस्तव           | १५३४      | उषो अश्वेह गोमत्य        | १७३२           | एन्द्र सानधि रयि                    | १२९       |
| उदग्नेष्वरुणा भानवो       | १७५६      | उसा वेद वसुनां           | १०५८           | एमिनो अर्कैर्भवा                    | १७७९      |
| उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्   | ५८९       | ऊर्जा मित्रो वरुणः       | ४५५            | एमेनं प्रत्येतन                     | १४४१      |
| उदुत्यं जातवेदसं          | ३१        | ऊर्जो नपाजातवेदः         | १८१८           | एवा नः सोम परि                      | ८६१       |
| उदु त्ये मधुमत्तमा        | २५१; १३६२ | ऊर्जो नपातमा             | १७१२           | एवा पवस्व मदिरो                     | ८०८       |
| उदु त्ये सूनवो गिरः       | २२१       | ऊर्जो नपातं स            | ७०४            | एवभृताय महे                         | १३६८      |
| उदु वृद्धाण्यैरत          | ३३०       | ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये       | ५७             | एवा रातिस्तुविमघ                    | ८१५       |
| उदुसियाः सृजते सूर्यः     | ७५२       | ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतये    | १६०१           | एवा स्यति वीरयुरेवा                 | २३२; ८२४  |
| उद्गा आजदङ्गिरोभ्यः       | १६४१      | ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि     | १८४७           | एवा हि शक्रो                        | ६४३       |
| उद्देदभि श्रुतामघं        | १२५; १४५० | ऊर्ध्वं साम यजामहे       | ३६९            | एवाहोऽ३३३ व                         | ६५०       |
| उद्दधय मधवन्              | १८५८      | ऋजुनीती नो वरुणो         | २१८            | एष इन्द्राय वायवे                   | १२८७      |
| उद्यस्य ते नवजातस्य       | १२२१      | ऋतमृतेन सपन्तेषिरं       | १४६६           | एष उ स्य पुरुवतो                    | १२६५      |
| उद्यामेषि रजः             | ६३८       | ऋतस्य जिह्वा पवते        | ७०१            | एष उ स्य वृषा                       | १२७४      |
| उपच्छायाभिव वृणेः         | १७०६      | ऋतावानं महिषं            | १८२१           | एष कविरभिऋतुतः                      | १२८६      |
| उप त्रितस्य पाथ्यो        | १०१४      |                          |                |                                     |           |



|                             |           |                          |           |                          |           |
|-----------------------------|-----------|--------------------------|-----------|--------------------------|-----------|
| एष गभ्युरचिक्रदत्           | १२८९      | और्वभृगुवस्तुचिम्        | १८        | गम्भोरा उदधोरिव          | १७९०      |
| एष दिवं वि धावति            | १२९२      | क इमं नाहुषोष्वा         | १२०       | गर्भे मातुः पितुष्पिता   | १३९७      |
| एष दिवं व्यासरतिरो          | १२९३      | क ई वेद सुते सचा         | १९७; १६२६ | गध्यो पु णो यथा पुरा     | १८६       |
| एष देवः शुभायते             | १२८२      | क ई व्यक्ता नरः          | ४३३       | गायत्रं त्रैष्टुभं जगत   | १८३०      |
| एष देवो अमर्त्यः            | १२५६      | कङ्काः सुपर्णा अनु       | १८६४      | गायन्ति त्वा गायत्रिणं   | ३४२; १३४४ |
| एष देवो रथयति               | १२५९      | कण्वा इन्द्रं यदकत       | १३०८      | गाव उप वदावटे            | ११७; १६०९ |
| एष देवो विपन्युभिः          | १२६०      | कण्वा इव भृगवः           | १३६३      | गावश्चिद् वा समन्यवः     | ४०४       |
| एष देवो विषा कृतो           | १२६१      | कण्वेभिर्वृष्णवा धृषद्   | ८६३       | गिरस्त इन्द्र ओजसा       | १०४३      |
| एष धिया यात्यन्वा           | १२६६      | कदा चन स्तरीरसि          | ३००       | गिरा वज्रो न सम्भृतः     | १२२४      |
| एष नृभिर्वि नीयते           | १२८८      | कदा मर्तमराधसं           | १३४३      | गिर्वणः पादि नः सुतं     | १९५       |
| एष पवित्रे अक्षरत्सोमो      | १२८१      | कदा वसो स्तोत्रं हर्यत   | २२८       | गृणाना जमदग्निना         | ६६५       |
| एष पुरु धियायते             | १२६७      | कदु प्रचेतसे महे         | २२४       | गुणे तदिन्द्र ते शव      | ३९१       |
| एष प्र कोशे मधुमाँ          | ५५६       | कनिकन्ति हरिरा           | ५३०       | गोत्रभिदं गोविदं         | १८५४      |
| एष प्रत्नेन जन्मना          | ७५८; १२६४ | कया ते अग्ने अङ्गिर      | १५४९      | गोमन्त्र इन्द्रो अश्ववत् | ५७४; १६११ |
| एष प्रत्नेन गन्मना          | ७५९       | कयां त्वं न ऊस्यामि      | १५८६      | गोविस्पवस्व वसुविद्      | ९५५       |
| एष ब्रह्मा य कृत्विय        | ४३८; १७६८ | कया नश्चित्र आ           | १६९; ६८९  | गोषा इन्द्रो नृषा        | १०४५      |
| एष रुक्मिभिरीयते            | १२७०      | कविमग्निमुप स्तुहि       | ३९        | गौर्धयति मरुतां          | १४३       |
| एष वसूनि पिबदनः             | १२७२      | कविमिव प्रशंस्यं         | १२४५      | घृतं पशव्य धारया         | १४३७      |
| एष वाजी हितो                | १२८०      | कविर्वेधस्या पर्येषि     | १३१८      | घृतवती भुवनानाम्         | ३७८       |
| एष विप्रैरभिष्टुतो          | १२५७      | कवी नो मित्रावरुणा       | ८४९       | चक्रं यदस्यास्ता         | ३३१       |
| एष विश्वानि वार्या          | १२५८      | कश्यपस्य स्वविदो         | ३६१       | चन्द्रमा अपस्वाँ         | ४१७       |
| एष वृषा कनिकदद्             | १२८३      | कस्तमिन्द्र त्वा वसवा    | २८०; १६८९ | चमूषच्छयेनः शकुनो        | ११७७      |
| एष शुष्म्यदाभ्यः            | १२९१      | कस्ते जमिर्जनानामग्ने    | १५३५      | चर्षणीधृतं मध्वानं       | ३७४       |
| एष शुष्म्यसिष्यदद्          | १२९०      | कस्त्वा सत्यो मदानां     | ६८३       | चित्रं देवानामुदगादनीकं  | ६२९       |
| एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिन्नीते | १२७१      | कस्त्वं नूनं परीणसि      | ३४        | चित्र इच्छिशो स्तरुणस्य  | ६४        |
| एष सूर्यमरोचयत्             | १२८४      | कायमानो वना त्वं         | ५३        | जगृह्णा ते दक्षिणम्      | ३१८       |
| एष सूर्येण हासते            | १२८५      | किमित्ते विष्णो परिचक्षि | १६२५      | जग्निवृत्रमामित्रियं     | ८१६       |
| एष स्य ते मधुमाँ            | ५३१       | कुविस्वस्य प्र हि        | १६६८      | जहानः सप्त मातृभिः       | १०१       |
| एष स्य धारया                | ५८४       | कुविस्सु नो गविष्ठये     | १६४९      | जहानो वाचमिष्यसि         | ९६०       |
| एष स्य पीतये सुतो           | १२७८      | कुष्ठः नो वामश्विना      | ३०५       | जनस्य गोपा अजनिष्ट       | ९०७       |
| एष स्य मयो रसोऽव            | १२७७      | कृण्वन्तो वरिवो गवे      | ८३२       | जनीयन्तो न्वप्रवः        | १४६०      |
| एष स्य मानुषोष्वा           | १२७६      | कृष्णा यदेनीमसि          | १५४७      | जराबोध तद्विविद्         | १५; १६६३  |
| एष हितो वि नीयते            | १२६९      | केतुं कृण्वं दिवस्पारि   | २५९       | जातः परेण धर्मणा         | ९०        |
| एतो उषा अपूर्या             | १७८; १७९८ | केतुं कृण्वन्केतवे       | १४७०      | जुष्ट इन्द्राय मत्सरः    | ११२४      |
| एह देवा मयोभुवा             | १७३५      | को अय युङ्क्ते           | ३४१       | जुष्टो हि दूतो असि       | १७८१      |
| एह हरी ब्रह्मयुजा           | १६५८      | कस्त्वा मर्द्धा अनुषवन्  | ४२३       | ज्योतिर्यज्ञस्य पवते     | १०३१      |
| एतृषु ब्रवाणि तेऽग्न        | ७; ७०५    | क्रोडमस्त्रो न मंहयुः    | ९७४       | तं वः सखायो मदाय         | ५६९; १०९८ |
| ऐमिर्ददे वृष्ण्या           | १७८४      | कवस्य वृषभो              | १४२       | तं वो दस्मशृतीषहं        | २३६; ६८५  |
| ओजस्तदस्य तिरिषि            | १८२; १६५३ | कवेयथ कवेदसि             | २७१       | तं वो वाजानां पतिं       | १६८६      |
| ओमं सुखन्त्र बिश्वते        | १०९४      | क्षपो राजन्नुत त्मनामे   | १५६३      | तं सखायः पुरुक्वन्       | १६८०      |



|                          |           |                           |            |                            |           |
|--------------------------|-----------|---------------------------|------------|----------------------------|-----------|
| सं हिन्वन्ति मदच्युतं    | १७१७      | तरणिरिषिषासति             | २३८; ८६७   | ते मन्वत प्रथमं            | ६०६       |
| तं हि स्वराज्यं वृषभं    | १९३४      | तरणिविश्वदर्शतो           | ६३५        | ते विश्वा दाशुषे           | १०१६      |
| तं होतारमध्वरस्य         | १५१४      | तरस मन्वी धावति           | ५००; १०५७  | ते सुतासो विपश्चितः        | १८११      |
| तक्षयथी मनमो             | ५७७       | तरसमुद्रं पवमान           | ८५७        | ते स्याम देव वरुण          | १०६९      |
| तं गायया पुराण्यः        | १६३३      | तरोभिर्वो विद्वसुमिन्द्रं | २३७, ६८७   | तोशा वृत्रहणा हुवे         | १७०९      |
| तं गृधया स्वर्णरं        | १०९; १६८७ | तव कृत्वा तवोतिभिः        | १०५२       | तोशासा रथयावाना            | १०७४      |
| ततो विराडजायत            | ६११       | तव स्य इन्द्रो अन्धघो     | १२२६       | स्यमु वः सप्तासहं          | १७०; १६४२ |
| तत्ते यज्ञो भजायत        | १४३०      | तव त्वदिन्द्रियं वृहत्तव  | १३४५       | स्यमु वो अप्रहृणं          | ३५७       |
| तत्सवितुर्वरेण्यं        | १४६२      | तव स्यमयं नूतोऽप          | ४६६        | स्यमू पु वाजिनं            | ३३२       |
| तदग्ने शुम्नमा भर        | ११३       | तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं    | १६४६       | स्यं सु मेघं महया          | ३७७       |
| तदया चित्त उक्थिनो       | ८८१       | तव द्रप्सा उतप्रुत        | १३२७       | प्रातारामिन्द्रं           | ३३३       |
| तदिदास भुवनेषु           | १४८३      | तव द्रष्टो नीलवान्        | १८१३       | मिश्रद्धाम वि रजति         | ६३२; १३७८ |
| तद्विप्राप्तो विपन्यवो   | १६७३      | तव श्रियो वर्यस्येव       | ९८९        | त्रिक्रुकेषु चेतमं         | ७२४       |
| तद्विष्णोः परमं पदं      | १६७६      | तवाहं भक्तुत सोम          | ९२३        | त्रिक्रुकेषु महिषो         | ४५७; १४८६ |
| तद्वो गाय सुते सचा       | ११५; १६६६ | तवाहं सोमं रारणं          | ५१६; ९२२   | त्रिपादुर्ध्वं उदैत्पुरुषः | ६१८       |
| तं ते मयं गृणीमसि        | ३८३; ८८०  | तवेदिन्द्रावमं वसु        | २७०        | त्रिरश्मै सप्त घेनवो       | ५६०; १४२३ |
| तं ते यवं यथा गोभिः      | ७३६       | तस्मा अरं गमाम वो         | १८३९       | प्राणि त्रितस्य धारया      | १०१५      |
| तं स्वा गोपवनो           | २९        | ता अस्य नमसा सहः          | १००७       | प्राणि पदा वि चक्रमे       | १६७०      |
| तं स्वा वृत्तस्नवीमहे    | १५२२      | ता अस्य पृशनायुवः         | १००६       | स्यं यथिष्ठ दाशुषो         | १२४६      |
| तं स्वा धर्तारिमोष्योः   | ८०४       | ता नः शक्तं पार्थिवस्य    | ११४५; १४६५ | स्यं राजेव सुमतो           | ९७२       |
| तं स्वा नृम्णानि विभ्रतं | ८३६       | ता वो वाजवतीरिव           | ११५१       | स्यं वरुण उत मित्रो        | १३०६      |
| तं स्वा मदाय धृष्य       | १०४४      | तामिरा गच्छतं             | ९९३        | स्यं वरुण गोमतो            | १२५१      |
| तं स्वा विप्रा वचोविदः   | १०७७      | ता वां सम्यगनुद्वाण       | ९८६        | स्यं विप्रस्वं कविर्मधु    | १०९४      |
| तं स्वा शोचिष्ठवीदिवः    | ११०९      | ता वां गीर्भिर्विपन्युवः  | ८०२        | स्यं समुद्रिया अयो         | ७७६       |
| तं स्वा समिद्धिरंगिरो    | ६६१       | तावानस्य महिमा            | ६२०        | स्यं सिधूँरवास्तुजो        | १८०२      |
| तं दुरोषमभी नरः          | ६९९       | ता सम्राजा घृतासुती       | ९१२        | स्यं सुतो मदिन्तमो         | १३२४      |
| तपोष्यविभ्रं विततं       | ८७६       | ता हि शशन्त ईषत           | ८०१        | स्यं सुष्वाणो आद्रिभिः     | १३२५      |
| तममिमस्ते वस्रषो         | १३७४      | ता हुवे ययोरिदं           | ८५३        | स्यं सूर्ये न आ भज         | १०५१      |
| तमस्य मर्जयामसि          | १६३२      | तिस्रो वाच ईरयति          | ५२५; ८५९   | स्यं सोम नृमादनः           | ९६५       |
| तमिद्वधन्तु नो गिरो      | १३३६      | तिस्रो वाच उदीरते         | ४७१; ८६९   | स्यं सोम परि स्रव          | ९८१       |
| तमिन्द्रं जोहवीमि        | ४६०       | तुचे तुनाय तस्सु नो       | ३९५        | स्यं सोमासि चारयुर्मन्द्र  | १३२३      |
| तमिन्द्रं वाजयामसि       | ११९; १२२२ | तुभ्यं सुतासः सोमाः       | ११३        | स्यं ह स्यत्पणीना          | १५९९      |
| तमोविष्व यो अर्विषा      | ११४९      | तुभ्येमा भुवना कवे        | ७७७        | स्यं ह स्यत्सप्तभ्यो       | ३९६       |
| तमु आमे प्रगायत          | ३८२       | तुरण्यवो मधुमन्तं         | १६१०       | स्यं हि क्षेतययथो          | ८४        |
| तमु स्वा नूनमसुर         | १४१२      | तुविशुष्म तुबिक्रतो       | १७७२       | स्यं हि नः पिता वसो        | ११७०      |
| तमु हवाम यं गिर          | ८८५       | ते अस्य सन्तु केतवो       | १४२५       | स्यं हि राघसहपते           | १३२२      |
| तमु हुवे वाजवातय         | ७४८       | ते जानत स्वभोक्तयं        | १४८१       | स्यं हि वृत्रहणेषां        | १७९९      |
| तमोषवीर्दधिरे            | १८२४      | ते नः सहस्रिणं            | ११९२       | स्यं हि शशतीनामिन्द्र      | १२४९      |
| तया पवस्व चारया          | १४३६      | ते नो वृष्टिं दिवस्पति    | ११६५       | स्यं हि शरः सजिता          | १४३४      |
| तरणि वो जनानाम्          | २०४       | ते पूतासो विपश्चितः       | ११०२       | स्यं ह्याश्रम दैव्यं       | ५८३; ९१८  |



|                               |           |                           |           |                                 |           |
|-------------------------------|-----------|---------------------------|-----------|---------------------------------|-----------|
| त्वं होहि चेरवे               | १४०; १५८१ | त्वे क्रतुमपि वृजन्ति     | १४८५      | न तस्य मायया च                  | १०४       |
| त्वं जामिर्जनानामग्ने         | १५३६      | त्वे विश्वे सजोषसो        | १०९५      | न ते गिरी अपि मृग्ये            | १७९२      |
| त्वं दाता प्रथमो राधसा        | १४९३      | वेषस्ते धूम ऋण्वति        | ८३        | न त्वा वृद्धन्तो अद्रयो         | २९६       |
| त्वं तां च महिमत              | १०१८      | त्वे सोम प्रथमा           | १५०६      | न त्वावाँ अन्यो                 | ६८१       |
| त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं     | ७१८       | वृधन्व वा यधीमनु          | ९४        | न त्वा शतं च न                  | १२१५      |
| त्वं न इन्द्रा भर             | ४०५; ११६९ | दधिकाणो अकारिषं           | ३५८       | नदं व ओदतीनां                   | १५१२      |
| त्वं नश्चित्र कल्या           | ४१; १६२३  | दविष्णुतस्या रुचा         | ६५४       | न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु         | ८६८       |
| त्वं नृचक्षा असि सोम          | ९५६       | दाना मृगो न वारणः         | १६१७      | नमः सखिभ्यः                     | १८२८      |
| त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म | १५०५      | दाशेम कस्य मनसा           | १५५०      | नमसेदुप सीदत                    | १४४६      |
| त्वं नो अग्ने महोभिः          | ६         | दिवः पीयूषमुत्तमं         | १२२७      | नमस्ते अग्न ओजसे                | ११; १६४८  |
| त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं         | ६१        | दिवो धर्तासि शुक्रः       | १२४३      | न यं दुप्रा वरन्ते न स्थिरा     | ६८८       |
| त्वमग्ने यज्ञानां होता        | २; १४७४;  | दिवो नाभा विचक्षणो        | ११९९      | नराशंसमिह                       | १३०९      |
| त्वमग्ने वसूरिह               | ९६        | दीर्घ ह्यङ्कुशं यवा       | १०९१      | नव यो नवति पुरो                 | १४५१      |
| त्वमग्ने सप्रथा असि           | १४०७      | दुहान ऊर्ध्वदिग्यं        | ६७६       | न संस्कृतं प्र मिमीतो           | १७५३      |
| त्वमग्ने प्र संसिषो देवः      | २४७; १७२३ | दुहानः प्रत्नमित्ययः      | ७६०       | न सीमदेव आप                     | २६८       |
| त्वमिदमप्रथा अश्यमे           | ४२        | दूर्तं वो विश्ववेदसं      | १२        | न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवनेमानां | ७०७       |
| त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि     | ३११; १६३७ | दूरादिहेव यत्सतो          | २१२       | न हि त्वा दूर देवा न            | ७३०       |
| त्वमिन्द्र बलादधि             | ११०       | देवानामिद्वो महत्         | १३८       | न हि वश्वरमं च न                | २४१       |
| त्वमिन्द्र यशा अस्युजी        | २४८; १४११ | देवेभ्यस्त्वा मदाय        | ११८२      | न ह्यङ्ग पुरा च न               | १५११      |
| त्वमिन्द्राभिभूरधि            | १०२६      | देवो वो द्रविणोदाः        | ५५; १५१३  | नाके सुपर्णमुप                  | ३२०; १८४६ |
| त्वमिमा ओषधीः                 | ६०४       | द्यौषो आगार्द वृहद्राय    | १७७       | नाभा नाभिं न आ ददे              | ११२६      |
| त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र       | १३५६      | द्युषं सुदानं ताविषीभिः   | ६८६       | नाभिं यज्ञानां सदनं             | ११४२      |
| त्वं पुक् सहस्राणि            | १५८२      | द्रष्टाः समुद्रमग्निं यत् | १८४८      | नित्यस्तोत्रो वनस्पतिः          | १२८२      |
| त्वमेतदधारयः कृष्णासु         | ५२५       | द्विता यो वृत्रहन्तमो     | १७९१      | नि त्वा नक्ष्य विशपते           | २६        |
| त्वया वयं पवमानेन             | ५२०       | द्विर्यं पंच स्वयशसं      | १३३०      | नि त्वमग्ने अनुर्देधे           | ५४        |
| त्वया ह स्विद्युजा            | ४०३       | द्यर्ता दिवः पवते         | ५५८; १२२८ | नियुवान्वायवा गहायं             | ६००       |
| त्वष्टा नो दैव्यं वचः         | १९९       | धानादन्तं करम्भिणम्       | २१०       | नीव शीर्षाणि मृह्यं             | १६५६      |
| त्वां यज्ञैरवीवृधन्           | १०५५      | धिया चक्रे वरेण्यो        | १४७९      | नूनं पुनानोऽविभिः               | १३१४      |
| त्वां रिहन्ति धीतयो           | १०१७      | धीभिर्मृजन्ति वाजिनं      | ९४१       | नू नो रयिं महामिन्दो            | ९२६       |
| त्वां विश्वे अमृतं जायमानं    | ११४१      | वेनुष इन्द्र सूनृता       | १८३६      | नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं     | ११८५      |
| त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो      | १६४७      | वसयोः पुरुषन्त्योरा       | १०५९      | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वां शुभिमन्पुरुहूत          | ११७१      | न कि इन्द्र त्वदुत्तरं    | २०३       | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वां दूतमग्ने अमृतं          | १५६८      | न कि देवा इनीमसि          | १७६       | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वामग्ने अजिरेषो गुहा        | ९०८       | न किरस्य सहस्रस्य         | १४१६      | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वामग्ने पुष्करादध्य         | ९         | न किष्टं कर्मणां          | २४३; ११५५ | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वामिच्छवसस्पते              | १७६९      | न किष्टवदधीतरो            | ९५०       | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वामिदा ह्यो नरो             | ३०२; ८१३  | न की रेवन्तं सहाय         | १३९०      | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वामिद्धि हवामहे             | २३४; ८०९  | न वा वसुनि यमते           | १६६७      | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वावतः पुक्वसो               | १९३       | न वेमन्यदा पपन            | ७२०       | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |
| त्वे अग्ने स्नाहुतं           | ३८        | न तमहो न दुरितं           | ४२६       | नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या      | ७३५       |



|                                  |           |                                |           |                          |           |
|----------------------------------|-----------|--------------------------------|-----------|--------------------------|-----------|
| परि बुद्धं सनद्रयि               | ४९५       | पवस्व दक्षसाधनो                | ४७४; ९१९  | पुनानः सोम धारयापो       | ५११; ६७५  |
| परि णः शर्मयन्त्या               | ८९७       | पवस्व देव आयुष                 | ४८३; १२३५ | पुनानासस्वमूषदो          | ११७९      |
| परि णो अश्वमश्वविद्              | १२११      | पवस्व देववीतय                  | ५७१; १३२६ | पुनाने तन्वा मिथः        | १५९७      |
| परि प्र चन्वेन्द्राय             | ४२७; १३६७ | पवस्व देववीरति                 | १०३७      | पुनानो अक्रमीदमि         | ४८८; ९२४  |
| परि प्रासिष्यदत्कविः             | ४८६       | पवस्व मधुमत्तम                 | ५७८; ६९२  | पुनानो देववीतय           | ८४२       |
| परि प्रिया दिवः                  | ४७६; ९३५  | पवस्व वाचो अग्रियः             | ७७५       | पुनानो वरिवस्काषि        | ८४२       |
| परि यस्काव्या                    | १३३१      | पवस्व वाजसातमो                 | ५२१       | पुनानो वारे पवमानो       | १०८०      |
| परि वाजपतिः कविः                 | ३०        | पवस्व वाजसातये                 | १०१६      | पुरः सद्य ह्यथाषिये      | १२११      |
| परि विश्वानि चेतसः               | ९७०       | पवस्व विश्वचर्षण               | ८९६       | पुरा मिन्दुर्युवा        | ३५९; १२५० |
| परिष्कृण्वन्नानिष्कृतं           | ८९९       | पवस्व वृत्रहन्तम               | ९६६       | पुरुता हि सहस्रदसि       | ११६७      |
| परि स्य स्वानो                   | १२४०      | पवस्व सुष्टिमा सु नो           | १४३५      | पुरु त्वा दाक्षिवा वोचे  | ९७        |
| परि स्वानश्चक्षसे                | १३१५      | पवस्व सोम युग्नी               | ४३६       | पुरुष एवेदं सर्व         | ६१९       |
| परि स्वानास इन्द्रवो             | ४८५; ११२२ | पवस्व सोम मधुमाँ               | ५३२       | पुरुहन्तं पुरुहन्तं      | ७२४       |
| परि स्वानो गिरिष्ठाः             | ४७५; १०९३ | पस्व सोम मन्दयन्               | १८१०      | पुरुतमं पुरुणामीशानं     | ७४१       |
| परीतो विश्वता सुतं               | ५१२; १३१३ | पवस्व सोम महान्                | ४२९; १२४१ | पुरुणा चिद्वयस्यवो       | ९८५       |
| पर्जन्यः पिता महिषस्य            | १३१७      | पवस्व सोम महे                  | ४३०; १३३२ | पुरोजिती वो अन्धसः       | ५४५; ६९७  |
| पर्युषु प्र चन्व                 | ४९८; १३६४ | पवस्वेन्द्रो वृषा सुतः         | ४७९; ७७८  | पूर्वस्य यत्ते अश्विवो   | ६४८       |
| पर्षि तोकं तनयं                  | १६२४      | पवित्रं ते विततं               | ५६५; ८७५  | पूर्वारिन्द्रस्य रातयो   | ८२९       |
| पवते हर्यतो हरिरति               | ५७६; ७७३  | पवीतारः पुनीतन                 | १०५०      | पौरौ अश्वस्य             | १५८०      |
| पवन्ते वाजसातये                  | ११८९      | पातं नो मित्रा पायुभिः         | ९८७       | प्र कविर्देववीतये        | ९६८       |
| पवमान चिया हितो                  | ९२१       | पाता वृत्रहा सुतमा             | १६५९      | प्र काव्यामुग्नेव        | ५२४; १११६ |
| पवमान नि तोशसे                   | १२३६      | पात्योमिर्विषो अमं             | ६१४       | प्र केतुना बृहता         | ७१        |
| पवमानमवस्यवो                     | ११८८      | पान्तमा वो अन्धस               | १५५; ७१३  | प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य | ६०९       |
| पवमान रसस्तव                     | ८९०       | पावकवर्चाः शुक्रवर्चा          | १८१७      | प्र गायताभ्यर्चाम        | ५३५       |
| पवमान रुचारुचा                   | ९०५       | पावका नः सरस्वती               | १८९       | प्रजामृतस्य पिप्रतः      | १३०२      |
| पवमान व्यश्नुहि                  | १३११      | पावमानीर्दधन्तु न              | १३०१      | प्र त आश्विनीः पवमान     | ८८६       |
| पवमान सुवीर्य रथि                | १४४९      | पावमानीर्यो अष्येत्            | १२१२      | प्र तत्ते अथ विपिविष्ट   | १६२६      |
| पवमानस्य जिघ्नतो                 | १३१०      | पावमानीः स्वस्त्ययनीः          | १३००      | प्रति तयं चारुमध्वरं     | १६        |
| पवमानस्य ते कवे                  | ६५७       | पावमानीः स्वस्त्ययनीभिर्गच्छति | १३०३      | प्रति प्रियतमं रथं       | ४१८; १७४३ |
| पवमानस्य ते रसो                  | ८९१       | पाहि गा अन्धसो मद              | २८९       | प्रति वा सूर उदिते       | १०६७      |
| पवमानस्य ते वयं                  | ७८७       | पाहि नो अम एकया                | ६६; १५४४  | प्रति व्या सूनरी जनी     | १७२५      |
| पवमानस्य विश्वावित्              | ९५८       | पाहि विश्वस्माद्रक्षषो         | १५४५      | प्र तु द्वव परि कोशं     | ५२३; ६७७  |
| पवमाना असृक्षत पवित्रमात         | ५२२       | पिबन्ति मित्रो अर्यमा          | १७८६      | प्र ते अश्रोतुकुक्षयोः   | ७३९       |
| पवमाना असृक्षत सोमाः             | १६२९      | पिबा त्व रस्य गिर्वणः          | १३९३      | प्र ते धारा असश्वतो      | १७६१      |
| पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत | १७००      | पिबा सुतस्य रसिनो              | २३९; १४२१ | प्र ते धारा मधुमतीः      | ५३४       |
| पवमानास आशवः                     | १७०१      | पिबा सोममिन्द्र                | ३९८; ९२७  | प्र ते श्रोतारो रथं      | १३३३      |
| पवमानो अजीजनत्                   | ४८४; ८८९  | पुनरुजा नि वर्तस्व             | १८३२      | प्रत्न पीयूषं पूर्य      | १४९४      |
| पवमानो अमि स्पृषो                | ११३२      | पुन्यता दक्षसाधनं              | ११५९      | प्रत्यग्रे हरसा हरः      | ९५        |
| पवमानो असिष्यदत्                 | १४३९      | पुनानः कलशेष्वा                | ११८३      | प्रत्यङ् देवानां विशः    | ६३६       |
| पवमानो रथीतमः                    | १३११      | पुनानः सोम जागृवि              | ५१९       | प्रत्यस्मै पिपीषते       | ३५२; १४४० |



|                                       |            |
|---------------------------------------|------------|
| प्रत्यु अदर्यायत्                     | ३०३; ७२१   |
| प्रथस्य यस्य सप्रथस्य                 | ५२९        |
| प्र देवमच्छा मधुमन्त                  | ५६३        |
| प्र दैवोदासो                          | ५१; १५१७   |
| प्र धन्वा सोम जागृविः                 | ५६७        |
| प्र धारा मधो अग्रियो                  | ११२९       |
| प्र न इन्द्रो महे तु न                | ५०९        |
| प्र पवमान धन्वसि                      | ९६३        |
| प्र जुनानाय वेधसे                     | ५७३        |
| प्रप्र क्षयाय पन्यसे                  | ९३७        |
| प्रप्र वल्लिष्ठमभिषं                  | ३६०        |
| प्रभर्ता शूरो मधवा                    | १४५९       |
| प्र भूर्जयन्तं महां                   | ७४         |
| प्रभो जनस्य वृत्रहन्                  | ६४९        |
| प्र मंहिष्ठाय गात्र                   | १०६; ८७८   |
| प्र मन्दिने पितुमदर्चता               | ३८०        |
| प्र मित्राय प्रायम्णे                 | २५५        |
| प्र यद्वावो न भूर्णयः                 | ४९१; ८९९   |
| प्र युष्वा वाचो अग्रियो               | ११३०       |
| प्र यो राये निनीषति                   | ५८         |
| प्र यो रिरिक्ष ओजसा                   | ३१२        |
| प्र व इन्द्राय वृहते                  | २५७        |
| प्र व इन्द्राय मादनं                  | १५६; ७१६   |
| प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय ४४६; १११३ |            |
| प्र वामर्चन्युक्थिनो                  | १५७५; १७०३ |
| प्र वां महि श्वी                      | १५९६       |
| प्र वाचमिन्दुरिष्यति                  | १२०१       |
| प्र वाज्यक्षाः पृथ्वारस्तिरः          | ११६०       |
| प्र वो चियो मन्द्रयुवो                | ११५३       |
| प्र वो महे मतयो                       | ४६२        |
| प्र वो महे महे                        | ३२८; १७९३  |
| प्र वो मित्राय गायत                   | ११४३       |
| प्र वो यङ्ग पुरुणाम्                  | ५९         |
| प्र सम्राजमसुरस्य                     | ७८         |
| प्र सम्राजं चर्षणीनाम्                | १४४        |
| प्र स विश्वेभिरभिभिरभिः               | १५०४       |
| प्रसवे त उदीरते                       | १२०६       |
| प्र सुन्वानायान्वसो ५५३; ७७४; १३८६    |            |
| प्र सेनानीः शूरो                      | ५३३        |
| प्र सो अग्ने तवातिभिः १०८; १८९९       |            |

|                             |           |
|-----------------------------|-----------|
| प्र सोम देववीतये            | ५१४; ७६७  |
| प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा | ११६३      |
| प्र सोमासो अघन्विषुः        | ९६१       |
| प्र सोमासो मदच्युतः         | ४७७; ७६९  |
| प्र सोमासो विपश्चितो        | ४७८; ७६४  |
| प्र स्वानासो रथा इव         | १११९      |
| प्र हंसासस्तुपला            | १११७      |
| प्र हिन्वानो जनिता          | ५३६       |
| प्र होता जातो महान्         | ७७        |
| प्र होत्रे पूर्यं वचो       | ९८        |
| प्राचीमनु प्रादेशं याति     | १५९१      |
| प्राणा विश्वमेहीनां         | ५७०; १०१३ |
| प्रातरग्निः पुरुप्रियो      | ८५        |
| प्राचीविपद्वाच ऊर्ध्वे      | ९४५       |
| प्रास्य धारा अक्षरन्        | १७६५      |
| प्रियो नो अस्तु विश्वपतिः   | १६१९      |
| प्रेता जयता नर              | १८६२      |
| प्रेक्षो अग्ने वीरिहि       | १३७५      |
| प्रेष्ठ वो अतिथिं           | ५, १२४४   |
| प्रेक्षभाहि वृष्णहि         | ४१३       |
| प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः        | ५६        |
| अवासीदिन्दुरिन्द्रस्य       | ५५७; ११५२ |
| प्रोथदश्वो न यवसे           | १२२०      |
| प्रो ध्वस्मे पुरोरथं        | १८०१      |
| वृद् सूर्य श्रवसा महौ       | १७८९      |
| वृषमहौ असि सूर्य            | ९७६; १७८८ |
| वृषवे नु स्वतवसे            | १४४४      |
| वृषविज्ञायः स्थविरः         | १८५३      |
| वृषदुक्यं हवामहे            | २१७       |
| वृहादन्द्राय गायत           | २५८       |
| वृहाङ्गमं अर्चिभिः          | ३७        |
| वृहदयो हि भानवो             | ८८        |
| वृहमदिष्म एषां              | १३३९      |
| वृहस्पते परि वीया रथेन      | १८५२      |
| वृषधमना इदस्तु नो           | १४०       |
| वोधा सु मे मधवन्            | ९५९       |
| वृषा जज्ञानं प्रथमं         | ३२१       |
| वृषा प्रजावदा अर            | १३९८      |
| वृषा देवानां पदवीः          | ९४४       |
| वृषाण इन्द्र                | ४२९       |

|                                   |           |
|-----------------------------------|-----------|
| वृषाणस्त्वा युजा वयं              | ६६८       |
| वृषाणादिन्द्र रावसः               | २२९       |
| वृषो न चित्रो                     | ४४९       |
| वृषं कर्णोभिः शृणुयाम देवाः       | १८७४      |
| वृषं नो अपि वातय                  | ४२२       |
| वृषं वृषं न आ भरे                 | १७३       |
| वृषं मनः कृणुष्व                  | १५६०      |
| वृषापक्षा समन्या ३ वसानो          | १४००      |
| वृषो नो अभिराहुतो                 | १११; १५५९ |
| वृषो वृषया सचमान                  | १५४८      |
| वृषामेधं कृणवामा                  | १०६५      |
| विन्धि विश्वा अप द्विषः १३४; १०७० |           |
| भूयाम ते सुमतौ                    | १४२२      |
| भूरि हि ते सवना                   | १८००      |
| भ्रजान्त्यग्ने समिधान             | ६१५       |
| भ्रवोन आ पवस्व                    | ११८४      |
| मघोनः स्म वृत्रहत्येषु            | १६८३      |
| मरिष वायुमिष्टये                  | १२५४      |
| मन्स्यपायि ते महः                 | १४३२      |
| मत्स्वा सुविप्रिन्द्र             | ८१४       |
| मदच्युक्षेति सादने                | ११९८      |
| मधुमन्तं तनूनपायज्ञ               | १३४८      |
| मनीषिभिः पवते                     | ८२२       |
| मन्दन्तु त्वा मधवन्               | १७२२      |
| मन्दं होतारमृष्विजं               | १५४३      |
| मन्द्रया सोम धारया                | ५०६       |
| मन्ये वां यावापृथिवी              | ६२९       |
| मयि वचो अयो यशो                   | ६०२       |
| मर्माणि ते वर्मणा                 | १८७०      |
| महत्सोमो महिषश्चकारापा ५४२; ११५५  |           |
| महौ इन्द्रः पुरश्चनो              | १६६       |
| महौ इन्द्रो य ओजसा                | १३०७      |
| महान्तं त्वा महीरन्तु             | १०४०      |
| महि त्रीणामवरस्तु                 | १९२       |
| मही मित्रस्य साधथाः               | १५९८      |
| महीमे अस्य वृष नाम                | ११०६      |
| महे च न त्वादिवः                  | २९१       |
| महे नो अघ बोधयोषो ४२२; १७४०       |           |
| महो नो राय आ भर                   | १२१४      |
| मा विद्वन्वद्वि वांसत             | २४२; १३६० |



|                         |           |                              |           |                                  |           |
|-------------------------|-----------|------------------------------|-----------|----------------------------------|-----------|
| मा ते राधासि मा त       | १७२४      | यजा नो मिश्रावरुणा           | १५३७      | यद्वा रुमे रुशमे                 | १२३२      |
| मा त्वा मूरा भविष्यवो   | ७३२       | यजामह इन्द्रं वज्रं दक्षिणं  | ३३४       | यद्वाहिष्ठं तदमये                | ८६        |
| मा न इन्द्र परा वृणग्   | २६०       | यजिष्ठं त्वा यजमाना          | १८१४      | यद्वाविन्द्रं यस्मिन्ने          | २०७; १०७५ |
| मा न इन्द्र पीयूषवे     | १८०६      | यजिष्ठं त्वा वृत्रमहे        | ११२; १४१३ | यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र          | ११७३      |
| मा न इन्द्राभ्या ३ दिशः | १२८       | यज्जायथा अपूष्यं             | ६०१; १४२९ | यममे पृथु मर्यमवा                | १४१५      |
| मा नो अग्ने महाधने      | १६५०      | यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्          | १२१; १६३२ | यया या आकरामहै                   | १५२८      |
| मा नो अज्ञाता वृजना     | १४५७      | यज्ञं च नस्तन्वं च           | ११११      | यव्यवं नो अन्वसा                 | ९७५       |
| मा नो हृणीथा अतिथि      | ११०       | यज्ञस्य केतुं प्रथमं         | ९०९       | यशो मा यावापृथिवी                | ६११       |
| मा पापत्वाय नो          | ९१८       | यज्ञस्य हि स्थ ऋतिवजा        | १०७३      | यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ          | १३४२      |
| मा भेम मा श्रमिषोप्रस्य | १६०५      | यज्ञायज्ञा वो अमये           | ३५, ७०३   | यस्त इन्द्र नवीयसीं              | ८८४       |
| मित्रं वयं हवामहं       | ७९३       | यं जनासो हविष्मन्तो          | १५६५      | यस्ते अनु स्वधामसत्              | ७३८       |
| मित्रं हुवे पूतदक्षं    | ८४७       | यत इन्द्र भयामहे             | २७४, १३२१ | यस्ते नूनं शतक्रतविद्र           | ११६       |
| मूर्धानं दिवो अरति      | ६७; ११४०  | यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो   | ११७४      | यस्ते मदो युज्यश्वाः             | ९२८       |
| मृगो न भीम कुचरो        | १८७३      | यत्र क्व च ते मनो            | ७०६       | यस्ते मदो वरेण्यः                | ४७०; ८१५  |
| मृजन्ति त्वा दश क्षिपो  | ११८१      | यत्र बाणाः संपतन्ति          | १८६६      | यस्ते शृङ्गवृषो नपात्            | ७२७       |
| मृज्यमानः सुहस्त्या     | ५१७; १०७३ | यस्सानोः सान्वाकहो           | १३४५      | यस्त्वाममे हविष्पतिः             | ८४५       |
| भेदि न त्वा वज्रिण      | ३२७       | यत्सोम चित्रमुक्थं           | ९९९       | यस्मादेजन्तं कृष्टयश्चकृत्यानि   | १५१६      |
| मेधाकारं वेदयस्य        | ९८४       | यत्सोममिन्द्र विष्णवि        | ३८४       | यस्मिन्विश्वा अधि                | ७२३       |
| मो घु त्वा वाघतश्च      | २८४; १६७५ | यथा गौरो अपा कृतं            | २५२; १७२१ | यस्य त इन्द्रः पिबायस्य          | १०९७      |
| मो घु ब्रह्म तन्द्रयुः  | ८२६       | यददो वात ते गृहे             | १८४२      | यस्य ते पीत्वा वृषभो             | ६९३       |
| य आनयत्परावतः           | १२७       | यदङ्गिः परिषिच्यसे           | ७८५       | यस्य ते महिना महः                | १७७३      |
| य आर्जकेषु कृत्वष्टु    | ११६४      | यदय कच्च वृत्रहन्            | ११६       | यस्य ते विश्वमानुषगभूरेर्दत्तस्य | १०७१      |
| य इदं प्रतिप्रथे        | १७०९      | यदय सर उविते                 | १३५१      | यस्य ते सह्ये वयं                | ७७९       |
| य इदं आविवासति          | ११५०      | यदा कदा च मादुषे             | २८८       | यस्य त्यच्छन्वरं                 | ३९२       |
| य इन्द्र चमसेवा         | १६२       | यदिन्द्र चित्र म इह          | ३४५; ११७२ | यस्य त्रिधात्ववृतं               | १५७१      |
| य इन्द्र सोमपासमो       | ३९४       | यदिन्द्र नाहुषीष्वा          | २६२       | यस्यायं विश्व आयो                | १६०९      |
| य उग्र इव शर्यहा        | १७०७      | यदिन्द्र प्रागपायुदग्न्यग्वा | २७२; १२३१ | यस्येदमा रजोयुजस्तुजे            | ५८८       |
| य उग्रः सन्नानिष्टतः    | १६९८      | यदिन्द्र यावतस्त्वमेता       | ३१०; १७९६ | या इन्द्र भुज आभरः               | २५४       |
| य उस्त्रिया अपि या      | ५८५       | यदिन्द्र शासो अत्रतं         | २९८       | या ते भीमान्यायुधा               | ७८०       |
| य ऋणे चिदभिध्रिषः       | २४४       | यदिन्द्राहं यथा त्वे         | १२२; १८३४ | या दक्षा सिन्धुमातरा             | १७२२      |
| य ऐक इद्विदयते          | ३८९; १३४१ | यदिन्द्रो अनयद्रितो          | १४८       | या वां सन्ति                     | ९९२       |
| य ओजिष्ठस्तमा भर        | ८२०       | यदि वीरो अनुष्याद्           | ८२        | यावित्था श्लोकमा दिवो            | १७३६      |
| यः पावमानीरध्वेति       | १२९८      | यद्वी गणस्य रशनाम्           | १७४८      | या सुनीये शौचद्रेथ               | १७४१      |
| यः सत्राहा विचर्षणिः    | २८६       | यद्वी वहन्त्याशवो            | ३५६       | यास्ते धारा मधुश्चुतो            | ९७२       |
| यः सोमः कलशेष्वा        | १२००      | यद्वी सुतेभिरिन्दुभिः        | १४४२      | युंक्त्वा हि केक्षिना            | १३४६      |
| यः रूनीहितीषु पूष्यः    | १३८०      | यदुदीरत आजयो                 | ४१४; १००४ | युंक्त्वा हि वाजिनीवती           | १७३३      |
| यं रक्षन्ति प्रचेतसो    | १८५       | यद्वा यान इन्द्र ते शतं      | २७८; ८६२  | युंक्त्वा हि वृत्रहन्तम्         | ३०१       |
| यं वृत्रेषु क्षितय      | ३३७       | यद्युजाथे वृषणम्             | १७५९      | युजन्ति ब्रध्नमरुधं              | १४६८      |
| यश्चिद्धि शश्वता        | १६१८      | यद्वर्चो हिरण्यस्य           | ६२४       | युजन्ति हरी इषिरस्य              | ७१२       |
| यच्छक्रासि परावति       | २६४       | यद्वा उ विशपतिः              | ११४       | युजन्त्यस्य काम्या               | १४६९      |



|                           |           |
|---------------------------|-----------|
| युज्य वाचं शतपदी          | १८९९      |
| युधं सन्तममर्वाणं         | १६४३      |
| युवं चित्रं ददथुर्भोजनं   | ७५४       |
| युवं हि स्थः स्वःपतीः     | १००१      |
| ये ते पन्था अधो दिवो      | १७२       |
| ये ते पवित्रमूर्मयो       | ७८८       |
| ये त्वामिन्द्र न तुष्टुः  | १५०२      |
| येन ज्योतिष्यायवे         | ८८१       |
| येन देवाः पवित्रेणात्मानं | १३०२      |
| येना नवस्वा दध्यह्न       | ९३९       |
| येना पावक चक्षसा          | ६३७       |
| ये सोमासः परावति          | ११६३      |
| यो अग्निं देववीतये        | ८४६       |
| योगेयोगे तवस्तरं          | १६३; ७४३  |
| यो जागार तमृचः            | १८९६      |
| यो जिनाति न जीयते         | ९७८       |
| यो धारया पावकया           | ६९८       |
| यो न इदमिदं पुरा          | ४००       |
| यो नः स्वोऽरणो यश्च       | १८७१      |
| योनिष्ठ इन्द्र सदने       | ३१४       |
| यो नो वनुष्यन्            | ३३६       |
| यो मंहिष्ठो मघोनाम्       | ६४५       |
| यो रयि वो रयिन्तमो        | ३५१       |
| यो राजा चर्षणीनां         | १७३; ९३३  |
| यो वः शिवतमो रभः          | १८३८      |
| यो विश्वा दयते वसु        | ४४; १५८३  |
| रक्षोहा विश्वचर्षणिरग्नि  | ६९०       |
| रयिं नश्चित्रमश्विनम्     | १०५६      |
| रसं ते मित्रो अर्यमा      | १०७८      |
| रसःयः पयसा                | ८०७       |
| राजानावनभिद्रुहा          | ९११       |
| राजानो न प्रशस्तिभिः      | ११२१      |
| राजा मेधाभिरीयते          | ८३३       |
| रायः समुदाश्चतुरो         | ८७१       |
| राया हिरण्यया             | १०६८      |
| राये अग्ने महे            | ९३        |
| रुशद्वस्त्रा रुशती        | १७१०      |
| रेवतीर्नः सधमाद्          | १५३; १०८४ |
| रेवो इद्रेवत स्तोतां      | १८०४      |
| व्ययन्ते वां ककुहासो      | १७३०      |

|                               |           |
|-------------------------------|-----------|
| वयः सुपर्णा उप                | ३१९       |
| वयं व त्वा सुतावन्तः          | १६१; ८६४  |
| वयं वा ते अपि स्मसि           | २३०       |
| वयं ते अस्य राधसो             | १२३९      |
| वयमिन्द्र त्वावयो             | १३२       |
| वयमु त्वामपूर्य               | ४०८; ७०८  |
| वयमु त्वा तदिदधा              | १५७; ७१९  |
| वयमेनमिदा                     | २७२; १६२१ |
| वयश्चित्ते पतत्रिणो           | ३६७       |
| वरिवोधातमो भुवो               | ६९१       |
| वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो    | ७९५       |
| वषट् ते विष्णवांस             | १६२७      |
| वसन्त इन्नु रन्त्यो           | ६१६       |
| वसुरागिर्वसुभ्रवा             | ११०८      |
| वस्या इन्द्रासि मे            | २९२       |
| वाचमष्टापदीमहं                | ९९०       |
| वार्जो वाजेषु धीयते           | १४७८      |
| वात आ वातु भेषजं              | १८४; १८४० |
| वातोपजुत इषितो                | ९८३       |
| वायविन्द्रश्च शुष्मिणा        | १६३०      |
| वायो शुक्रो अयामि             | १६२८      |
| वार्णं त्वा यय्यामिर्वर्धन्ति | ७११       |
| वावृधानः शवसा                 | १४८४      |
| वाभ्रा अर्धन्तीन्दवो          | ११९३      |
| वास्तोष्यते ध्रुवा            | २७५       |
| विघ्नन्तो दुरिता              | ८३१       |
| वि चिद् वृत्रस्य दोधतः        | १६५२      |
| वि त्वदापो न पर्वतस्य         | ६८        |
| विदा मघवन् विदा               | ६४१       |
| विदा राये सुवीर्यं            | ६४४       |
| विद्या हि त्वा तुविकूर्मि     | ७२९       |
| विधुं दद्रा समने              | ३२५; १७८२ |
| वि न इन्द्र मृधो जहि          | १८६८      |
| विपश्चिते पवमानाय             | १६१५      |
| विभक्ताभि चित्रमानो           | १४२८      |
| विभूतरातिं विप्र              | १६८८      |
| विभूषणम् उभयौ                 | ११६९      |
| विभोष्ट इन्द्र राधसो          | ३६६       |
| विभ्राजं ज्योतिषा             | १०९७      |
| विभ्राद् बृहस्पिबतु           | ६२८; १४५३ |

|                           |           |
|---------------------------|-----------|
| विभ्राद् बृहस्पिबतु       | १४५४      |
| वि रक्षो वि मृधो जहि      | १८६७      |
| विष्यकथ महिना             | १६६१      |
| विशो विशो वो अतिथिं       | ८७; १५६४  |
| विश्वकर्मन्दविषा वावृधानः | १५८९      |
| विश्वतोदावन्विश्वतो       | ४३७       |
| विश्वस्मा इ स्वर्दशे      | ८४०       |
| विश्वस्य प्र स्तोम पुरो   | ४५०       |
| विश्वाः पृतना अभिभूतरं    | ३७०; ९३०  |
| विश्वा धामानि विश्वचक्ष   | ८८८       |
| विश्वानरस्य वस्पतिम्      | ३६४       |
| विश्वे देवा मम शृण्वन्तु  | ६१०       |
| विश्वेमित्रे अग्निभिरिमं  | १६१७      |
| वि पु विश्वा अरातयो       | १८०३      |
| विष्णोः कर्माणि पश्यत     | १६७१      |
| वि स्रुतयो यथा यथा        | ४५३; १७७० |
| वीडु चिदाकजन्तुभिः        | ८५१       |
| वीतिहोत्रं त्वा कवे       | १५१३      |
| वृकश्चिदस्य वारण          | १६२२      |
| वृत्रखादो वलं रुजः        | १७१९      |
| वृत्रस्य त्वा श्वसथा      | ३२४       |
| वृषणं त्वा वयं            | १५४०      |
| वृषा पवस्व धारया          | ४६९; ८०३  |
| वृषा पुनान आयुषि          | १०००      |
| वृषा मतीनां पवते          | ५५९; ८२१  |
| वृषा यूथेव वंसगः          | १६२२      |
| वृषा शोणो अभि             | ८०६       |
| वृषा सोम दुर्भौ           | ५०४; ७८१  |
| वृषा ह्यभि भानुना         | ४८०; ७८४  |
| वृषो अग्निः समिष्यते      | १५३९      |
| वृष्टिं दिवाः परि स्रव    | ११८६      |
| वृष्टियावा रीत्यापेषस्पती | १४६७      |
| वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो    | ७८२       |
| वेथा हि निर्झरतीनां       | ३९६       |
| वेथा हि वेधो              | १४७६      |
| व्यन्तर्दिक्षमतिरन्मदे    | १६४०      |
| शंसिदुक्थं मुदानव         | ७१७       |
| शो नो देवीरभिष्टये        | ३३        |
| शं पदं मघं                | ४४१       |
| शक्रेण त्वा समिधं         | १०६६      |



|                            |           |                          |          |                                |           |
|----------------------------|-----------|--------------------------|----------|--------------------------------|-----------|
| शङ्खू ३षु शचीपत            | २५३; १५७९ | सखायस्त्वा वचमहे         | ६२       | स पवित्रे विचक्षणो             | १२९३      |
| शचीमिर्नः शचीवसू           | २८७       | सख्ये त इन्द्र वाजिनो    | ८२८      | स पुनान उपसूरे                 | १३५८      |
| शतानीकेव प्र जिगाति        | ८१२       | स वा तँ वृषणं            | ४२४      | स पृथ्वी महोनी                 | ३५५       |
| शशमानस्य वा नरः            | १५९४      | स वा नः सुनुः            | १६३५     | सप्त त्वा हरितो रथे            | ६४०       |
| शाक्मना शाको अरुणः         | १७८३      | स वा नो योग आ            | ७४२      | सप्ति मृजन्ति वेधसो            | १७६६      |
| शाचिगो शाचिपूजनायं         | ७२६       | स वा यस्ते दिवो          | ३६५      | स प्रथमे व्योमनि देवानां       | ७४७       |
| शिक्षा ण इन्द्र राय        | १६४४      | संकंदनेनानिमिषेण         | १८५०     | स भक्षमाणो अमृतस्य             | १४२४      |
| शिक्षेयमस्मै दिक्सेयं      | १८३५      | सत्यमिंथा वृषेदसि        | २६३      | समस्त्वमिमवसे                  | ११६८      |
| शिक्षेयमिन्महयते           | १७९७      | सत्राहणं दाधुषि          | ३३५      | समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः     | ६०७       |
| शिंशुं जज्ञानं हरिं        | १३३४      | स त्रितस्याधि सानवि      | १२९५     | स मर्मज्ञान आयुभिः             | १७६३      |
| शिंशुं जज्ञानं हर्यतं      | ११७५      | स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त | ८१०      | समस्य मन्येव विशो              | १३७; १६५१ |
| शुकः पवस्व देवेभ्यः        | १२४२      | सदसस्पतिद्रुतं           | १७१      | स महा विश्वा                   | १३०५      |
| शुकं ते अन्यद्यजतं         | ७५        | सदा गावः शुचयो           | ४४२      | भमानो अध्वा स्वस्त्रोः         | १७५१      |
| शुचिः पावक उच्यते          | ९६७       | सदा व इन्द्रश्चर्कषदा    | १९६      | स मामृजे तीरो                  | १६९०      |
| शुनं हुवेम मघवानं          | ३२९       | स देवः कविनेषितो         | १२२७     | समिद्धमग्निं समिधा             | १५६७      |
| शुभ्रमन्त्रो देववातमप्सु   | १००९      | स न इन्द्रः शिवः         | १४५२     | समिद्रेणोत वायुना              | १०८२      |
| शुभ्रममाना ऋतायुभिः        | १०३५      | स न इन्द्राय यज्यवे      | ५९२; ६७३ | समिद्रे रायो बृहतीः            | १६७८      |
| शुष्मी शर्धो न मारुतं      | १४७३      | स न ऊर्जे व्यश्न्ययं     | १४३८     | समी वत्सं न मातृभिः            | ११५८      |
| शूरग्रामः सर्ववीरः         | १४०९      | स नः पवस्व शं गवे        | ६५३      | समीचीना अनूषत                  | ९०३       |
| शूरो न धत्त आयुधा          | १२२९      | स नः पुनान आ भर          | ७८९      | समीचीनास आशत                   | ११२५      |
| शृणुतं जरितुः              | ९१७       | स नः पृथु श्रवायमच्छा    | ६६२      | समुद्रो अप्सु मामृजे           | १०४१      |
| शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः     | ८९४       | सना च सोम जेषि           | १०४७     | समु प्रिया अनूषत               | ८१९       |
| शेषे वनेषु मातृषु          | ४६        | सना ज्योतिः सना          | १०४८     | समु प्रियो मृज्यते सानो        | १४०१      |
| श्रुते दधामि प्रथमाय       | ३७१       | सता दक्षमुत              | १०४३     | समु रेभासो अस्वरन्             | ९३२       |
| श्रायन्त इव सूर्य          | २६७; १३१९ | सनादमे मृणसि             | ८०       | समेत विश्वा ओजसा               | ३७२       |
| श्रुतं वो वृष्टदन्तमं      | २०८       | सनेमि त्वमस्मदा          | १६१३     | सं मातृभिर्नि विशुर्वावशानो    | १४१९      |
| श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः | ५०        | स नो दूराच्चासाच्च       | १६२६     | सम्मिश्रो अरुषो भुवः           | ८१७       |
| श्रुधी हवं तिरश्च्या       | ३४६; ८८३  | स नो भगाय वायवे          | १०८३     | सम्राज्ञा या मृतयोनी           | ११४४      |
| श्रुधी हवं विपिपानस्य      | १७९८      | स नो मन्द्राभिरध्वरे     | १४७५     | स योजत उरुगायस्य               | १११८      |
| श्रुष्टममे नवस्य मे        | १०६       | स नो महां अनिमानो        | १६६४     | स योजते अरुषा                  | ७५०       |
| स दधानो वसुष्कविः          | १५६२      | स नो मित्रमहः            | १७१३     | सरूप वृषता गहोमी               | १६५५      |
| स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिः   | १८५१      | स नो विश्वा दिवो         | १७३४     | स रेवा इव विश्वपतिर्देव्यः     | १६६५      |
| स ई रथो न                  | १४७२      | स नो वृषभमुं चरं         | १६२१     | स वर्धिता वर्धनः               | १३५२      |
| सं ते पयांसि समु           | ६०३       | स नो वेदो अमात्यममी      | १३८१     | स वहिरप्सु दुष्टरो             | २७३       |
| सं वरस इव मातृभिः          | १०९९      | स नो हरीणां पत           | १६१२     | स वाजं विश्वचर्षणिर्वह्निरस्तु | १४१७      |
| संवृक्तधृष्णमुक्थं         | ८३७       | स देवैः शोभते            | ९२०      | सा वाजी रोचनं                  | १२९४      |
| सखाय आ नि                  | ५६८; ११५७ | स पवस्व मदन्तिम          | १२०९     | स बाज्यक्षाः सहस्रेताः         | ११६१      |
| सखाय आ शिवामहे             | ३९०       | स पवस्व य आविथेन्द्रं    | ४२४      | स वायुमिद्रमधिना               | ११३४      |



|                            |           |                             |           |                               |           |
|----------------------------|-----------|-----------------------------|-----------|-------------------------------|-----------|
| स वीरो दक्षसाधनो           | १३८८      | सुत एति पवित्र आ            | ९०१       | सोमः पूषा च                   | १५४       |
| स वृत्रहा वृषा             | १२९६      | सुता इन्द्राय वायवे         | ७६६       | सोमं गावो धेनवो               | ८६०       |
| सव्यामनु स्फिग्यं वावृसे   | १६०६      | सुतासो मधुमत्तमाः           | ५४७; ८७२  | सोमं राजानं वरुणं             | ९१        |
| स सुतः पीतये               | १२९२      | सुनीथो या स मर्त्यो         | २०६       | सोमा असुप्रामिन्दवः           | ११९६      |
| स सुन्वे यो वसूनां         | ५८२; १०९६ | सुनोता सोमपावने             | २८५       | सोमाः पवन्त इन्दवो            | ५४८; ११०१ |
| स सुनुमातरा                | २३६       | सुप्रावीरस्तु स क्षयः       | १३५२      | सोमानां स्वरणं                | १३९; १४६३ |
| सह रथ्या नि वर्तस्व        | १८३३      | सुमन्मा वस्वी               | १६५४      | स्तोत्रं राधानां पते          | १६००      |
| सहर्षभाः सहवत्साः          | ६२६       | सुरूपकृत्नुमृतये            | १६०; १०८७ | स्वरन्ति त्वा सुते            | ८६५       |
| सहस्रधारः पवते             | ८७४       | सुवितस्य वनामहे             | ८९३       | स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः | १८७५      |
| सहस्रधारं वृषभं            | १३९५      | सुषमिद्धो न आ वह            | १३४७      | स्वादिष्ठया मदिष्ठयाः         | ४६८; ६८९  |
| सहस्तस्य इन्द्र            | ६२५       | सुषहा सोम तानि ते           | १७६७      | स्वादोरिष्ठा विषूवतो          | ४०९; १००५ |
| सहस्रशीर्षाः पुरुषः        | ६१७       | सुषवाणास इन्द्र             | ३१६       | स्वायुधः पवते देव             | ६७८       |
| स हि पुरु चिदोजसा          | १८१५      | सुषवाणासो व्यद्रिभिश्चिताना | ११०३      | हृथो वृत्राण्यार्या           | ८५५       |
| स हि ष्मा अरितृभ्य         | ९६९       | सुर्यस्येव रश्मयो           | १३७०      | हरी त इन्द्र इमभूण्युतो       | ६२३       |
| साकं जातः क्रतुना          | १४८७      | सो अमियो वसुर्गुणे          | १७३९      | हस्तच्युतेभिरद्रिभिः          | १४४५      |
| साकमुक्षो मर्जयेत          | ५३८; १४१८ | सो अर्षेन्द्राय पीतये       | ९८०       | हिन्वन्ति सूरमुख्यः           | ९०४       |
| सा नो अद्याभरद्वसुः        | १७४२      | सोम उष्वासः सोतृभिरधि       | ५१५; ९९७  | हिन्वानासो रथा                | ११२०      |
| साहान्विश्वा अभियुजः       | १५५८      | सोमः पवते जनिता             | ५२७; ९४३  | हिन्वानो हेतृभिः              | ६५५       |
| सिध्मेति नमसावटमुच्चाचक्रं | १६०४      | सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं      | ५७२; ९४०  | होता देवो अमर्त्यः            | १४७७      |
| सीदन्तस्ते वयो             | ४०७       | सोमः पुनानो अर्षति          | ११८७      |                               |           |









